A TEXT BOOK OF

General Science

(नूतन सामान्य विज्ञान)

बहुद्देशीय एव उच्चतर माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों के लिए
नवीन पाठ्य-क्रमानुसार सामान्य विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक

●

—लेखक मंडल—

श्री श्यामसुन्दर कौल, एम. एस. सी.,
नोपानी हायर सैकंड्री पब्लिक स्कूल, कलकत्ता।

डॉक्टर रामेश्वर शर्मा, एम. डी.,
रीडर मेडीकल कॉलेज, जयपुर।

श्री योगेन्द्रकुमार श्रीवास्तव एम. एस. सी.,
राजकीय गर्ल्स कॉलेज, श्री गंगानगर।

श्री रामजन्म चतुर्वेदी बी. ए. बी.टी.,
बिडला हायर सैकंड्री स्कूल, पिलानी।

श्री कृष्णकुमार शर्मा एम. ए., एम. एस. सी.,
महाराजा मल्टी परपज हायर सैकण्ड्री स्कूल, जयपुर।

●

: प्रकाशक :
साहित्य निकेतन
अ ज मे र।

जयपुर के वितरक
श्री जय अम्बे पुस्तक भण्डार
प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता
ज य पु र।

CONTENTS
&
New syllabus prescribed by the Board for Secondary Examinations for 1962.

Chapter. Page.

Class IX

1. Our Universe : The Solar System, Stars and planets. Simple telescope, (Galileo) 1–43

आकाश परिचय, चंद्रलोक की सैर, सूर्य तथा सौर्य-परिवार, तारे तथा नीहारिकाएं, उल्काएं और धूमकेतु,

2. Our Earth : The structure of the earth. Rocks minerals and fossils., Types and properties of soil, Formation of mountains, plateaus, rivers and plains, Seasons and how they are caused. 44–66

भू-पटल और उसकी रचना, चट्टानें, जीवाश्म, पर्वतों, नदियों, पठारों तथा मैदानों की रचना, मिट्टी

3. Our Towns : Typographical account of typical towns in Rajasthan. Sanitation in streets of towns. Brief discussion on social hygiene. 101–118

हमारे शहर, सड़कों तथा गलियों की सफाई, सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान

4. Our Atmosphere : Composition of air; Pressure, temperature and its measurement. Barometer (Simple description), Density of air. Moisture in the atmosphere. Rain, dew, mist and fog. Weather. 67–100

ऋतु परिवर्तन, वायु मंडल, वायु भार. वायुमंडल की आर्द्रता कतिपय वायुमंडलीय दृश्य

5. Our Bodies : Outline of the human body, ity organs and functions. 118–150

Personal hygiene–cleanliness and regular habits. Exercise and rest Care of nails, teeth, sking eyes and ears. ... 151–158

Common diseases–their prevention and causes. General knowledge of antibiotics. 159–181

Class XI

8. Landmarks in Science : Some landmarks, suggested topics — 203-257

Copernicus and the Universe-Galileo and leaning tower of Pisa-Kepler and his laws (in general terms) Newton and his laws (in general terms) Faraday and his work—

Rontgen and X-Rays, Thompson and electrons, Mendel and theory of heredity, Darwin and theory of evolution, Pasteur and Microbos, Harvey and blood circulation, Einstein and relativity.

कॉपर्निकस, गेलिलियो, पीसा की मीनार, जॉन कैपलर, सर आइजक न्यूटन, माइकल फैराडे, राजन तथा एक्स-रे, टामसन तथा एलेक्ट्रोन, मैंडल तथा आनुविंशता, डार्विन तथा उद्विकास, लूइ पास्चर तथा बैक्टीरियां, हार्वे तथा रक्त सचारण, आइन्स्टाइन तथा सापेक्षवाद,

9. Our Men of Science : An outline of the contributions of Wadia (First Indian F.R.S.) P C. Ray, J.C. Bose Ramnanujam, Birbal Sahni, C V. Raman and M.N. Saha. 258-293

डी. एन. वाडिया, डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय, सर जगदीशचन्द्र बोस, श्रीनिवास रामानुजम्, डॉ० बीरबल साहनी. डॉ० सी. वी. रमण, मेघनाथ साह ।

10. Impact of Science on Society : N.B.—Visits to Botanical anq Zoological gardens, natural history, Museums and power projects be organised. 294-295

विज्ञान और मानव समाज ।

पहला अध्याय

आकाश परिचय

मानव की पैनी दृष्टि जब धरती से विचलित होती है तो स्वभावतः वह आकाश पर जा टिकती है। दूर क्षितिज पर ऐसा विश्वास जमने लगता है कि धरती और आकाश दोनों ही परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं। इतना सही है, धरती का आकाश से और आकाश का धरती से सम्बन्ध अवश्य है। इस ओर मन में संकल्प-विकल्प न हो, इसलिए हमें आकाश की जानकारी करनी होगी। और अब तो जब हम चन्द्रलोक की यात्रा करने की तैयारी में है, हमारे लिए उस लोक की जानकारी अत्यावश्यक होगी।

अब सबसे पहले मन में यह जिज्ञासा प्रबल होगी कि आकाश क्या है? वहां भी कोई रहता है? और फिर यदि वहां कोई रहता है, तो कौन? इसका उत्तर यदि मिले "हां, वहां भी कोई न कोई निवास करते हैं" फिर तो न जाने मनमें कितने ही प्रश्न एक साथ उठ खड़े होंगे कि "वहां के निवासी कैसे हैं? क्या करते हैं? उनके घर कैसे है? क्या वे भी हमारी तरह रहते हैं? क्या उनके यहां भी हमारी दुनिया की तरह शहर, गांव आदि बने हुए हैं? ऐसे और भी न जाने कितने सवाल मन में उठें कि वहां क्या क्या है? और फिर इनका उत्तर यदि संतोषजनक मिल जाय तो फिर यह मनसा बड़ी प्रबल होगी कि "वहां की दूरी कितनी है? हम वहां कैसे पहुंच सकते हैं?" आदि आदि। यही सारी दिलचस्प बातें हम यहां आपको समझा रहे हैं :—

आकाश के प्रांगण में चांद-सितारे जो दिखाई देते है वे आकाशीय पिण्ड कहलाते है। इस परिभाषा के अनुसार चाँद व टिमटिमाते अगणित तारे, धूमकेतु व अन्य रात को टूटते वाले तारे आदि सब "आकाशीय पिण्ड" ही हैं।

इतना ज्ञान लेने के पश्चात् हम आकाशीय पिण्डों को कुछ श्रेणियों में बांट देंगे ताकि इनके बारे में स्वतंत्र रूप से विचार हो सके। विभाजन करते समय देखें चन्द्रमा सबसे अलग है—ठीक भी है। आकाश में चाँद है भी तो यही एक। दूसरा स्थान सूर्य को दें—वैसे तो सूर्य चांद से कहीं बड़ा है पर बड़े होने से होता क्या है? तारे भी तो सूर्य से सैकड़ों गुना बड़े हैं। हां, आप आश्चर्य न करें, धीरे धीरे आकाशीय पिण्डों के अनेक रहस्य खुलेंगे। अब रह गए तारे। उन्हें तीसरा स्थान दे दें। पर इन तारों में कुछ ग्रह भी मिले हैं जो ठीक इन जैसे ही होते है। देखने पर

साधारणतया कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता पर तारों और ग्रहों में बड़ा अन्तर है। वैसे तो अभी धूमकेतुओं और टूटते हुए तारो को भी अलग अलग श्रेणियों मे विभाजित करना है, किन्तु पहले तारे और ग्रहों का अन्तर समझलें तो अच्छा रहेगा।

तारे और ग्रह—ये रात को जो आग की चिन्गारियां सी आसमान में चमकती रहती हैं—यही तो तारे है। और ग्रह? ग्रह भी इनमे ही हैं। आपने सुना होगा 'शुक्र तारे' का नाम। वास्तव में वह एक ग्रह है। भूल से लोगों ने इसे तारा बता दिया है। तारे इतने चमकदार नही होते, न इतने बड़े ही दिखाई देते हैं जितना यह शुक्र। शुक्र के समान ही और भी ग्रह है जो इन तारों से मिले हुए हैं, किन्तु वे इतने प्रकाशमान् नही हैं।

इन तारों और ग्रहों को किसी अच्छे खगोल-एटलस या 'तारा-चार्ट' से पहचान कर यदि आप इन्हे प्रति रात देखें तो कुछ दिनों पश्चात् आपको विदित होगा कि तारे तो जहां आरम्भ में थे, वही हैं; किन्तु ग्रह अपने स्थान से थोड़ा हट गए हैं। तारों और ग्रहो में यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। आज आप किसी तारे को देखकर उसकी जगह अन्य तारों के साथ निश्चित करके नोट करलें—हो सके तो फोटो ले लें और आज ही किसी ग्रह की स्थिति भी नोट करलें। साल भर पश्चात् फिर आज की ही तारीख को इन दोनों को आकाश में ढूंढने का प्रयत्न करें। आपको पता चलेगा कि तारा तो अपनी उसी जगह पर स्थित है किन्तु ग्रह-देवता कहीं सरक गए हैं। ग्रीक में ग्रहों को 'Planet (प्लेनेट) कहते है और इसका अर्थ होता है घुमक्कड़। ग्रीक वालों ने बड़ा ही उपयुक्त नाम इन्हे दिया है।

आपने शीशे से सूर्य की किरणों को कही न कही अवश्य फेंका होगा या दूसरों को ऐसा करते अवश्य देखा होगा। शीशे से टकरा कर सूर्य की किरणें वापिस मुड़ जाती है। इसे 'परावर्तन' कहते हैं। जब इस प्रकार शीशे से प्रकाश किरणें कही फेंकी जाती हैं तो यह कहा जाता है कि शीशा सूर्य के प्रकाश को 'परावर्तित' कर रहा है। ग्रह भी इसी प्रकार का व्यवहार करते है। वे भी सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते रहते हैं। इसीलिए दिखाई भी देते हैं। उनमें अपना प्रकाश नही है किन्तु तारों में स्वयं का प्रकाश है—वें किसी से प्रकाश उधार नही लेते।

इतना ही नही ग्रह बिचारे बहुत ही ठण्डे हो गए हैं। इनकी ऊपरी सतह कठोर है किन्तु तारे ज्वलनशील हैं—आग के भयंकर गोले। साथ ही तारे हमसे बहुत दूर है—इतनी दूर कि उनकी दूरी सहसा समझ में नही आती। बम्बई और पूना के बीच भारत की सब से तेज चलने वाली रेलगाड़ी 'डक्कन क्वीन' है, इसे नजदीक से नजदीक के तारे तक पहुँचने में अरबों वर्ष लगेंगे—लन्दन और दिल्ली

के बीच उड़ने वाला कॉमिट जो सबेरा लन्दन और शाम दिल्ली में बिताता है यदि इस तारे तक जाय तो इसे भी अरबों वर्ष लगें। इतने दूर हैं ये तारे! इनकी दूरी का वर्णन चौथे अध्याय में करेंगे, किन्तु ग्रह अपेक्षाकृत बहुत पास है।

इतनी दूर स्थित ये तारे बडे भी कुछ कम नहीं है। यह हम जानते हैं कि दूरी पर बड़ी चीज भी छोटी दिखाई देती है। तारे भी ग्रहों से सैकड़ों और लाखों गुना बड़े है, पर अधिक दूर होने के कारण आग की चिन्गारी से दिखाई देते हैं।

यदि आप कहें कि किसी दूर-दर्शक से देखने पर सम्भवतः यह बड़े दिखाई दें—तो यह बात भी नही। दूर-दर्शक से यदि किसी तारे को देखा जाय तो तारा चमकीला अधिक दिखाई देता है, उसका आकार बड़ा नही दिखाई देता, किन्तु दूरदर्शक से ग्रह बहुत बड़े दिखाई देते हैं। शुक्र और वृहस्पति साधारण-से दूर-दर्शक से देखने पर भी चांद जितने बड़े दृष्टिगोचर होते हैं।

फिर ये तारे, टिमटिमाते भी तो हैं। इतना अन्तर अवश्य है कि जो तारे शिरोबिन्दु के समीप होते है वे नही टिमटिमाते। क्षितिज के पास वाले तारे अधिक टिमटिमाते है। ग्रह नही टिमटिमाते। इनका प्रकाश एक सा आता रहता है।

साथ ही ग्रह तो सूर्य का चक्कर लगाते है क्योंकि इसी सूर्य से टूट कर बने हैं, किन्तु तारे न तो सूर्य से टूट कर बने है, न सूर्य का चक्कर ही लगाते हैं।

इतने अन्तर होते हुए भी यदि लोग ग्रहों को तारा ही कहें तो कोई क्या करे? इनका विस्तृत अध्ययन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

सारांश

आकाश धरती का पड़ोसी है। इस आकाश में भ्रमण करने वाले प्रत्येक पदार्थ को आकाशीय पिण्ड कहते हैं। सूर्य, चांद, तारे ग्रह, धूमकेतु, उल्काएं (टूटते तारे) सभी ग्रह है। तारे और ग्रहों में अन्तर है कि (१) तारे स्थिर रहते है, ग्रह स्थिर नहीं है, (२) तारे स्वयं प्रकाशमान् हैं, किन्तु ग्रह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हैं; (३) तारे आग के गोले के समान ज्वलनशील हैं, ग्रह ठण्डे हैं; (४) तारे हम से बहुत दूर हैं जबकि ग्रह अपेक्षाकृत समीप; (५) तारों का आकार बहुत बड़ा है; ये पृथ्वी से लाखों करोड़ों गुना बड़े नही है जबकि ग्रह इतने बडे नहीं हैं, कुछ ग्रह तो पृथ्वीसे भी छोटे है; (६) तारे सूर्य का चक्कर नहीं लगाते (७) न सूर्य से टूटकर बने ही है, किंतु ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते है और सूर्य से ही टूट कर बने हैं। ग्रहों को प्लेनेट (Planet) भी कहते है। इसका अर्थ होता है "घुमक्कड़"।

द्वितीय अध्याय

चन्द्र लोक की सैर

चंदा मामा कैसे ? बचपन से आप चन्दामामा की कहानियां सुनते आए हैं। पर क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि चन्दा "मामा" कैसे बन गए ?

बात यों है कि बेटा अपनी माँ का ही बेटा नही होता, वह अपनी मातृभूमि का भी बेटा है—लाल है। यदि हम अपने दृष्टि-कोण को व्यापक बनाएं और संसार के सभी देशों को अपना समझकर विश्वबन्धुत्व की भावना अपनाएं तो स्पष्ट है हम सभी इस धरती के बेटे होंगे। पर धरती क्या है ? अगले अध्यायों में हम पढ़ेंगे कि सम्पूर्ण धरती जिस पर हम लोग रहते हैं और देश बसे हुए हैं (पृथ्वी नहीं पृथ्वी का स्थल खण्ड) पर्वतों से कट-पीट कर बनी है और इनमें से अधिकांश पर्वत सागर से पैदा हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि परोक्ष रूप में धरती सागर से निकली है। और चन्द्रमा ? वह भी सागर से ही निकला है। आज जहां प्रशान्त महासागर लहरा रहा है वहां कभी स्थल खण्ड था। बड़े बड़े ज्वालामुखी थे; वही भाग टूट कर दूर जा पड़ा जो चन्द्रमा कहलाया। पृथ्वी के धरातल पर बना गड्ढा जल से पूरित होगया और सागर बन गया। तो इस प्रकार भूमि और चन्द्रमा दोनों ही की उत्पत्ति सागर से है। धरती और चन्द्रमा हुए बहन-भाई। और हम धरती के बेटों के लिए चन्द्रमा हुआ मामा!

पर चन्दा मामा है बड़े विचित्र! न कुछ खाते हैं न पीते हैं, न सांस ही लेते हैं। बिचारे करें भी क्या ? चन्द्रमा पर न तो जल है न वायु। आज के वैज्ञानिक जो चन्द्रलोक जाने की तैयारी कर रहे हैं, अपने साथ ले जाने वाले सामानों में वायु के लिए एक थैला भी बनवा रहे हैं। वहां जाने पर उन्हें सांस लेने की आफत हो जावेगी वहां हवा भी ही नहीं; सांस लेंगे तो कैसे ? वायु के अभाव मे न तो वहां जल है न पेड़-पौधे ही—जीव धारियो के रहने का तो प्रश्न ही नही उठता।

अब प्रश्न उठता है कि जब पृथ्वी पर वायु है तो चन्द्रमा पर क्यों नही। इसका कारण जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी पर वायु है तो कैसे ? वह उड़ कर गायब क्यों नहीं हो जाती।

इसे समझने के लिए दो रस्सियां लें—एक पतली और कमजोर; दूसरी मजबूत। दोनों के एक किनारे पर एक पत्थर बांध दें और उन्हे दूसरी ओर पकड़ कर घुमावें,

आप देखेंगे कि मजबूत रस्सी से बंधा पत्थर तो चारों ओर घूम रहा है किन्तु कमजोर रस्सी से बंधा पत्थर रस्सी के टूट जाने से दूर जा पड़ा। पत्थर को दूर न जाने देने

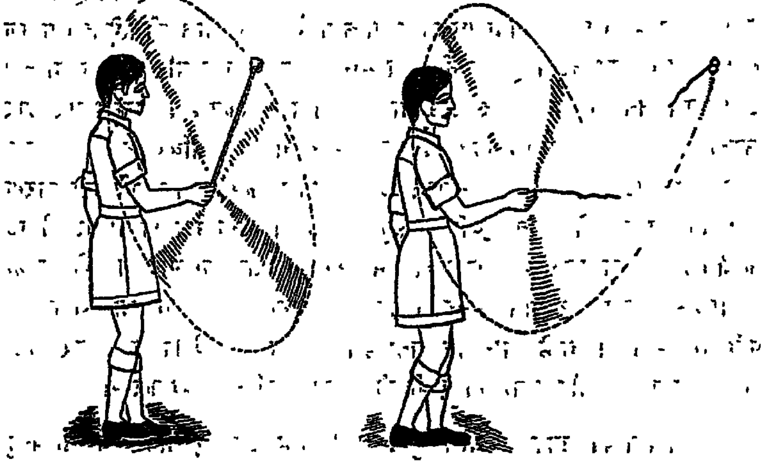

का श्रेय मजबूत रस्सी को है। यह रस्सी ही उसे आपकी ओर खींचे हुए है। इसी प्रकार पृथ्वी भी अपनी आकर्षण शक्ति के सहारे पृथ्वी पर की सम्पूर्ण वस्तुओं को अपनी ओर खींचे रहती है—उसका यह आकर्षण बड़ा प्रबल है। आप किसी पत्थर को खूब जोर से ऊपर फेंकें, वह भी नीचे आ गिरेगा। अपनी इसी आकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी ने वायु को भी रोक रखा है, वह उड़ कर जाने नहीं पाती।

किन्तु चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति पृथ्वी से बहुत ही कम है, केवल $\frac{१}{६}$। इतनी कम आकर्षण शक्ति के कारण वायु वहाँ है ही नहीं। चन्द्रमा की उत्पत्ति जब हुई थी तब तो वहाँ भी वायु थी; किन्तु धीरे धीरे वहाँ से वायु उड़ती गई और चूंकि चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति बहुत ही कम है इसलिए वहां की सारी वायु काफ़ूर होगई।

तो चन्दा मामा पर वायु नहीं है। चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कम होने के कारण इस कमी से और भी अनेक मनोरंजक बातें उत्पन्न होगई हैं। पृथ्वी पर आप अधिक से अधिक १२–१४ फुट लम्बी कूद कर सकते हैं। आप में से कोई अच्छा कूदने वाला है तो वह १७–१८ फुट कूद लेगा। पर जानते हैं, यदि चन्द्रमा पर कूदना पड़े तो कितना कूद सकते हैं? सोचें ३० फुट ४० फुट? आप कहेंगे इतना तो बहुत होता है, पर वास्तविकता यह है कि चन्द्रमा पर आप ७०–८० फुट तो आसानी से कूद सकते हैं और अच्छे कूदने वाले सौ-सवासौ फीट। यह भी उस आकर्षण शक्ति की ही करामात है। ऊंची कूद भी आप कम से कम २५–३० फुट की तो कर ही सकते हैं।

और देखें—हम जब दो चार मील चलते है तो थक क्यों जाते है ? और जब ऊंचाई पर चढ़ते है तो जल्दी क्यों थक जाते हैं ? इसका भी कारण कुही आकर्षण शक्ति है। धरती पर चलते समय जब हम अपना एक पैर ऊपर उठाते है तो उसे उठाने के साथ ही पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से पैर को नीचे खींचती है। प्रत्येक बार जब पैर ऊपर उठता है, वह नीचे की ओर खीचा जाता है और जोरें पड़ता है। इसीलिए जितना अधिक चलते है, उतना ही अधिक थकते हैं। सारा शरीर ऊपर उठता है, अतः जोर अधिक पडता है और ऊपर जाने पर अधिक थकते है। खड़े होने से थकावट अधिक आती है—लेटने और सोने से कम। इसका भी वही कारण है। जब हम खड़े होते है तो पृथ्वी की संपूर्ण आकर्षण शक्ति पैरो की लम्बाई-चौडाई के क्षेत्रफल पर ही पड़ती है—दूसरे शब्दो मे संपूर्ण शरीर का भार दो पैरो पर ही पड़ता है—निश्चित जोर अधिक पड़ेगा। लेटने पर संपूर्ण शरीर का भार शरीर की पूरी लम्बाई पर पड़ता है और बंट जाता है। यही कारण है कि लेटने पर बड़ा आराम मिलता है और है यह भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की ही करामात !

चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति पृथ्वी से ⅙ ही है, इसलिए वहां किसी भी वस्तु पर चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण का छठवां भाग ही पड़ता है। इसीलिए वहां इतनी लंबी कूद की जा सकती है और २०–२५ फुट ऊचे मकानों को भी एक हा छलांग में कूद कर पार किया जा सकता है। साथ ही पृथ्वी पर ५ मील चलने पर जितनी थकान महसूस होती है उतनी थकान वहां ३० मील चलने पर महसूस होगी।

चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति की कमी का कारण उसकी मात्रा की कमी है। यह पृथ्वी से बहुत ही छोटा है—इसका केवल १/८० ही ! चन्द्रमा का व्यास भी पृथ्वी के व्यास से एक चौथाई है। वास्तविक दूरी २१६० मील है। कितना छोटा है चन्द्रमा ! पृथ्वी का व्यास ८००० मील है। इतना छोटा चन्द्रमा हमसे बहुत दूर जा पड़ा है। क्या आपने कभी सोचा है कि इसकी दूरी हमसे कितनी है ? वैसे तो आकाश में जितने भी ये तारे और ग्रह दिखाई देते हैं उन सबसे यह नजदीक है और पृथ्वी का निकटम पड़ोसी है; फिर भी दूरी कम नही, २ लाख ३९ हजार मील। इतनी दूरी से चन्द्रमा पृथ्वी पर अपनी शीतल किरणें बिखेरता रहता है और हमारा मन आनन्द और उल्लास से भरता रहता है।

चंद्रमा की कलाएँ—चन्द्रमा नित्य एक सा नही दिखलाई देता। कभी यह बड़े प्रसन्न दिखाई देते है और इनका सम्पूर्ण मुखमण्डल आभा से आलोकित रहता है, पर कभी ये दुःखी नजर आते हैं, आधे दीखते हैं तो आधे छिपे रहते हैं। महीने मे एक दिन—अमावस्या को तो बिल्कुल नही दिखाई देते ? चन्द्रमा के इस प्रकार घटने बढ़ने

को ही चन्द्रमा की कलाएँ कहते हैं। पर ऐसा होता क्यों है ? इसका कारण यह है कि चन्द्रमा में भी ग्रहों की तरह ही अपना प्रकाश नहीं है। वह सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करके हम तक फेंकता है । साथ ही वह पृथ्वी के चारों ओर घूमता भी

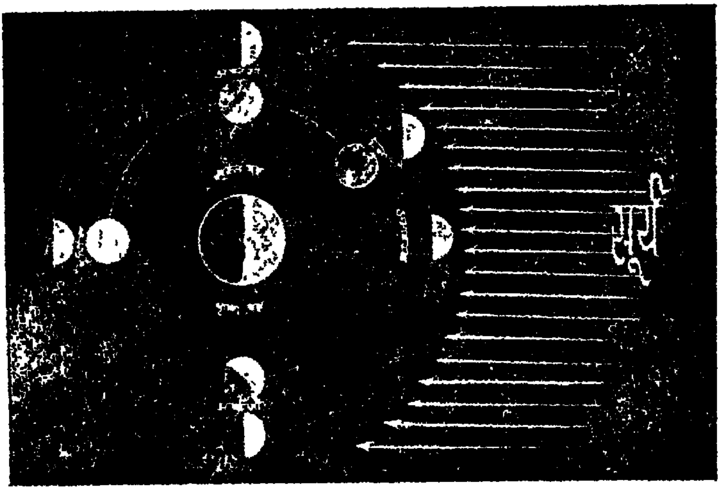

है। इस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करते समय कभी वह पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है तो कभी ऐसा होता है कि पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्य के बीच में आ जाती है ! जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच में रहता है तब उसका प्रकाशित भाग सूर्य की ओर रहता है और अन्धेरे वाला भाग पृथ्वी की ओर ; इसलिए वह हमें दिखाई नहीं देता; यही अमावस्या का दिन है । और आप देखेंगे, जब पृथ्वी के चारो ओर घूमते घूमते चन्द्रमा की स्थिति ऐसी हो जाती है कि पृथ्वी बीच में आ जाती है तो चन्द्रमा का सम्पूर्ण प्रकाशित भाग पृथ्वी की ओर होता है और वह पूरा दिखाई पड़ता है। इन दोनों स्थितियों के बीच में चन्द्रमा का कुछ भाग ही दिखलाई पड़ता है। वैसे तो चन्द्रमा का आधा भाग सदैव प्रकाशित रहता है किन्तु पृथ्वी वालो को उसका पूरा प्रकाशित भाग प्रतिदिन दिखलाई नहीं पडता ।

चन्द्रमा नित्य देर से क्यों निकलता है--आपने यह देखा होगा कि पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्व में क्षितिज पर दिन डूबते ही निकल आता है; किन्तु अगले दिन अर्थात् प्रतिपदा को थोड़ी देर बाद आता है और नित्य ही कुछ न कुछ विलम्ब से निकलता है। इसका कारण क्या है ? एक और बात चन्द्रमा के साथ होती है--शुक्लपक्ष में सन्ध्या को दूज का चन्द्रमा पश्चिमी क्षितिज मे कुछ ऊँचा रहता है, किन्तु तीज के दिन कुछ और ऊँचा और अष्ठमी को तो आकाश के मध्य में आ जाता है। इस प्रकार

हम देखते हैं कि नित्य चन्द्रमा पूर्व की ओर सरकता रहता है। यही कारण कृष्णपक्ष मे उसके प्रतिदिन विलम्ब से निकलने का है! नीचे के चित्र को ध्यान पूर्वक देखे—

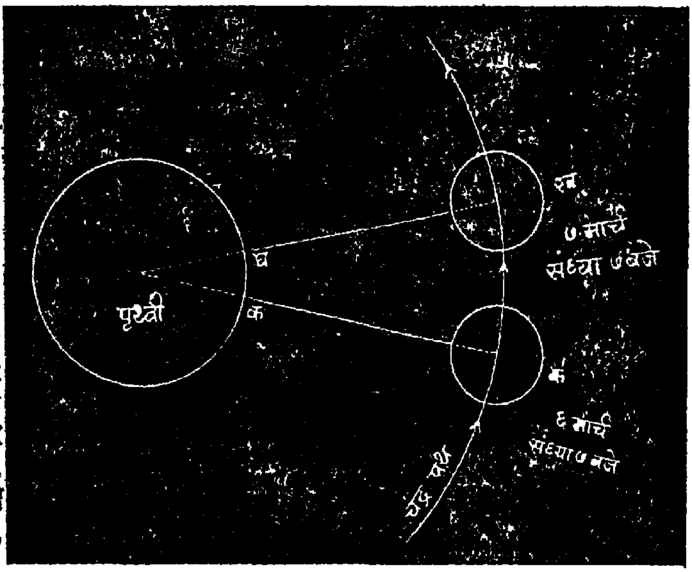

६ मार्च को चन्द्रमा और पृथ्वी की स्थिति इस प्रकार है कि चन्द्रमा पृथ्वी पर के क स्थान की सीध मे है। ७ मार्च को पृथ्वी अपनी कीली पर पूरा चक्कर लगा कर जब अपनी पहली स्थिति में ठीक ७ बजे आती है तब तक चन्द्रमा अपने पथ पर क से ख स्थान तक चला जाता है, क्योंकि वह भी तो पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अब पृथ्वी पर के क स्थान को चन्द्रमा के सामने आने के लिए क से घ स्थान तक जाना पड़ेगा। इतनी दूरी तय करने मे पृथ्वी को लगभग ५२ मिनिट लग जाते है, इसीलिए चन्द्रमा हमे प्रतिदिन ५२ मिनिट देर से निकलता दिखाई देता है।

पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में चन्द्रमा को २७⅓ दिन लग जाते हैं किन्तु इस बीच पृथ्वी भी अपनी कक्षा पर सूर्य के चारों ओर बढ़ती रहती है। फल यह होता है कि हमें चन्द्रमा २९½ में अपनी परिक्रमा पूरी करता हुआ दिखाई पड़ता है। भारतीय महीनो तथा वर्ष की गणना चन्द्रमा की तिथियो के अनुसार की जाती है। यही कारण है कि हमारे महीने ३० दिन के मान लिए गये है और चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार तिथियां घटती बढती रहती है।

पृथ्वी की ही तरह चन्द्रमा भी अपनी कीली पर घूमता है। सम्भवत: आप मनमे सोचें कि यदि चन्द्रमा अपनी कीली पर घूमता तो कभी तो उसकी पीठ दिखाई

देती ! क्योंकि जब भी देखो व बुढिया सूत कातती हुई दिखाई देती है। इससे प्रतीत होता है कि वह अपनी कीली पर नही घूमता होगा। पर बात ऐसी नही है। चन्द्रमा का सदैव एक ही भाग पृथ्वी वालों को इसलिए दिखाई देता है कि वह जितने दिनों में पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उतने ही दिनों मे अपनी कीली पर भी घूमता है–अर्थात् २७$\frac{1}{3}$ दिन मे। यदि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु की परिक्रमा उतने ही समय में करे जितनी देर मे वह अपनी कीली पर घूमती है तो उसका सदा एक ही भाग दिखाई देगा।

आप स्वय यह प्रयोग कर सकते है। एक छड़ी के एक किनारे पर एक गुड़िया मोम वा गोंद से चिपका दे। फिर उसे इस प्रकार पकड़े कि आपका मुँह उत्तर की ओर रहे। स्पष्ट देखेगे कि गुड़िया का मुँह आपकी ओर है और दक्षिण की ओर भी, क्योंकि आप गुड़ियां से दक्षिण मे है। अब उसे पकड़े हुए ही आप धीरे धीरे अपनी जगह पर पश्चिम की ओर से घूमना आरम्भ करे। जब आपका मुँह पश्चिम की ओर हो तो देखेगे कि गुड़ियां का मुँह अब भी आपकी ओर है, किन्तु दिशाओं के अनुसार उसका मुँह पूर्व की ओर हो गया है। अपना घूमना जारी रखे–जब आपका मुँह दक्षिण को होगा, तो गुड़िया का मुँह उत्तर को, किन्तु गुडिया अब भी आपके सम्मुख है–इसी प्रकार

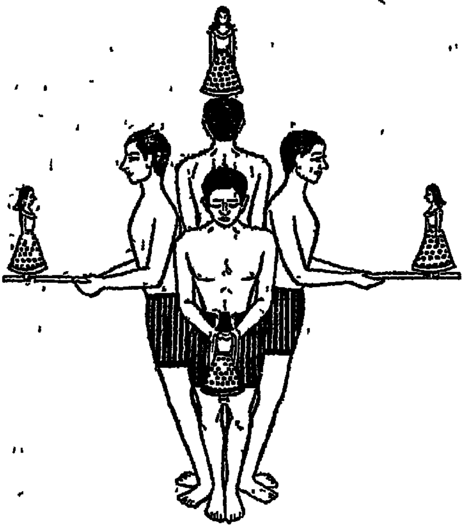

जब आपका मुँह पूर्व को होगा तो गुडिया का मुँह यद्यपि पश्चिम की ओर होगा पर रहेगी वह आपके सामने ही। इसके बाद आप अपनी पहली स्थिति मे आ जावे।

अब विचार करना है कि गुडिया ने अपनी कीली पर चक्कर लगाया या नही ? इसके लिए आप स्वयं इस बात का उत्तर दे कि आपने चक्कर लगाया या नही ? कहेगे लगाया। ठीक है, तो मैं कहूंगा गुडिया ने भी चक्कर लगाया, चक्कर लगाने में होता क्या है ? दिशाओ के अनुसार वस्तु की स्थिति बदलती रहती है। यही आपके साथ हुआ। कभी आपका मुँह उत्तर को रहा, कभी पूर्व को तो कभी दक्षिण और पश्चिम को। इसी आधार पर न कहते है कि आपने चक्कर लगाया ? अब देखे गुड़िया ने

भी यही किया; कभी उसका मुँह दक्षिण को रहा, फिर पूर्वको, फिर उत्तर और पश्चिम को, तो यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि गुडिया ने अपनी कीली पर चक्कर लगाया। और इस बात को आप इन्कार कर ही नही सकते कि गुड़िया ने आपके चारों ओर परिक्रमा भी की। साथ ही गुड़िया का सदा सामने वाला भाग आपको दिखाई देता रहा, उसकी पीठ दिखाई ही नही दी, ऐसा इसीलिए हुआ कि अपनी कीली पर घूमने तथा आपकी ओर चक्कर लगाने मे गुड़ियां ने बराबर समय लिया। यही बात चन्द्रमा मे होती है। पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाने तथा अपनी कीली पर घूमने में चन्द्रमा समान समय लेता है। फल यह होता है कि हमे सदा उसका एक ही भाग दिखाई देता है।

चन्द्रमा पर दिन-रात:—पृथ्वी पर २४ घण्टे मे एक बार दिन और एक बार रात होती है। ऐसा क्यो ?

इसीलिए कि पृथ्वी अपनी कीली पर २४ घण्टे में एक चक्कर पूरा करती है। इसके अनुसार यदि चन्द्रमा पर दिन रात की लम्बाई निकालना चाहे तो मानना पडेगा कि वहाँ लगभग २७½ या लगभग २८ दिन मे एक दिन और एक रात होती है। चन्द्रमा का जो भाग एक बार सूर्य के सामने आता है वहां १४ दिनों तक प्रकाश पडता रहता है। फिर जब वह भाग अन्धेरे मे जाता है तो १४ दिनों तक सूर्य के दर्शन ही नही होते। हमने यह भी देख लिया है कि चन्द्रमा पर वायु-मण्डल नही है। इसका फल यह होता है कि वहा के धरातल के तापक्रम को कम करने के लिए न तो बादल हैं न वनस्पति। दिन मे वहा तापक्रम बड़ा ही अधिक रहता है। सूर्योदय के साथ ही अचानक तापक्रम बढना आरम्भ होता है और इतना अधिक हो जाता है कि किसी बर्तन मे यदि पानी और चावल रख दिए जांय तो मिनिटो मे चावल तैयार हो जावेंगे! रात होते ही वहा ठण्डक भी बड़ी भयंकर पडती है। सूर्यास्त होने के दो घण्टे के भीतर तापक्रम द्रवणांक पर आ जाता है और दो चार दिन पश्चात् तो सेन्टीग्रेट से भी २००° नीचे!

चन्द्रलोक की काल्पनिक यात्रा

हमने चन्द्रमा के बारे मे बहुत कुछ जान लिया है किन्तु अभी जानने को बहुत कुछ बाकी भी है। अच्छा रहे इसकी विस्तृत जानकारी चन्द्रलोक तक चल कर करें। पर वहा चलने की तैयारी अबकी जानकारी के अनुसार ही होनी चाहिए। वहां के लिए अपनी ओर से चाहे आप कुछ भी ले चलें। मेरे कहने से धूप के काले चश्मे— [illegible], दो चार [illegible] और एक लकड़ी का तख्ता जिसे मोड़कर छोटे आकार का बना सकें, अवश्य [illegible] इनकी वहां बड़ी आवश्यकता पड़ेगी—वायु का थैला लेना तो न भूलें, खाने-पीने का जो भी सामान चाहे [illegible] ले लें।

तो अब धरती छूटती जारही है और अब कुछ ही देर में हमें चन्द्रमा तक पहुंचना है। किधर उतरेंगे चन्द्रमा पर, दिन वाले भाग पर ? तब तो बड़ी गर्मी पड़ेगी और अगर रात वाले भाग पर उतरेंगे तो सर्दी में ठिठुर कर बर्फ बन जावेंगे। पर अब सोचने का अवसर कहा है ? अब तो हम दिन वाले भाग पर आ ही गए !

कहा था न बड़ी भयकर गर्मी पड़ती है—ठहरे, घबराने से काम नही चलेगा। डण्डों के सहारे लकड़ी के तख्ते की छत बनाले गर्मी बिल्कुल नही लगेगी। हां—अब डायरी निकाल ले, कुछ नोट कर ने पर यह क्या ? इस छत के नीचे तो भयंकर अंधेरा होगया—कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है—वह दो गज दूर तो इतनी धूप पड़ रही है—और तख्ते के नीचे अमावस्या की काली रात से भी भयंकर अंधेरा।

बात यह है कि हमें पृथ्वी पर रहने का अभ्यास है। पृथ्वी के वायुमण्डल में धूलिकण बहुत ज्यादा हैं। वे सूर्य किरणो को परावर्तित करके छायेदार स्थानों में भी भेजते रहते हैं; इसीलिए पृथ्वी पर छाये में बैठकर पढ़ लिख सकते है। पर यहां वायु मण्डल तो है नही—धूलीकणों का प्रश्न ही नही उठता। इसीलिए छाए में अंधेरा छाया हुआ है। जो हल्का सा प्रकाश आरहा है वह धरातल से परावर्तित होकर। चन्द्रमा पर न तो कहीं घास है न कोई पशु-पक्षी और भूमि कैसी है ! लगता है लाखों करोड़ों टन 'चूर्ण' यहां बिखेर दिया गया हो। एक पत्थर का टुकड़ा भी तो नहीं मिलता। चट्टानों के नन्हें-नन्हें कण जमे पड़े है। जानते हो चन्द्रमा का धरातल इस प्रकार चूर्ण किए हुए चट्टानों से कैसे बना ?

इसका पहला कारण तो यह है कि यहा पहले बहुत ज्वालामुखी आया करते थे। उनसे निकली हुई राख सतह पर जम गई। दूसरा कारण यह है कि दिन को भयंकर गर्मी तथा रात को उससे भी भयंकर सर्दी के कारण चट्टाने चटक चटक चूरा हो गई हैं। हवा और पानी के अभाव में यह चूर्णित पदार्थ जहां का तहां पड़ा है। तीसरा कारण यह है कि चन्द्रमा पर उल्काएं बहुत गिरती है। प्रतिदिन लाखों। ये उल्काएं लगभग १० से ४० मील प्रति सेकिन्ड की गति से आकर टकराती हैं और पृथ्वी पर की उल्काओं की तरह वायु मण्डल में ये जल नही सकती—सीधे चन्द्रमा से टक्कर करती है। परिणामस्वरूप ये खुद भी चकनाचूर हो जाती हैं और चन्द्रमा के धरातल को भी चूरा-चूरा कर देती हैं।

वह देखो उधर एक उल्का गिरी—वह तो बहुत बड़ी है—यह लो, एक पास में ही गिरी और चूर होगई; किन्तु आवाज तो हुई ही नहीं। इसका भी कारण है। ध्वनि वायु के माध्यम से फैलती है। यहा तो वायु ही नही है—हमने भी यदि अपनी बातचीत के लिए यह यंत्र न लिया होता तो हमारी बात भी सुनाई नहीं देत"।

अब थोडा दूर दूर तक के धरातल को देखना है—धूप वाले चश्मे चढ़ालें नही तो आखे चौंधिया जावेगी। देखो वह पहाड कितना ऊंचा है। २५–२६ हजार फुट तो होगा ही—और कितना चमक रहा है। पर साथ ही उसकी छाया कितनी काली है। लगता है, कोलतार वहा दस बार गिराया गया हो। पर्वत के पार्श्व में देखो कितना बडा गड्ढा है। गड्ढे की एक दीवार तो प्रकाशित है और दूसरी छाया

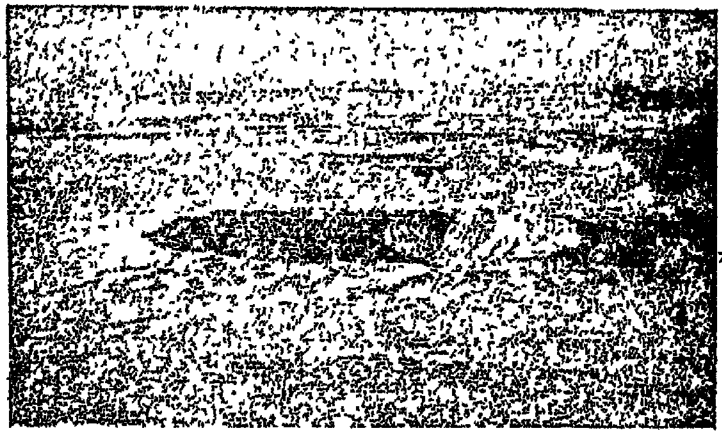

यह चित्र अमेरिका मे हुए एक उल्कापात के कारण बने गड्ढे का है, जो लगभग ६०० फुट गहरा है। इसके मुंह में पार्श्व से आते हुए सूर्य की किरणें एक तरफ की ऊंचाई के कारण नहीं पहुंच सकती। फलतः कुछ अंश (काला भाग) छाया में है। इसी प्रकार चन्द्रमा के पर्वतों के पार्श्व में या गड्ढों में कुछ अंश छाया में रहते हैं, जहा से सूर्य किरणों का परिवर्तन नहीं होता। ये ही व्यास पृथ्वी से चन्द्रमा के कलंक हैं।

में है। छाया मे तो क्या कहा जाय। देखो, उधर सैकडो गड्ढे दिखाई देते है बड़ी विचित्र बात है। इतनी ही दूर मे सैकडो गड्ढे है! पूरे चन्द्रमा पर तो हजारों होंगे ही। पृथ्वी वालो ने ही इस प्रकार के लगभग ३० हजार गड्ढो के चित्र ले रखें है। ये है भी बडे गहरे, सैकडो फुट तो केवल यहाँ पहाड और गड्ढे है। उन सब पर मिट्टी के चूरे की तह जमी है। मैदान तो कम ही दिखाई देते हैं। पर यह क्या है? देखना कही गिर न पड़ना—ओह, यह तो अधकार दरार है। तीन चार मील तो लम्बी होगी ही। गहराई भी लगभग ६०० फुट होगी। इस प्रकार की दरारें उस समय बनी थी जब ज्वालामुखियो द्वारा उगला गया पदार्थ जमकर धीरे-धीरे ठण्डा हो रहा था। चन्द्रमा के धरातल पर तो इन पर्वतों–गड्ढो और दरारों के सिवा कुछ है ही नही।

चन्द्रमा का धरातल

पर सहसा दोपहर को ही अंधेरा कैसे घिरने लगता है। सूर्य ग्रहण लगने वाला है। सूर्य के सामने पृथ्वी आ गई है और उसकी छाया चन्द्रमा पर पड़ रही है। उसे पृथ्वी पर लोग चन्द्र ग्रहण कहते हैं। कितनी विचित्र बात है! चन्द्रमा पर जो सूर्य ग्रहण है; वह पृथ्वी पर चन्द्रग्रहण पर अन्तर क्या लाता है? दोनों एक ही बातें है और यह तभी होता है जब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है।

अब यह ग्रहण भी समाप्त हो गया। कितनी ठण्ढक बढ गई थी, लगभग एक घण्टे ग्रहण रहा और सर्दी के मारे थर थर कांपने लगे।

यहां से आसमान बड़ा भयंकर दिखाई दे रहा है, एकदम काला। तारे भी दिन में ही दिखलाई दे रहे है। बता सकते हैं, क्यो? यह सब उन्ही धूलिकणों की

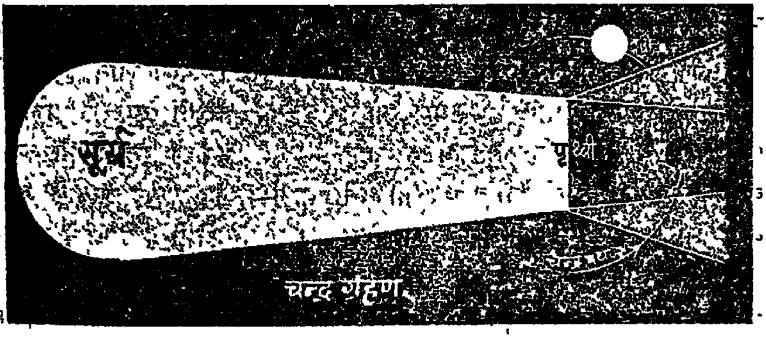

अनुपस्थिति का परिणाम है जो पृथ्वी के वायुमण्डल मे पाए जाते है और सूर्य की किरणों को बिखेर कर चारों ओर प्रकाश फैलाते है। उसी प्रकाश के कारण पृथ्वी पर दिन में तारे नही दिखाई देते।

यहां पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय का पृथ्वी जैसा रंगीन दृश्य भी नहीं दिखाई देगा; क्योंकि यह भी तो धूलिकणों की ही विशेषता है। देखो अभी सूर्यास्त हो रहा है। सूर्य चमकते चमकते अचानक छिप गया और अंधेरा छा गया—तापक्रम तो अभी अभी ५ सेन्टीग्रेड आ गया है।

पर पृथ्वी कितनी चमक रही है। पृथ्वी पर से जितना चाँद चमकता है उससे लगभग ८० गुनी अधिक चमक तो है ही। कितनी बडी भी है—पर उतनी सुहावनी नहीं जितना चांद पृथ्वी से लगता है।......... .....

क्या पूछ रहे हैं कि इतने घूमने के पश्चात् वह बुढिया नही दिखाई दी जो धरती पर से सूत कातती हुई सी लगती है। दिखाई कैसे दे? यहां पर जहां न हवा

है न पानी, न पेड़ न पौधे, कोई बुढिया कैसे रह सकती है ? पृथ्वी पर से जो बुढ़िया दिखाई देती है, जिसे कोई हिरण कहता है, कोई कुछ और कोई कुछ; वह और कुछ नहीं चन्द्रमा के गड्ढे और मैदान हैं जिन पर छाया पड़ी रहती है और जो वायुमण्डल के अभाव में एकदम काले दिखाई देते है। चन्द्रमा के प्रकाशित भाग तो पृथ्वी तक सूर्य किरणों को परावर्तित करके चमकते रहते हैं, किन्तु इन भागों से प्रकाश नही पहुंचता, इसलिए काले धब्बे से दिखाई देते हैं। इन छायाओं से जो आकृति बन जाती है उसे लोग मनमाना नाम दे देते है।

सारांश

चन्द्रमा पृथ्वी से ही टूटकर बना है किन्तु इसकी आकर्षण शक्ति के पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के ⅙ होने के कारण चन्द्रमा पर वायुमण्डल नही है। फलतः किसी भी प्रकार के जीव वहा नही है। आकर्षण शक्ति की कमी के कारण वहां सरलता पूर्वक २०-२५ फुट तक ऊंचा कूदा जा सकता है। इसका व्यास २१६० मील है। पृथ्वी से यह २ लाख ८४ हजार मील दूर है। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है और इसके प्रकाशित भाग के इस अंश को चन्द्रमा की कलाएं कहते है जो हमे दिखाई देता है। अपनी कक्षा पर पृथ्वी का भ्रमण करने के कारण यह हमें नित्य ५२ मिनिट देर से दिखाइ देता है। अपनी कीली तथा पृथ्वी के चारों ओर यह लगभग २८ दिन मे चक्कर लगा लेता है। इन दोनों समयों के समान होने के कारण ही इसका सदा एक ही भाग पृथ्वी के सामने रहता है। चन्द्रमा पर एक दिन हमारे १४ दिनों के बराबर होता है और इतनी ही बडी रात भी होती है। दिन मे चन्द्रमा का तापक्रम १००° सेन्टीग्रेड से अधिक तथा रात को २००° सेन्टीग्रेड तक हो जाता है। वायुमण्डल तथा वायुमण्डल के धूलिकणों के न होने के कारण चन्द्रमा पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के दृश्य अच्छे नही होते। दिन में तारे दिखाई नही देते हैं। जब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पडती है तब चन्द्रग्रहण लगता है। इसके धरातल पर ऊचे ऊंचे पर्वत, हजारो गड्ढे तथा ऊबड-खावड जमीन है जिन पर चट्टानों के कण जमे हैं—चन्द्रमा मे बैठी हुई बुढिया जो पृथ्वी से दिखाई देती है वह और कुछ नही, चन्द्रमा के वे भाग है जो छाया में हैं और जहां से प्रकाश परावर्तित नही होता।

तीसरा अध्याय

सूर्य तथा सौर परिवार

सूर्य का महत्त्व—प्रत्येक के मन में कल्पनाएं उठती रहती है। आपके मन में भी अवश्य उठती होंगी, किन्तु आज मैं आप से एक विचित्र कल्पना करने की बात कह रहा हूँ—आप कल्पना करे कि आकाशीय पिण्डों मे से सूर्य का ताप और प्रकाश मिलना बन्द होगया। सोचें तब क्या होगा ?

सम्भवतः आप कहें कि मैं बिजली के बल्ब और हीटर जला लूगा। तो भी कैसा लगेगा जब न दिन होगा—न सुबह होगी—न शाम होगी; केवल रात—केवल रात। ठण्ढक बढ़ती जावेगी—गर्मी के अभाव मे समुद्रों से भाप-बनना बन्द हो जावेगा—न वर्षा होगी—न नदियां बहेगी—जो कुछ नमी वायुमण्डल मे है सब वर्फ बनकर धरती पर गिर पड़ेगी, सदा बहने वाली नदियां भी जम जावेगी। कुओं का पानी सूखता जावेगा फिर धीरे-धीरे वह मिलना भी बन्द हो जावेगा।

इतना ही नही। पेड़-पौधे भी जीवित नही रह सकेंगे। उनके लिए प्रकाश और ताप बहुत आवश्यक है। पेड़-पौधों मे जो हरा पदार्थ है जिसे क्लोरोफिल कहते हैं वह उनसे गायब हो जावेगा, क्योंकि इसीसे उनकी पत्तियो को हरा रंग मिलता है। आपने किसी तख्ते के नीचे दबी हुई घास को देखा होगा—बहुत दिनों तक इस प्रकार दबे रहने के कारण वह श्वेत हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण वनस्पति वर्ग श्वेत हो उठेगा और इसके पश्चात् अधिक दिनों तक जीवित नही रह पायेगा। वनस्पतियो के अभाव मे पशु-जीवन कैसा रहेगा ? और इन सारी बिगड़ी हुई परिस्थितियों मे मनुष्य जीवन का क्या होगा, यह सोचने की बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी पर जीवन धारण के लिए सूर्य का बड़ा महत्त्व है। यह गर्मी देकर समुद्रों का जल भाप बनाता है—वर्षा करता है—वनस्पतियो को जीवित रखता है और इस प्रकार धरती पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव की रक्षा करता है। इसके अभाव में धरती निर्जीव हो जायगी, रसा-नीरसा और निर्गन्धा।

सूर्य एक तारा है—अब आपको यह जान कर सम्भवतः आश्चर्य हो कि इतना उपयोगी सूर्य आकाश में चमकने वाले करोड़ों तारो में से एक है। इतना बडा वह इस कारण दिखाई देता है कि उन तारों की अपेक्षा वह बहुत समीप है। इसकी दूरी लगभग ९ करोड़ २९ लाख मील है। इसके चारों ओर भ्रमण करने का पृथ्वी

का रास्ता पूर्ण गोलाकार नही है, वह दीर्घवृत्तिय (Elliptical) है। इसलिए सूर्य कभी पृथ्वी के समीप आ जाता है, कभी दूर। जाड़ों मे यह समीप आता है और तब यह पृथ्वी से ९ करोड़ १४ लाख मील दूर रहता है—गर्मियो मे इसकी दूरी ९ करोड़ ४४ लाख मील हो जाती है। जिस कक्षा पर पृथ्वी २३½ अश झुकी हुई है उसकी कक्षा के तल पर सूर्य भी लगभग ७° झुका हुआ है। और आप जानते है इसका व्यास कितना बड़ा है—पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना बड़ा अर्थात् ८ लाख ६४ हजार मील। और यदि १३ लाख पृथ्विया एक साथ एकत्रित की जा सकें तो कही ये मिलकर सूर्य के बराबर हो सकेगी। सोचें कितनी बड़ी दूरी है और कितना बड़ा है सूर्य। यह दूरी चन्द्रमा और पृथ्वी की दूरी से लगभग साढे तीन गुनी बड़ी है—इतनी बडी है कि चन्द्रमा अपनी कक्षा समेत सूर्य के व्यास की आधी दूरी में ही आ जाय। यहाँ दिए गये चित्र से भली भाति स्पष्ट है।

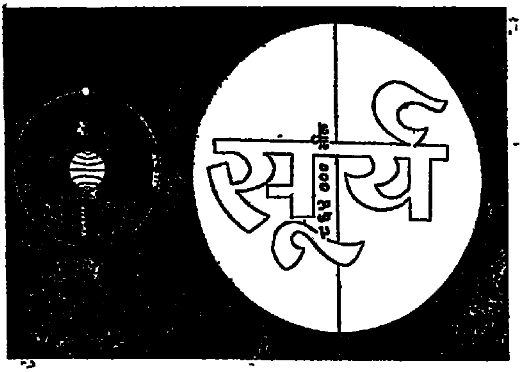

इतना बडा सूर्य भी नियमो मे बधा हुआ है। अन्य पिडो की भाँति यह भी अपनी कीली पर चक्कर लगाता है। किन्तु उसके चक्कर लगाने का समय सर्वत्र एक सा नही है। सूर्य के बीच अर्थात् भूमध्य रेखा पर यह समय २५ दिन का है किन्तु ऊपरी अक्षांशों पर लगभग २७ दिन। इसका कारण यह है कि सूर्य का धरातल ठोस नही है। यह गैसीय है। भूमध्य रेखा से दूरी पर इसके भ्रमण की गति कुछ कम हो जाती है इसीलिए २५ दिन की जगह २७ दिन लगते है।

सूय का धरातल—सूर्य अभी ठण्डा नही हुआ है, इसके प्रमाण के लिए स्वयं सूर्य ही पर्याप्त है। सोचे, जब ९ करोड २९ लाख मील की दूरी से वह इतना गर्म है कि धूप मे बैठा नही जाता तो समीप जाने पर क्या स्थिति होगी ? इसलिए इस बात मे तो शका की गुंजाइश ही नही है कि सूर्य मे प्रचण्ड गर्मी है। पृथ्वी की तरह इसकी गर्मी कठोर भूप-टल के नीचे दबी नही है। सूर्य का धरातल जलती हुई गैसों से बना है। इसकी ऊपरी सतह का तापक्रम लगभग ६०००° सेन्टीग्रेड है और भीतर केन्द्र पर कितनी गर्मी होगी, यह तो कल्पना की बात है। किन्तु सूर्य मे इतनी गर्मी कहा से आती है इसके लिए वैज्ञानिको का कहना है कि अत्यधिक ताप

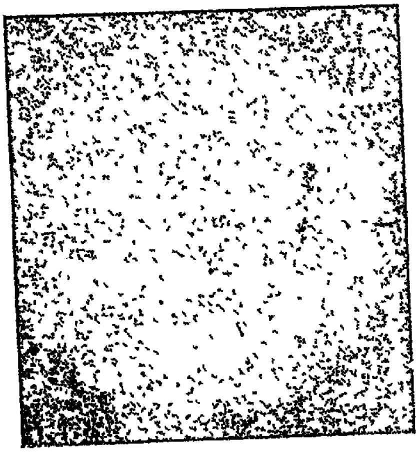

सूर्य के धब्बे

के कारण स्वतन्त्र रूप में घूमने वाले विभिन्न तत्वों के परमाणु टूटते रहते है और उनके टूटने से जो गर्मी निकलती है यही सूर्य को गर्म रखती है।

इस भयंकर ताप पर कोई भी पदार्थ ठोस या द्रवरूप में नहीं रह सकता। इसीलिए सूर्य का धरातल भी गैसीय और अस्थिर है। इसके धरातल के भाग इधर-उधर बड़े वेग से उड़ते रहते है। इस पर भयंकर तूफान आते रहते हैं।

सूर्य के धरातल की एक विशेषता इस पर पाये जाने वाले काले-धब्बे हैं। इन धब्बों को सबसे पहले गैलिलियों ने देखा था। तबसे इनका विशेष अध्ययन हुआ है और विज्ञान इस निश्चित परिणाम पर पहुंचा है कि ये धब्बे उन तूफानों के कारण है जो सूर्य के धरातल पर बहुत गहराई से आते है। सूर्य के भीतरी भाग में निश्चित ही दबाव अधिक होगा। जब तूफान सतह पर आते है तब गैसें दबाव कम होने कारण फैलती है, फैलने से तापक्रम कम हो जाता है, इसलिए उन भागों की चमक जहां ये तूफान रहते हैं सूर्य के धरातल के शेष भागो की चमक की अपेक्षा कम होती है और हमें ये भाग काले दिखाई देते है। फिर भी इनका तापक्रम लगभग ४८००° सेन्टीग्रेड होता है।

ये धब्बे कभी कभी इतने बड़े होते है कि नंगी आंख से भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं। सन् १९५१ मे ऐसे ही धब्बे एकबार दिखाई देने लगे थे जो दो दिन तक दीखते रहे। अधिकतर ये धब्बे कम ही होते है पर कभी कभी बहु संख्यक भी हो उठते हैं। इन बहुसंख्य धब्बों का चक्र लगभग ११ वर्षो मे पूरा होता है, इसलिए लगभग प्रति ग्यारहवें वर्ष इनकी संख्या अधिक हो जाती है। जब ये धब्बे अधिक होने लगते है तो उत्तरी प्रकाश तेज हो उठता है और रेडियो संकेतों मे भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

सूर्य ग्रहण—इतना प्रकाशवान् होते हुए भी कभी कभी सूर्य का प्रकाश एकाएक बन्द हो जाता है और तब कहते है कि सूर्यग्रहण लगा है। वास्तव मे सूर्यग्रहण चन्द्रमा के कारण लगता है। दूसरे अध्याय में हमने देखा है कि जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है और पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है तब चन्द्रग्रहण लगता। सूर्यग्रहण के समय पृथ्वी और सूर्य के बीचमें चन्द्रमा आ जाता है और सूर्य को ढक लेता है। इसलिए सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक नही आ पाता। यही सूर्य ग्रहण है। सूर्यग्रहण अमावस्या को लगता है क्योकि इसी दिन सूर्य और पृथ्वी के बीच मे चन्द्रमा आता है। प्रत्येक अमावस्या को ग्रहण इसलिए नही लगता कि सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी प्रत्येक अमावस्या को ठीक एक ही सीध में नहीं होते। जब पूरा सूर्य छिप जाता है तो भयंकर अन्धेरा छा जाता है—पशु पक्षी भयभीत

होकर बोलने लगते हैं और तारे निकल आते है। इस प्रकार के ग्रहण को खग्रास

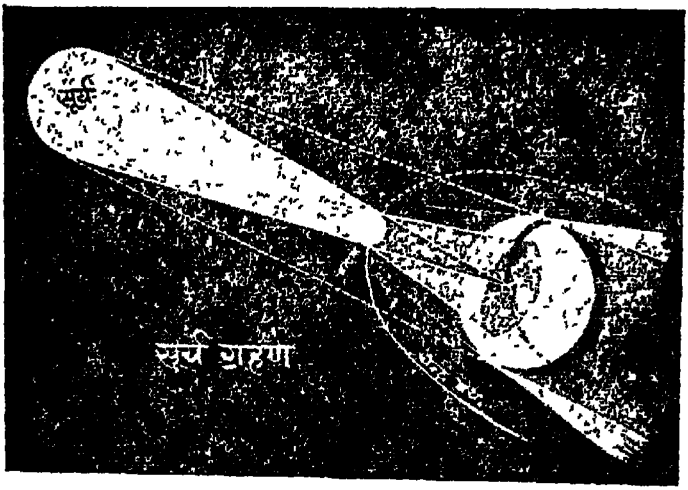

ग्रहण कहते हैं। जब पूरा सूर्य नहीं छिपता तो ग्रहण को आंशिक ग्रहण कहते हैं। खग्रास ग्रहण कभी ७॥ मिनिट से अधिक नहीं होता।

सौर परिवार—आपको स्मरण होगा, प्रथम अध्याय में तारों और ग्रहों का अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि ग्रह सूर्य से टूट कर बने हैं। अब हम इनकी उत्पत्ति के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। किन्तु इसके पहले यह जान लें कि सौर परिवार से तात्पर्य क्या है ?

सौर शब्द सूर्य से बना है। इसका अर्थ होता है–'सूर्य का'। सौर परिवार का अर्थ हुआ 'सूर्य का परिवार'। इस प्रकार सौर परिवार से हमारा तात्पर्य उन सभी ग्रहो, उपग्रहो और अन्य आकाशीय पिण्डों से है जो सूर्य से उत्पन्न हुए हैं तथा सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

इस परिवार में सूर्य के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य सदस्य हैं:—

(१) ग्रह—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, लघुग्रह, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण तथा यम,
(२) उपग्रह—वे पिण्ड जो ग्रहो से टूटकर बने हैं और ग्रहो की ही परिक्रमा करते हैं,
(३) उल्काएं और (४) धूमकेतु।

ग्रहों की उत्पत्ति–ग्रहों की उत्पत्ति के बारे में सबसे पहले काण्ट तथा लाप्लास ने यह सिद्धान्त निश्चित किया कि आज से अरबों वर्ष पूर्व यह सूर्य इससे भी बड़ा था। इसका व्यास ८ लाख ६४ हजार मील ही नही, अपितु करोड़ों मील था। अपनी

कीली पर यह बड़े वेग से घूमता था। परिणाम यह हुआ कि इसके चारों ओर से एक अंगूठीनुमा भाग दूर जा पड़ा जो ठण्डा होकर एक ग्रह बना, इस प्रकार दस ग्रह

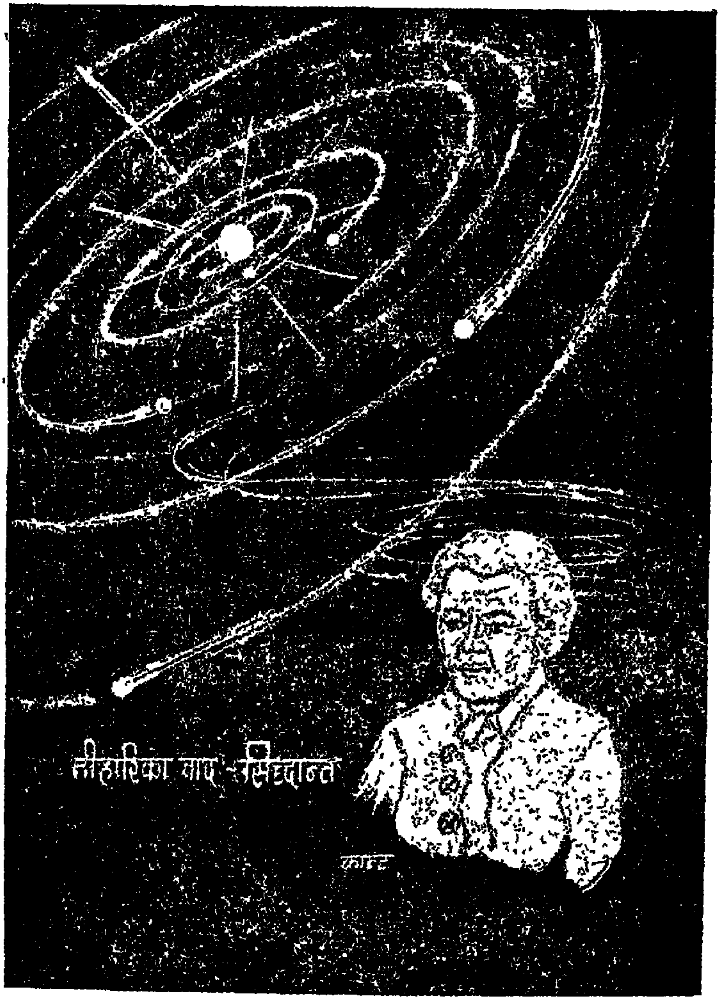

बारी बारी से बने। जो भाग शेष रहा वह अब भी सूर्य के रूप में वर्तमान है। किन्तु जब इस सिद्धान्त को गति-शास्त्र के नियमों पर जांचा गया तो पता चला कि ऐसा असम्भव है।

इसके पश्चात् चेम्बरलेन ने यह बताया कि आज से अरबो वर्ष पूर्व दो तारे परस्पर टकरा गए। परिणामतः जो टूट-फूट हुई उसी पदार्थ से ग्रहों का निर्माण हुआ। देखने मे तो यह व्याख्या बड़ी सटीक लगी पर दोष इसमें भी था। प्रश्न

रहा कि इस प्रकार टक्कर से उत्पन्न पदार्थ जब ग्रहो के रूप मे विभाजित हो गये तो उन टुकडो मे जो इधर उधर बिखरे थे निश्चित ही कोई क्रम नही रहा होगा। कोई

ऊंचा उठा होगा कोई कम ऊंचा, कोई बहुत बड़ा होगा, कोई उसके पास ही बहुत छोटा। पर ग्रहों की कक्षाओं और उनके आकार के अध्ययन से पता चलता है कि इनकी कक्षाएं आपस मे अधिक भिन्न नही है अर्थात् ये लगभग एक ही तल (plane) पर सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते है, फिर इनका आकार भी सिगार की तरह है। इन कारणों से चेम्बरलेन का सिद्धान्त भी ग्राह्य नही हो सका।

अब इस शताब्दी के प्रारम्भ मे जेम्स जीन्स ने एक नई व्याख्या की। उसका

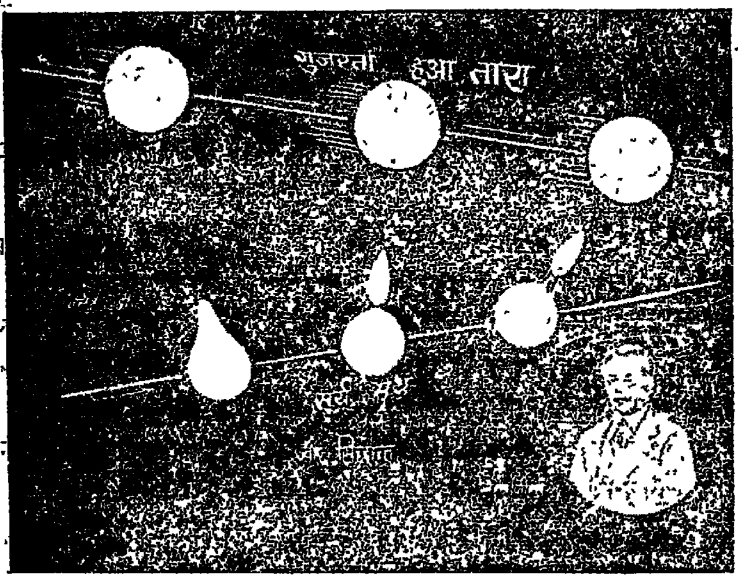

कहना है कि दो तारो मे टक्कर नही हुई थी। हुआ यह था कि सूर्य से भी एक बड़ा

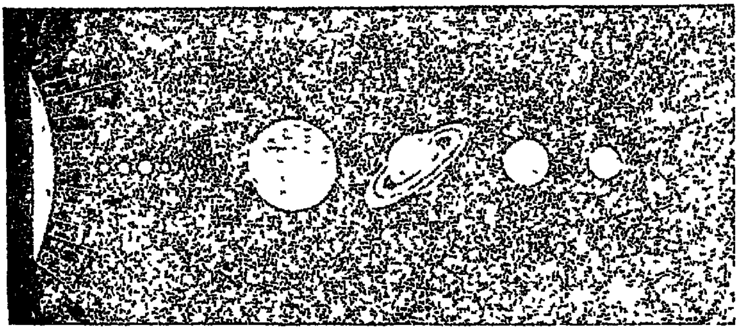

तारा इस सूर्य के पास से होकर गुजरा। उसकी आकर्षण शक्ति के कारण सूर्य के

धरातल पर ज्वार उत्पन्न होगया और ज्यों ज्यो यह तारा सूर्य के समीप आता गया त्यों त्यो ज्वार बढता गया। अन्त मे इस ज्वार का एक भाग उस तारे की आकर्षण शक्ति के कारण टूट कर सूर्य से दूर जा पडा। इस टूटे हुए भाग का कुछ अंश तो उस बडे तारे मे जा मिला; कुछ सूर्य मे वापिस लौट आया, शेष भाग जो सिगार की आकृति मे सूर्य और तारे के बीच रह गया था अनेक भागों मे टूट गया और वह ग्रह बने। यह व्याख्या अधिक सगत जान पडती है। इससे तारो के पारस्परिक आकार का अनुपात भी स्पष्ट हो जाता हे कि क्यो बीच का ग्रह वृहस्पति सबसे बड़ा है और किनारों के ग्रह छोटे–छोटे है। उनकी कक्षाओ के लगभग एक ही तल मे होने की बात भी समझ में आ जाती है। इस सिद्धान्त को 'ज्वार सिद्धान्त' कहते है।

कालान्तर मे इन ग्रहो के भी टुकडे हो गए और ये उपग्रह कहलाए। इन ग्रह-उपग्रहो के सम्मिलित भार से भी सूर्य ७५० गुना अधिक है।

बुध—यह ग्रह बहुत ही छोटा है और सूर्य के बहुत ही समीप। इसका व्यास ३१०० मील है और यह सूर्य से लगभग साढे तीन करोड मील दूर है। यह सूर्य के चारों ओर ८८ दिन मे घूम लेता है और इतने ही समय मे अपनी कीली पर भी घूमता है। इसके कोई उपग्रह नही है। सूर्य के अत्याधिक समीप होने के कारण यह बहुत कम दिखलाई पड़ता है क्योंकि यह क्षितिज से अधिक ऊंचा नही उठने पाता और सूर्य के प्रकाश मे इसका प्रकाश खो जाता है। इसकी एक ओर सदा दिन रहता है और दूसरी ओर सदा रात।

शुक्र—आकाश मे सूर्य और चन्द्रमा के पश्चात् जो सबसे प्रकाशमान पिण्ड है वह शुक्र ही है। हिन्दू लोग इसे बडे महत्व का मानते है और इसके अस्त रहने पर शादी व्याह जैसे शुभ कार्य नही करते।

इसका अर्थ है कि यह अस्त भी होता है—वास्तव मे यह एक ऐसा ग्रह है जो कुछ दिन तो पश्चिम मे उगता है और सभी तारो से पहले दिखाई देता है। जानते हो, क्यो ? इसीलिए कि इसका प्रकाश सभी तारो के प्रकाश से अधिक है। संध्या के कुछ देर पश्चात् छिप जाता हे।

यही ग्रह कभी पूर्व मे निकलता है। उस समय यह सूर्योदय से तीन-चार घण्टे पूर्व निकलता है। धीरे धीरे इसकी ऊँचाई कम होती जाती है और इसका उदय होना बन्द हो जाता है। इन स्थितियो के बीच इसकी एक अवस्था ऐसी भी आती है जब यह बिल्कुल नही दिखाई देता। वास्तव मे यह उस समय पृथ्वी और सूर्य की सीध मे रहता है।

शुक्र पृथ्वी से कुछ ही छोटा है। इसका व्यास ७६०० मील है। सूर्य के चारों ओर घूमने मे इसे २२५ दिन लग जाते है और अपनी कीली पर यह ३० दिनो मे एक चक्कर लगाता है।

मंगल:—बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रह है और इस पर बर्फ बादल तथा वनस्पति के चिह्न पाए जाते है। इससे लोगों का अनुमान है कि निश्चित ही मंगल में जीव रहते हैं। यह पृथ्वी से बहुत छोटा है—इसका व्यास कुल मे ४१४० मील है और सूर्य से १४ करोड़ मील से कुछ अधिक ही दूर है। पृथ्वी से इसकी दूरी लगभग ५ करोड़ मील है, किन्तु कभी कभी यह पृथ्वी से ३½ करोड़ मील दूर ही रह जाता है। जब वह पृथ्वी के नजदीक आता है तो इसका विस्तृत अध्ययन करके अनेक जानकारी प्राप्त की जाती है। पिछली बार यह ११ सितम्बर १९५६ को बहुत ही नजदीक आ गया था। यह लगभग १५ से १७ वर्षों में इस प्रकार पृथ्वी के नजदीक आता है। आकाश में यह एक लाल तारे के समान दिखाई देता है। मंगल के दो उपग्रह हैं।

लघुग्रह:—ये सहस्रों की संख्या मे है और इनका आकार भी भिन्न-भिन्न है। ऐसा माना जाता है कि ये ग्रह किसी एक बड़े ग्रह के भग्न होने के कारण बने है। इनमें मे सबसे बड़ का व्यास ४८० मील है। लगभग एक दर्जन ऐसे है जिनके व्यास १०० मील से ऊपर है। अधिकतर के व्यास तो ५० मील से भी कम है और कुछ ऐसे भी है जो केवल एक मील का ही व्यास रखते है। ये लघुग्रह मंगल और वृहस्पत्ति के बीच सूर्य की परिक्रमा करते है।

वृहस्पत्ति—ग्रहो मे यह सबसे बड़ा है—८६८०० मील व्यास का सूर्य से इसकी दूरी ४८¾ करोड़ मील है। यह १२ वर्षों मे सूर्य की परिक्रमा करता है और ९ घण्टे ५० मिनिटों मे अपनी कीली पर घूम लेता है। पृथ्वी की अपेक्षा यह सूर्य से बहुत दूर है, इसलिए वहां तापक्रम बहुत ही कम है और धरातल बर्फ से ढका हुआ है। वहां के वायुमण्डल में अमोनिया तथा मिथेन की अधिकता है। वृहस्पत्ति के उपग्रहों की संख्या भी सबसे अधिक है—बारह। इनमे से कुछ उपग्रह तो दूसरों से चुराए हुए है। इसके उपग्रहों की एक विशेषता यह है कि इसके कुछ उपग्रह तो पश्चिम से पूर्व को घूमते हैं और कुछ पूर्व से पश्चिम को, जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी पर सूर्यग्रहण लगाता है उसी प्रकार वृहस्ह्त्ति के ये उपग्रह भी वृहस्पत्ति पर सूर्य ग्रहण लगाते है। इस ग्रह के उपग्रहों की संख्या अधिक होने के कारण यहां ग्रहणों की अधिकता रहती है।

शनि:—यह ग्रह वैसे वृहस्पति से छोटा है, इसका व्यास ७१५०० मील ही है पर अपने चारो ओर के वर्तुलो (Rings) के कारण यह बड़ा प्रसिद्ध है और दूर-दर्शक से देखने पर इसका सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक होता है। यह ग्रह सूर्य की

परिक्रमा में ३० वर्ष लगा देता है किन्तु अपनी कीली पर १० घण्टे में ही घूम आता है ? इसके उपग्रहों की संख्या नही है। सूर्य से इसकी दूरी ८८ करोड मील से कुछ अधिक ही है। इस प्रकार यह पृथ्वी से लगभग ७६ करोड़ मील दूर है। यहां भी बड़ी ठण्ढक है।

शनि के वर्तुलों का निर्माण हिम के छोटे छोटे टुकड़ों से हुआ है। ये वर्तुल तीन हैं—(१) बाहरी, (२) मध्य और (३) भीतर। सम्पूर्ण वर्तुलो को निर्माण मे लगे पदार्थ की यात्रा चन्द्रमा की यात्रा का $\frac{१}{१०००}$ ही है। ये वर्तुल स्थिर नही हैं।

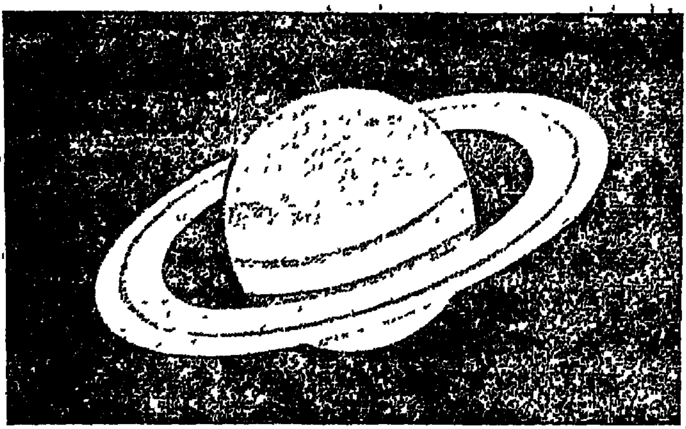

ये शनि का चक्कर लगाते रहते है। शनि के सभी ग्रह इन वर्तुलों से दूर पड़ते है।

अरुण तथा वरुण—शनि तक के ग्रह तो प्राचीन ज्योतिषियो को विदित थे। किन्तु अरुण, वरुण तथा यम की खोज अपेक्षाकृत बहुत देर मे हुई है। हर्शेल नामक एक अंग्रेज विद्वान् एक दिन आकाश में अपने दूर-दर्शक से कुछ देख रहा था—इसी बीच उसे एक तारा औरो से वडा दिखाई दिया। उसे शका हुई कि इसे ग्रह होना चाहिए। फिर क्या था ! वह इसके पीछे पडा और अनेक गणनाओ के पश्चात् उसने निश्चय किया कि वास्तव में यह नया पिण्ड ग्रह ही है। उसने यह खोज सन् १७८१ में की थी। अरुण की दूरी सूर्य से १७८ करोड मील है यह सूर्य के चारो ओर ८४ वर्षो मे एक चक्कर पूरा करता है और अपनी कीली पर १०$\frac{१}{२}$ घण्टे मे। इसके उपग्रह पांच है।

इसी प्रकार वरुण की खोज एक फ्रांसीसी खगोल शास्त्री ने १६४६ मे की वरुण बहुत दूर है—२७६ करोड मील है इसकी दूरी सूर्य से। सूर्य के चारो ओर घूमने में उसे १६५ वर्ष लग जाते है और अपनी कीली पर यह १५ घण्टे ४७ मिन्ट मे चक्कर लगा लेता है।

अन्त में आता है ग्रहों में सबसे दूर स्थित यम जो अपने पिता सूर्य से ३६० करोड़ मील से भी अधिक दूर है। जब सूर्य के धरातल पर एक अन्य तारे के कारण ज्वार उठा था तो यह सबसे पहले उस तारे से मिलने के लिए उठा, पर वह तारा चला गया और इसे वापिस छोड़ गया। सूर्य अन्य ग्रहों की भांति ही इसे भी अपनाने को तैयार नहीं था, फलस्वरूप यह भी दूर-दूर ही चक्कर लगाता रहा है।

सारांश

सूर्य का हमारे लिए बड़ा महत्त्व है। यह गर्मी देकर समुद्रों से भाप उठा कर तथा जल वर्षा कर जीवन की रक्षा करता है। पेड़–पौधे, पशु सभी अपने जीवन के लिए सूर्य के आभारी हैं। यह सूर्य आसमान में चमकने वाले असख्य तारों मे से एक तारा है। अधिक समीप होने के कारण यह तेज दिखाई देता है। इसका व्यास ८,६४,००० मील है और अपनी कीली पर २५ दिन में एक चक्कर लगा लेता है। इसकी कीली भी पृथ्वी की कीली की तरह ७° झुकी हुई है। इसका धरातल ठोस नहीं, गैसीय है। इस धरातल पर भयंकर तूफान आते रहते हैं। धरातल का तापक्रम ६०००° सेंटीग्रेड है। कुछ तूफान सूर्य के धरातल के बहुत नीचे से आते हैं। जब ऊपर आते हैं तो फैलने से उनका पदार्थ ठण्डा होता है और तापक्रम गिर जाता है। तापक्रम गिर जाने से इनकी चमक कुछ कम हो जाती है और पृथ्वी से काले धब्बों के रूप में दिखाई देते है। फिर भी इनका तापक्रम लगभग ४८००° सेन्टीग्रेड रहता है। ये धब्बे लगभग प्रति ग्यारहवें वर्ष अधिकतम होते है। तब पृथ्वी पर रेडियो संकेतों में कुछ गड़बड़ी आ जाती है तथा उत्तरी प्रकाश तीव्र हो उठता है।

सूर्य से टूट कर बने हुए पिण्डो को ग्रह कहते है। ग्रहो से टूट कर बने हुए उपग्रह हैं। इस प्रकार सूर्य, ग्रह, उपग्रह तथा उल्काओं और धूमकेतुओ को मिला कर सौर-परिवार कहते है। इसकी उत्पत्ति के बारे मे लाप्लास का नीहारिकावाद, (२) चेम्बर-लेन का ग्रहलव सिद्धान्त तथा (३) जेम्स जीन्स का ज्वार सिद्धान्त प्रचलित है। प्रथम दो को अब अग्राह्य कर दिया गया है। सभी ज्वार सिद्धान्त को ही मान्यता देते हैं। सभी ग्रहों के सम्मिलित भार से भी सूर्य ७५० गुना अधिक है। ग्रह निम्नलिखित हैं :—

(१) बुद्ध, (२) शुक्र, (३) पृथ्वी, (४) मंगल, (५) लघुग्रह, (६) बृहस्पति, (७) शनि, (८) अरुण, (९) वरुण, और (१०) यम।

इन ग्रहो में अधिकांश उपग्रह हैं। बृहस्पति के १२ उपग्रह है और शनि के ९। मंगल बड़ा प्रसिद्ध ग्रह है। उसके दो उपग्रह है। इस ग्रह पर जीवों के रहने की बड़ी शंका की जाती है। शनि के चारों ओर तीन वर्तुल (Rirgs) हैं। इसके उपग्रह इन वर्तुलों के बाहर है।

पाँचवाँ अध्याय

तारे तथा निहारिकाएँ

तारों की दूरी—तारो के देश में जाने से पूर्व हमे धरती ही नही अपने सौर परिवार से भी विदा लेनी पडेगी। आओ, एक बार इस विशाल सौर परिवार का विहंगम अवलोकन कर लें:..............

यदि हम सूर्य से इस परिवार को देखे तो सबसे पहले बुध दिखाई देगा जो लगभग ३½ करोड मील दूर होगा—फिर शुक्र और पृथ्वी। तत्पश्चात् मंगल और बृहस्पति—इन दोनों के बीच मे असंख्य छोटे छोटे लघु ग्रह दिखाई देंगे। बृहस्पति के पश्चात् शनि और तब अरुण, वरुण तथा यम। परिवार के इन सदस्यों को भली भांति देखकर जब आप तारों की ओर दृष्टि उठावेंगे तो लगेगा कि सूर्य और तारों के बीच की दूरी अनन्त है—बडे दूर वे दिखाई देंगे। सौर परिवार का अन्तिम सदस्य यम भी बहुत पास रहेगा—वैसे यह ३६० करोड़ मील से कुछ अधिक ही दूर है।

ऐसे यह दूरी समझ मे नही आयेगी—आओ, एक माडल बनाने का प्रयत्न करें जिसमे सौर परिवार के साथ तारे भी दिखाए गए हो। एक छोटा सा गोला ले और इसे सूर्य मान ले फिर एक और भी छोटा गोला लें। इसे पृथ्वी मान लें। इन दोनो को १ फुट के अन्तर पर रखे। इस पैमाने के आधार पर यम—जो सौर परिवार का सबसे दूर का सदस्य है—सूर्य से लगभग १३ गज दूर होगा; किन्तु सबसे नजदीक का तारा? आप कहेगे १०० गज दूर होगा—मैं कहूं यह दूरी कम है, तो आप कहेगे दो-सौ, चार-सौ गज दूर होगा। पर यह बात भी नहीं है। यदि सूर्य से पृथ्वी की दूरी एक फुट हो तो समीप से समीप का तारा ५०० मील दूर होगा—जयपुर मे यदि सूर्य को रखा जाय जो उससे सटा हुआ रखा जायेगा पृथ्वी को, और अहमदाबाद मे होगा समीप से अधिकतर समीप का तारा। पर यह तो समीपतम तारे की दूरी हुई। तारे बहुत दूर है और उन्हे अपने बनाए हुए माडल के पैमाने के आधार पर किसी को काहिरा मे और किसी को शिकागो में रखना पड़ेगा—फिर भी बहुत से शेष रह जायेगे, जिनके लिए इस धरती पर जगह ही नहीं मिलेगी।

दूरी और इकाई—तारो की ये दूरियाँ बहुत बड़ी है। इतनी बड़ी कि साधारणतया समझ मे नही आती। इन दूरियो को व्यक्त करने के लिए मील की इकाई पर्याप्त नही है।

में इसी प्रकार आग लग जाती है। यही घटना इन उल्काओं के साथ होती है। इनकी चाल का तो आपको पता ही है बहुत तेज होती है। ये कम से कम प्रति सेकिण्ड १० मील चलती है—इनमें से कुछ तो ४० मील प्रति सेकिण्ड भी चलती है। इतनी तीव्र गति से शून्य में भ्रमण करते हुए जब ये उल्काएं हमारे वायु मण्डल में प्रवेश करती है तो इन्हे वायु मण्डल से संघर्ष करना पड़ता है—इस संघर्ष में घर्षण होता है और ये जलने लगती है। वायु मण्डल सैकड़ों मील की ऊँचाई तक है—इस वायु मण्डल की ऊपरी सतहें हल्की हैं—इसीलिए वहां घर्षण कम होता है। १०० मील की ऊँचाई तक आते आते उल्काओं मे आग लग जाती है और धरती से २५–३० मील ऊपर वे जल जाती है।

जलने के पश्चात् बच जाती है केवल इनकी राख। वह धीरे धीरे इसी धरती पर आ गिरती है। यदि आप किसी अंधेरी रात में इन उल्काओ को देखे तो प्रति घण्टे लगभग १० के हिसाब से उल्काएँ गिरती हुई मिलेगी—यह तो हुई एक जगह की बात। धरती पर इसी प्रकार के प्रत्येक स्थान पर उल्काएँ गिरी रहती है। ऐसा अनुमान है कि प्रति घण्टे इस धरती पर लाखों उल्काएँ गिरती रहती है और इनकी राख से धरती का भार प्रतिदिन सैकड़ों मन बढ़ता जा रहा है।

ऊपर के वर्णन से शायद आप यह धारणा बना लें कि उल्काएँ कभी धरती पर आती ही नही। बात ऐसी नही है। उल्काओ का धरती पर आना या उनका वायु मण्डल में ही जल कर राख हो जाना उनके आकार पर निर्भर करता है। यदि उल्काएँ छोटी हुईं तब तो ऊपर ही जल जाती है। पर यदि वे बड़ी हुईं तो आकर पृथ्वी से टकराती है। जब वे पृथ्वी से टकराती है तो भयंकर शब्द होता है और बड़ी हानि होती है। इस प्रकार का एक उल्कापात अमेरिका के अरीजोना प्रान्त में सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ था उस उल्का का आकार कितना बड़ा होगा इसका अनुमान आप इसी से कर सकते है कि उसके गिरने से भूमि में एक गड्ढा होगया जो आज दिन भी ६०० फीट से अधिक ही गहरा है। इस गड्ढे का व्यास $\frac{3}{4}$ मील है। उल्का प्रस्तर तो धरती मे न जाने कहा घुस गया होगा !

अभी आज से ५१ वर्षों पूर्व ३० जून १६०८ को एक भयकर उल्कापात साइबेरिया के जगली भाग के हुआ था। सैकडों मील दूर तक इसकी भयंकर ध्वनि सुनाई दी। पेड़ दूर-दूर तक उखड़ गए और उनके ठूंठ ही बच रहे। सौभाग्य की बात है कि इन उल्काओ का आगमन अब धरती तल पर बहुत ही कम होता है। साइबेरिया वाले उल्कापात के सिलसिले में कई खोजे की गई किन्तु कोई प्रस्तर नही मिला—कुछ लोगो की धारणा है कि वहां जमीन के दलदली के कारण कोई

बड़ा गड्ढा भी नही बन पाया। पर समस्या सुलझी नही। इतना भयकर उल्कापात हो और न तो कोई महत्त्वपूर्ण गड्ढा ही बने न कोई विशाल प्रस्तर खण्ड ही मिले, तो शका का होना स्वाभाविक ही है, जबकि इसके गिरने के ध्वसक चिह्न वर्तमान मे हो और भयकारक ध्वनि भी सुनी गई हो। इन्ही बातो पर विचार करते हुए फ्लोरिडा के एक वैज्ञानिक महोदय ने मनोरंजक खोज कर डाली है। उनका कहना है कि पृथ्वी पर जितने पदार्थ पाए जाते है उनके परमाणुओ के केन्द्र मे धन विद्युत रहती है और चारो ओर ऋण विद्युत कण या एलेक्ट्रन। किन्तु शून्य मे कुछ ऐसे पदार्थ भी है जिनके परमाणुओ के केन्द्र पर ऋण विद्युत कण है और धन विद्युत् कण उनका चक्कर लगाते है। ऐसे पदार्थो को जिनकी रचना पृथ्वी के पदार्थों की रचना से भिन्न है, वैज्ञानिक महोदय ने इसे प्रति-पदार्थ (Anti matter) नाम दिया है। उनका कहना है कि यदि प्रति-पदार्थ का कोई टुकड़ा किसी पदार्थ से टकरा जाय तो विस्फोट उत्पन्न होगा। साइबेरिया वालो की उल्कापात के बारे मे यह धारणा है कि उस उल्का का निर्माण ऐसे ही किसी प्रति-पदार्थ से हुआ था। इसीलिये उसके गिरने से विस्फोट हुआ और उस गर्मी से आस-पास के पेड झुलस गए। अभी तक उक्त वैज्ञानिक महोदय की बात निश्चित रूप से नही मान ली गई है, किन्तु यह असम्भव नही कहा जा सकता।

अभी प्रश्न शेष रह गया है-- ये उल्काए आती कहा से है और साधारण उल्काए किस पदार्थ से बनी है ?

जहा तक इनमे लगे पदार्थो का प्रश्न है, इतना निर्विवाद कहा जा सकता है कि इनमे मुख्यतया पत्थर और लोहा होता है। यह परिणाम विभिन्न स्थानों पर गिरी उल्काओ के निरीक्षण के आधार पर निकाला गया है। कतिपय उल्काओं मे लोहे की मात्रा बहुत ही अधिक रहती है।

अब मुख्य प्रश्न शेष रहा—उल्काए आती कहा से है ?

ऐसा अनुमान है कि शून्य मे अपार पदार्थ इधर उधर भ्रमण कर रहे है। ये धूलिकणो के बराबर छोटे भी है और सहस्त्रो पौण्ड भारी भी। इन्ही पदार्थों से उल्काए बनी है।

कुछ उल्काए किसी धूमकेतु के टूटने से भी बनी प्रतीत होती है। आज से लगभग १०० वर्ष पहले एक धूमकेतु देखा गया जो वापिस लौट कर आते समय दो भागो मे बट गया। गणना करके इसके पुन आगमन की तारीख निश्चित की गई किन्तु उस तारीख को कोई भी धूमकेतु नही दिखाई दिया। बदले मे उल्कापात की झड़ी लग गई। तब से प्रतिवर्ष २५ नवम्बर को–जिस दिन उस धूमकेतु के वापिस

लौटने की तारीख थी--उल्कापात अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। तो लगता है, इस प्रकार धूमकेतुओं से भी उल्काओं का निर्माण हुआ है। अन्य दो तीथियां २१ अक्टूबर तथा १०'दिसम्बर है। इन दिनों भी उल्काएं अपेक्षाकृत अधिक दृष्टिगोचर होती है।

उल्काओं की गति को समझने के लिए हम एक कल्पना करे--दो व्यक्ति साइकिल पर आमने-सामने चले आ रहे है। एक की चाल १० मील प्रति घण्टा है और दूसरे की ५ मील प्रति घण्टा; किन्तु जब वे दोनो एक दूसरे को पार करेगे तो उनकी गति १५ मील प्रति घण्टे की सी लगेगी। इसी प्रकार यदि दोनो एक ही दिशा में जा रहे हों तो प्रति घण्टे गति ५ मील ही होगी। उल्काओं के साथ भी यही होता है। मानले कोई उल्का २० मील प्रति सेकेण्ड की चाल से पृथ्वी की ओर आ रही है तो पृथ्वी भी तो उसकी ओर १८½ मील प्रति सेकेण्ड की चाल से जा रही होगी। इसलिए उल्का का जो घर्षण पृथ्वी के वायुमण्डल से होगा वह २०+१८॥ या ३८॥ मील की गति पर होगा। अधिक वेग से होगा ठीक वैसे ही जैसे दो व्यक्ति आमने सामने से दौड़ते हुए टकरा जांय--टक्कर कितनी जोरदार होगी। इस प्रकार पृथ्वी की वार्षिक गति जो प्रति सेकेण्ड १८॥ मील है, के कारण उल्काओं की गति और भी अधिक हो जाती है। किन्तु वे उल्काएं जो पृथ्वी की दिशा में ही चलती है, इतनी वेगवती नहीं मालूम होती, क्योंकि उनकी गति मे से पृथ्वी की गति निकाल देनी पड़ती है।

धूमकेतु

धूमकेतु सौर परिवार का ही नही, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विलक्षण पिण्ड है। इतना अनोखा और साथ ही सौन्दर्यमय दृश्य आकाश मे कोई दूसरा नही है। इसकी विलक्षणता इसकी पूंछ मे है, पूंछ होने के कारण ही इसे पुच्छल तारा भी कहते है। अब तक आपने अनेक ग्रहों का हाल पढा, उल्काओ से परिचय प्राप्त किया, किन्तु कही भी किसी पिण्ड के पूंछ नही दिखाई दी। इस बात की कमी पूरी कर देगा धूमकेतु। इसकी पूंछ किसी बन्दर की पूंछ नही है जो दो-चार फुट लम्बी हो, पूरे करोडों मील तक फैली होती है यह पूंछ; और विशेषता यह है कि यह पूंछ घटती बढती भी रहती है। जब धूमकेतु सूर्य के समीप रहता है तब इसकी पूंछ बहुत बडी रहती है। ज्यों-ज्यो सूर्य से दूर हटता है पूंछ छोटी होती जाती है और जब यह सूर्य से बहुत दूर निकल जाता है तो पूंछ सटकर इसकी नाभि में जा मिलती है।

अब आप पूछेंगे, इस धूमकेतु के दो भाग होते है क्या? इसका उत्तर है कि भाग तो वैसे तीन होते हैं किन्तु दो भाग महत्वपूर्ण है--पहला इसका शिर तथा दूसरा इसकी पूंछ।

अब सबसे मनोरंजक बात रह जाती है पूंछ की उत्पत्ति और इसका घटना बढना। इसको भली भाँति समझने के लिए हमे महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की सहायता लेनी पडेगी। इन महोदय ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश भी एक पदार्थ है, वैसे ही जिस प्रकार मिट्टी-लोहा-सोना इत्यादि हैं। आप जानते हैं पदार्थ में भार होता है और यदि यह चले तो अपनी शक्ति के अनुसार सामने की वस्तुओं को आगे ढकेलेगा। पहाड़ी पर से एक पत्थर यदि लुढकाया जाय तो रास्ते मे आने वाले पदार्थों से या तो वह कही रुक जायेगा या यदि वे अवरोधक पदार्थ हल्के हुए तो अपने साथ आगे खींच ले जायेगा। यही दशा प्रकाश की भी होती है। मानलें सूर्य से प्रकाश आ रहा है। उसके आगे आपने एक कागज का टुकड़ा रख दिया। प्रकाश की गति रुक जाती है और वह आगे बढ़ नही पाता; किन्तु यदि वह

कागज प्रकाश से भी हल्का होता तो प्रकाश उसे अपने साथ आगे खींच ले जाता। धूमकेतु जिन पदार्थों से बना है उसमें उनके कुछ कण प्रकाश से भी हल्के होते हैं या कम से कम जब उन पर प्रकाश पड़ता है तब ऐसा व्यवहार करते हैं। पूंछ के पदार्थों पर सूर्य की दो शक्तियां अपना प्रभाव दिखलाती हैं; (१) पहले तो सूर्य की आकर्षण शक्ति उन कणों को अपनी ओर खीचती है और (२) सूर्य के धरातल से

उठने वाला विकिरण, उन्हें सूर्य से दूर ढकेलता है। यदि पदार्थ बड़ा हुआ तब तो सूर्य की आकर्षण शक्ति का प्रभाव पड़ता है और वह पदार्थ दूर नही ढकेला जाता; किन्तु यदि वह पदार्थ १/१०,००,००० इंच से कम व्यास का हुआ तो आकर्षण शक्ति के प्रभाव से विकिरण का दूर हटाने वाला प्रभाव, अधिक प्रबल हो उठता है। धूमकेतुओं के पदार्थ के कण बहुत ही सूक्ष्म है इसलिए इन पर सूर्य के विकिरण का प्रभाव पड़ता है और ये कण धूमकेतु से अलग सूर्य की विपरीत दिशा में फेंक दिए जाते है। इन्ही से पूंछ बनती है। पूंछ को बनाने मे इस विकीरण के साथ सूर्य से बहने वाले विद्युत् कण भी सहायता देते है। यही कारण कि जब धूमकेतु सूर्य के पास रहता तो इसके पूंछ होती है किन्तु दूर रहने पर पूंछ फिर सरक कर इसी में आ मिलती है।

जहां तक धूमकेतु के शिर (नाभि या nucleus) का सम्बन्ध है यह एक दो मील से अधिक लम्बी नही होती···और पूंछ? करोड़ों मील लम्बी और चौड़ी भी बहुत ही। तो इसका कारण क्या हो सकता है? यदि सूर्य के विकिरण का ही प्रभाव होता तब तो वह लम्बी चाहे कितनी भी हो चौड़ी उतनी ही होती जितना चौड़ा धूमकेतु का शिर है—अर्थात् एक–दो मील!

यही नहीं, पूंछ को देखने से तो पता चलता है कि यह अधिक चौड़ी ही नहीं,

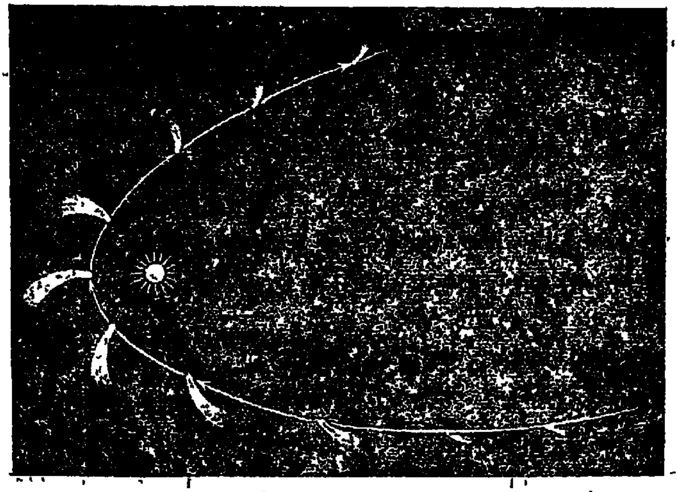

टेढ़ी भी है और इसका झुकाव पीछे की ओर है और धूमकेतु जाता है उसके विपरीत। पूंछ के बनने का कारण हमने देख लिया है। प्रश्न है इसकी चौड़ाई और टेढ़ापन का।

इसका कारण है कि इसके कणो मे तीन प्रकार की गलतियां पाई जाती हैं: (१) विकिरण के द्वारा कण प्रतिक्षण धूमकेतु से दूर होते रहते है; और पूँछ लम्बी बनती है; (२) परस्पर टकरा कर ये कण आपस मे एक दूसरे से दूर होते है. इस कारण यह पूँछ चौड़ी बनती है, और (३) शिर की अपेक्षा हल्के होने के कारण यह पूँछ धूमकेतु से पीछे रह जाती है, इसलिए टेढी हो जाती है ? नहीं समझ पाए? अच्छी बात है इसे यों समझें —मानले पांच सौ लडकों की एक भीड अध्यापक के पास एकत्रित है। अध्यापक ने कहा कि आप सब मुझसे पश्चिम में खडे हो जावें (विकिरण)। लड़कों ने एक पंक्ति मे खडा होना आरम्भ किया किन्तु उन्होंने देखा कि उनके आस-पास के लडकों से उनका झगडा है और दोस्त दूर है—इसलिए सीध छोड़कर इधर उधर खडे हुए (परस्पर टक्कराने का परिणाम)। अब हुआ यह कि जो पंक्ति सीधी होनी चाहिए थी वह चौडी भी होगई। इसके पश्चात् मान लें अध्यापक महोदय आपको दौडाना चाहते है और स्वय आगे चलते हैं। पर एक दूसरे के आगे पीछे नही। भागने की ओर सभी एक साथ। परिणाम यह होगा कि जो लड़के धीरे दौडने वाले है वह साथ नही दे पावेंगे और चौडी तथा लंम्बी पंक्ति टेढी भी हो जावेगी।

पूँछ इतनी हल्की होती है कि उसमें से तारे दिखाई पडते हैं। एक-दो बार तो हमारी पृथ्वी इस पूँछ मे से होकर निकल गई है। पृथ्वी का तो इससे कुछ नही बिगड़ा किन्तु बेचारे धूमकेतु की पूँछ थोडी झडकर पृथ्वी पर आ मिली। ऐसा प्रायः होता है जब कभी धूमकेतु सूर्य के पास आते है तो इनकी पूँछ बनती है और उसमें कुछ न कुछ भाग इधर उधर किसी ग्रह उपग्रह द्वारा छीन ली जाती है।

पर बेचारे धूमकेतु की पूंछ ही नही, इसका शिर भी नही बचता, क्योंकि इसके शिर की बनावट नन्हे नन्हे हिमकणो से हुई है। ये हिमकण अधिकतर मिथेन (Methane), आमोनिया और जल के होते हैं। इन्ही मे कुछ उल्का पदार्थ भी चिपके रहते हैं। ये पदार्थ छोटे छोटे टुकडों के रूप मे होते हैं। इनमे लोहा, निकेल और सिलिकेन प्रमुख है। जब धूमकेतु सूर्य के पास आता है तब यह शिर पिघलता है और इसके टुकड़े चुपचाप बाहर निकल जाते है।

ग्रहो की तरह ही ये धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा करते है। साधारणतया इनके भ्रमण का समय लम्बा होता है। कतिपय धूमकेतु ३-३॥ वर्ष में चक्कर पूरा कर लेते हैं किन्तु अधिकतर का समय १०० वर्ष से ऊपर है। हेली का धूमकेतु बड़ा ही प्रसिद्ध है। यह लगभग ७६ वर्षो मे अपनी परिक्रमा पूरी करता है। यह पूर्व से पश्चिम को चक्कर लगाता है। पिछली बार यह सन् १९१० मे दिखाई दिया था, अब सन् १९८६-८७ मे पुन दृष्टिगोचर होगा।

कुछ धूमकेतु तो एक बार दिखाई देने के पश्चात् पुन: दिखाई ही नही देते। न जाने शून्य में कहाँ चले जाते है। यदि लौटते है तो उनकी परिक्रमा की अवधि इतनी बड़ी होती है कि हम उन्हें दुबारा पहिचान भी नही सकते।

सारांश

रात को आकाश में जो आग की एक रेखा सी दिखाई देती है और जिसे साधारणतया 'टूटते हुए तारे' कहते है, जो वायुमण्डल में प्रवेश करने के पश्चात् रगड़ खाकर जल उठती है। यह धरती से २५-३० मील ऊपर ही जल जाती है। इस प्रकार की उल्काएँ प्रति घण्टे लाखों धरती पर गिरती रहती है और इनकी राख से पृथ्वी का वजन सैकड़ो मन बढ़ता जा रहा है। कई उल्कापात बड़े भयंकर होते है जैसे अरीजोना का; जिससे बने हुए गड्ढे की गहराई आज भी ६०० फुट है और व्यास ३/४ मील। १९०८ मे साइबेरिया में भी एक भयंकर उल्का गिरी थी। एक वैज्ञानिक का मत है कि शून्य मे कुछ प्रति-पदार्थ भी हैं जिनके परमाणुओं की रचना अब तक के ज्ञात परमाणुओं की रचना से विपरीत होती है। पदार्थ तथा प्रति पदार्थ मे संघर्ष भयंकर होता है। साइबेरिया का विस्फोट ऐसे ही किसी उल्का से हुआ। उल्काओं की गति २०-४० मील तक प्रति सेकिण्ड होती है। यदि वे पृथ्वी की दिशा के विपरीत चलती है तो इनकी गति और भी बढ़ी हुई विदित होती है किन्तु यदि वे उसी दिशा मे चलती है तो गति धीमी महसूस होती है। उल्का पदार्थ छोटे-छोटे कणों से लेकर सहस्त्रों पौण्ड भारी होते है।

धूमकेतु की विलक्षणता उसकी पूँछ में है जो सूर्य के धरातल से उठने वाले विकिरण के कारण बनती है। जब धूमकेतु सूर्य के समीप रहता है तो पूँछ अधिक से अधिक लम्बी होती है। दूर रहने पर सिकुड़कर पुन: धूमकेतु में मिल जाती है। पूँछ के कण बहुत हल्के होते है और इनमें ३ गतियां होती है (१) विकिरण के कारण धूमकेतु से दूर हटने की, (२) परस्पर टकराकर अलग रहने की और (३) धूमकेतु के साथ आगे बढ़ने की। इन्हीं तीन गतियों के कारण पूँछ लम्बी चौड़ी तथा टेढ़ी होती है। इसका शिर जब अमोनियाँ और मिथेन के हिमकणों से बना होता है जिसमें निकेल, लोहा और सिलिकन इत्यादि उल्का पदार्थ बँधे रहते है, जो शिर के पिघलने पर मुक्त होते हैं और शून्य में विलीन हो जाते हैं। धूमकेतु की पूँछ सदा सूर्य के विपरीत होती है और करोड़ों मील लम्बी। एक दो बार पृथ्वी धूमकेतुओं की पूँछ मे से निकल चुकी है। सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने का इनका समय बहुत लम्बा होता है, ३-३॥ से लेकर सैकड़ों वर्षो तक। हेली का धूमकेतु बड़ा प्रसिद्ध है। यह लगभग ७६ वर्षो में परिक्रमा पूरी करता है। अब वह १९८६-८७ में पुन: आएगा।

चौथा अध्याय

उल्काएँ और धूमकेतु

पिछले अध्याय मे आपने देख लिया कि सौर परिवार के सदस्य बड़े ही विचित्र है। कोई छोटा है तो कोई बड़ा और कोई पास है तो कोई दूर। सबके रास्ते अलग अलग है और सब के भ्रमण की अवधि भी भिन्न-भिन्न। पर हमने इस परिवार के और कई विचित्र सदस्यों से तो अभी परिचय ही नहीं किया। आओ इस अध्याय मे दो अन्य सदस्यों से भेंट करें।

यह देखो रात के पर्दे पर आग की रेखाएं सी क्या खीची जा रही हैं—कुछ ऊँचाई पर है ये रेखाएँ। आप इन्हे 'टूटते हुए तारे' कहते है न? इन टूटने हुए तारों का ही असली नाम उल्का है। ये उल्काएँ भी सौर-परिवार के ही सदस्य हैं। अंधेरी रात मे उल्कापात अधिक दिखाई देते हैं। वैसे चांदनी रात में भी उल्कापात होते ही रहते है, किन्तु चन्द्रमा की ज्योत्सना में उनका प्रकाश खो जाता है। उल्काओं का प्रकाश ही दृष्टिगोचर होता है जो बडी होती हैं। दिन में तो एक भी उल्कापात नहीं दिखाई देता। पर बात ऐसी नहीं है कि दिन में उल्काएँ आती ही नही। सूर्य की चकाचौंध में इनका प्रकाश एकदम खो जाता है। इसीलिए ये दिखाई नही देती। वास्तविकता यह है कि जितनी उल्काएँ रात को दृष्टिगोचर होती हैं उतनी ही दिन मे भी गिरती हैं।

पर धरती पर इन्हें गिरते हुए तो आपने सम्भवत. कभी नहीं देखा होगा। ये उल्काएँ सचमुच धरती पर आती कम ही हैं। वैसे ये प्रयत्न तो बहुत करती हैं कि जैसे चन्द्रमा पर टकरा कर उसके धरातल को चूर कर देती हैं वैसे ही धरती पर जाकर भी नुकशान पहुंचायें; किन्तु पृथ्वी ने हम लोगों की रक्षा के लिए अपने चारों ओर सैकड़ों मील ऊँचे वायु-मण्डल का आवरण डाल रखा है। उल्काओं के लिए इस वायु मण्डल का भेदना बड़ा कठिन हो जाता है। इसी वायु मण्डल में ये जल जाती हैं।

आप कहेंगे इस वायु मण्डल में आग तो है ही नहीं, उल्काएं जलती कैसे हैं? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए अपनी दोनों हथेलियों को अच्छी तरह स्वच्छ करलें आपकी हथेलियों में आग तो नहीं है? कहेंगे, नही। अच्छी बात है; अब अपनी हथेलियों को जोर से और जल्दी जल्दी मसलें—देखें कितनी गर्मी आ गई,—यदि और तेजी से मसलें तो हाथ जलने लगेगा। घर्षण से गर्मी आती ही है—जंगलों

अपनी कापी में कोई सरल रेखा खींचें और उसे नापें—आपका उत्तर इंचों तथा सेन्टीमीटरों या इससे भी छोटे मिली मीटरों में आएगा—पर यदि कोई इस रेखा की लम्बाई मीलों में निकाले तो ? आप उसकी बुद्धिमानी पर हंसेंगे। अच्छी बात है, अब यदि दिल्ली और कलकत्ते के बीच की दूरी कोई इंचों में बनाए तो आप फिर हंसेंगे ! तो बात क्या हुई ? यही न कि जैसी दूरी होती है वैसा ही उसके नापने का साधन यानी इकाई होती है। बहुत छोटी दूरी इंचों में उससे बड़ी गजों में और उससे भी बड़ी हो तो मीलों में नाप लेते हैं। धरती पर कोई स्थान किसी दूसरे से १२५०० मील से अधिक दूर नहीं है। इसलिए पृथ्वी पर स्थित स्थानों की दूरियों को व्यक्त करने के लिए मील की इकाई बहुत है। पर तारों की दूरियां बहुत हैं—इतनी कि इकाई, दहाई, सैकड़ा गिनते गिनते करोड़, अरब, खरब, नील, शंख, पद्म और महापद्म की गिनतियां भी समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए आकाशीय पिण्डों की दूरियां बतलाने के लिए एक बहुत बड़ी इकाई ली गई है और वह है प्रकाश वर्ष।

प्रकाश वर्ष—आपने पढ़ा होगा, प्रकाश प्रति सेकिण्ड १८६००० मील चलता हैं। इस चाल से प्रकाश को पृथ्वी तक आने में ८$\frac{१}{३}$ मिनिट के लगभग लग जाते है। यही कारण है कि सूर्य निकलने के ८ मिनिट बाद दिखाई देता है और छिपने के ८ मिनिट बाद तक दिखाई देता रहता है। इसे भली भांति समझने के लिए किसी ऐसी जगह जावें जहां पर धोबी कपड़े धो रहे हों। उनसे ३००–४०० गज की दूरी पर इस प्रकार खड़ा हो जावें कि उनका कपडे को घुमाकर पाट पर 'पछाड़ना' दिखाई देता रहे। आप देखेंगे प्रति बार जब धोबी कपड़े को पछाड़ता है उस पछाड़ने की आवाज कुछ देर बाद सुनाई देती है। इसका कारण है कि ध्वनि प्रति सेकिन्ड ११८० फुट चलती है। इसी कारण कपड़े का नीचे आना तो तुरन्त दृष्टिगोचर होता है किन्तु आवाज को आपके पास तक आने में कुछ समय लगता है। इसी प्रकार प्रकाश को भी सूर्य से हम तक आने मे कुछ समय लगता है। अपनी इस गति से प्रकाश एक वर्ष में १८६०००×६०×६०×२४×३६५ या ५८,७८,००००००००००० (५.८७७×१०^{१२}) मील चलता है। अब यह न कह कर कि कोई वस्तु हमसे ५.८७८×१०^{१२} मील दूर है, कहते है कि अमुक वस्तु हमसे एक प्रकाश वर्ष दूर है। अतः प्रकाश वर्ष की परिभाषा इस प्रकार हुई : प्रकाश वर्ष वह दूरी है जिसे तय करने में प्रकाश को (१८६००० मील प्रति घण्टे की चाल से) एक वर्ष लग जाता है।

सब से समीप का तारा—इस इकाई से जब तारों को नापा जाता है तो जो तारा सब से समीप है वह ४.२ वर्ष दूर आता है। उससे प्रकाश को आने मे

४.३ वर्ष लग जाते है। इस तारे का नाम अल्फा सेन्टौरी है। यह तारा दक्षिण गोलार्द्ध मे है।

अन्य तारे—यह तो हुई समीपतम तारे की दूरी। पर सभी तारे तो इतने समीप नही है। आकाश मे सब से अधिक तेज चमकने वाला तारा 'हिरनियो' के पीछे पाया जाता है। इसे कुत्ता तारा (Dog star) कहते है। इसकी दूरी ८.७ प्रकाश वर्ष है। ध्रुव तारा लगभग ४२ प्रकाश वर्ष दूर है। कुछ तारो की दूरी सैकडो और हजारो प्रकाश वर्षो मे आती है।

इतनी दूरी पर स्थित ये तारे बहुत ही छोटे दिखाई देते है। पर दिखाई देते हैं यही कम महत्वपूर्ण नही है। इसका कारण यह है कि इन तारो का आकार बहुत बड़ा है—सूर्य से भी कई गुना बडा है। आकार के अनुसार तारे तीन प्रकार के होते हैं (१) दैत्य तारे, (२) मध्यम तारे और (३) बौने तारे। दैत्य तारे इतने बडे है कि उनके आगे हमारा सूर्य नही के बराबर है। एक दैत्य तारा सूर्य से ६ करोड गुना बडा है—उस तारे का आकार समझने के लिए स्मरण रखे कि पृथ्वी २५ हजार मील बडी है। इस प्रकार की १३ लाख पृथ्वियां यदि एकत्र हो तो सूर्य की बराबरी हो सकेगी और इस सूर्य के समान यदि ६ करोड सूर्य एक साथ रखे जायं तो इस दैत्य तारे की समता हो सकती है। ऐसे दैत्य तारे अनेक हैं। इसी प्रकार का एक दैत्य तारा सूर्य से लगभग १२ करोड गुना बड़ा है।

मध्यम तारे साधारणतया सूर्य के आकार के या इससे कुछ छोटे बडे होते हैं; किन्तु बौने तारे बड़े विचित्र है। आकार में तो ये सूर्य से बहुत छोटे हैं—कुछ तो पृथ्वी के बराबर है—एक बुध के बराबर। किन्तु इनकी विशेषता है इनके घनत्व मे। इनका घनत्व इतना अधिक है कि यदि एक चने के बराबर उनका टुकडा तोड़ लिया जाय तो वह धरती पर मनो भारी होगा। आदमी यदि किसी प्रकार इन तारों पर पहुच जाय तो इनकी आकर्षण शक्ति इतनी अधिक होगी कि वह चल फिर नही सकेगा। एक कदम चलने पर उसे उतनी ही थकान होगी जितनी लगभग ७–८ मील चलने पर धरती पर होती है—चन्द्रमा पर तो सभी १५–२० फुट ऊँचे कूद सकते थे—उन तारो पर विश्व का अच्छा से अच्छा कूदने वाला भी १–१½ फुट से अधिक नही कूद पाएगा। कुछ पर तो बिल्कुल नही कूदा जायगा। व्यक्ति ज्यो का त्यो चिपका होगा।

इन तारो का तापक्रम भी बहुत ही अधिक है। सूर्य का तापक्रम मन्द होगा; धरातल पर ६०००° सेण्टीग्रेड है। इन तारो के धरातल पर ११०००° सेण्टीग्रेड तक के तापक्रम पाए गए है।

तारों की परस्पर दूरी—पृथ्वी से ये तारे एक मे एक मिले हुए दिखाई देते हैं किन्तु वास्तविकता यह नही है। यह हमारा अनुभव है कि दूर की वस्तुएं छोटी और समीप दिखाई देती है। इतने बड़े आकार के ये तारे भी दूरी के कारण ही बिन्दुओं के समान लगते है। इनके बीच की दूरिया भी उतनी ही है जितनी पृथ्वी से इनकी। आपस मे ये कितनी दूर है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक तारे को राई के बराबर मान ले तो इस पैमाने पर दूसरा तारा तो उतना ही बड़ा होगा, २०–२५ मील दूर होगा। इस प्रकार यदि असंख्य बिन्दु एक दूसरे से १० से लेकर २०–२५ मील की दूरी बनाएं जाय तो इस बह्माण्ड में अवस्थित तारों की समता हो सकती है।

तारों का टिमटिमाना—स्वच्छ रात मे जब तारे स्पष्ट झलक रहे हो, यदि उनकी ओर गौर से देखा जाय तो वे टिमटिमाते हुए प्रतीत होते है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि इस टिमटिमाने का कारण स्वयं तारों मे नही अपितु हमारे वायुमण्डल में हैं। वायुमण्डल की विभिन्न स्तरो का घनत्व अलग अलग होता है। इसलिए जब तारों से आती हुई प्रकाश किरणे एक स्तर से दूसरे स्तर मे प्रवेश करती है तो आवर्तन होता है। जब पवने कुछ तेज चलती हैं तब यह आवर्तन अधिक होता है और तारे टिमटिमाते दिखाई देते हैं। जो तारे क्षितिज के पास होते है उनका टिमटिमाना अधिक दिखाई देता है क्योकि उन किरणों को वायुमण्डल की अधिक सतहे पार करनी पड़ती है। जो तारे शिरोबिन्दु के पास होते है उन्हे वायु की कम सतहें पार करनी पड़ती है, अतएव उनका प्रकाश एक सा दिखाई देता है।

निहारिकाएं— अब यदि कोई आपसे पृथ्वी से दूर की किसी वस्तु का नाम

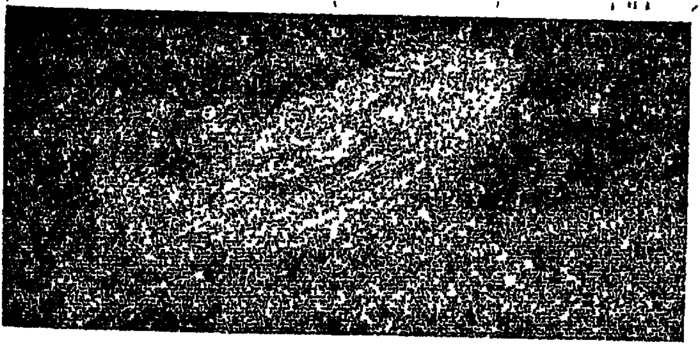

पूछे तो झट आपका उत्तर होगा—तारे। पर इस शून्य मे इन तारो से भी दूर कुछ पिण्ड हैं—उन्हे निहारिकाएं कहते है।

इस शून्य में विचरण करने वाले करोड़ों तारो मे से किसी अन्य तारे का भी अपना परिवार हो, उसके ग्रह–उपग्रह हो और उनमे प्राणी बसते हों। सम्भव है अपने ही सौर परिवार के किसी ग्रह पर प्राणी हो जैसा कि मगल के बारे मे अधिकतर सोचा जाता है। यदि ग्रहो तथा अन्य तारो के ग्रहो पर प्राणियो का अस्तित्व पाया भी गया तो यह आवश्यक नही है कि वे प्राणी पृथ्वी पर के प्राणियो जैसे ही हो। उनकी आकृति कैसी होगी यह निश्चयपूर्वक कहा नही जा सकता। खगोल शास्त्री इस खोज मे लगे है और सम्भवत किसी दिन ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण रहस्य छान डाले पर अभी तक तो मानव का ज्ञान जितना ही बढ़ता गया है उतना उसे यही विदित हुआ है कि उसका अज्ञान और भी विस्तृत होता जा रहा है।

इन कार्यों को भलीभांति सम्पादित करने के लिए बडी बडी वेधशालाएं बनी हुई है जहां खगोल शास्त्री रात-रात भर जग कर तारो तथा नीहारिकाओं को दूर-दर्शकों से देखते है, उनके फोटो लेते है, उनसे आने वाले प्रकाश को अलग अलग रंगों में बाँट कर उस प्रकाश के आधार पर तारों का तापक्रम, उनके पदार्थ तथा उनके आकार इत्यादि को निश्चित करते हैं। इन सभी कामो के लिए दूरदर्शक, सूक्ष्मदर्शक तथा केमरा बहुत आवश्यक अंग है। इसके अतिरिक्त अन्य तरह के साधनो से वेधशालाएँ परिपूर्ण रहती हैं। इन सभी उपकरणो मे दूरदर्शक निश्चित ही बहुत महत्त्व पूर्ण है। आज तो अमेरिका मे एक ऐसा दूरदर्शक जिसके दृश्यताल (शब्द की व्याख्या के लिए गैलिलियो के दूरदर्शक की रचना देखें) का व्यास १६$\frac{3}{4}$ फुट है–इस शीशे की मोटाई २७" इच है, पूरे शीशे का वजन १४$\frac{1}{2}$ टन है। इसकी नली २० फीट चौड़ी तथा ५५ फुट लम्बी है। इस नली का पूरा वजन शीशे और अन्य उपकरणों समेत १५० टन है। इससे साधारण तथा आँख से ग्रहण किए जाने वाले प्रकाश की अपेक्षा १० लाख गुना अधिक प्रकाश ग्रहण किया जाता है।

यह विशाल दूरदर्शक ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्यो को खोलने में लीन है। इसके आगे छोटे-मोटे दूरदर्शक बेकार से हैं, पर जब गैलिलियो ने पहली बार दूरदर्शक बनाया था तो संसार मे तहलका मच गया था, उसी ने पहली बार सूर्य में धब्बे देखे! उसके दूरदर्शक की रचना निम्न प्रकार से है—

क, ख तथा प म दो ताल एक ही अक्ष पर एक नली मे है। पहले को दृश्य-ताल तथा दूसरे को अक्षि-ताल कहते है। दृश्यताल उन्नतोदर होता है; और अक्षि-ताल नतोदर। दृश्य ताल का द्वारक भी बडा होता है और इसका नाभ्यातर अधिक किन्तु अक्षिताल का द्वारक छोटा तथा नाभ्यातर कम होता है। दृश्य ताल को मजबूती से नली के भीतर एक सिरे पर कस देते है। अक्षिताल को ऐसा रखते हैं कि सरलता पूर्वक नली में सरका सके।

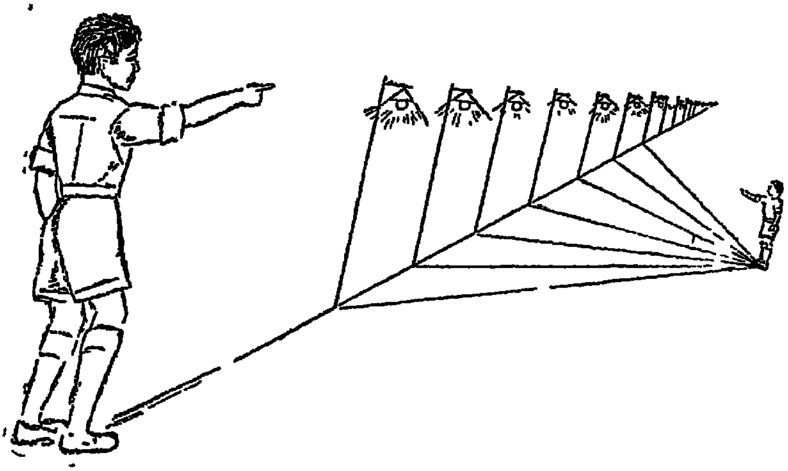

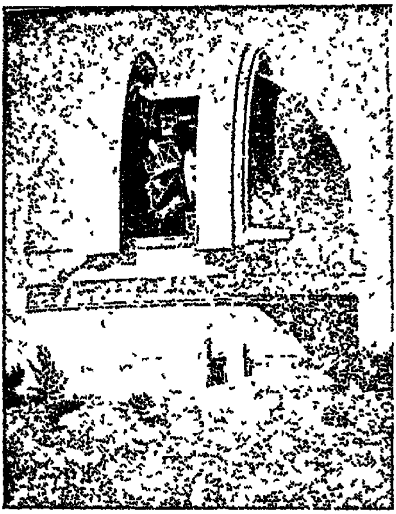

२०० इञ्च व्यास वाले विश्व के सबसे बड़े दूरदर्शक की गुम्बज
यह दूरदर्शक अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में पालोमर माउन्टेन पर लगाया गया है

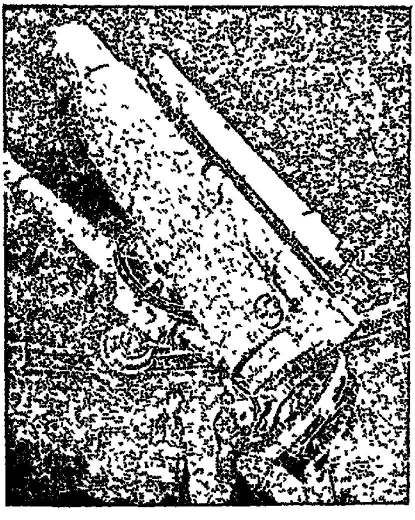

२ फुट चौड़े व्यास वाले दूरदर्शक की वेधशाला का भीतरी दृश्य

दूर से आनेवाली प्रकाश किरणों को समानान्तर रेखाओं में चलती हुई मान लिया जाता है। इस नियम से जब किसी तारे से आती हुई प्रकाश किरणें ब, न, दृश्य ताल से गुजरती है तो इस ताल के नाभितल (Focal plane) पर जाकर मिलती है। इस प्रकार एक उल्टी आकृति न, व वनती है। किन्तु अक्षिताल को इस

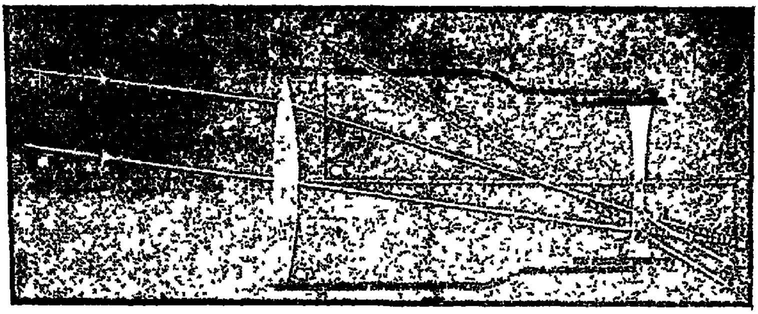

प्रकार रखा गया है कि वह दृश्य ताल तथा उसके नाभि (Focal point) के बीच में कहीं रहे। इसलिए दूर से आने वाली किरणों को दृश्य ताल के नाभितल तक पहुँचने के पूर्व ही अक्षिताल में से होकर गुजरना पड़ता है। यह नतोदर ताल इन किरणों को वर्तित करके इस प्रकार के परिवर्तन करता है कि विम्ब वड़ा निकट और सीधा दिखाई देता है।

सारांश

अनन्त ब्रह्माण्ड का माडल वनाने के लिए यदि सूर्य को पृथ्वी से १ फुट की दूरी पर रखे तो सवसे नजदीक के तारे को ५०० मील दूर रखना होगा। वास्तव मे तारे इतनी दूर है कि इनकी लम्बाई मीलो में नही नापी जा सकती। तारो तथा नीहारिकाओं की दूरी नापने की ईकाई प्रकाश वर्ष है। प्रकाश वर्ष वह दूरी है। जिसे प्रकाश १८६००० मील प्रति सेकेन्ड की चाल से एक वर्ष में तय कर लेता है। मीलों में यह दूरी ५.८७८ $\times$ १०^{१२} मील है। सबसे समीप का तारा भी इस नाप से ४.३ प्रकाश वर्ष दूर है। इसका नाप अल्फा सेन्टोरी है। अन्य तारे वहुत दूर है कुछ तो सैकड़ों प्रकाश वर्ष दूर है। दूरी के कारण तारे छोटे दिखाई देते है। इनका वास्तविक आकार बहुत बड़ा है। ये तीन प्रकार के है :—(१) दैत्यतारे, जिनका आकार सूर्य से करोड़ों गुना तक बड़ा है, (२) मध्यम तारे जो अपेक्षाकृत छोटे है और (३) बौने तारे जो वहुत ही छोटे हैं किन्तु इनका घनत्व इतना अधिक है कि उनका चने के बराबर टुकड़ा भी धरती पर मनो भारी होगा। इन तारों का तापक्रम भी बहुत होता है। ये तारे आपस मे भी इसी प्रकार दूर हैं।

किन्तु इनसे भी दूर नीहारिकाएँ हैं। ये संख्या मे करोड़ों है और इनकी दूरी भी लाखों प्रकाश वर्ष है। इनमें तारे तथा गैसीय पदार्थ भरे पडे हैं। ये भी अपनी कीलीं पर घूमती है। वास्तव में तारे, ग्रहो तथा उपग्रहो की उत्पत्ति का आदि कारण ये नीहारिकाएँ ही है। आकाश मे जो दूधिया रास्ता दिखाई देता है, और जिसे हम आकाशगंगा कहते है, वह भी एक नीहारिका ही है। आसमान के लगभग सारे तारे इसी आकाश गंगा के सदस्य है। हमारा सूर्य भी। हमारी स्थिति इस आकाश गगा के केन्द्र पर न हो कर केन्द्र से २६००० प्रकाश वर्ष दूर है। पूरी नीहारिका का व्यास लगभग ८०००० प्रकाश वर्ष है। आकाश गगा चपटी है और इसीलिए हमे तारे इतने पास पास दिखाई देते है कि सभी मिलकर कोसो आसमान पर दूधिया धब्बे से प्रतीत होते हैं। कई तारे एक निश्चित आकृति सी बनाते हुए प्रतीत होते है। इसे नक्षत्र कहते है। सम्पूर्ण आकाश को (सूर्य पथ के सहारे) १२ भागों मे बाँट दिया गया है। इन भागो को राशियाँ कहते है। प्रत्येक भाग मे पडने वाले तारों से जो आकृति सी बनती है उसीके आधार पर उस राशिका नाम भी रख दिया गया है। आकाश के रहस्यो की जानकारी प्राप्त करने के लिए खगोल शास्त्री रात रात भर जगर तारों तथा अन्य आकाशीय पिण्डो का अध्ययन किया करते है। इन बातो की जानकारी के लिए दूरदर्शक, सूक्ष्मदर्शक तथा कैमरा बहुत आवश्यक है। आज २००" व्यास व्यास वाला दूरदर्शक बन गया है जिससे नगी आँख की अपेक्षा १० लाख गुना [illegible] प्रकाश ग्रहण किया जा सकता है, पर दूरदर्शक का आविष्कार गैलिलियो ने [illegible] था। उसीसे उसने सूर्य मे धब्बे भी देखे थे।

अभ्यार्थ प्रश्न

१. तारे और ग्रहो का अन्तर स्पष्ट करें।
२. चन्द्रमा का धरातल कैसा है ?
३. चन्द्रमा पर वायुमण्डल क्यो नही है ?
४. क्या कारण है कि चन्द्रमा का सदा एक ही भाग दिखाई देता है।
५. चन्द्रमा पर एक नोट लिखें।
६. सौर परिवार से क्या समझते है ? ग्रहो की उत्पत्ति के सिद्धान्तो को समझावे। आपको कौनसा सिद्धान्त अधिक युक्ति-संगत लगता है और क्यों ?

७. उल्काएं और धूमकेतु क्या है ? इन पर एक विस्तृत लेख लिखे ।
८. धूमकेतु की पूँछ कैसे बनती है और पुनः कहाँ चली जाती है ? यह टेढ़ी क्यों होती है ?
६. तारों के बारे मे कतिपय मनोरंजक बातें बतावे ।
१०. उपयुक्त पैमाना मान कर सूर्य तथा ग्रहों की आपेक्षिक दूरी दिखावे ।
११. सूर्य के धब्बों के बारे मे क्या जानते है ?
१२. निहारिकाएँ क्या है ? इन पर एक टिप्पणी लिखे ।
१३. 'ब्रह्माण्ड—परिचय' पर एक लेख लिखे ।
१४. "पृथ्वी पर प्राणियों का उदय एक सांयोगिक घटना है," इस बात से आप कहां तक सहमत है ? विस्तार पूर्वक लिखें ।
१५. गैलिलियो के दूर-दर्शक की रचना कैसी है ? चित्र खींचकर समझावें ।
१६. ग्रहणों से क्या समझते है ? चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण का चित्र खींचकर समझावें । क्या कारण है कि प्रत्येक अमावस्या तथा पूर्णिमा को ग्रहण नही लगते ?

छठा अध्याय

भू-पटल और इसकी रचना

पिछले अध्यायों में हमने पृथ्वी की उत्पत्ति पर विचार किया है। उस समय पृथ्वी का धरातल प्राणियों के निवास योग्य नहीं था। हम यह जानते हैं कि सूर्य से निकलने के समय पृथ्वी का स्वरूप बड़ा ही ज्वलनशील था। आज जितने भी पदार्थ धरती पर पाए जाते है, वे सभी गैस के रूप मे थे। धीरे-धीरे जब गैसें ठण्डी हुईं तो उनमें कुछ पदार्थ ठोस अवस्था मे आगए; कुछ तरल अवस्था में और कुछ अब भी गैसीय अवस्था मे ही है।

पदार्थ की इन्ही तीन अवस्थाओ के आधार पर पृथ्वी को भी तीन मण्डलों मे विभक्त कर दिया गया, (१) वायुमण्डल, (२) जलमण्डल और (३) स्थल मण्डल। इस अध्याय मे हम स्थल मण्डल की बनावट तथा इसकी रचनाओं का अध्ययन करेंगे।

स्थल मण्डल भी मुख्यतया दो भागो मे विभक्त है: (१) भीतरी गर्म तथा पिघला हुआ भाग जो दबाव के कारण ठोस सा है और (२) ऊपरी ठण्डा तथा ठोस भू-पटल (Crust of the earth)। पृथ्वी के गर्म-पिघले भाग के ऊपर यह भू-पटल ठीक वैसे ही है जैसे गर्म किया हुआ दूध जब ठण्डा होने लगता है तो उसके ऊपर मलाई आ जाती है। भूप-टल सर्वत्र एक सी गहराई का नही है। इसकी गहराई औसत रूप में २० मील है।

पृथ्वी के कठोर भू-पटल की रचना को भली भांति समझने के लिए कतिपय खनिजो का अध्ययन आवश्यक है जिनसे यह धरातल बना है। ये खनिज तत्त्व से भिन्न होते है। अणु किसी तत्त्व के वह छोटे से छोटे रूप है जो स्वतंत्र रूप मे रह सकता है; किन्तु खनिज इन परमाणुओ के एक विशेष सयोग को कहते है। इसका यह अर्थ नही कि भू-पटल तत्वो से मिलकर नही बना है। वास्तविकता यह है कि खनिज तत्व भी हो सकते हैं और यौगिक भी। खनिज की परिभाषा ऐसी की जा सकती है कि खनिज एक प्राकृतिक रूप मे पाया जाने वाला अकार्बनिक पदार्थ है जिसकी एक निश्चित रासायनिक बनावट होती है और जिसमे एक निश्चित भौतिक गुण होते है। इस प्रकार खनिजो मे एक से अधिक तत्व होते है।

भू-पटल आठ प्रमुख तत्वों के संयोग से निर्मित हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१)	आक्सीजन	(O_2)	४६·७१%
(२)	सिलिकन	(Si)	२७·६९%
(३)	अलूमिनियम	(Al)	८·०७%
(४)	लोहा	(Fe)	५·०५%
(५)	कैलशियम	(Ca)	३·६५%
(६)	सोडियम	(Na)	२·७५%
(७)	पोटेशियम	(K)	२·५८%
(८)	मैगनेशियम	(Mg)	१·०८%
			९८·५८%

ऊपर के इन आठ तत्वों के संयोग से भूपटल में पाए जाने वाले विभिन्न खनिजों का निर्माण हुआ है। इनको प्राथमिक खनिज (Primary Minerals) कहते हैं। इनमें से कुछ की रचना बड़ी सरल है जैसे स्फटिक (Quartz) स्फटिक का रासायनिक संकेत है SiO_2। इसका अर्थ है कि यदि सिलिकन (Si) का एक परमाणु आक्सीजन (O_2) के दो परमाणुओं से संयोजित हो तो स्फटिक का एक अणु बन जाएगा। सिलिकन सरलतापूर्वक अन्य तत्वों से मिल जाता है और इनके योग को सिलिकेट (Silicate) कहते हैं। भू-पटल में सबसे अधिक पाया जाने वाला खनिज फेल्सपार (Feldsfars) है; इसके पश्चात् स्फटिक आता है। इन्हीं खनिजों में से एक अभ्रक (Mica) है। यों अन्य खनिज हार्न ब्लेन्ड (Horn blede) तथा पाइराक्जेन (Pyrocsene) हैं।

इन प्रमुख पाँच खनिजों के ही अनेक मिश्रण से भू-पटल का निर्माण हुआ है। पर पृथ्वी पर पाई जाने वाली चट्टानों में ये खनिज इतने घुले मिले है कि इनके आधार पर चट्टानों का वर्गीकरण कठिन है। भू-पटल पर पाई जाने वाली चट्टानों का वर्गीकरण उनकी उत्पत्ति के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। उनका वर्गीकरण करते समय यह नहीं विचार करते कि इस चट्टान के निर्माण मे किन-किन खनिजों का हाथ है। देखते यह हैं कि यह चट्टान किस प्रकार बनी। चट्टानों की उत्पत्ति तथा उनके स्वरूप का वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा।

खनिजों द्वारा भूपटल की बनावट को हम भूपटल की रसायनिक रचना कहते हैं। पर भू-पटल पर पाई जाने वाली चट्टानों की उत्पति तथा उनके एक विशेष प्रकार की स्थिति और उनके कारणों की भी व्याख्या करनी पड़ती है। यदि कहीं पहाड़ है तो उसका निर्माण कैसे हुआ, उस निर्माण में कौनसी शक्ति लगी थी, दो

चट्टानों के बीच में एक घाटी कैसे निकल आई है, चट्टानों की तहें तिरछी होगई हैं इत्यादि इत्यादि। चट्टानों की रचना (Structure) का अध्ययन करते समय हमें इन्ही बातों को ध्यान में रखना चाहिए। सारांशतः भूपटल की रचना (Structure of the crust of the earth) से हमारा तात्पर्य भूपटल में लगी चट्टानों के भौतिक गुण, उनकी प्रकृति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा स्थिति से होता है।

सारांश

अपनी उत्पत्ति के समय पृथ्वी ज्वलनशील थी। कालान्तर में इसका स्वरूप बदला और कुछ पदार्थ ठोस तथा द्रव रूप में आए। फिर भी कुछ पदार्थ अभी गैस रूप में ही है। पदार्थों की इन्ही तीन अवस्थाओं के आधार पर पृथ्वी को तीन मण्डलों में बांटा गया है, वायु मण्डल, जल मण्डल और स्थल मण्डल। स्थल मण्डल भी मुख्यतया दो भागों मे विभक्त है : (१) ऊपर का ठोस तथा ठण्डा भूपटल और (२) भीतरी गर्म तथा पिघला हुआ भाग। भूपटल की गहराई औसत रूप मे ३० मील है। इस भूपटल की रचना कतिपय तत्वों तथा उनके मिश्रणों से मिलकर हुई है। तत्वों में प्रमुख आठ है : आक्सीजन, सिलिकन, अल्यूमिनियम, लोहा, कैलशियम, सोडियम, पोटेशियम, मैगनेशियम। इन तत्वों के संयोग से कुछ प्रमुख खनिज बने हैं जिनका भूपटल की रचना में विशेष हाथ है। उनमे से पांच प्रमुख हैं :— (१) स्फटिक (२) सिलिकन (३) फेल्सपार (४) हार्नब्लेन्ड तथा (५) पाइराक्जेन। खनिज प्राकृतिक रूप में पाया जाने वाला एक अकार्बनिक पदार्थ है जिसकी एक निश्चित रासायनिक बनावट होती है और जिसमे एक निश्चित भौतिक गुण होते हैं। ये तत्व भी होते हैं और यौगिक भी। भूपटल की रचना से हमारा तात्पर्य यह रहता है कि भूपटल मे लगी चट्टानों के भौतिक गुण, उनकी प्रकृति तथा उनकी स्थिति कैसी है, तथा उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई।

सातवाँ अध्याय

चट्टानें

साधारणतया चट्टान का अर्थ पत्थर से लिया जाता है। किन्तु भूगर्भशास्त्र में चट्टान किसी भी ठोस पदार्थ से लिए प्रयुक्त किया जाता है जिससे यह भूपटल निर्मित है। भूगर्भ शास्त्री के लिए ग्रेनाइट जैसा कठोर पदार्थ भी चट्टान ही है और ज्वालामुखी से निकली हुई धूल भी चट्टान ही। ये चट्टानें एक या एक से अधिक खनिजों से मिलकर बनी होती है। जैसा पिछले पाठ में कहा गया है चट्टानों का वर्गीकर उनमें पाये जाने वाले खनिजों के आधार पर नहीं किया जाता। इनकी उत्पत्ति के स्वरूप (Mode of occurrence) के अनुसार ही इनके भेद किये गये हैं। इस प्रकार भूपटल की समस्त चट्टानों को तीन विभागों में बांट दिया गया है :—

(१) आग्नेय चट्टानें (२) परतदार चट्टानें, और (३) परिवर्तित चट्टानें

आग्नेय चट्टानें:—पृथ्वी की उत्पत्ति के पश्चात् जब पहली बार कोई ठोस चट्टान बनी तो उसका निर्माण पृथ्वी के पिघले पदार्थ के जमने से हुआ होगा। अनेक बार ऊपरी सतह जमकर अपने भारीपन के कारण नीचे के द्रव तथा अर्द्ध द्रव पदार्थ में बैठ गई होगी और उस पर पुनः पिघला हुआ भाग लहराया होगा। इस प्रक्रिया की अनेक आवृत्तियों के पश्चात् ऊपरी सतह बहुत कुछ ठोस होने लगी होगी। कालान्तर में जब ऊपरी सतह ठोस हो गई तो भी ज्वालामुखी का जोर रहा। फलतः नीचे का भाग दो रूपों में ठोस बना। कुछ तो सतह के ऊपर आकर ठण्डा हुआ और कुछ रास्ते में—सतह पर आने के पूर्व ही। भूपटल में दोनों प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। जो चट्टानें धरातल के नीचे माग्मा (Magma) जो पृथ्वी के भीतर का गर्म पदार्थ के ठण्डे होने के कारण बनीं वे धीरे धीरे ठण्डी हुईं, फलस्वरूप उनमें परमाणुओं को एकत्रित होने का अवसर देर तक मिला। परिणाम यह हुआ कि इन चट्टानों के मणिभ बड़े मिलते हैं। सतह पर ठण्डे होने वाले पदार्थों से जो आग्नेय चट्टानें बनी उनमें मणिभ अपेक्षाकृत छोटे पाये जाते है। इसी आधार पर इन चट्टानों को बाह्य (Extrusive) तथा आन्तरिक (Intrusive) चट्टानें भी कहते हैं। बाह्य चट्टानों में बसाल्ट (Basalt) तथा आन्तरिक में ग्रेनाइट (Granite) प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्ष में आग्नेय चट्टानें दक्षिण के पठार तथा उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में यत्र-तत्र पाई जाती हैं।

आग्नेय चट्टानों में सबसे अधिक अंश फेल्सपर (Feldspars) नामक खनिज का है—लगभग ५० प्रतिशत। खनिजों में दूसरा स्थान स्फटिक (Quartz) का है २०%। अभ्रक ७.५ प्रतिशत पाया जाता है। शेष अन्य खनिज हैं।

परतदार चट्टानें—भूपटल के निर्मित (आग्नेय चट्टानें) हो जाने के पश्चात् वर्षा, पवन, नदियों तथा समुद्र ने उन आग्नेय चट्टानो को तोड़ना–फोड़ना आरम्भ किया। धीरे धीरे आग्नेय चट्टानें इन नग्नीकरण के कार्यकर्त्ताओं* की विध्वसंक क्रियाओं के कारण घिसने तथा टूटने लगी। ये टूटे हुए भाग हवा से उड़कर तथा वर्षा के जल या नदियों द्वारा तत्कालीन सागरो में एकत्रित होने लगे। इस प्रकार जलराशि में एकत्रित पदार्थ से जो चट्टाने बनी उन्हे परतदार चट्टाने कहते हैं क्योकि इन चट्टानों के लिए पदार्थ परतो या तहो मे एकत्रित हुए थे। जल मे निर्मित होने के कारण इन्हें जलीय चट्टानें कहते हैं।

आरम्भ मे परतदार पर्वतों के लिए पदार्थ निश्चित रूप से ही आग्नेय चट्टानों से आये होंगे क्योकि तब अन्य किसी प्रकार की चट्टान थी ही नही। कालान्तर में परतदार चट्टानो के लिए प्रत्येक तरह की चट्टानों—आग्नेय, परतदार तथा परिवर्तित से आये और अन्य परतदार चट्टानों के निर्माण की सामग्री एकत्रित होती रही।

संसार के धरातल पर क्षेत्रफल के विचार से परतदार चट्टानें लगभग ७५ प्रतिशत हैं। शेष २५ प्रतिशत भाग आग्नेय तथा परिवर्तित चट्टानो से ढका है। फिर भी सम्पूर्ण भूपटल की बनावट मे आग्नेय चट्टानों की ही प्राथमिकता है। ऐसे अनुमान है कि इस भूपटल (Crust of the earth) का लगभग ९५ प्रतिशत भाग आग्नेय चट्टानो से निर्मित हैं—शेष ५ प्रतिशत परतदार तथा परिवर्तित चट्टानों से। भूपटल पर परतदार चट्टानो की चद्दर अधिक मोटी नही बिछी है। इसकी गहराई कुछ फुटों से लेकर ४०००–५००० फुट तक है।

परतदार चट्टानों के लिए पदार्थ तीन प्रकार के हो सकते हैं। या तो वे उन चट्टानों से टूट कर आये हों जो पहले से ही वर्तमान थी। इस प्रकार के पदार्थो से बनी हुई परतदार चट्टानों को क्लास्टिक (Clastic) चट्टान कहते हैं। इन चट्टानों मे बलुई पत्थर विभिन्न प्रकार के पत्थर तथा ग्रेवेल (Gravel bed) अधिक प्रसिद्ध हैं।

परतदार चट्टानों के निर्माण के लिए दूसरे प्रकार के पदार्थ वे हो सकते हैं जो पानी में घुलकर आये हैं और पानी के स्थिर होने पर धीरे धीरे जमते जाते हैं। इस

*नग्नीकरण के कार्यकर्त्ता (Agents of denudation) धरती के ऊँचे भागों को तोड़कर उन्हें अपेक्षाकृत निचले भागों में एकत्रित करते हैं। इनमे–सूर्य, पवन, वर्षा-नदी-पाला-आदमी-मुख्य हैं।

जीवाश्म

ब्रान्टोसारस

डायनोसारस

कतिपय प्राचीन जन्तु जिनका पूरा आकार उनके जीवाश्मों के आधार पर बनाया गया है। ये एक प्रकार के सरीष्टप है।

प्रकार बनी चट्टान को रासायनिक परतदार चट्टान कहते हैं। इन चट्टानों में जिप्सम, नमक तथा लोहा प्रमुख है।

तीसरे प्रकार के पदार्थ वे हैं। जो जल में रहने वा जीवों के कंकालों या वनस्तियों से प्राप्त प्रोते है। अनेक प्रकार के जलीय जीव मरणोपरान्त अपने शरीर का कड़ा कवच लहरों की दया पर समुद्र के हवाले कर देते हैं। वनस्पतियां भी दबकर परतदार चट्टानें बनाती है। ये पदार्थ एकत्रित होते रहते हैं और इस प्रकार परतदार चट्टानों के लिए पदार्थ मिलता रहता है। इन चट्टानों को कार्बनिक परतदार चट्टान कहते हैं। इनमें खड़िया, कोयला तथा चूने का पत्थर प्रमुख है।

परिवर्तित चट्टानें:—आग्नेय तथा परतदार चट्टानें जब अत्यधिक दवाव या गर्मी के कारण अपना रूप परिवर्तित कर लेती हैं तो उन्हें परिवर्तित चट्टानें कहते हैं। जब ज्वालामुखी फूटते हैं तो पिघला हुआ पदार्थ (Magma) आस पास की चट्टानों पर अत्यधिक गर्मी डालकर उनके स्वरूप को कुछ परिवर्तित कर देता है। मिट्टी के कच्चे घड़े या ईंट को गर्मी देकर जब पकाते हैं तब देखते है कि घड़ा या ईंट पत्थर जैसे हो गये है। यही हाल गर्मी पाने पर परतदार चट्टानों का भी होता है। वे बहुत कुछ कड़ी हो जाती है। उनके खनिजों तक में परिवर्तिन हो जाता है।

दबाव पडने से भी पदार्थ कड़े हो जाते हैं। जब पर्वत निर्माणकारी शक्तियों लम्बे पैमाने पर पर्वत बनाना आरम्भ करती है तो एक विस्तृत क्षेत्र पर अत्यधिक दबाव पडता है और वहां चट्टाने परिवर्तित हो जाती है। यही कारण कि परिवर्तित चट्टानें अधिकतर नये या पुराने तहदार पर्वतों के आस-पास और ज्वालामुखी के प्रदेशो मे पाई जाती हैं।

कोयला कार्बनिक परतदार चट्टान है किन्तु जब यह परिवर्तित चट्टान में बदलता है तो ग्रेफाइट बन जाता है। इसी प्रकार चिकनी मिट्टी (Clay) स्लेट का पत्थर बन जाती है और चूने का पत्थर श्वेत संगमरमर!

सारांश

भूगर्भ-शास्त्र में चट्टान उस ठोस पदार्थ के लिए प्रयुक्त होता है जिससे भूपटल का निर्माण हुआ। ये तीन प्रकार की होती हैं। (१) आग्नेय (२) परतदार और (३) परिवर्तित। आग्नेय चट्टाने पृथ्वी के भीतर के पिघले पदार्थ के कठोर होने के कारण बनी हैं। यह क्रिया दो प्रकार से हुई: (१) पिघला पदार्थ धरातल पर ठण्डा हुआ और जल्दी ठण्डा होगया। फलस्वरूप मणिभ छोटे रहे; (२) पिघला पदार्थ धरातल के नीचे ठोस हुआ और धीरे धीरे ठण्डा हुआ। फलतः मणिभ बड़े बने। आग्नेय चट्टानो मे लगभग ५०% अंश फेल्सपार का होना है, २०% स्फटिक का ७.५% अभ्रक

का। इन आग्नेय चट्टानों से वर्षा, पवन इत्यादि के द्वारा तोड़े फोड़े गए पदार्थ पास के समुद्रों में जमा हुए। धीरे धीरे पृथ्वी की आन्तारिक शक्तियों के कारण यह जमा किया हुआ पदार्थ ऊपर उठने लगा जिससे पर्वत और फिर नदियों इत्यादि द्वारा मैदान बने। चूँकि इन चट्टानों का उदय जल से हुआ इसलिए इन्हें जलीय चट्टानें भी कहते हैं। परतदार चट्टाने इसलिए कहते हैं कि समुद्र में यह पदार्थ एक एक परत (स्तर) के रूप में जमा हुआ था और इन चट्टानों में भी ये परतें पाई जाती हैं। धरातल पर क्षेत्र फल के विचार से परतदार चट्टानें ७५% हैं, किन्तु भूपटल के निर्माण में लगभग ९५% भाग आग्नेय चट्टानो का है। परतदार चट्टानो की गहराई अधिक नही है। कहीं कही तो बिल्कुल एक पतली सी चद्दर बिछी है—पर कही ४०००, ५००० फुट तक गहरी है। परतदार चट्टाने तीन प्रकार की होती है (१) क्लास्टिक चट्टानें, जिनके लिए पदार्थ पहले की चट्टानो से टूट टूट कर आए, (२) रासायनिक चट्टान, जिनका निर्माण उन पदार्थों से हुआ जो पानी में घुलकर आए और कालान्तर मे जम गए; (३) वे चट्टाने जिनका निर्माण जल में रहने वाले जीवो के कंकालों से हुआ है। ऐसी चट्टानों को कार्बनिक परतदार चट्टान कहते है। आग्नेय तथा परतदार चट्टानों में अत्यधिक गर्मी तथा ताप से कुछ परिवर्तन हुआ और इनका स्वरूप बदल गया। इन चट्टानों को परिवर्तित चट्टाने कहते हैं।

———

आठवाँ अध्याय

जीवाश्म (FOSSILS)

जीवों तथा पौधों के अवशेष, जो चट्टानों में दबे रहते हैं या अपनी आकृति चट्टानों में छोड़ जाते हैं, जीवाश्म (Fossils) कहलाते हैं।

इस प्रकार के जीव या पौधे जिनके अवशेष चट्टानों में दबे मिलते हैं, अधिकतर समुद्री होते हैं। स्थलीय जीवों और पौधों को चट्टानों में दबकर सुरक्षित रहने का अवसर कम ही मिल पाया है। क्योंकि जीवाश्म बनने के लिए यह आवश्यक है कि जीव मरने के पश्चात तुरन्त चट्टानों में दबा दिए जांय ताकि इनके शरीर को सड़ने तथा बिखरने का अवसर न मिले।

संसार में पाए जाने वाले सभी जीवाश्मों को स्पष्टतया दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है:—

(१) जीवों के अश्मीकृत अंग, और
(२) जीवों की उपस्थिति सूचक पदार्थ

(१) जीवों के अश्मीकृत अंग—अधिकतर ऐसा होता है कि जब कोई समुद्री जीव मरता है तो उसके ऊपर मिट्टी या काई बैठ जाती है। दिन प्रति दिन इस मिट्टी की अधिकता के कारण मृत-शरीर दबता जाता है और अब उसके बहाए जाने की भी बात असम्भव हो जाती है। इस प्रकार दबे हुए मृत शरीरों का कोमल भाग तो नष्ट हो जाता है किन्तु कठोर भाग इस मिट्टी मे सुरक्षित रहता है।

इस प्रकार के जीवाश्म भी दो भागों मे विभक्त हैं (अ) वे जीवाश्म जिनमें जीव का पूरा शरीर सुरक्षित रहता है और (ब) वे जिवाश्म जिसमें जीवो का कोई भाग ही सुरक्षित रहता है और शेष भाग या तो रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाता है या मिट्टी मे दबा ही नहीं होता।

(२) जीवों की उपस्थिति-सूचक पदार्थ—कभी कभी ऐसा होता है कि मिट्टी या किसी चट्टान में दबा हुआ किसी मृत जीव का शरीर पानी की पहुंच के भीतर रहता है, अर्थात् चट्टान के छिद्रों में से रसता हुआ पानी उस मृत शरीर तक पहुंच सकता है। पानी एक बड़ा भारी घोलक है। इसमें अनेक पदार्थ घुसकर या लटकते हुए मिले रहते हैं। जब रासायनिक पदार्थों से युक्त तथा अपने में अन्य कड़े पदार्थों के नन्हें नन्हें कण लिए इन मृत शरीरो तक पहुंचता है तो जीव के शरीर का एक

एक कण पानी से टूट टूट कर चट्टानों से रसकर निकलने लगता है और उसकी जगह पर पानी में आया हुआ पदार्थ धीरे धीरे बैठने लगता है। धीरे धीरे उस जीव का कोई अंश शेष नही रहता किन्तु ठीक उसी आकृति तथा बनावट मे उसी जगह पानी साथ आया हुआ पदार्थ जम जाता है।

ठण्डे हिम प्रदेशों में जानवर ज्यो के त्यो दबाकर रखे से रहते हैं। पर जीवाश्मों का अर्थ यह नहीं है कि मिट्टी में कोई जीव दब गया और वह जीवाश्म बन गया। समय इसके लिए प्रधान कारण है। जीवाश्म कड़े होते हैं और ये जीव हजारों–लाखों वर्ष पहले से दबे होने चाहिए।

जीवाश्मों की उपयोगिता—भूगर्भ शास्त्र में इन जीवाश्मो का बड़ा महत्व है। इनसे निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है:—

(१) ये परतदार या जलीय चट्टानों के सूचक हैं, क्योंकि जीवाश्म उन्हीं चट्टानों मे बन पाते हैं जिनका निर्माण जल में होता है। कभी कभी आग्नेय चट्टानो मे भी जीवाश्म पाए जाते हैं, किन्तु इस प्रकार के जीवाश्म जो आग्नेय चट्टानों मे मिलते हैं, यह सूचित करते है कि सम्बन्धित चट्टान का निर्माण ज्वालामुखी से निकले लावा तथा धूल से हुआ है और ये जीव उसमे दब गए हैं।

(२) जीवाश्म यह बतलाते है कि उन प्रदेशों में जहाँ वे मिले हैं, पहले किस प्रकार के जीव रहा करते थे।

(३) जीवाश्म सम्बन्धित चट्टान की आयु बतलाते हैं क्योंकि विकासवाद की प्रगति के साथ जीवो के क्रमिक विकास को निश्चित सा कर लिया गया है। उनके सम्बन्धित कालों का भी निर्णय कर लिया गया है। इस प्रकार किसी विशेष प्रकार के जीवाश्म को देखकर यह बताया जा सकता है कि किस काल या युग मे इस प्रकार के जीव रहते थे। इसी आधार पर उस चट्टान की प्राचीनता भी ज्ञात की जा सकती है जिसमे वह जीवाश्म पाया गया है।

(४) नियमत: आग्नेय चट्टानों में जीवाश्म नही पाए जाते।

(५) जीवाश्मों से यह विदित होता है कि जिन जल राशियों मे वे जीव रहते थे, वे छिछले थे या गहरे; स्थल के पास थे या दूर; खुला समुद्र था या घिरी खाडी।

(६) ये जीवाश्म जल वायु की भिन्नता भी प्रगट करते हैं।

जीवाश्मों की आयु—चट्टानो मे पाए जाने वाले आज के नही है, दो-चार सौ वर्ष पुराने भी नही है। इनकी आयु लाखो और करोड़ों वर्ष पुरानी है। सबसे

पुराने जीवाश्म बड़े ही शीर्ण अवस्था मे है। ये कम से कम ५० करोड़ वर्ष पुराने है। राजस्थान का अरावली पर्वत भी लगभग इतना ही पुराना है। इस पर्वत में भी कहीं कही जीवाश्म पाए गए हैं। इससे बाद में बने तहदार पर्वतों जैसे हिमालय, राकी, आल्प्स इत्यादि में बहुसंख्य जीवाश्म पाए जाते है जो न केवल यही बतलाते हैं कि ये पर्वत कितने पुराने हैं अपितु इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि इनका निर्माण जल मे हुआ है और कभी लाखो करोड़ो वर्षो पूर्व ये सागर की अतल जल राशि के नीचे दबे पडे थे।

इन जीवाश्मों से कतिपय प्राचीन जानवरों का पता चलता है जिनके अवशेष चट्टानों के इन्ही (जीवाश्मों) के रूप मे सुरक्षित हैं। उनमें से कुछ-एक बारे मे नीचे परिचय दिया जा रहा है:—

ब्रान्टो सारस (Bronto Saurus)—यह लगभग ५० टन भारी और सर से पूंछ तक ७० फीट लम्बा होता था। इतने बड़े आकार होने पर भी इसका मुँह बड़ा छोटा होता था—इतना छोटा कि दिन भर खाते रहने पर भी इसका पेट नहीं भरता था। यह था बेचारा शाकाहारी जो अन्य मांसाहारी जानवरों से बचकर रहता था।

डायनो सारस (Dino Saurus)—यह भी एक विचित्र जानवर था, इसकी लगभग ८० किस्में प्राप्त हुई है। इसका आकार भी ८० फुट से लेकर ३-४ फुट तक होता था।

सारांश

जीवो तथा पौधो के अवशेष को चट्टानो मे दबे रहते है या अपनी आकृति छोड़ जाते है, जीवाश्म कहलाते है। जीवाश्म दो भागो मे विभक्त है (१) जीवों के अश्मीकृत या प्रस्तरीकृत अंग जो जीव की मृत्यु के उपरान्त काई या मिट्टी मे बैठ जाते है और इस प्रकार सुरक्षित रहते है और (२) जीवों की उपस्थिति सूचक पदार्थ—ऐसा इस प्रकार होता है कि उस चट्टान तक जिसमे किसी जीव का कंकाल दबा हो, पानी पहुंचता है और हड्डियो को अपने साथ लिए अनेक रासायनिक पदार्थों से घोल कर चट्टानों से बाहर निकाल देता है और उसकी जगह पर अपने साथ ले आए हुए पदार्थ को जमा कर देता है। इस प्रकार किसी जीव की हड्डियाँ नही बल्कि उसी ढाचे मे कोई अन्य पदार्थ मिलता है। जीवाश्मों से पता चलता है कि (१) सम्बन्धित चट्टान जलीय है। (२) प्राचीन काल मे किस प्रकार के जीव रहा करते थे, (३) सम्बन्धित चट्टान की आयु कितनी है, (४) जिन जलराशियों मे वे जीव रहते थे वे छिछले थे या गहरे, (५) उस काल में जलवायु कैसी थी। आज कल पाए जाने वाले जीवाश्म करोडो वर्ष पूर्व के जानवरों के है। इन्हीं जीवाश्मो से ब्रान्टो-सारस तथा डायनो-सारस जैसे विशाल जानवरों का पता लगता है।

नवाँ अध्याय

पर्वतों, नदियों, पठारों तथा मैदानों की रचना

पर्वत—पृथ्वी पर पाई जाने वाली सभी प्राकृतिक आकृतियो मे पर्वत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साधारणतया धरातल से २००० फुट से ऊँचे भागों को पर्वत कहते है। धरती का ही एक भाग इस प्रकार धरती से ऊपर कैसे उठ गया ! इसकी एक लम्बी कहानी है। यहां पर इतना स्मरण रखना पर्याप्त है कि पर्वतों को बनाने मे तीन प्रकार की प्रक्रियाएँ लगी है। (१) आग्नेय, (२) क्षरण (Erosion) तथा (३) भू-पटल की गतिशीलता (Movement)

इन्ही प्रक्रियाओ के आधार पर पर्वत चार प्रकार के होते है (१) ज्वालामुखी (२) मोड़दार पर्वत (३) ब्लाक पर्वत और (४) अवशिष्ट पर्वत।

मोड़दार तथा ब्लाक पर्वत भूपटल की गतिशीलता के कारण होते है। इन दोनों मे अन्तर उतना ही है कि मोड़दार पर्वतो के लिए पृथ्वी की शक्तियाँ सम्बन्धित पदार्थ को (१) ऊपर उठाती है और इस प्रकार से शक्ति नीचे से लगती है तथा (२) पार्श्व मे दबाती हैं। जब पार्श्विक शक्तियां सक्रिय होती है तब भी पदार्थ दब करके ऊपर उठता है और पर्वत का रूप ले लेता है। पार्श्विक दबाव धरातल के ठण्डे होकर संकुचित होने के कारण भी पड़ता है और प्रारम्भ मे इसी प्रकार पर्वत बने थे।

(१) ज्वालामुखी पर्वत—भूपटल के भीतर से गर्म लावा इत्यादि जिस सूराख से होकर निकलते हैं उसे ज्वालामुखी कहते हैं। इस ज्वालामुखी के विस्फोट के पश्चात् निकला हुआ पदार्थ धीरे धीरे इसके (ज्वालामुखी के मुख के चतुर्दिक जमा होने लगता है। ज्वालामुखी का कार्य निरन्तर जारी रहता है। फलस्वरूप एकत्रित पदार्थ धीरे धीरे ऊँचा उठता रहता है और बहुत समय पश्चात् जब ज्वालामुखी आग उगलना बन्द कर देता है और उसका मुँह कूड़े करकट तथा टूट-फूट से बन्द हो जाता है तो यह पर्वत ही रह जाता है। इस प्रकार के पर्वत शंक्वाकार होते है जिनकी गोलाई चारो ओर लगभग समान होती है। जापान का फ्यूजीयाना इसी प्रकार का एक पर्वत है।

(२) मोड़दार पर्वत—आज संसार मे जितने भी बड़े बड़े पर्वत-हिमालय आल्प्स, राकी, एन्डिज है वे सभी मोडदार पर्वत है। उन पर्वतो का यह नाम इसलिए पड़ा जिन पदार्थो से ये बने है वे पदार्थ समुद्र की सतह पर परतो या तहो (layers)

के रूप में एकत्रित होते रहे। लाखों वर्ष पश्चात् पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों ने इस प्रकार एकत्रित पदार्थ को धीरे धीरे ऊपर उठाना आरम्भ किया। ऊपर उठते समय इन अनुप्रस्थ तल (Horizcntal plane) में पड़े पदार्थों में बहुत कुछ अनियमिता आ गई। कुछ तो बिल्कुल ही मुड़ गई और इस प्रकार अपने ही ऊपर आगई कि तहों का रूप उलटा हो गया। प्रारम्भ में भी जब पृथ्वी ठण्डी हो रही थी तो इसका ऊपरी भाग पहले ठण्डा हुआ। नीचे गर्मी थी। जब नीचे का भाग ठण्डा होने लगा तो सिकुड़न हुई। इसलिए ऊपरी कठोर भाग में कई मोड़ आगए। कुछ भाग ऊँचे होगए तो कुछ नीचे। इस प्रकार ऊँचे उठे भाग ही विश्व के प्रथम पर्वत थे।

जिन समुद्रों में इस प्रकार पर्वतों के लिए पदार्थ एकत्रित होता रहा उन्हें Tethys या भू गर्भ सागर कहते हैं। राजस्थान का अरावली पर्वत भी इसी प्रकार का तहदार पर्वत है। इस शृंखला में पाई जाने वाली किसी भी पहाड़ी के पत्थरों को समीप से देखने पर ये तहें स्पष्ट दिखाई देती हैं।

(३) ब्लाक पर्वत—आगे एक चित्र दिया जा रहा है जिसमे भूपटल की तहों को दिखाया गया है। यदि रेखा के सहारे सहारे एक का भाग नीचे सरक जाय तो इसकी आकृति उस चित्र जैसी हो जायेगी। उस चित्र से स्पष्ट है कि इस प्रकार भूपटल के किसी भाग के नीचे धँस जाने के कारण कुछ भाग ऊपर आ जाता है और पर्वत का रूप ले लेता है। इन्हीं पर्वतों को ब्लाक पर्वत कहते है।

जो भाग नीचे धँसता है वह यदि अपेक्षाकृत कम चौड़ा हुआ और उसके दोनों ओर का भाग ऊपर उठा रहा हो तो इसे दरार घाटी भूभंगघाटी कहते हैं। भारत में नर्मदा और ताप्ती नदियाँ इसी प्रकार की भू भंग घाटियों में बहती है।

(४) अवशिष्ट पर्वत—भूपटल का सम्पूर्ण पदार्थ एकसा नहीं है। कुछ भाग बहुत ही कठोर है और कुछ कम कठोर। जब नग्नीकरण कार्यकर्ता की वे प्रक्रियाएं जो मिट्टी को काटकर बहा ले जाती हैं। अपना कार्य आरम्भ करते हैं तो कम कठोर भाग काट कर उनके साथ बह जाते है। इस प्रकार कठोर भाग छोटे मोटे पर्वतों तथा पहाड़ियों के रूप मे बच जाते है। पूर्वी घाट के पर्वत इसी प्रकार के होते है।

पठार

प्राकृतिक आकृतियों में पर्वत और मैदान के मध्य की स्थिति पठार है पर्वतो तथा पठारो मे एक अन्तर यह होता है पर्वत ऊंचे नीचे होते है और चोटियां होती है किन्तु पठार समतल होते है—एक तरह के मैदान ही जो ऊँपर होते हैं। मैदानों तथा पठारो में अन्तर करते समय आस-पास की भू

उनका सम्बन्ध महत्वपूर्ण है। यदि अचानक भूमि ऊँची होगई हो और इस प्रकार एक समतल धरातल बन गया हो तो यह पठार कहलाएगा, किन्तु यदि धरातल क्रमशः ऊँचा होता गया हो तो अधिक ऊँचाई होने पर भी मैदान ही रहेगा। यही कारण

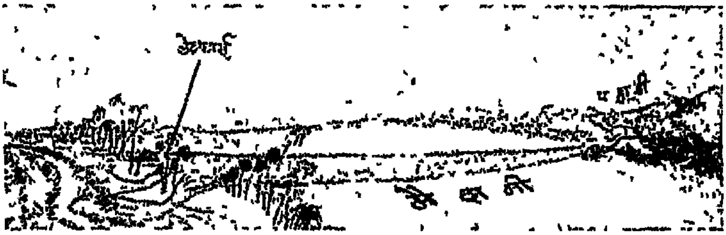

है कि उत्तरी अमेरिका मे ५००० फुट तक ऊँचाई पर मैदान ही पाए जाते हैं जबकि भारत मे दक्षिण का पठार लगभग ३००० फूट ऊँचा ही है।

नीचे की आकृति पर्वत, पठार तथा मैदानों को स्पष्ट करती है। ढाल के अनुसार समान ऊँचाई तक मैदान तथा पठार या पर्वत तीनो ही पाए जा सकते है।

पठार मैदानो से अपेक्षाकृत पुराने होते है और इनका निर्माण उन्ही शक्तियों के कारण होता है जिनसे पर्वत बनते है। ज्वालामुखी से निकला हुआ लावा जब जमता है और इस प्रकार लम्बे चौड़े भाग पर छा कर उसे काफी ऊंचा बना देता है। कभी कभी पृथ्वी की आन्तरिक शक्तिया भी धरातल को ऊंचा उठा देती है और पठार बन जाता है। ससार के अधिकतर पठार जैसे दक्षिणी भारत, अरब तथा साइबेरिया का पठार इसी प्रकार बने है। इन्हे महाद्वीप पठार कहते है।

दूसरे पठार वे हैं जो पहाड़ों की जड (Foot) में पाए जाते हैं। इनका निर्माण समीपवर्ती पर्वतो की निर्माणकारी शक्तियों के कारण ही होता है जिससे वे ऊपर उठ जाते हैं। इस प्रकार का पेटेगोनिया का पठार है। इन्हें पिडमाण्ड पठार कहते हैं।

नदियां

पानी का स्वाभाविक गुण है कि वह अपना धरातल ढूंढता है अर्थात् वह ऊँचाई से नीचाई की ओर बहता है। वास्तव मे यह होता है पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण।

पृथ्वी की उत्पत्ति के पश्चात् ज्यो ही प्रथम वर्षा हुई नदियो की उत्पत्ति होगई। ऊंचे भाग से नदिया बहकर नीचे गड्ढो मे एकत्रित होती रही। वर्षा के जल से इस प्रकार पूरित गड्ढे कालान्तर मे सागर कहलाए। आज भी यही क्रम चालू है।

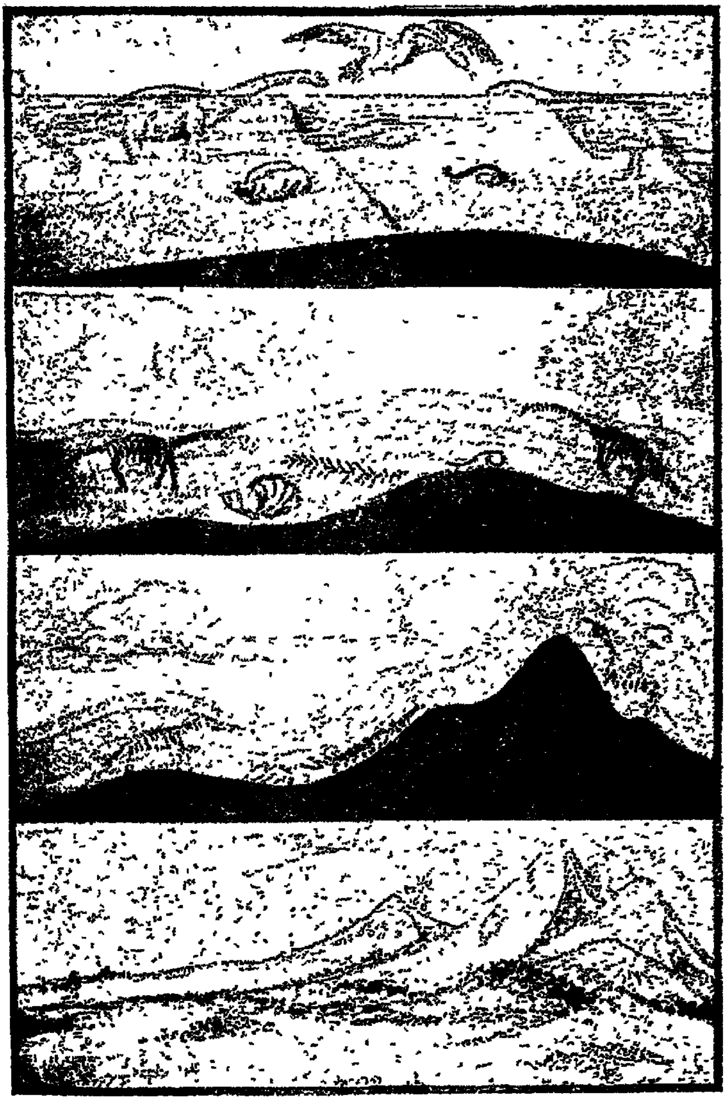

ऊपर चित्र मे वह समुद्री जीव दिखाए हैं जिन्होने मरने के पश्चात् अपने अस्थिपंजर तत्कालीन समुद्र के पेदे की मिट्टी में छोड़ दिया। यह पदार्थ पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों द्वारा धीरे-धीरे ऊपर उठा (२–३) और जीवों के अस्थिपंजर जीवाश्मों के रूप में वही दबे रहे। धीरे-धीरे जब पूरा पदार्थ पर्वतों के रूप में परिवर्तित हो गया तो जीवाश्म इस पर्वत की चट्टानों मे दबे रह गए।

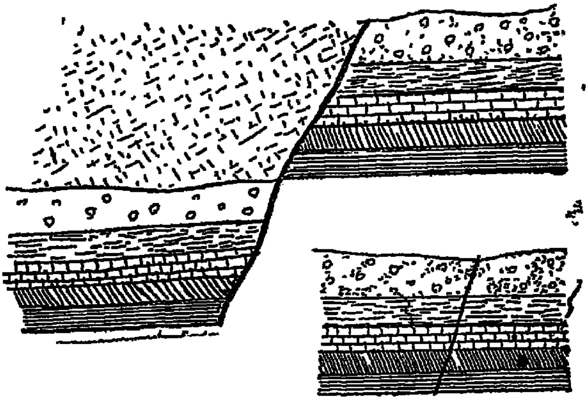

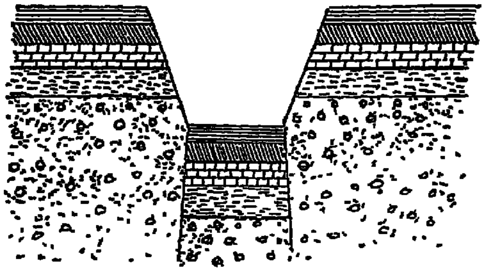

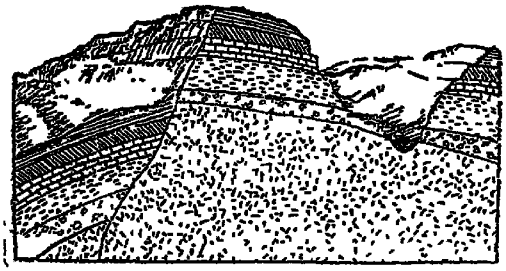

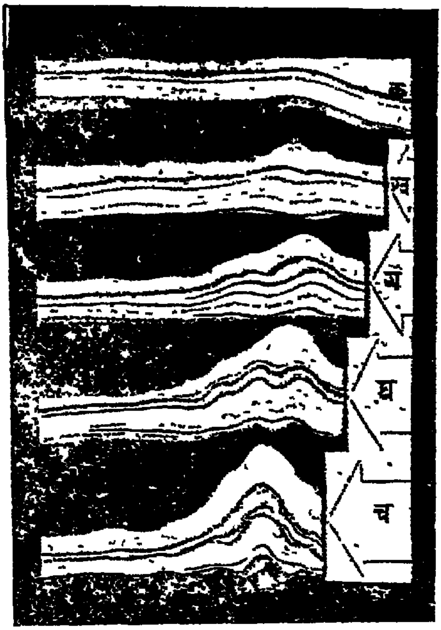

(१) क भाग में समुद्र के पेंदे मे एकत्रित पदार्थ दिखाया गया है जो धीरे धीरे (क–ख–ग–घ) पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियो के कारण दबाव पड़ने पर ऊपर उठता गया और अन्त मे (च) पर्वत बन गया ।

(२) प्रारम्भ मे एक समय ऐसा था जब पृथ्वी की ऊपरी सतह ठण्डी हुई और नीचे का भाग गर्म था । जब नीचे का भाग ठण्डा हुआ तो सिकुड़ने लगा और ऊपर सतह मुड़ गई । प्रथम बार पर्वत उसी प्रकार बने थे ।

पर्वत से निकलने के पश्चात् नदी जब बहती हुई उस ऊँचाई तक आ जाती है जिस ऊँचाई पर उसे सागर मे गिरना है, तो इस ऊँचाई को 'आधार की सतह' (Base level) कहते हैं। जब तक कोई नदी अपने आधार-सतह तक नहीं पहुंचती है, तब तक वह तलेटी को खूब काटती है। आधार सतह तक पहुंचने के पश्चात् वह तलेटी को काटना बन्द कर देती है और उसकी चाल धीमी पड़ जाती है।

नदी की तीन अवस्थाएँ होती है और इसके कार्य भी तीन ही प्रकार के होते हैं। नदी की पहली अवस्था पर्वतीय है और उस समय नदी का एक ही कार्य प्रमुख रहता है, तोड़ना फोड़ना। पर्वतीय अवस्था में नदी की चाल बड़ी तेज रहती है इसलिए बड़ी-बड़ी चट्टानों को यह तोड़ कर बहा ले आती है।

नदी की दूसरी अवस्था मैदानी हैं। यह भाग बहुत ही महत्वपूर्ण है। मैदानों में आकर नदी की चाल धीमी पड़ जाती है। अपने साथ बहा कर लाए हुए पदार्थों को वह अपने किनारो पर जमा करती है और इस प्रकार अपनी तलैटी को विस्तृत करती है। संसार के बड़े बड़े मैदान इसी प्रकार नदियों की ले आई हुई मिट्टी से निर्मित हैं। इस भाग मे नदी दो प्रकार के काम करती है:—(१) साथ ले आए पदार्थ को जमा करना और (२) आगे के लिए और पदार्थ काट कर तथा बहा कर ले जाना, किन्तु पहले कार्य की प्रमुखता रहती है। नदी के इसी भाग मे अन्य नदियां उससे आकर मिलती है (सहायक नदिया) और ये सभी मिलकर अपने मैदान को विस्तृत करती हैं।

डेल्टाई

तीसरी अवस्था डेल्टाई है। यहां आकर नदी की चाल धीमी पड़ जाती है और उसकी गति उतनी नही रहती कि साथ लाए पदार्थ को और आगे ले जा सके। फलस्वरूप नदी की धारा में ही वह पदार्थ जमा होने लगता है और बीच नदी में एक भूमि निकल आती है जिससे नदी दो धाराओं में बंट जाती है। इस क्रिया की अधिकता से नदी के जल में निकली भूमि बढती जाती है और नदी अनेक धाराओं में बंट जाती है। इस प्रकार की त्रिकोनी भूमि को डेल्टा कहते हैं।

पर सभी नदियां डेल्टा नहीं बनातीं। जो नदियाँ (१) छोटी होती हैं, (२) भूभँग घाटियों मे बहती है और (३) ऊँचाई से निकल कर शीघ्र ही समुद्र मे गिर जाती है तथा (४) सहायक नदियाँ होती है, वे डेल्टा नहीं बनाती।

नदियां (सहायक नदियों को छोड़कर) जो डेल्टा नही बनाती, वे एस्चुअरी (Estuary) बनाती है। एस्चुअरी नदियों के चौड़े मुंह को कहते हे। भारत मे गंगा, कावेरी इत्यादि डेल्टा बनाती है, किन्तु नर्मदा एस्चुअरी बनाती है।

मैदान

समतल भूमि जिसकी ऊँचाई साधारणतया १०००–१५०० फुट होती है, मैदान कहलाते है। मैदान तीन प्रकार से बनते हैं:

(१) नदियों द्वारा ले आई हुई मिट्टी से जिसका वर्णन नदियों के साथ किया जा चुका है। उन्हे नदियो के मैदान, तथा रचनात्मक मैदान (depsoitial plants) कहते है। कभी कभी झीलों के सूख जाने के उपरान्त भी मैदान बन जाते हैं। इन्हे भी रचनात्मक मैदान ही कहते हैं।

(२) ऊँचे पर्वत या पठारी भाग नग्नीकरण के कार्यकर्ताओं द्वारा जब काट-पीट कर लगभग समतल किये जाते हैं तो इन्हे पेनीप्लेन (peni plain) या क्षरीय मैदान कहते हैं।

(३) तटीय मैदान इन दोनो से भिन्न होते हैं। समुद्रों के किनारे पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियो के कारण जलीय भूमि पानी की सतह से ऊपर उठ आती है और इस प्रकार एक पतली किन्तु लम्बी समतल भूमि निकल आती है, इन्हे तटीय मैदान कहते है।

सारांश

पर्वत चार प्रकार के होते है। (१) ज्वालामुखी पर्वत, (२) मोड़दार पर्वत, (३) ब्लाक पर्वत और (४) अवशिष्ट पर्वत। ज्वालामुखी पर्वत ज्वालामुखी द्वारा निकले पदार्थ के ठोस होने के कारण बने हैं। मोड़दार पर्वत इस पदार्थ से बने है जो चट्टानो से टूट फूट कर समुद्रों मे एक तह के पश्चात् दूसरी तह के रूप मे एकत्रित होते रहे और कालान्तर मे पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियो के कारण ऊपर उठ गए। भूपटल के किसी भाग के नीचे धँस जाने के कारण जो भाग ऊँचे रह गए वे ब्लाक पर्वत कहलाए और (४) किसी ऊँची भूमि के मुलायम पदार्थो के टूट जाने के कारण जो ऊंची भूमि रह गई वे अवशिष्ट पर्वत कहलाए।

नदियो की उत्पत्ति वर्षा के जल से हुई है। नदी की तीन अवस्थाएँ होती हैं। (१) पहाड़ी–जिसमे नदी की चाल बहुत तेज होती है और इसका मुख्य काम अपने किनारो तथा तलेटी को काटना है। (२) मैदानी–इस अवस्था मे नदी अपने साथ ले आए पदार्थ को अपने किनारो पर जमा करती है और मैदानो का विस्तार

करती है तथा उन्हें उपजाऊ बनाती है, (३) डेल्टाई–यहाँ नदी की धारा बहुत ही धीमी हो जाती है और इसमे इतनी शक्ति नहीं रहती कि वह अपने साथ ले आई हुई मिट्टी को बहा सके। फलतः यह मिट्टी नदी की धार मे ही एकत्रित होने लगती है और एक त्रिकोण निकल आता है। यही डेल्टा है। नदियो के चौड़े मुँह को एस्चुअरी कहते हैं।

१००० से १५०० फुट तक की समतल भूमि मैदान कहलाती है। मैदान तीन प्रकार से बनते हैं (१) नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से, (२) पठारी भागो के नग्नीकरण के कार्यकर्ताओं द्वारा काटने पीटने के कारण–पेनीप्लेन्स तथा (३) समुद्रों के किनारे भूमि पानी के ऊपर आ जाती है और एक पतली लम्बी पट्टी निकल आती है–उसे तटीय मैदान कहते हैं।

दसवाँ अध्याय

मिट्टी

लोहे का एक टुकड़ा यदि कुछ दिन बाहर पड़ा रहे तो उस पर मोच या जंग लग जाता है। इसे यदि बहुत दिनो तक हवा-पानी में यो ही छोड़ दिया जाय तो समूचा टुकड़ा इस प्रकार का हो जाता है कि उसे मसल कर 'चूरा' बनाया जा सकता है। निश्चित ही लोहे पर हवा तथा पानी की क्रियाओ का प्रभाव पड़ा और लोहा न रह कर 'मिट्टी' मे मिल गया।

यदि किसी पत्थर के टुकडे को हथौड़े से पीटा जाय। तो वह टूट जाता है। अधिक पीटने से उसके छोटे छोटे टुकडे हो जावेंगे और यदि इन्हे पीस दिया जाय तो बारीक रेत बन जायेगी। इस प्रकार पत्थर भी रेत के कणों में बदल गया।

भूपटल पर पाई जाने वाली सभी चट्टानें इसी प्रकार विघटित (De composed) होती रहती हैं। कुछ पर रासायनिक प्रभाव पडता है और कुछ पर यांत्रिक (Mechanical)। चट्टानो के इस प्रकार टूटने को ऋतु-क्रिया (Weathering) कहते हैं। ऋतु-क्रिया मे अनेक शक्तिया लगी है। इन शक्तियों को नग्नीकरण के कार्यकर्ता (Agents of denudation) कहते हैं। नग्नीकरण के कार्यकर्ताओं में निम्न लिखित प्रमुख है;—

सूर्य, हवन, नदी, पाला और सागर

सूर्य—सूर्य अपनी गर्मी से चट्टानो को गर्म कर देता है और रात को जब विकिरण आरम्भ होता है तो धरती की सारी गर्मी तेजी से निकल जाती है। उस समय गर्म चट्टाने उसी प्रकार टूट जाती हैं जैसे लालटेन की गर्म चिमनी पर जल डालने से चिमनी टूट जाती है। इस क्रिया की आवृत्ति से चट्टानें टूटती रहती हैं।

पवन—दो प्रकार से अपना प्रभाव दिखाती है–रासायनिक तथा यांत्रिक। चट्टानो के कतिपय खनिजो को यह घोल लेती हैं और अपने साथ लिए हुए नन्हे नन्हे टुकड़ो से चट्टानों पर आघात करती है। फिर चट्टानों के नन्हे नन्हे टुकड़ों को उड़ाकर यह उन चट्टानो को नग्नीकरण के अन्य कार्यकर्ताओं के कार्य को प्रोत्साहन देती है।

नदी—नदी के रूप मे वर्षा का जल चट्टानों मे से बहुत से अंशो को अपने मे घोल कर बहा ले जाता है और इस प्रकार चट्टाने टूटती है। नदियां पहाड़ी भागो

में बड़ी बड़ी चट्टानों तक को अपने पानी के वेग से बहा ले आती हैं। उन चट्टानों को ये अपने साथ बहाती रहती हैं और उन्हें घिस कर रेत तथा मिट्टी के कण तैयार करती हैं।

पाला—नग्नीकरण के अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा की हुई चट्टानों की दरारों में वर्षा का जल प्रवेश कर जाता है। सर्दी पाकर यह जल बर्फ के रूप में बदलता है। पानी बर्फ बनने पर फैलता है। फलस्वरूप वे दरारें चौड़ी होती जाती है और इसकी आवृत्ति से टूट जाती हैं।

सागर—समुद्री किनारों पर सागर अपनी लहरों द्वारा चट्टानों को तोड़ता फोड़ता रहता है।

नग्नीकरण के सभी कार्यकर्ता चट्टानों को तोड़ फोड़ कर उन्हें प्रतिक्षण नन्हें नन्हें कणों के रूप में लाने में व्यस्त हैं। चट्टानो के इस प्रकार टूटने से ही मिट्टी बनती है।

मिट्टी जिन चट्टानों से टूटकर बनती है, अपने में उन्हीं चट्टानों के गुण ग्रहण कर लेती है। इसलिए इसका रंग प्रारम्भ में उसीकी चट्टानों जैसा होता है। किन्तु बहते हुए जल तथा पवनों के कारण वह दूर भी ले जाई जाती है और ऐसे स्थानो पर जमा की जाती है जहां उस प्रकार की चट्टानें नही होती है।

चट्टानों के वर्णन में कहा गया है कि उनकी रासायनिक बनावट में आठ प्रमुख तत्वों तथा ५ प्रमुख खनिजों का हाथ है। फलस्वरूप मिट्टी की बनावट में भी उन्ही खनिजों की प्रमुखता है। इस प्रकार मिट्टी के इन प्रमुख खनिजों में नाइट्रोजन, गंधक, अमोनिया, लोहा, मैगनिशियम, फास्फोरस तथा सोडियम और कैलशियम भी पाये जाते है।

मिट्टियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं:—

(१) कार्बनिक (Organ'c) जिसमें पेड़-पौधों के सड़े गले अंश की अधिकता रहती है।

(२) कालकैरियस (Calcarius) जो चूने या खड़िया मिट्टी की प्रधानता लिए होती है, और

(३) अकार्बनिक (Inorganic or Mineral soils) जिसमें विभिन्न प्रकार के खनिजों की प्रधानता रहती है।

कार्बनिक मिट्टी—यह बड़ी उपजाऊ होती है। इसका रंग पेड़-पौधों के सड़े-गले अंशों (Humus) के कारण हल्के काले रंग का होता है। पीट भी इसी के अन्तर्गत आती है जो इतनी ह्यूमस प्रधान होतीहै कि ईन्धन की तरह जलाई जातीहैं।

मिट्टी की उपजाऊपने के लिए शक्ति के लिए ह्यूमस (Humus) की बड़ी आवश्यकता है। जिस मिट्टी मे इसकी अधिकता रहती है उसे मक (Muck) कहते है।

कालकेरियस मिट्टी—यह उपजाऊ नहीं होती। कंकरीली होती है। अधिकतर पहाड़ी भागो में और यत्र तत्र मैदानो में भी पाई जाती है।

अकार्बनिक मिट्टी—यह वह मिट्टी है जिसकी बनावट में ऊपर वर्णित विभिन्न प्रकार के खनिजो का प्राधान्य रहता है। इनमे फेल्सपार प्रधान है। अकार्बनिक मिट्टी के मुख्य तीन भेद है—

क—बलुई मिट्टी रेत मे मिट्टी के कण अधिक होते हैं और बड़े भी। इन कणो को जोड़ने के लिए कोई संयोजक (Cementing) पदार्थ इसमे नही होता।

ख—चिकनी मिट्टी (Clay)—इसमें कण बहुत ही छोटे होते है। यह भूरे काले रंग की होती है। यह पानी बहुत धीरे सोखती है। गीली होने पर चिपकती है और सूखी होने पर बड़ी कड़ी होती है। इस मिट्टी में चिकनाहट होती है और इसके कण जुड़े रहते है। इसीलिए यह पानी देर मे सोखती है किन्तु एक बार जल सोखने के पश्चात् नमी देर तक बनी रहती है। इसमें रेत के कण बहुत ही कम होते है।

ग—दोमट (Loam)—यह चिकनी मिट्टी और रेत के मध्य की मिट्टी है और खेती के दृष्टिकोण से बड़ी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमे लगभग सभी फसलें उगाई जा सकती है। इसके कण चिकनी मिट्टी के कणो से कुछ बड़े और रेत से छोटे होते है। इस मिट्टी मे जल तथा पवन का प्रवेश आसानी से हो जाता है।

चिकनी मिट्टी तथा रेत के मिश्रण के अनुपात के आधार पर इसके अनेक भेद हो सकते हैं।

लोएस—बड़ी उपजाऊ मिट्टी है जो पवनों द्वारा उड़ाकर अपने उत्पत्ति स्थान से सैकड़ों मील दूर एकत्रित की हुई है। इसके भी कण बहुत छोटे होते हैं। चीन में यह मिट्टी एक विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है।

भूपटली चट्टानों पर मिट्टी की तह की गहराई कही कहीं तो कुछ ही फुट है किन्तु कही कही यह गहराई ५००—६०० फुट तक है।

निर्माण विधि के आधार मिट्टियों को निम्न लिखित दो भागों में बांटा गया है:—

[१] प्रौढ़ मिट्टी (Mature soil)—ये वे मिट्टियां हैं जिनके निर्माण की प्रक्रिया ने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है और अब इस मिट्टी पर इनकी चट्टान से कोई प्रभाव नही पड़ता है।

[२] अप्रौढ़ मिट्टियां—(Im mature soil) वे मिट्टियां हैं जो अपनी मूल चट्टान से भी बन ही रही हैं। इस प्रकार उस चट्टान का प्रभाव अभी इन पर है।

विभिन्न देशों में मिट्टियों का वर्गीकरण सम्बन्धित देश की जलवायु तथा प्राकृतिक बनावट के अनुसार थोड़े-से-हेर-फेर के साथ किया जाता है, किन्तु मूलतः विभाग यही रहते हैं।

सारांश

धरातल हर चट्टानों के विघटन से मिट्टी बनती है। चट्टानें रासायनिक तथा यांत्रिक रूप में विघटित होती हैं। इस विघटन का नाम ऋतु–क्रिया है जो मुख्यतया सूर्य, पवन, नदी, पीला तथा सागर के द्वारा होती है। मिट्टी में मुख्यतया नाइट्रोजन, गंधक, कैल्शियम, अमोनिया, लोहा, मैगनेशियम, फासफोरस तथा सोडियम पाये जाते हैं। मिट्टियां तीन प्रकार की होती है [१] कार्बनिक, जिसमें पेड़ पौधों के सड़े गले अंश की अधिकता रहती है; [२] कालकैरियस, जिसमें चूने या खड़िया मिट्टी की अधिकता रहती है और [३] अकार्बनिक, जिसमें विभिन्न प्रकार के खनिजों की अधिकता रहती हैं। अकार्बनिक मिट्टी के तीन भेद होते है [१] बलुई मिट्टी जिसमें कण बड़े होते है और संयोजक पदार्थों का अभाव होता हैं, [२] चिकनी मिट्टी, इसके कण बहुत ही छोटे होते हैं, इसमें चिकनाहट होती है और नमी देर तक बनी रहती है। [३] दोमट मिट्टी; यह बलुई और चिकनी मिट्टी के मध्य की मिट्टी है, यह खेती के बहुत उपयोगी है। लोएस भी बड़ी उपजाऊ मिट्टी है। यह पवनो द्वारा उड़ाकर अपनी उत्पत्तिस्थान से दूर जमा की हुई है। चीन में यह मिट्टी विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है। निर्माण विधि के आधार पर मिट्टीयों को दो वर्गों में बांटा गया है; [१] प्रौढ़ मिट्टी जिसमें मिट्टी बनने की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है, [२] अप्रौढ़ मिट्टी, जो अपनी मूल चट्टान से अभी बन ही रही है।

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋतु परिवर्तन

किसी स्थान पर भी वर्ष भर एक सी सर्दी-गर्मी नहीं पड़ती। जिस स्थान पर सूखा अधिक पड़ता है वहां भी 'साधारणतया' वर्षा हो ही जाती है। गर्मी-सर्दी और वर्षा की प्रमुखता के अनुसार वर्ष के विभागों को ऋतु कहते है।

ऋतुएँ बदलती रहती है और उनका यह क्रम चलता रहता है। पृथ्वी पर सूर्य के धरातल से जो गर्मी मिलती है वह सदा लगभग एक सी ही रहती है। फिर भी गर्मी सर्दी की ऋतुएँ आती ही है—जब हमारे यहां सर्दी पड़ती है तब सूर्य मई जून की अपेक्षा १५००००० मील समीप होता है और पृथ्वी पर लगभग ७.२ फॉरेन हाईट गर्मी अधिक मिलती है-पर होता है इसके विपरीत। इन तथ्यों का अर्थ यह है कि ऋतु परिवर्तन के कारण पृथ्वी में ही निहित हैं।

ऋतु परिवर्तन के कारणों की व्याख्या करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि—

[१] सूर्य कीतिरछी किरणे सीधी किरणों की अपेक्षा कम गर्मी देती है, इसलिए जब किरणें तिरछी पडती हैं तो गर्मी कम मिलती है और जब किरणे सीधी पड़ती हैं तो अधिक,

[२] गर्मी प्राप्त करने का साधन सूर्य है, इसलिए यह जितनी ही अधिक देर चमकेगा, गर्मी उतनी ही अधिक मिलेगी, जितनी कम देर चमकेगा गर्मी उतनी ही कम। दूसरे यदि दिन बड़े होगे तो गर्मी अधिक मिलेगी और छोटे होगे तो अपेक्षाकृत कम।

ऋतु परिवर्तन के कारण :—ये कारण तीन हैं : [१] पृथ्वी की दैनिक गति [२] पृथ्वी की वार्षिक गति और [३] पृथ्वी की कीली का सदा एक ही* ओर (ध्रुव तारे की ओर) झुका रहना।

दिये गये चित्र को देखने से स्पष्ट है कि जब पृथ्वी क स्थान पर है जो इसका उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुका हुआ है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्तरी

* इन दिनों पृथ्वी की कीली ध्रुवतारे की ओर ही झुकी है। किन्तु आज से १२-१५ हजारों वर्षों पश्चात् उधर झुकी नही रहेगी क्योंकि यह कीली शून्य मे लगभग २६००० वर्षों में एक काल्पनिक वृत बनाती है जिसकी परिधि ध्रुवतारे से काफी दूर तक जाती है।

गोलार्द्ध में दिन बड़े होते हैं और सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। ऊपर बतलाया गया है कि इन दोनों परिस्थितियो में गर्मी की मात्रा बढ़ जाती है। यही कारण है कि इन दिनों उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी की ऋतु होती है। इन दिनों यहां रातें छोटी होती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में इन दिनों रातें बड़ी, दिन छोटे तथा सर्दी की ऋतु होती है। अध्ययनार्थ चित्र देखकर ज्ञात करें यह स्थिति कब होती है।

पृथ्वी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हुए जब ग स्थान पर आती है तो सम्पूर्ण बातें क के विपरीत होती है। दक्षिणी ध्रुव सूर्य की ओर झुक जाता है, दक्षिण गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें सीधी पड़ने लगती है और दिन बड़े होने लगते हैं। फल यह होता है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन बड़े, गर्मी की ऋतु और रातें छोटी होने लगती हैं। यह अवस्था दिसम्बर व जनवरी में होती है।

जब पृथ्वी ख और घ स्थितियों में रहती है तो सूर्य की किरणें भू-मध्य रेखा पर लम्बवत् पड़ती हैं। परिणाम यह होता है कि संसार में सर्वत्र दिन--रात बराबर होते हैं। पृथ्वी घ स्थान पर जब आती है तो मार्च का महीना रहता है। इसे वसन्त सम्पात कहते है। हमारे गोलार्द्ध में जाड़े का अन्त तथा गर्मी का आरम्भ रहता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में अब जाड़ा आरम्भ होता है।

पृथ्वी ख स्थान पर २३ सितम्बर को आती है। इस समय भी सँसार में सब जगह दिन-रात बराबर होते हैं। यह अवस्था शिशिर सम्पात की कहलाती है। यह वह समय होता है जब हमारे यहां गर्मी का अन्त हो रहा होता है और सर्दी का आरम्भ होने वाला होता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में उन दिनों सर्दी का अन्त तथा गर्मी का आरम्भ होता है।

इसी प्रकार पृथ्वी अपनी कक्षा पर घूमती रहती है और ऋतुओं का क्रम चलता रहता है।

सारांश

साल में सदा सर्दी--गर्मी और वर्षा एक सी नहीं रहती। इनकी प्रधानता के आधार पर वर्ष के कतिपय भाग कर दिए गए है—इन्हे ही ऋतु कहते हैं। सूर्य की सीधी किरणे अधिक गर्म होती है, तिरछी कम; इसी प्रकार दिन बड़े होने पर गर्मी अधिक मिलती है। अतः जहां दिन बड़े और किरणें सीधी होती हैं वहां गर्मी की ऋतु होती हैं। ऋतु परिवर्तन के कारण तीन है: (१) पृथ्वी की दैनिक गति, (२) पृथ्वी की वार्षिक गति और (३) पृथ्वी की कीली का सदा ध्रुवतारे की ओर झुका रहना। दैनिक गति से प्रत्येक स्थान पर दिन रात होते रहते है जो प्रत्येक स्थान पर सर्दी गर्मी की कमी-बेसी के लिए आवश्यक है कि पृथ्वी की वार्षिक गति तथा

उसकी कीली के झुके रहने के कारण दिन रात बड़े छोटे होते हैं तथा सूर्य-किरणें कहीं तिरछी और कहीं सीधी पड़ती रहती हैं जिससे वर्ष के विभिन्न भागों में प्रत्येक स्थान पर सर्दी-गर्मी की मात्रा न्यूनाधिक होती रहती है और ऋतुओं का क्रम चलता रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. भू-पटल से क्या समझते हैं? इसके निर्माण में किन २ खनिजों का हाथ है?

२. 'चट्टान' से क्या समझते हैं? चट्टानें कितने प्रकार की होती हैं? प्रत्येक को समझा कर लिखें।

३. भू-पटल की रचना में चट्टानों का अनुपात क्या है?

४. जीवाश्म क्या हैं? ये कितने प्रकार के होते हैं? इनकी उपयोगिता का वर्णन करें।

५. ब्राण्टो-सारस तथा डायनो-सारस का वर्णन करें।

६. पर्वत कितने प्रकार के होते हैं? तट परिवर्तनों की रचना का वर्णन करें।

७. भू-भंग घाटी किसे कहते हैं?

८. नदी की कितनी अवस्थाएं हैं? प्रत्येक अवस्था में नदी के कार्यों का वर्णन करें।

९. डेल्टा तथा एक्चुअरी का नया चित्र खींचकर समझावें।

१०. मैदान कैसे बनते हैं और कितने प्रकार के होते हैं?

११. मिट्टी कैसे बनती है? उसके मिश्रण क्या क्या हैं? मिट्टियां कितने प्रकार की होती है। समझाकर लिखें।

१२. नग्नीकरण के कार्यकर्त्ता कौन कौन से है तथा उनके क्या कार्य हैं?

१३. ऋतु परिवर्तन कैसे होता है? चित्र खीचकर समझावें।

१४. शिशिर सम्पात तथा वसन्त सम्पात से क्या समझते हैं?

बारहवाँ अध्याय

वायुमण्डल

हमारी गोलाकार पृथ्वी के चारों ओर विभिन्न प्रकार के गैसों का एक आवरण छाया हुआ है। ये गैसें रंगहीन, स्वादहीन तथा गन्धहीन हैं। इसी आवरण को वायुमण्डल कहते है। जब वायु शान्त रहती है तो इसके अस्तित्व का मान तक नहीं होता किन्तु जब इसमें गति पैदा होती है तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि हमारे चारों ओर किसी वस्तु का अस्तित्व है जो हमें दृष्टिगोचर नहीं होती।

भौतिक गुण—यद्यपि वायु दृष्टिगोचर नही होती किन्तु यह एक पदार्थ है और अन्य अनेक पदार्थों की तरह ही इसका भी भार है। सर्वप्रथम टोरिसेली नामक वैज्ञानिक (Torricelli) ने सन् १६४३ ई० यह दिखा दिया था कि वायु ३०" पारे के स्तम्भ को संभाल सकती है। इसके पश्चात् अनेक प्रयोग किए गए और विभिन्न फल भी प्राप्त हुए। उन प्रयोगों के आधार पर वायुमण्डल के निम्नलिखित भौतिक गुण निर्धारित किए गए हैं:—

[१] यदि वायु को किसी शून्य स्थान में छोड़ा जाय तो यह सम्पूर्ण स्थान घेर लेती है और प्रत्येक दिशा में समान दवाव डालती है।

[२] यदि तापक्रम स्थायी रहे तो वायु का आयतन दवाव के अनुसार ही घटता बढ़ता है—दबाव डालने से आयतन कम और दबाव हटाने से अधिक हो जाता है

[३] यदि वायु किसी प्रकार की गर्मी पाए बिना फैले तो ठण्डी होती है और इसके विपरीत यदि अधिक वायु को कम स्थान में दबाया जाय तो तापक्रम अधिक हो जाता है।

वायुमण्डल मिश्रण—वायुमण्डल अनेक गैसों से मिलकर बना है। इनमें से दो प्रमुख हैं:—आक्सीजन, तथा नाइट्रोजन। इनका प्रतिशत क्रमशः २०.९९ तथा ७८.०३ है। कम होते हुए भी आक्सीजन का नाम पहले इसलिए लिया गया है कि जीवन के लिए यह गैस अत्यावश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य गैसें आर्गन (Argon), कार्बन डाई-आक्साइड (Carbon Di-oxide), नियोन (Neon), हीलियम (Helium), हाइड्रोजन (Hydrozen), जेनोन (Zenon) तथा ओजोन (Ozone) इत्यादि है। इनमें से आर्गन तथा कार्बन-डाईआक्साइड का प्रतिशत क्रमशः ·९३ और ·०३ है। अन्य गैसे नही के बराबर है किन्तु ऊँचाई पर कतिपय गैसों का प्राधान्य हो जाता है और वहाँ वे ही

पाई जाती हैं। ऊँचाई के अनुसार गैसों का अनुपात भी कम-बेशी होता रहता है। लगभग १२ मील की ऊँचाई पर कारबन-डाइ-आक्साइड समाप्त हो जाता है। ६८ मील तक आक्सीजन बनाई जाती है और ८० मील तक नाइट्रोजन। ८० से अधिक ऊँचाई पर केवल हाइड्रोजन रह जाती है।

इन गैसों के अतिरिक्त वायुमण्डल में धूलिकण तथा वाष्प और मिले रहते हैं। इस प्रकार मोटे रूप में वायुमण्डल के मिश्रणों मे निम्नलिखित पांच हुए—

नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, धूलिकण तथा वाष्प।

वायुमण्डल की ऊँचाई—वायुयानों, तरह तरह के गुब्बारो तथा गोधूलि के प्रकाश तथा उत्तरी प्रकाश के आधार पर वायुमण्डल की ऊँचाई नापने के जो प्रयत्न किये गए उनसे विदित होता है कि इसकी ऊँचाई कम से कम ६०० मील तक है। वायु एक पदार्थ (Matter) है और यह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में है। चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण के कमी के कारण ही कोई वायु नही है। इस प्रकार पृथ्वी का वायुमण्डल उस ऊँचाई तक होगा जहाँ तक पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव मे विभिन्न अणु रह सकें। आधुनिक राकेट परीक्षणों के आधार पर यह ऊँचाई लगभग १००० मील तक मानी जाने लगी है। इसीलिए ऐसा अनुमान है कि कम से कम एक हजार मील की ऊँचाई तक तो वायुमण्डल है ही। यह निश्चित है कि इस ऊँचाई पर वायुमण्डल का घनत्व इतना कम होगा कि व्यवहारतः शून्य भी मानलें तो कोई हर्ज नहीं!

तापक्रम

तापक्रम का साधन—अन्य पदार्थों की तरह वायुमण्डल भी ताप ग्रहण करता है। वायुमण्डल के लिए ताप का उल्लेखनीय साधन सूर्य ही है। जिस सूर्य ने धरती को जन्म दिया वही सूर्य धरती को इसके जीवों और वनस्पतियो को ताप देकर जीवित रखता है, अन्न और फल-फूल उपजाता है। सूर्य स्वयं बहुत गर्म है। इसके धरातल का तापक्रम १००००० फारेनहाइट है। इसका विस्तार भी बहुत है। धरती से यह १३ लाख गुना बड़ा है और इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना बड़ा। इस प्रकार सूर्य से प्रतिक्षण अत्यधिक ऊष्मा निकलती रहती है। बहुत दूर होने के कारण सूर्य की यह गर्मी शून्य में इधर उधर बिखर जाती है और धरती को सूर्य की सम्पूर्ण गर्मी का दो अरबवाँ (२००० ००० ०००) भाग ही मिल पाता है। फिर भी पृथ्वी को सूर्य से प्रति मिनिट इतनी गर्मी मिलती है कि यदि अश्व-शक्ति में परिवर्तित करें तो वह इतनी होगी जितनी कि सम्पूर्ण मानव जाति द्वारा एक वर्ष मे खर्च की जाती है। यदि सूर्य की इस गर्मी को शक्ति मे परिवर्तित कर के काम लिया जाय तो संसार के सारे क्रिया-कलापो के लिए अपार शक्ति मिल जाय।

सूर्य की यह थोड़ी सी गर्मी भी पूर्णतया धरती तक नही पहुंचने पाती। इसका ४२% भाग परावर्तित हो जाता है; १५% वायुमण्डल के विभिन्न गैसों तथा वाष्प व धूलिकणों द्वारा सोख लिया जाता है।

सूर्य के धरातल से आने वाली इस गर्मी को सूर्योष्मा (Insolation) कहते है। यह लगभग सदैव समान रहती है।

पृथ्वी पर सूर्योष्मा के न्यूनाधिक होने के कारण:—यह हमारा अनुभव है कि हमें गर्मी सदा एकसी नही मिलती। पृथ्वी के धरातल पर सूर्योष्मा की घटा–बढ़ी के दो कारण प्रमुख है:—

(१) सूर्य किरणो का सीधा या तिरछा होना, और

(२) दिन का बड़ा या छोटा होना।

सीधी किरणे अधिक गर्मी देती है जबकि तिरछी किरणें कम। इसी प्रकार जब लम्बे दिन होते है तो गर्मी अधिक मिलती है और जब दिन छोटे होते है तो कम।

इन दो प्रमुख कारणो के अतिरिक्त तीसरा कारण सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी का घटना बढना है। जब पृथ्वी सूर्य के समीप (जाड़ों में रहती है तो लगभग ७·२ फारेनहाइट तापक्रम अधिक होना चाहिए। पर यह हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है कि सूर्य से ताप अधिक आने के बावजूद भी मौसम सर्दी का होता है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य की किरणों के तिरछे या सीधे होने का प्रभाव दूरी की कमी-बेशी से कही महत्व-पूर्ण है।

धरातल पर स्थित स्थल तथा जल के भाग एक से गर्म नही होते। जल की विशिष्ट ऊष्मा (Specific heat) मिट्टी से अधिक है। इसलिए जल देर से गर्म होता है तथा देर में ठण्ढा होता है। दूसरी बात यह है कि जल एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रवाहित होता रहता है इसलिए इसकी गर्मी के स्थानान्तरित होते रहने से जल का तापक्रम अधिक नहीं होने पाता। फिर (३) जल का धरातल मिट्टी की अपेक्षा सूर्य किरणों को कहीं अधिक परावर्तित कर देता है। इसलिए भी वह स्थल के समान शीघ्र गर्म नही होता। जल में सूर्य की किरणे दूर तक पहुँचती है इसलिए भी जल राशि अपेक्षाकृत कम गर्म होती है। इधर स्थल पर पड़ने वाली गर्मी का वितरण स्थल के अचल होने तथा सूर्य किरणों का स्थल में कम दूर तक जाने के कारण भूमिभाग शीघ्र ही अधिक गर्म हो उठते है।

वायुमण्डल का गर्म होना—यद्यपि वायुमण्डल धरती और सूर्य के रास्ते मे पड़ता है और इस प्रकार सूर्य की किरणे पहले वायुमण्डल को स्पर्श करती हैं किन्तु यह सूर्य किरणो से गर्म नही होता। कुछ गर्मी (१५%) धूलिकण तथा वाष्प अवश्य

ग्रहण कर लेते है किन्तु शेष वायुमण्डल धरती के सम्पर्क में आने के कारण ही गर्म होता है। इसे बड़ी आसानी से इस बात से समझा जाता है कि जाड़े के दिनो मे जब सूर्योदय के पश्चात् धूप निकलती है तो पहले धरती गर्म होती है और वायु ठण्डी ही रहती है। इसीलिए लोग धूप मे बैठते हैं। यदि पहले ही वायुगर्म हो जाती तो धूप मे बैठने की आवश्यकता नही रहती।

इस प्रकार वायुमण्डल को गर्म करने का मुख्य साधन पृथ्वी ही है। चित्र से स्पष्ट है–इसमें बीच में आग जल रही है, दोनो ओर दो लड़के बैठे हैं, पास वाले लड़के को गर्मी अधिक महसूस हो रही है, जबकि दूर वाला लड़का आराम से बैठा है। इसका अर्थ हुआ कि यदि ताप के साधन से दूर बैठ जायें तो गर्मी कम मिलेगी। इसमें हुआ क्या? एक गर्मी के साधन से दूर हट गया तो गर्मी कम हो गई। इसी प्रकार यदि एक लोहे की छड़ को एक सिरे पर गर्म करें तो वह किनारा तो बहुत गर्म होगा किन्तु इस सिरे से ज्यों ज्यों दूर इसे छुवेंगे, गर्मी कम मिलेगी। इसमें भी ताप के साधन (वह स्थल जहाँ से गर्मी चलती है) से दूर हटने पर गर्मी कम हो गई।

यह दशा वायुमण्डल मे भी पाई जाती है। धरती से ज्यो ज्यो दूर होते है अर्थात् ऊपर जाते है त्यो त्यो गर्मी कम मिलती है और तापक्रम कम होता है क्योकि वायुमण्डल को गर्म करने का साधन पृथ्वी है। ऊँचाई के पास वायुमण्डल की गर्मी के कम होने का एक कारण यह है धरातल के समीप वायुमण्डल मे धूलिकण और वाष्प की अधिकता रहती है। ये गर्मी को अपने मे सोखे रहते है और अपने इर्दगिर्द की वायु को गर्म रखते हैं। ऊँचाई के साथ ये कम होते जाते है। इसलिए भी ऊँचाई पर गर्मी कम हो जाती है।

ऊँचाई के अनुसार, इस प्रकार, तापक्रम प्रति १००० फीट पर ३·६ फारेनहाइट या लगभग ३०० फीट पर १० फारेनहाइट कम हो जाता है। किन्तु यह कमी सम्पूर्ण वायुमण्डल की ऊँचाई तक नही लागू होती। धरातल से ८–१० मील की ऊँचाई तक तापक्रम लगातार कम होता जाता है तत्पश्चात् स्थिर हो जाता है। तापक्रम के परिवर्तन इसी ८–१० मील की ऊँचाई के भीतर होते है। इस ऊँचाई तक के वायुमण्डल को विषम तापमण्डल (Troopsphere) कहते है। इसके पश्चात् सम तापमण्डल (Stratosphere) आरम्भ होता है। इसमे तापक्रम सदा एक सा रहता है--लगभग-७०° सेन्टीग्रेड। विषम तापमण्डल तथा सम तापमण्डल के मध्य के धरातल को ट्रोपोपाज (Tropopause) कहते हैं।

वायुमण्डलीय गर्मी की माप–ताप (गर्मी) और तापक्रम मे अन्तर होता है। यदि असमान चौड़े मुख वाली दो परख नलियो मे चार-चार इंच पानी भर दिया

जाय तो निश्चित रूप से दोनों में पानी की ऊँचाई एक ही होगी किन्तु दोनों में पानी की मात्रा मे अन्तर होगा। इसी प्रकार दो पदार्थों का तापक्रम एक होने पर उनमें ताप की मात्रा अधिक-कम हो सकती है। वास्तुतः ताप एक मात्रा है और तापक्रम उसकी एक माप। वायुमण्डल की गर्मी नापते समय उनमें निहित ताप की मात्रा को नहीं अपितु उस ताप की ऊँचाई-नीचाई नापते हैं।

तापक्रम तापमापी (Thermometer) से नापते है। यह तापमापी शीशे की ठोस छड़ी होती है जिसके भीतर एक पतली सूराख होती है। इसके एक छोर पर एक घुण्डी होती है जिसमें पारा या शराब भरी रहती है। दूसरा छोर बन्द रहता है। गर्मी पाकर नली का द्रव पदार्थ नली में ऊपर चढ़ता है। छड़ी पर पहले से ही नाप कर निशान लगे रहते है। जहां तक द्रव चढ़ता है उस अंक को पढ़ लेते है। यही उस पदार्थ का तापक्रम होता है।

तापमापी मुख्यतया दो प्रकार के होते है। (१) सेन्टीग्रेड और (२) फारेनहाईट। सेन्टीग्रेड तापमापी का विभाजन ० से १०० तक होता है। इसके अनुसार वह तापक्रम जिस पर बर्फ बनती या पिघलती है 0° माना जाता है और खौलते हुए पानी का १००° अंश। बीच की दूरी १०० भागों मे विभक्त रहती है। फारेनहाइट के अनुसार हिमाक ३२° तथा पानी का क्वथनांक (जिस तापक्रम पर पानी खौलता है) २१२° मानते है। इस प्रकार सेन्टीग्रेड के १००° फारेनहाइट के १८०° के बराबर होते है। इन दोनों के तापक्रमों को परस्पर बदलने के लिए निम्नलिखित सूत्र स्मरण रखना चाहिए:—

$$\frac{\text{सेन्टीग्रेड}}{५} = \frac{\text{फारेनहाइट}-३२}{९}$$

दैनिक तापक्रम—ताप का मुख्य साधन सूर्य है। इसलिए जब सूर्य चमकता है तब तापक्रम अधिक रहता है, जब नहीं चमकता है तो कम। दिन में दो पहर के कुछ देर पश्चात् तापक्रम सबसे अधिक रहता है। सूर्योदय से कुछ पूर्व सबसे कम। दिन के तापक्रमों मे सबसे अधिक तापक्रम को अधिकतम और सबसे कम को न्यूनतम तापक्रम कहते है। अधिकतम तथा न्यूनतम तापक्रम इसी नाम के अधिकतम-न्यूनतम तापमापी से नापते हैं। अधिकतम तथा न्यूनतम तापक्रमों के अन्तर को तापान्तर (Range of temperature) कहते हैं।

तापक्रम साधारणतया धरती से ३-४ फुट ऊपर लेते है। तापक्रम लेते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि तापमापी पर सूर्य की किरणें न पड़ें। तापक्रम सदा छाया मे लेना चाहिए। तापमापी को दीवाल या किसी ऐसे पदार्थ के समीप

नही रखना चाहिए जिसकी गर्मी तापमापी को प्रभावित्त कर सके। इसके लिए स्टीपेन्सन-बक्स सबसे अच्छे रहते हैं।

दैनिक मध्यमान तापक्रम—यदि अधिकतम तथा न्यूनतम तापक्रमो को जोड़ कर उसका आधा कर दिया जाय तो दैनिक मध्यमान तापक्रम ९६° तथा न्यूनतम तापक्रम ६०° रहा हो तो वहां का उस दिन का दैनिक मध्यमान तापक्रम $\frac{९६+६०}{२}$ =७८° होगा। अधिक सही दैनिक मध्यमान तापक्रम निकालने के लिए दिन मे दो से अधिक बार बराबर अन्तर पर तापक्रम लेते हैं। फिर सबके योग उतने से ही भाग देते हैं जितनी बार तापक्रम लिया गया होता है।

ऊपर के उदाहरण मे तापान्तर (९६–६०) ३६° होगा। दैनिक तापान्तर २४ घण्टो के अधिकतम न्यूनतम तापक्रमों का अन्तर होता है।

मासिक मध्यमान तापक्रम—यदि नवम्बर की एक तारीख से ३० तारीख तक का दैनिक मध्यमान तापक्रम लेकर उसके योग में ३० (महीने के दिनों की संख्या) का भाग दे दिया जाय तो मासिक मध्यमान तापक्रम निकल आता है। इस प्रकार मध्यमान तापक्रम= $\frac{\text{महीने के प्रत्येक दिनका म० तापक्रम}}{\text{महीने के दिनो की सख्या}}$ पर किसी स्थान का यदि एक वर्ष नवम्बर के महीने का मासिक मध्यमान तापक्रम ५०° आ गया तो इसका अर्थ यह नही कि प्रत्येक वर्ष नवम्बर का तापक्रम यही रहेगा। जिस प्रकार दैनिक तापक्रम बदलते हैं उसी प्रकार मासिक मध्यमान भी बदलते रहते है। कई वर्षों के एक ही महीने के मासिक मध्यमानो का औसत निकाला जाता है (इसे औसत मासिक मध्यमान तापक्रम कहते है। जैसे यदि किसी स्थान का दिसम्बर का मासिक मध्यमान निम्न प्रकार से रहा हो:–

सन्	
1940	78°
1941	74°
1942	75°
1943	80°
1944	76°
1945	74°
1946	76°
1747	79°
	612

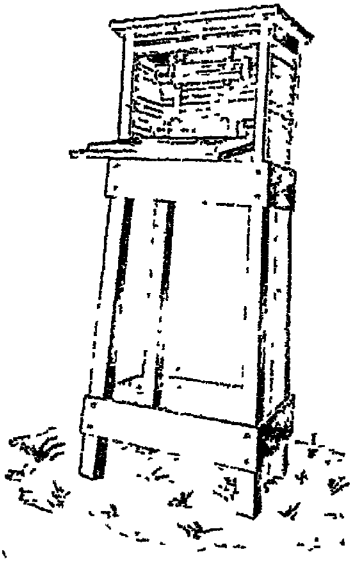

स्टीवेन्सन बाक्स

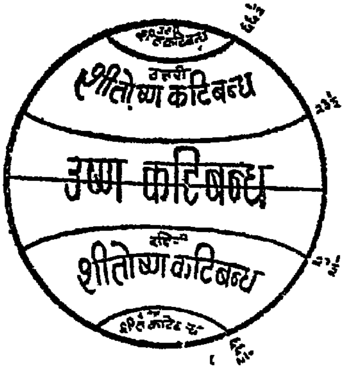

कटिबन्ध

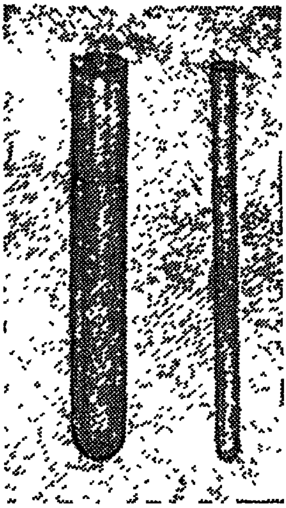

तो उस स्थान का दिसम्बर का औसत मासिक मध्यमान तापक्रम $\frac{७८+७४+७५+८०+७६+७४+७४+७६+७९}{८}$ या ७६·५° होगा।

औसत वार्षिक तापक्रम—वर्ष-भरके १२ महीनो के औसत मासिक मध्यमान तापक्रमों के जोड़ में यदि १२ का भाग दे तो औसत वार्षिक तापक्रम निकल आता है। यदि किसी स्थान के तापक्रम के आकड़े निम्नलिखित हो:—

जनवरी	५५°	फरवरी	६०°
मार्च	६८°	अप्रैल	६८°
मई	८०°	जून	९६°
जुलाई	९४°	अगस्त	९४°
सितम्बर	७६°	अक्टूबर	७०°
नवम्बर	६८°	दिसम्बर	६२°
		योग	९०८

तो उस स्थान का औसत वार्षिक तापक्रम $\frac{५५+६०+६८+७५+८०+९६\cdots\cdots}{१२}$ या ७५·६६° होगा।

औसत मासिक मध्यमान तापक्रम निकालने की तरह ही औसत वार्षिक तापक्रम का निश्चय भी लगभग १०-१५ वर्ष के आकड़ो के आधार पर किया जाताहै।

वार्षिक तापान्तर वर्ष के सबसे अधिक ठण्डे तथा सबसे गर्म महीनो के तापक्रमों का अन्तर होता है। ऊपर के उदाहरण में जून का तापक्रम सबसे अधिक (९६°) तथा जनवरी का सब से कम (५५°) है। इस स्थान का वार्षिक तापान्तर (९६–५५)=४१ होगा।

धरातल पर तापक्रम का वितरण (Horizontal distribution of temperature) सूर्य विषुवत रेखा के आसपास ही वर्ष भर रहता है और यहा किरणें भी सीधी पड़ती है। इसलिए विषुवत रेखा पर गर्मी साल भर अधिक पडती है और यहां का तापक्रम भी ऊंचा रहता है। ध्रुवो पर सूर्य की किरणे बहुत ही तिरछी पड़ती है इसलिए वहां तापक्रम कम रहता है क्योकि तिरछी किरणों को अपेक्षा अधिक भूमि गर्म करनी पड़ती है। और वायुमण्डल भी अधिक पार करना पड़ता है। इस प्रकार विपुवत रेखा से ध्रुवों की ओर जाते समय तापक्रम कम होता जाता है। इसे ही धरातलीय तापक्रम का वितरण कहते हे।

इस वितरण को सम ताप रेखाओ द्वारा दिखाया जाता है। समताप रेखाएँ वे रेखाएं हैं जो नक्शे मे उन स्थानों को मिलाती है जिनका तापक्रम समान होता है। समताप रेखा खीचते समय स्थानों को समुद्र के धरातल पर मान लिया जाता है, और वास्तविक तापक्रम से अधिक समताप रेखा खीची जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई स्थान ७२०० फुट ऊंचा हो और वहां जुलाई का औसत मासिक मध्यमान तापक्रम ४०° हो तो वहां से समताप रेखा खींचने के लिए मान लेना पड़ेगा कि वह

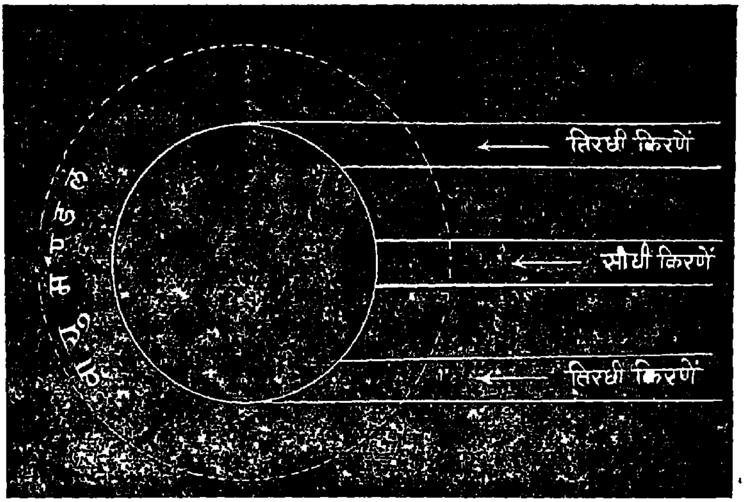

स्थान ऊँचाई पर स्थित न होकर समुद्र के धरातल पर है। इस प्रकार प्रति ३०० फुट की ऊचाई पर १° फारेनहाइट के अनुसार ७२०० फुट के लिए (७२००/३००) २४° फारेनहाइट और अधिक वास्तविक मे जोड़ना पड़ेगा। इस प्रकार वहां से ४०+२४ या ६४° की जुलाई समताप रेखा खीची जायेगी।

संसार के औसत वार्षिक समताप रेखाओ के मान चित्र की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(१) समताप रेखाएं पूर्व-पश्चिम को होती हैं,

(२) स्थल से समुद्र पर जाति हुई ये ध्रुवों की ओर मुड़ जाती हैं।

(३) समुद्र से स्थल पर जाति हुई ये विषुवत रेखा की ओर मुड़ जाती हैं।

(४) अधिकतम तापक्रम उष्णकटिबन्ध मे है और न्यूनतम ध्रुवो पर।

कटिबन्ध—तापक्रम के विचार से ग्लोब को मोटे रूप मे ५ भागो मे विभक्त कर दिया है। इन्हे कटिबन्ध कहते है।

(१) उष्ण कटिबन्ध—यह कर्क मकर रेखाओ के बीच स्थित है। यहाँ गर्मी बहुत पड़ती है।

(२-३) शितोष्ण कटिबन्ध—दोनों गोलार्द्धों मे २३½° से ६६½° तक विस्तृत है। यहां न तो अधिक गर्मी पड़ती है न अधिक सर्दी। आज ससार के अधिकतम उन्नत देश इन्ही भागों में स्थित है। ये दो हैं:—(१) उत्तरी शितोष्ण कटिबन्ध और (२) दक्षिणी शीतोष्ण कटिबन्ध।

(४-५) शीतकटिबन्ध—दोनों गोलार्द्धों में ६६½° से ध्रुव तक फैले हुए हैं। यहां भयकर शीत का प्रकोप वर्ष भर रहता है। ये भी दो है:—(१) उत्तरी शीत कटिबन्ध तथा (२) दक्षिणी शीतकटिबन्ध।

तापक्रम विपर्यय (Inversion of temperature)

साधारणतया ऊंचाई के साथ तापक्रम घटता जाता है; किन्तु कभी कभी ऐसा भी मिलता है कि नीचे तापक्रम बहुत कम हो जाता है और ऊपर अधिक रहता है। इस प्रकार की स्थिति को तापक्रम-विपर्यय कहते है।

इसके अनेक कारण है। (१) जाड़ों की तरह की बड़ी राते, इसका प्रभाव यह पड़ता है कि विकिरण (Radiation)* अधिक होता है और धरातल की गर्मी

---

*एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ तक गर्मी ३ प्रकार से जाती है:—विकिरण, संवाहन और संसर्ग। उदाहरण के लिए १० व्यक्तियो की एक कतार मान लें। पहले आदमी के पास एक आम है और इसे दसवें के पास भेजना है। इसे तीन तरह से भेज सकते हैं, (१) पहला आदमी अपनी जगह से सीधे आम को दसवे के पास फेंकदे। इस प्रकार बीच के माध्यमों की सहायता के बिना ही आम का फेंकना विकिरण है; (२) पहला आदमी आम को दूसरे को दे, दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को, इस प्रकार आम दसवें तक पहुँचे, इसे संसर्ग (Conduction) कहते है क्योकि इस प्रकार बीच के माध्यमों का आश्रय लेना पड़ता है (३) पहला आदमी स्वयं जाकर भी दसवें को आम दे आ सकता है, इसे संवाहन (Convection) कहते हैं।

वायुमण्डल में भी गर्मी इसी प्रकार पहुंचती है—जब विकिरण होता है तो धरती से तापक्रम निकल कर बीच में पड़ने वाली वायु-सतहों को बिना प्रभावित किए ऊपर चला जाता है। वायुमण्डल की अपेक्षा धरातल से विकिरण जल्दी होता है, इसलिए जब धरातल शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है, तब भी ऊपर का वायुमण्डल (समीप का ही) अपेक्षाकृत गर्म रहता है।

संसर्ग से वायु सबसे अधिक प्रभावित होती है। इसके द्वारा पृथ्वी अपने पास की वायु को गर्म करती है, वह वायु अपने पास की वायु को और इस प्रकार सम्पूर्ण वायुमण्डल गर्म होता है। इसीलिए पृथ्वी से दूर जाने पर तापक्रम कम मिलता है।

गर्म वायु जब स्वयं उठकर ऊपर चली जाती है तो इसे संवाहन कहते है।

निकल जाती है; (२) स्वच्छ आसमय ताकि विकिरण द्वारा निकली हुई गर्मी निर्बल गति से शून्य में चली जाय, (३) वायु मे नमी न हो, ताकि विकिरण से निकली गर्मी को वायु ग्रहण न कर सके, (४) पवन शान्त हो ताकि इधर उधर से गर्म वायु न आकर मिले, (७) धरातल हिममय हो तो बहुत ही अच्छा हो; क्योंकि इस प्रकार के धरातल से दिन में सूर्यांश्मा का परावर्तन अधिक होता है और कम गर्मी धरती ले पाती है।

ये सभी कारण इस तथ्य पर जोर दे रहे हैं कि प्रत्येक सम्भव उपाय से धरातल से गर्मी निकल जाय। इसीलिए कहा गया है कि ऊपर तापक्रम कम होता है, किन्तु जब ऊपर के कारणों द्वारा धरातल से विकिरण अधिक होता है तो धरातल पर तापक्रम बहुत ही कम हो जाता है और अपेक्षाकृत ऊपर तापक्रम अधिक रहता है। इस प्रकार तापक्रम विपर्यय उत्पन्न हो जाता है।

पर्वतीय प्रदेशो मे तापक्रम विपर्यय एक और ही प्रकार से होता है।

मैदान में धरातल पर व ऊँची पर्वतीय भूमि पर भी दिन में सूर्य की किरणों के पडने के कारण तापक्रम बराबर रहता है। अब मैदान मे ऊंचाई के साथ तापक्रम घटना आरम्भ होता है और ऊँचाई पर स्थिति यह होती है कि मैदान में तो तापक्रम कम है और उतनी ही ऊँचाई पर पर्वत पर अधिक है। रात को जब विकिरण आरम्भ होता है तब पर्वतीय भाग भी ठण्डा होने लगता है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि पर्वत की ढाल अपने सामने के स्थान से अधिक ठण्डी हो जाती है। एक ही ऊँचाई पर अधिक तापक्रम तथा कम तापक्रम वाली वायु के होने के कारण पर्वत की वायु भारी होने के कारण नीचे घाटी मे उतरती है और उसकी जगह सामने की गर्म वायु ले लेती है—इस प्रकार घाटी मे तो ठण्डी वायु एकत्रित हो जाती है और ऊपर अपेक्षाकृत गर्म।

सारांश

जिस धरती पर हम रहते है उसके चारो ओर लगभग १००० मील की ऊँचाई तक विभिन्न गैसो का एक आवरण है। इसे ही वायुमण्डल कहते हैं। वायु प्रत्येक दिशा मे समान दबाव डालती है, दबाव डालने से इसका आयतन कम तथा हटाने से अधिक होता है तथा फैलाने से ठण्डी तथा दबाव से गर्म होती है। वायुमण्डल मे अनेक गैसें है किन्तु आक्सीजन तथा नाइट्रोजन की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त कार्बन-डाइ-आक्साइड, आर्गन, नियोन, हीलियम, जेनोन, ओजोन इत्यादि और भी गैसें हैं। मोटे रूप मे वायुमण्डल के पांच मिश्रण माने जाते है। (१) नाइ-ट्रोजन (२) आक्सीजन, (३) कार्बन-डाइ-आक्साइड, (४) धूलिकण तथा (५) पानी

की भाप। वायुमण्डल को गर्मी पृथ्वी से मिलती है—पृथ्वी को सूर्य से। सूर्य से बहने वाली गर्मी का दो अरबवाँ भाग पृथ्वी को मिल पाता है। इसका भी ४२% भाग परावर्तित हो जाता है और १५% भाग वायुमण्डल की विभिन्न गैसों तथा वाष्प व धूलि कणों द्वारा सोख लिया जाता है। पृथ्वी पर सर्दी गर्मी के न्यूनाधिक होने का कारण दिन की लम्बाई का न्यूनाधिक होना तथा सूर्य की किरणों का तिरछा या सीधा होना है। स्थल खण्ड जलराशि से जल्दी गर्म होते है तथा जल्दी ठण्डे भी हो जाते है। चूँकि वायुमण्डल पृथ्वी से गर्म होता है इसलिए ज्यों ज्यों ऊँचाई पर जाते हैं, तापक्रम कम होता जाता है। ऊँचाई के अनुसार तापक्रम प्रति १००० फुट पर ३° फारेनहाइट कम हो जाता है। धरातल से ८—१० मील की ऊँचाई तक तापक्रम कम होता जाता है फिर स्थिर हो जाता है। परिवर्तनशील तापक्रम वाले भाग को Vroposphere तथा ऊपरी भाग को Statosphere कहते हैं। बीच के भाग को जहाँ से ये दोनों अलग होते हैं Tropopause कहा जाता है। तापक्रम थर्मामीटर से नापते हैं। दिनभर में सबसे अधिक तापक्रम को अधिकतम तापक्रम तथा सबसे कम तापक्रम को न्यूनतम तामक्रम कहते हैं। इनके योग के आधे को दैनिक मध्यमान तापक्रम कहते हैं। न्यूनतम तथा अधिकतम तापक्रमों के अन्तर को तापान्तर कहते हैं। दिन के न्यूनतम-अधिकतम तापक्रमों का अन्तर दैनिक तापान्तर कहलाता है। महीने के दिनों की संख्या का भाग यदि महीने भर के दैनिक मध्यमान तापक्रमों के योग मे दिया जाय तो मासिक मध्यमान निकल आता है। वर्ष भर के मासिक मध्यमान के योग मे १२ का भाग देने से वार्षिक मध्यमान तापक्रम प्राप्त होता है। वर्ष के सबसे ठण्डे महीने तथा सबसे गर्म महीने के मासिक मध्यमान का अन्तर वार्षिक तापान्तर कहलाता है। समान तापक्रम वाले स्थानों को मिलाती हुई जो रेखाएं नक्शे मे खींची जाती है, उन्हें समताप रेखाएं कहते हैं। समताप रेखाओं को खींचते समय सम्बन्धित स्थान को समुद्र के धरातल पर मान लिया जाता है। तापक्रम के अनुसार पृथ्वी को ५ भागों में बांट दिया गया है जिन्हे कटिबन्ध कहते हैं। वे इस प्रकार हैं:— (१) उष्णकटिबन्ध (२) उत्तरी शीतोष्ण कटिबन्ध, (३) दक्षिणी शीतोष्ण कटिबन्ध, (४) उत्तरी शीत कटिबन्ध, (५) दक्षिणी शीत कटिबन्ध। साधारणतया ऊँचाई के साथ तापक्रम कम होता जाता है किन्तु कभी कभी ऊँचाई पर तापक्रम अधिक होता है और नीचे कम। इसे ताप विपर्यय कहते है। अधिकतर यह घाटियों में हुआ करता है।

तेहरवाँ अध्याय

वायु-भार

हमने यह जान लिया है कि वायु एक पदार्थ है। अन्य पदार्थों की तरह वायु में भी भार होता है जिसे रिक्त तथा भरे हुए ब्लेडर को तौल कर आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। यदि एक ३३" लम्बी शीशे की नली में पारा भर दिया जाय और उसे एक अन्य प्याली जिसमें पहले से कुछ पारा हो, उल्टा डाल दिया जाय तो नली का कुछ पारा प्याली मे सरक आएगा और ऊपर थोड़ा स्थान रिक्त हो जायेगा। नली में पारा अब भी रहेगा जिसकी ऊँचाई लगभग तीस इंच होगी। यह इस बात का प्रमाण है कि नली के ऊपर जितनी वायु है उसको भार ३०" पारे की ऊँचाई के बराबर है। यह ही साधारण भारमापी (Barometer) है इससे ठीक ठीक भार नहीं ज्ञात हो सकता क्योंकि भार मापने के लिए इसे ऊपर से नापना पड़ता है। इसी सिद्धान्त पर फोर्टिन का भारमापी बनाया गया है। इससे भार के हल्के से हल्के परिवर्तन को भी नापा जा सकता है। फोर्टिन भारमापी भी प्रयोग के लिए सुविधाजनक नहीं है। इसलिए एक अन्य भारमापी—एनेरायड भारमापी काम में लाते हैं।

वायु का भार समुद्र तल पर २९.९२५* इंच होता है। यह भार हमारे शरीर के प्रति वर्ग इंच पर लगभग १५पौण्ड होता है और सम्पूर्ण शरीर पर कई टन।

---

*वायु भार इंचों या मिलीबारों में प्रगट किया जाता है। इनकी परिवर्तन तालिका नीचे दी जारही है—

मिलीबार	इंच	मिलीबार	इंच
920	27.17	995	29.38
930	27.46	1000	29.53
940	27.76	1005	29.68
950	28.05	1010	29.83
960	28.35	1015	29.97
965	28.50	1020	30.12
970	28.65	1025	30.27
975	28.78	1030	30.42
980	28.94	1035	30.56
985	2909	1040	30.71
990	29.24	1045	30.86
		1050	31.01

वस्तुतः हम लोग भयंकर वायुभार से प्रतिक्षण दबे रहते हैं किन्तु चारों ओर से समान रूप में इस भार के होने के कारण हमें कोई कठिनाई नहीं होती।

औसतन, प्रत्येक व्यक्ति तीन हाथियों के बराबर वायु भार से दबा रहता है।

वायुभार का वितरण—वायु मण्डल धरातल पर सबसे अधिक सघन है और ऊपर कम। यदि कुछ कम्बलों के ढेर के सबसे नीचे किसी व्यक्ति को दबाया जाय और एक दूसरे को उन्ही ढेरो में से आखिरी कम्बल के नीचे, तो पहले व्यक्ति के ऊपर अधिक कम्बलें होने के कारण भार अधिक रहेगा और दूसरे के ऊपर कम। इसी प्रकार ज्यों ज्यों ऊपर जाते है वायु की सतहें नीचे छूटती जाती है और भार कम होता जाता है। ७½ मील की ऊँचाई पर वायु भार आधा ही रह जाता है और ७ मील की ऊँचाई पर लगभग एक चौथाई ही। वायु भार की यह कमी औसतन प्रति १००० फीट पर १" होती है।

धरातल पर वायु भार का वितरण तथा पवनें—साधारणतया वायु भार सर्वत्र ही समान होना चाहिए किन्तु ऐसा नही होता। जहां गर्मी अधिक पड़ती हैं वहां की वायु गर्म होकर फैलती है। फैलने से वायु का घनत्व कम हो जाता है। घनत्व की कमी से वायु भार भी कम हो जाता है। अतः जब गर्मी अधिक पड़ती है अर्थात् तापक्रम अधिक रहता है तो वायु भार कम हो जाता है। यदि तापक्रम कम है तो भार अधिक।

पृथ्वी पर पर्वतों, पठारों, सागरों, वनों इत्यादि के कारण स्थान स्थान पर तापक्रम में विभिन्नता पाई जाती है। फलस्वरूप स्थान स्थान पर वायुभार भी भिन्न होता है—कहीं अधिक कहीं कम। व्यवहार में यह पाया जाता है कि वस्तुएँ सदा अधिकता से कमी की ओर चलती है—रुपया-पैसा धनी से गरीब की ओर चलता है, जहाँ अन्न की कमी होती है वहां उन स्थानों से अन्न आता है जहां इसकी अधिकता है। प्रकृति भी इस नियम का अपवाद नही है—कम से कम वायु भार के सम्बन्ध में जिस स्थान पर वायुभार अधिक होता है वहां से वायु कम भार वाले स्थान की ओर चलती है। चलती हुई वायु को पवन कहते हैं। अतः यह स्मरण रखना चाहिए कि पवनें सदा अधिक भार से कम भार की ओर चला करती है।

वायुभार की पेटियां तथा पवनें—पृथ्वी पर कतिपय वायुभार की पेटियां पाई जाती हैं और इनके मध्य बहने वाली नियमित पवनें दिए गये चित्र में इन पेटियों को दिखाया गया है। भूमध्य रेखा पर सदा अधिक गर्मी पड़ने के कारण संवाहनीय धाराएँ (Convectional currents) उठती रहती है और इस प्रकार वायु भार कम रहता है। इसे डोलड्रम्स कहते है।

यह ऊपर उठी हुई वायु पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ३०–३५ अक्षांशों के आस-पास नीचे उतरती है। इस प्रकार इन अक्षांशों पर वायुभार सदा अधिक रहता है।

६०–७० अक्षांशों पर पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ही वायु का भार कम रहता है और इसी कारण तथा अत्यधिक शीत होने के कारण ध्रुवो पर वायुभार अधिक रहता है।

उत्तरी गोलार्द्ध में ३०–३५ अक्षांशों को अश्व–अक्षांश कहते हैं। प्राचीन काल में व्यापारियों को इन अक्षांशों में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। यहां पर पवनें शान्त रहती हैं। व्यापारियों के पोत पालों के सहारे चलते थे। इसलिए उनके अश्वों से भरे हुए पोत यहां पवन के अभाव मे चल नही पाते थे। उन्हे विवश होकर इन घोड़ों को समुद्र मे फेंकना पड़ता था कि उनके पोत आगे बढ़ सकें। इसीलिए इन अक्षाशों को घोड़े का अक्षांश कहते हैं।

ऊपर कहा गया है कि पवनें सदा अधिक भार से कम भार की ओर चलती हैं। इस नियम से दोनों गोलार्द्धों के उच्च भार की पेटियो से पवनें अपने दोनों ओर की लघु भार पेटियों की ओर चला करती हैं। जो पवनें भूमध्य देखा की ओर आती है उन्हे व्यापारिक पवनें तथा जो ध्रुवओ की ओर चलती हैं उन्हे पश्चिमी पवनें कहते हैं।

दक्षिणी गोलार्द्ध में ४० और ६० अक्षांशों के बीच में स्थल खण्ड बहुत कम है। इन अक्षांशों में पश्चिमी पवनें चलती हैं। स्थल खण्ड के कम होने के कारण यहां पर पश्चिमी पवनों के पथ में रुकावट नहीं आती और वे बडे वेग से शब्द करती हुई चलती हैं। इसलिए इन्हे गरजने वाली चालीसा (Raoring Forties) कहते हैं।

व्यापारिक तथा पश्चिमी पवनें सीधे उत्तर–दक्षिण न चलकर अपने रास्ते पर कुछ मुड जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध मे व्यापारिक पवनें उत्तरी पूर्वी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी पूर्वी हो जाती हैं। पश्चिमी हवाएँ भी दक्षिण से सीधे उत्तर या (दक्षिण गोलार्द्ध में) उत्तर से सीधे दक्षिण न चलकर पश्चिमी हो जाती हैं। इसका कारण पृथ्वी की दैनिक गति है। फॅरेल नामक एक वैज्ञानिक ने यह खोज की कि उत्तरी गोलार्द्ध मे प्रत्येक (स्वतंत्र रूप से बहने वाला) पदार्थ–विशेषकर पवनें अपनी दाईं ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर पृथ्वी की दैनिक गति के कारण मुड़ जाता है। इसी नियम को फॅरेल का नियल कहते हैं।

समभार रेखायें—जैसा कि कहा गया है धरातल पर दो स्थानों पर वायु भार सदा एक सा नही रहता। समताप रेखाओं को पढ़ते समय हमने यह देखा है

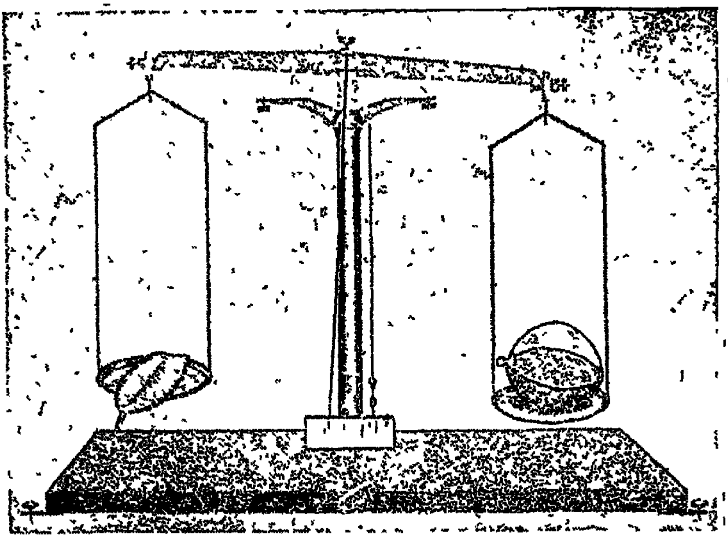

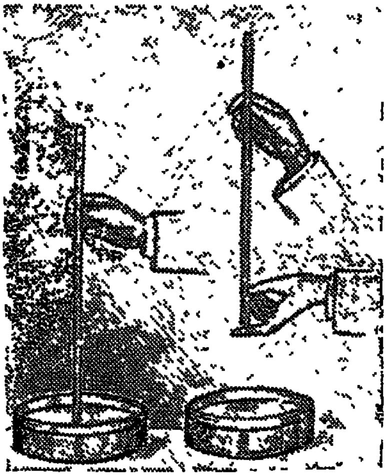

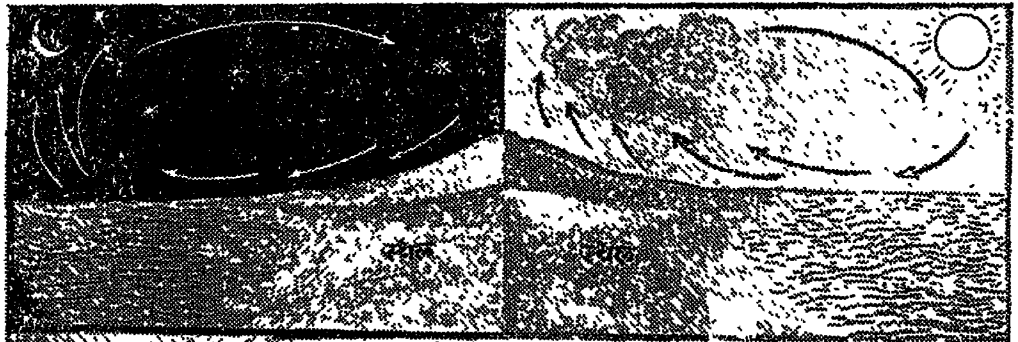

स्थलीय पवन | समुद्रीय पवन

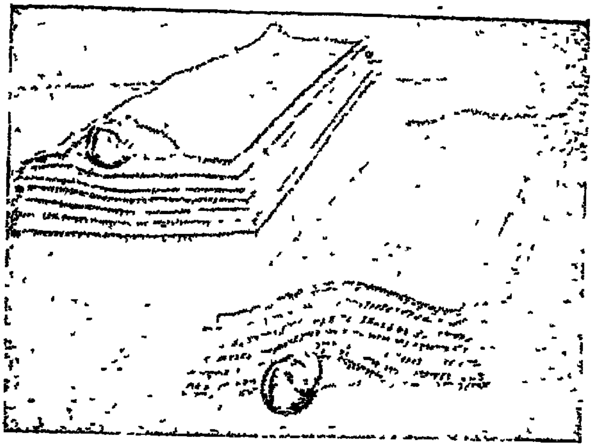

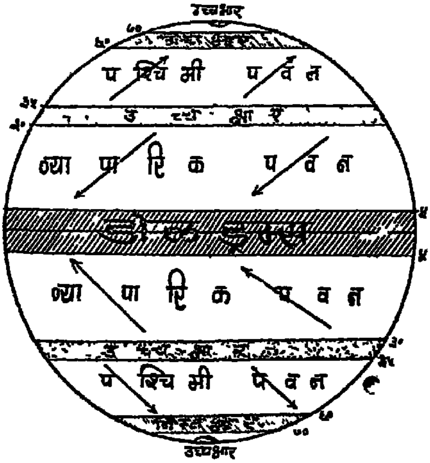
पश्चिमी पवन
व्यापारिक पवन
व्यापारिक पवन
पश्चिमी पवन

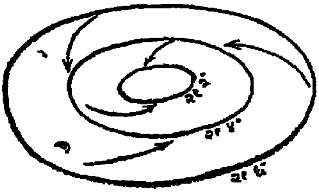

कि समान तापक्रम वाले स्थानों को मिलाती हुई रेखाएं ही समताप रेखाएँ कही जाती हैं। इसी प्रकार धरातल पर स्थित समभार वाले स्थानों को मिलाती हुई रेखाओं को समभार रेखाएँ कहते है। समभार रेखाओं को खीचते समय भी सम्बन्धित स्थानों को समुद्र की सतह पर मान लिया जाता है।

भार प्रवणक—यदि दो समभार रेखाओं के बीच की दूरी अधिक होती है तो पवन की गति कम होती है किन्तु यदि समभार रेखाएँ पास पास होती हैं तो पवन तेज चलती है। इस प्रकार जब धरातल पर वायुभार में अन्तर आता है तो भार-प्रणवक उत्पन्न होता है। वास्तव में भार प्रणवक धरातल पर वायु भार की ढलान का नाप है। अब हम यह कह सकते है कि जब भार प्रणवक अधिक होता है तब पवन तेज चलती है और जब यह प्रणवक कम होता है तब पवन की गति धीमी रहती है। भार प्रणवक की इकाई प्रति १५ नाविक मील '०१" है। इस प्रकार यदि दो समभार रेखाएं आपस में २० मील दूर हों तो भार प्रणवक १५ होगा। भार प्रवणक साधारण ऐकिक नियम से निकाला जाता है। ऊपर के उदाहरण में इसे इस प्रकार निकालेंगे :

भार का अन्त '२ = $\frac{२}{१०}$"

दूरी २० मील है

चूंकि २० मील पर भार का अन्तर $\frac{२}{१०}$ है

इसलिए १ ,, $\frac{२}{१० \times २०}$

और १५ ,, $\frac{१५ \times २}{१० \times २०}$ या $\frac{३०}{२००}$ होगा

प्रणवक की इकाई '०१ या $\frac{१}{१००}$ हैं; इसलिए $\frac{३०}{२००}$ में $\frac{१}{१००}$ से भाग देने पर $\frac{\not{३०}}{\not{२००}} \times \frac{१००}{१}$ या १५ आया। इस प्रकार के अधिक प्रवणक पर पवन बड़ी तेज चलती है।

प्रवणक सदा दो समभार रेखाओं के बीच की लम्बवत् दूरी पर निकालते हैं।

भारत में तूफान बड़े भयंकर चलते है। उनमे आयुभार का प्रवणक कभी कभी तो १२ तक चला जाता है।

नाविक मील ६०८० फीट या २०२६'६ गज का होता है।

पवनों के प्रकार—पवनें मुख्यतया तीन प्रकार की होती हैं :—

(१) नियमित पवनें
(२) सामयिक पवनें
(३) अनियमित या परिवर्तनशील पवनें

नियमित पवनें—उन पवनों को कहते हैं जिनकी दिशा तथा क्षेत्र वर्ष भर लगभग समान रहते हैं। इन पवनों में व्यापारिक तथा पश्चिमी पवनें हैं। इनकी उत्पत्ति दिशा तथा क्षेत्र के बारे में ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

सामयिक पवनें—ये वे पवनें हैं जिनकी दिशा और क्षेत्र समय के अनुसार बदलते रहते हैं। इन पवनों में स्थलीय तथा समुद्री पवन और मानसून पवनें आती हैं।

स्थलीय तथा समुद्री पवनें—समुद्रों के समीप दिन को सूर्य की गर्मी से स्थल खण्ड शीघ्र ही गर्म हो जाते हैं जबकि सागर का जल अपेक्षाकृत कम गर्म रहता है। इस कारण जल पर वायुभार अधिक तथा समीपवर्ती स्थल खण्ड पर कम हो जाता है। फल यह होता है कि अधिक भार वाले भाग (सागर) से कम भार वाले स्थान (स्थल) की ओर एक पवन चलने लगती है। इसे ही समुद्री पवन कहते हैं। समुद्री पवन दिन के १० बजे से चलना आरम्भ करती है और शाम तक चलती रहती है। इसकी गति दिन में ३ बजे के लगभग सबसे अधिक है जब स्थल खण्ड पर वायुभार सबसे कम होता है।

रात को वायुभार की दशा इसके विपरीत होती है। सूर्यास्त के पश्चात् तेजी से स्थल खण्ड विकरण द्वारा ठण्डा होने लगता है जबकि जल अभी गर्म ही रहता है। फलस्वरूप स्थल खण्ड पर वायु भार अधिक तथा जल पर कम हो जाता है और एक पवन स्थल से जल की ओर चलने लगती है। इसे ही स्थलीय पवन कहते हैं। इसकी गति सूर्योदय के कुछ पूर्व सबसे अधिक रहती है।

समुद्रीय तथा स्थलीय पवनें सागर तटवर्ती स्थानों पर ही रचना करती हैं। बड़ी बड़ी झीलों के आस-पास भी ये उत्पन्न हो जाती हैं। इन्हीं के कारण समुद्र तट पर स्थित स्थानों का तापक्रम सम रहता है।

मानसून—विस्तृत पैमाने पर इन्ही समुद्रीय तथा स्थलीय पवनों को मानसून कहते हैं। मानसून भी दो प्रकार की होती है—(१) गर्मियों की तथा (२) सर्दियों की। गर्मियों की मानसून समुद्रीय पवनों का विस्तृत रूप है तथा सर्दियों की मानसून स्थलीय पवनों का स्वरूप। मानसून वही चलती है जहां स्थल खण्ड के भीतर सागर आगया हो और इस प्रकार स्थल खण्ड तथा सागर पास-पास आगए हो। भारत के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

गर्मियों की मानसून—गर्मी के दिनों में देश का स्थल खण्ड विशेष कर उत्तरी भारत बहुत गर्म हो उठता है किन्तु बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर अपेक्षाकृत कम गर्म रहते हैं। इसके परिणाम स्वरूप बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर से पवनें देश के भीतरी भागों की ओर चला करती हैं। इन्हे ही गर्मियों की मानसून कहते हैं। इनका दूसरा नाम दक्षिणी पश्चिमी मानसून भी है, क्योंकि ये देश में दक्षिण पश्चिम से आती हैं।

सर्दियों की मानसून—जाड़े के दिनों में तापक्रम तथा वायु भार की दशा बदल जाती है। स्थल खण्ड ठण्डा रहता है और वहां वायु भार अधिक; किन्तु अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी पर वायु भार कम रहता है। परिणामतः देश की ओर से इन सागरों की ओर पवनें चलने लगती है। यही सर्दियों की मानसून हैं। इन्हीं का दूसरा नाम उत्तरी पूर्वी मानसून है।

अनियमित पवनें—इस कोटि में चक्रवात तथा प्रति चक्रवात आते हैं। चक्रवातों में वायु भार केन्द्र में कम रहता है। इसमें पवन की दिशा वामावर्त (घड़ी की सूइयों की गति की विपरीत दिशा में) होती है। जब चक्रवात आते हैं तो पवन तेज चलती है। आकाश में बादल छा जाते हैं और वर्षा भी होती है। मोटे रूप में चक्रवातों का मौसम अच्छा नहीं रहता।

प्रति चक्रवातों में सम भार रेखाएँ भीतर की ओर अधिक रहती हैं। केन्द्र से दक्षिणावर्त (घड़ी की सूइयों की गति की दिशा में) पवनें चलती हैं। प्रति चक्रवात अच्छे मौसम के प्रतीक हैं। इनमें आकाश स्वच्छ रहता है और मौसम भी सुहावना।

इसके अतिरिक्त अनेक स्थानीय पवनें होती हैं जो एक सीमित क्षेत्र में ही चला करती हैं। भारतवर्ष की आंधी एक ही ऐसी ही पवन है। अन्य स्थानीय पवनों में चिनूक तथा सिरोको पवनें है जो आल्प्स तथा सहारा में चलती है। टाइफून तथा टाइनैडो भी इन्ही स्थानीय पवनों के अन्तर्गत आते है। अनेक टाइनैडो बड़े भयंकर होते हैं। इनमें पवन की गति दो प्रकार की होती है। एक तो स्वयं टारनैडो की गति जो धरातल के समानान्तर होती है और दूसरी गति के भीतर की वायु की टारनैडो स्वयं लगभग ७० मील की गति से चलता है, किन्तु इसके भीतर पवन की चक्रीय गति लगभग २०० मील प्रति घण्टे होती है। इसीलिए जिधर से यह गुजरता है सब कुछ स्वाहा कर देता है। मकानों की छतें टूटकर गिर जाती हैं— समुद्रों में जहाजों को उलट पुलट देती है।

कभी समुद्रों पर चलने वाली टारनैडो के भीतर पवन की गति इतनी तेज होती है कि थोड़ी देर के लिए दबाव शून्य सा बन जाता है और समुद्र का जल

स्तम्भों के रूप में ऊपर उठ आता है तथा टारनैडो के साथ चलता रहता है। इसे जल-स्तम्भ (Water spout) कहते हैं।

सारांश

अन्य पदार्थों की भांति ही वायु में भार होता है। यह भार समुद्र की सतह पर २९·९२५" होता है। आदमी के शरीर के प्रत्येक वर्ग इंच पर लगभग १५ पौण्ड वायु भार पड़ता है और सम्पूर्ण शरीर पर तीन हाथियो के भार के तुल्य। ऊंचाई के साथ का वायुभार भी कम होता है। मोटे रूप में प्रत्येक ९०० फुट की ऊंचाई पर १" भार कम हो जाता है। वायु भार का तापक्रम से उल्टा सम्बन्ध है—यदि तापक्रम अधिक होता है तो वायुभार कम और तापकम कम हो तो भार अधिक होता है। पवनें सदा अधिक भार से कम भार की ओर चला करती हैं। पृथ्वी कुछ कम भार की तथा कुछ अधिक भार की शाश्वत पेटियां है। भू मध्य रेखा पर अधिक ताप के कारण एक कम भार की पेटी है—इसे डोलड्रम्स कहते हैं। ३०°–३५° अक्षांशों पर वायु भार अधिक रहता है। उत्तरी गोलार्द्ध के इन अक्षांशों को अश्व अक्षांश कहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध मे ४०° और ६०° अक्षांशों के बीच पश्चिमी पवनें बड़े वेग से चलती हैं। इन्हें गरजने वाली चालीसा कहते हैं। ध्रुव व्रतों के पास वायु भार कम रहता है। ध्रुवो पर अधिक। ३०°–३५° अक्षांशों से–दोनो गोलार्द्धो मे भूमध्य रेखा की ओर व्यापारिक पवनें चलती हैं और इन्ही अक्षांशों से ध्रुवो की ओर पश्चिमी पवनें। पवनें फेरेल नियमों के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाईं ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर मुड़ जाती हैं। नक्शे में बराबर भार वाले स्थानों को मिलाती हुई रेखाओं को समभार रेखाएँ कहते हैं। इन्हें खीचते समय भी सम्बन्धित स्थानों को समुद्र की सतह पर मान लिया जाता है। धरातल पर दो समभार रेखाओं के बीच वायुभार की ढलान (कमी) को नापने की ईकाई प्रवणक है। यह प्रति १५ नाविक मील पर ·०१" है। यदि प्रवणक अधिक हुआ तो पवन तेज चलती है, कम हुआ तो धीरे। पवनें तीन प्रकार की होती हैं (१) नियमित (२) सामयिक और (३) परिवर्तनशील। नियमित पवनों में व्यापारिक तथा पश्चिमी पवनें सम्मिलित हैं, सामयिक में जल और स्थल की पवनें तथा मानसून और परिवर्तनशील पवनों मे चक्रवात तथा प्रति चक्रवात। इनके अतिरिक्त स्थानीय पवनें भी होती हैं जो अपने सीमित क्षेत्र मे ही चला करती हैं। इनमें टारनैडो बड़ा भयंकर होता है। यह एक तूफान है जो लगभग ६० मील प्रतिघण्टे की चाल से चलता है। इसके भीतर पवन की गति २०० मील प्रति घण्टे तक होती है। इससे बहुत हानियां होती हैं।

चौदहवाँ अध्याय

वायुमण्डल की आर्द्रता

वायुमण्डल में आर्द्रता के साधन—घर में चाय बनती है तो केटली से पानी भाप बनकर उड़ता रहता है, जब हम नहाते है या गर्मियों में छिड़काव करते हैं तो भी धरती पर गिरा हुआ जल थोड़ी देर मे सूख जाता है। यदि किसी गिलास में पानी भरकर रख दिया जाय तो एक दो दिन में चुपचाप गायब हो जाता है। इन सारी बातों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि पानी भाप बन कर वायुमण्डल में मिलता रहता है। किन्तु ये साधन बहुत छोटे हैं। पानी जहां कहीं भी हो चुपचाप धरती छोड़ कर आसमान में उड़ता रहता है। इसीलिए जितने भी पानी के स्थान हैं वे सभी वायुमण्डल को अपना अपना जल देते है। वायुमण्डल का यह जल ग्रहण का गुण बड़ा लाभप्रद है। यदि वायु पानी न सोखती तो हमारे गीले कपड़े कभी नहीं सूखते। इन सब से भी बड़ा साधन समुद्र है जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी के ¾ भाग पर अपना अधिकार जमा रखा है। समुद्र से निरन्तर पानी भाप बन कर वायुमण्डल में मिलता रहता है।

जलीय चक्र—इस प्रकार समुद्रों, नदियों, झीलों और अनेको अन्य वस्तुओं से वायुमण्डल मे मिला हुआ जल आखिर जाता कहाँ है? अन्तत: यह जल वर्षा के रूप में धरती पर ही गिर पड़ता है। पर पृथ्वी पर गिरने के पश्चात् भी यह शान्त नही होता—पुनः बहकर समुद्रों में नदी-नालों के द्वारा पहुंचा ही रहता है। कुछ भाग धरती सोख लेती है तो यह कुओं, झरनों, वनस्पतियो और मिट्टी के द्वारा पुनः वायु में मिल जाता है। नदियो और झरनों तथा कुओं में वर्षा का ही तो जल आता है। वनस्पतियां भी अपनी जड़ों द्वारा पृथ्वी के भीतर से पानी सोखती हैं और पत्तियों के रास्ते उसे हवा में मिला देती है। इस प्रकार एक चक्र सा बंधा रहता है। वर्षा होती है जल अनेक साधनों से पुनः वायुमंडल मे पहुंचता है और फिर वर्षा होती है। दिए गये चित्र से जाहिर है, इसमे स्पष्ट बताया गया है कि निम्नलिखित ७ साधनों से वर्षा का जल पुन: वायुमण्डल तक पहुच जाता है—

(१) वर्षा मे गिरते समय बीच मे ही भाप बन जाता है,
(२) वनस्पतियो से भाप बनती है,
(३) मिट्टी से भाप बन कर वायुमण्डल मे मिल जाती है,
(४) झीलों, तालाबो इत्यादि से भाप हवा मे मिलती रहती है,

(५) पत्तियां श्वास छोड़ कर वायुमण्डल मे नमी मिलाती हैं,
(६) नदियो से भाप बनती रहती है, और
(७) समुद्र से वाष्प निरन्तर उठती रहती है।

भाप का महत्त्वः—वायुमण्डल की यह भाप जो विभिन्न साधनों से एकत्रित होती रहती है, बड़े महत्त्व की है। वायुमण्डल में भाप की मात्रा बहुत ही कम होती है— २ प्रतिशत से भी कम। स्थान तथा समय के अनुसार यह मात्रा बढ कर ५ प्रतिश तक होजाती है। कभी कभी वायु में भाप बिल्कुल नहीं रहती। इस प्रकार वायुमण्डल में भाप की मात्रा की घट-बढ़ कई कारणों से बडे महत्त्व की है। (१) जलवायु का निर्धारण करते समय वर्षा महत्त्वपूर्ण अंग है और यह इसी भाप की मात्रा पर निर्भर है। (२) यदि वायुमण्डल मे भाप न हो तो पृथ्वी से विकिरण अधिक होता है और रात को ठंड़क अधिक पडती है। भाप धरातल से निकलने वाली गर्मी (विकिरण) को रोक कर तापक्रम ऊचा रखती है, यही कारण है कि जब जाड़े के दिनों मे रात को बादल छा जाते है तो सर्दी कम होजाती है, क्योकि रात को पृथ्वी से निकली हुई गर्मी को वायुमण्डल की भाप रोक लेती है और वह गर्मी बादल तथा धरातल के बीच की वायु से ही रुकी रहती है—साथ ही जाड़ो मे जब कई दिनो से लगे हुए बादल हटते हैं और आकाश स्वच्छ होजाता है तो सर्दी बड़ी कठिन पड़ती है। इसका भी कारण यही है कि भाप के हट जाने से विकरण द्वारा पृथ्वी की सारी गर्मी बड़ी तेजी से निकल जाती है। भाप अपने मे गुप्त-ऊष्मा रखती है; वायुमण्डल मे जितनी ही अधिक भाप होगी उसमे उतनी ही गुप्त-ऊष्मा होगी। यह गुप्त-ऊष्मा ही तूफानों तथा झंझावतों की उत्पत्ति में प्रमुख हाथ बँटाती है।

भाप की गुप्त-ऊष्माः—गर्मी के दिनो मे जब शरीर पसीने से तर रहता है और कही से हवा का झोंका आता है तो दो बातें होती हैः— (१) पसीना सूखने लगता है और (२) बड़ी सुहावनी ठंडक लगती है। इससे भी अधिक ठडक उस समय महसूस होती है जब थोड़ी सी स्प्रिट हाथ पर ले लेते हैं। ऐसा क्यों होता है? बात यह है कि पसीना या स्प्रिट भाप मे बदलते हैं और द्रव्य पदार्थों से भाप बनने के लिए गर्मी की आवश्यकता पड़ती है। यह गर्मी शरीर से ली जाती है। इसीलिए ठंडक महसूस होती है।

गर्मी के माप की इकाई 'कैलोरी' है। एक ग्राम पानी को १° सेन्टीग्रेड तक गर्म करने में जितना ताप चाहिए उसकी मात्रा १ कैलोरी निर्धारित की गई है। इस प्रकार एक ग्राम बर्फ को पानी मे बदलने के लिए ७९ कैलोरी की आवश्यकता पडती है और १ ग्राम जल को ३२° फारेनहाइट पर भाप मे बदलने के लिए ६०७ कैलोरी

की। जब पानी को गर्म करते हैं तो कुछ देर तक तो उसका तापक्रम बढ़ता है फिर स्थिर हो जाता है और भाप बनने लगती है। फिर भी हम गर्मी दिए जाते हैं। आखिर यह गर्मी जाती कहां है। निश्चित रूप से यह गर्मी भाप में छिपी रहती है। भाप में इस प्रकार छिपी गर्मी को ही भाप की गुप्त–ऊष्मा कहते हैं।

हमने यह देख लिया कि भाप बनने के लिए गर्मी की आवश्यकता पड़ती है और वह गर्मी उस भाप से छिपी रहती है। इसी प्रकार जब भाप से पानी बनता है तो भाप की गुप्त–ऊष्मा बाहर निकलती है। वर्षा के पश्चात् यही होता है। ज्यों-ज्यों वायुमण्डल की भाप पानी का रूप लेती है त्यों त्यों उसकी गुप्त–ऊष्मा उसमें से निकल कर वायुमण्डल में मिल जाती है और तापक्रम कुछ बढ़ जाता है।

वर्तमान तथा आपेक्षिक आर्द्रता—(Absolute and Relative humidity)

गर्मी के दिनों में जब दोपहर को धूप खूब तेज होती, एक गीला कपड़ा धूप में फैलादें। आप देखेंगे थोड़ी देर बाद ही वह सूख जायेगा। स्पष्ट है कि पानी को वायु ने सोख लिया। यही कपड़ा यदि बरसात में फैलाया जाय तो उसे सूखने में देर लगेगी। वर्षाऋतु में जब कई दिन लगातार वर्षा होती रहती है विशेषकर मोटे कपडे कई दिनों तक सूखते ही नही। इन प्रयोगों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वायु में भाप ग्रहण करने की एक सीमित क्षमता है। जिस प्रकार दो सेर पानी ग्रहण करने वाले किसी बर्तन मे ३ सेर पानी नही भर सकते है उसी प्रकार वायु भी अपनी क्षमता तापक्रम पर निर्भर है। जितना ही अधिक तापक्रम होगा, वायु उतनी ही अधिक भाप ले सकती है। एक घनफुट वायु जितनी भाप ४०° फारेनहाइट पर संभाल सकती है उससे अधिक भाप वह ६०° पर संभाल सकेगी। विभिन्न तापक्रमों पर भाप की मात्रा प्रति घनफुट के हिसाब से यहां दी जा रही है:—

फारेनहाइट तापक्रम	पानी की भाप ग्रेनो में
30	1·9
40	2·9
50	4·1
60	5·7
70	8·00
80	10·9
90	14·7
100	19·7

जब वायु मे इतनी भाप मौजूद रहती है जितनी कि उसकी क्षमता है, तो वायु सम्पृक्त कही जाती है। यदि एक घनफुट वायु का तापक्रम ६०° फारेनहाइट हो और उसमें मौजूद भाप की मात्रा ५.७ ग्रेन हो तो कहा जायेगा कि वायु सम्पृक्त है।

किन्तु वायु सदा सम्पृक्त नहीं रहती। सच पूछा जाय तो सम्पृक्त होती ही है कभी कभी। पर वायु भाप कुछ न कुछ मिली अवश्य रहती है। भाप की यह मात्रा जो किसी समय वायु मे मौजूद रहती है वर्तमान आर्द्रता (Absolute humidity) कही जाती है। इस वर्तमान आर्द्रता का वायु की भाप ग्रहण करने की सम्पूर्ण क्षमता से जो अनुपात होता है उसे आपेक्षिक आर्द्रता कहते है। आपेक्षिक आर्द्रता सदा प्रतिशत में निकालते हैं। इस प्रकार यदि ७०° फारेनहाइट पर १ घनफुट वायु मे ४ ग्रेन भाप हो तो यह (४ग्रेन) तो उसकी वर्तमान आर्द्रता हुई और $\frac{4}{8}$ या ५०% उसकी आपेक्षिक आर्द्रता।

आपेक्षिक आर्द्रता की माप सूखी तथा गीली घुण्डी वाले दो तापमापी से की जाती है। गीले घुण्डी वाले तापमापी की घुण्डी को किसी रूई या महीन कपड़े या धागे से पानी में तर रखते हैं। दूसरे तापमापी की घुण्डी सूखी रहती है। इन दोनों अन्तर पर आपेक्षिक आर्द्रता निकाल लेते हैं। इसके लिए बनी बनाई तालिकाएँ होती हैं जिनमें सूखी या गीली घुण्डी के तापमापी से तापक्रम, इन दोनो का अन्तर और उस तापक्रम और अन्तर पर वायु की आपेक्षिक आर्द्रता ही रहती है।

किसी वायु के तापक्रम को बढ़ा कर उसकी आपेक्षिक आर्द्रता कम और उसके तापक्रम को घटाकर 'आपेक्षिक आर्द्रता' बढ़ाई जा सकती है। यदि ८०° पर एक घन फुट वायु में ५.७ ग्रेन भाप हो और वह ठंडी होने लगे तो उसकी 'आपेक्षिक आर्द्रता' धीरे धीरे बढ़ती जायेगी और ६०° फा० तक पहुंचने पर वह वायु सम्पृक्त हो जायेगी और उसकी आपेक्षिक आर्द्रता १००% हो जावेगी।

ओस बिन्दु—जब कोई वायु सम्पृक्त होती है तो उस तापक्रम को जिस पर वह सम्पृक्त रहती है, उस वायु का 'ओसांक' कहते हैं। इस प्रकार किसी वायु का सम्पृक्त होना, उसकी 'आपकी आर्द्रता' १००% होना तथा उसका ओस बिन्दु (ओसाक) पर पहुंच जाना एक ही तथ्य को करने के विभिन्न रूप है। इसका अर्थ यह होता है कि अब वायु थोडी भी भाप नही ले सकती और यदि थोड़ा भी और तापक्रम कम हुआ तो भाप पानी मे बदल जायेगी।

वायुमण्डलीय आर्द्रता के स्वरूप—वायु मण्डल मे वर्तमान आर्द्रता निम्न लिखित स्वरूपो मे प्रगट होती है:—(१) ओस, (२) पाला, (३) धुंध, (४) कोहरा, (५) बादल, (६) वर्षा, (७) बर्फ तथा ओले।

ओस—प्रातः काल घास फूस या अन्य पदार्थों पर पानी की जो नन्हीं नन्हीं बूंदे दृष्टिगोचर होती है उसे ही ओस कहते हैं। इन नन्ही-नन्ही बूंदों को सूर्य अपनी किरणों में पिरोकर बड़ी सावधानी से उठा लेता है।

ओस बनके लिए निम्नलिखित अवस्थाओं का होना आवश्यक है।

(क) आकाश स्वच्छ हो ताकि धरातल से विकिरण शीघ्रता से हो सके,

(ख) हवा मे भाप हो,

(ग) पवन शान्त हो, नही तो वह ओस बूंदो को जमने नहीं देगी और इधर उधर से गर्म वायु लाकर तापक्रम को नीचे नही गिरने देगी।

ओस वायुमण्डल के ठण्डे होने से नही बनता है। इसके लिए आवश्यक है उस पदार्थों के ठन्डे होने की जिन पर ओस बनेगा। रात को जब आसमान स्वच्छ रहता है और विकिरण शीघ्रता से होता है तो धरातल की सभी वस्तुएँ जल्दी ही ठण्डी हो जाती है। इनका तापक्रम इनके ऊपर की वायु से कम होता है। परिणामतः जब वायु इस ठण्डे पदार्थों को छूती है तो वह पहले ओसबिन्दु पर आती है और फिर उसकी भाप इन ठण्डे पदार्थों पर पानी की बूंदों के रूप में बैठ जाती है।

पाला—जब वायु को अचानक ३२° फारेनहाइट से ठण्डी वस्तुओ के सम्पर्क मे आना पड़ता है तब उसकी भाप पानी न बनकर सीधे बर्फ के रूप में इन वस्तुओं पर बैठ जाती है। इसी बर्फ को पाला कहते है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि पाला जमी हुई ओस को नहीं कहते हैं। पाला बनने के लिए भी ओस के उपयुक्त ही वायुमण्डल की दशाएं चाहिए साथ में धरातल की वस्तुओं का तापक्रम ३२° फा० से कम होना चाहिए।

कोहरा—जब वायु का तापक्रम कम होने लगता है तो एक स्थिति ऐसी आती है कि वह सम्पृक्त हो जाती है। इसके पश्चात् यदि थोड़ा और तापक्रम हुआ तो उसकी नमी पानी की छोटी छोटी बूंदों के रूप में वायुमण्डल में लटकते रहने वाले धूलिकणों पर जम जाती है। ये बूंदे इतनी छोटी होती हैं कि वे गिर नहीं सकती और वायु में लटकती रहती हैं। इसे ही कोहरा कहते हैं।

कोहरा दो प्रकार से बनता है:—(१) जब विकिरण से वायुमण्डल में वर्तमान धूलिकणो का तापमान गिरने लगता है तब उन पर भाप पानी की छोटी बूंदों के रूप में सिमिट जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि (क) वायु मे नमी हो, (ख) वायुमण्डल मे पर्याप्त धूलकण हों, (ग) पवन बहुत धीमी हो तथा (घ) आकाश स्वच्छ हो कि विकिरण हो सके। कभी कभी जब तापक्रम विपर्यय होता है तो भी

कोहरा बन जाता है । बड़े बड़े शहरो मे जहां कल कारखाने अधिक है कोहरा बनता रहता है क्योकि कल कारखानो की अधिकता से धुए के साथ धूलिकणों की वायु मण्डल में अधिकता रहती है । ये धूलिकण कोहरा बनने मे सहायक होते है ।

दूसरे प्रकार का कोहरा भापयुक्त गर्म वायु के किसी ठण्डी वायु के सम्पर्क मे आनें सें बनता है । उन स्थानो पर जहां ठण्डी तथा गर्म धाराएं मिलती है, कोहरा बहुत बनता है क्योकि गर्म धारा के ऊपर की वायु मे नमी की मात्रा अधिक रहती है । जब वह पवन ठण्डी धारा की ऊपरी वायु के जो अपेक्षाकृत ठण्डी होती हैं—सम्पर्क मे आती है तो भाप कोहरे के रूप मे बदल जाती है । नदियों और तालाबों के जल पर जो कोहरा दिखाई देता है वह भी इसी प्रकार बनता है । जाड़े के दिनो में जल गर्म रहता है । फलस्वरूप उसके वायु का तापमान भी आस-पास के स्थल खण्ड से अधिक होता है । बहुत धीरे धीरे बहती हुई पवन जब इस जल के ऊपरी वायु से मिलती है तो कोहरा बन जाता है ।

कोहरे और ओस मे एक मुख्य अन्तर यह है कि कोहरे के लिए वायु का सम्पृक्त होना आवश्यक है जब कि ओस के धरातल के पदार्थो का इतना ठण्डा होना कि उसका तापक्रम ऊपर की वायु के 'ओस बिन्दु' से कम हो ।

जाड़े के दिनो मे यदि दिन मे वर्षा हो जाय और रात को आसमान स्वच्छ हो तो दूसरे दिन प्रायः कोहरा बनता है । धुंध भी एक प्रकार का कोहरा ही होता है । इसमे पानी की बूंदे कुछ बडी होती है ।

मेघ—कोहरे और मेघ मे केवल ऊचाई का अन्तर है । धरातल के पास जिसे कोहरा कहते है ऊंचाई पर होने पर वही मेघ कहलाता है ।

मेघो के अनेक प्रकार है, किन्तु उनमे चार प्रमुख हैं:—

(१) हिम मेघ (Cirrus Cloud)
(२) कपसीले मेघ (Cumulus Claud)
(३) स्तार मेघ (Stratus Cloud)
(४) जलद मेघ (Nimbus Cloud)

हिम मेघ—ये मेघ बर्फ के मणियो से निर्मित होते हैं । इनकी ऊंचाई साधारणतया ३०००० फीट होती है । ये सबसे ऊंचे मेघ है । इनकी छाया धरती पर नही पडती क्योकि सूर्य की किरणे इन्हे पार कर पृथ्वी तक पहुंच आती है । कभी कभी ये मेघ सूर्य तथा चन्द्रमा के चतुर्दिक सुन्दर रगीन वृत्त (Halo) बनाते है । प्राय इनका आगमन किसी चक्रवात का सूचक होता है ।

कपसीले मेघ—फूल गोभी के फूल की सी आकृति वाले ये बादल होते हैं। अधिकतर गर्मियों मे झंझावातों के पूर्व बनते है। आकाश मे ये कपसीले मेघ विभिन्न आकृतियां धारण करते है। जब सूर्य की रोशनी इन पर सामने से पड़ती है, तो ये बड़े चमकते है कभी कभी ये रंगीन पर्वतों का रूप धारण कर लेते हैं—कभी इनका सम्पूर्ण शरीर कुछ मटमैला रहता है पर किनारे किनारे चमक बड़ी आकर्षक रहती है। और कभी कभी जब ये सूर्य को ढकते हैं तो इनका रूप बड़ा डरावना हो उठता है। झंझावातों में प्रारम्भ मे ये ही मेघ बनते है।

स्तार मेघ—ये वे मेघ है जो इस क्षितिज से उस क्षितिज तक चद्दर के समान फैल जाते है।

जलद—उन मेघों को कहते है जो पानी गिराते होते है। कभी कभी ये मेघ धरातल के एकदम समीप लगभग-२०–३५ फीट तक आ जाते हैं।

यहां पर एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मेघ अपने शुद्ध रूप में बहुत अधिकतर उनकी रचना मे दो या तीन मेघों का समावेश रहता है।

बर्फ—पहाड़ी स्थानों पर जहां वायु का तापक्रम ३२° से नीचे गिर जाता है

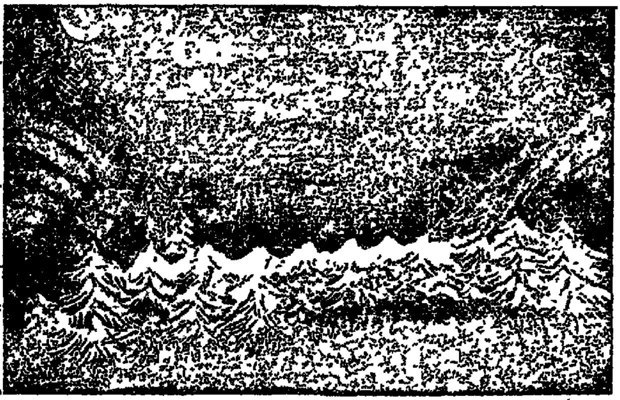

पानी के बदले बर्फ की वर्षा होती है। यह बर्फ छोटे छटे कणों के रूप में गिरती है और बड़ी सुहावनी लगती है।

झंझावात-ओले गर्जना तथा तड़ित्—इन चारों का दृश्य बडा भयंकर होता है। वह बड़ा सौभाग्यशाली है जिसने इनको भलीभांति देखा है और वह सबसे अधिक सौभाग्यशाली है जो इनके बीच पड़कर सही सलामत बच गया है।

झंझा (Thunderstorm)

तेज पवन के साथ, गड़गड़ाते हुए मेघों से जो वर्षा होती है उसे झंझा कहते है। इनकी उत्पत्ति गर्मियों मे होती है। दिन में गर्मी की अधिकता से वायुमण्डल मे संवाहनीय धाराए उत्पन्न हो जाती है। ये बड़े वेग से ऊपर उठती जाती है और अचानक ही उन ऊंचाइयों तक पहुँच जाती है जहां तापक्रम बहुत नीचे होता है। इसका परिणाम यह होता है कि भाप पानी में परिवर्तित हो जाती है और अचानक वर्षा होने लगती है।

झंझा मे पवन की गति बडी तेज होती है। ऐसा संवाहनीय धाराओं की उत्पत्ति के कारण होता है। इन धाराओ के ऊपर उठने के कारण चारो ओर से पवनें आने लगती है। यही कारण है कि झंझा में कोई एक हवा नही चलती। पेड़ो की डाले कभी इधर हिलती हैं, कभी उधर, लगता है पवनो ने प्रकृति मे लूट मचा रखी हो।

संवाहनीय धाराओ के ऊपर जाने के कारण ऊपरी भाग से पवनें नीचे की ओर इन्ही संवाहनीय धाराओं के समीप उतरने लगती है। ऊपर से आने वाली ये पवने ठण्डी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि झंझा के पूर्व तो बड़ी उम्मस रहती है किन्तु जब पवनें चलने लगती हैं और वर्षा होने लगती है तो अचानक ठण्डी पवन के झोके चलने लगते है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि गर्म प्रवन के थपेड़े और ठण्डी पवन के झोके साथ साथ लगते है और तब स्पष्ट विदित हो जाता है कि दो प्रकार की पवने चल रही है।

झंझा मे वर्षा मानसून की सी नही होती। पहले दो चार बड़ी बडी बूदे टप् टप् गिर मानो इतना कह जाती है कि अब वर्षा होने वाली है। तत्पश्चात् झप् झप् कुछ वर्षा हो जाती हैं और फिर थोड़ी देर के लिए बन्द। फिर वर्षा जोर की होती है। इस प्रकार वर्षा रुक रुक कर होती है। लेकिन जब झंझा जम जाता है तब अच्छी मजेदार वर्षा हो जाती है। वर्षा के साथ बडे जोरो की मेघ गर्जना होती है और तडित् चमकती है। चक्रवातीय तथा मानसूनी वर्षा मे पहले पानी की छोटी बूदे गिरती है फिर बड़ी बड़ी, किन्तु झंझा मे पहले ही बड़ी बूदें गिरती हैं। बाद में छोटी छोटी।

झंझाओ के बनने के लिए आवश्यक है कि वायु मे नमी हो, तापक्रम अधिक हो और सवाहनीय धाराऐ बनें। इसीलिए ये गर्मी के दिनो मे अधिकतर अपराह्न मे बनते है।

ओले—झंझाओ मे कभी-कभी भयकर ओले पड़ते है। इनमे कई व्यक्ति मर तक जाते हैं। ओलो के बनने का कारण यह है कि सवाहनीय धाराओ के कारण

धरातल की वायु जब उन ऊंचाइयों तक पहुंच जाती है जहां तापक्रम ३२°फ़ारेनहाइट से कम है तो इसकी नमी सीधे बर्फ बनती है, बर्फ के करण छोटे होते है और नीचे से संवाहनीय धाराएं ऊपर को उठती रहती है, इसलिए ये बर्फ के करण गिर नहीं पाते अपितु और भी ऊपर उछाल दिए जाते है। परिणाम यह होता है कि इनके चारों ओर और भी बर्फ एकत्रित होती जाती है और इनका आकार बढ़ता जाता है। इस प्रकार जब वे बहुत बडे हो जाते हैं और संवाहनीय धाराएं इन्हे और नही रोक सकतीं तो वरस पड़ते हैं। कभी-कभी इनकी तोल एक एक पाव तक होती है।

तड़ित् तथा मेघ गर्जना—संवाहनीय धाराओं के लगातार ऊपर उठते रहने के कारण वर्षा की बूंदे भी बड़ी होती जाती हैं। जब वे काफी बड़ी हो जाती हैं तो टूटने लगती हैं। उनका बड़ा भाग तो नीचे रह जाता है और छोटा भाग पवनों द्वारा ऊपर फेंक दिया जाता है। टूटने के पूर्व इन बूदों में ऋण तथा धन विद्युत् समान परिमाण मे रहती है। किन्तु टूटने के पश्चात् धन तथा ऋण विद्युतमय बूंदे मेघ के अलग अलग भागों में एकत्रित हो जाती हैं। इस प्रकार मेघों में या मेघ तथा धरती में ऋण तथा धन विद्युत् करण अलग अलग एकत्रित हो जाते है। पूर्णविश में झंझा के ऊपरी भाग में धनविद्युत तथा निचले भाग में ऋण विद्युत् रह जाती है। इस प्रकार जब इन दोनों विद्युतों का परिमाण अधिक हो जाता है तो विद्युत् स्फुलिंग उत्पन्न होती है।

मेघ गर्जना का कारण यह है कि विद्युत् की चिन्गारी के उत्पन्न होते ही गर्मी निकलती है, जिसके फलस्वरूप वायु बड़ी तीव्रता से फैलती है। और पुनः सिकुड़ती है इसी कारण गर्जना होती है। यह ठीक वैसे ही है जैसे कोई विस्फोट किया जाय तो वायु के एकाएक फैलने और सिकुड़ने से तीव्र आवाज होती है।

तड़ित् तथा गर्जना मे पहले तड़ित् दिखाई देती है तत्पश्चात् गर्जना सुनाई पड़ती है।

सारांश

वायुमण्डल की आर्द्रता मुख्यतया समुद्र से उठने वाली भाप के कारण है। अन्य साधन मिट्टी, पेड़ पौधे, छोटे-छोटे जलाशय तथा झीले और अन्य अनेक पानी से पूर्ण स्थान हैं। वायुमंडल की भाप धरती के ही विभिन्न साधनों से उठती है और वर्षा के द्वारा पुनः अपने उन्ही साधनों तक चली जाती है—यही जलीय चक्र है। वायु जब उतनी भाप ले लेती है कि अब और नही ले सकती तो वह सम्पृक्त कही जाती है। तब वायु अपने ओस बिन्दु के तापक्रम पर रहती है। इस प्रकार ओस बिन्दु वह तापक्रम है जिस पर कोई वायु सम्पृक्त होती है। पर सदा वायु सम्पृक्त

नहीं रहती। वायु मे वर्तमान आर्द्रता का उसकी भाप धारण की क्षमता से अनुपात आपेक्षिक आर्द्रता कहा जाता है। यदि वायु का तापक्रम बढ़ जाय तो उसकी आपेक्षिक आर्द्रता कम हो जाती है—तापक्रम घटने पर आपेक्षिक आर्द्रता बढ़ जाती है। वायु मे पाई जाने वाली नमी निम्नलिखित रूपों में प्रगट होती है:—

(१) ओस, (२) पाला, (३) धुंध, (४) कोहरा, (५) बादल, (६) वर्षा (७) बर्फ तथा ओले।

ओस शीघ्र विकिरण के कारण बनती है। इसके लिए पवन शान्त चाहिए, वायु में नमी हो तथा आकाश स्वच्छ चाहिए। पाला तब बनता है जब अत्यधिक विकिरण के कारण धरती पर के पदार्थ ३२° फारेनहाइट से अधिक ठण्डे हो जाते हैं। यह नमी हुई ओस नहीं है। जब वायुमण्डल को किसी प्रकार ठण्डक मिलती है और वायु ओस बिन्दु पर आती हैं तो इससे थोड़ा भी और तापक्रम गिरने पर भाप पानी की छोटी बूंदों के रूप में वायु में लटकती रहती है। यही धुंआ है। जब धुंआ अधिक होती है तो कोहरा कहा जाता है। कोहरा ही ऊँचाई पर मेघ कहा जाता है। बादल के मुख्य चार भेद हैं: (१) हिममेघ (२) कपसीले मेघ (३) स्तर मेघ और (४) जलद। इनके मिश्रण से मेघों के और भी अनेक भेद होते हैं। वर्षायुक्त तेज पवन को झंझा कहते है। झंझाएं संवाहनीय वायु धाराओं के कारण उत्पन्न होती है। इनका ओलो तथा तड़ित् से गहरा सम्बन्ध है। ओले इस कारण बनते है कि संवाहनीय धाराएँ बड़े वेग से ऊपर जाती हैं और उस स्थान पर पहुंच जाती है जहाँ तापक्रम ३२° फा० से कम है। भाप बर्फ बनती है किन्तु पवनो के वेग से तब तक नही गिरती जब तक यह ओलों का आकार नही ले लेती।

मेघों में धन विद्युत तथा ऋण विद्युत की अधिकता से एक चिन्गारी से निकलती है—यही तडित् है। विद्युत् के उत्पन्न होते ही गर्मी पैदा होती है और वायु बड़े वेग से फैलती है। इसी से मेघ गर्जना उत्पन्न होती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कतिपय वायुमण्डलीय दृश्य

(१) आकाश नीला क्यों? आकाश का रंग वस्तुतः कुछ भी नहीं है। नीला रंग वायुमण्डल में पाए जाने वाले धूलि कणों के कारण है। होता यह है कि, सूर्य से आने वाला प्रकाश सात रंगों में होता है। प्रत्येक का तरंग दैर्घ्य (Wave length) अलग अलग है। सबसे छोटी तरंग दैर्घ्य नीली किरणों की है। इसलिए धूलि कणों द्वारा यही नीली किरणें अधिक बिखेरी जाती है और लाल तथा पीली किरणें सरलतापूर्वक आगे बढ़ जाती है। क्योंकि इनका तरंग दैर्घ्य अधिक होता है। वायुमण्डल में इन नीली किरणों के बिखेरे जाने के कारण ही आकाश का रंग नीला है।

धूलिकण जितने छोटे होते हैं उतना ही आकाश नीला दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए वर्षा के पश्चात् इसका रंग निखर आता है क्योंकि बड़े बड़े धूलिकण वर्षा जल के साथ धरती पर आ गिरते हैं।

(२) सूर्य और चांद डूबते समय बडे क्यों दिखाई देते हैं? आकाश वैसे तो गोल है किन्तु वह दर्शक को ठीक गोल नहीं दिखाई देता। उसे ऐसा लगता है कि शिरोबिन्दु से क्षितिज बहुत दूर है। यह भ्रम आकाश के प्रकाश पर निर्भर है। यदि सूर्य तेज चमक रहा हो तो यह अन्तर और भी अधिक प्रतीत होता है—चन्द्रिका में उससे कम और अन्धेरी रात में सब से कम। इस प्रकार प्रयोग करके देखा गया है कि सूर्य के प्रकाश में शिरोबिन्दु और क्षितिज के मध्य का भाग जो वस्तुतः ४५° ऊँचा होता है, २२° ऊँचा ही दिखाई देता है। अनेक निरीक्षणों पर यह निश्चित किया है कि इस प्रकार चन्द्रमा तथा सूर्य देखने वाले की आँख की इस विशेष गुण के कारण आते समय अपने वास्तविक आकार से २–२५ गुना बडा दिखाई देते है।

(३) निकलते तथा उगते समय सूर्य का रंग—सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सूर्य का लाल रंग वायुमण्डल के धूलिकणों के कारण होता है। ये धूलि कण छोटे तरंग दैर्घ्य वाली नीली किरणों को तो बिखेरती है किन्तु अधिक तरंग दैर्घ्य वाली लाल किरणें उनको पार कर निकल आती है। सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सूर्य किरणों को अधिक वायुमण्डल पार करना पड़ता है इसलिए उसकी नीली किरणें बहुत ही इधर उधर बिखेर दी जाती है और लाल किरणों की अधिकता रह जाती है जो हम तक पहुंचती है। यही कारण है कि सूर्यास्त और सूर्योदय का रंग लाल होता है। यह प्रयोग द्वारा भी दिखाया जा सकता है। इस प्रयोग को दिखाने

के लिए आयताकार कांच के वर्तन में हल्का हाइपो (सोडियम थायोसल्फेट—$Na_2S_2O_3$) का हल्का घोल भरकर उसके पीछे एक प्रकाशोत्पादक रख देते हैं। सब ओर से इस प्रकार ढक देते है कि प्रकाश कही ओर से न आ पावे। जब इस घोल में थोड़ा सा कोई हल्का अम्ल डाला जाता है तो पहले तो कोई प्रभाव प्रतीत नहीं होता परन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता है आस-पास के अणु अलग होकर वायु मे धूलि का सा प्रभाव उत्पन्न करते है। इसमे आते हुए प्रकाश की छाया घटती जाती है और अन्त में सूर्यास्त का-सा प्रभाव दृष्टिगत होता है।

गोधूलि—गोधूलि का लाल रंग धूलि कणों द्वारा सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने के कारण है। वायुमण्डल के ये धूलि कण डूबते हुए सूर्य की किरणों को परावर्तित करके हम तक भेजते हैं। यह क्रिया तब तक होती है जब तक सूर्य पश्चिमी धरातल से १८° से अधिक नीचे नही चला जाता। अलग अलग अक्षांशों पर सूर्य को १८° जाने में अलग अलग समय लगता है इसलिए गोधूलि का समय भी प्रत्येक स्थान पर एक ही नही रहता। भूमध्य रेखा पर यह लगभग १ घण्टा १० मिनिट का होता है। ज्यों ज्यों उत्तर-दक्षिण में जाते हैं गोधूलि का समय बढ़ता जाता है। यहां तक कि ध्रुव प्रदेशों मे महीनों का होता है।

यह हम जानते है कि सूर्य के १८° नीचे (क्षितिज से) जाने तक गोधूलि का समय होता है। पृथ्वी की गति प्रत्येक अक्षांश पर समान नहीं है। भूमध्य रेखा पर यह १००० मील प्रति घण्टा है—ध्रुवों पर शून्य के बराबर। इसीलिए १८° की कोणात्मक दूरी पार करने में विभिन्न अक्षांशों के समय मे भिन्नता होती है। और इसीलिए गोधूलि का समय भी न्यूनाधिक होता रहता है।

इन्द्र धनुष—हल्के पानी मे साबुन का झाग बनाकर हाथ में लपेट ले, फिर मुट्ठी बन्द करलें और थोड़ी सी झाग अंगूठे और तर्जनी के बीच मे डाल दें। फिर धीरे-धीरे इन दोनों को सरकावें ताकि झाग की एक पतली-सी झिल्ली दोनो अंगुलियों पर पड़ी रहे। यदि सरकाते समय झिल्ली टूट जाय तो फिर बनावें। इस झिल्ली को प्रकाश में देखें। इन्द्र धनुष के समान इसमें अनेक रंग दिखाई देंगे।

यही घटना इन्द्र धनुष के निर्माण में भी होती है। वायु मण्डल मे पानी की छोटी छोटी बूंदों पर सूर्य की किरणे वर्तित और परावर्तित होकर* इन्द्र धनुष का रूप ले लेती हैं। यह बात इस तथ्य से और भी स्पष्ट है कि इन्द्र धनुष सदैव सूर्य के विपरीत बनता है।

---

* वर्तन तथा आवर्तन के लिए प्रकाशक का प्रकरण देखिए।

मृगमरिचीका—प्रकाश की किरणें जब एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाती हैं तो मुड़ जाती है, किन्तु यदि आयतन कोण (Angle of insidence) चरम कोण (Critical Angle) से अधिक होता है तो किरण परावर्तित हो जाते है।

रेगिस्तानी प्रदेश में अत्यधिक गर्मी के कारण यही बातें होती हैं। धरातल काफी गर्म रहता है। फलस्वरूप वायु की सतहें ऊपर की ओर कम गर्म होती जाती है। जब इन पर प्रकाश पड़ता है तो पहले आवर्तित होता है। किन्तु शीघ्र ही आयतन कोण चरम कोण से बड़ा होने लगता है। इस प्रकार दूर से पेड़ पौधे उल्टे दिखाई देते हैं और लगता है वे किसी जलाशय या नदी के किनारे पानी की छाया में दिखाई दे रहे हों। इसे ही मृगमरीचिका कहते है।

चन्द्रमा का अर्द्ध प्रकाशित भाग—यदि तीज से अष्टमी तक चन्द्रमा को देखा जाय तो चन्द्रमा के प्रकाशित भाग के साथ ही शेष भाग कुछ धुंधले रंग का दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि जो भाग अधिक प्रकाशित है वहां तो सूर्य की किरणें पड़ रही है और धुंधले भाग पर पृथ्वी तथा तारों का प्रकाश पड़ रहा है। जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य की किरणों को परावर्तित करके हम तक भेजता है इसी प्रकार पृथ्वी भी सूर्य के प्रकाश को चन्द्रमा तक भेजती है।

मौसम की सूचना

वायुमण्डल की दशा को मौसम कहते है। मौसम सदा बदलते रहते हैं। मौसमों की सूचना खेतिहरों तथा उड़ाकों के लिए बड़े काम की है। इसलिए प्रत्येक देश अपने लिए एक मौसम विभाग खोलता है जहां पर देश के विभिन्न भागों से तापक्रम, वर्षा, पवन इत्यादि के आंकड़े प्रतिदिन एकत्रित किए जाते हैं और इनके आधार पर अगले दिन की भविष्य वाणी की जाती है। दूरस्थ स्थानों के लिए मौसम की भविष्य वाणी करना कुछ कठिन काम है क्योंकि दूर दूर स्थानों के आंकड़े चाहिए, किन्तु स्थानीय मौसम की भविष्य वाणी निम्नलिखित आधारों पर की जाती है। यदि व्यक्ति का निरीक्षण सही है और उसे मौसमों की विभिन्न दशाओं का सम्यक् ज्ञान है तो भविष्य वाणी बहुत कुछ अंशो मे सत्य निकलेगी।

स्थानीय भविष्य वाणी के लिए कुछ उपकरणो का होना आवश्यक है। इनमें से निम्नलिखित प्रमुख है :

(१) भारमापी,
(२) सूखे–गीले घुण्डी के तापमापी
(३) तालिका जिससे आपेक्षित आर्द्रता निकालते है।

भारमापी वायुमण्डल का भार बतलाता है। यदि यह भार कम होने लगे तो यह इस बात का सूचक है कि कोई तूफान आने वाला है। यदि यह अचानक कम हो जाय तो निश्चित तूफान आएगा। धीरे-धीरे कम होने का तात्पर्य यह है कि यदि तूफान न भी आए तो मौसम गन्दा रहेगा। इसके विपरीत यदि वायु का भार अधिक हो तो यह स्वच्छ आसमान तथा सुहावने मौसम का प्रतीक है। तूफान आने के पूर्व पवन शान्त हो जाती है।

गर्मी के दिनों में यदि उम्मस बहुत बढ़ जाय और आकाश में कपसीले बादल दिखाई दें तो यह वर्षा का सूचक है।

आकाश में मेघों की उपस्थिति भी विशेष महत्वपूर्ण है। यदि हिम मेघ दिखाई दे और वे बहुत ही धीरे-धीरे चल रहे हों तब यह समझना चाहिए कि मौसम स्वच्छ रहेगा, किन्तु यदि ये हिम मेघ तेजी से चल रहे हों और विशेष झुण्ड मे, तो यह आने वाले तूफान की निश्चित सूचना है कि इन हिम मेघों की गति से आने वाले तूफान की गति का अनुमान भी किया जा सकता है।

सूर्य तथा चन्द्र के चारो ओर कभी कभी एक रंगीन मण्डल बन जाता है; यदि उस समय वायुभार कम हो रहा हो तो यह तूफान या बुरे मौसम का सूचक है, किन्तु अधिक होने पर मौसम अच्छा रहता है।

जाड़े के दिनो मे यदि दिन मे कुछ वर्षा हो जाय और रात को आसमान स्वच्छ रहे तथा सूखे और गीले घुण्डी के तापमापी का अन्तर कम रहे तो यह इस बात की निश्चित सूचना है कि अगले दिन मेघ या कोहरा आएगा।

यदि दिन मे इन दोनो तापमापियो का अन्तर अधिक रहे और दिन को आकाश स्वच्छ रहे तथा पवन भी शान्त रहे तो रात को विकिरण अधिक होगा यह निश्चित है। फलस्वरूप ओस अधिक बनेगी और पाला भी पड़ सकता है।

आपेक्षिक आर्द्रता की जानकारी भी बड़ी लाभदायक है। यदि दिन में आपेक्षिक आर्द्रता अधिक हो तो तापक्रम अपेक्षाकृत कुछ कम हो जाता है किन्तु यही आपेक्षिक आर्द्रता रात को अधिक रहे तो सर्दी कम पड़ती है। जाड़े में जब मेघ छाए हों तो दिन में सर्दी बढ जाती है क्योकि ये मेघ सूर्य की गर्मी को पृथ्वी तक आने से रोकते हैं; किन्तु यदि मेघ रात को भी छाए रहे तो सर्दी कम हो जाती है; कारण कि ये पृथ्वी की गर्मी को बाहर जाने से रोकते हैं।

यदि कई दिनों तक थोड़ी थोड़ी ओस बनती रहे और किसी दिन अधिक बन जाय तो यह इस बात का सूचक है कि वायु मे नमी की मात्रा बढ़ गई है और मौसम

में कई परिवर्तन होने वाला है । इसी प्रकार जाड़े के दिनों में ओस का न बनना तथा मेघों के रहते भी सर्दी के सहसा इस प्रकार कम होने का, जिससे अन्तर स्पष्ट विदित हो, अर्थ यह है कि आपेक्षित आर्द्रता बढ़ गई है और बादल छाएँगे या कोई परिवर्तन मौसम में अवश्य होगा ।

स्थानीय मौसम की भविष्य वाणी करने के पूर्व मौसम विभाग द्वारा प्रसारित नक्शे तथा आंकड़ों को भरसक प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और अपने निरीक्षण तथा इन आंकड़ों के आधार पर ही भविष्य वाणी करनी चाहिए ।

सारांश

वायु में धूलिकणों का बड़ा महत्त्व है । इन्हीं के कारण आकाश का रंग नीला दिखाई देता है क्योकि ये छोटी तरंग दैर्घ्य वाली नीली किरणों को इधर-उधर बिखेरते हैं । इन्हीं के कारण निकलते तथा उगते समय सूर्य का रंग भी लाल दिखाई देता है । गोधूलि का प्रकाश भी इन्हीं धूलिकणों के कारण है क्योकि ये धूलिकण सूर्य की किरणों को परावर्तित करके पृथ्वी तक भेजते हैं । चन्द्रमा का धुँधला भाग पृथ्वी द्वारा परावर्तित प्रकाश तथा तारों के प्रकाश के कारण दिखाई देता है । चन्द्रमा तथा सूर्य निकलते और डूबते समय बड़े इसलिए दिखाई देते है कि हमें आकाश क्षितिज पर चपटा दिखाई देता है । इसीलिए वहां दिखाई देने वाले सूर्य-चन्द्र कुछ बड़े लगते है । इन्द्रधनुष के लिए वर्षा की नन्ही नन्ही बूँदे उत्तरदायी हैं । ये सूर्य किरणों को वर्तित तथा परावर्तित करके उसी प्रकार उसके विभिन्न रंगों को अलग अलग कर देती है जैसे कोई त्रिपार्श्व । इन्द्रधनुष सदा सूर्य के विपरीत बनता है । मृग मरीचिका का कारण वायुमण्डल की विभिन्न सतहों का इस प्रकार गर्म होना है कि उनसे प्रकाश किरणें परावर्तित होने लगती है और धरती के पदार्थों की उल्टी आकृति ऐसे दिखाई देती हैं जैसे वे किसी जलाशय के किनारे पानी में दिखाई दे रहे हों ।

मौसम की भविष्यवाणी वायुभार, पवनों की दिशा तथा आकाश में दिखाई देने वाले मेघों के आधार पर बहुत कुछ सही अंशों में की जा सकती है । पूर्णतया ठीक तौर पर भविष्यावणी करने के लिए आसपास के स्थानों तथा दूर-दूर के स्थानों के तापक्रम वायुभार, पवनों की दिशा, वर्षा इत्यादि के आंकड़ों का होना आवश्यक है । हिममेघों का आगमन आने वाले तूफान का सूचक होता है । यदि हवा का भार कम होने लगे तो यह भी बुरे मौसम का सूचक है । आकाश में मेघ हों तो दिन मे तापक्रम कम हो जाता है किन्तु रातें अपेक्षाकृत कम सर्द होती है । मेघों के हटने पर सर्दी बढ़ जाती है क्योंकि हिमकिरण शीघ्रता से होता है । उम्मस का बढना झंझा को

सूचक है। जाडे के दिनों में यदि दिन में वर्षा हो गई हो और आकाश स्वच्छ रहे तथा पवन शान्त हो तो अगले दिन ओस की सम्भावना अधिक रहती है—कई दिनों के पश्चात् यदि अचानक ओस अधिक पडे तो यह इस बात की पूर्व सूचना है कि शीघ्र ही मौसम बदलने वाला है।

अभ्यास के लिए प्रश्न—

(१) वायु मण्डल किन किन गैसो से मिलकर बनी है? उनका वर्णन करें।

(२) सूर्योष्मा से क्या समझते है? धरातल पर सूर्योष्मा के न्यूनाधिक होने के कारण बतावें।

(३) क्या कारण है कि स्थल जल की अपेक्षा शीघ्र ही गर्म हो उठता है और शीघ्र ही ठण्डा भी?

(४) ऊंचाई के साथ तापक्रम क्यों कम होता जाता है? यदि कोई स्थान समुद्र तल से ९००० फीट ऊंचा हो तो वहां का तापक्रम साधारणतया क्या होगा जबकि समुद्र के धरातल पर ऊंचाई ८५° फोरनहाइट है?

(५) दैनिक मध्यमान, औसत मासिक मध्यमान तथा वार्षिक तापक्रम से क्या समझते है?

(६) कटिबन्ध क्या है? इन्हे चित्र खीचकर समझावें।

(७) तापक्रम विपर्यय से क्या समझते हैं? भली भाँति स्पष्ट करे। मंसूरी-अमृतसर से ठण्डा क्यों है?

(८) वायुभार की पेटियों से क्या समझते है? चित्र खींचकर समझावें। साथ-ही सम्बन्धित नियमित पवनो को भी दिखावें।

(९) भार प्रवणक क्या है? यह किस काम आता है? यदि ३०·१९" तथा २९·९८" की समताप रेखाएं परस्पर ५० मील दूर हों तो भार प्रवणक क्या होगा?

(१०) वायु मण्डल मे भाप कहां कहाँ से आती है? और किस प्रकार पुनः वायु मण्डल मे मिलती रहती है?

(११) जलीय चक्र से क्या समझते हैं? समझाकर लिखें?

(१२) आपेक्षिक आर्द्रता किसे कहते है और इसे कैसे ज्ञात करते है?

(१३) निम्नलिखित बाते समझावे.—
तापान्तर—ओसविन्दु, कोहरा—ओस

(१४) ओले कैसे बनते हैं? समझाकर लिखें।

(१५) झंझा से क्या समझते हैं? इसका विस्तृत वर्णन करें।

(१६) मौसम किसे कहते हैं? स्थानीय मौसम की पूर्व सूचना देते समय किन बातों का ध्यान रखा जाता है?

सोलहवां अध्याय

हमारे शहर

पृथ्वी की उत्पत्ति ज्वालामय शरीर से ठोस भू-पटल के निर्माण तक की गाथा हमने जान ली है। यह भी जान चुके है कि किस प्रकार इस ठोस भू-पटल पर पर्वतों, पठारों, नदियों और मैदानों का निर्माण हुआ। इसी कठोर भू-पटल पर मानवों ने अपने श्रम से गांव और नगर बसाए। इन नगरों का निर्माण यों ही नही हो गया। मूल में भावना यह थी कि अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति तथा सुरक्षा के लिए लोगो ने एक साथ रहना आवश्यक समझा, फलतः छोटे-छोटे गाँवों की उत्पत्ति हुई। कई कारणों से ये गाँव कुछ बड़े होते गये और कस्बों का रूप सामने आया। आधुनिक काल में कल कारखानों की बहुतायत तथा आधुनिक वैज्ञानिक सुख साधनो की सरलता के कारण नगरों का विकास बड़ी तेजी से हुआ। नगरों की की उत्पत्ति तथा विकास के निम्नलिखित कारण प्रमुख है :—

(१) शासन के केन्द्र होने के कारण छोटे-छोटे स्थान भी शहर का रूप ले लेते हैं। राजस्थान के बड़े-बडे शहर राजधानी होने के कारण ही इतने महत्त्वपूर्ण हो सके है।

(२) आवागमन की सुविधा होने पर भी नगर वस जाते हैं। इसीलिए रेलों के केन्द्रों तथा कटवां रास्तों के केन्द्रों पर शहर बस जाते है।

(३) व्यापारिक मण्डी होने के कारण भी छोटे-छोटे स्थान भी बडे-बड़े शहरो में बदल जाते है।

(४) विद्या के केन्द्र तथा कल कारखानों के कारण भी स्थान शीघ्र ही शहरो मे परिवर्तित हो जाते है।

(५) जलवायु की उत्तमता के कारण पहाड़ी स्थान शहरों मे परिवर्तित हो जाते है जहाँ लोग गर्मियों में तरी लेने जाया करते है।

(६) वे स्थान भी जो धार्मिक महत्त्व के होते है, शीघ्र ही शहर में बदल जाते है।

(७) नदियों के किनारे तथा सगम पर ही शहर वस जाते है ताकि आवागमन की सुविधा रहे। परन्तु राजस्थान मरुस्थल होने तथा इसके अपेक्षाकृत नवीन होने के कारण इस प्रकार के शहर यहाँ नही है।

(८) सामरिक महत्त्व के स्थान पर भी शहर बस जाते है।

राजस्थान के शहर भी इन्ही कारणों से वसे है । इसके प्रमुख शहर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर तत्कालीन महाराजाओं की इच्छा के परिणामस्वरूप बसाये गये है और उन शासकों के नाम पर ही इनका नाम भी रख दिया गया।

इस अध्याय में हम राजस्थान के कतिपय प्रमुख नगरों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

जयपुर

समुद्र के धरातल से लगभग १५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित, उत्तर तथा पूर्व मे पर्वतो से आवेष्ठित यह रंगीन नगरी आज राजस्थान की राजधानी है। यह एक नया नगर है और इसकी नीव २५ नवम्बर सन् १७२७ ई० को तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह ने रखी थी। उन दिनो यहाँ की राजधानी आमेर थी जो आज भी अपने मन्दिरो तथा सूने महलों को लिए जयपुर से सात मील दूर उत्तर मे पहाड़ी पर अपने बीते दिनों की स्मृति में मौन पड़ी है।

इस शहर मे प्रवेश करने के लिए स्टेशन से उतरते ही लगभग एक मील तक चलने के पश्चात् चाँदपोल का प्रवेश द्वार आता है जिस पर आज दिन भी प्राचीनकाल के विशाल दरवाजे लगे है, जो अतीत मे शत्रुओ के आक्रमण के समय बन्द कर देने तथा इस प्रकार से उन्हे शहर मे प्रविष्ट होने से रोकने के उद्देश्य से लगाए गए थे। यहाँ से एक सीधी सड़क—लगभग दो मील लम्बी तथा ४० गज चौड़ी पूर्व मे जाती है जो सूरजपोल दरवाजे को पार कर सीधे गलता के लिए पूर्व की पहाड़ी पर सरकती हुई चढ़ जाती है।

नगर के चारों ओर एक परकोटा है। इस परकोटे मे आठ दरवाजे है। चाँदपोल, सूरजपोल, अजमेरी दरवाजा, सांगानेर दरवाजा, घाट दरवाजा, चार-दरवाजा, नया दरवाजा तथा जोरावर सिंह का दरवाजा। जयपुर शहर अपनी चौड़ी सड़कों तथा रगे हुए मकानो के लिए प्रसिद्ध है। इसकी इस रंगीनी को देख कर ही पर्यटको ने इसे "भारत का पेरिस" कह डाला है।

इस शहर के अनेक दर्शनीय स्थान है। इनमे से निम्नलिखित प्रमुख है।—

गलता:—जयपुर से सटे हुए पूर्वी पहाडी मे शहर के दूसरी ओर स्थित एक झरना है जिससे निरन्तर पानी बहता रहता है। यह एक अत्यन्त रमणीय स्थान है जो एक संकरी घाटी मे स्थित है। कहते है यहाँ गालव मुनि का आश्रम था। इसीलिए इसका नाम गलता पड़ा है।

आमेर:—शहर से सात मील दूर पूर्व मे पहाड़ी पर स्थित यह नगर राज्य

आमेर का एक दृश्य

की प्राचीन राजधानी है। यहाँ की झीलें, महल तथा मन्दिर दर्शनीय हैं।

हवा महल:—शहर के मुख्य चौराहे माणक चौक के एक तरफ स्थित यह

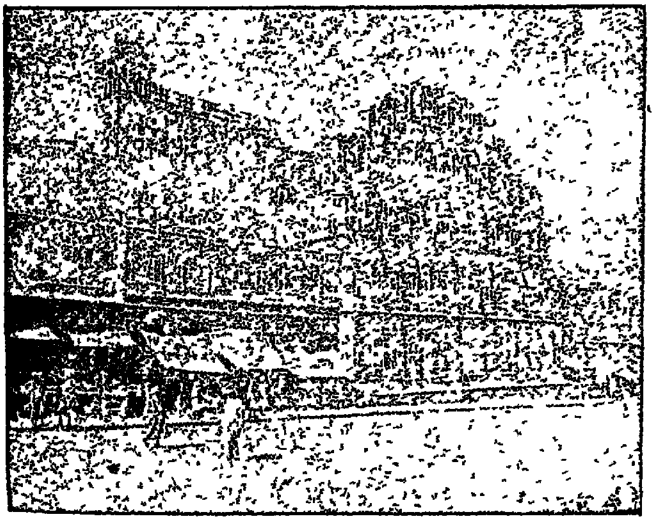

हवा महल

भव्य भवन अपने सहजसौन्दर्य के लिए प्रख्यात है। इसमे सहस्त्रों खिड़किया हैं।

वस्तुत यह कोई महल नही अपितु एक चौड़ी दीवार है जिसमे सहस्त्रो छोटी-बड़ी खिड़किया है। ऊपर यह दीवार मन्दिर सी होती गई है।

रामनिवास बाग.—सैलानियों का स्वर्ग तथा गर्मियो मे जयपुर वासियों का जीवन दाता यह राम निवास बाग शहर से सटा हुआ अजमेरी गेट और सांगानेर गेट तक फैला हुआ है। इसमे एक कुञ्ज सावन-भादो के नाम से प्रसिद्ध है जहां पानी की रिमझिम लगी रहती हे और क्षणभर बैठने से सुखद समीर का स्पर्श पुलकित-कर देता है। इसी बाग मे एक जन्तु शाला अजायबघर है जिसमे विभिन्न प्रकार के पशुपक्षी रखे गए हैं।

संग्रहालय (म्यूजियम):—रामनिवास बाग में ही एक अतीव सुन्दर तथा भव्य भवन मे राजस्थान का सबसे बडा संग्रहालय है जिसमे प्राचीन काल के वस्त्र,

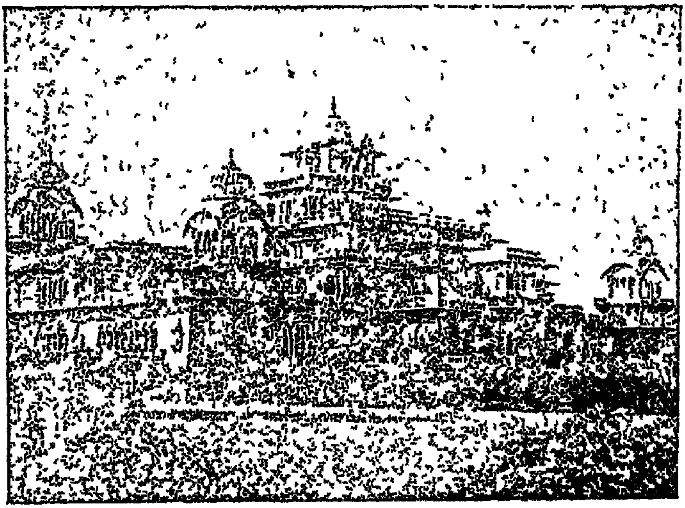

संग्रहालय (म्यूजियम)

सिक्के तथा अस्त्र-शस्त्र सुरक्षित है। विभिन्न कलाकृतियो का इसमे अपूर्व संग्रह सुरक्षित है।

चन्द्र महल:—शहर के मध्यम मे स्थित राजाओं का परम्परागत महल त्रिपोलिया या चन्द्र महल है। इसीमे जयपुर के राजा-महाराज अब तक निवास करते आए है। इसी से सटा हुआ गोविन्ददेव जी का मन्दिर है जिसमे सुन्दर मूर्तियां स्थापित है। विधान सभा का असेम्बली भवन भी इसी मन्दिर के पास चन्द्र महल के समीप ही भारतीय ढग पर बनी हुई एक वेधशाला है।

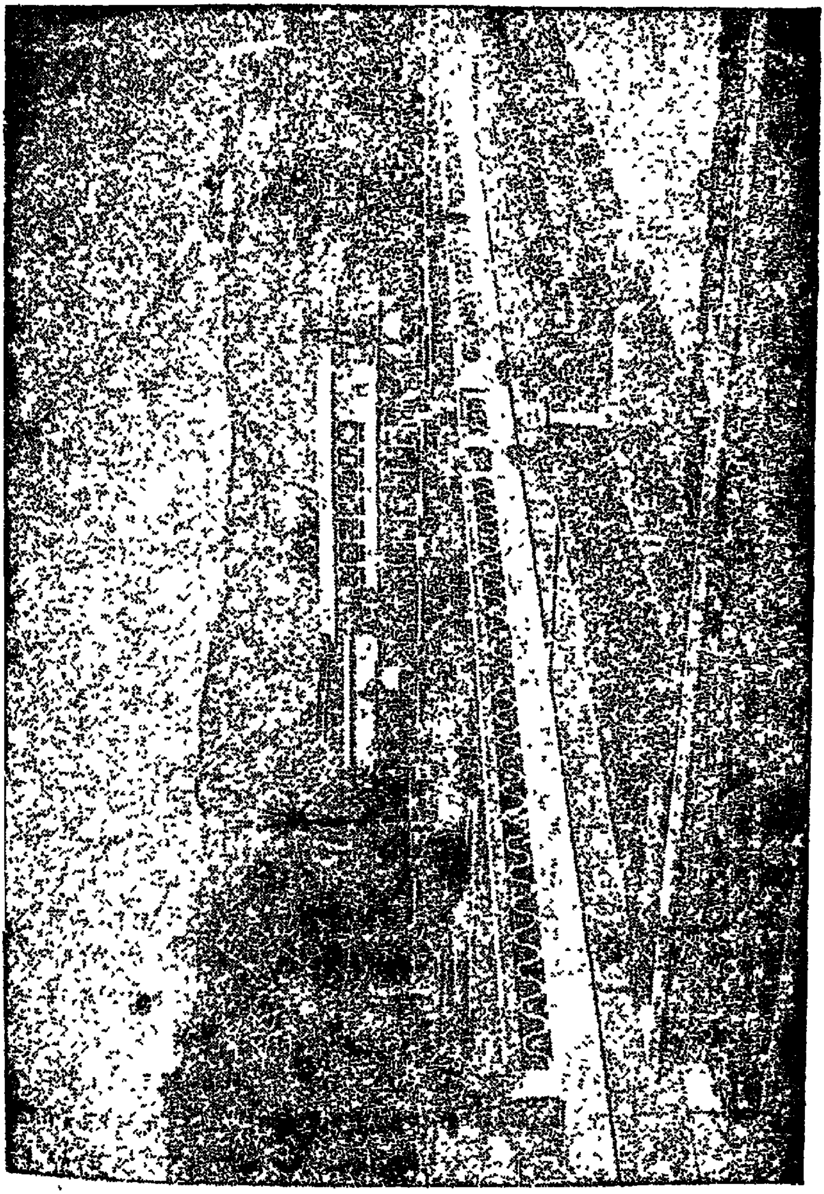

इसके अतिरिक्त नवनिर्मित सचिवालय, नाहरगढ़ का किला तथा सवाई मानसिंह अस्पताल व विश्वविद्यालय भवन भी दर्शनीय हैं।

अजमेर

राजस्थान का दूसरा प्रसिद्ध स्थान अजमेर है। इसे छठी शताब्दी मे अजयपाल नामक नरेश ने बसाया था। इस शहर का प्राचीन नाम अजयमेर है। इसी से बिगड़ते बिगडते अजमेर बन गया। समुद्र के धरातल से लगभग २००० फुट की ऊंचाई पर स्थित यह शहर अपनी स्थिति तथा रमणीयता के लिए विख्यात है। अरावली पर्वतो की श्रेणियो के बीच यह शहर एक घाटी मे स्थित है। तारागढ की चोटी समुद्र की सतह से ३००० फुट ऊची है और आसपास की भूमि से लगभग १००० फुट इस पर एक किला है जिसे इस शहर के बसाने वाले राजा अजयपाल ने ही बनवाया था। यह एक बहुत ही रमणीय स्थान है और शहर से दक्षिण पश्चिम मे स्थित है। यह शहर जयपुर की तरह सुव्यवस्थित ढग से नही बसाया गया है सड़कें और गलिया बहुत सकडी है किन्तु पर्वत के नीचे स्थित होने से इसका सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक है।

यहाँ से लगभग सात मील दूर अरावली पर्वत के दूसरी ओर स्थित पुष्कर की झील बडी पवित्र मानी जाती है। वहां तक पक्की सडक पहाड़ों को काटकर बनाई गई है जो बड़ी सुहावनी है। पुष्कर के किनारे महाराजाओ ने अपने अपने जश्रामालय बनवा रखे हैं। पुष्कर मे ब्रह्माजी का मन्दिर विख्यात है। सम्पूर्ण भारत मे ही यही एक स्थान है जहाँ ब्रह्माजी का भी पूजन होता है—अन्यत्र लोगो ने अपने सृजनकर्ता ब्रह्माजी को ही भुला रखा है।

ख्वाजासाहब की दरगाह के उल्लेख बिना तो अजमेर का वर्णन अधूरा ही रह जायेगा। यह एक ऐसे फकीर की दरगाह है जो ग्यारहवी शताब्दी मे अफगानिस्तान से भारत आया और यहाँ की मुस्लिम जनता के धार्मिक जगत पर छा गया। इस फकीर की मृत्यु के पश्चात् इनके भक्तों ने इस दरगाह मे अनेक भवन बनवा दिए जो अब भी मौजूद है। यहां पर अपार जन संग्रह विशेष अवसरों पर एकत्रित होता है। कहते है इस दरगाह मे ऐसा कड़ाहा है जिसमे १०० मन चावल तैयार हो सकते हैं।

शहर के दक्षिण मे स्थित पुल के दूसरी ओर मेओ कालेज स्थित है। यहाँ पर पहले केवल राजकुमारो को ही प्रवेश मिलता था किन्तु अब यह बन्धन नही रहा।

अजमेर में अनेक दर्शनीय स्थल हैं जिनमे अनासागर तथा 'ढाई दिन का झोंपड़ा' प्रसिद्ध है। अनासागर अजमेर से उत्तर की ओर शहर से सटा हुआ ही

पुष्कर जाने वाली सड़क पर स्थित है। इसी के पास जहांगीर के महल थे जो अब खण्डहर मात्र रह गये हैं।

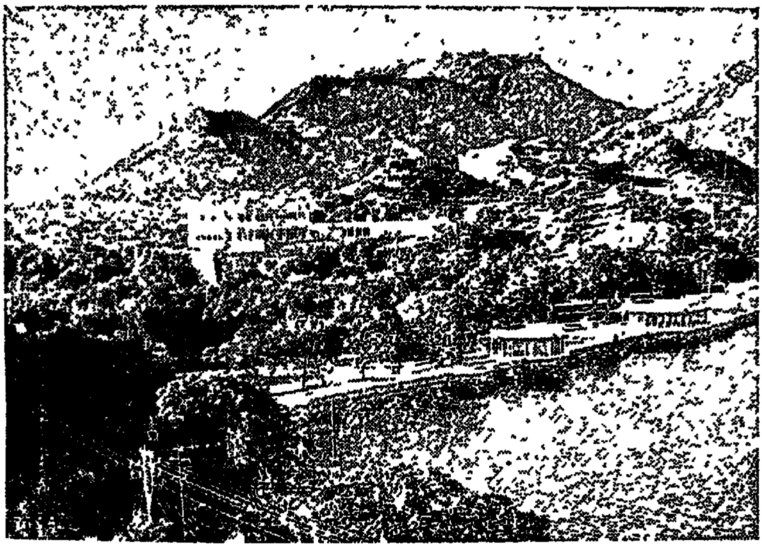

आनासागर

शहर के मध्य में अकबर का किला स्थित है। वैसे यह म्यूजियम के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें विभिन्न प्रकार की प्रस्तर मूर्तियां तथा अस्त्र-शस्त्र संग्रहीत हैं। राणा प्रताप का भाला भी इस म्यूजियम के एक कक्ष में रखा हुआ है। यही वह स्थान है जहां १६१० ईस्वी में तत्कालीन मुगल सम्राट जहांगीर ने इंगलैण्ड के महाराजा के दूत सर टामसरो से भेंट की थी। इस भेंट का बड़ा प्रभावोत्मक वर्णन एक पत्थर-पट्टिका पर खुदा हुआ म्यूजियम के मुख-द्वार पर ही रखा है। लिखावट का भाव यह है—यही वह स्थान है जहां पर सर टामसरो ने १६१० ईस्वी में शाहंशाह जहांगीर के आगे सर्व प्रथम घुटने टेक कर भेंट की थी।

अजमेर में पश्चिमी रेलवे का एक बड़ा भारी कारखाना भी है जहां रेलों के डब्बे बनाये जाते हैं तथा इंजनों की मरम्मत की जाती है।

उदयपुर

राजस्थान के सभी नगरों में अधिक रमणीय और सौन्दर्यशाली यह नगर पिछोला झील के किनारे बसा हुआ है। पर्वतीय प्रदेश—चतुर्दिक पहाड़ियों से आवेष्टित इसका स्वरूप सचमुच बड़ा दर्शनीय है। इसे १६ वीं शताब्दी में महाराणा

उदयसिंह ने बनवाया था। नगर के चारों ओर एक परकोटा है जिसमे शहर बसा है। वस्तुत' यह झीलों का शहर है—घाटियों और पर्वतों का। इसके पास ही घने जंगल है। पर्वत-घाटी जंगल और इनके मध्य में निर्मल जल से पूरित झीलों के कारण उदयपुर पर्यटकों का मन मोहता रहता है। पिछोला झील का यह नाम इसलिए पडा कि इसके निकट ही पिछोला नामक एक गाँव है। इस झील का निर्माण किसी महाराणा ने नही कराया। कहते हैं किसी बनजारे द्वारा यह २॥ मील लम्बी और

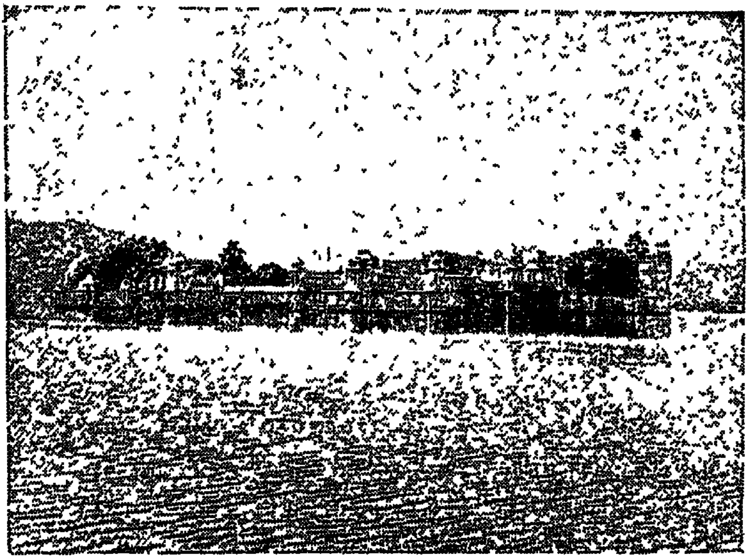

पिछोला झील

१॥ मील चौडी मानव निर्मित सबसे बडी झील आज से लगभग ५०० वर्ष पहले कभी बनवाई गई थी। इसी झील के किनारे उदयपुर के राजाओ का वैभवशाली राजमहल निर्मित है और पीछे शहर।

इसी झील के पास ही एक अन्य झील फतह सागर है—यह १॥ मील लम्बी तथा एक मील चौडी है। यहाँ से ६ मील दूर एक अन्य झील उदय सागर है, इन झीलो के कारण उदयपुर के सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं!

राजमहल के नीचे ही गुलाब बाग है। इसमें स्थित अजायबघर दर्शनीय है। इसी में एक पुस्तकालय भी है।

फतेह सागर बांध के नीचे सहेलियो की बाड़ी है। यह बाग बड़ा ही सुन्दर और सुखद है।

पिछोला झील के बीच में जगमन्दिर है, इसे यहां के राणा जगतसिंह ने बनवाया था। इसी झील के बीच मे जगनिवास भी है। यहा के बगीचे और उनके बीच मे स्थित फव्वारे बड़े आकर्षक है।

शहर के मध्य मे जगदीश चौक है। यही पर महल के समीप ही जगदीशजी का दर्शनीय मन्दिर है। मन्दिर बहुत ऊँचा है। इसमे जगदीश जी की मूर्ति के साथ पार्श्व में गिरिधर नागर की मूर्ति स्थापित है।

जोधपुर

राजस्थान के अपेक्षाकृत अधिक शुष्क पश्चिमी प्रदेश में स्थित इस नगर की नीव आज से ठीक ५०० वर्ष पूर्व सन् १४५९ ई० मे जोधाजी ने डाली थी।

इसकी स्थिति एक छोटी पहाडी के विभिन्न भागो पर है। यह पहाड़ी जगह जगह पर टूटी हुई है और मंडोर तक चली गई है। शहर मे अनेक तालाब है। कोयलाता और बालसमन्द नामक तालावो से शहर को पानी दिया जाता है,

जोधपुर का एक दृश्य

इनकी स्थिति शहर के अन्दर ही है। स्टेशन शहर के मध्य में ही स्थित है। पुराना शहर एक परकोटे से घिरा है जिसमें सात दरवाजे है। परकोटे के बाहर नया शहर दूर तक बसा है। इनमें मेड़ती गेट, सोजती गेट तथा चांदपोल अधिक प्रसिद्ध है। लगभग सारा का सारा शहर छोटी छोटी पहाड़ियो पर स्थित है। शहर के मकान

पत्थरों के बने हैं जो इन्हीं पहाड़ियों से खोद कर निकाले गए हैं। सड़कें संकरी और टेढ़ी-मेढ़ी हैं।

यहाँ के दर्शनीय स्थानों मे प्राचीन किला प्रसिद्ध है। यह किला एक पहाड़ी पर ४०० फुट की ऊँचाई पर निर्मित है। इस किले के समीप ही संगमरमर से निर्मित जसवन्त महल अत्यन्त दर्शनीय है। मेडती दरवाजा प्रमुख प्रवेश द्वार है और इसी के पास एक सार्वजनिक बाग है। यह बाग बडा ही सुन्दर है। इसमें एक पुस्तकालय और चिडियाघर है।

जोधपुर के अन्य दर्शनीय स्थानो में प्रमुख पुरातत्व विभाग का विशाल संग्रहालय है। इसमें प्राचीन काल की विभिन्न वस्तुएँ संग्रहीत हैं। गोरा धाय का स्मारक भी अच्छा है। यह सार्वजनिक बाग के समीप ही है। छीतर की पहाड़ी पर पीले पत्थरों से बना हुआ उम्मेद भवन बड़ा भव्य लगता है।

इनके अतिरिक्त जोधपुर का इंजिनियरिंग कालेज, नमक के सोडियम सल्फाइड बनाने का कारखाना तथा हवाई अड्डा भी दर्शनीय हैं। यहाँ का एयरोड्राम जलवायु की दृष्टि से भारत के अच्छे एयरोड्रामो मे से एक है। यहाँ पर उड़ाकों के प्रशिक्षण की भी सुन्दर व्यवस्था है।

बीकानेर

जोधपुर नगर की नीव डालने वाले जोधाजी के एक पुत्र बीकाजी ने बीकानेर ी नीव डाली थी। उन्ही ने इस शहर को बसाया था। इसीलिए उनके नाम पर ही इस नए बसाए शहर का नाम बीकानेर पड़ा। सारे शहर के मकान लाल पत्थरों से निर्मित हैं। सम्पूर्ण नगर एक परकोटे से घिरा हुआ है जिसमे अनेको दरवाजे हैं।

नगर मे दो किले हैं—एक प्राचीन तथा दूसरा अर्वाचीन। इन दो दर्शनीय स्थानों के अतिरिक्त अन्य अनेक सुन्दर स्थान हैं जिन्हे पर्यटकों को अपनी रमणीयता के कारण आकर्षित नरने का गौरव प्राप्त है। उनमे एक सार्वजनिक उद्यान का नाम प्रथम आता है। इस उद्यान को 'गंगानिवास' की संज्ञा दी गई है। यह किले के सामने ही है। बीकानेर जैसे शुष्क प्रदेश के लिए नगर में इस उद्यान का होना बड़ा महत्वपूर्ण है। इसी उद्यान में एक अजायबघर भी है।

बीकानेर का, 'सूर सागर' भी दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त सरकारी अस्पताल तथा विद्युत्गृह इत्यादि भी दर्शनीय है। शहर के चारों ओर रेत के टीले हैं। कुछ टीले तो शहर में भी पाए जाते हैं !

अब यहाँ का रेलवे स्टेशन भी बहुत अच्छा बन गया है। यह शहर से-सटा हुआ ही है।

यहां लक्ष्मीनाथजी का मंदिर, पब्लिक पार्क, लालगढ़ पैलेस, जूनागढ़, कोटगेट

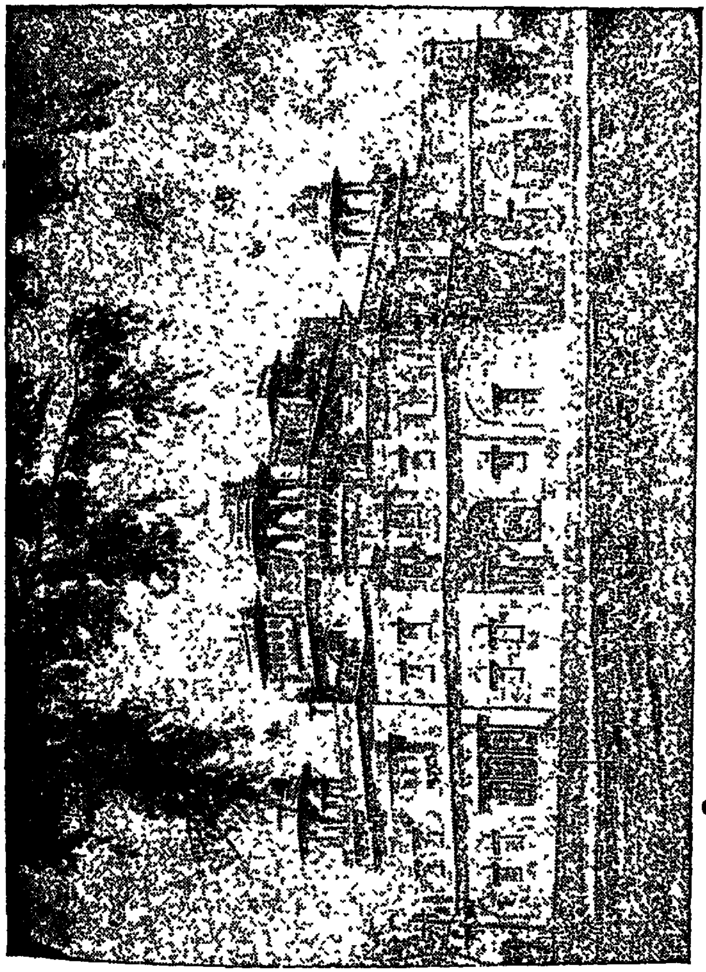

लालगढ़ पैलेस

ावबाड़ी, कोलायतजी, गजनेर व सूरसागर आदि दर्शनीय स्थान है ।

सत्रहवां अध्याय

सड़कों तथा गलियों की सफाई

हमने राजस्थान के कुछ प्रमुख शहरो का अध्ययन अभी-अभी किया है। वैसे इन शहरों का बाहरी स्वरूप बड़ा आकर्षक है, पर कही-कही गलियो और सड़को से गुजरने का जब अवसर आता है, तो विदित होता है कि इन शहरो का भीतरी स्वरूप कैसा है। दुःख तो तब होता है, जब राज्य की राजधानी जयपुर मे इन गलियों का नग्न रूप सामने आता है।

साधारणतया शहरो और कस्बो में गलियां दो प्रकार की होती हैं। एक आवागमन तथा अन्य सवारियो के आने-जाने के लिए, दूसरी वह जो अधिकतर पुराने बसे हुए शहरो में दो मकानो की कतारो के बीच मे होती हैं। दूसरे प्रकार की गलियां घरो मे से कूडा-करकट तथा गन्दगी को निकालने के लिए अधिकतर काम में लाई जाती हैं, इनमे से हो कर भगी वगैरह अपना काम करते हैं। देहातों में जहां आवादी बहुत कम होती है, और आवागमन कम होता है, गलियो का उतना महत्त्व नही है। किन्तु शहरों और कस्बो में इनका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि एक तो यहां आवागमन बहुत रहता है, दूसरे बस्ती घणी होने के कारण स्वास्थ्य के लिहाज से मकानो के बीच मे नालियो का छोडना आवश्यक हो जाता है ताकि उचित संवातन मे अधिकाधिक सहायता मिल सके।

संवातन दो प्रकार का होता है। एक घरो मे, जिसे आन्तरिक संवातन कहते हैं, दूसरा बाह्य सवातन जो गलियो मे होता है। आन्तरिक संवातन बहुत कुछ बाह्य संवातन पर निर्भर है, क्योंकि गलियां शहर को चौड़ी सड़कों से मिली होती हैं, और सडके शहर के बाहरी भागो से। गलियों से एक लाभ यह भी है, कि इनसे हो कर ही शहर का-कूडा करकट मकानो से बाहर जाता है।

गन्दी गलियाँ:—हमारे यहां ज्यादातर गलियां बहुत ही गन्दी रहती हैं। यही नहीं; छोटे नगरो मे देखें तो पावेगें कि वहां की गलियां सीधी नही बल्कि टेढ़ी-मेढ़ी, कच्ची-सकड़ी व अंधेरी सी होती है। गलियों का सीधा होना इसलिये जरूरी है कि उनसे उस गली की गन्दी हवा एक छोर से दूसरे छोर तक पवन के जोर से जा सके और इस तरह गन्दी हवा गलियों व घरों से दूर चली जाती है और उसकी जगह अच्छी हवा आती है और यही अच्छी हवा घरो में जाती है। गलियो के

कच्ची होने के वजह से घरों मे से जो भी मैला निकलता है वह गलियों में इकट्ठा होता रहता है, सबसे अधिक गंदगी तब होती है जब वर्षा में गलियो मे से मल इत्यादि सब बहकर आवागमन वाली गलियों में कीचड़ के रूप मे जमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त गलियाँ कही ऊँची व कही नीची होती है। इससे पानी बाहर नही निकल पाता और वह वही गड्ढों मे इकट्ठा हो जाता है। घरों का कूड़ा-करकट भी गलियों मे बिखरा पड़ा रहता है। उसको डिब्बो मे डालना तो दूर रहा वह आराम से दो तीन मंजिल ऊपर से ही गलियों मे डाल दिया जाता है। इस तरह शहरो की गलियों में गंदगी इकट्ठी होती रहती है।

इन सब बातों की वजह से गलियों में काफी बदबू आती रहती है। जयपुर जैसे शहर मे भी जहाँ गलियाँ सीधी व अच्छी तरह से बनी हुई है, सफाई का पूरा प्रबन्ध नही है और काफी बदबू आती रहती है। जहाँ कही भी कूड़ा करकट तथा पनाले का पानी इकट्ठा होता है वहां मक्खियां व मच्छरो के पैदा होने का बड़ा डर रहता है और वास्तव मे राजस्थान के अनेक शहरो में इन सब गन्दगियो के कारण मच्छर व मक्खियों का प्रकोप रहता है। दूसरे चूहे जो कई प्लैग जैसी भयानक बीमारी फैला सकते है, कूडे-करकट मे काफी पनपते है; क्योंकि वहां उनको खाने को काफी मिल जाता है। मक्खी व मच्छर हैजा, मियादी बुखार, हाथीपांव इत्यादि कई बीमारियां फैलाते है।

इन सब के अलावा नागरिकों की असावधानी, अज्ञानता व आदत की वजह से छोटी-छोटी गलियों तथा सडकों के किनारे भी लोग इधर-उधर देखकर टट्टी-पेशाब से अपवित्र कर देते है। बच्चो का तो यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि उन्हे बाहर ही पाखाने बैठाया जाय। पर साथ ही वयस्क व्यक्ति भी इस अपवित्र कार्य में हाथ बँटाने से अवसर नही खोते। अंत में यत्र–तत्र थूकने की प्रथा व घर का कूड़ा, गाय, भैसों का गोबर इत्यादि भी इस गन्दगी को बढाने मे बहुत सहायक होते है। गलियां कई जगह तो इतनी अँधेरी पाई जाती है कि वहां से दिन में निकलना भी कठिन होता है।

कारण :— इन सब गन्दगियों के दो प्रमुख कारण है। एक तो नागरिक, दूसरा नगरपालिका व राज्य सरकार। नागरिक के अज्ञान व असावधान होने के कारण वे अपनी पुरानी परिपाटी नही छोड़ना चाहते; दूसरे लोग गरीब होने की वजह से घरों में गन्दगी तथा कूड़े करकट को हटाने के लिए आधुनिक व्यवस्था नही कर सकते। इस कारण सारी गन्दगी खासतौर पर मल वैगरह भगी ही निकाल कर ले जाते है। यह मल-मूत्र साफ करने का सबसे गन्दा तरीका है। पाश्चात्य देशो मे

तो ऐसा तरीका नाम मात्र को भी नहीं पाया जाता। वहां गन्दगी व रसोई आदि का कूड़ा भी नालियों द्वारा जमीन के नीचे से दूर ले जाया जाता है, जहा उसे कुछ साफ करके पेड़ पौधों की सिंचाई के कार्य में ले लेते है।

जहां तक नगरपालिका का प्रश्न है, यह उसका उत्तरदायित्व है कि वह कुछ एक ऐसे नियम बनाये कि लोगों का सड़को पर टट्टी जाना बन्द हो सके; दूसरे सड़को की चौड़ाई निर्धारित करे, अगल-बगल के मकानों की ऊंचाई व दो मकानो के बीच के जगह छोड़ने का कानून बनावे जिसे मानने के लिए सख्ती से कामले। जहां भी नई बस्तियाँ बसाई जाय वहां पर सड़के सीधी, चौड़ी व हवादार बने। नगरपालिका का दूसरा कार्य यह है कि शहर की गन्दगी को उठाने का प्रबन्ध करे। गन्दी नालियो को जो कि कच्ची हैं उठवाकर उसकी जगह पक्की नालियाँ बनवाये जिससे पानी अच्छी तरह बह जावे। कूड़े-करकट उठवाने का समुचित प्रबन्ध करे। शहरो मे सार्वजनिक टट्टी घर हों तथा पेशाब घर भी। उनकी सफाई का प्रबन्ध हो। इनके अलावा शहर में प्रकाश का भी अच्छा प्रबन्ध हो तथा सड़को की सफाई का सुन्दर प्रबन्ध होना चाहिए।

अच्छी सड़क :—अच्छी सड़क वह होती है जिस पर आवागमन मे कोई रुकावट न हो। मुख्य सड़कें कम से कम १०० फीट चौड़ी हो व हवा के प्रवाह की तरफ हों। सीधी हों तथा एक दूसरे को समकोण पर काटती हो। कोई भी गली २० फुट से कम चौड़ी नही होनी चाहिये। मकानो के पीछे कम से कम १५ फुट चौड़ी गलियां हो। पैदल चलने वालो के लिए फुट-पाथ का होना आवश्यक है। सड़कों पर पेड़ों का होना आवश्यक होता है। वे छाया देते है और संवातन मे सहायता करते हैं। नालियां अंग्रेजी अक्षर 'एल' (L) की तरह हो जिनमे से पानी अपने आप बह जावे। कूडे-करकट डालने के लिए डिब्बे ऊंचे चबूतरे पर रखे रहने चाहिये, उन्ही मे लोगो को कूड़ा डालना चाहिए। ये डिब्बे नित्य या दो दिन में एक बार नगरपालिका द्वारा अवश्य खाली करा दिये जावे। शहर मे चलते-फिरते लोगो को कूड़ा डालने के लिए छोटे छोटे डिब्बे लगे हो। यह तारो के छीके जैसे होते है जो प्रकाश के पास लगे रहते है। कागज के टुकडे इत्यादि उसमें डाल देते है। ये डिब्बे पेरिस, न्युयार्क मे तो जगह जगह लगे रहते है। ये सार्वजनिक टट्टी–पेशाबघर रास्ते के कुओं पर तथा कुछ कुछ दूर पर होने चाहिये। सड़क के दोनो ओर के मकानों की ऊंचाई सड़क की चौड़ाई से ज्यादा न हो। ऐसी सड़क को अच्छी सड़क कह सकते हैं। जयपुर मे ऐसी काफी सड़कें है। कई जगह तो सड़को की नित्य

धुलाई होती रहती है, जैसे पेरिस में। यदा कदा नालियों मे मच्छर मारने की दवाई D. D. T. वगरह छिड़कनी चाहिये।

उनके उपाय :—सड़को को अच्छी बनाने या रखने के कुछ मुख्य मुख्य उपाय निम्नलिखित है :—

(१) जब कभी नई बस्तियां बसाई जावे तो योजना बनाते समय यह ध्यान रखा जावे कि सड़कों को सीधा, पक्का और चौड़ा बनाना है। इनकी मुख्य मुख्य बाते अच्छी सड़कों के प्रसंग में बताई जा चुकी है।

(२) अच्छी सड़को को साफ रखने का कार्य नागरिको और नगरपालिका दोनो पर है। नागरिको को गन्दगी के कीटाणुओ—मच्छर व मक्खियों आदि से पैदा होने व उनसे बीमारी फैलने के कारण तथा इनसे बचने के उपाय आदि का ज्ञान कराने के पश्चात् स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिए। यह पुस्तिकाओं तथा फिल्मों आदि से भी दी जा सकती है।

(३) नगरपालिका को चाहिए कि जब तक जनता के लिए सारे शहर या बस्ती की सफाई के लिए पक्की और ढकी नालियों का प्रबन्ध न हो सके तब तक भगियों द्वारा सफाई का अच्छा प्रबन्ध रखे। साथ ही नगरपालिका को दृष्टिगत करते हुए मकान व सड़को के निर्माण के बारे मे समुचित नियम बनाने चाहिये और देखना चाहिये कि नागरिक उन नियमों का पूर्णतया पालन करते हैं या नही। कूड़ा-करकट उठाने तथा सड़को की धुलाई के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। जहां तक हो सके कूड़ा-करकट के लिए डिब्बे सड़क के किनारे रखवाने चाहिए। अन्त में सड़कों को आवागमन की दृष्टिकोण से चौड़ी, स्वच्छ तथा प्रकाशित रखना चाहिए।

अट्ठारहवाँ अध्याय

सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान

सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान स्वास्थ्य रक्षा (विज्ञान) की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध समाज के सामूहिक स्वास्थ्य के हितो से है। उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है, किन्तु कतिपय विचारको की धारणा है कि सामाजिक स्वास्थ्य रक्षा केवल यौन समस्याओं तथा उनके कारण उत्पन्न बीमारियों को दूर करने, रोकने तथा उन्मूलित करने तक ही सीमित है।

समाज के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले कारण अनेक है। इनके रीति-रिवाज, विश्वास, विचार-धारायें, रहन-सहन के तरीके, व्यवसाय, भोजन, गृह तथा शिक्षा व आपके साधन प्रमुख हैं। आय, गृह-व्यवस्था तथा व्यवसाय का सामूहिक स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पडता है, उसका अध्ययन करने से विदित हुआ है कि जो गन्दी बस्तियों (Slum Houses) मे रहते है उनमे छूत की बीमारिया, पोषण तत्वो के अभाव से उत्पन्न बीमारिया तथा मानसिक रुग्णताए औरो की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। क्षय या तपेदिक का रोग तो निश्चित रूप से निम्नश्रेणी के सामाजिक आर्थिक स्थिति वालो में अधिक पाया जाता है। इनके अतिरिक्त इन निम्नश्रेणी में पाई जाने वाली व्यक्तियो मे अन्य अनेक बीमारियां जैसे मद्यपान तथा वैश्यागमन इत्यादि भी अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है, जिनका कारण मनोवैज्ञानिक अधिक होता है। इन लोगों की आर्थिक स्थिति बड़ी ही दयनीय होती है, इस कारण वे व्यक्ति दवादारू पर या पौष्ठिक भोज्यपदार्थों पर व्यय नही कर पाते। साथ ही अपने घर को या आस-पास के स्थान को स्वास्थ्यवर्द्धक नही रख सकते। इन कारणो से न केवल इस समाज मे स्वास्थ्य का मापदण्ड ही बहुत नीच है, अपितु मृत्यु भी अधिक होती है।

सामाजिक स्वास्थ्य का दूसरा भयानक शत्रु व्यक्ति के यौनसम्बन्धो की अनुशासनहीनता अथवा उच्छृंखलता है। इसका प्रमुख कारण बदचलन है जिसके परिणामस्वरूप अनेक कष्टसाध्य बीमारियां हो जाती हैं। इन बीमारियो को सांसर्गिक बीमारी के अन्तर्गत मानते है क्योकि ये बीमारिया व्यक्तियो के पारस्परिक संसर्ग से ही एक से दूसरे तक जाती हैं। पहाड़ी इलाको मे यह बीमारी ५० प्रतिशत लोगो मे पाई जाती है। इन्ही भयकर बीमारियो का विकृत रूप है पागलपन,

अन्धापन तथा बन्ध्यापन इत्यादि । सम्भवतः यह जानकर आश्चर्य होगा कि ३०–४० प्रतिशत भ्रूण हत्यायें, ५० प्रतिशत बन्ध्यापन, ४०–६० प्रतिशत अन्धापन तथा ४० प्रतिशत पागलपन इन्ही सांसर्गिक रोगो के कारण होते हैं।

इन बीमारियो को दूर करने की आवश्यकता है जिससे कि वेश्याओं को सफल और स्वस्थ नागरिक बनाया जाय । सरकार ने यद्यपि उन पर प्रतिबन्ध लगा रखा है पर जब तक उनकी जीविका के लिए कोई अन्य मार्ग नही निकलता तब तक समाज का यह कोढ़ पूरे समाज को विषाक्त करता ही रहेगा । उन्हे विभिन्न सुधार केन्द्रों मे भेज कर सिलाई, बुनाई, कताई इत्यादि उपयोगी कलाओ की शिक्षा मिलनी चाहिए ताकि वे अपना जीवन निर्वाह कर सके ।

साथ ही स्वास्थ्य केन्द्रो को जगह-जगह पर खोल कर साधारण जनता को जनस्वास्थ्य का महत्व तथा उसकी रक्षा के उपायो से भली भाति अवगत कराना चाहिए । इश्तहारो, चलचित्रो तथा योग्य सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा भी यह कार्य सरलता पूर्वक समपन्न किया जा सकता है ।

सामाजिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए जनता को इस प्रकार की भी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह किस प्रकार कम आय पर भी स्वच्छता तथा कलात्मक रूप मे अपना जीवन निर्वाह कर सकती है । उसमें से हीन भावना को निकाल जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण बनाने की आवश्यकता है । अपने तथा पारिवारिक जीवन को तथा सामाजिक जीवन को सुखमय तथा जीवन को स्वस्थ बनाने के लिए रुपया ही एकमात्र साधन नही है । पारस्परिक सहयोग, व्यक्तिगत परिश्रम तथा दृढ़ता, कलाप्रियता, स्वास्थ्य के प्रति अनुराग तथा इसके महत्व को समझना कुछ ऐसी बाते हैं जिन पर जनस्वास्थ्य की सुरक्षा बहुत निर्भर है ।

सामाजिक स्वास्थ्य के लिए नगर पालिकाओ का (जहां पर उनका अस्तित्व हो) अथवा नागरिकों का बहुत उत्तरदायित्व है । उपयुक्त जल का प्रचुर मात्रा मे मे प्रस्तुत करना एक व्यक्ति पर ही निर्भर नही होता, यह एक सामाजिक कार्य है । जल के अभाव मे गन्दगी और फिर उससे पैदा होने वाली बीमारिया विशेष कर छूत की बीमारियां सुविधा पूर्वक फैल सकती है ।

सामाजिक स्वास्थ्य के लिए जो व्यक्तिगत रूप से कार्य आवश्यक है वे व्यक्तिगत स्वास्थ्य के अन्तर्गत वर्णित है, अतः पुनरावृत्ति अनावश्यक प्रतीत होती है ।

उन्नीसवां अध्याय

मानव का अस्थिपंजर

मनुष्य का शरीर लगभग कुल 200 हड्डियो का बना होता है। इन हड्डियो का एक आधारी ढाचा है, जो माँस पेशियो द्वारा जुड़ा रहता है।

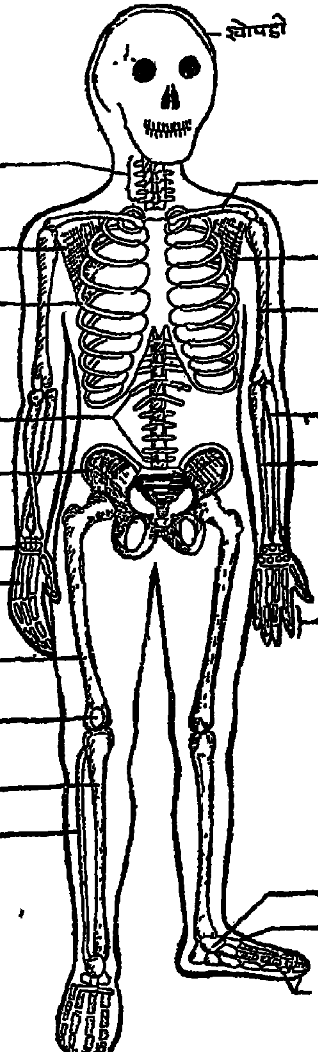

इसकी उपयोगिता:—(1) यह शरीर के कुछ कोमल अंगों की, जैसे–हृदय फेफड़े आदि की रक्षा करता है। (2) यह शरीर को एक निश्चित आकार प्रदान करता है। (3) हिलने डुलने की क्रिया भी इसी के द्वारा होती है। (4) इसके द्वारा जीवों में शरीर की आकृति स्थिर रहती है। (5) हड्डियों व मासपेशियों को आपस में खिचाव रखने का स्थान देती है। (6) कुछ विशेष हड्डियां शरीर के विभिन्न अंगों को सहारा प्रदान कर–उन्हे अपने अपने स्थान पर रखती हैं।

मानव का कंकाल संस्थान (Skeleton) निम्न तीन भागों मे विभाजित है:— सिर, धड़ एवं हाथ पैर की भुजाऐ। मानव का सिर कुल 32 हड्डियो का बना होता

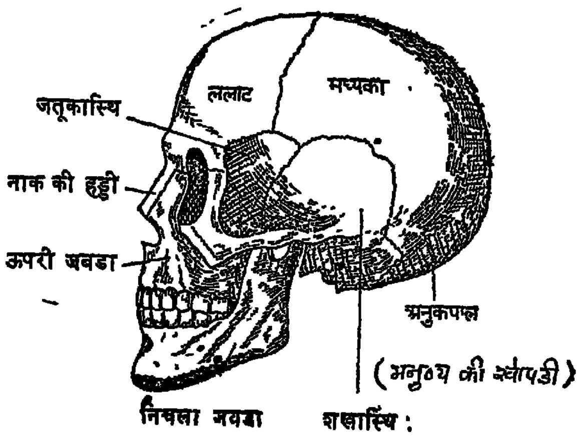

(मनुष्य की खोपड़ी)

है, जो आपस में जुड़ी रहती हैं। इनमें से 8 हड्डियां मस्तिष्क का निर्माण करती हैं। यह मस्तिष्क की रक्षा भी करती है। इनको क्रेनियम (Cranium) कहते हैं। तथा अन्य हड्डियां चेहरा बनाती है। इसमे ऊपरी व निचला जबडा भी सम्मिलित है, जो सरलता से ऊपर नीचे किया जा सकता है।

रीढ की हड्डी (Vertebral Column) :—यह मेरुदन्ड कुल 33 छोटी छोटी हड्डियों से बना होता है। यह छोटी हड्डियां कशेरूका (Vertebral) कहलाती हैं, यह कशेरूका आपस में एक दूसरे से जुड़ी रहती है, जिससे इनमें लचक रहती है। यह कमर को सीधा खड़ा रखने मे सहायता देती है। शरीर के मेरुदण्ड में इनका विभाजन इस प्रकार है:—गर्दन में 7, वक्ष मे 12, उदर में 5, और 5 कशेरूकाऐं आपस में मिलकर एक संयुक्त हड्डी बनाती है, जिसे सेक्रम (Sacrum)

कहते है । अन्त में 4 कशेरूकाऐ आपस मै मिलकर एक संयुक्त हड्डी बनाती हैं जो पुच्छास्थि कहलाती है, यह बाहर नही दिखाई देती । प्रथम कशेरूका को शिरोधर या एटलश कहते है, इसी के ऊपर सिर स्थित रहता है ।

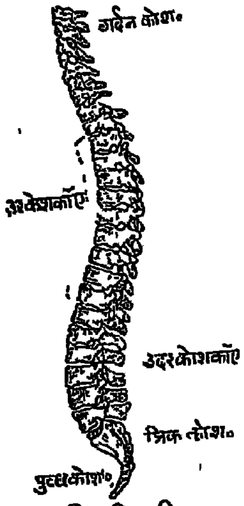

(रीढ की हड्डी)

वक्ष (Thorax) :—इसमे यह कशेरूकाऐं पसलियां कहलाती है, जो 12 के जोडे अर्थात् कुल सख्या मे 24 होती है । इनमे अगली 10 पसलियो का एक सिरा रीढ की हड्डी तथा दूसरा स्टरनम वक्ष की हड्डी से जुडा रहता है । नीचे की दो पसलिया किसी से नही जुडी रहती है । यह फ्लोटिंग पसलिया (Floating Ribes Floting) कहलाती है । ऊपर वाली पसलियाँ छोटी और नीचे वाली बडी होती है । यह वक्षस्थल नीचे से ऊपर की उपेक्षा अधिक चौडा होता है ।

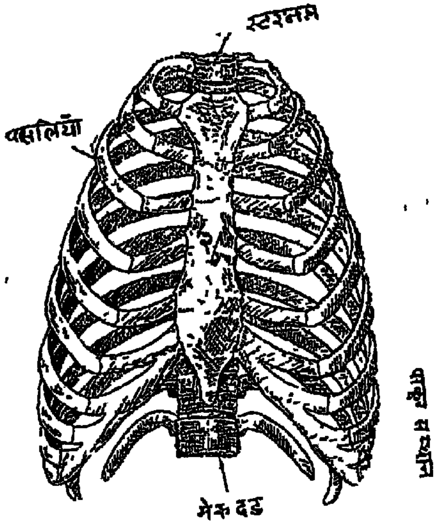

धड के दो चक्र होते हैं । इनमे दो हड्डियां मुख्य हैं । (1) कन्धे की हड्डी (Shoulder Girdle) तथा (2) कूल्हे की (Pelvic Girdle) हड्डी ।

कन्धे की हड्डी (Shoulder Girdle):—यह दो मुख्य हड्डी की बनी होती है । (1) पहली तो कुछ चपटी, तिकोनी होती है जो स्केपुला (Scapula) कहलाती है । पसलियों के समान इसकी भी दो जोडी होती है । यह आगे की कुछ पसलियो को ढके रहता है । इसके अगले सिरे पर एक गोल गुट्टा होता है, जिसे ग्लिनायड–गुट्टा (Glenoid Cavity) कहते हैं । इस गुट्टे मे हाथो की अगली हड्डी मे ह्यूमरस (Humrus) गोल सिरा के आकार का लगता है । यह स्केपुला रीढ की हड्डी से जुड़ी नही होती है ।

दूसरी हड्डी गले के नीचे, ठीक पसलियो के ऊपर लम्बी शलाका (Rod) के रूप मे होती है। यह हंसली की हड्डी (Clavicle) कहलाती है। इसका एक सिरा तो वक्ष की हड्डी से तथा दूसरा सिरा कधे की हड्डी से जुड़ा रहता है। यह कोलर बोन (Collar Bone) भी कहलाती है। यह हड्डी मजबूत नही होती है। अन्य हड्डियों की अपेक्षा यह जल्दी टूट भी सकती है।

नितम्ब हड्डी या पेल्विक ग्रीडल (Pelvic Gridle):—यह भी दो समान भागो मे विभाजित रहती है, जो तीन हड्डियो के संयुक्त होने से बनती है। इसके मध्य भाग मे एक गड्ढा होता है जो एसीटाबुलम (Acetabullum) कहलाता है। इसी गड्ढे मे जांघ की हड्डी फीमर (Femur) का गोल सिरा लगा रहता है। यह एसोटाबुलम कैवेटी तीन हड्डिया इलियम (Ileum), इश्चियम (Eshchium) व प्यूबिस (Pubis) नाम की हड्डी से संयुक्त होने से बनता है।

हाथ एवं पैर की हड्डी:—इन हड्डियो की रचना मेंढक की हड्डियों के समान होती है। हाथ की हड्डी में ह्यूमरस (Hum rus) रेडियो–अल्ना (Radio Alna) कलाई मे कार्पेल्स और हथेली (Palm) मे मेटाकार्पेल्स तथा अंगुलियों में अंगुली पर्व (Phalanges) रहती है। ह्यूमरस (Humrus) एक लम्बी हड्डी होती है। इसका गोल सिर वाला भाग कन्धे की हड्डी की गुहा में स्थिर रहता है। इसके द्वारा हाथ किसी भी दशा मे हिल डुल सकता है। रेडियो तथा अल्ना ये दोनों पृथक पृथक रहती है। वह आपस मे दो होती है। हाथ की कलाई मे आठ हड्डियां होती है। यह दो कलार मे मौजूद रहती है। यह कलाई मे लचक उत्पन्न करती है। हथेली मे 5 लम्बी हड्डियां होती है। अंगुलियों मे छोटी छोटी 3–3 तथा अंगूठे में छोटी दो हड्डियां होती है।

इस प्रकार पैर में जांघ की हड्डी (Femur) टांग में दो टिबिया (Tibia) तथा दूसरी फीबिला (Febla) होती है। घुटने में कलाई से एक हड्डी कम रहती है। एक हड्डी एड़ी की हड्डी (Heel Bone) कहलाती है। पैर मे लम्बी 2 हड्डियां होती है। प्रत्येक उंगली में तीन तीन तथा अंगूठे में ये दो होती है।

जोड़ (Joints) :—हड्डिया एक दूसरे से मांसपेसियों द्वारा जुड़ी होती है, जो आपस मे सधी रहती हैं। दो हड्डियों के स्थान को जोड़ (Joints) कहते है।

यह जोड़ कई प्रकार के होते हैं —कधे का जोड, गेद तथा साकेट जोड़ (Ball and Socket Joint) कहलाता है। यह प्रायः सभी दिशाओ में गति कर सकता है। खोपड़ी एवं प्रथम कशेरूका का जोड़ चूल का जोड़ (Pivut Joint) कहलाता है। साथ ही साथ कुछ जोड़ गतिहीन भी होते है।

मासपेशियां (Muscles) :—हमारे शरीर मे गति का आरम्भ मांसपेशियों द्वारा होता है, यह मांसपेशियां अनेकों तन्तुओ की बनी होती है। यह बहुत ही शक्तिशाली होती है, जो मानव को भारी से भारी कार्य करने में मदद करती हैं। मासपेशियां निम्न दो प्रकार की होती है :—

(1) ऐच्छिक (Voluntary Muscles) (2) (Involuntary Muscles)

ऐच्छिक मांसपेशियां इच्छानुसार गति करती रहती है तथा यह हड्डियों से जुडी रहती है। अनैच्छिक मासपेशियां लगातार कार्य करती रहती हैं। हृदय आदि में अनैच्छिक मांसपेशियां ही मिलती है। यह हड्डियो से जुडी नही होती।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) कंकाल सस्थान से क्या समझते है ? इसकी उपयोगिता का वर्णन करें।

(2) रीढ की हड्डी का पूर्णरूप से वर्णन करते हुए उसका चित्र भी खीचें।

(3) नितम्ब हड्डी तथा कन्धे की हड्डी की परस्पर तुलना करे।

(4 हाथ एव पैर की हड्डियो का चित्र सहित सक्षिप्त वर्णन करें।

बीसवां अध्याय

मानव का पोषण संस्थान

(Digestive system of man)

भोजन समारे लिए बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इससे शरीर की वृद्धि एवं शक्ति प्राप्त होती है। उत्तम स्वास्थ्य अच्छे भोजन पर निर्भर है। इसलिए भोजन में उन सब तत्वों का होना आवश्यक है जो हमारे लिए उपयोगी है। अतः यदि भोजन का पोषण अच्छी तरह नही हो सका तो यह भोजन हमारे लिये बिलकुल व्यर्थ होगा इसलिए भोजन का पचना बहुत ही जरूरी है।

1. **पाचनक्रियाः**—यह वह क्रिया है जिसमे भोजन मे आये अघुलनशील पदार्थ घुलन अवस्था मे परिवर्तित करके शारीरिक गठन करने मे समर्थ हो सके।

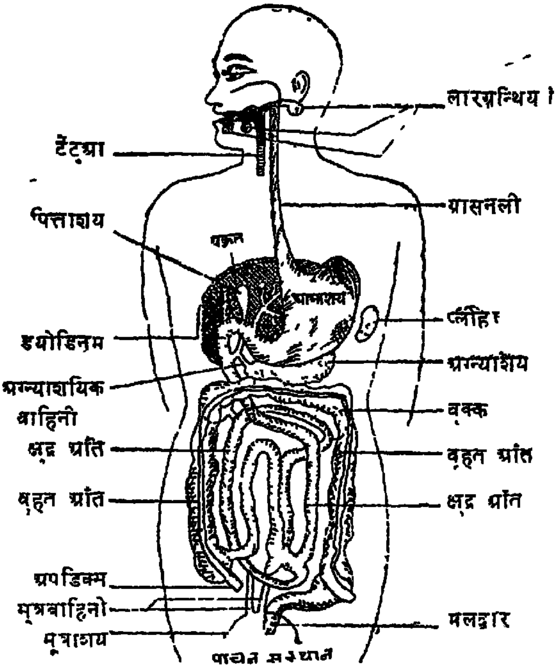

पाचन संस्थान

2. पाचन के अंग:—पाचन अग एक विशेष नली से लगे रहते है, जिसे आहार प्रणाली (Alimentary cavity) कहते है। यह अग निम्न प्रकार है:—

- (1) मुखगुहा (Buccal cavity) (2) रालग्रन्थि (Salivary glands) (3) गला (Pharynx)। (4) अन्न नली (Oesophagus or food pipe) (5) आमाशय (Stomach')। (6) पक्वाशय (Duodenum)। (7) यकृत एव क्लोम (Liver and pancreas)। (8) छोटी एवं बडी आत (Small and large Intestine)। (9) रेक्टम (Rectum)। (10) मलद्वार (Anus)

मुख.— भोजन सबसे पहले मुख मे आता है। यहां पर आया हुआ भोजन दातो से तोड़ दिया जाता है। दात तीन प्रकार के होते हैं। पहले चीरने वाले, दूसरे काटने वाले और तीसरे चबाने वाले। जब यह भोजन चवाया जाता है तो राल

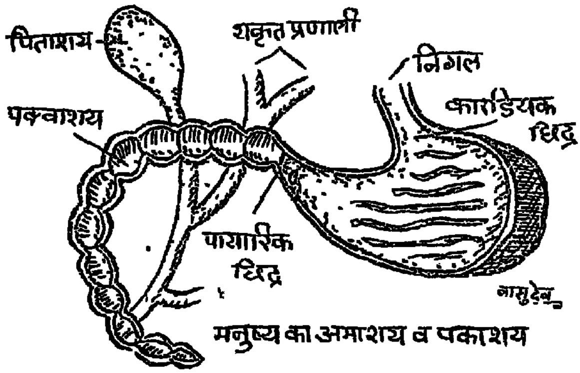

मनुष्य का अमाशय व पक्वाशय

ग्रन्थियो से एक विशेष प्रकार का रस मिलता है, जिसे राल (Saliva)कहते है। Saliva तीन विशेष राल ग्रन्थियो से निकलता है, जिनमे से दो तो ताल के ऊपर होती है और क्रमश: Sublingual तथा (Paraphinery) कहलाती है, जो जीभ के नीचे होती है, यप (Sublingual Salivary Gland) कहलाती है। इसी राल में टाइलिम नामक एक विकार होता है जो कि माडी (Starch) को घुलन शील अवस्था मे परिवर्तित करके शक्कर आदि के रूप मे बदल देता है। इनमे (Tylin) नामक एक और रस होता है जो कि भोजन के निगलने मे मदद करता है। टाइलिन नमक और चीनी के कणों को भी घुलाने की शक्ति रखता है। इसके बाद भोजन Pharynx मे पहुचता है।

कंठ (Pharynx:)—यह खोपडी के नीचे के हिस्से मे स्वास नली के ऊपर तक फैला होता है। इसके ऊपर और सामने नाक का पिछला हिस्सा होता है और कठ जड़ और जीभ की जड़ पर स्वर यन्त्र स्थित रहते है। इसी स्थान से भोजन

नली और वायु नली शुरू होती है। इस स्थान पर एक मांस का लोथड़ा सा लगा रहता है, जो कि भोजन करते समय वायु नली को ढक लेता है और एक वाल्व का सा काम करता है।

अन्न प्रणाली (Oesophagus)—यह करीब १० इन्च लम्बी और स्वास नली के पीछे स्थित होती है। भोजन मुँहद्वार से निकलकर निगलद्वार मे होता हुआ इस नली मे पहुचता है। यहा पर यह सीधा कठ द्वार मे जाकर निगल नली में प्रवेश करता है, क्योंकि Epigllotis बद हो जाता है। इस नली के द्वारा भोजन आमाशय तक एक विशेष क्रिया द्वारा पहुचता है, जिसे तरग गति कहते है। यह निगल नली के सकोचन एव विमोचन क्रिया द्वारा होता है। वास्तव मे जैसे जैसे खाना अन्न प्रणाली मे पहुंचता है, इसकी तमाम मास पेशिया एक लहर की तरह सिकुड़नी तथा फैलनी शुरू कर देती है, जिसके कारण भोजन इस नली मे से होकर आमाशय तक पहुच जाता है।

आमाशय:—आमाशय झिल्ली और मास पेशियो का बना हुआ होता है इसका आकार एक थैले के समान होता है। इसका एक सिरा दूसरे सिरे से बडा होता है तथा एक सिरा अन्न प्रणाली तथा दूसरा पक्वाशय से जुड़ा रहता है। आमाशय की दीवार अनेक मांस पेशियो की बनी होती है। इसकी भीतरी सतह पर बहुत ही पतली झिल्ली होती है जिसे श्लैश्मिक कला (Mucos membrane) कहते है। इसमे असख्य छोटी २ रुधिर केशिकायें विद्यमान रहती है तथा बहुत सी नन्ही नन्ही ग्रन्थियां होती है, जिन्हे जठर ग्रन्थिया (Gastric Glands) कहते है। आमाशय का जो सिरा हृदय की ओर होता है उसे कॉरडिक एण्ड तथा दूसरे सिरे को पाइलोरिक एण्ड कहते है। अन्न प्रणाली आमाशय के करीब करीब मध्य मे खुलती है। आमाशय मे आये हुए भोजन के साथ कुछ विशेष क्रिया होती है। सबसे पहली क्रिया आये हुए भोजन का अस्थायी सग्रह है। दूसरी क्रिया मे भोजन का मन्थन और तीसरी में महत्वपूर्ण भोजन मे रासायनिक परिवर्तनो का होना है। यह रासायनिक क्रिया आमाशय मे सचित कुछ विशेष रसो द्वारा होती है। इन रसो मे सर्व प्रथम जठर रस (Gastric juice) है जिसमे साधारणतया तीन मुख्य विकर उपस्थित रहते है जो कि प्रोटीन (Proteins) को प्रोटीओडिस (Protiodis) में बदल देता है जो बाद मे पेपटोन (Peptones) मे परिणित हो जाता है क्योंकि प्रोटीन (Protien) घुलनशील नही होता है और Peptone की घुलनशील अवस्था है। यह ऐसे खाद पदार्थ है जिसमे नाइट्रोजन की अधिकता होती है, जैसे गोश्त, अण्डे की सफेदी इत्यादि। सब प्रोटीन अच्छी

तरह नही घुल पाते अथवा वे अधकच्ची अवस्था मे ही आंतो मे पहुच जाते है। दूसरा विकर लाईपेस (Lipase) है जो केवल चर्बी पर प्रभाव डालता है, यह चिकनी वस्तुओ को Glycerol और Fatty acids या Ameane acids मे बदल देती है।

(3) नमक का तेजाब (Hydro-Chloric Acid).—

जठर रस मे 5 प्रतिशत के लगभग नमक का तेजाब रहता है जो भोजन मे आये हुए कीटाणुओ को नष्ट करता है, भोजन को सडने से बचाता है, तथा भोजन के साथ आये हुए हड्डी आदि के टुकड़ो को घुलने मे मदद करता है। इन रसो की रासायनिक क्रियाओ से सारे भोजन का रग भूरा सा हो जाता है और यह एक विशेष गठी लेई के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, जिसे चाइम कहते हैं।

पक्वाशय (Dueodenum).—यह अग छोटी आत का प्रथम भाग होता है जिसमे आमाशय एक विशेष कपाट के द्वारा खुलता है जो पाईलारेस वाल्व (Pylorus Valve) कहलाता है। यह द्वार साधारणतया बन्द रहता है लेकिन ज्योंही आमाशय मे अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है और भोजन का इस पर दबाव पडता है तो यह खुल जाता है और भोजन इसके द्वारा पक्वाशय मे आ जाता है। यह आया हुआ भोजन चाइम के रूप मे होता है और इस स्थान पर भोजन को दो रस मिलते है—एक तो यकृत द्वारा बनाया हुआ व पित्ताशय मे इकट्ठा किया हुआ पित रस और दूसरा क्लोम द्वारा बनाया हुआ क्लोम रस। इन दोनो रसो का प्रभाव निम्नलिखित है —

(1) पित्त रस.—यह हरे रग का क्षारीय रस है जो यकृत (Liver) मे बनता है तथा पित्ताशय (Gall Bladder) मे इकट्ठा होता है। पित्ताशय हरे रग की एक गोल थैली होती है जो यकृत पालिकाओ के बीच स्थित रहती है, इस मे से पित्त रस पित्त नली द्वारा पक्वाशय मे पहुचाया जाता है। इसमें कोई भी विकर नही होता है, फिर भी इसके निम्नलिखित कार्य हैं:—

1. यह चिकनी वस्तुओ, जैसे—चरबी, वसा इत्यादि को पूर्ण रूप से तोड़ता है।

2. यह शाकाणु नाशक होता है, अत शाकाणु या बैक्टिरिया को नष्ट कर देता है और इस प्रकार खाने को खराब होने और गैस बनने से रोकता है।

3. यह क्षारीय होने के कारण जठर रस की क्रिया को भी खतम कर देता है क्योकि क्लोम रस केवल क्षारीय माध्यम से ही कुछ कार्य कर सकता है।

4. यह पचे हुए भोजन को अन्न नली मे से गुजरने मे मदद करता है।

5. आते इसको चूस लेती है और यह शरीर की गर्मी को स्थिर करने मे मदद करता है।

6. क्लोम रस (Pancreatic Juice): यह क्लोम ग्रन्थियो में बनता है जो कि आमाशय और छोटी आतों के बीच मे स्थिर रहता है। इनमे से तीन प्रकार के विशेष विकर निकलते है जो कि क्षारीय माध्यम मे अपना निम्न कार्य करते है:—

(क) ट्रिप्सन (Trypsin):—यह नाइट्रोजन युक्त भोज्य पदार्थों को पैप्टोन में बदल देता है और पैप्टोन फिर अमीनो अम्ल (Amino Acid) के रूप मे बदल जाता है।

(ख) अमीलोप्सिन (Amylopsion):—यह माडी (Starch) को शक्कर के रूप मे परिवर्तित कर देता है क्योकि माडी भी घुलनशील नही होती है।

(ग) स्टीपसिन (Steapsin):—यह चर्बी, वसा आदि को फेट कर फेटी एसिड (Fatty Acid) के रूप मे बदल देता है और फिर एक ग्लुकोज के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इस रासायनिक क्रिया के बाद अपचित भोजन छोटी आतो में आता है।

छोटी आंतें:—ये लगभग 22 फीट लम्बी होती है और कुंडलाकार आकार मे थोड़ी सी ही जगह मे रखी रहती है। इसका निचला सिरा बड़ी आतो से जुड़ा रहता है। इसके अन्दर की दीवारो पर छोटी-छोटी बनावटे होती है जिन्हे रासायनिक रसाकुर (Villi) कहते है। इन रसाकुर से छोटी आतो के भीतरी सतह के अन्त.जाल बढ़ जाते हैं और इन आतो से अनेक केशिकाएँ एक जाल सा बनाये रखती है जो कि आये हुए भोजन मे से शोषित होने योग्य वस्तुएँ सोख लेती है। इस मे भी दो प्रकार के रस भोजन को मिलते है —

(a) इरेप्सिन (Erypsin):—जो प्रोटीन को अमीना अम्ल मे बदलता है।

(b) इनवरटाइन (Invertine):—माडी (Starch) को शक्कर (Glucose) में बदलता है।

6. बड़ी आंते (Large Intestine):—यह लगभग 18 फुट लम्बी होती हैं। जिस स्थान पर यह छोटी आत से मिलती है, वहा पर एक आत का टुकड़ा लटका रहता है, जो "ऐपेन्डिक्स" (Appendix) कहलाता है। इसके बढ़ने पर एक प्रकार की बीमारी हो जाती है, जो "ऐपेन्डिक्साइट" कहलाती है।

(i) रैक्टम (Rectum) —इसमे अपचित भोजन मल के रूप मे आकर इकट्ठा हो जाता है।

(ii) मलद्वार (Anus).—यह अपचित भोजन शरीर से बाहर इसी के द्वारा निकाला जाता है।

7. पचे हुए भोजन का शोषण:—यह शोषण का कार्य अधिकतर इलियम मे ही होता है। इसकी भीतरी सतह पर रसाकुर (Villi) मिलती है। यह करीब एक वर्ग इंच मे 1 ,000 के लगभग होती है। इन प्रत्येक रसाकुर के मध्य मे एक लेक्टियल (Lacteal) और उसके चारो ओर रुधिर केशिकाओ (Blood Capillaries) का सम्पूर्ण जाल सा बिछा रहता है। बची हुई वसा या चर्बी प्रसरण (Diffusion) के द्वारा लैक्टियल मे पहुचती है। साथ ही साथ अमीनो अम्ल, ग्लुकोज, लवण आदि भी केशिकाओ मे पहुँचते है। लैक्टियल मे पहुची चर्बी बाद मे रुधिर से पहुच जाती है और रक्त भोजन के सभी तत्वो को शरीर के विभिन्न अगो मे बाट देती है। यह रुधिर परिवहन के कारण शरीर के विभिन्न अगो से कोशाओ मे पहुचती है।

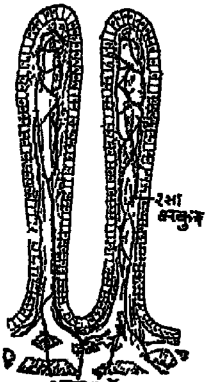

क्षुद्र आँत

कोशाओ मे कुछ भाग का आक्सीकरण (Oxidation) होता है। इससे गर्मी तथा शक्ति प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त भोजन मे इनके तत्वो से कोशाए तथा परस (Protoplasm) का निर्माण होता है, इस विधि को एसीमिलेशन कहते है। इन्ही के कारण जीवधारियो मे वृद्धि (Growth) होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पाचन क्रिया का क्या अर्थ है, विस्तारपूर्वक समझावें।
2. उन सभी अगो का कार्य लिखे जो पाचन क्रिया मे भाग लेते हैं, चित्र भी खीचें।

3 पाचन रस से क्या समझते है ? उन सभी पाचन रसो का वर्णन करे जो कि पाचन क्रिया से सम्बन्धित है।

इक्कीसवां अध्याय

मानव का श्वसन संस्थान

(Respiratory system in man)

जन्तुओं के लिए यह क्रिया बहुत ही आवश्यक है। प्रकृति में मिलने वाले सभी जन्तु श्वास लेते है अर्थात् आक्सीजन को अन्दर लेते है व कार्बन डाइ आक्साइड को बाहर निकालते है। यह क्रिया कुछ विशेष अगों की सहायता से होती है। मेढक मे यह क्रिया त्वचा द्वारा, फेफड़ो द्वारा तथा शिशु अवस्था में गलफड़ो द्वारा होती है। जल मे रहने वाले जन्तु भी गलफड़ों द्वारा श्वास लेते है। परन्तु मानव मे यह क्रिया फेफड़ो द्वारा होती है। आक्सीजन अन्दर लेना तथा कार्बन डाइ आक्साइड को बाहर निकालना ही श्वसन क्रिया है। इसके बिना मनुष्य कुछ मिनट से अधिक जीवित नही रह सकता है। यह आक्सीजन उसके लिए बहुत ही जरूरी है। शरीर के कोष्ठों मे जीवन रस भरा रहना है, जो आक्सीजन के सम्पर्क मे आकर बराबर जलता रहता है, जिसके कारणवश कार्बन डाइ आक्साइड बनती है। अगर यह दूषित वायु शरीर मे ही रहने दी जाये तो हमे बीमार कर देगी, इसलिए इसका निकलना बहुत आवश्यक है। यह इसी क्रिया द्वारा बाहर वापस निकाल दी जाती है। साथ ही साथ आई हुई आक्सीजन रक्त से मिलकर उसका आक्सीकरण भी करती है, जो हमे शाति एवं ताप प्रदान करती है, इस आक्सीजन की, प्रत्येक शरीर में स्थित तन्तुओ की एक बड़ी मात्रा होती है, जिससे उनकी सभी जीवन क्रियाये चलती है।

1. श्वसन के अंग:—इनमे निम्न अग सम्मिलित है, जो इस क्रिया में महत्वपूर्ण भाग लेते है। (1) नासिका (Nose) (2) स्वरयंत्र (Larynx) (3) कंठ नलिका (Bronchial tube) (4) वायु नलिका (Wind tube) (5) फेफड़े (Lungs)

(1) नासिका (Nose) :—वायु प्राय: नासिका के द्वारा ही अन्दर जाती है। हमारी नासिका में बहुत ही छोटे छोटे बाल होते है, जो हवा को अन्दर जाने से पहले उसे दरवाजे पर ही छीन लेते है, जिससे रक्त में आये हुए धूल के कण एवं कीटाणु आदि कोई भी अन्तर तक नही पहुच पाते है। इनकी भीतरी सतह बहुत ही पतली श्लेष्मिकला (Mucous-membrane) की बनी होती है, जिसमें रक्त की केशिकाएं (Blood Capillaries) का एक जाल सा बिछा रहता है। यह वायु से आई आक्सीजन से संयुक्त होकर गर्म एव कुछ गीली रहती है। इस कला

(Memberane) मे एक विशेष प्रकार का द्रव निकलता है, जो प्रकृति मे चिपचिपा होता है। यह धूल, कीटाणु आदि को अन्दर प्रवेश करने से रोकता है, और उन्हे चिपका लेता है। अतः हमे सदैव नाक से ही सास लेना बहुत उपयोगी है। मुँह से सांस लेने मे कीटाणु अन्दर प्रवेश कर जाते है, जिससे बीमार पड़ने का भय रहता है। इससे अनेको गले की बीमारी हो जाती है।

(2) स्वर यंत्र :—यह नर्म हड्डिया, कार्टीलेज का बना होता हैं। इसके द्वारा हम आवाज करते है, तथा दूसरा कार्य यह भोजन को वायु नली मे जाने से रोकता हैं। इसमे दो फैलने वाले तन्तु मिलते है, जिन्हें ध्वनि यान्त्रिक या वोकल कार्डस कहते हैं। अन्दर सांस लेते समय यह एक दूसरे से दूर हो जाते हैं, लेकिन ज्यो ही हम जोर की आवाज करते है वह पास पास आ जाते है। खाना खाते वक्त यह इपीग्लोटिस (Epiglottis) कंठ नलिका (Tranchea) पर आ जाता है। इस प्रकार भोजन वायु नलिका मे नही जाने पाता और यदा कदा जब यह चला जाता है तो हमे एकदम खासी आने लगती है।

(3) कंठ नलिका (Wind pipe Tranchea) :—यह लगभग पांच इन्च लम्बी होती है। तथा भोजन नली के आगे स्थित रहती है। यह कार्टिलेज या नर्म हड्डियो की बनी होती है। यह आकार मे इन्ही छल्लो के कारण गोल होती है तथा इसका अनुभव हम स्वयं भी गले के नीचे स्पर्श करने से कर सकते हैं। इन छल्लों (Rings) के द्वारा, जब हम सो जाते है, तब भी यह खुली रहती है, जिससे सोते सोते भी आसानी से सास ले सकते हैं। इन छल्लो की सख्या लगभग 20 होती है। यह आगे जाकर नीचे दो भागो मे बट जाती है, जो दोनो दाये एवं बाये फेफड़ो मे चली जाती है। इन्हे ब्रान्काई (Bronchi) कहते हैं।

(4) ब्रांकियल नलिकायें (Bronchial Tubes) :—कंठ नलिका दो भागो में विभाजित होती है, जो ब्रोन्कस (Bronchus) कहलाती है। यह दाये एवं बाये फेफड़ों (Lungs) मे विभाजित होकर प्रवेश करती है, यह अन्दर जाकर पुनः बहुत छोटे छोटे वायु कोषों (Air Sacs) मे विभाजित हो जाती है और यही पर समाप्त हो जाती है। यह वायु कोष कई छोटे छोटे कोषो मे रहता है और हवा की कोठरिया स्थापित करता है, इसे वायु कोठरी कहते है। यही फेफड़ो की अन्त.भित्ति होती है।

(5) फेफड़े (Lungs) :—यह स्कध अस्ति (Sternum Bone) के नीचे वगल मे दोनो ओर स्थित रहते हैं। यह बहुत ही हल्के, थैले के समान होते है। इनका रंग प्राय. हल्का गुलाबी सा होता है। ये आकार मे कुछ तिकोने से होते हैं, जो

एक विशेष झिल्ली मे बन्द रहते हैं जिसे ब्लूरा (Bleura) कहते हैं। फेफड़ा भित्ति तथा झिल्ली के मध्य का स्थान प्लूरल गुहा (Pleural oavity) कहलाता है। यह इतने हल्के होते है कि पानी पर तैराये जा सकते हैं।

इनके अन्दर ब्रोन्काई द्वारा निर्मित बहुत ही कोशाएं होती हैं। यह (Air Saos or Alvevli) कहलाती है। यह फेफड़ा भित्ति भी कही जाती है। वायु कोष्टिकाओ मे असंख्य रक्त–केशिकाओ का जाल बिछा रहता है, जिससे रक्त वायु के सम्पर्क में आता है। सांस लेते समय इनमे वायु भर जाती है और वह फूल कर आकार में गुब्बारे के समान हो जाते है। वायु भरते ही अशुद्ध रक्त केशिकाएं वायु मे आई आक्सीजन के सम्पर्क में आकर गन्दी गैस कार्बन–डाई–आक्साइड, पानी, भाप आदि को शरीर के बाहर निकालने में सहायक होती है।

1. श्वसन क्रिया (Process Respiration) :—इस क्रिया मे शरीर के तन्तु शुद्ध वायु अर्थात् आक्सीजन लेकर शरीर मे अन्य क्रियाओ द्वारा उत्पन्न हुई दूषित

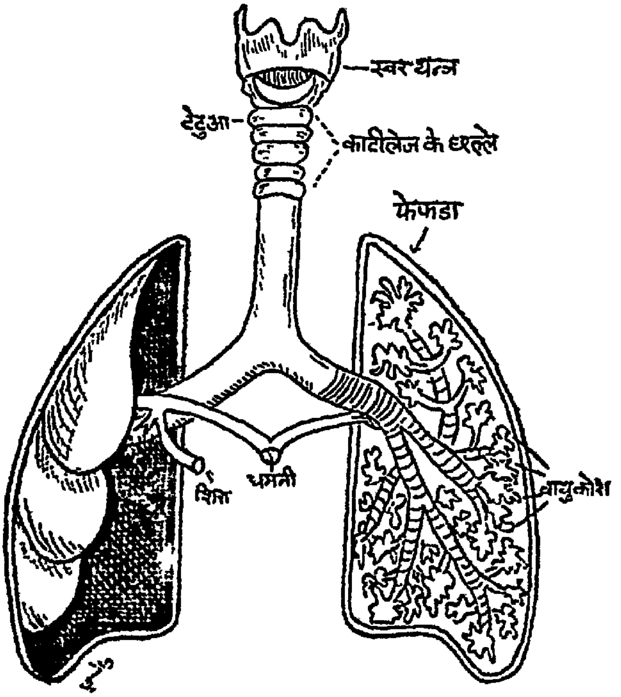

वायु (कार्बन-डाई–आक्साइड) को बाहर निकालते हैं। यह क्रिया मानव के जीवन में एक बड़ा महत्व रखती है। यह निम्न प्रकार से होती है:—

(1) बाहरी श्वसन क्रिया.—इसमें तीन क्रियाएँ सम्मिलित हैं। (a) निश्वसन (Inspiratation)–जब आक्सीजन मिश्रित वायु मुख में अन्दर पहुचती है तो इसको इन्सपिरेशन अर्थात् सास लेना कहते है (b) एसपिरेशन (Aspiration):–जब वायु फेफडों के अन्दर पहुच कर रक्त का आक्सीकरण करती है तब Aspiration कहलाती है। (c) उच्छ्वसन (Expiration):—जब दूषित वायु बाहर निकाल दी जाती है उसे Expiration कहते है। इस प्रकार श्वसन क्रिया तीन क्रियाओं से मिलकर बनती है।

(i) निश्वसन (Inspiration):—भीतर सांस लेने मे पसलियां ऊपर उठती है जिससे रीढ की हड्डी एवं सीने की हड्डी के बीच की जगह अधिक चौडी हो जाती है। पसलियों के ऊपर उठने से बगल मे भी स्थान काफी हो जाता है जिससे फेफडों को लम्बाई एवं चौडाई मे फैलने का पर्याप्त स्थान मिल जाता है। Diaphragm पेशी नीचे होती है तथा ऊपर की मांसपेशी आगे की ओर फैलकर काफी स्थान बनाती है। सीने के साथ ही साथ फेफडे व उनकी वायु भी फैलती है, जिससे फेफडो मे वायु का दवाब कम हो जाता है और इस कमी को पूरा करने के लिये वायु एकदम बाहर से अन्दर की ओर प्रवेश कर जाती है। वायु के अन्दर प्रवेश करने की क्रिया को निश्वसन (Inspiration) कहते है।

(ii) एसपिरेशन (Aspiration) इस क्रिया मे आई हुई वायु की आक्सीजन वायु कोषों में स्थित रक्त केशिकाओ से सम्पर्क करती है तथा रक्त के साथ आक्सीजन मिलकर उसका आक्सीकरण करती है। यह रक्त Oxygenated Blood कहलाता है।

(iii) उच्छ्वसन (Expiration):–वायु से भरे फेफडे थोड़ी देर बाद सिकुडते है तथा सीने की भी लम्बाई एवं चौड़ाई कम होती है और डायफ्रम (Diaphragm) ऊपर चला जाता है और ऊपरी मास पेशिया अपने स्थान पर पुनः आ जाती है। सीने के साथ फेफडे एवं उनकी वायु भी सिकुड़ जाती है और थोड़े से स्थान में एकत्रित हो जाती है, जिससे दवाव बढता है। दवाव समान रखने के लिए वायु बाहर वापिस निकल जाती है। यह क्रिया साँस का बाहर निकलना (Expiration) कहलाता है।

इस प्रकार उपरोक्त तीन क्रियाओं द्वारा श्वसन क्रिया पूर्ण होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) "श्वसन" शब्द का क्या अर्थ है ? इसका मानव के लिए होना क्यों जरूरी है ?

(2) फेफडे का चित्र सहित वर्णन करें।

(3) निश्वसन एव उच्छ्वसन से आप क्या समझते हैं, विस्तार पूर्वक वर्णन करें।

बाइसवां अध्याय

मानव का रक्त संस्थान

भोजन के सभी पोष्टिक तत्वों को शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाना बहुत ही आवश्यक है। जो अंग अहार प्रणाली में उपस्थित रहते हैं उनमें यह तत्व इसी परिवहन संस्थान की सहायता से शरीर के विभिन्न अंगो में पहुंचाये जाते है। इसलिए परिवहन संस्थान बहुत ही आवश्यक होता है। आक्सीजन भी कुछ विशेष अंगो में जैसे फेफड़े आदि में बराबर पहुँचती रहती है। लेकिन जिन अंगों में यह क्रिया नहीं होती, वहा आक्सीजन को पहुँचाने का एक मात्र साधन-परिवहन संस्थान है। भोजन के पोष्टिक तत्व तथा आक्सीजन शरीर के सभी अंगों में बहुत ही आवश्यक होता है। इसलिए इन तत्वों एवं आक्सीजन का वितरण इसी संस्थान द्वारा किया जाता है। रुधिर के परिवहन के लिए समस्त शरीर में रुधिर वाहिनियो का एक जाल सा बिछा रहता है। हृदय रूपी पम्प के द्वारा रुधिर बराबर इन वाहिनियों द्वारा आता जाता है। यह संस्थान मुख्यतः निम्नलिखित अंगो में विभाजित रहता है:—

(1) रुधिर (2) हृदय (3) रुधिर वाहनीय.—इनमें धमनिया (Arteries) शिराएं (Veins) तथा इन दोनो प्रकार की रुधिर वाहिनियो में सम्बन्ध स्थापित करने वाली केशिकाएं (Capillaries) आदि इस सस्थान की मुख्य अंग हैं। इतना ही नहीं लसिका वाहक (Lymphatic) संहति भी इस संस्थान में केवल रक्तवाहक अंगो से ही समझ लेते हैं।

1. मनुष्य का रक्तः—यह लाल रंग का एक स्वच्छ एव सरल पदार्थ है, जो कुछ देर तक रखने पर दो भागो बंट जाता है। एक तो ऊपरी भाग जो हल्का-पीला सा द्रव होता है। जो सीरम (Serum) कहलाता है; दूसरा नीचे की ओर गहरे लाल रंग का ठोस पदार्थ बच रहता है, इस भाग को क्लोट (Clot) कहते हैं।

रक्त की रचना का निरीक्षण अगर सूक्ष्म दर्शक-यंत्र (Microscope) के द्वारा किया जाय तो मुख्यतः निम्न अङ्ग दृष्टिगोचर होते हैं :—

(1) लाल रक्त कण (Red blood corpusles):—यह कण उनत्तोदर (Biconvex) एवं बिना न्यूक्लियस (Nucleus) के होते हैं। यह आकार में

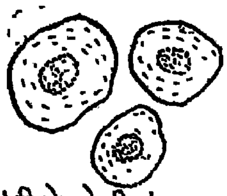

'हीमोग्लोबीन'-युक्त लाल रक्त कण

बहुत ही छोटे परन्तु संख्या में बहुत ही ज्यादा होते हैं। यह गहरे रंग के कण होते हैं, जिसका एक मात्र कारण हीमोग्लोबीन (Haemoglybin) है, इनमें जो एक विशेष लाल पदार्थ भरा रहता है, Oxy-Haemagolbin कहलाता है। इसका रंग लाल होता है। यह हिमोग्लोबीन हवा में से आई आक्सीजन का खूब तेजी के साथ शोषण करता है और आक्सीजन शरीर के सभी विभिन्न भागो में आसानी से पहुँच जाती है। इस प्रकार आक्सीजन का शोषण इसके द्वारा सरलता पूर्वक हो जाता है। रक्त आक्सीजन के साथ मिल कर आक्सी–हीमोग्लोबीन Oxy-Haemoglobin) के रूप में परिणित हो जाता है जो कि शुद्ध खून या आक्सीजिनेटड ब्लड (Oxygenated Blood) कहलाता है।

(2) श्वेत रक्त कण (White Corpusles):–ऐसे कण टेड़े मेढ़े आकार के होते हैं। इनकी कोई विशेष आकृति नही होती। इनका रंग श्वेत होता है। इनमें न्यूष्ठि (Nucleus) देखने को नहीं मिलती अर्थात् यह इनमें नहीं होती। यह

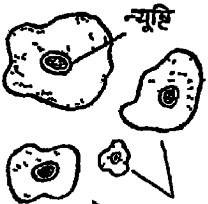

श्वेत रक्त कण

संख्या में नहीं होते। यह लाल रक्त कण की अपेक्षा कम होते है। यह आकार में लाल कणो से बड़े होते हैं। इन कणों एवं लाल रक्त कण का अनुपात 500:1 के लग भग होता है। यह हमारे शरीर की रक्षा आक्रमणकारी किटाणुओं से करते हैं। कोई भी बीमारी का कीटाणु जब हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो यह उसे घेर कर घमासान युद्ध करते हैं। अगर वह बलवान होता है तो यह मवाद् (Pus) के रूप में शरीर के बाहर निकल जाती है और हम रोग के शिकार बन जाते हैं, अन्यथा हम निरोग रहते हैं। इस प्रकार यह घातक कीटाणुओ से हमारी रक्षा करते हैं।

(2) रक्त प्लेट लेट (Blood plate lets):—यह तीसरे प्रकार के कण हैं, जो रक्त में पाये जाते हैं। यह सफेद, अनिश्चित आकृति के न्यूष्ठि विहीन होते हैं। परन्तु श्वेत रक्त कणो से बहुत छोटे होते हैं, लगभग एक चौथाई के बराबर होते हैं। यह मुख्यत: चोट आदि लग जाने पर निकलते हुए रुधिर का निकलना बन्द करने में सहायक होते हैं। यह रक्त को जमाकर उसका निकलना बंद कर देते हैं।

(3) प्लाज्मा (Plasma):—यह एक रंगहीन द्रव जिसे (Plasm) कहते हैं। यह भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार रक्त एक जीवित पदार्थ है और इसके कण भी जीवित कोष हैं।

2. रक्त के कार्य (Functions of Blood):—(1) रक्त के लाल रक्त कण शरीर के ताप को एक सा बनाये रखते हैं। (2) यह वायु की आक्सीजन का शोषण करके शरीर के विभिन्न अंगों में समान रूप से पहुँचाते है। (3) लाल रक्त कण, रक्त में उपस्थित क्षारीय पदार्थों की मात्रा निश्चित करते हैं। (4) रक्त परिभ्रमण से पौष्टिक पदार्थ भिन्न भिन्न अंग तक पहुँचाते हैं। (5) यह दूषित वायु कार्बन-डाई-आक्साइड एवं यूरिया आदि को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करते हैं। (6) श्वेत रक्त कण जीवाणु (Bactria) व कीटाणु आदि के बाहरी आक्रमणों से रक्षा करते है। (7) रक्त कण, रक्त में प्रोटीन की मात्रा निश्चित रखते हैं। (8) रक्त कण, निकलते हुए रुधिर के जमने में सहायता करते हैं। चोट लगने पर रुधिर को जमाते हैं, जिससे बाहरी कीटाणु अपना प्रभाव नहीं डाल सकें। (9) यह जन्तुओं और कोषों को बनाने में और टूट फूट को पूरा करने में सहायता करते हैं।

3. रक्तवाहक संस्थान का अङ्ग (Organs of Circulation):—इसमें हृदय (Heart), धमनिया (Arteries), शिरायें (Veins) तथा केशिकाएं (Capillaries) सम्मिलित हैं।

इन सभी कोष्ठ में में आपस का सम्बन्ध कपाटो द्वारा होता है। दांया आलिन्द तथा दांया प्रवेशम् आपस में कपाट एक दूसरे में खुलते हैं और इसी प्रकार बायां आलिन्द तथा बायां प्रवेशम् आपस में एक और कपाट द्वारा खुलने का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, यह दोनो कपाट रक्त को आलिन्दों से प्रवेशम् की ओर बहने देते हैं, परन्तु उसको वापिस जाने से रोकते है।

दो अशुद्ध रक्त की धमनी जिन्हें अग्र व पश्च बेनाकेवा कहते हैं, हृदय के दायें आलिन्द में आकर खुलती है। यह शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त लाकर इसमें इकट्ठा करती है, जो एक अशुद्ध रक्त की धमनी कहलाती है। यह आगे जाकर दो भागों में विभाजित होती है और क्रमशः दायें एवं बायें फेफड़ों में चली जाती है। यह रक्त शुद्ध होकर पल्मोनरी सिरे द्वारा बायें आलिन्द में पहुँचता है, इस बांये आलिन्द के सिकुड़ने पर यह शुद्ध रक्त बाये प्रवेशम् में पहुँच जाता है। कपाट रक्त के बायें प्रवेशम् को दाये आलिन्द में जाने से रोकता है। इस बायें के सिकुड़ने पर रक्त बायें एओरटा में होता हुआ इसकी विभिन्न छोटी छोटी शाखाओ द्वारा शरीर के सभी भागों में पहुँच जाता है।

हृदय (Heart): — यह मांस-पेशियों का आकार त्रिभुजाकार एवं गुदेला होता है। यह बाईं ओर लगभग दूसरी से पाचवीं पसली के बीच एवं दोनो फेफड़ों के मध्य

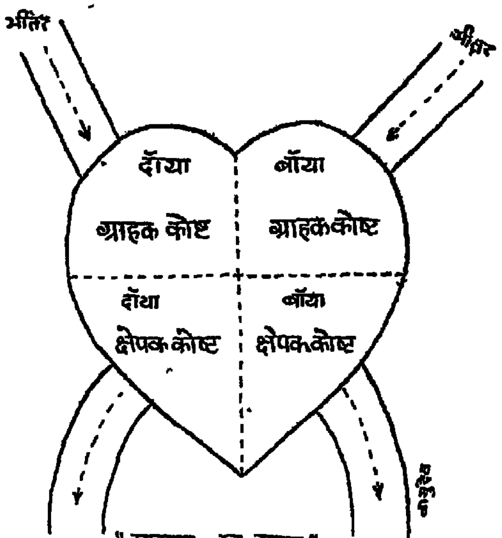

"मनुष्य का हृदय"

में स्थित रहता है। इसका भार लगभग 4–5 छटांक होता है। इसके ऊपर झिल्ली का एक आवरण चढा रहता है, जिसे पैरिकार-डियम (Pericardium) कहते हैं। इस झिल्ली एवं हृदय की दीवारो के बीच एक तरल द्रव भरा रहता है, जो पैरीकार्डियम द्रव कहलाता है। यह हृदय की अचानक धक्के आदि से रक्षा करता है। यह हृदय आपस में मोटी मास पेशी द्वारा दो भागों में बंटा रहता है:—एक तो दायां आधा भाग होता है, जिसमें अशुद्ध रक्त रहता है। इसी प्रकार एक बांया आधा भाग होता है, जिसमें शुद्ध रक्त रहता है। यह दोनों भाग फिर एक मांस पेशी को दो भागों में विभाजित करते हैं। इस प्रकार हृदय कुल चार भागो में बाटा गया है। ऊपर के दोनों दायें व बायें आलिन्द या क्रमश तथा नीचे वाले दोनों दायें और बाये प्रवेशम् कहलाते हैं।

धमनियां (Arteries):—इनके द्वारा हृदय से शरीर के सभी भागों में शुद्ध रक्त पहुँचाया जाता है। धमनी स्वयम् हृदय से एक मोटी नलिका के रूप में निकलती है और धीरे धीरे आगे अपनी छोटी छोटी शाखाओ में विभाजित होती जाती है। यह छोटी छोटी शाखायें या नलिया केशिकाये कहलाती हैं।

शिरायें (Veins)—ये शरीर के प्रत्येक भाग से गंदा खून एकत्रित करके वापिस हृदय में लाकर इकठ्ठा करती हैं।

केशिकायें—यह रक्त की बहुत ही बाल के समान नलिया होती हैं, जिनका सारे शरीर में एक जाल सा बिछा रहता है। यह केशिकाये ध .नी एव शिराओ दोनों में मिलती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रक्त के कार्य एव उसकी रचना का वर्णन करे।
2. मनुष्य के हृदय की बनावट एवं उसके कार्य का चित्र द्वारा समझा लिखे।
3. रक्त संचार का क्या अर्थ है? मनुष्य में यह किस प्रकार होती है, विस्तार पूर्वक लिखें।

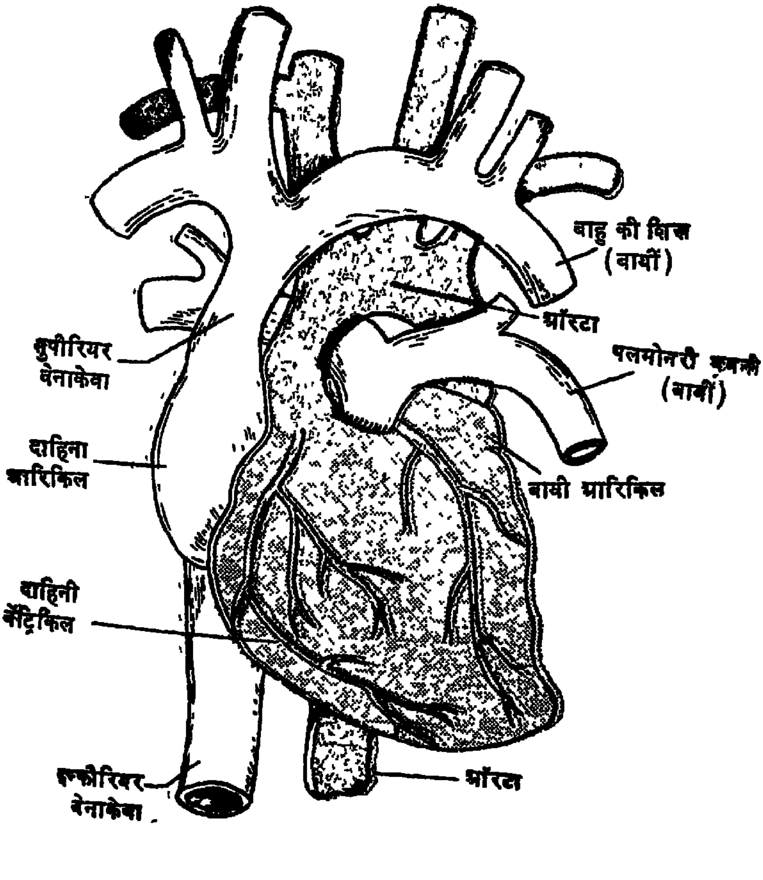
बाहु की शिरा
(बायीं)
ऑरटा
पलमोनरी धमनी
(बायीं)
बायी आरिकिल
सुपीरियर
वेनाकेवा
दाहिना
आरिकिल
दाहिनी
वेंट्रिकिल
इन्फीरियर
वेनाकेवा
ऑरटा

तेईसवां अध्याय

मानव का मल-मूत्र विसर्जन संस्थान

(Excretory system of man)

भोजन के जलने से हमारे शरीर मे भी अनेक दूषित पदार्थो का निर्माण होता रहता है। कार्बोहाइड्रेट और चर्वी के जलने से शरीर मे कार्वन-डाई-आक्साइड तथा भाप बनती है। साथ ही साथ प्रोटीन के जलने से यूरिया वन जाता है। इन तीनो प्रकार के मल पदार्थो अर्थात् कार्वन-डाई-आक्साइड, भाप एवं यूरिया का शरीर से बाहर निकलना बहुत ही आवश्यक है, ये तीनो यदि शरीर से बाहर नही निकाले जाय तो हमे ये बीमार कर देंगे। इनको शरीर से बाहर निकालने में फेफडे, त्वचा और गुर्दे या वृक्क (kidney) अग विशेष रूप से भाग लेते है। कार्वन-डाई-आक्साइड गैस श्वसन क्रिया के बाहर निकाल दी जाती है। पानी गैस के रूप मे शरीर से बाहर निकलता है एव यूरिया या मूत्र शरीर स्थित वृक्क (kindney) की सहायता से एक विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है। यह क्रिया जिसके द्वारा यह बाहर निकाला जाता है, मल-मूत्र विसर्जन क्रिया (Excretory System) कहलाती है। इस क्रिया को सफल बनाने मे शरीर मे स्थित वृक्क (Kidney), मूत्र नली (Ureter), मूत्राशय (Urinary Bladder) एव मूत्र शिशन (Urethra) मुख्य है। यह सभी अग अपना कार्य सामूहिक रूप से करके इस मल-मूत्र विसर्जन सस्थान (Excretory System) का काम देते हैं। यह इस संस्थान के मुख्य-मुख्य अंग है। मनुष्य मे रीनल पोर्टल संस्थान नही होता है और एक ही रीनल धमनी खून देती है तथा एक ही रीनल सिरा खून बाहर ले जाती है।

यह विसर्जन क्रिया निम्न रूप मे हमे देखने को मिलती है—

ठोस रूप में:—अर्थात् पाचन संस्थान के अघुलनशील अवशेष ठोस मल (Waste) के रूप मे शरीर से बाहर निकाल दिये जाते है।

गैस के रूप में.—श्वसन सस्थान मे कार्वन-डाइ-आक्साइड एक गैस के रूप मे शरीर से बाहर निकाल दी जाती है। इस दूषित वायु का निर्माण शरीर मे अन्य जीवित क्रियाओ के जलने आदि से होता हैं।

द्रव रूप मे:—यह पसीने के रूप मे त्वचा द्वारा जिससे स्वेद ग्रन्थियां (Sweat Clouds) बनती है, शरीर से बाहर निकाल दी जाती है। साथ ही साथ मूत्र भी इसी का महान रूप है, जो वृक्क की सहायता से शरीर मे विसर्जित किया जाता है।

वृक्क या गुर्दे (Kidney):—मनुष्य मे गुर्दे की कुल सख्या दो होती हैं। यह रीढ की हड्डियो के दोनो ओर इधर उधर लगी रहती है। प्रत्येक गुर्दे का आकार एक सेम के बीज के समान होता है, इनका रग गहरा भूरा होता है। प्रत्येक गुर्दे की लम्बाई लगभग 4 इच, $2\frac{1}{2}$ चौडाई और करीब 1 इच मोटाई होती है। इसका भार भी करीब $2\frac{1}{2}$ छटाक होता है। इसकी बाहरी वाली सतह उन्नतोदर (Conver) तथा अन्दर वाली नतोदर या (Concave) होती है—तथा इसी सतह के मध्य मे एक गड्ढा होता है, जिसके मध्य से एक नलिका निकलती है—यह मूत्र नली या यूरेटर (Ureter) कहलाती है। इन मूत्र नलियो की लम्बाई करीब 11 या 12 इंच तथा $\frac{1}{8}$ इच की चौडाई होती है। ये शरीर मे कुछ नीचे की ओर जाकर दोनो मूत्र नली या यूरेट एक झिल्ली की थैली मे खुलते है—जिसे मूत्राशय (Urinary Bladder) कहते है। इसमें लगातार-मूत्र आदि इकट्ठा होता है, जब यह थैली मूत्र से भर जाती है तो शरीर के बाहर शिशन (Uretera) द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

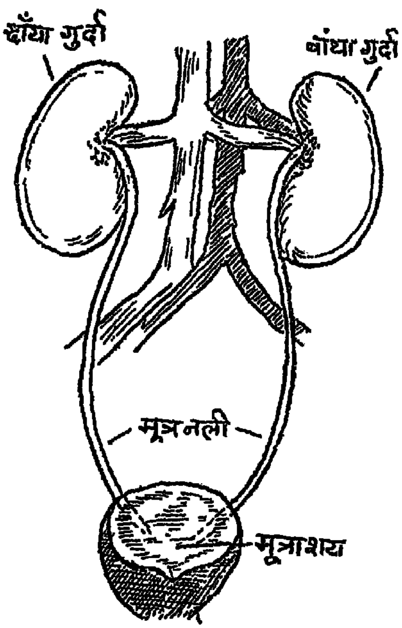

आन्तरिक रचना (Internal Structure):—अगर मनुष्य के गुर्दे को काट कर इसका अध्ययन किया जाय तो हमे ये निम्नलिखित रूप मे दिखाई देंगे:—

पहला भाग बाहर की ओर पतला होता है—जिसका रग गहरे भूरे रग का होता है, यह भाग कोरटेक्स (Cortex) कहलाता है।

दूसरा भाग जो कि रग मे हल्का होता है—जिसमे कुछ विशेष बनावट होती है, यह मेडुला (Mednlla) कहलाता है।

कोरटेक्स मे कुछ विशेष रचनाएं मिलती है, जो मेडुला के भाग मे आकर खुलती है—इनकी सख्या 12 होती है—यह बनावट मे पिरेमिड्स के समान तिकोनी होती है—इन्हे पिरेमिडस (Pyramids) कहते है। इन नलिकाओ का मुँह 12 नलियो मे खुलता है, जो केलाईसेस (Calyces) कहलाती है। यह 12 नलिया

स्वयं एक कुप्पी के समान बड़ी-बडी नली मे खुलती है—इसमे बड़ी नली को पैलविस (Pelvis) कहते है। यह नलिकाएं आगे जाकर मूत्र नली (Ureter) मे बदल जाती है। कोरटेक्स मे असंख्य छोटी-छोटी नलिया मौजूद रहती है, जिनका ऊपरी सिरा कोरटेक्स मे तथा निचला सिरा मैडुला मे उपस्थित रहता है। नलियों के सिरे को बौमेन कैपसूल (Bowman's Capsule) के नाम से पुकारते है, जिसमें छोटी छोटी रक्त नलिया उपस्थित रहती है—यह रक्त नलिका ग्लोमेरूलस (Glomerulus) कहलाती है। यह ग्लोमेरूलस नुमा आकृति में रहती है, जिसे मैलफिजियम कैपसूल (Malphigiam Capsule) कहते है।

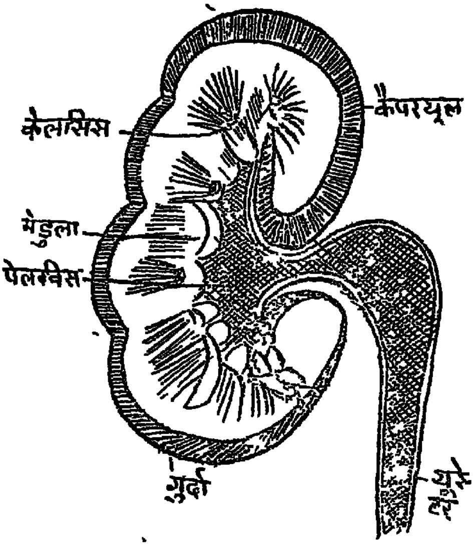

ग्लोमेरूलस के अन्दर ही रक्त से मूत्र बनता है, तथा यह मूत्र पैरेमिडस (Pyramids) से होता हुआ, पैलविश (Pelvis) में एकत्रित होता रहता है। यहाँ से यह मूत्र नली द्वारा नीचे मूत्राशय (Urinary Bladder) मे भेज दिया जाता है, जहां पर यह बराबर इकट्ठा होता है, और मनुष्य की इच्छानुसार समय पर शिशन (Urethra) द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार मलमूत्र विसर्जन क्रिया—इन उपरोक्त अङ्गो की सहायता से संपन्न होता है। इसमे सबसे अधिक मुख्य अंग वृक्क (Kidney) है जिस पर यह तमाम संस्थान आश्रित है।

वृक्क के कार्य—(1) रक्त में उपस्थित अशुद्ध वस्तुओ या मूत्र आदि के रूप मे परिणित होने वाली वस्तुओ को यह छानता है तथा रक्त को यह उनसे शुद्ध करके, उसको एक समान रखता है।

(2) शरीर मे उन वस्तुओ को जो जहरीली एव हानिकारक रूप ले लेती है-विसर्जन की क्रिया से बाहर निकालता है।

(3) यह कुछ उन आवश्यक वस्तुओ का शोषण भी करता है जो वास्तव मे लाभप्रद है।

(4) रक्त मे कुछ वैसी वस्तुओं को बनने से बचाता है, जिनसे बीमारी की आशका बनी रहती है अर्थात् उनको विसर्जन क्रिया द्वारा मूत्र के रूप मे बाहर निकाल देता है।

(5) शरीर को स्वस्थ एव नीरोगी रखने मे यह अग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(6) यह मूत्र को आगे की ओर मूत्र प्रणाली मे से जाकर मूत्राशय मे इकट्ठा करता है, जहा पर अधिक दबाव के कारण शरीर से यह बाहर निकाल दिया जाता है।

(7) यह शरीर मे अवशोषित पदार्थों को मूत्र व मल एव शोषित पदार्थो को रक्त के रूप मे शुद्ध करता है।

मनुष्य के मूत्र का रसायनिक सगठन रोग परीक्षण मे बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा कुछ घातक बीमारियों का पता लगा लिया जाता है, जैसे:- डाइबिटीज, ब्राइट आदि। इस प्रकार शरीर मे होने वाले इन सभी रोगो का पता इसके द्वारा आसानी से लग जाता है। मूत्र मे 69 प्रतिशत पानी, 8 प्रतिशत यूरिया प्रतिदिन ही शरीर के बाहर निकाला जाता है। अगर ऐसा न हो तो आदमी बहुत ही घातक बीमारियो का शिकार बन जाता है, और इससे मृत्यु तक हो सकती है।

यह विसर्जन का कार्य वृक्क के अतिरिक्त हमारे शरीर मे स्थित यकृत (Liver) के द्वारा भी होता है। कभी कभी रैक्टम मे जब Bacteria की कमी होती है तथा प्रोटीन्स का पूर्ण आक्सीकरण नही होने पाता, तो रैक्टम की रुधिर धमनियां उन्हे सोखती हैं और जिगर मे पहुचकर, यहा पर यह तरल रूप मे परिवर्तित होकर हानि रहित हो जाती है। न पचे हुये भोजन के कुछ अंशो को बडी आते (Large Intestine) अपनी सैलो द्वारा रुधिर मे से उन्हे कैलशियम फास्फेट के रूप मे निकाल कर मल के साथ शरीर के बाहर फेकती है। इस प्रकार बडी आते भी विसर्जन क्रिया मे भाग लेती है। इसके अतिरिक्त त्वचा भी कुछ मल पदार्थो को शरीर से बाहर पसीनो के रूप मे बाहर निकालती है। इस पसीने मे पानी, कुछ नमक तथा यूरिया भी उपस्थित रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विसर्जन से क्या अर्थ है? इससे सम्बन्धि कार्यो को पूर्ण रूप से समझावें।
2. वृक्क की रचना का वर्णन चित्र सहित करे।
3. शरीर से विसर्जित पदार्थो को बाहर निकालना क्यो आवश्यक है?

चौबीसवाँ अध्याय

मानव का नाड़ी संस्थान

(Nervous System of Man)

हम प्रतिपल कुछ न कुछ गतिया करते रहते है। यह सब क्रियाएं हमारे शरीर मे विद्यमान भिन्न भिन्न अंगों से होती है। लेकिन इन अंगों की यह क्रियाये स्नायु संस्थान के द्वारा होती है। यह संस्थान विभिन्न अंगों द्वारा हुई क्रियाओ मे आपस में एक गहरा संबन्ध स्थापित करके हमें किसी काम करने योग्य बनाता है और हम उस काम को ठीक प्रकार से करते है। यह संस्थान हमारे सम्पूर्ण शरीर पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखता है। हमे जरा सी भी तकलीफ होती है तो उसका पता हमें तुरन्त उसी क्षण लग जाता है, क्यों ? इसका एक मात्र कारण स्नायु संस्थान या नाड़ी संस्थान (Nervous system) है, जो हमें किसी वस्तु के स्पर्श मात्र से ही उस वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करा देता है।

हमारे शरीर के सभी अंगों मे नाड़िया (Nerves) फैली रहती है, जिनका सीधा सम्बन्ध सुषुम्ना तथा मस्तिष्क (Brain) से होता है। ये पल पल का सदेश तार के समान हमारे मस्तिष्क तक कुछ ही क्षण मे पहुचाती है। यह सब संस्थानों की क्रियायें करती है। यह संस्थान अन्य संस्थानों, जैसे—भोजन लेना, सांस लेना, एवं मलमूत्र, विसर्जन आदि में एक गहरा सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सम्बन्ध एक प्रकार का आसजन (को-आर्डीनेशन) (Co-ordination) है।

नाड़ी संस्थान के भाग :—नाड़ी सस्थान मुख्यतः दो भागो मे बाटा गया है—(1) केन्द्रीय नाड़ी संस्थान–(Central nervous system) जिसमे मस्तिष्क (Brain) तथा सुषुम्ना (Spinal cord) होते है। (2) परिधीय नाड़ी संस्थान Periphiral Nervous System) जिसमे ये सब नाड़ियां (Nerves) सम्मिलित है। यह केन्द्रीय नाड़ी संस्थान से निकल कर शरीर के भिन्न भिन्न भागो मे जाती है।

केन्द्रीय संस्थान (Central Nervous System)। (a) मस्तिष्क (Brain) यह बहुत ही कोमल तथा सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। सारे शरीर पर यह अपना नियत्रण रखता है। इसकी स्वीकृति द्वारा हम सब जीवन क्रियाये

करते हैं। हमे इसी के द्वारा किसी कार्य के करने की सूचना एव उसकी आज्ञा मिलती है। यह खोपड़ी मे सुरक्षित रूप से रखा रहता है। यह दो झिल्लियो से घिरा रहता है। यह झिल्ली बहुत ही पतली होती है तथा क्रमश प्यामैटर

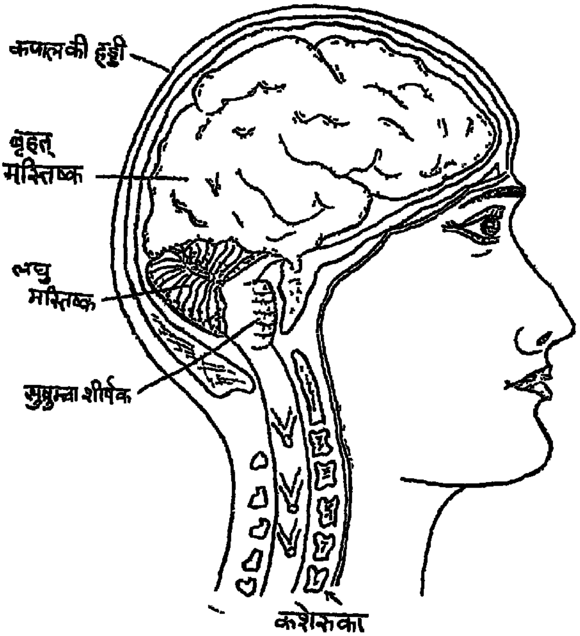

(Piamatter) एव आरकनाइड मैटर (Arachnoid matter) कहलाती हैं। इन भित्तियो के बीच मे एक द्रव्य भरा रहता है, जो मस्तिष्क की धक्के आदि से रक्षा करता है। इसी के कारण मस्तिष्क गीला एव ताजा बना रहता है। रुधिर भी झिल्लियो के द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचता है। यह नाडी सस्थान का आधार है। इसी के द्वारा इस सस्थान का बहुत बड़ा महत्व है। इसका वजन करीब 50 औस या उससे कुछ अधिक होता है। मस्तिष्क निम्न दो प्रकार के पदार्थो से बना हुआ है—

(1) श्वेत द्रव्य (White matter)—मस्तिष्क के अन्दर का भाग सफेद द्रव का होता है। इसमे अनेक वस्तुएँ मौजूद रहती हैं। शरीर के विभिन्न अगो की सूचना लाने के लिये इनमे अनेको रास्ते मिलते हैं। ये भूरे द्रव्य (Grey matter) तक फैले रहते है और एक से सस्थान पर समाप्त होते है। जहा पर शरीर का यह अग काबू मे रहता है वहा यह द्रव्य बहुत ही उपयोगी है।

(2) भूरा द्रव्य (Grey matter)—इसका रग भूरा होता है । इसकी अधिकता मनुष्य की बुद्धिमता का सूचक है अर्थात् यह जितना भी अधिक है, वह व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होगा । बुद्धिमता सदैव इसी पर निर्भर है । हमारे मस्तिष्क की अधिक लम्बाई या चौडाई पर यह कतई निर्भर नही रहता है । यह देखने में विलकुल अखरोट की मीगी के समान दिखाई देता है । इसमें ऊपर झुरिया होती है । अधिक झुरिया या कु डलिया होना बुद्धि की विलीक्षणता का द्योतक होता है । जैसे जैसे मस्तिष्क से अधिक काम लिया जाता है इसकी सतह पर रेखाये पड़ना आरम्भ हो जाती है । यह गहरी होकर झुरियों का रूप ले लेती है ।

मस्तिष्क का भाग (Parts of Brain):—मस्तिष्क निम्नलिखित चार भागो मे बांटा गया है:—

(1) वृहत मस्तिष्क (Cerebrum) (2) लघु मस्तिष्क (Cerebellum) (3) तन्तु (Pons) और (4) सुषुम्ना शीर्षक (Medulla-oblongata) ।

वृहत मस्तिष्क (Cerebrum)—यह सब भागो में सबसे बडा होता है । यह एक भूरे खोल में बन्द रहता है, जिसके अन्दर सफेद रंग के तन्तुओं से बना यह वृहत मस्तिष्क होता है । यह आपस मे दो भागो मे बटा रहता है, जो कि दाये और बायें गोलाई के रूप मे होता है । इसमे अनेकों सफेद सलवटे या कु डलियां पड़ी होती है । इन्ही कुंडलियों पर मनुष्य की बुद्धि निर्भर रहती है । यह गोलाई क्रमशः शरीर पर कावू रखती है अर्थात दाईं गोलाई शरीर के दाये हिस्से पर एव बाईं गोलाई शरीर के बाये हिस्से पर, उस मस्तिष्क पर मानव की इच्छा, ज्ञान और भावनायें निर्धारित रहती है । इसकी सहायता से हमे सोचने की शक्ति अच्छे-बुरे का ज्ञान आदि होता है । मस्तिष्क का भाग बहुत ही आवश्यक एवं अत्यन्त उपयोगी अग है ।

लघु मस्तिष्क (Cerebellum) — यह मस्तिष्क के पीछे की ओर स्थिर रहता है । इसके तन्तु क्रमशः लगे रहते है । यह इच्छानुसार कार्य करने की अनुमति देता है, जैसे—उठना, बैठना, चलना तथा फिरना सब ही इस मस्तिष्क की अनुमति से होता है । इस भाग पर चोट लग जाने से लकवा मार जाता है । इसमे कोई दोष होने से मानव बहुत सी बीमारियो से रोगी बन जाता है ।

तन्तु (Pons)—यह बहुत छोटा एव लघु मस्तिष्क के सामने की ओर स्थित रहता है । इस पर चोट लगने पर शरीर निर्जीव सा हो जाता है । इसके द्वारा श्वसन व पाचन क्रिया आदि का सचालन होता है ।

सुषुम्ना-शीर्षक (Medulla oblongata)—इसका रग सफेद एव भूरा होता है जो एक गुत्थी के आकार का होता है । यह पोन्स के आगे की ओर स्थित रहता है । यह मस्तिष्क एवं सुषुम्ना को आपस मे जोडे रखता है ।

मस्तिष्क के कार्य—इसके कार्य इस प्रकार है:—(1) यह शरीर के कार्यों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण रखता है । (2) शरीर की ज्ञानेन्द्रियो द्वारा यह जगत का ज्ञान मस्तिष्क को प्राप्त कराता है और उसी के अनुसार वह अच्छे या बुरे का ख्याल रखते हुये कार्य करने की ताकत देता है । (3) मस्तिष्क के विभिन्न भाग शरीर के विभिन्न कार्यों के लिए निर्धारित है । (4) यह एक दम हममें चेतना उत्पन्न करता है । (5) यह पेशियो को संचालित कर उनके द्वारा नियमित कार्य करने की शक्ति प्रदान करता है । (6) इसी के द्वारा मानव में इच्छा शक्ति उत्पन्न होती है । (7) शरीर के विभिन्न कार्य करते समय शरीर की समवस्था रखता है । (8) शरीर की अन्य कितने ही प्रकार से उसकी रक्षा करता है ।

सुषुम्ना (Spinal cord)—यही सुषुम्ना शीर्षक स्वयं पतली होकर खोपड़ी के पैंदे मे से सुषुम्ना (Spinal cord) के रूप मे बाहर निकलती है । यह सुषुम्ना रीढ की हड्डी के सुराखो मे सुरक्षित रूप से निकलती है । यह करीब 98 इच लम्बी व $\frac{1}{2}$ इच मोटी होती है । यह ऊपर से नीचे की ओर जाते-जाते दूर नाडियो से बट जाती है और फिर सारे शरीर मे फैल जाती है । यह भी दो निम्नलिखित झिल्लियो द्वारा ढकी रहती है—

(1) प्यामैटर तथा (2) आर्कनॉयड मैटर

इन्ही दोनो झिल्लियों से इन्हे शुद्ध रक्त मिलता है । यह दूर जोड सुषुम्ना में से ढके जोड मे निकलती है, एक सुषुम्ना के अगले भाग से अग्रमूल तथा पिछले भाग मे निकलने वाले भाग को पश्यमूल कहते हैं । मस्तिष्क से निकलने वाली नाडियों की 12 जोडे होती है, जिन्हे (Cranial nerves) कहते हैं । इनमे कुछ तो ज्ञानवाही नाडियां होती है, कुछ गतिवाही होती है, और कुछ मिश्रित नाडिया भी होती है । यह नाड़िया प्रत्येक अग मे पहुच कर उन्हे सामान्य रूप से कार्य करने मे सहायक होती है । यह जीवन की जीवित क्रियाओ को पूर्ण रूप से सचालित करती हैं ।

सहायक अथवा परिधीय नाड़ी संस्थान:—रीढ स्तम्भ के दोनो ओर सामने की ओर एक गठिया नाड़ी, सूत्र रहती है । यही सहायक नाडी संस्थान है । इस सूत्र में कुछ-कुछ दूरी पर विशेष गाठे ऊपर स्थित रहती हैं, जिन्हे सहायक नाडी पिरामिड्स कहते है । यह भी सुषुम्ना नाड़ियो मे मिल जाती हैं । इसमे से बारीक-बारीक नाड़िया

हृदय मे, फेफड़े, मे, और ऊपर मूत्राशय आदि में जाती हैं। यह केन्द्रिय नाड़ी मण्डल मे उपार्जित चेतना को यहां बांट देता है।

प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex action):—जब भी हम किसी गर्म वस्तु को स्पर्श करते है तो हम एकदम अपना हाथ हटा लेते है और यह कहने लगते है कि यह अमुक वस्तु गर्म है। यह संघ क्रिया प्रतिक्षेप द्वारा होती है । इस बात की सूचना कि अमुक वस्तु गर्म है, मस्तिष्क तक न पहुंच कर सुषुम्ना तक पहुचता है और इसी के अनुसार हम गर्म कहने लगते हैं—यह कार्य स्वय प्रेरित कार्य है । यह कार्य उसी समय तत्कालीन होते हैं और सुषुम्ना अपनी आज्ञावाहक नाड़ियों के द्वारा हाथ की मांसपे-शियों को आदेश देती है कि हाथ हटालो । यह कार्य बहुत ही वेग के साथ होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नाड़ी संस्थान किसे कहते है, इसके कार्य को समझा कर लिखें।
2. मनुष्य के मस्तिष्क का एक सुन्दर चित्र बनाकर उसके प्रयोग लिखें।
3. प्रतिक्षेप का क्या अर्थ है ? इस क्रिया का क्या महत्व है ?
4. नाड़ी संस्थान से हमारा क्या गहरा सम्बन्ध है, विस्तार पूर्वक लिखें।

पच्चीसवाँ अध्याय

विशेष ज्ञानेन्द्रियां

हमारे शरीर में वे सभी अग मौजूद है जो हमें प्रकृति से संवेदनाओं को लेकर–हमारे मस्तिष्क तक पहुचा कर हमे उसी के अनुकूल ज्ञान कराते है। इनमे प्रमुख अंग इस प्रकार है.—(1) स्पर्शेन्द्रिय या त्वचा (Skin) (2) श्रवणेन्द्रिय या कान (Ear) (3) दृश्येन्द्रिय या आख (Eye) (4) स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue) (5) घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)।

स्पर्शेन्द्रिय [त्वचा] (Skin):—इसके दो भाग होते हैं। इसका प्रथम भाग बाहरी पर्त, जिसे उपचर्म (Epidermis) कहते है तथा दूसरा निचला पर्त, चर्म (Dermis) कहलाता है। इसका रग भिन्न-भिन्न होता है। स्पर्श सम्बन्धी सभी ज्ञान हमे त्वचा के द्वारा प्राप्त होते है। त्वचा मे ज्ञानवाही नाड़िया चारो ओर फैली रहती है।

(1) उपचर्म (Epidermis):—यह कितने ही कोष्टो से बनी होती है। सबसे ऊपर वाले कोष्ट कडे व चपटे होते हैं। इसलिए ऊपरी सतह कठोर एवं चिकनी

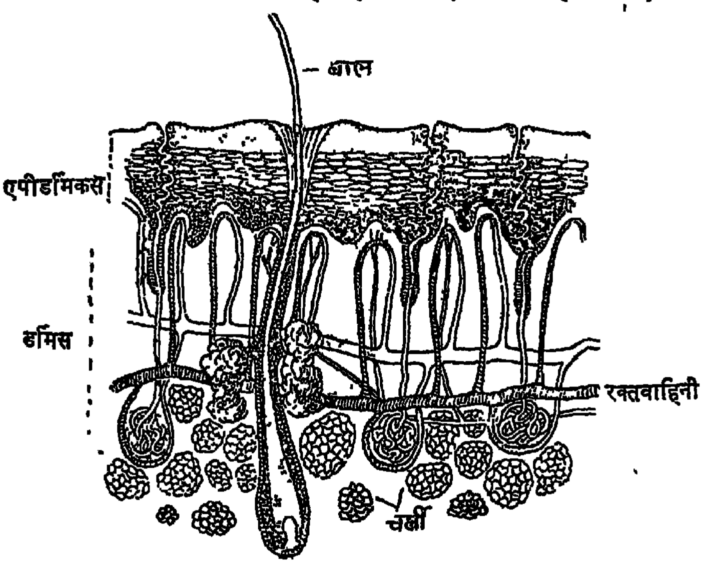

—मनुष्य की त्वचा का खड़ा सेक्शन

होती है। किसी-किसी स्थान पर यह बहुत ही अधिक कड़ी होती हैं, जैसे–कोहनी, हथेली तथा घुटने आदि पर। इस भाग मे अनेको छिद्र होते हैं, जिन्हे पोर्स (Pores)

कहते हैं। इसमें रुधिर की केशिकायें नहीं होती, इसलिए लगने पर या इसमे रगड़ खाने पर किसी प्रकार का रक्त आदि नही निकलता है। इसमे रंग के भाग होते है। परन्तु इसमे संकुचित होने या फैलने के गुण नही होते, जैसे यह गुण मेंढक मे होते हैं।

(2) चर्म (Dermis):—यह बहुत ही पतली एवं मुलायम होती है। इसमे कितनी ही ग्रन्थियां मिलती हैं। पहली ग्रन्थि स्वाद की है—अर्थात् (Sweat gland) इनके मुँह त्वचा के ऊपर सब हिस्सों पर होते है। इन ग्रन्थियो से सदैव दूषित पदार्थ अर्थात् पसीना बाहर निकलता रहता है। दूषित ग्रन्थि केश की है। यह (Hair glands) कहलाती है। इनसे त्वचा पर बालो की उत्पत्ति होती है। यह बाल केश गुत्थियो (Hair follicles) से उत्पन्न होकर उपचर्म को त्वचा पर निकाले रहते है। साथ ही साथ इनमे सिवेशियम ग्रन्थि भी होती है, जो केश ग्रन्थियों के पास रहती है, इनमें से एक तेल के समान पदार्थ निकलता रहता है। यह त्वचा व बालों को कोमल रखता है। इसी चर्म मे रुधिर नलियां (Blood Vessels) भी उपस्थित रहती हैं, जो त्वचा मे शुद्ध या अशुद्ध रक्त पहुंचाती है। नाडियां भी इसी चर्म में मौजूद रहती है, जिनसे स्पर्श ज्ञान होता है। सबसे निचली तह त्वचा में चर्बी की होती है।

श्रवणेन्द्रिय या (कान) (Ear)—जरासी भी आवाज होते ही हम ध्वनि को सुन लेते हैं। यह ध्वनि, तरगों (Sound Vibrations) के रूप मे आस-पास

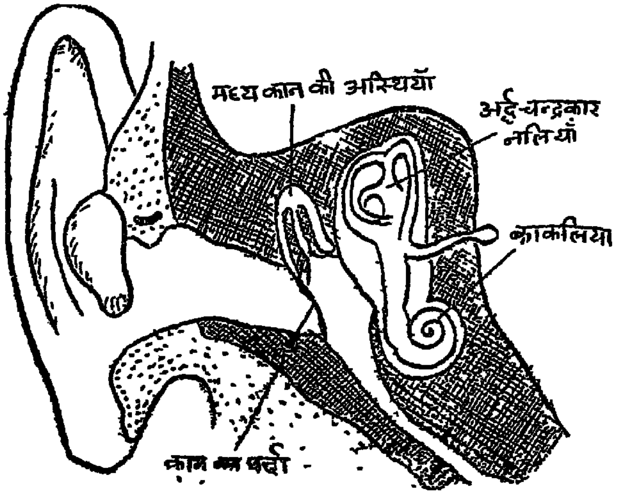

की हवा में फैल जाती है, और हमारे कर्णपट या टिम्पैनम पर आकर टकराती है। यहां पर यह प्रकम्पन पैदा करती है, इस प्रकम्पन के द्वारा कर्णपट से जुड़ा हुआ

कालूमेला (Columella) हिलने लगता है। इसके द्वारा यह प्रकम्पन काला गहन से पहुच जाता है और स्थान-स्थान पर जो श्रवण स्थल मौजूद रहते हैं, इस प्रकार नाडी तन्तुओ द्वारा मस्तिष्क को सूचना मिलती रहती है। तभी हमे सुनाई पडता है। इन्ही से शरीर की गति, दिशा (Direction) तथा चाल की तेजी आदि का भी ज्ञान होता है। मनुष्य का कान तीन भागो मे विभाजित रहता है:—

(1) बाहरी कान (External Ear) (2) मध्य कान (Middle Ear) (3) भीतरी कान (Internal Ear)। सबसे पहला कान ध्वनि तरंगो को इकट्ठा करने मे तथा आवाज किस दिशा में आ रही है उसका बोध कराता है। मध्यकर्ण मे तीन हड्डिया होती है–यह कर्णपट के प्रकम्पन को भीतरी कान तक ले जाती है। साथ ही साथ हमारे कान मे एक लम्बी कुंडलित काकलिया (Cochlea) होती है जिसकी सहायता से स्वर तथा लय का बोध होता है।

स्वादेन्द्रिय—(जीभ) (Tongue):—मानव जीभ की सहायता से स्वाद का पता लगाता है। मनुष्य की जीभ मे अनेको स्वाद कलियां (Taste Buds) होती है–जिनके द्वारा स्वाद का पता लगता है। इन स्वाद कलियो मे अनेको स्वाद कोशाएं (Taste cells) विद्यमान रहती है। इन सभी कोशाओं के निचले सिरे, नाडियो के तन्तु से जुड़े रहते है–जिसमे ये तन्तु स्वाद की प्रेरणा सहज मस्तिष्क तक पहुचाते है। इनसे हमे

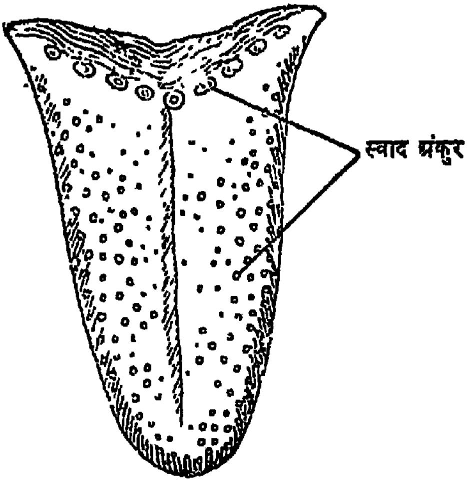

स्वाद का आभास हो जाता है। हमे अलग-अलग स्वाद का पता भिन्न-भिन्न स्वाद ग्रन्थियों द्वारा होता है।

घ्राणेन्द्रिय—(नाक) (Nose):—इसमे विशेष बारीक बाल होते हैं–जिनसे धूल के कण, कीटाणु आदि यही पर रोक लिए जाते है। इसके पिछले भाग मे कुछ घ्राण कोशाएँ होती हैं। गधनाडी के तन्तु इन कोशाओ के निचले सिरों से जुडे रहते है। इनके द्वारा खुशबूदार चीज की गंध हमारे नाक तक आ जाती है। यह गध

आलफैक्टरी सेक मे घुसती है। यह रोमों से टकरा कर हमें खुशबू का भान कराती है। मानव मे यह शक्ति बहुत अधिक होती है।

दृश्येन्द्रियाँ—(आँख) (Eye):—यह शरीर का बहुत ही उपयोगी अंग है। इसकी रक्षा करनी बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इसी के द्वारा हम प्रकृति मे मिलने वाली सब वस्तुओं के विषय में स्वय अपने नैत्रों से देखकर अध्ययन करते है।

आंखों की रक्षा के लिए पलकें (Eye lids) और बरोनियां (Eye lashes) मौजूद रहती है। इन्ही के ऊपर भौरें (Eye brows) होती है। हम धूल के कण आदि से इनके द्वारा इसकी रक्षा करते है, क्योकि आवश्यकता पड़ने पर नैत्रों को बद कर लेते हैं। प्रत्येक ऊपरी पलक के नीचे बाहर की ओर एक चक्षुग्रथि (Tear glands) होती है, जिससे आंसू गिरते है। इन आंसुओं का सम्बन्ध नाक से एक अश्रुनासा प्रणाली (Tear duct) होती है। कभी कभी रोते समय बीच-बीच मे आंसू पोछते पोछते नाक भी पोछनी पडती है।

आंख में तीन पर्त होती हैं:—(1) श्वेतपटल या स्किलिराटिक (Sclerotic) (2) मध्य पटल या कोराएड (Choroid) (3) भीतरी पटल या मूर्तपिट (Retina) रेटिना।

सबसे बाहर वाली परत स्किलिराटिक की होती है। इसका भीतरी भाग

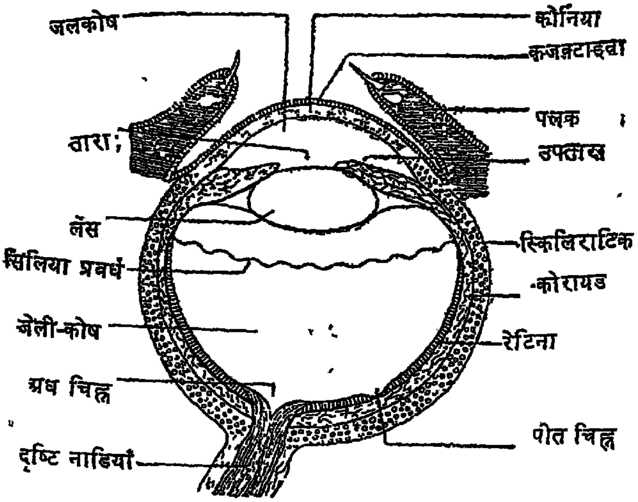

कार्टलेज का बना होता है, जो अपार दर्शक है। इसमे से प्रकाश की किरणें नही जाती हैं, परन्तु आगे के $\frac{1}{3}$ भाग पर दर्शक होता है, जो कार्निया (Cornea) कह

लाता है। इसी कार्निया के बाहरी सतह से मिली हुई एक पतली झिल्ली और है जिसे कन्जक्टाईवा (Conjunctiva) कहते है।

मध्य भाग या कोराएड मे रुधिर केशिकाग्रों का एक सघन जाल बिछा रहता है। इनसे अनेको रग से भरी कोशायें भी होती है। इसका पिछला दो तिहाई भाग रेटिना (Retina) के पोषण तथा नेत्रबॉल (Eye ball) मे अन्धेरा बनाये रखता है। इसका अगला रगीन भाग आइरिस (Iris) या उपतारा कहलाता है। देखने पर यह द्विउन्नतोदर (Biconvex) होता है, इसके बीचों बीच एक गोल छेद होता है, जिसे प्यूपिल तारा (Pupil) कहते हैं।

सबसे भीतरी पर्त को रेटिना (Retina) कहते हैं, नेत्र बॉल के पीछे जो दो तिहाई भाग इसी का होता है। इसमे नाडी कोशाए (Nerve Cells) तथा अष्टिक नाडी (Optic Neave) मिलती है, जो पिछले भाग से निकल कर मस्तिष्क तक जाती है। जहा मे अष्ठिक नाड़ी (Optic Nerve) निकलती है, वहा कोई प्रति मूर्ति या (Image) नही बनती–इसे अन्ध चिन्ह (Blind Spot) कहते हैं। नेत्रो मे लेन्स के पीछे रेटिना में पीत बिन्दु (Yellow Spot) भी होता है, जहा सबसे साफ चित्र बनता है। लेन्स के आगे वाले भाग को जल कोष (Aqneous Chamber) तथा पीछे वाले भाग को जेली कोष (Vitreous Chamber) कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मनुष्य की आंख की रचना का एक सुन्दर चित्र बना कर उसके विभिन्न अंग दिखावें।
2. सूंघने से क्या लाभ है ? सूंघने के अग का विवरण लिखे।
3. कान मे कितने भाग होते हैं ? सभी भागो के काम विस्तार पूर्वक समझावे।
4. "स्वाद ग्रन्थि" क्या है और इसका क्या उपयोग है ?

छब्बीसवां अध्याय

व्यक्तिगत स्वास्थ्य ज्ञान

स्वास्थ्य विज्ञान—मानव समाज का एक प्राणी है, वह समाज में से किसी तरह दूर नही किया जा सकता है। अपनी स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये उसे सार्वजनिक स्वास्थ्य विज्ञान में शामिल होना पड़ता है। इसलिये स्वास्थ्य विज्ञान में दोनों ही वर्ग अर्थात् व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। इसमें हम व्यक्तिगत स्वास्थ्य को मुख्य मान सकते है क्योकि सार्वजनिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये प्रथम व्यक्तिगत स्वास्थ्य का ठीक होना आवश्यक है।

व्यक्तिगत् स्वास्थ्य—अपने को हृष्ट पुष्ट बनाये रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर की सफाई रखना आवश्यक है। व्यक्तिगत सफाई का अर्थ है शरीर के मुख्य मुख्य अंगो की सफाई करना। इसमें उसके कान, आंख, त्वचा, मुंह, दांत नाखून एवं आन्तरिक अंग आते हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य—व्यक्तिगत स्वास्थ्य का ध्यान रखने के साथ ही साथ हमें अपने मुहल्ले, गली गांव और शहर आदि का ध्यान रखना भी आवश्यक है और यह सफाई सार्वजनिक स्वास्थ्य में आती है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य में वे समस्त बातें सम्मिलित हैं जो हमें अपने शरीर को स्वस्थ रखने और अपने स्वास्थ्य को सुधारने के लिये करनी चाहिये। यह हम सभी जानते हैं कि अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने और उसे सुधारने के लिये सफाई, कसरत, आराम, आदि अति आवश्यक हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिये इनके कुछ साधारण नियमो को जानना आवश्यक है। साधारणतया ये नियम सीखना और उनका पालन करना अति सरल है, लेकिन बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो इन नियमों का अपने दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं, अतएव यह आवश्यक है कि बचपन से ही ये नियम हम लोगो को सीख लेने चाहियें और उनको नियमित रूप से व्यवहार में लाना चाहिये और दूसरी आदतों के साथ साथ इन पर अमल करना भी हमारी आदत बन जाना चाहिये।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिये कुछ आवश्यक बातें—

1. स्वच्छता (सफाई)
2. व्यायाम, आराम और निद्रा

3. बाल और नाखून की सफाई और उनकी रक्षा
4. मुंह, दात और आँतो की सफाई तथा उनकी रक्षा
5. आँख, नाक और कान की सफाई तथा उनकी रक्षा
6. त्वचा की सफाई और उसकी रक्षा
7. वस्त्र (कपड़े)

स्वच्छता—व्यक्तिगत स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये अनेक बातो में स्वच्छता एक है। इसीलिये जो मनुष्य सदैव स्वच्छ रहते है वे नीरोगी बने रहते हैं और सदैव प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, इसके विपरीत वे मनुष्य जो सदैव गन्दे रहते हैं हमेशा उदास और हताश रहते हैं, उनके विचार भी अधिकतर गन्दे होते हैं। स्वच्छ रहने की आदत जिन मनुष्यो को बचपन से ही पड़ जाती है अधिकतर वे ही आगे चल कर एक अच्छे नागरिक बनते हैं। शरीर को स्वच्छ न रखने से त्वचा पर पसीना और धूल के कण जमा हो जाते हैं जो त्वचा के छिद्रों को ढक लेते हैं जिससे शरीर के दूषित पदार्थ पसीने के रूप में बाहर नहीं निकल पाते और हमारा शरीर अनेक रोगों का शिकार हो जाता है। यह हम सभी जानते हैं कि शरीर की त्वचा यदि स्वच्छ नहीं रखी जाये तो वह स्थान कीटाणुओ के लिये उपयुक्त बन जाता है और अनेक चर्म रोग जैसे खुजली, फोड़े, फुन्सिया और दाद आदि हो जाते है। इसी प्रकार ही मुंह, दात, बाल आदि भी यदि स्वच्छ न रखे जाये तो अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है, अतएव शरीर एवं शरीर के आन्तरिक अंगो की सफाई हमारी प्रतिदिन की आदत बन जानी चाहिये।

व्यायाम, आराम और निद्रा—व्यायाय, आराम और निद्रा का उचित सम्मिश्रण अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है। यह हम सभी जानते हैं कि गावो में रहने वाले मनुष्यों का स्वास्थ्य शहर में रहने वालों की अपेक्षा अच्छा होता है और वे शीघ्रता से और ठीक ढंग से प्रत्येक कार्य करने की क्षमता रखते हैं जबकि शहर में रहने वाले मनुष्य आलसी होते हैं और अधिकतर कार्यों को अधूरा ही छोड़ देते हैं यह शहर में रहने वालों मनुष्यों में व्यायाम की कमी के कारण ही होता है। शरीर के कार्य करने की क्षमता को ठीक रखने, माँस पेशियों को गतिशील और विकसित करने के लिये तथा संधियो को पूरी तरह से गतिशील करने के लिये नियमित रूप से व्यायाम करना आवश्यक है।

व्यायाम का महत्व—व्यायाम के कारण अधिक गहरी सास बार बार ली

जाती है और रक्त को साधारणतया प्राप्त होने वाले आक्सीजन से अधिक आक्सीजन प्राप्त होता है।

2. इससे शरीर की अशुद्धियाँ जैसे कार्बन डाई आक्साइड तथा पानी के बाहर निकलने की गति बढ़ जाती है।

3. रक्त का बहाव तीव्र हो जाता है जिससे शरीर के प्रत्येक भाग को शुद्ध रुधिर बार बार जल्दी ही मिल जाता है और उनसे उत्पन्न हुई अशुद्धियाँ भी शीघ्र ही बाहर कर दी जाती हैं और वे पसीने और मल मूत्र के रूप में शरीर से शीघ्र ही बाहर कर दी जाती हैं।

4. आमाशय, फेफड़े, आँते और शरीर के दूसरे अवयव अधिक अच्छी तरह कार्य करने लगते है जिससे पाचनक्रिया ठीक रहती है।

5. शरीर की माँस पेशियो का विकास होता है और उनको अधिक काम करने योग्य बनाया जा सकता है।

6. शरीर रोग रहित रहता है और हम सदैव प्रसन्नता का अनुभव करते है।

व्यायाम के प्रकार और नियम—व्यायाम अनेक प्रकार के होते हैं, जो उन्हें अपनी अवस्था तथा शरीर और सुविधा के अनुसार चुन लेना चाहिये। जैसे स्कूल के विद्यार्थियो के लिये फुटबाल, हॉकी, क्रिकेट, टेनिस आदि ऐसे खेल हैं जो न केवल उनके शरीर का विकास करते है बल्कि उन्हे सदैव फुर्तीला और प्रसन्न रखते हैं। बड़े पुरुषो के लिये टहलना भी एक व्यायाम है, इससे उनकी पाचन क्रिया नहीं बिगड़ने पाती है और शरीर पुष्ट रहता है।

थकान, आराम और निद्रा—लगातार काम करने से हम थकान का अनुभव करते हैं और यह थकान परिश्रम के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली शारीरिक टूट फूट के कारण होती है। यदि इस टूट फूट से बने पदार्थ रक्त द्वारा शरीर से अलग नहीं किये जाये तो हमारी कार्य शक्ति निरन्तर कम होती जाती है और हम एकाग्र होकर किसी कार्य को ठीक से नहीं कर सकते हैं, क्योकि जब कभी हम कोई कार्य करते है तो कुछ कोषो की टूट फूट से ऐसे पदार्थ बनते है। जिनका शरीर से बाहर निकलना आवश्यक हो जाता है। यह पदार्थ रक्त के द्वारा बाहर निकाले जाते हैं, लेकिन जब अधिक कार्य किया जाता है तो यह दूषित पदार्थ अधिक इकट्ठा हो जाता है और रक्त उसे चूंकि धीरे धीरे शरीर के बाहर करता है इसलिए वह शरीर में रह जाता है, इससे हमें थकान का अनुभव होता है। इसलिये इस पदार्थ को शरीर के बाहर करने के लिये आराम की आवश्यकता होती है। आराम करने से यह दूषित पदार्थ

धीरे धीरे रक्त के द्वारा शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है। इसलिये अच्छे स्वास्थ्य के लिये आराम करना भी अति आवश्यक है। आराम शरीर और दिमाग दोनों को ही मिलना चाहिये। आराम से थकी हुई माम पेशियो और नाड़ियों में स्फूर्ति आ जाती है; टूटे हुये तन्तुओं की मरम्मत हो जाती है और शरीर के हानिकारक पदार्थ बाहर निकाल दिये जाते है। पूर्ण आराम नींद लेने से ही मिलता है। नींद लेने के लिये शान्त, अ धेरा और हवादार स्थान होना चाहिये। भूमि पर नही सोना चाहिये; सोने के लिये स्थान आस पास से ऊंचा होना चाहिये अर्थात पलग पर सोना चाहिये ताकि सोते समय चारों ओर से शुद्ध हवा प्राप्त होती रहे। बिछौना साफ होना चाहिये और अधिक मुलायम न होना चाहिये। सोते समय मुंह को ढक कर नहीं सोना चाहिये क्योकि उससे फेफड़ो द्वारा निकली हुई दूषित वायु में ही सास लेनी पड़ती है। सोने का समय भी निश्चित होना चाहिये। शिशु को १६ घन्टे, १२–१४ साल के बच्चो को १० घन्टे, १४–२० साल के बच्चो को ६ घन्टे, युवा को ७-८ घन्टे सोना चाहिये और वृद्ध मनुष्य के लिये ७ घन्टे सोना आवश्यक है।

बालों और नाखून की सफाई—सिर एवं शरीर के बालों की पूर्ण रूप से सफाई की जाये जिससे उसमें गन्दगी न हो सके। अगर सिर के बालो की सफाई नहीं की जाये तो उनमें गन्दगी हो जाती है और जूं जैसे परोप जीव पैदा हो जाते हैं, जो हमारे लिए बहुत ही घातक हैं। इसी प्रकार शरीर के बालो में बदबू आने लगती है तथा उनके छिद्र आदि बन्द हो जाते हैं, और शरीर की गन्दगी बाहर निकल नहीं सकती जिससे हम कुछ ही समय में रोगग्रस्त हो जाते है, इसके लिए हमें स्वच्छता का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। अच्छे साबुन से स्नान करना चाहिए तथा सिर में अच्छा तेल डालना चाहिए व कंघी आदि करनी चाहिए।

नाखून की सफाई—मानव समाज को बीमार करने में इनका भी बड़ा हाथ है, इसलिए इनकी सफाई भी बहुत ही आवश्यक है। हमें नाखून सदैव काटते रहना चाहिए क्योंकि नाखून होने से उनके बीच में मैल भर जाती है। यह मैल भोजन आदि के साथ हमारे पेट में पहुंचती है, तथा अनेक रोग उत्पन्न कर हमें बीमार बना देती हैं। इसीलिए नाखून कभी दातो से नहीं काटने चाहिए। इसके अतिरिक्त बड़े नाखून शोभा भी नहीं देते, देखने में भी बुरे लगते हैं।

मुँह, दांत और आंतों की सफाई तथा उनकी रक्षा—इनकी सफाई भी अनिवार्य है। हमारा भोजन मुँह द्वारा आमाशय (Stomach) में जाता है। भोजन के चबाने की विधि मुंह में स्थित दातो द्वारा होती है। यही पर भोजन को,

कुछ विशेष रस मिलता है— जिससे भोजन अपना रूप बदल लेता है। दांतों द्वारा भोजन को खूब चबाया जाना चाहिए जिससे भोजन छोटे छोटे कणो में टूट जाता है। अक्सर भोजन के कुछ कण हमारे दांतो के बीच फँस जाते हैं—जो बाद में सड़ना आरम्भ कर देते है तथा गन्दगी उत्पन्न कर देते हैं। इससे हमारे भोजन के साथ साथ वह गन्दगी फिर आमाशय में जाती है। यह गन्दगी उस भोजन को विषैला बना देती है और हमें बीमार कर देती है। इसलिए दांतो के बीच कणो को निकाल देना चाहिए— साथ ही साथ उसकी सफाई ब्रुश से करनी चाहिए। मुँह की सफाई भी अनिवार्य है—अन्यथा हमारे गले में अनेको बीमारी हो जाती हैं। इसलिए कभी कभी नमक या पोटेशियम परमेगनेट आदि के कुल्ले आदि करना चाहिए।

हमारे शरीर में स्थित सभी आन्तरिक अंगो की सफाई बहुत ही आवश्यक है, इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण आमाशय है, क्योंकि पोषण की सारी क्रिया अधिकतर यहीं पर सम्पन्न होती है। तमाम रोगो की जड़ आमाशय है। इसमें किसी भी प्रकार की बीमारी हमें बीमार पटक सकती है। पेट साफ रखने के लिए थोड़ा कम खाना चाहिए और भोजन बहुत ही नियत एवं निश्चित रूप से लेना चाहिए। शौच आदि से प्रतिदिन निवृत होना चाहिए। पानी का सेवन भी खाने के बाद यथेष्ट मात्रा में होना चाहिए।

आंख, कान व नाक की सफाई तथा उनकी रक्षा:—(कान)—यह एक कोमल अंग है, यह बहुत जल्द खराब होकर हमें बहरा बना देता है। अगर इनकी सफाई नही की जाए तो आदमी बहरा हो जाता है। कभी कभी सिर दर्द, गले और कान का सूजना तथा कान में पीप पड़ जाना इसकी प्रमुख बीमारी हैं। कभी २ कान का मैल फूलकर सूजन कर देता है जो बहुत ही दुखदायी होता है, इसलिए इस मैल को इकट्ठा न होने दिया जाना चाहिए। चूंकि कान एक कोमल अंग है, इसलिए इसकी सफाई किसी पतली पैनी चीज से कभी नहीं करनी चाहिए अन्यथा कान के परदे के फटने का डर रहता है, अक्सर विद्यार्थी कान में पेन्सिल आदि डालकर खुजाते हैं, यह बहुत बुरी आदत है।

आंख—यह शरीर का अति कोमल अंग है। आँख की सफाई उसमें कोई वस्तु गिरने पर अस्पताल आदि में करवानी चाहिए। इसके साथ आंख कभी कभी दुखने लगती है, इसके लिए डाक्टर की राय से दवा डालनी चाहिए। यों तो आख के अनेको रोग हैं और कभी कभी व्यक्ति इन रोगों मे ग्रसित होकर अपनी आख की रोशनी खो बैठता है जिससे संसार की सभी वस्तुएँ उसके लिए बेकार हो जाती हैं और वह किसी भी वस्तु का अध्ययन नही कर पाता। आखों की रोशनी

बनाये रखने के लिए उसे सुबह ठण्डे ताजे पानी से छींटे मारने चाहिए तथा हरियाली की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहिए।

त्वचा की सफाई और उसकी रक्षा—दिन-प्रतिदिन के परिश्रम के बाद ही हमारे शरीर में से पसीना बाहर निकलता है। अगर त्वचा की ठीक प्रकार से सफाई नहीं की जाए तो छिद्र बन्द हो जाते हैं और शरीर की गन्दगी पसीने के रूप मे बाहर निकल नहीं पाती है जिससे इस गन्दगी द्वारा शरीर में कई बीमारी पैदा हो जाती हैं। कभी कभी यह बीमारी बहुत ही भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। इसके द्वारा शरीर में त्वचा के रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं जो वास्तव में बहुत दुखदायी होते है, इसलिए तेल साबुन मलकर रोज स्नान करना चाहिए तथा शरीर को रवेदार तोलिए से रगड़ कर साफ करना चाहिए।

वस्त्रों की सफाई—इसका सम्बन्ध हमारे कपड़ों से है, यह वस्त्र हम क्यों पहनते हैं ? और किस प्रकार पहनते हैं ? फिर उसको कैसे रखते है ! यह सारी बातें जाननी बहुत ही आवश्यक है। इनका उपयोग एक तो शरीर को शीत एव ताप से बचाने के लिए किया जाता है, तथा दूसरे शरीर की शोभा के लिए होता है। गर्मी में सदैव हल्के एवं सफेद वस्त्र ही पहनना उपयोगी सिद्ध होता है, क्योकि वह ताप का कुचालक है और शरीर से निकले पसीने को जल्द सोखकर उसे हवा के सम्पर्क में आते ही ठन्डा कर देता है। यदि कपड़ा रंगीन होगा तो अवश्य ही वह अधिक गर्म रहेगा। सर्दी में रंगीन कपड़ा अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि वह ताप का सुचालक है। सर्दी में सदैव गर्म कपड़ा पहनना चाहिए, क्योंकि वायु उसमें अवरुद्ध होती है और ायु ताप की कुचालक है। कपड़े सदैव कुछ ढीले पहनने चाहिए। ऐसा कपड़ा नहीं पहनना चाहिए जिससे मानव के अंग अपना कार्य ठीक तरह से नहीं कर सकें। ज्यादा ढीला कपड़ा भी देखने में बुरा लगता है। इसलिए कपड़ो की बनावट बहुत ही आकर्षक एवं ऐसी होनी चाहिए जो शारीरिक क्रियाओं एवं रक्त प्रवाह आदि में किसी प्रकार का विरोध न कर सके।

सार्वजनिक स्वास्थ्य—व्यक्तिगत स्वास्थ्य का ध्यान रखने के साथ साथ हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना आवश्यक है। स्वास्थ्य का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जासका है :—

बीमारियों की रोक-थाम—बीमारी में कुछ ऐसे संक्रामक रोग हैं जो बहुत ही जल्द एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैल जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो को पूर्ण ख्याल रखना चाहिये तथा उन्हें तुरन्त ही दवा आदि देनी चाहिये, जिससे संक्रामक कीटाणु नष्ट

हो जायँ। इनमें जरासी भी देर करने पर यह भयंकर रूप धारण कर लेता है। इसके लिये टीका लगवाना बहुत ही जरूरी है। इन टीको से इनके कीटाणुओं की मृत्यु हो जाती है। इन बीमारियों की रोकथाम नगर में नगरपालिका द्वारा निर्मित कुछ अस्पताल से भी होती है, तथा टीके आदि वहां से पूछताछ कर अवश्य लगवाने चाहिए।

शहर की सफाई :—यह प्रबन्ध नगरपालिका द्वारा होता है। इसमें हमें शहर के सब कूड़ा-करकट गन्दगी किसी एक नियमित स्थान पर इकट्ठा करना चाहिये जिससे शहर की वायु दूषित न हो सके। यह कार्य गावो में ग्राम पंचायत द्वारा होता है। परन्तु यह कार्य अधिकतर स्वयं द्वारा करने पर पूर्ण रूप से हो सकता है, और शहर की सफाई पूर्ण रूप से हो सकती है। शहर की नालियां एवं कूड़ा-करकट फेंकने के स्थान प्रतिदिन साफ रहने चाहिये। पूर्ण रूप से सफाई के लिए नालियों आदि में दवा डालनी चाहिए जिसमें मुख्यत: ब्लीचिंग पाऊडर (Bleaching Powder) है। यह कीटाणु नाशक दवा है। कूड़-करकट सदैव साफ स्थान पर इकटठा करके आसानी से शहर के बाहर फेंका जाना चाहिये।

पानी का प्रबन्ध :—इसकी सफाई बहुत ही आवश्यक है। पानी सदैव स्वच्छ एवं किसी भी रोग के कीटाणु रहित होना चाहिए। शहरो में यह पानी छानकर एवं कीटाणु नाशक दवाइया मिलाकर भेजा जाता है, लेकिन जहा तक हो पानी को उबाल कर व छान कर पीना चाहिये जिससे सब कीटाणुओ की मृत्यु हो जाती है। गाव में पानी प्राय: गन्दा मिलता है। कुएं आदि पर कुछ लोग नहाते है तथा कपड़े आदि धोते है जिससे पानी गन्दा एवं कीटाणु युक्त होता है। ऐसे पानी में पोटेशियम परमेगनेट डालकर उसे स्वच्छ किया जाता है। इसमें ब्लीचिंग पाऊडर भी डालना चाहिये जिससे कीटाणुओं की मृत्यु हो जाती है। शहर में पानी का पूर्ण प्रबन्ध रहता है। पानी का प्रबन्ध नगरपालिकाओ व कहीं कहीं राज्य सरकार द्वारा होता है।

बगीचे व अस्पताल का प्रयोग :—चिकित्सालय और स्वास्थ्य सम्बन्धी बाग बगीचो आदि का पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए जिससे नागरिको की स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बीमारियो की पूर्ण रोक थाम की जा सके। बाग बगीचो का होना भी इसमें अनिवार्य है जिससे मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेकर उससे शुद्ध वायु को ग्रहण कर सके।

उपरोक्त सभी प्रयोग नगरपालिकाओ व राज्य सरकार द्वारा किये जाते हैं। अन्यथा इसके लिये इनका ही उत्तरदायित्व होता है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रेरणा :—यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रत्येक मानव

को कुछ न कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिये जिससे वह दिन-प्रतिदिन के स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन कर सके। जब तक उसमें प्रेरणा न होगी वह कभी भी स्वास्थ्य सम्बन्धी तथ्यो पर न चल सकेगा और अपना जीवन सुखदायक व निरोगी नही बना सकेगा। इसलिये उसमें प्रेरणा को भी जाग्रत करनी चाहिए। प्रत्येक मानव को व्यक्तिगत रूप से सार्वजनिक स्वास्थ्य का पूर्ण अध्ययन करना चाहिये जिससे अपने आपको निरोगी बना सकने के साथ साथ समाज में भी सफाई रखकर उसका कल्याण कर सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यक्तिगत् स्वास्थ्य का क्या अभिप्राय है? इसका महत्व सविस्तार समझावें।

2. अपने आपको पूर्ण स्वस्थ बनाये रखने के लिए क्या करना चाहिए व कैसे रहना चाहिए?

3. "व्यक्तिगत् और सामाजिक स्वास्थ्य परस्पर एक दूसरे पर अवलंबित है" इसे आप कैसे सिद्ध कर सकते हैं?

4. छात्र जीवन में स्वास्थ्य के लिहाज से कौन-कौन सी आदते बुरी हैं, और क्यो?

5. "स्वच्छ रहने की आदत जिन मनुष्यो को बचपन से ही पड़ जाती है, अधिकतर वे ही लोग आगे चलकर अच्छे नागरिक बनते हैं" इस कथन को संक्षेप सिद्ध करें।

सत्ताइसवाँ अध्याय

साधारण रोग, उनके कारण और प्रतिरोधकता

छूत की बीमारिया वे बीमारिया है जो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को लग जाती हैं और अधिकतर परजीवी जीवो अथवा किटाणुओ से होती है। इनमें से कुछ किटाणु तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से भी नही देखा जा सकता। इनमें से कुछ रोग तो एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य के सम्पर्क में आने से या किसी जीव-जन्तु के द्वारा काटने से ही हो जाते है। जब कोई जन्तु मनुष्य का रक्तपान करता है तो ऐसे रोग के किटाणु उसके जख्म पर छोड़ देता हैं जो रुधिर में प्रवेश कर लेते हैं। कुछ रोग भोजन या पेय पदार्थों द्वारा भी मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हम छूत की बीमारियो को दो भागो बाट सकते है। एक तो वे जिनके किटाणु रोगी के सम्पर्क में आने वालो को भी रोगी बना देते हैं। यह रोग हवा, पानी; भोजन आदि द्वारा फैलते है। रोगियो के स्थान परिवर्तन से इस प्रकार के रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्तियो को लग जाते हैं और इस प्रकार बहुत जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र ही फैल जाते है। चेचक, मोतीभरा खसरा, हैजा, पेचिस, डिप्थीरिया, इनफ्लूएंजा, गर्दनतोड़ बुखार, प्लेग, कूकर खासी आदि इसी प्रकार के ऐसे रोग वे है जो प्रत्यक्ष में तो सम्पर्क से नही फैलते हैं, परन्तु इनके कीटाणु जानवरो से काटने आदि से मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते है और मनुष्य को रोगी बना देते है। मलेरिया, अत्याधिक नीद आने वाली बीमारी, पीला ज्वर, हाथी-पांव, काला ज्वर, पुनराक्रामक ज्वर, आदि रोग इस प्रकार के कुछ उदाहरण है।

प्रतिरोध एवं रोग क्षमता :—आपने देखा होगा कि छूत की बीमारियो के रोगी के सम्पर्क में आने वाले सभी लोग बीमारी का शिकार नही होते हैं। कुछ तो बीमार पड़ जाते हैं, जबकि कुछ लोग चगे ही रहते है, इसका कारण मनुष्य के प्रतिरोध एवं रोग क्षमता के गुण का होना है। मनुष्य के शरीर में दो प्रकार के रक्तकण होते हैं, एक लाल और दूसरे सफेद। जब किसी भी रोग के किटाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते है तो रक्त के सफेद कण उनसे लड़ते हैं, और उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, यदि इस लड़ाई में सफेद रक्तकण विजयी हो जाते है तो मनुष्य स्वस्थ रहता है। अतएव भिन्न २ मनुष्यों में रोग क्षमता टीके आदि लगवा कर बढाई भी जा सकती है।

रोग के किटाणुओं का प्रसार :—छूत की बीमारियों के किटाणु निम्नलिखित किसी भी तरीके से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं—

1. व्यक्तियों अथवा उनके कपड़ों के सीधे सम्पर्क में आने से :—जैसे इनफ्लूएंजा. राज्यक्ष्मा आदि।

2. वायु से :—जब कोईरोगी सांस बाहर निकालता है तो रोग के किटाणु भी वायु में चले जाते हैं और रोग फैलाते हैं और सांस के द्वारा दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। रोगी के छींकने, खांसने, थूकने और मल-मूत्र से भी किटाणु वायु में चले जाते हैं और रोग फैलाते है, उदाहरणार्थ चेचक, राज्यक्ष्मा, जुकाम, इनफ्लूएंजा आदि।

3. पेयपदार्थों और भोजन द्वारा :—यदि खाने, पीने के बर्तन भली-भाति साफ न हों अथवा खाना बनाने वाले के हाथ भी स्वच्छ न हो तो इस प्रकार के रोग फैलते हैं। उदाहरण—हैजा, राजयक्ष्मा, मोतीझरा, पेचिश आदि।

4. मक्खियों से :—मक्खियाँ गन्दे पदार्थों पर बैठती हैं और रोग के किटाणुओं को अपने शरीर के विभिन्न स्थानो पर जैसे टांगो, परों, मुंह आदि के साथ चिपका कर ले आती हैं, ये ही मक्खिया जब भोजन आदि पर बैठती हैं तो रोग के किटाणु भोज्य पदार्थों द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुंच जाते हैं। घावों पर बैठकर भी मक्खियां इस प्रकार के रोगो को फैलाती हैं। जैसे हैजा आदि।

5. मच्छर, पिस्सू, खटमल आदि जानवरो के काटने से भी छूत की बीमारियों की के किटाणु के लिये है जैसे मलेरिया, पीला ज्वर आदि।

छूतहली बीमारियों से बचने के उपाय:—

1. टीका लगवाना :—मनुष्य को चेचक आदि के टीके लगवाने चाहिए। और टीके लगवाकर अपने शरीर को पुष्ट कर लेना चाहिए ताकि छूत की बीमारिया उसे हो ही न सकें।

2. जैसे ही आपको किसी व्यक्ति को छूत लगने का सन्देह हो उसे अन्य स्वस्थ मनुष्यो से अलग किसी कमरे में रख देना चाहिए और उसकी देख-रेख में ऐसे मनुष्यो को रख देना चाहिए जिसे वह बीमारी स्वयं को हो चुकी हो अथवा उन्होंने टीका आदि लगवाकर अपने को सुरक्षित कर लिया हो। कुछ व्यक्ति जिनकी इच्छा शक्ति तीव्र होती है वे कभी कभी अपने आपको रोगों से सुरक्षित रखने में समर्थ होते हैं।

3. जैसे ही आपको किसी व्यक्ति को छूत लगने का भय हो उसे तुरन्त ही

कुछ समय के लिए दूसरे व्यक्तियों से अलग रख दें, कुछ काल के भीतर ही या तो रोग के लक्षण प्रकट हो जायेंगे या वह स्वस्थ्य हो जायेगा। अगर उसमें रोग के लक्षण प्रकट हो जाए तो उस पर फौरन ही छूत के रोग के चिकित्सालय में भेज देना चाहिए और जब तक वह पूर्ण रूप से ठीक न हो जाए उसे वहीं रखना चाहिए।

4. जिस कमरे में रोगी को रखा जाए उस कमरे में प्रकाश और शुद्ध हवा प्रचुर मात्रा में आनी चाहिए और साथ ही साथ मच्छर मक्खियां आदि कीड़े मकोड़े उस कमरे में न आ सके इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

5. रोगी के कपड़ो और बर्तनों को उपयोग के पश्चात फौरन ही किसी निसंक्रायक पदार्थ से धो डालना चाहिए। रोगी के कमरे में जो व्यक्ति आते जाते हैं उन्हे एक चोगा पहन कर रोगी के कमरे में जाना चाहिए, जैसे ही कमरे से बाहर निकले फौरन ही चोगे को उतार कर किसी निःसंक्रामक वस्तु से भली भांति धो देना चाहिए और जो अंग खुले हों उन्हें भली भांति साबुन आदि से धो डालना चाहिए।

6. रोगी के मलमूत्र में कोई कीटाणु नाशक घोल डालकर दो तीन घन्टे रखना चाहिए फिर उसे किसी गड्ढे में डलवा देना चाहिए इसी प्रकार रोगी के नाक, कान, मुंह, आंख आदि से निकलने वाली गन्दगी को किसी पुराने कपड़े अथवा कागज में एकत्रित कर जलवा देना चाहिए।

7. कार्बोलिक अम्ल फारमेलडी-हाईड-क्लोरीन चूना, लाल दवा (पोटेशियम परमेंगनेट) आदि कुछ ऐसे ही निः सक्रामक पदार्थ हैं जिनका उपयोग हम रोगी के कपड़ो, बर्तनों और कमरे को निःसंक्रामक करने के लिए करते हैं।

अब हम आपको कुछ मुख्य छूत की बीमारियो के बारे में बतलायेंगे, छूत की बीमारियो को उनके फैलने की क्रिया के अनुसार चार भागो में विभक्त कर रखा है।

(i) सीधे सम्पर्क से होने वाले रोग
(ii) हवा से फैलने वाले रोग
(iii) भोजन और जल से होने वाले रोग
(iv) जानवरों द्वारा फैलने वाले रोग

(i) सीधे सम्पर्क से होने वाले रोगों में नेत्रों की पलकों में रोहेंहाना (टेकोमा) तथा दाद, खुजली आदि मुख्य हैं नेत्रों के रोहें का रोग बालकों में अधिक पाया जाता है। इस रोग में आंखें लाल हो जाती हैं और पलको के नीचे खूब जलन रहती है। यह रोग अंगुलियां, पेन्सिल, रुमाल, तौलिये आदि के सीधे सम्पर्क से फैलता

है इस रोग का इलाज फौरन करवा लेना चाहिए। और उसके हाथों के नाखूनो आदि को पूर्णरूप से साफ रखना चाहिए। दाद भी इसी प्रकार का रोग है, जो कि एक फफूंदी से होती है। और त्वचा के उस भाग में जहा इसका आक्रमण होता है गोल गोल चक्ते बना देता है। यह केन्द्र से बाहर की तरफ फैलता है। इसका इलाज भी शीघ्र ही करा लेना चाहिए और रोगी के कन्घे, टोपी, तौलिआ और ब्रुश को भली भाति निःसक्रामक कर देना चाहिए।

हवा से फैलने वाले रोगो में चेचक, खसरा, कुकुर खांसी, जुकाम, इन्फ्लुएंजा राजयक्ष्मा आदि रोग मुख्य हैं। चेचक रोग बहुत ही खतरनाक होता है। इससे अनेक व्यक्ति मर जाते हैं। कुछ मनुष्यो की आकृति बिगड़ जाती है। और कुछ लोग अन्धे तक हो जाते हैं। वैसे तो बच्चे इस रोग की पकड़ में शीघ्र ही जाते हैं। लेकिन यह रोग हर आयु के मनुष्यों को हो सकता है। इस रोग के ज्वर सर दर्द और कमर में दर्द मुख्य लक्षण है। पहले सिर के पीछे दाने निकलते हैं फिर सारे शरीर में फैल जाते है। बादमे दाने फूल जाते हैं और पीप से भर जाते है। इससे आंखे बन्द हो सकती हैं। ये दाने ग्यारहवे दिन फूटने हैं। और पीप व खुरंट सूख कर गिर जाते हैं। और त्वचा पर दाग रह जाते है, यदि दाना आख पर निकल आवे तो आंख फूट जाती है। और रोगी अन्धा हो जाता है। इसका सबसे अच्छा उपाय टीका लगवाना है।

खसरा भी एक इसी प्रकार का रोग है, लेकिन यह कुछ कम खतरनाक है। इसमें पहले छींक, खासी, ज्वर आता है· और इसमें पहले चेहरे पर फिर सारे शरीर पर लाल दाने या चकते पड़ जाते हैं। यह रोग शीघ्र हो ठीक भी हो जाता है, लेकिन रोगी को खूब हवादार कमरे में ठण्ड से बचाने के लिए कम्बल ओढ़ा कर रखना चाहिए और दूसरो के सम्पर्क से बचाये रखना चाहिए। हवा से फैलने वाले रोगो में राजयक्ष्मा भी एक भयंकर रोग है, जिससे संसार में अनेक मौतें हर साल इस रोग के कारण होती हैं।

भोजन तथा जल से होने वाले रोगों में हैजा, मोतीझरा, पेचिश अतिसार आदि रोग मुख्य हैं। हैजा एक भयंकर छूत का रोग है जो एक प्रकार के कीटाणुओ के कारण होता है जिन्हें कोलरा वाइब्रियो कहते हैं। इसके कीटाणु रोगी के वमन और दस्त में पाये जाते हैं। लोग दस्त और वमन आदि को जलाशय के पास धोते हैं तो पानी खराब हो जाता है। मक्खियां इन रोगों के कीटाणुओं को वमन और पखाने से भोज्य पदार्थों तक ले जाती हैं। इस रोग के मुख्य लक्षण ये हैं—

बहुत जोर की कय और पानी जैसे पतले दस्त, मूत्र का रुकना, टाग की मांस

पेशियों में ऐंठन और बहुत जोर की प्यास। इस रोग से बचने के लिए टीका अवश्य लगवाना चाहिए जिसका असर करीब ६ महीने तक रहता है। मेले आदि में जहां यह रोग अधिक फैलता है वहां कच्चे फल सब्जी आदि नहीं खानी चाहिए। पानी को भली भांति उबाल कर पीना चाहिए।

जन्तुओं द्वारा फैलने वाले रोगों में मलेरिया प्लेग आदि मुख्य हैं। मलेरिया एक प्रकार के कीटाणुओ जिन्हें प्लासमोडियम कहते हैं के द्वारा होता है। यह रोग ऐनोफ्लीज जाति की मादा मच्छर द्वारा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक पहुँचाया जाता है। जब यह मादा मच्छर द्वारा एक रोगी मनुष्य को काटती है तो रुधिर चूस लेती है। रुधिर के साथ ही साथ मलेरिया के कीटाणु भी मादा के पेट में चले जाते हैं। अब जब यह मादा मच्छर दूसरे स्वास्थ्य मनुष्य को काटती है तो रुधिर चूसने के साथ ही साथ वहा पर थूक भी देती है और इस थूक के साथ मलेरिया के कीटाणु स्वस्थ्य मनुष्य के शरीर में पहुंचा देती हैं। इस रोग में पहले ठण्ड लगती है फिर कंपकपी आती है और सर में दर्द होता है फिर जाड़ा देकर तेज बुखार चढ़ जाता है। फिर पसीना निकलने लग जाता है और तापक्रम गिरने लगता है। इसका उपाय कुनेन कैमाक्वीन रिशोचिन आदि कुनेन औषधियां है जो इन कीटाणुओ को नष्ट करने की बहुत अधिक क्षमता रखती हैं। प्लेग भी इसी प्रकार का रोग है जो कि एक विशेष कीटाणु जिसे पिस्सू कहते हैं, के काटने से फैलता है। यह रोग चूहों द्वारा मनुष्यो को पहुंचा दिया जाता है। यह अत्यन्त भयंकर रोग होता है और इससे गांव के गांव बर्बाद हो जाते हैं। इसका लक्षण है जोर से बुखार आना और गर्दन आंख या जांघ के पास गिल्टी का निकलना इससे बचने के लिए हमें प्लेग के टीके लगवा लेने चाहिए और रोगी को अलग कमरे में रखना चाहिए और घरों से चूहो को फौरन भगा देना चाहिए या मार देना चाहिए।

कुछ रोगों में जो कि आजकल सामान्य रूप से मनुष्यों में पाए जाते हैं निम्नलिखित हैं—

चेचक—यह रोग बहुत खतरनाक और संक्रामक है। इस रोग से लोगो की आकृति बिगड़ जाती है। कई लोग अन्धे हो जाते हैं और इस रोग से मर तक जाते हैं। बच्चों पर इस रोग का प्रभाव शीघ्र ही सरलता से पड़ जाता है। यदपि यह रोग प्रत्येक अवस्था के व्यक्तियों को हो सकता है। एक बार यदि यह रोग किसी व्यक्ति को हो जाता है तो साधारणतया फिर यह रोग दोबारा आक्रमण नहीं करता है। टीका लगवाने से भी इस रोग से बचाव हो जाता है। इस रोग में ज्वर सर दर्द

और कमर में दर्द विशिष्ट लक्षण हैं। पहले चेहरे और बाद में कमर के पीछे और अन्त में सारे शरीर में दाने निकल आते हैं। यह रोग करीब १० से १४ साल तक रहता है। जब यह दाने फूल जाते हैं तो इनमें मवाद भर जाता है। ११ दिन पश्चात दाने फूट जाते हैं और खुरंड गिरने के पश्चात त्वचा पर दाने रह जाते हैं। यदि आंख में दाना निकल आए तो आख अन्धी हो जाती है। इस रोग का कारण रोगी के सम्पर्क अथवा मक्खियों आदि ऐसे कीटाणुओं के सम्पर्क में आना है जो कि रोगी के सम्पर्क में आता है। इससे बचने के लिए सबसे उत्तम उपाय उससे बचने के लिए टीका लगवाना है।

जुकाम—यह रोग आजकल बहुत सामान्य हो गया है। जिन लोगों का स्वास्थ्य खराब रहता है और जिनमें टौनसिल्स पड़े रहते हैं, उन्हें यह रोग बहुत जल्दी हो जाता है। यह गले और नाक में पाए जाने वाली झिल्ली में सूजन आ जाने से हो जाता है। वातावरण के तापक्रम में अचानक परिवर्तन आने से अथवा ठंडी हवा अथवा खेल के बाद हवा लगने से यह रोग हो जाता है।

बचाव—जुकाम से बचने के लिए अपने आपको तापक्रम के अचानक परिवर्तन से बचाना चाहिए और ऐसे स्थानों में नही जाना चाहिए जहा अधिक व्यक्तियों की भीड़ हो ताकि दूसरे लोगों को यह रोग नही लग सके। यदि एक बार जुकाम हो जाये तो उसे ठीक करने के लिए हर प्रकार से कोशिश करनी चाहिए। खुली हवा में हल्का व्यायाम, करनी चाहिये, हल्का खाना खाना चाहिये और पानी अधिक मात्रा में पीना चाहिये। आतों की सफाई में विशेष ध्यान रखना चहिये।

फ्लू (इन्फ्लुएंजा)—यह रोग महामारी के रूप में फैलता है और इससे अनेक मनुष्य मरते हैं। इस रोग के कीटाणु नाक द्वारा शरीर में प्रवेश करते है जो कि हवा द्वारा फैलते हैं। इसके लक्षण ज्वर, सर में दर्द, कमर में दर्द और कंपकपी का होना है। यदि यह रोग फैंफड़ो में फैल जाता है तो निमोनिया हो जाता है। इस का समय लगभग तीन दिन होता है, लेकिन इसका प्रभाव १५-२० दिन तक बना रहता है। इससे बचने के लिए महामारी के काल में शरीर को तेज ठंड से अवश्य बचाना चाहिये नियमित रूप से मुंह धोना चाहिये और पोटेशियम परमेगनेट के पानी से बराबर कुल्ले करने चाहिए और भीड़ से बचना चाहिये। स्वच्छ हवादार कमरों में सोना चाहिये और धूल भरे वायुमन्डल से बचना चाहिये।

क्षय (टी० बी०)—यह रोग एक प्रकार के कीटाणु से होता है जिसे क्षय रोगाणु कहते हैं। इसकी तीव्रता क्षय रोग के कीटाणुओं पर निर्भर करती है। इसमें

ज्वर, वजन में कमी, स्थान विशेष जिस पर आक्रमण होता है, का नाश हो जाता है। क्षय रोग का आक्रमण शरीर के किसी भाग पर भी हो सकता है। सबसे अधिक पाया जाने वाला क्षय फेंफड़ो का होता है, जिसे तपेदिक कहते हैं। इसके अतिरिक्त हड्डियों तथा सन्धियों, मस्तिष्क, अन्तःमार्ग और नाक में भी टी० बी० हो जाती है। रोग हवा या भोजन से फैलता है तथा रोगी की सांस व थूक और दूसरे बाहर निकलने वाले द्रवों में इस रोग के कीटाणु रहते हैं। इस रोग के कीटाणु हर स्थान पर कुछ न कुछ अंश में स्थित होते हैं और कमजोर मनुष्यो पर आक्रमण कर देते हैं। इस रोग में तेज सांस का लेना, खांसी, ज्वर, और अधिक पसीना आना शुरु हो जाता है। रोग को मिटाने के लिए खूब ताजी हवा, प्रकाश, पुष्टिकारक भोजन, सीधा धूप का सेवन और शान्त स्वास्थ्यकर जीवन बिताना चाहिए। रोगी से अधिक सम्पर्क में नहीं आना चाहिए और इस रोग के रोगियों को भी अपने शरीर से बाहर निकलने वाले द्रव्यो एवं सांस आदि को इस तरह से रखना चाहिये कि दूसरे मनुष्य उसके सम्पर्क में न आ सके।

हैजा—यह महामारी के रूप में फैलता है और अधिकतर भारतवर्ष में इससे असंख्य मनुष्य मरते हैं। यह महामारी भीड़ के स्थानो में शीघ्र फैल जाती है। यह रोग एक प्रकार के कीटाणुओ द्वारा उत्पन्न होता है जिन्हें कोलेरा वाईब्रियो कहते है। यह रोगी के दस्त एवं कय में होते है और मक्खियो तथा तालाब व कुएं आदि के पानी द्वारा दूसरे मनुष्यो तक पहुंच जाते है। इस रोग के लक्षण निम्नलिखित हैं—बहुत पतले पानी जैसे दस्त, बड़े जोर की कय, मूत्र का रुकना, बहुत तीव्र प्यास और मांस पेशियो में ऐठन। यह एक से पांच दिन तक रहता है। इसके लिए प्रारम्भिक अवस्था में इस रोग से बचने के लिए टीके लगवाना सबसे उचित है और दूसरे संक्रामक रोगो की तरह इसमें भी खाने-पीने की चीजों को उबालकर प्रयोग में लाना चाहिए। रोगी के कपड़ों एवं दूसरों के सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं से बचना चाहिये।

मोतीझरा—यह ऐसा ज्वर है जिसका समय लगभग तीन सप्ताह का होता है। इसमें सिर में दर्द रहता है, कब्ज की शिकायत रहती है और रक्त बह जाता है। मल-मूत्र, थूक और बलगम में इस रोग के कीटाणु रहते हैं। यह धूल, रोग पानी या दूध से लगता है। इस रोग से बचने के लिए मोतीझरे का टीका लगवाना चाहिए और स्वच्छ पानी और दूध का प्रयोग करना चाहिये।

मलेरिया—यह रोग भारतवर्ष में बहुत ही सामान्य है। इस रोग मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वह कमजोर हो जाता है और एक बार यदि मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है तो इससे रोग आसानी से मनुष्य पर आक्रमण कर बैठते हैं।

इसके मुख्य लक्षण ठन्ड लगकर कपकपी देकर तेज बुखार चढ़ना है। इससे सिर में दर्द रहता है। तेज बुखार के बाद पसीना आता है और शरीर का तापक्रम का कम हो जाता है। मलेरिया कई प्रकार का होता है, कुछ २४ घन्टे, कुछ ४८ एवं कुछ ७२ घन्टे तक अपना असर रखता है। कुछ में एकान्तर दिवस अथवा २ दिन पश्चात बुखार चढ़ता है। इसमें पीड़ा बढ़ जाती है कमजोरी आ जाती है और सारा शरीर दर्द करने लगता है। यह रोग एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं द्वारा होता है जिसे प्लासमोडियम कहते हैं। ये कीटाणु मादा एनोफ्लीज मच्छर द्वारा मनुष्य को पहुंचाये जाते हैं जो मनुष्य में पहुंचने के पश्चात उसके लाल रक्त कण पर आक्रमण करते है और लाल रक्त कण के भीतर घुस कर वहा पर वृद्धि करते हैं, जब तक कि वह लाल रक्त कण उनकी अधिक सख्या के कारण फट नहीं जाते हैं, फिर ये लाल रक्त कण फटते हैं तो मलेरिया के कीटाणु एवं मैलिनिन नामक पदार्थ रक्त प्रवाह में पहुंच जाता है और ज्वर चढ जाता है। इस रोग से बचने के लिए मनुष्य को मच्छरों से अपना बचाव करना चाहिए तथा मच्छरों और उनके अन्डो को नष्ट करने के लिए अनेक उपाय काम में लाने चाहिए। क्योंकि यह रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में मच्छरो के काटने, चूसने और थूकने के कारण होता है।

प्लेग—प्लेग एक प्रकार के जन्तु जिसे पिस्सू कहते हैं, के द्वारा होता है। ये पिस्सू चूहे के शरीर पर रहता है और चूहे के शरीर से रक्त पान करता है। प्लेग अनेक प्रकार का होता है। इसमें जोर से ज्वर आता है और गर्दन, काख या जांघ के पास गिल्टियां निकल आती हैं। यह रोग २ से ८ दिन तक रहता है। इस रोग से बचने के लिए सबसे उचित उपाय चूहों को नष्ट कर देना है। चूहों से बचने के लिए हमें चूहों को किसी न किसी रूप से नष्ट कर देना है जिससे वे अपने शरीर पर पिस्सुओं को न पाल सकें। प्लेग से बचने के लिए टीका भी लगवा देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मक्खियां हमारे लिए क्यों घातक हैं, सविस्तार समझावे।

2. छूत से फैलने वाली शेष कौनसी बिमारियां हैं, उनसे बचने के लिए क्या करना चाहिए?

3. मलेरिया कैसे फैलता है? इससे बचने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

4. निम्न रोगों के कारण व उनके प्रचार लिखें :—
(i) प्लेग (ii) हैजा (iii) तपेदिक।

अट्ठाइसवाँ अध्याय

जीवन तत्व एवं एन्टीबायोटिक्स

1. भोजन की आवश्यकता:—उत्तम स्वास्थ्य के लिए उत्तम भोजन बहुत ही आवश्यक है। अगर भोजन विशेष तत्वों युक्त न होगा तो हमारा शारीरिक गठन बहुत ही कमजोर होगा इसलिए भोजन शारीरिक गठन के लिए परम आवश्यक है। जिस प्रकार एक इंजिन को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार जीवधारियों में भी अपनी जीवन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए शक्ति तथा ताप की आवश्यकता पड़ती है। इंजिन में यह शक्ति तथा ताप कोयले आदि पानी से उत्पन्न की जाती है अर्थात् इस शक्ति को उत्पन्न करने के लिए इंजिन में यह ही अवयव उसके भोज्य पदार्थ हैं। कोयले के जलने से पानी भाप के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसके अलावा हम दिन-प्रति दिन जो भी कार्य करते हैं, उसमें लगातार हमारी शक्ति क्षीण होती रहती है। यह शक्ति कहा से आती है ? सिर्फ भोजन के लेने से हमें यह क्षीण शक्ति फिर से उसके जलने से प्राप्त होती है। इतना ही नहीं बल्कि भोजन हमारे अंगों को वृद्धि करने में भी पूर्ण सहयोग देता है। इन सब की पूर्ति भोजन के द्वारा तथा उसमें उपस्थित भिन्न भिन्न तत्वों के द्वारा होती है।

भोजन शारीरिक तन्तुओं की टूट-फूट को ठीक करता रहता है। संक्षेप में भोजन के मुख्य मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं.—

(1) यह शरीर को शक्ति एवं उष्मा प्रदान करता है। यह उष्मा शरीर की गर्मी को एकसा बनाये रखती है तथा शरीर में अन्य कार्य के लिए शक्ति आती है। (2) यह नये नये तन्तु या कोषाओं का निर्माण करते हैं, जिससे शारीरिक वृद्धि होती है। (3) यह शरीर के हर टूट-फूट की मरम्मत करता है। (4) शरीर में उपस्थित कुछ विशेष तत्व—विटामिन्स तथा लवण से शरीर की रक्षा अन्य किटाणुओं के आक्रमण से होती है तथा शरीर स्वस्थ रहता है। (5) भोजन में भिन्न भिन्न तत्वों का समावेश होने से शारीरिक गठन में समान वृद्धि होती है।

2. भोजन के तत्व:—हमारे शरीर का निर्माण विभिन्न तत्वों के समावेश से हुआ है। इन तत्वों में मुख्य कार्बन, आक्सीजन, नाईट्रोजन, हाईड्रोजन; लोहा कैलशियम, फॉसफोरस, गंधक, क्लोरीन एव आयोडीन आदि हैं। इनका हमारे भोजन में होना अनिवार्य है। इसलिए हमारा भोजन ऐसा होना चाहिये जिससे ये सब मौजूद रहे।

ये सभी पदार्थ जो जीवों के शारीरिक निर्माण में भाग लेते हैं, भोजन के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। अपनी रासायनिक क्रियाओं एवं गुणों के द्वारा भोजन निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है :-

(1) प्रोटीन (2) कार्बोहाइड्रेट्स (3) वसा (4) खनिज लवण (5) विटामिन्स और (6) जल ।

प्रत्येक भोजन में यह सब तत्व कुछ न कुछ अंश में मौजूद रहते हैं। किसी किसी भोजन में इनकी मात्रा किसी पदार्थ की अपेक्षा अधिक या कम भी रहती है। परन्तु इन सब तत्वों में पानी बहुत ही आवश्यक है। इस प्रकार भोजन का उपयोग भिन्न भिन्न है। इसलिए इनकी अलग अलग रासायनिक रचना को समझना आवश्यक है।

(1) प्रोटीन.—इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के अलावा कुछ गन्धक तथा फास्फोरस के तत्व भी सम्मिलित हैं। प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा हमें चना, मटर, सेम व अरहर और अन्य दालों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। दूध तथा बादाम आदि में भी यह खूब होती हैं। जहां तक इसका शारीरिक निर्माण में उपयोग है, यह शरीर की उचित वृद्धि तथा टूटे हुये अंगो की मरम्मत में सबसे अधिक सहायता देती है।

(2) कार्बोहाइड्रेट्स:—यह कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजन के तत्व हैं। ये कई रूप में मिलता है। स्टार्च तथा शक्कर जैसे यह हमारे सभी भोजन के कुछ न कुछ अंश में मिलते हैं। इनको मुख्यतया वनस्पतियों में प्राप्त किया जा सकता है। शक्कर, खजूर तथा सभी फलों में यह अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। यह स्टार्च, गेहूँ, चावल, बाजरा जौ, मकई, केला आदि में मिलती है। यह शक्कर तथा माड़ी साधारणत: पचने के बाद ग्लूकोज नामक शक्कर में बदल जाता है तथा यह ग्लूकोज आक्सीजन की उपस्थिति में जलकर उष्मा उत्पन्न करता है, जिससे काम करने के लिये शक्ति प्रकट होती है। तथा ताप भी एकसा रहता है। इसलिए इनका मुख्य कार्य शरीर की ताप एवं शक्ति प्रदान करना है।

(3) वसा या चर्बी:—यह भी आक्सीजन, कार्बन तथा हाइड्रोजन युक्त होती है। यह भी शरीर को शक्ति एवं गर्मी प्रदान करते हैं। इनसे शक्ति बहुत ही अधिक मात्रा में मिलती है। वनस्पति वर्ग में अधिकतर फलों में, जैसे बादाम, काजू मूंगफली, नारियल सरसो अलसी आदि में यह बहुत ही प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। जन्तु वर्ग में यह मक्खन, घी, मछली का तेल एवं पशुओं का मास आदि से भी बहुत मिलती है।

(4) खनिज लवण:—शरीर में कुछ शक्तियों का निर्माण करने के लिये तथा स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए इनका होना बहुत ही आवश्यक है। इनमें मिलने वाले कैलशियम, फासफोरस तथा लोहा तीनो बहुत ही मुख्य हैं। यह हड्डी तथा दांतों को बनाने में काम आती हैं। दांतों का कड़ापन एवं उसकी मजबूती इसी पर निर्भर है। लोहा रुधिर के रक्त कोषाओं में हीमोग्लोबिन नामक रंग के बनाने में मदद करता है। इसकी कमी होने पर शरीर में रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तथा एक विशेष रोग जिसे एनीमिया कहते हैं, हो जाता है। इस रोग में खून आदि नहीं बनता है। दूध, अंडा, दाल, मांस, मछली, पनीर, फल एवं तरकारियों में इनकी मात्रा कुछ अधिक होती है।

(5) जल:—यह भोजन का आवश्यक अंश है। तथा प्रत्येक जीवधारी में इसकी मात्रा करीब 70 प्रतिशत है। पाचन क्रिया तथा अन्य शारीरिक निर्माण क्रियाएं तरल माध्यम में होती हैं। अत. पानी इन क्रियाओं के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह प्रत्येक वस्तु को घुलित अवस्था में लाकर उचित क्रिया कराने में सहायक है। शरीर में कोमलता व लचक भी इसी के द्वारा होती है। शरीर की रासायनिक क्रियाएं उसकी सफाई तथा अन्य भोजन के बटवारे आदि में इसी की जरूरत होती है।

(6) विटामिन:—भोजन में जीवन तत्वो का होना परम आवश्यक है। इनकी न्यूनता से शरीर में अनेकों बीमारिया हो जाती है, जिससे शरीर में वृद्धि नही होती है। इन जीवन तत्वों की खोज सर्व प्रथम सन् 1953 में एक अंग्रेज नाविक सर रिचार्ड हॉकिन्स ने की थी, उसने देखा कि नाविको में स्कर्वी रोग बहुत अधिक फैलता है और वे सदैव इससे पीड़ित रहते हैं। उसने इस रोग के लिए दवा खोज निकाली, वह था संतरे का रस। उसने बताया कि इसका उपयोग करने से यह बीमारी दूर हो जाती है। इस रस में कुछ ऐसा पदार्थ है जो इस बीमारी को खत्म करने की ताकत रखता है। इसी कारण इस पदार्थ का नाम विटामिन पड़ा। उस काल में इसके लिए अधिक खोज नहीं की गई तथा यह बहुत ही कम मात्रा में मिलता था, लेकिन वर्तमान समय में इसके विषय में बहुत ही खोज की गई तथा इस विटामिन के विषय में कितने प्रकार के विटामिन्स ज्ञात किए गये हैं। इनकी रासायनिक क्रिया का भी पता लग चुका है। ये जीवन तत्व शारीरिक वृद्धि एवं साधारण स्वस्थ्य के लिए परम आवश्यक है। इनका भोजन में होना बहुत आवश्यक है। यह शरीर को रोगों से रक्षा कर स्वस्थ्य रखते है। यह विटामिन्स मुख्य रूप से फलो, हरी सब्जी, दूध तथा अन्य भोज्य पदार्थों में मिलते हैं। इनकी थोड़ी सी मात्रा शारीरिक वृद्धि के लिए बहुत है। भोजन को ऊंचे तापक्रम पर या उसे खूब साफ करने या छीलने पर यह विटामिन्स नष्ट हो जाते हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार के विटामिनः-

(1) विटामिन A—यह विटामिन जानवरो की चर्बी, मक्खन दूध अडा टमाटर आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। वनस्पति में यह गाजर, गोभी, पालक आदि में पाया जाता है। यह अधिक पकाने से नष्ट हो जाता है। इस विटामन का मुख्य कार्य शारीरिक वृद्धि एव कुछ विशेष रोगो से रक्षा करना है। यह शरीर को पुष्ट, हड्डियो को मजबूत तथा शक्तिशाली बनाता है। इनकी कमी से आँखो की ज्योति कमजोर हो जाती है और रतोधो का रोग हो जाता है।

(2) विटामन B_1—यह चावल के छिलको, गेहूं के अंकुर, तथा ईस्ट आदि में अधिक होता है। यह मास, अण्डो, एवं रोटी में पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होता है। इसकी कमी से वेरी वेरी नामक रोग हो जाता है, जिससे हाथ पैरों में सूजन आ जाती है और हृदय बहुत कमजोर हो जाती है।

(3) विटामिन B_2—यह ईस्ट आदि में बहुत मात्रा में मिलता है। इसकी कुछ मात्रा अण्डे, एवं मांस आदि में मिलती है। यह शरीर के तन्तुओं को पूर्ण रूप से विकसित होने का मौका देता है, इसकी कमी से त्वचा में अनेक बिमारिया हो जाती हैं।

(4) विटामिन C—इसकी कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है। इसमें मसूड़े सूज जाते हैं, और उनसे खून निकलने लगता है। दातो की जड़ें हिल जाती हैं, और कमजोरी आ जाती है। यह रक्त की नलियो को साफ करके इनको सुव्यवस्थित रखता है। यह संतरा, नीबू, फूल गोभी, पालक, अंगूर, टमाटर आदि में मिलता है। उबालने या ज्यादा पकाने पर यह नष्ट हो जाते है।

(5) विटामिन D—यो भोज्य पदार्थों में मिलता है। लेकिन प्रचुर मात्रा इसकी मक्खन, दूध और अण्डों में मिलती है। सूर्य की रोशनी में इसका निर्माण होता है, और सूर्य के प्रकाश से शरीर में इसका निर्माण होता है। प्रातः की धूप में बैठना उपयोगी है। यह हड्डियो और दात आदि को मजबूत बनाती है। इसकी कमी से हड्डियो का बढ़ना रुक जाता है तथा सूखीया रोग की बिमारी हो जाती है।

(6) विटामिन E—करीब करीब यह सभी पदार्थों में पाया जाता है। लेकिन हरी सब्जी में अधिक मिलता है। यह अक्सर अनाजों, मास, अण्डो में भी पाया जाता है। यह उत्पादन के लिए अधिक उपयोगी है। इसलिये विटामिन्स या जीवन तत्व हमारे लिये बहुत उपयोगी है। हमें इन्हे पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिये एक सन्तुलित भोजन लेना चाहिये, जिससे हमारे शरीर का गठन होकर हम पूर्णतः स्वस्थ्य रह सकें।

ANTIBIOTICS

1. एन्टीबायोटिक्स—यह पदार्थ जीवित जीवाणु से प्राप्त करने के लिये उपयोग मे लाऐ जाते है। यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए है। यह विशेष प्रकार के उन जीवाणुओं को जो हमारे लिये घातक सिद्ध हुये है, के मारने में मदद करते हैं। दवाईयों के रूप मे हमारे शरीर मे प्रविष्ट किए जाते है, जो रोगी मानव में उपस्थित जीवाणु को मारते है तथा उनकी वृद्धि आदि को रोक कर उनको नष्ट करने मे सहायक होते है।

1. पेनीसिलीनः—यह कोई विषैला पदार्थ नही परन्तु फिर भी किटाणुओ को नष्ट करने की इसमे ताकत होती है, जिससे रोग नही फैलने पाता है यह एक विशेष प्रकार की फफूदी पेनीसिलियम से तैयार की जाती है। इसे फफूंदी के पीले रंग के विशेष क्षारे के साथ तैयार करते है। यह निमोनिया, सिफलिस तथा अन्य चर्म रोगों के काम मे आती है। इसका प्रभाव बहुत ही शीघ्र होता है तथा रोगी को जल्दी आराम मिलता है।

2. स्ट्रोप्टो माईसिनः—यह भी स्ट्रोप्टो माईसीन नामक फफूंदी से तैयार की जाती है। यह नाड़ी सस्थान, आदि अन्य रोगो के काम में लाई जाती है, जिससे बिमारियों में जल्द ही आराम मिलता है।

3. क्लोरोमाईसिटिनः—यह भी ऊपर लिखी फफूंदी से तैयार की जाती है और केप्स्यूल अथवा गोलियो के रूप मे बाजार में मिलती है। निकाला तथा मोती भरा आदि रोगों में यह औषधि बहुत ही जल्दी फायदा पहुचा देती है। इसके अतिरिक्त औरोमाईसीन का भी निमोनिया मे औषधि के रूप मे फायदा पहुंचाती है।

—: अभ्यासार्थ प्रश्न :—

1. भोजन मे किन किन पदार्थो का होना आवश्यक है सविस्तार वर्णन करे।
2. जीवन तत्व से आप क्या समझते है, उनका वर्णन करे।
3. एन्टीबायोटीक्स क्या है,कुछ एन्टीबायोटिक्स के लाभ लिखे।

उनतीसवां अध्याय

हमारा भोजन

हमारा भोजन उत्पत्ति के विचार से दो भागो मे बाँटा जा सकता है-एक जो पशुओ से प्राप्त होता है जैसे मास, दूध; दूसरा वनस्पति जन्य ।

पशु प्राप्त भोजन मे निम्नलिखित पदार्थ मुख्य है:—

(१) दूध व दूध के बने हुए पदार्थ, (२) अण्डे, (३) गोश्त, मछली, केकडा इत्यादि ।

दूध —यह एक आदर्श भोजन-पदार्थ माना जाता है । यह पूर्ण भोजन भी कहलाता है क्योकि सन्तुलित भोजन के सभी मुख्य-मुख्य तत्व इसमे ठीक ठीक मात्रा मे पाये जाते है । इसका भारत मे तो और भी महत्व है, क्योकि यहाँ बहुत से वनस्पतिजन्य भोजन मे पशु प्राप्त भोजन के प्रोटीन्स का यही एक मात्र साधन रह जाता है । यह ६ से ९ वर्ष तक के बच्चो का भी एक महत्वपूर्ण भोजन पदार्थ है । इसके बाद भी यह किशोरो, वयस्को, वृद्धो व रुग्णो के भोजन का मुख्य पूरक पदार्थ है ।

गाय के दूध का मिश्रण इस प्रकार होता है:—

पानी ८७ ३%, प्रोटीन ३ ५%, वसा ३ ७%

कार्बो-हाइड्रेट्स ४·८%, खनिज लवण ०·६%

एक औस गाय का दूध सामान्यत १८–२० कैलोरी गर्मी पैदा कर सकता है । दूध की प्रोटीन उत्तम श्रेणी की होती है और आमाशय मे आसानी से पच जाती है । यह कैलशियम के साथ मिलकर दूध मे घुली रहती है । वसा भी दूध मे अच्छी तरह घुली होती है । इसमे विटामीन-ए पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है । लैक्टोस (दुग्धशर्करा) जो दूध की शक्कर होती है, वह भी आसानी से घुल-मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त दूध मे कैलशियम व फास्फोरस भी इस अनुपात मे होते है । जिससे कि यह अच्छी प्रकार घुल मिलकर एकत्रित हो जाते है । किन्तु इसमे लोहाश की कमी एक याद रखने की बात है । विटामिन तो करीब करीब सभी ही पाये जाते है पर इनमे मुख्य है,जिनकी ठीक ठीक मात्रा होती है । विटामिन-ए व बी-काम्प्लेक्स विटामीन सी की मात्रा दूध मे अलग-अलग होती है । इसकी मात्रा गायो के चारे पर निर्भर रहती

है। फिर अपने यहा दूध के उबालने की प्रथा से जो कुछ थोड़ा बहुत विटामिन-सी होता है, वह भी नष्ट हो जाता है। विटामीन-डी दूध मे बहुत कम होता है। केवल दूध ही पीने वाले बच्चो को या तो धूप का सेवन करवाना चाहिए या कॉड-मछली के तेल की 15-20 बूंद देनी चाहिए।

माँ का दूध गाय के दूध से कुछ भिन्न होता है। यह जल्दी पचने वाला होता है। उसमे प्रोटीन की मात्रा 2·7% अर्थात् गाय के दूध से कम, किन्तु दुग्ध-शर्करा अधिक यानि 67% होती है। इसकी प्रोटीन भी गाय के दूध की अपेक्षा जल्दी पचने वाली होती है। मा के दूध मे कुछ ऐसे पदार्थ होते है जो शरीर को बीमारी के विरुद्ध ताकतवर बनाते है।

दूध के गुण:—मिलावट को बन्द करने व उसके पोषक पदार्थों को ठीक रखने के लिये दूध के गुणो के बारे मे वैज्ञानिक रूप से नियम बना दिए गए है। भोजन में मिलावट की रोकथाम के लिये बने हुए ऐक्ट के अनुसार गाय के दूध में 3·5% से कम वसा नही होगी; वसा के अलावा ठोस (Solids) तत्व 8 5% से कम नही होगे।

दूध में मिलावट की जांच करने का एक सीधा व घरेलू साधन है, उसका घनत्व ताप लेना। इसके लिये एक यत्र काम मे लिया जाता है जिसे दूध-मापक यंत्र (लैक्टोमीटर) कहते है। गाय के दूध का आपेक्षिक घनत्व 13·2 से 12.6 तक होता है, यदि इसमे की वसा निकाल ली जाती है तो यह आपेक्षिक घनत्व बढ जाता है और यदि पानी मिला दिया जाता है तो यह कम हो जाता है। दूध मे मिलावट करने वाले लोग इसीलिये दूध मे जब पानी मिलाते है तो साथ ही (Cream) मलाई भी निकाल लेते है जिससे आपेक्षिक घनत्व मे ज्यादा अन्तर नहीं पडे। इसके अतिरिक्त दूध मे उसके ठोस तत्वो को मैदा व सिघाडे का आटा इत्यादि मिलाकर उसके आपेक्षिक घनत्व को पानी मिलाने के बाद बढ़ा देते है। इसलिये दुग्ध मापक यंत्र से परीक्षा लेने के अतिरिक्त दूध मे वसा की मात्रा व वसा रहित ठोस पदार्थों का नापना आवश्यक हो जाता है।

मलाई रहित दूध:—वसा दूध मे इस प्रकार मिली रहती है कि दूध को थोडी देर रखने पर उसकी सारी वसा मलाई के रूप मे एक तह बना लेती है। चूंकि मलाई हल्की होती है इसलिये यह तह के रूप में दूध के ऊपर जमती है। जब इस मलाई को निकाल लिया जाता है तो उस दूध को मलाई रहित दूध कहते है। मलाई दूध में से मशीन द्वारा भी निकाली जा सकती है। जब वह मशीन से

निकाली जाती है तो मलाई रहित दूध मे केवल $\frac{1}{5}$% वसा रहती है, इस वसा की कमी के कारण ही यह दूध आसानी से पच जाता है।

दूध चूर्ण :—(Powdered Milk) पाश्चात्य देशो मे जहाँ दूध बहुत होता है वहा पर दूध को यत्रो की गर्मी से सुखा कर चूर्ण के रूप मे इकट्ठा कर लिया जाता है। इससे दो लाभ है। एक तो यह जल्दी खराब नही होता और दूसरे इसके अधिकाश कीटाणु नष्ट हो जाते है। इस चूर्ण को गर्म पानी मे घोल कर फिर से पीने योग्य बनाया जा सकता है।

दूध की सफाई:—यदि गाय स्वस्थ है तो उनका दूध कीटाणु रहित ही होता है, पर उसमे गन्दगी मिलने की अधिक गु जाइश रहती है। यदि गौशाला की सफाई ठीक ढग से नही हो तो दूध जानवरो के मल मूत्र, मिट्टी या अगर जानवर बीमार हो तो उसके स्तन मे गन्दगी आ सकती है। इसके अतिरिक्त यदि दूध हाथ से निकाला जाता है तो दुहने वाले के हाथो से, दूध निकालने के वर्तन से व उसको धोने के पानी से भी गदगी आ सकती है।

इस प्रकार गंदगी से दूध को बचाने के लिए नीचे लिखी बाते ध्यान मे रखनी आवश्यक है :—

1. गाय स्वस्थ होनी चाहिए। उसके स्तनो पर कोई बीमारी नही होनी चाहिए।
2. दुहने वाली जगह अलग व साफ होनी चाहिए।
3. दूध निकालने के बर्तन साफ व ढक्कनदार होने चाहिए।
4. दूध निकालने वाले को सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

दुध से फैलने वाली बीमारियां :—कुछ बीमारिया तो मवेशियो के दूध मे आ जाती है और कुछ बीमारिया दूध में उसके बर्तन, हाथ व पानी इत्यादि से लग जाती हे। कुछ जो गाय या मवेशी से लग जाती है वह है, क्षय सम्बन्धी बीमारियां। इनमे क्षय के कीटाणु दूध के साथ आतडियो मे जाकर पेट का क्षय पैदा कर देते है। कभी कभी यह ग्र थियो मे भी क्षयरोग पैदा कर देते है। फेफड़ो की टी. बी. (क्षय रोग)-इसके कारण बहुत कम होने की सम्भावना होती है। कभी कभी इससे कई बार कुछ दिनो के लिए ज्वर हो जाया करता है और यह क्रम महीनो तक चल सकता है। ऐसी बीमारियो का इलाज भी लम्बा व कष्टसाध्य होता है।

इन बीमारियो के अतिरिक्त गदे दूध के कारण मोतीझरा, गले की खराबी, डिफ्थीरिया तथा अनेक प्रकार के ज्वर पैदा हो जाते है। कभी कभी तो इससे हैजे की बीमारी भी फेल जाती है। अतः दूध को अशुद्ध व गदगी से सुरक्षित रखना चाहिए।

दूध को सुरक्षित रखने के तरीके

उबालना—यह सबसे आसान तरीका है जिसे घरों में काम मे लिया जाता है। उबालने से लगभग सब ही बीमारी फैलाने वाले कीटाणु नष्ट हो जाते है। ट्यूबरकिल बैसिली भी जो कि भारत की करीब 50% गायो के दूध मे पाये जाती है, नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त उबालने से दूध की प्रोटीन व वसा में भी कुछ परिवर्तन हो जाते है। कैसिनोजेन (Casienogen) आसानी से पचने लगती है। वसा कुछ अलग सी होकर मलाई मे आ जाती है। खनिज लवण घुल जाते है। कुछ विटामिन नष्ट हो जाते है। उनमे विटामिन 'सी' तो उबालने पर पूरा नष्ट हो जाता है। लेकिन इन सब हानिकारक परिवर्तनो के होते हुए भी उबालने से सबसे बडा लाभ यह है कि कीटाणु मर जाते है। यही जनस्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त उबाला हुआ दूध ज्यादा देर तक ठहर सकता है; फटता नही।

कृमि-नाशन :—इस तरीके से दूध को कुछ समय के लिए 145°–161° फा० तक गर्म करके उसे जल्दी ही 55° फा० पर ठण्डा कर लिया जाता है। इसमे उबालने के तरीके से कुछ अधिक लाभ है। वे निम्नलिलित है :—

(i) प्रोटीन व वसा में कोई अन्तर नही पड़ता।

(ii) स्वाद, सुगन्ध व पोषण तत्व मे कोई अंतर नही आता।

(iii) विटामिन 'सी' के अलावा और किसी विटामिन पर प्रभाव नही पड़ता।

इसके अलावा जिस प्रकार उबालने से बीमारी फैलाने वाले सब कीटाणु नष्ट हो जाते है वैसे ही यहाँ भी कीटाणु मर जाते है। कृमिनाशन (Pasteurization) के कई तरीके हैं। उनमे दो मुख्य निम्नलिखित है :—

(1) होल्डर्स विधि (Holders method)—इस तरीके मे दूध को बडी बडी टंकियो मे 145° फा० पर 30 मिनिट के लिए रखा जाता है और उसके बाद उस गर्म दूध को बिना कुछ समय नष्ट किये 55 फा० पर ठण्डा कर लिया जाता है। इन टंकियों मे से फिर दूध बोतलों में भरकर सील कर दिया जाता है।

(2) फ्लेश विधि (Flash method)—इसमे एक विशेष यंत्र काम मे लिया जाता है, वह फ्लेश अथवा डेनिश पैस्च्यूराइजेशन कहलाता है। इसमे दूध को केवल 15 सैकिंड के लिए 161° फा० तापक्रम पर रखा जाता है और फिर जल्दी से 55° फा० पर ठण्डा कर लिया जाता है और बोतलो मे भरकर भेज दिया जाता है।

इन दोनों तरीकों में जिस तापक्रम तक दूध गर्म किया जाता है और जितने समय तक गर्म किया जाता है उसमें ट्यूबरकिल वैसिली बिल्कुल नष्ट होजाते है जो अन्य रोगाणुओं (Pathogenic Organism) से कही अधिक शक्तिशाली होते है। दूध को गर्म करने के बाद 55° फा॰ पर ठण्डा इसलिए किया जाता है कि ऐसे कीटाणु जो बीमारी को नही फैला सकते पर दूध को खट्टा कर सकते हैं, अपनी सख्या न बढा सके।

सुखाना (Drying) :—इसमे दूध को गर्म बेलनो पर डाला जाता है। इनमे से पानी तो भाप बनकर उड जाता है और चूर्ण जो बेलन पर जम जाता है उसे खुरच कर इकट्ठा कर लिया जाता है। फिर छान कर डिब्बों मे बन्द कर देते हैं। यह दूध बीमारी फैलाने वाले कीटाणुओ से रहित व सुपाच्य होता है। इसमे एक मुख्य लाभ यह है कि ऐसे दूध को बाहर भेजना आसान होता है। अमेरिका से भारत को करोडो डिब्बे ऐसे ही दूध के प्रतिवर्ष आते रहते है।

दूध से ही मक्खन, घी, पनीर इत्यादि बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक प्रकार से दूध की चीजें बनाई जाती हैं।

अण्डे:—अण्डा भी बहुत ही सुरक्षित तथा उत्तम पशु प्राप्त भोजन है। इससे कोई खास बीमारी लगती नही और इसमे भोजन के लगभग सभी मुख्य तत्व (Proximate Principles) होते है। हाँ, कार्बोहाइड्रेट्स अवश्य थोडी मात्रा मे ही होते है। मुर्गी के एक अडे का वजन करीब 2 औंस होता है। लगभग 10% बाहर का कवच, 30% सफेद हिस्सा व करीब 60% पीला भाग या जर्दी। बाहर के कडे कवच मे कैलशियम तथा फासफोरस काफी मात्रा मे होते है। सफेद हिस्से मे करीब करीब सब ही एग ऐल्यूमन (Egg Abumen) व पीले हिस्से मे थोड़ी सी प्रोटीन व बारीक वसा होती है। इसमे कैलशियम, फासफोरस तथा लोहा भी प्रयाप्त मात्रा मे पाया जाता है। इसमे विटामिन' बी' मिश्रित तथा विटामिन 'डी' भी अधिक पाये जाते हैं।

अण्डों को अनेक प्रकार से खाने के काम में लाते हैं। पर इसके पहले यह परीक्षा करनी आवश्यक होती है कि कोई अण्डा अच्छा है या नही। इसका एक साधारण सा तरीका है कि अण्डे को प्रकाश की तरफ रख कर देखले। अच्छे अण्डे बीच के भाग में कुछ पार-दर्शक होते हैं। खराब अंण्डे किनारो पर पार-दर्शक होते हैं। इस तरीके को केन्डिलिंग (Candiling) कहते है। दूसरा तरीका है कि अण्डे को 10% नमक के घोल मे डालदे, अच्छे अडे पैदे मे बैठ जावेगे। खराब अण्डे ऊपर तैरते रहेंगे।

मांस (Meat)—यह प्रथम श्रेणी की प्रोटीन का सबसे उत्तम साधन है। इसमे फासफोरस, लोहा तथा पोटेशियम बहुत होता है। सीरियम इसमें कुछ कम होता है। इसमे विटामिन भी कुछ कम मात्रा मे होते है। पर यकृत तथा गुर्दे जैसे ग्रन्थियो मे विटामिन A, B_1, B_2 पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते है। गोश्त पूर्ण भोजन नही कहा सकता है, इसलिए दूध मास से कही अच्छा है, क्योंकि इसमें प्रोटीन अपेक्षाकृत अधिक किन्तु कार्बोहाईड्रेट अपेक्षाकृत कम मात्रा मे होती है। फिर यदि केवल मास दैनिक शक्ति (Calories) को पूरी करने को खाया जावे तो कम से कम प्रतिदिन ३ या ४ सेर मांस खाना पड़ेगा, जिससे आतों पर तथा यकृत पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

अच्छे गोश्त की पहिचान :—अच्छा गोश्त रंग में लाल, कड़ा तथा नम्य होता है। उसको दवाने से उसमे गड्ढा नहीं पड़ता। उसमे से कुछ मंद, मृदु गंध आती है जो अरुचिकर नही होती। बीमार या बीमारी से मरे पशुओं का गोश्त नही खाना चाहिए। इसी प्रकार विघटित गोश्त (decomposed meat) को भी खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

दूषित तथा अधपके गोश्त के खाने से क्षय (T.B.) आदि भयंकर बीमारियां हो जाती है।

मछली—मछली समुद्र तट पर रहने वाले गरीब लोगों के लिए सस्ता व बना बनाया भोजन है। यह गर्मी मे बहुत जल्द विघटित (सड़ता) हो जाती है। इसलिए यह वायु रोधक (Air tight) डिब्बों मे वन्द तथा नमक मिश्रित होकर बाहर भेजी जाती है। मछली में भोजन के मुख्य तत्व प्रोटीन व वसा है। इसमे फासफोरस भी अधिक होता है और गोश्त आसानी से पच सकता है। ताजा मछली सख्त होती है जबकि खराब मछली ढीली तथा चिपचिपी होती है। उनकी आंखे धसी हुई तथा धुन्धली होती है। गलफड़े पीले तथा गन्दे होते है। इनमें दवाने से गड्ढे पड़ जाते है। यदि यह अच्छी तरह नही पकाई जाय तो बीमारी फैला सकती है। मद्रास व दक्षिणी भारत के किनारो पर पाई जाने वाली मुख्य मुख्य मछलिया सारडिन (Sardine), पम्फ्रेट (Pomfret), सोलफिश (Solefish), शेलफिष (Shellfish) है।

बनस्पति जन्य भोजन :—यह निम्नलिखित प्रकार से विभक्त किये गये है। (i) खाद्यान। (ii) दालें। (iii) जड़े। (iv) सब्जी। (v) तिलहन। (vi) फल।

भोजन के सभी प्रमुख तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा व विटामिन तथा खनिज-लवण खाद्यान्नो मे पाये जाते है, पर कार्बोहाइड्रेट इन सब पदार्थो मे

सबसे ज्यादा पाया जाता है। यही कारण है कि यह विश्व मे सब जगह लोगों का मुख्य भोजन है। इनमें कार्बोहाइड्रेट माडी के रूप में पाया जाता है। कुल वजन का लगभग ६५–७० प्रतिशत भाग यही होता है। इसके अलावा थोडा कार्बोहाइड्रेट शर्करा के रूप मे भी होता है। प्रोटीन की मात्रा प्रत्येक अनाज में समान नही होती है, पर यह १०–१२ प्रतिशत ही होती है। वसा की मात्रा भी अलग अलग होती है। पर बाजरा तथा जई मे यह कुछ ज्यादा मात्रा मे होती है। इसके अतिरिक्त अनाजो मे कैलशियम, फासफोरस तथा लोहा भी पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है।

जहाँ तक विटामिन का सम्बन्ध है गेहूँ, बाजरा, जौ, मक्का इत्यादि अनाजो मे विटामिन 'ए' अधिक पाया जाता है। चावल मे इसकी सबसे कम मात्रा होती है। विटामिन 'बी' तथा 'बी$_2$' गेहू, चावल तथा साबुत अन्न मे काफी मात्रा मे होता है। लेकिन बारीक छने हुए आटे तथा मशीनी चावल मे इसकी मात्रा नही के बराबर हो जाती है। विटामिन 'सी' तो अँकूर (उगते हुए अनाज) मे ही पाया जाता है। 'डी' अनाजो मे बिल्कुल नही पाया जाता। विटामिन 'इ' गेहू, चावल, मक्का मे पर्याप्त मात्रा मे होता है।

इस तरह खाद्यान्न यद्यपि सर्वत्र ही मुख्य भोजन है, पर इनकी ऊपर लिखित कुछ कमियो के कारण इन्हे खाने के अन्य पदार्थो के साथ मिलाकर खाते है। इससे भोजन स्वादिष्ट भी बन जाता है और पौष्टिक भी। इन खाद्यान्नों मे ऐसे अन्य पदार्थों को मिलाना पडता है जिसमे प्रथम श्रेणी की प्रोटीन (जैसे दाल) तथा विटामिन (हरी सब्जी) हो।

चावल.—यह बगाल, मद्रास, आध्र देश का प्रमुख भोजन है। इसमे प्रोटीन, वसा, खनिज लवण की मात्रा अन्य सब अनाजो से कम होती है। कार्बो-हाइड्रेट्स-माडी (Starch) के रूप मे होता है। यह चावल का लगभग ७६-७८ प्रतिशत भाग होता है। जब फसल काटी जाती है तो चावल की फसल को धान कहते है, इस समय चावल एक कडी भूसी मे बन्द रहता है। यह भूसी सुपाच्य नही होता और चावलो पर से खाने के पहिले हटाना पडता है। चावल के ऊपर एक पतली झिल्ली मे उसका प्रोटीन व विटामिन रहता है। जब मिल मे इसकी भूसी को हटाया जाता है तो यह झिल्ली भी इसकी भूसी के साथ-साथ उतर जाती है। इस तरह प्रोटीन व विटामिन-बी भी चला जाता है। इस प्रकार से मिल के बने चावलो को खाने वालो को बेरी-बेरी की बीमारी हो जाती है।

चावलों के अनेक प्रकार

(१) मशीनीः—इस तरह के चावल मे से प्रोटीन व विटामिन-बी भूसे के साथ चला जाता है। मिल मे चावल बनाने के पश्चात चावलो पर पालिश किया

जाता है जिससे उसका स्वरूप चिकना, सफेद, व चमकदार हो जाता है। इसे बर्मी चावल भी कहते है।

(२) चिउड़ा:—(Parboiled Rice) इसमे धान को १२ से २४ घण्टे तक भिगोया जाता है। फिर इस भीगे धान को हडिया मे धीमी-धीमी आँच पर गर्म किया जाता है। इस तरह भूसा अलग हो जाता है। फिर इसको धूप मे सुखा लिया जाता है जिससे यह सख्त हो जाता है। इस तरीके से प्रोटीन, विटामिन व खनिज लवण चावल मे ही रह जाते है।

चावल को सूखी व ठण्डी जगह पर रखना चाहिए; नही तो खराब हो जाता है। इसके खाने वालो को चाहिए कि वे चावल के साथ कुछ अन्य ऐसे पदार्थ भी खावें जिनमे प्रोटीन, वसा, विटामिन तथा खनिज लवणो की प्राप्ति हो सके।

गेहूँ:—यह विश्व मे सबसे ज्यादा काम मे आने वाला अन्न है। यह भारत मे भी कई प्रदेशो का मुख्य भोजन है। बीज (दाने) के मुख्य तीन भाग होते है।

(1) पेरी कार्प—जो बीज का करीब १३ प्रतिशत होता है। यह बड़ा सख्त होता है। इसमे सेल्यूलोज व खनिज लवण प्रधान होते है। (2) एन्डोस्पर्म बीच वाला हिस्सा; जिसमे—अधिकाश भाग माड़ी होता है। यह बीज का ८५ प्रतिशत भाग होता है। (3) भ्रूण का केन्द्र—यह बीज का केवल $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत भाग होता है। इसमे प्रोटीन व वसा की मात्रा बहुत होती है।

इस तरह गेहू मे करीब ६०-७० प्रतिशत माडी, १५ प्रतिशत पानी व ८-१२ प्रतिशत प्रोटीन (Gluten) तथा २ प्रतिशत वसा होती है। खनिज लवण व Vitamin A व B तथा B_2 की भी पर्याप्त मात्रा होती है। गेहू को पीस कर आटा बनाया जाता है। फिर इसको छानकर भूसी (छानस) निकाल दिया जाता है। यूरोप के कई देशो मे आटे को छाना नही जाता। गेहू को पीस कर ही काम मे ले लिया जाता है। इस आटे को वहाँ Whate wheat flour कहते है। छानने से भूसी मे आटे की प्रोटीन, वसा तथा विटामिन का अधिकाश भाग निकल जाता है। आटे के निम्न तीन भाग होते है.—

(१) सूजी:—छोटे दाने से, जो गेहू बाहर की परत से निकलते है। इसमे प्रोटीन व विटामिन की मात्रा अधिकाश होती है।

(२) आटा.—यह बारीक होता है और अधिकाश भाग माडी का होता है।

(३) मैदा:—यह बिल्कुल सफेद व अन्दरूनी भाग से बनती है। इसमे कोई विटामिन नही होता। अच्छी किस्म के आटे का रग सफेद व पीला सा व गध

रहित होता है। यदि यह ठीक तरह से रखा नही जाय तो जानवर पड़ जाते है। चपाती, गेहू के आटे से ही बनायी जाती है।

जौ:—यह बड़ा पौष्टिक अन्न होता है। इसमे खनिज लवण तथा वसा की काफी मात्रा होती है, इसमे पर Gluten की मात्रा कम होती है। इसलिये इसके आटे से पाव-रोटी नही बन सकती। माल्ट (Malt) जौ की अकुरावस्था को कहा जाता है। यह खाने के व शराब बनाने के काम आता है।

मक्का:—यह भारत के कई भागो मे बहुत खाई जाती है। इसमे १० प्रतिशत प्रोटीन, ६५ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स, ५ प्रतिशत वसा तथा १४ प्रतिशत पानी होता है। इसमे अन्य सब अनाजों से वसा अधिक मात्रा मे होती है, किन्तु इसमे एमीनो एसिड (Amino acid) व Nicatinic acid की मात्रा बहुत कम होती है। केवल इसके खाने से व्यक्ति विशेष को पेलाग्रा है (Pellagra) हो जाता है। यह भुना हुआ, उबला हुआ व आटे की चपाती के रूप मे खाया जाता है। इसको खाने वालो को अपना खाना अन्डे व दूध इत्यादि के साथ खाना चाहिए ताकि भोजन के अन्य आवश्यक तत्व प्राप्त हो सके।

बाजरा—यह गेहूँ से कम पौष्टिक व चावल से कुछ अच्छा है। इसमे १०-१२ प्रतिशत प्रोटीन, ५ प्रतिशत वसा, ७ प्रतिशत कार्बो हाइड्रेट्स कैल्शियम लोहा, फासफोरस तथा विटामिन ए तथा बी होते है। यह जाडे के मौसम मे ज्यादा काम मे लिया जाता है।

दालें—यह ज्यादातर लेग्यूमीन (Legumin) होती है। इसमे नाइट्रोजन पदार्थ अधिक होते है। इसमे जो प्रोटीन होती है वह लेग्यूमीन (Legumin) कहलाती है। यह वनस्पति-कैसिन (Vegeitable Casein) भी कहलाती है। इसमे गोश्त से वसा कम होती है। ताजी दालो मे विटामिन ए, बी तथा सी सभी होते है, पर सूखने पर विटामिन सी नष्ट हो जाता है।

इसमे प्रोटीन की मात्रा करीब २०-२५ प्रतिशत होती है। इसके अलावा इसमे खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा तथा गन्धक काफी मात्रा मे होते हैं। सूखी हुई दालों को यदि १०–१२ घण्टे भिगोने के बाद अकुरित होने दिया जाय तो विटामिन सी भी पर्याप्त मात्रा मे बन जाता है।

खास दालें जो काम लें ली जती हैं:—

मूंग, चना, उड़द, मोठ इत्यादि। चीन व जापान मे एक और दाल काम मे लायी जाती है, जिसे सोयाबीन कहते है। इसमे ३४–४३ प्रतिशत प्रोटीन होती है। सोयाबीन मे कैल्शियम, फास्फोरस तथा लोहा भी और सब दालो की

अपेक्षा अधिक होते है। इसमे विटामिन बी भी काफी मात्रा मे होता है। गरीब लोगों मे जो पशु-प्राप्त प्रोटीन नही ले सकते, यह बहुत सस्ता पदार्थ है जिससे पर्याप्त प्रोटीन मिल सकती है। इसकी दाल रोटियाँ बनाकर व इसका दूध बनाकर भी खाया जाता है।

कन्द मूल —(Roots+tubers) यह पौधो का पोषण-पदार्थों का खजाना होता है। यह पोषण पदार्थ केवल माडी के रूप मे ही होता है। इसमें वसा तो बिल्कुल नही होती है। इस तरह इनमे प्रोटीन व वसा की कमी होने से यह भोजन के केवल एक मात्र साधन नही हो सकते। इनमे खनिज लवणो की अधिकता रहती है। विटामिन तो इसमे काफी मात्रा मे पाये जाते है।

इन जड़ों मे (मूलो में) गाजर, आलू, चुकन्दर, मूली, प्याज, साबूदाना, अरारोट प्रमुख है। आलू दो प्रकार का होता है। साधारण आलू (White potato) तथा सकरकन्दी। दोनो में करीब 22 प्रतिशत माडी (Starch), 2 प्रतिशत प्रोटीन व थोड़ी सी वसा भी होती है। इनमे मुख्य अन्तर यह है कि विटामिन ए शकरकन्दी मे अधिक मात्रा मे पाया जाता है, किन्तु आलू मे नही।

उनमे लोहा तथा फास्फोरस की प्रचुरता होती है।

इसको जब पकाया जाता है तो इसे पहिले छीलकर नही उबालना चाहिए क्योकि ऐसा करने से उबाले हुए पानी मे काफी हिस्सा प्रोटीन व खनिज लवण तथा विटामिनो का चला जाता है।

गाजर मे विटामिन ए अधिक होता है। इसमे यह विटामिन Caroten के रूप मे होती है। आरारोट, साबूदाना, टैपीओका (Tapioca) आदि ट्यूबर (Tuber) से बनायी जाती है और इनमे माँडी (Starch) होती है। साबूदाना सामों के पौधो की गूदे (Pith) से बनायी जाती है। टैपीओका बीमारो तथा उन व्यक्तियो के लिए लाभप्रद है जिनकी पाचन शक्ति कमजोर हो।

हरी सब्जी :—इनमे हरे पौधे, पत्ते, कलियां व पत्ते वाले डंठल सभी सम्मिलित है। इनमे करीब ९० प्रतिशत पानी, २ प्रतिशत प्रोटीन, ४ प्रतिशत मांडी व $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत वसा होते है। यह आदर्श भोजन के आवश्यक अंग है, क्योकि क्षारीय लवण काफी मात्रा मे पाये जाते है जो खून मे बफर (Buffer) का काम करते है। इसके अलावा इसमे विटामिन ए और बी कोम्प्लेक्स तथा सी बहुत ही पाये जाते हैं। इनको जहां तक हो सके कच्चा व ताजा ही खाना चाहिए। सुखाने-पकाने से इसका विटामिन प्राय. नष्ट हो जाता है। कुछ भाग शेष विटामिनो का भी नष्ट हो जाता है। हरे सागो मे पालक, गोभी, मेथी खास है।

फल :—इनमे शक्कर, वनस्पति अम्ल व लवण काफी मात्रा मे होते है। यह पोषक गुणों के आधार पर निम्न दो तरह के होते है।

(१) ठोस फल—जो पोषण पदार्थ देते है–जैसे केला, खजूर, अजीर, आम इत्यादि। उनकी पोषण की ताकत इनसे प्राप्त शक्कर के कारण से होती है। कुछ फलो मे विटामिन तथा खनिज लवण जैसे कैल्शियम, मैगनेशियम तथा पोटेशियम की मात्रा अधिक होती हैं। ऐसे फलो मे सेव, नारगी, नीबू इत्यादि प्रमुख है।

तिलहन :—यह फलो से इस बात मे भिन्न है कि वह सर्वोत्तम पोषण पदार्थ है। यदि वजन के हिसाब से देखा जावे तो यह खाने के सब पदार्थों से अच्छा व ज्यादा कैलोरी देने वाला पदार्थ है। इसका मिश्रण साधारणतया निम्नलिखित होता है।

प्रोटीन	१०–३० प्रतिशत
वसा	५०–६० प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट्स	१०–१५ प्रतिशत
खनिज पदार्थ	१—२ प्रतिशत

उनमे विटामिन ए–बी तथा डी की मात्रा अधिक होती है। किन्तु विटामिन सी, नही या बहुत थोडा होता है।

गिरी वाले फलो मे मूगफली, नारियल तथा चेस्टनट Chestnut प्रसिद्ध हैं। नारियल को तो कच्चा व पक्का सुखाकर दोनो प्रकार से खाया जाता है। इसका तेल भी अलग निकाल कर खाने के काम मे लिया जाता है। तिलहनो मे तिल्ली, सरसो तथा जैतून आदि प्रमुख है।

अन्न, शाक तथा फलों का उगाना व बीमारियों से उनकी रक्षा तथा विभिन्न खादों के प्रयोग

मनुष्य के खाने योग्य अन्न (Cereals) की सूची के अन्तर्गत गेहूं, जौ, धान ज्वार; मक्का तथा बाजरा आते है। इन सब मे गेहू तथा धान को ऊंचा स्थान प्राप्त है। जौ खाने के अतिरिक्त शराब निकालने के काम भी आता है और शेष अन्न हरे चारे की दशा मे अधिक प्रयोग मे लाये जाते है। परन्तु राजस्थान जैसे राज्य मे जहा वर्षा कम होती हैं, बाजरा ही अधिक उगाया जाता है और इसे ही दोनो कार्यों के उपयोग मे लाया जाता है। इनकी रक्षा के लिए आवश्यक है कि कटे हुए दाने भण्डार मे न रखे जावे अन्यथा कीडे-मकोडे उसे अधिक समय तक नही रहने देंगे। दूसरे इन्हे इकट्ठा करते समय इनमे बालू, रेत डालने से भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। यदि हो सके तो इन्हे ऐसे कमरो मे रखा जावे जिनका तापक्रम नीचा हो। ऐसा करने पर उनकी रक्षा भली भाति हो सकती है।

नीचे इन अनाजो का हाल संक्षेप में दिया गया है :—

1. गेहूँ (Wheat)—गेहूं उत्तरी भारत की मुख्य खेती है। इसे समुद्री धरातल से लेकर कई हजार फुट ऊंचे पहाड़ों पर भी उगाया जाता है। हमारे देश मे ढाई करोड़ एकड भूमि मे गेहूँ की खेती की जाती है। इसके लिए दोमट (Loam) भूमि सर्वोत्तम समझी जाती है। ४० सेर प्रति एकड़ की दर से इस फसल को बीच अक्टूबर से बीच नवम्बर तक बोया जाता है। ६० पौण्ड नोषजन जो कि १५० मन गोबर के खाद से प्राप्त होती है इसके लिए पर्याप्त होती है। वर्षा न होने की दशा मे तीन बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। कभी कभी खरपतवार (Weeds) भी निकाले जाते है। मार्च के महीने मे यह फसल काटने योग्य हो जाती है। इसकी औसत उपज 15 मन प्रति एकड़ होती है।

जौ की खेती भी ठीक गेहूं की भांति की जाती है।

2. धान (Paddy)—नम जलवायु तथा अधिक वर्षा वाले भागों में इस फसल को बोया जाता है। इसकी जड़ें झकड़ा (Adventitious Roots) होती हैं। इसके पौधे को वायु की कम जरूरत पड़ती है। हमारे देश में इसकी खेती ८ करोड एकड़ भूमि मे होती है। इसके वास्ते दोमट मटियार (Clay Loam) भूमि सबसे अच्छी मानी जाती है। 50 पौंड नोषजन जो कि 125 मन गोबर के खाद से प्राप्त होती है, इसकी फसल पकाने के वास्ते पर्याप्त होती है। इसके बोने की दो रीतियां है :—पहली रीति मे तो बीज खत्ते मे छिटक कर बो दिया जाता है परन्तु दूसरी रीति में पहले पौधघर (Nursery) मे तैयार की जाती है और फिर उसे खेत मे रोप दिया जाता है। इस विधि का नाम चीनी विधि (China process) है। इसमें व्यय कम होता है क्योंकि इसमें समय, बीज तथा देख रेख का खर्चा साधारण होता है। 25 सेर बीज प्रति एकड काफी होता है। यह फसल जून मे बोकर नवम्बर में काटने योग्य हो जाती है। १५-२० मन की उपज औसतन रहती है।

3. मक्का (Maize)—इस फसल को अन्न तथा चारे दोनो के वास्ते ही कार्य मे लाया जाता है। इसके भुट्टे भी बेचे जाते हैं। यह शीघ्र पकने वाली खेती है। इसे लगभग आधा करोड़ एकड़ भूमि मे उगाया जाता है। दोमट भूमि (Loam Soil) इसे ठीक रहती है। पकाने की दशा मे 125 मन तथा चारे के वास्ते प्रयोग मे लाते समय 200 मन गोबर की खाद प्रति एकड़ काफी रहती है। भुट्टो के वास्ते 8 सेर तथा चारे के वास्ते 14 सेर बीज प्रति एकड़ पर्याप्त होता है। ठीक तरह से पानी देने तथा रखवाली करने पर इस की उपज 20 मन अन्न अथवा 250 मन हरा चारा उपलब्ध हो जाता है।

बाजरा तथा ज्वार की खेती भी ठीक उसी तरह से की जाती है। इन अनाजो को जिन रोगो से नुकसान पहुंचता है, वे इस प्रकार हैं :—

कडुआ:—यह फफूंदी का रोग है। इससे बाल (ear) का रंग काला पड़ जाता है। इसे हाथ से छूने पर एक चूर्ण गिरता है। यह काली वस्तुएं स्पोर्स (Spores) का झुण्ड है। उचित वातावरण मिलने पर ये स्पोर्स नया पौधा पैदा कर देते है। इसके बचाव के वास्ते एक पौण्ड नीले थोथे का घोल जो एक गैलन पानी में बनाया गया हो तीन मन के बीज तक पर्याप्त होता है, या आधा सेर फारमेलिन बीस गैलन पानी मे घोल कर १५ मन बीज को ठीक करने के काम आ सकती है।

रतुआ —यह पत्तियो का रोग है जो अधिक खाद देने पर भी लग जाता है। यह रोग तीन प्रकार का होता है। (क) नारगी रग का (ख) काले रग का (ग) पीले रंग का। इन तीनो मे काला रंग वाला ज्यादा हानिकारक है। अत: रोग रहित जातिया बोई जावे।

ममनी :—यह रोग एक कीडे द्वारा फैलता है जिसे ऐलवॉर्म (El–Worm) कहते है। जब दाने बनने लगते है तब यह हानि पहुचाता है। इस रोग के कारण दाने काले पड जाते है जिन्हे गॉल (Gall) कहते हैं। रोग रहित बीज बोना ही इसका बचाव है।

शाक सब्जी :—तरकारियो की सूची मे गोभी, आलू, टमाटर, बैंगन, गाजर तथा मूली इत्यादि सब्जियां (Vegetables) मे आती हैं। तरकारियाँ उन स्थानो मे अधिक बोई जाती है जो शहरो के निकट हो या उनका सम्बन्ध सडको द्वारा वहा तक हो। क्योकि ऐसे स्थान से ही इनकी खपत पूरी हो सकती है। ये मनुष्य के शरीर के लिये अत्यावश्यक है। इनकी रक्षा के लिए इन्हे ठण्डे स्थानो पर रखा जाना चाहिए अन्यथा ताप से खराब होने का पूरा पूरा डर रहता है। कुछ एक सब्जियो का वर्णन नीचे दिया जाता है :—

1. गोभी (Cole Crop)—इस श्रेणी मे तीनो गोभियां अर्थात् फूल गोभी, पत्ता गोभी तथा गाँठ गोभी आती है। दोमट भूमि इसके वास्ते सर्वोत्तम समझी जाती है। इसमे ६ बार की जुताई पर्याप्त होती है। इस प्रकार की फसल के वास्ते ३०० मन गोबर का खाद प्रति एकड की आवश्यकता होती है। इसका तीन छटांक बीज एक एकड के लिए बहुत होता है। जुलाई–अगस्त के महीने मे इसकी

नर्सरी (Nursery) बोदी जाती है जो छ. सप्ताह मे रोपने योग्य हो जाती है। अब इन्हे ३′×२′ के अन्तर से पंक्तियो मे बो दिया जाता है। पौध शाम को लगानी चाहिए। वर्षा न होने पर हर सातवें दिन सिंचाई करनी चाहिए। इनकी जड़ो पर मिट्टी चढानी आवश्यक है। लगभग बुवाई के ५ माह बाद गोभी तैयार हो जाती है। लगभग एक हजार फूल प्रति एकड निकल आते है।

(२) टमाटर (Tomato):—टमाटर के लिये बलुआर दोमट (Sandy Loam) सबसे अच्छी मानी जाती है। यह जमीन पर अधिक फैलता है। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से बडा उपयोगी है। इसमें विटामिन डी विशेष रूप से होता है। १२५ मन गोबर की खाद प्रति एकड़ से इसका काम चल सकता है। दो छटांक बीज की नर्सरी एक एकड़ भूमि के वास्ते काफी होती है। जून, जुलाई मे पौध बोकर अगस्त-सितम्बर मे इसे २॥-२॥ फीट की दूरी पर रोप दिया जाता है। ठीक तरह निकाई-गुडाई करने पर ढाई-तीन महीने मे फसल कटने योग्य हो जाती है। इसमें २०० मन प्रति एकड़ की उपज रहती है।

(३) आलू (Potato):—आलू भूमि में रहने वाला एक तना है जिसे ट्यूबर (Tuber) कहते है। इसमे कलियाँ भी भली प्रकार दिखाई देती है। इस के लिए दोमट (Loam) भूमि सर्वोत्तम है। छोटा बीज ५० सेर तथा मोटा आलू ८ मन लगता है। मोटे आलू को काट कर भी बोया जाता है। आलू की कई फसले ली जाती है। इसके वास्ते ८० पौण्ड नोषजन जो ३०० मन गोबर के खाद से प्राप्त होता है पर्याप्त होता है। जो इसे डोलियो (Ridges) पर दो-तीन फुट के अन्तर से बोया जाता है। इस पर मिट्टी चढ़ानी बहुत जरूरी है अच्छी प्रकार निकाई गुडाई करने पर २५० मन आलू निकल आते है।

शेष तरकारियों की पैदावारी भी इसी प्रकार की है। नीचे इनके कुछ रोग दिए गए है :—

1. बलाइट (Blight):—यह फफूंदी का रोग है। पहले यह रोग पत्तियो पर दृष्टिगोचर होता है। नमदार मौसम होने पर यह शीघ्र ही फैल जाता है। पत्ते की हरियाली उड जाती है और इसका रंग काला हो जाता है। नइ पत्तियो से दुर्गन्ध आती है। इसके पश्चात् तने पर भी आक्रमण हो जाता है और पौधे की वृद्धि रुक जाती है।

बोर्डो मिक्सचर (Bordeaux mixture) के छिडकने से परिणाम अच्छा रहता है। बरगंडी मिक्सचर का प्रभाव भी ठीक ठीक रहता है।

2. उकासा.—यह रोग बडा ही भयानक सिद्ध हुआ है। इससे पौधा सूख

जाता है और उसकी डालियां भी मुरझा जाती हैं। तने मे लम्बी लम्बी धारियां मिलती हैं। ऐसे खेत मे आलू नही बोया जाना चाहिए।

फल:-फल (Fruits) की सूची में संतरा जाति के फल, आम अमरूद, केला तथा पपीता इत्यादि आते है। फलो की खेती करने का विचार जब मनुष्य के हृदय मे आता है तो उसे बहुत सी बातों का ध्यान रखना पडता है; जैसे फलो का चुनाव, स्थान का चुनाव, क्षेत्रफल, जलवायु, पंजी, पशु, स्थायी मजदूर, पानी के साधन तथा कार्य करने के औजार आदि। इसके साथ साथ मनुष्य को स्वय खेत पर कार्य करना भी जरूरी है। फलो को लम्बे समय तक रखने के वास्ते ठडे कमरे बनाए जाते हैं जिनका तापक्रम नीचा होता है। उनमें रखे हुए फल खराब नही होते।

संतरा जाति मे बहुत खट्टे से लेकर बहुत मीठे तक फल पाए जाते है। इस मे खट्टा, मीठा, नारंगी, नीबू, माल्टा तथा मौसम्मी इत्यादि आते है। इनमे विटामिन "सी" पाया जाता है। यह प्राय: हर जलवायु में पनप जाता है। अधिक वर्षा वाले भागो मे इसे सिंचाई की आवश्यकता नही पडती। बलुआर दोमट (Sandy Loam) भूमि इसके वास्ते सर्वोत्तम रहती है। इसके पौधे बीज बोकर या चश्मा बाधकर (Budding) उगाये जाते है। इसकी पौध वर्षा ऋतु मे खेत मे रोपी जाती है और इसके पौधो की दूरी २० फीट रखी जाती है। साल मे दो बार फूल आते है, एक फर्वरी और दूसरा जुलाई। परन्तु साल मे एक फसल लेना ही लाभप्रद होता है। इस जाति के पेड चार-पांच साल मे फलने फूलने आरम्भ हो जाते हैं।

आम (Mango) :—आम की गणना उच्चकोटि के फलो मे होती है। इसकी जडें मूसला होती हैं। दोमट भूमि इसके वास्ते अच्छी रहती है। अधिक वर्षा वाले भागो मे सिंचाई करने की आवश्यकता नही पड़ती। इसकी बुवाई गुठली बोकर या कलम लगा कर की जाती है। तीन फीट व्यास के तथा उतने ही गहरे गड्ढे बहुत पहले से तैयार कर लिए जाते हैं, जिनमे खाद भर कर पौधे रोप दिये जाते हैं। गुठली बोने पर पेडो की दूरी ६० फीट तथा कलम लगाने पर ४० फीट रखी जानी चाहिये। पौधे लगभग डेढ साल बाद रोपे जाते है। पौधो की रोपाई वर्षा मे होनी चाहिए। कलम से लगाने पर फल चार-पाच वर्ष मे अन्यथा दस वर्ष मे फल आवेगा।

अमरूद (Guava) :—अमरूद का पेड़ अधिक ऊंचा न होकर कुछ फैल जाता है। यह धूप, अधिक नमी और सोखा आदि को भी सहन कर सकता है।

इसके लिए बलुआर दोमट (Sandy Loam) भूमि अच्छी मानी जाती है। यह भी आम की भाति बीज बोकर और कलम लगाकर तैयार किया जाता है। इसके पौधो की दूरी 18 फीट होनी चाहिये। खाद और सिंचाई आम की ही तरह है। इसका बीज वर्षा काल मे बोया जाता है। इसकी शाखो की प्रतिवर्ष छंटाई करने की आवश्यकता है। इसकी भी एक ही फसल लेनी चाहिए।

केला (Plantain) :—केले का पौधा दस–बारह फीट ऊंचा होता है। यह तने द्वारा सास लेता है। दोमट भूमि इसके लिये ठीक समझी जाती है। इसके पौधे १२–१२ फीट की दूरी पर रखे जाते है। वर्षा ऋतु मे इस के किल्लो को लगाया जाता है। एक पौधा केवल एक बार ही फल देता है, फिर उसको काट डालना चाहिए। एक पौधे से लगभग २००–२५० केले प्राप्त होते है। पौधा बीज पैदा नही करता बल्कि राइजोम (Rhizome) का ही एक रूप है। फल को तोड़ कर और अलग स्थान पर रख कर पकाया जाता है।

पपीता (Papaya) .—यदि हम बाग लगाएँ तो चार–पाँच साल तक कोई फल नही आता, अत· बीच बीच मे पपीते के पौधे रोप दिये जावे तो हमारी समस्या बहुत हद तक हल हो जावेगी क्योकि यह केवल एक साल बाद ही फल देना आरम्भ कर देता है। इसमे विटामिन्स अधिक होते है। बलुआर दोमट (Sandy Loam) भूमि मे यह खूब पनपता है। पहले इसकी नर्सरी तैयार की जाती है और जुलाई–अगस्त मे इन्हे अपने असली स्थान पर लगा दिया जाता है। इसमे नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं। पेड़ों की दूरी दस–दस फीट रखी जाती है। साल मे दो बार फूल आता है, एक फर्वरी मे और दूसरा जुलाई मे। फल पेडो पर भी पकाया जाता है और पाल मे रख कर भी पकाते है। इसकी आयु अधिक नही होती।

फलों के कुछ रोग नीचे दिए गए हैं :—

गोंदिया : —यह सतरा जाति का रोग है। इसमे पौधे के तने से गोदारस निकलता है, इसलिए इसे यह नाम दे दिया गया। रोग–ग्रसित पौधे का बढना इस रोग से रुक जाता है और कभी कभी पौधा मर भी जाता है। इसके बचाव के वास्ते एक तो निरोगी पौधे लगाए जावे दूसरे इसके तने पर दो फीट तक मिट्टी चढा दी जाय।

काजली .—खटमल की जाति का एक छोटा सा कीडा अपने मुँह से एक प्रकार का रस छोडता है जो फूलो पर फैल कर जम जाता है। इससे फूल काले

नजर आते है । इस कीडे को नष्ट करना ही आम के पौधे का इस रोग से छुटकारा पाना है ।

अमरूद के वृक्ष के रोग :—अमरूद की पत्तियो पर तावे के रग के छीटे दिखाई देते है धीरे धीरे यह रोग सभी पत्तियो पर फैल जाता है । अत. इन पत्तियो को तोडने से ही इस रोग को रोका जा सकता है ।

रासायनिक खाद

ये खाद रासायन द्वारा वनाए जाते है, इसीलिए इनका नाम रासायनिक खाद है । इन्हे दूसरे शब्दो मे वनावटी खाद भी कहते हैं । इनमे केवल एक और कभी-कभी दो पदार्थों की अधिकता पाई जाती है । ये खाद एक विशेष खेती को एक उचित समय पर दिए जाते हैं । पश्चिमी देश इन्हे अधिक प्रयोग मे लाते है, यही कारण है कि वहाँ की उपज प्रति एकड कम है । हमारे देश के कृषको ने भी इस ओर ध्यान देना आरम्भ किया है और लाभ उठाने लगे है । वैसे तो रासायनिक खाद अनेक प्रकार के होते है परन्तु नोपजन, पोटाश और फासफोरस के खाद मुख्य है :—

नोषजन युक्त खाद.—इनकी यह विशेपता है कि इनमे नोषजन की मात्रा अधिक होती है । इसके प्रयोग से पौधे मे हरियाली आजाती है । पत्तियो की सख्या वढ जाती है। तना निर्वल हो जाता है जिससे फसल के गिरने का भय वना रहता है और अन्त मे उपज कम होती है । चारे के लिए वोई गई फसलो के लिए यह उत्तम खाद है ।

एमोनियम सल्फेट.—यह एक उत्तम खाद है । इसमे २०'५ प्रतिशत नोषजन होती हैइसका प्रभाव सोडियम नाइट्रेट की अपेक्षा देर मे पडता है; क्योकि पहले कीटाणु नाइट्राइट बनायेंगे और फिर नाइट्रेट । अतः आवश्यक है कि इसे वोते समय ही खेत मे डाल दिया जावे । आलू और ईख के वास्ते सर्वोत्तम खाद है । ढाई मन प्रति एकड़ के लगभग प्रर्याप्त होता है ।

सोडियम नाइट्रेट :—यह अत्यन्त महत्वपूर्ण खाद है । इसमे नोषजन की मात्रा १५'७ प्रतिशत है । इसका प्रभाव खेती पर तुरंत पड़ता है । यह खाद पानी मे घुलनशील है, इसीलिए खेत की सिचाई के साथ ही दिया जाता है । उन फसलो मे जिन्हे कीडा लग गया हो यह वडा ही उपयोगी सिद्ध हुआ है । एक एकड भूमि के लिए दो मन खाद काफी होता है ।

पोटाश के खाद .—नोषजन और फासफोरस के खादो की अपेक्षा पोटाश के खाद कम उपयोग मे लाए जाते है । इसका कारण यह है कि हमारी भूमि मे स्वभाविक रूप से ही इसकी उपस्थिति है । आलू जैसी फसल मे जो भूमि के अन्दर

पकती है इस खाद की आवश्यकता पड़ती है। चिकनी मिट्टी वाले खेतो मे इसे नही दिया जाता क्योकि पोटाश उनमे पहले ही काफी होती है। यह पौधो का गहरा रग बनाने तथा भोजन को पौधे के एक अग से दूसरे अग मे ले जाने के काम आता है।

(क) पोटाशियम सल्फेट. प्राय दोमट भूमि मे इस का प्रयोग किया जाता है। यह आलू, गेहूं और टमाटर आदि की फसलों को बड़ा लाभ पहुचाता है। दो-तीन मन खाद एक एकड़ भूमि के वास्ते काफी होता है। इस मे 48·6 प्रतिशत पोटाश होता है।

(ख) पोटाशियम क्लोराइड:—यह खाद बीज के बोते समय या उनके उगते ही खेत में ;डाल दिया जाता है। पोटाशियम सल्फेट वाला ही कार्य यह करता है। इसमें 52·7 प्रतिशत पोटाश है। इसकी मात्रा कम दी जाती है।

(ग) राख:—घरो मे जो राख मिलती है। इसमे पोटाश का अंश अधिक होता है और यह खाद की जगह काम मे लाई जाती है। पौवो के बड़े होने पर इस का प्रयोग ज्यादा लाभदायक होता है। इसके पत्तिग्रो पर छिड़कने से कीड़े का भय नही रहता। आलू-गोभी और मिर्च के वास्ते अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

(घ) फासफोरस के खाद·—फासफोरस पौधो के वास्ते बड़ी ही मूल्यवान वस्तु है। इससे पौधो की जड़ें भली प्रकार बढ़ती है तथा बलिष्ठ होती है जिसके फलस्वरूप खेती नही गिरती और यह शीघ्र पक जाती है। इसके उपयोग से पौधों मे रोग के रोकने की शक्ति बढ़ जाती है। कुछ फासफोरस युक्त खाद नीचे बताये गए है:—

(क) सुपरफॉसफेट:—यह खाद पानी मे घुलनशील नही है इसलिए इसे बीज बोते समय ही कूड़ो मे डाला जाता है। ऐसा करने पर ही वह फसल उसे प्राप्त कर पाती है। यह फलीदार फ़सलो के वास्ते अधिक गुणकारी है।

(ख) बेसिक स्लेग:—खेती की अच्छी उपज के वास्ते बेसिक स्लेग का उपयोग भी सुपरफॉसफेट की ही भाति किया जाता है। इसमे फॉसफोरस की मात्रा 18·5 प्रतिशत है।

भोजन

यह तो सभी जानते है कि भोजन पर ही स्वास्थ्य निर्भर रहता है। बहुत से यह भी जानते हैं कि बच्चों का बढना तथा उनका विकास और वयस्को की कार्य करने की क्षमता भी इसी पर निर्भर है। भारतवर्ष मे जहाँ जन-सख्या लगभग 50 लाख प्रतिवर्ष बढ़ती है, जब तक खाद्य पदार्थो की पैदावार भी इसी अनुपात मे नहीं बढती तब तक भारत मे अधिकाश व्यक्ति दुर्बल तथा पीडित ही रहेंगे। आज कल भी अधिकांश व्यक्ति भोजन की आवश्यकता का $\frac{1}{2}$ या $\frac{2}{3}$ हिस्सा ही खा पाते है। ऐसी दशा मे जब अपने यहाँ खाद्य पदार्थों की कमी रहती है, हम सब को जानना चाहिये कि कौनसा भोजन, कैसे, कितना, किसके साथ तथा कैसे पका कर खाना चाहिये; कौनसे भोजन मे क्या क्या विटामिन तथा खनिज होते है, उनको कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है, यह सारी बाते जानना बडा आवश्यक है। नीचे इन सब बातो पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

हमारे भोजन से स्वास्थ्य का तो निकट सम्बन्ध है ही। इसके अतिरिक्त शरीर मे भोजन निम्नलिखित कार्य करता है। एक तो भोजन से हमे वे पदार्थ मिलते है जो आगे जा कर हड्डिया, मास पेशिया, ज्ञान तलु, चमडी व दूसरे अवयव बनाने मे मदद करते है। इस तरह यह बच्चो की वृद्धि तथा विकास के काम आता है और वयस्को के अवयवो को सुचार रूप से चलाने व बनाये रखने मे मदद करता है। दूसरे, भोजन वह शक्ति प्रदान करता है—जो शरीर के आवश्यकीय अग जैसे हृदय की गति श्वास क्रिया, तथा अन्य कार्यों के लिये उपयोगी तथा आवश्यक है। इनके अतिरिक्त शरीर के तापक्रम को बनाये रखने व शारीरिक श्रम मे भी भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति ही काम आती है। अत मे भोजन शरीर के सब अवयवो को व्यवस्थित या नियन्त्रित करने वाले पदार्थ पहुचाता है, जिन पर शरीर के अलग अलग कार्य निर्भर रहते है। यह शरीर मे बीमारी से बचने की ताकत भी पहुचाता है। भोजन मे जब किसी आवश्यक तत्व की कमी होने लगती है तो स्वास्थ्य भी गिरने लगता है। भोजन मे कई एक ऐसे तत्व होते हैं जिन्हे पोषण कहते है, ये है — (१) प्रोटीन (२) कार्बोहाइड्रेट्स (३) वसा (४) विटामिन (५) खनिज लवण तथा (६) जल।

यह शरीर के पोषण के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इस भोजन के प्रधान अग (Proximate principles of Food) भी कहते है। इनमे से (1) प्रोटीन शरीर के जीव-कोषो का अत्यन्त आवश्यक अग है। यह शरीर मे साधारण टूट-फूट के बाद फिर से नये जीवकोषो को बनने मे मदद करता है। इसमे रासायनिक रूप

से C, H_2, N_2 तथा O_2 विशेष तत्व होते है । गन्धक तथा फॉसफोरस भी इनमें सम्मिलित रह सकता है । इन सब तत्वों से एक पदार्थ बनता है, वह Animo Acid कहलाता है। यह Animo Acid ही जो 23 प्रकार की होती है जो प्रोटीन का खास अंग होती है। अनेक प्रोटीनो का पूरा-पूरा भाग शरीर के अवयवों को बनाने के काम आ जाता है, पर उनका केवल आधा, दो तिहाई या इससे भी कम हिस्सा ही शरीर के अवयवों के निर्माण के काम मे आ पाता है। इसी आधार पर प्रोटीन को दो भागों मे विभक्त किया गया है :—

(1) प्रथम श्रेणी की प्रोटीन— यह पशुओ से प्राप्त होती है और द्वितीय श्रेणी की प्रोटीन—जो वनस्पतियो से प्राप्त होती है । शरीर के स्वस्थ रहने व सुचारु रूप से काम करने के लिए खाने मे प्रोटीन का कम से कम 50% हिस्सा तो प्रथम श्रेणी की प्रोटीन का होना आवश्यक है। यह प्रोटीन हमे दूध, अण्डे, गोश्त व मछली जैसी चीजों से मिलती है और द्वितीय श्रेणी की प्रोटीन तो सब तरह की दालों, फलियों व सूखे मेवों इत्यादि में मिलती है। शाकाहारियों के लिए प्रोटीन के मुख्य साधन दूध व उसके अन्य पदार्थ तथा दाले होती हैं। दालो में सोयाबीन की दाल में सबसे ज्यादा प्रोटीन होती है, लगभग ३६–४० प्रतिशत ।

वसा:—यह एक प्रकार का सान्द्रित भोजन है और शरीर को गर्मी पहुंचाने व कार्य शक्ति पहुचाने में शरीर का सबसे अच्छा ईंधन है। वजन के हिसाब से यह प्रोटीन व कार्बोहाइड्रट्स से दुगनी शक्ति पैदा करती है। इसके अतिरिक्त यह शरीर मे यदि अधिक मात्रा मे पहुच जाती है तो चरबी के रूप मे जमा हो जाती है। यह शरीर को गर्म रखने मे मदद करती है । वसा अपने मे घुलने वाले विटामिन को सोखने में भी मदद करती है। यह भी पशु प्राप्त तथा वनस्पति प्राप्त होती है। पशु प्राप्त वसा मक्खन व मछली के तेल से प्राप्त होती है जबकि वनस्पति प्राप्त वसा वनस्पति घी, तिल व सरसों इत्यादि चिकनी वस्तुओ से प्राप्त होती है। इसके ज्यादा खाने से शरीर मे कई एक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाने की सम्भावना रहती है। जैसे उच्च रक्त-चाप व हृदय-रोग आदि।

कार्बोहाइड्रेट:—यह शरीर मे शक्ति का सबसे सस्ता साधन है और जब मांस-पेशियाँ काम करती हैं तो उनका सामान्य आक्सीकरण हो जाता है । यदि कार्बोहाइड्रेट्स अधिक मात्रा मे खाद्य जाता है और वह शक्ति पैदा करने के काम मे नही आता है तो शरीर मे वसा के रूप मे बदल जाता है और जमा होता रहता है।

इसमे भी मुख्य तत्व कार्बन (C) हाइड्रोजन (H) तथा ऑक्सीजन (O) हैं। इनमे दो खास चीजे होती है—माड़ी तथा शर्करा ।

माडी तो खाद्यानों जैसे चावल, गेहूं, जौ, बाजरा, आलू, तथा शक्करकन्दी जैसी चीजों मे बहुत पाई जाती है। शर्करा के भी कई प्राप्ति-साधन हे। यह इस पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की शर्करा की आवश्यकता है। यह सब शरीर में ग्लूकोज के रूप मे परिवर्तित होकर शक्ति पैदा करने के काम से आती है, या वसा के रूप मे जमा हो जाती है। भारतवर्ष मे तो अधिकतर शाकाहारी भोजन मे कार्बोहाइड्रेट्स की प्रचुरता व प्रोटीन की कमी पाई जाती है।

खनिज लवण:—यह शरीर के भार का $\frac{1}{20}$ वां हिस्सा बनाते है और शरीर की वृद्धि तथा शरीर के सुचारु रूप से काम करने के लिये बहुत आवश्यक होते हैं। शरीर में ये सिम्नलिखित कार्य करते है:—

शरीर में भोजन के पाचन मे मदद करना,अन्न-मार्ग मे कई एक "एन्जाइम अम्ल" तथा अनेक क्षारीय माध्यमो मे ही काम कर पाते है।

शरीर मे मांस पेशियो की क्रियाशीलता, ज्ञान तन्तुओ मे से विचारो का संवहन व हृदय की गति की ठीक मात्रा पर निर्भर रहती है।

यह शरीर मे हड्डियो मे एकत्रित होकर इन्हे शरीर का आधार बनाते हैं व इसके बढने में मदद करते है। इन खनिज लवणो मे निम्नलिखित मुख्य है:— (अ) कैल्शियम, लोहा, फॉसफोरस, सोडियम, पोटेशियम।

कैल्शियम.—यह हड्डियो व दातो का एक आवश्यक अंग होता है। इसकी वजह से ही इनमे इतनी सख्ती आ जाती है। दातो की ऊपरी तह शरीर के सबसे सख्त तह है। इसी कारण ठण्डे व गर्म पानी पीने पर भी इसका अन्तर दातो पर महसूस नही होता। इसके अलावा यह हृदय की गति को बनाये रखने मे भी मदद करता है। यह खून का एक विशेष अग है। 1–1·5 ग्राम कैल्शियम की मात्रा प्रतिदिन के भोजन मे होना आवश्यक है। गर्भवती व दूध पिलाने वाली स्त्रियो को तथा बच्चो को इसकी ज्यादा आवश्यकता रहती है। यह दूध, पनीर, अण्डे, हरी सब्जी व बाजरे वगैरह मे बहुत मात्रा मे पाया जाता है। इसकी कमी से एक बीमारी हो जाती है जिसमे हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। वह बच्चों में सूखे की बीमारी कहलाती है।

फॉसफोरस:—यह कैल्शियम के साथ मिल कर एक नमक बनाता है जो दांत व हड्डियों मे एकत्रित रहता है। यह शरीर के सभी जीव-कोषों का आवश्यक अंग भी है, दैनिक भोजन मे इसकी कम से कम 1·5 ग्राम मात्रा होनी चाहिए,न ही तो हड्डियो के कमजोर होने व शरीर के बढ़ाव के रुकने का डर रहता है। यह भी दूध, पनीर,

अण्डे, दालें, मटर व हरी साग जैसे पालक और अजीर मे बहुत मात्रा में पाया जाता है।

लोहाः—यह वैसे तो शरीर का आवश्यक अंग है ही पर यह मुख्यतया Haemglobin बनाने के काम मे आता है। Haemoglobin का लाल रग उसकी O_2 व CO_2 ले जाने की शक्ति इस पर ही निर्भर रहती है। इसकी कमी की वजह से शरीर पीला, पीला नाखून व होठ तथा जीभ सफेद पड जाते है। यह बीमारी रक्त की कमी के कारण होती है। स्वस्थ व्यक्ति को लोहे की 15 मीलीग्राम मात्रा प्रत्येक दिन भोजन मे मिलनी चाहिए। शरीर के लोहे का $\frac{4}{5}$ भाग खून मे Hoemoglobin के रूप मे होता है। यह विशेषतय: यकृत, गोश्त, अण्डे, दाले, मेथी, पालक, टमाटर इत्यादि में पाया जाता है।

आयोडीन—यह शरीर में एक कार्बनिक यौगिक के रूप मे पाया जाता है। इसकी कमी से कठमाला जैसी बीमारी हो जाती है। यह बीमारी पंजाब के कुछ स्थानो मे जहाँ कि नमक मे आयोडिन बिल्कुल नही होती, बहुत पाई जाती है। इसमे थायराइड ग्रंथियाँ जो गले के सामने के भाग मे होती हैं, बहुत बढ़ जाती है। यह मछली, अण्डे, दूध व उसके अन्य पदार्थ, हरी सब्जी, जैसे पत्ता गोभी, लहसून, लौग इत्यादि मे अधिक मात्रा में पाई जाती है। वैसे यह समुद्र के नमक में भी अधिक पाई जाती है।

ऊपर दिये गये इन खनिज लवणो के अतिरिक्त साधारण नमक शरीर का एक आवश्यक अग है। यह गर्म देशो मे तो बहुत ही आवश्यक होता है। यह शरीर मे हरएक जीवकोष व द्रव भाग मे पाया जाता है, इसकी 10-15 ग्राम मात्रा प्रत्येक वयस्क के लिए प्रतिदिन आवश्यक है। क्लोराइड की कमी से दांतों की बीमारी अधिकतर लोगो मे पाई जाती है। तांबा तथा मैगनीज भी रक्त बनने मे काफी मदद करते हैं। इस तरह अन्य नमक भी शरीर को ठीक तौर से काम करने मे मदद करते है।

विटामिन:—यह वह पदार्थ है जो प्राकृतिक भोजन मे बहुत थोड़ी मात्रा मे पाये जाते है और शरीर के सुचारु रूप से काम करने व स्वास्थ्य के बनाये रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक होते है। इनकी कमी की वजह से बहुत सी बीमारियाँ हो जाती है। यह अन्य भोज्य पदार्थों की तरह शक्ति या गर्मी पैदा करने के काम मे बिल्कुल नही आते। इनका शरीर मे होना निम्न लिखित कारणो से आवश्यक होता है :—

1. शरीर को बढने व स्वास्थ्य को बनाये रखने मे मदद करते है।

2. भोजन के ठीक तौर पर उपयोगी होने में मदद करते है।

3. शरीर के कई एक आन्तरिक रसो के पैदा होने मे मदद करते हैं। यह Hormons शरीर के लिए बहुत आवश्यक होते है।

विटामिन निम्न दो तरह के होते हैं —

(i) वसा मे घुलने वाले—जैसे विटामिन ए, डी, ई तथा के।

(ii) जल मे घुलने वाले—जैसे विटामिन बी कोम्प्लेक्स, सी तथा पी।

इन विटामिनो का नाम आरम्भ मे इन बिमारियो के नाम पर रखा गया था जो विटामिन की कमी से होती थी, जैसे Ontirlokets Vitamin, पर जब अधिक अन्वेषण करने पर यह पाया गया कि एक विटामिन की कमी से एक ही लक्षण नही अपितु अनेक लक्षण प्रकट होते हैं तो इनका नाम बदल कर ए,बी,सी,डी, इत्यादि रख दिया गया। आजकल तो नये नये ऐसे कार्बनिक यौगिक पाये गये है जो विटामिनो की श्रेणी मे गिने जा सकते है। इन विटामिनो की मडली मे सबसे नया आगन्तु है Viamin B_{23}

विटामिन 'ए'—सन् १९१२ की बात है कि कुछ लोगो ने यह पाया कि कुछ चर्बी व तेल ऐसे होते है जिनसे चूहो का शारीरिक विकास अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमे नही होता। इसी आधार पर और खोज करने पर पाया गया कि इसकी कमी से मनुष्य मे भी कई बीमारियो के लक्षण आजाते हैं। इनके अलावा यह शारीरिक विकास के लिये भी बहुत आवश्यक है। यद्यपि यह किस तरह इस विकास मे मदद करता है, यह अभी तक पता नही चला। Zerophthalmia एक ऐसी अवस्था होती जिसमे आँखो का सफेद भाग बिल्कुल सूखा सा होजाता है, खुरदरा सा पड़ जाता है, और इसकी वजह से आखो की कई बीमारी के होने का डर रहता है। कई बार तो इनकी कमी के कारण आखो से भी हाथ धोना पड़ता है।

रतोन्धी—यह पाया जाता है कि जब आप सूरज या बीजली की तेज रोशनी मे से एक दम अधेरे मे जाते है तो कुछ देर तक कुछ ठीक ठीक नही दिखाई नही देता। और थोडी देर बाद ही सब कुछ दीखने लगता है। अधेरे मे दीखने की इस ताकत को वापस लाने के लिये विटामिन 'ए' और इसके एक यौगिक की बहुत आवश्यकता होती है। जब यह कमी कुछ ज्यादा होती है तो रात को दीखना कम व धीरे धीरे एक दम बंद हो जाता है। इसको ही रतौधी कहते हैं। इसके अलावा विटामिन 'ए' बीमारियो के विरुद्ध शरीर की ताकत को भी बढाता है। इसकी कमी

से वह ताकत को भी बढाता है। इसकी कमी से वह ताकत कम होजाती है। इसी की कमी से चमड़ी मोटी, कड़ी, व खुरदरी भी हो जाती है।

इसकी कम से कम प्रतिदिन की मात्रा अंतर्राष्ट्रीय इकाईयो मे ५००० यूनिट होती है। पर दूध पिलाने वाली व गर्भवती औरतो के लिये यह मात्रा ६००० यूनिट बताई गयी है। यह प्रकृति मे दो रूप मे पाया जाता है। दूध, मक्खन, जिगर तथा गुर्दे मे व मछली के जिगर का तेल जैसे कोड-लीवर ऑयल मे भी पाया जाता है। हरी पत्ती वाला साग, जैसे गोभी पालक, खाने का पान, इत्यादि व पक्के हुये व पीले फलो मे जैसे गाजर, आम इत्यादि मे यह पाया जाता है।

विटामिन-बी कोम्पलेक्स:—यह विटामिन पानी मे घुलनशील होते है। इनमे मुख्य-मुख्य इस प्रकार है।

(1) Thiamtne, Vitamin B
(2) Riboflavin.
(3) Nicotinic Acid
(4) Vitamine B_6—Pyridosine
(5) Vitamine B_2

आरम्भ मे विटामिन-बी जिसका नाम दिया गया था उसके पूरे विश्लेषण पर यह पाया गया कि यह एक अकेला ही यौगिक नही अपितु इसमे और भी पदार्थ मिले हुए है। जिनमे खास-खास ऊपर दिये गये है।

विटामि-बी.—यह गर्मी से नष्ट हो जाने वाला है। इसके खास-खास प्राप्ति साधन है—खमीर, गेहू का आटा व अनाज, दाले, अण्डा, गोश्त, मछली व दूध। इसकी कमी से शरीर मे जो बीमारियां हो जाती हैं, वह "बेरी-बेरी" कहलाती है। और यह दो प्रकार की होती है। (1) सूखी-जिसमे मांशपेशिया कमजोर हो जाती है, दूसरी जिसमे हृदय कमजोर हो जाता है। यह बीमारी उन लोगो मे ज्यादा पाई जाती है जो केवल (Milled Rice) का ही ज्यादा प्रयोग करते है।

(1) Riboflavin—यह पानी से घुलने वाला एक पदार्थ है जो खमीर दूध, अण्डे, मछली, मास व जिगर मे बहुत मात्रा मे पाया जाता है। इसकी कमी से आखों का लाल होजाना, होठो का फटजाना जैसी बीमारियां हो जाती है।

(2) Nicotinic Acid:—इसकी कमी से जो बीमारी होती है उसे Pellagra कहते है, जिसमे अतिसार, Dermatitis व Dementia के तीन मुख्य लक्षण होते है।

यह गोस्त, जिगर, चोकट वाले आटा, हरी सब्जी व आम जैसी चीजो मे काफी मात्रा मे पाया जाता है।

Pyridoxine—यह प्रोटीन अवशोषण के लिये बहुत आवश्यक है। इसकी कमी से शरीर के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते है। यह भी आटे, खमीर व अण्डे तथा मूगफली, जैसी चीजो मे अधिक मात्रा मे पाई जाती है।

फोलिकाम्ल (Folic Acid) व B_{12}.—शरीर मे खून बनाने के लिये बहुत ही आवश्यक होते है। इनसे खून का बनना उत्तेजित होता है। यह पत्तिया वाली हरी सब्जी मे काफी पाये जाते है।

विटामिन-सी:—यह पानी मे घुलनशील है। यह गर्मी से बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है। उबली हुई सब्जी या अन्य पकाई हुई वस्तुओ मे यह विटामिन बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यह ताजा व हरी सब्जियो व ताजा फलो मे जैसे नारगी, नीबू, टमाटर इत्यादि मे अधिक मात्रा मे पाया जाता है। फलो व आवले मे तो विटामिन 'सी' सब चीजो से अधिक मात्रा मे पाया जाता है। इसमे एक विशेषता और है कि आंवले के सूखने पर भी यह विटामिन नष्ट नही होता। इस विटामिन की कमी से शरीर की धमनियो नसो के बीच वाली कोशिकाऐं कमजोर पड़ जाती है और इनमे से खून बाहर निकलने लगता है। इसके लक्षण दातो के मसूडो मे अच्छी तरह दिखाई देते है। जब इस विटामिन की कमी होती है तो मसूड़े सूख जाते है। दबाने पर या वैसे भी उनसे खून निकलता रहता है। इसकी कमी की वजह से घावो को ठीक होने मे भी ज्यादा समय लगता है। इस विटामिन की कमी से होने वाली बीमारी स्कर्बी के बारे में सबसे पहिले जेम्सलिण्ड ने १७५७ ई० मे लिखा था। कैप्टन कुक ने यह बताया था कि जहाजो बेडे के कमचारियों को यह बीमारी हरी सब्जी व फलो को देने से ठीक हो सकती है। इसकी वजह से ही अनेक वर्षो तक ब्रिटिश नौ सैना मे जहाजो पर नीबू का रखना आवश्यक माना जाता था। अब तो यह विटामिन भी कृत्रिम रीति से बनाया जा चुका है। इसकी ५०–७५ मिलिग्राम की मात्रा एक स्वास्थ्य व वयस्क को आवश्यक होती है।

विटामिन डी '—यह वसा में घुलनशील है। यह शरीर की अन्न नाली मे कैल्शियम के शोषण तथा हड्डियो मे कैल्शियम के एकत्रित होने मे बहुत आवश्यक है। दातो व हड्डियो की मजबूती के लिए इसके व कैल्शियम का होना बहुत आवश्यक होता है। इसकी कमी से बच्चो मे Rickets व वयस्को मे Oslomalacia की बीमारी हो जाती है। दोनो मे खास बात यह होती है कि कैल्शियम की मात्रा कम होने से हड्डिया कमजोर हो जाती है और वजन से मुड़ जाती है। यह प्रकृति मे

में, कोड मछली के तेल, मक्खन, अण्डे की जर्दी (पीला भाग) दूध व हरी सब्जी इत्यादि में अधिक पाया जाता है। यह विटामिन शरीर मे सूर्य की रश्मियो की Utraviolet किरणो से शरीर में आता है। भारतवर्ष मे इसकी कमी बहुत पाई जाती है। बच्चो मे दूध व मक्खन की कमी से, औरतो मे खास कर पर्दे मे रहने वाली स्त्रियों मे दूसरे उन तक सूर्य की रोशनी न पहुचने के कारण यह विटामिन कम हो जाता है। तीसरे, प्रसव काल में तथा इसके पश्चात् दूध पिलाने के समय भी इस विटामिन की ज्यादा आवश्यकता रहती है, क्योकि यह दूध मे बच्चे की हड्डियों को मजबूत बनाने में मा के शरीर मे से आता है। इस तरह औरतो मे Ostomalacia की बीमारी काफी पाई जाती है। बच्चो व वयस्को के लिए इसकी 400–1000 युनिट मात्रा की दैनिक आवश्यकता पड़ती है।

विटामिन–ई :—यह भी वसा मे घुलनशील है। यह प्रकाश, गर्मी व हवा से नष्ट नही होता। इसकी कमी से निम्न श्रेणी के जानवरो की मादाओं में भ्रूण की मृत्यु व नर–पशुओ में नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य मे भी शायद इसका ऐसा ही असर होता है। यह गेहू तथा चनो मे, हरे पत्ते वाले शाको मे व थोड़ा बहुत वनस्पति तेल मे पाया जाता है।

विटामिन-के :—यह खून के ठीक तौर से जमने के लिए बहुत आवश्यक होता है। जब कभी कही चोट लगती है तो थोड़ी देर बाद चोट की जगह पर खून जम जाता है। इस खून के जमने की क्रिया मे विटामिन 'के' का बहुत बड़ा हाथ होता है। यह प्रोथीरोम्बिन (Prothorambin) बनाने मे मदद करता है जो खून के जमने के लिए बहुत आवश्यक होती है। यह हरे पत्ते वाले शाकों मे जैसे पात्तक गोभी, व गाजर, फूल गोभी, सोयाबीन, जई इत्यादि मे काफी मात्रा मे पाया जाता है। इसकी कमी से शरीर मे मामूली चोट पर काफी खून निकलने का डर रहता है।

पानी :—भोजन का छठा आवश्यक अग पानी है। पानी शरीर मे बहुत काम आता है। कारण :—

(१) यह भोजन के शोषण मे काम आता है, क्योकि भोजन द्रव के रूप मे ही आंतो मे से जा सकता है।

(२) यह शरीर के जीव–कोषो का आवश्यक अग होता है। शरीर मे करीब 65–70 प्रतिशत तो पानी का ही भाग है।

(३) यह शरीर के जीव-कोषो तक पोषण पदार्थो को पहुंचाता है।

(४) यह शरीर मे से बेकार व हानिकारक चीजो को गुर्दो व चमड़े के द्वारा बाहर निकालने मे मदद करता है।

(५) यह शरीर का तापक्रम एक सा बनाये रखने मे मदद करता है।

ऊपर यह बताया गया है कि भोजन मे मुख्य मुख्य तत्व कौन से है और शरीर मे उनकी आवश्यकता क्यो रहती है। अब यह भी जानना बडा आवश्यक हो जाता है कि इन भोजन तत्वो की कितनी मात्रा प्रतिदिन के भोजन मे होनी चाहिये और वह किस रूप मे होनी चाहिये जिससे कि भोजन सतुलित (Balanced) हो। संतुलित भोजन (Balanced diet) वह है जिसमे—(1) भोजन के आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा मे हो जिससे शरीर की वृद्धि तथा सुरक्षा के लिए आवश्यक मात्रा मे शक्ति (कैलोरी) प्राप्त हो सके; (2) भोजन–पदार्थ समुचित अनुपात मे हो। वसा तथा प्रोटीन दोनो प्रकार की, पशु–प्राप्त तथा वनस्पति–प्राप्त हो। मिटामिन तथा खनिज–लवण पर्याप्त मात्रा मे होने चाहिये। (3) भोजन स्वादिष्ट तथा समाज, परिवार, रीति-रिवाजो तथा रुचि के अनुकूल हो। (4) अन्त मे यह समुचित आमद पर (Adeguate Supply) पर आधारित हो।

इसके पूर्व कि सतुलित आहार की गहराई मे जाया जाय, यह जानना आवश्यक है कि आहार शक्ति क्या है ?

कैलोरी :—यह शब्द जब भी भोजन व पोषण–पदार्थों के बारे मे प्रयोग मे लाया जाता है तो वह Food Calories ही होता है। शरीर मे यह शक्ति शरीर के मुख्य अवयवों के काम के लिये तथा मनुष्य की शारीरिक क्रियाशीलता के लिये चाहिये। यह सम्पूर्ण शक्ति भोजन से ही मिलती है। अलग-अलग पोषण-पदार्थ अलग-अलग मात्रा मे शक्ति पैदा कर सकते है। जैसे:—

1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स से 4 कैलोरी प्राप्त होती है।

1 ग्राम वसा से 9 कैलोरी प्राप्त होती है तथा 1 ग्राम प्रोटीन से 4 कैलोरी। बिटामिन तथा खनिज शरीर मे कोई शक्ति पैदा करने के काम मे नही आते। प्रतिदिन कमसे कम 2600 कैलोरी पहुचाने वाला भोजन एक स्वस्थ्य औसत मनुष्य के लिये चाहिये, इस शक्ति की मात्रा की आवश्यकता अवस्था तथा व्यक्ति पर निर्भर रहती है। स्त्रियो को साधारणतया पुरुषो से कम कैलोरी (2100) की आवश्यकता होती है। साथ ही साथ दूध पिलाने वाली तथा गर्भवती स्त्रियो को तो 2600 से भी ज्यादा कैलोरी की आवश्यकता होती है। इसी तरह बच्चो को वयस्को से कम कैलोरी चाहिये। यह शारीरिक श्रम पर निर्भर है। यह नीचे लिखी तालिका स्पष्ट करती है किस प्रकार का काम करने पर कितनी कैलोरी की और आवश्यकता पड़ती है।

कार्य	कैलोरी की आवश्यकता	कार्य के उदाहरण
हल्का	0—75	क्लर्क
मध्यम	75—150 तक	खेतो के कार्य
भारी	150—300 तक	आरी चलाना
बहुत भारी·	300 से ऊपर	खोदना या फावड़ा चलाना

पर्याप्त कैलोरी के अलावा भोजन-तत्वो का उचित अनुपात मे होना भी आवश्यक है; जैसे प्रोटीन का भोजन मे एक वयस्क के लिए 1 ग्राम प्रति किलोग्राम होना आवश्यक समझा जाता है। बच्चो के लिये 2—3½ ग्राम प्रति किलोग्राम तक क्योंकि इसमे वह वृद्धि व विकास में भी काम आती है। इसी तरह गर्भवती स्त्रियों मे भी इसकी ज्यादा आवश्यकता रहती है। और जैसा कि पहले बताया जा चुका है भोजन मे जहां तक हो सके 50% प्रोटीन तो पशु-प्राप्त होनी चाहिये। इसी तरह कार्बोहाइड्रेट यद्यपि प्रर्याप्त मात्रा में होनी चाहिये तथापि इसकी मात्रा कोई निर्धारित नही है; क्योंकि यह ज्यादातर शक्ति उत्पादन के काम मे आती है। फिर भी अक्सर 50-60% कैलोरी भोजन मे कार्बोहाइड्रेट्स से ही आनी चाहिये। यह काफी हद तक इस पर निर्भर है कि व्यक्ति विशेष कौनसी सामाजिक श्रेणी में है। निम्नवर्ग वालों मे 70-80% कैलोरी कार्बोहाड्रेट्स से ही प्राप्त होती है। क्योंकि प्रोटीन तथा वसा कार्बोहाइड्रेट्स से काफी महगी मिलती है। वसा का भोजन मे होना तो आवश्यक हैं ही; पर इसकी भी कोई निर्धारित मात्रा नही होती। पर कुछ आवश्यक वसा युक्त अम्लो का भोजन मे होना आवश्यक होता है। इनकी प्राप्ति मक्खन व तेल जैसे पदार्थो से होती है। साधारणतया भोजन के विषय मे जब कैलोरी की मात्रा निश्चित की जाती है तो भार के हिसाब से प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाड्रेट्स 1 : 1 : 6 के अनुपात मे होते है।

एक भारतीय के लिये संतुलित भोजन निम्न प्रकार होना चाहिये.—

प्रोटीन	75	ग्राम
वसा	74	,,
कार्बोहाइड्रेट्स	406	,,
कैल्शियम	1.02	,,
फॉसफोरस	1.44	,,
लोहा	14.00	मिली ग्राम
विटामिन –ए	500	अन्तर्राष्ट्रीय युनिट
विटामिन –डी	400	,,
विटामिन –सी	50	मिली ग्राम

पिछले पृष्ठ पर बताई गई मात्रा के अनुसार एक भारतीय ग्रामीण के भोजन मे निम्नलिखित चीजों की बतायी गई मात्रा मे होना आवश्यक रहता है :—

ग्रामीण के लिये संतुलित भोजन

मिश्रित पदार्थ

चावल	8 औंस
आटा	6 "
दाल	3 "
घी या तेल	2 "
मछली, गोश्त या अण्डे	3 "
दही, दूध	10 "
पत्तियो का शाक	4 "
अन्य शाक	3 "
जड़ें	3 "
फल	2 "
शर्करा या गुड़	2 "

नमक इत्यादि स्वाद के अनुसार।

पेय-पदार्थ—यह वे पदार्थ होते है जो भोजन को रुचि के साथ खाने मे सहायता करते है। यह पाचन शक्ति को भी जागृत करते है। यह निम्न तीन प्रकार के होते है :—

(1) जल (वायु युक्त)
(2) अकिण्वित पेय:—जैसे चाय, कहवा इत्यादि।
(3) किण्वित पेय.—मद्य।

खनिज जल:—खनिज जल प्राकृतिक व कृत्रिम दोनों तरह का होता है। प्राकृतिक रूप मे यह कई तरह के झरनो मे मिलता है और कृत्रिम पानी में खनिज लवण मिलाकर भी बनाया जाता है। इसमे जब Co_2 गैस भी भरदी जाती है तब यह वायुयुक्त खनिज जल हो जाता है। यह कई नामो से मिलते हैं, जैसे सोडा, लैमन इत्यादि। ये भूख को बढ़ाते है व पाचन मे मदद करते है।

अकिण्वित पेय:—चाय—यह तो चाय के पौधे की सुखाई हुई पत्तियां होती है। इनमे मुख्य कीड़ा जो स्नायुओ को उत्तेजित करती है, वह है कैफिन। वह इसमे करीब 6% होती है। इसके अलावा इसमे वाष्पशील तेल (Tanmic Acid) होते हैं जो चाय को एक अपने ढंग की ही लपट देते हैं। पर ज्यादा देर तक पत्तियो को

उबालने पर इसमे से Tanmic Acid भी पानी मे आ जाती है, वह पाचन शक्ति के लिये हानिकारक होती है। उबलते हुये पानी मे पत्तियो को डालकर थोड़ी देर बाद काम मे लेने से केवल Caffeine ही पानी मे घुलती है। अधिक चाय पीने से कई बीमारियां उत्पन्न हो जाती है, जिनमे से नीद का न आना, नाड़ी की गति बढ़ जाना व कम जोरी, हाथों का कांपना आदि तकलीफे प्रमुख है। यह पाचन शक्ति के लिये भी हानिकारक है।

कहवाः—यह कहवा के बीज को भून कर बनाया जाता है। बीजो को तब तक भूना जाता है जब तक वह काले–भूरे से नही हो जाते फिर, पीस लिये जाते है इसमे भी मुख्य उत्तेजक पदार्थ कैफिन ही होती है। यह कहवे का चूर्ण मे 1–2% के लगभग होती है। इसके अलावा इसमे भी टेनिक ऐसिड व Oil इत्यादि होते है। इसके भी ज्यादा मात्रा मे पीने से चाय जैसे ही लक्षण पैदा हो जाते है।

कोकोआः—यह कोकोआ के बीजो को भून कर व पीस कर बनाई जाती है। यह उत्तेजक होने के साथ ही साथ पोषण पदार्थ भी है। इससे ही बच्चो को पसन्द आने वाली चोकलेट बनाई जाती है।

किण्वित पेय (मद्य इत्यादि)—यह वे पदार्थ होते है जो भिन्न-भिन्न प्रकार की शर्करा को किण्वित करके बनाये जाते है। इनमे अल्कोहल की मात्रा 3–50 प्रतिशत तक हो सकती है। वह जो Malt के किण्वन से बनाई जाती है व जिसमे अल्कोहल 3–7% होती है, बियर कहलाती है। शराब जिनमे अल्कोहल 40–60 % होती है, वह Spirit कहलाती है। यह कई प्रकार की होती है। जैसे ह्विस्की जो-जौ तथा मौसम्मे से बनाई जाती है, रम् (Rum) जो गन्नो के राब से बनाई जाती है और Gin जिन जो राई व मौसम्मे से बनाई जाती है, इनके अलावा तीसरी प्रकार की शराब होती है जो मदिरा कहलाती है। इनमे 15 % से ज्यादा अल्कोहल नही होती। उनमे शैम्पेन, शेरी तथा बरन्डी इत्यादि प्रसिद्ध है।

शराब यद्यपि भोजन नही है, फिर भी कुछ बीमारियो मे उत्तेजक पदार्थ की तरह काम मे ली जाती है। चू कि इसमे अल्कोहल होती है इसलिये यह शक्ति भी देती है, लेकिन इसके मादक प्रभाव से काम करने की शक्ति कम हो जाती है। इसका आमाशय मे से शोषण हो जाता है। थोड़ी मात्रा में उत्तेजना देने का काम करती है। पर इसमे खास यह दिक्कत होती है कि इसकी आदत पड़ने का डर रहता है। इसके अधिक सेवन से जीवन काल छोटा हो जाता है। यह पाचन शक्ति को कमजोर कर देती है व अनेक बीमारियां पैदा कर देती है। इसको नियमित पीने वाले को उच्च रक्त चाप तथा हृदय रोग उत्पन्न हो जाते है। इनके अलावा इसका

समाज, कुटुम्ब व बच्चों पर भी काफी बुरा असर पडता है। यह अनियमिता, चौरी, डाके, और अवैध कार्य को बढाने मे यह मदद करती है। इसीलिये त्याज्य है।

अचेतक जड़ी बूटियां.—शताब्दियों से व्यक्ति विशेष कई एक तरह की औषधियों तथा जडी बूटियो को लेते रहे है जिनसे उनको कुछ उत्तेजना और खुशी मिले। यह चीजें पोषण के लिये नही वरन् केवल शारीरिक उत्तेजना के लिये ही ली जाती है। इनमे एक और खास बात होती है कि 'यह आदत डालने वाले भी होते हैं। इनमे से खास जो अपने यहां काम ली जाती है—(1) अफीम या पोस्त के दाने (2) भांग और (3) कोकीन।

इनकी आदत तो सारे संसार में ही पाई जाती है। इसको आरम्भ करने के कई कारण होते हैं। कुछ तो केवल उत्सुकतावश चखने के लिये लेते है, कुछ मस्तिष्क पर खुशी का प्रभाव लाने के लिये, कुछ किसी प्रकार के दीर्घकालीन शारीरिक तथा मानसिक दर्द को दूर करने के लिये भी इनका प्रयोग करते है। इन दवाओ का असर मादक या उत्तेजक चाहे वह कैसा भी हो पर एक खास बात होती है कि इन्हे लेने वाले को एक प्रकार का आराम व आनन्द अवश्य पहुचता है। धीरे-धीरे इन दवाइयो का उस मात्रा मे जो शुरु की जाती है कोई असर नही रहता और इसलिये उनको उसकी मात्रा बढानी पडती है। इस प्रकार रोजाना लेने की आदत पड़ जाती है। फिर इनके रोजमर्रा के लेने से शरीर पर बुरा असर पडता है और साथ ही साथ व्यक्ति का नैतिक पतन भी हो जाता है। भारत मे इनका प्रयोग प्राचीन समय से चला आ रहा है। आर्यो के समय मे सोमरस 9 शताब्दी से अफीम, गाजा, भग इत्यादि अधिकतर अच्छे घराने के लोग पीते थे। यह तो अभी कुछ शताब्दियो से इन चीजो को काम मे लाने पर रोक लगाई गई है। अब तो अनेक राज्यो मे इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। कही पर पूर्णतया बन्द हैं, कही मात्रा निश्चित करदी गई है कि कोई व्यक्ति इस निश्चित मात्रा से अधिक नही खरीद सकेगा।

अफीम:—यह पोस्त के अधपके डोडियो को काटने पर जो दूध निकलता है उसको गाढ़ा करके बनाया जाता है। यह या तो गोली के रूप मे या पानी मे घोलकर लिया जाता है। कई जगह खास तौर पर चीन मे तो यह पीया भी जाता है। भारत मे पीने वालो को संख्या तो बहुत कम हो गई है, फिर भी असख्य अफीमची भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे पाये ही जाते है। इसकी 180 से 500 ग्रेन की मात्रा पक्के अफीमची ले सकते है जब कि दवा के रूपमे इसकी मात्रा 1 या 2 ग्रेन ही है।

भारत मे बच्चो को भी अफीम देने की प्रथा बहुत पुरानी है। यह प्रथा मजदूर वर्ग मे अधिक है, क्योकि माताये अपने बच्चो को शांत करने को उसका प्रयोग करती है। इससे बच्चो की मानसिक व शारीरिक शक्तियो का ह्रास होता है। बच्चे कई बीमारियों के शिकार भी हो जाते है।

अफीम मे मार्फिया की प्रमुख मात्रा होती है। भारत में भी अब पाश्चात्य देशो की तरह मार्फिया का प्रयोग बढता जा रहा है, पहिले यह केवल खाया ही जाता था पर अब तो यह इजेक्शन के रूप मे भी दिया जाता है। इसके हानिकारक प्रभाव अफीम से कही ज्यादा होते है। यह आदत डालने के अलावा, ज्यादा दिनों तक लेने पर मानसिक, शारीरिक व नैतिक पतन का भी उत्तरदाई होता है।

इसका खाना व पीना अब तो विधान से बन्द कर दिया गया है।

भांग: — इसका पौधा भारतवर्ष के उत्तर व उत्तर-पूर्वी भाग मे काफी पाया जाता है। यह निम्न तीन विभिन्न रूप मे ली जाती है :—

(i) भांग (ii) चरस (iii) गांजा

(iv) माजूम—मिठाई के रूप मे ऊपर दी गई किसी भी चीज से बनी।

भांग का प्रयोग उत्तर प्रदेश व पूर्वी प्रांतो मे काफी किया जाता है। इसके लेने के बाद दो अवस्थाये होती है; उत्तेजना की अवस्था और अवसाद की अवस्था। इसमे व्यक्ति यह भूल जाते है कि वे कहा है और वे क्या कर रहे है? उनको समय का भी कोई ख्याल नही रहता। यह भी अफीम की तरह शारीरिक, मानसिक, व नैतिक पतन करता है पर अफीम से कम। ज्यादा समय तक लेते रहने पर पागल होने का भी डर रहता है। भग को अधिकतर मिठे दूध के साथ या कोरी भी ली जाती है। गाजा व चरस तो चिलम में पी जाती है। इसका असर जल्दी व ज्यादा होता है। यह चोर, डाकू, लूटेरे लोग बहुत काम मे लेते है। रेल गाड़ियो मे मुसाफिरों को पिला कर उनका माल लूट लेते है।

कोकीन—पहिले दक्षिण मे इसके पत्तो को खाया जाता था और इसमे जीभ सुन्न हो जाती थी। यह वहा पर थकान व कमजोरी को दूर करने के काम मे लिया जाता है। कोकीन ज्यादातर पान सुपारी के साथ साधारण उत्तेजना के लिये ली जाती है। यह यदि चमड़ी के कटे हुये भाग पर व श्लेषम्म (Mucous Membrance) पर लगा दिया जाता है तो स्थानीय अचेतक (Local

Anasthesia) का काम करता है। इसके खाने पर भी अन्य मादक पदार्थों की सी ही अनुभूति होती है, वही उत्तेजना-कल्पना और अवसाद। अधिक मात्रा में लेने से इसके कारण मृत्यु-विशेषकर हृदयगति के रुक जाने से हो जाती है। कोकीन खाने वालों में एक खास लक्षण उत्पन्न हो जाता है कि वह चमड़ी में कीड़ों का सा चलना व मिट्टी सी रड़कती है। इससे भी नैतिक, मानसिक व शारीरिक पतन होने लगता है।

दशम् श्रेणी के लिए

पहला अध्याय

जीव-जन्तुओं से हमारा सम्बन्ध

आदिकाल से ही मनुष्य का सम्बन्ध वनस्पति एवं जन्तुओं से रहा है। इनमें से बहुत से जीव जन्तुओं एंव पौधे मनुष्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुए है और अनेक लाभदायक। बैक्टीरिया या क्षकाणु नामक पौधे और अनेक कीटाणु मनुष्य मे अनेकानेक रोग उत्पन्न करते है जिनमे से छूत के विभिन्न रोग क्षय, कोढ़, प्लेग, कुकुर खांसी आदि मुख्य है। कुछ पौधे जो कि फफूंदी कक्षा के होते है त्वचा के रोग और बालो को झाड़ने वाला रोग आदि उत्पन्न कर देते है। फंफूदी श्रेणी के अनेक पौधे दूसरे पौधो के रोग उत्पन्न करते है जिससे हमारे भोजन और दूसरे उपयोगी पौधों पर प्रभाव पड़ता है उदाहरण के लिये आलू का काला रोग, सेव, नाशपाती आदि पेड़ों की पत्तियों एंव फलो पर लाल लाल धब्बे और अनाज के पौधो की पत्तियों पर काले अथवा लाल धब्बे पौधों का ही प्रभाव है। इसी प्रकार अनेक जन्तु भी हमारे लिए हानिकारक सिद्ध हुए है जो कि हमारे शरीर में प्रवेश कर अनेक रोग उत्पन्न कर देते है। इस प्रकार से जन्तुओ के द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों मलेरिया, प्लेग, पेचिस, बाला, हैजा, क्षय, पोहुज्वर आदि मुख्य है। कुछ जन्तु मनुष्य के शत्रु होते है और उन्हें मार देते है। इस तरह के शत्रुओं मे शेर, चीता, साप, बिच्छु मगरमच्छ आदि मुख्य हैं।

मनुष्य ने जीव जन्तु एवं पौधों के सम्पर्क मे रहने के कारण ऐसे उपाय ढूंढ निकाले है जिनसे वह इन हानिकारक जीव जन्तु और पौधों से अपनी रक्षा करने मे किसी सीमा तक समर्थ हो चुका हैं। यह बात नही है कि जीव जन्तु और पौधे केवल हानि ही पहुचाते हैं; वे मनुष्य को लाभ भी पहुचाते है। वास्तव में दूसरे पौधों और जन्तुओं के बिना मनुष्य का जीवित रहना सम्भव ही नही है। मनुष्य को लाभ पहुंचाने वाले जीव जन्तु और पौधो का अध्ययन यदि उनके योग्यता के अनुसार किया जाये तो अधिक सरल होगा।

1. **भोजन व्यवस्था**—मनुष्य का भोजन पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं से मिलता है। पौधे खाद से और जल से चर्बी (Fat) प्रोटीन (Protein) और अन्य पदार्थ बनाते है, जो मनुष्य को फल और बीज के रूप मे मिलते है। बहुत से पौधों की जड़ें खाने के काम आती हैं। जैसे गाजर, मूली, शलजम आदि। बहुत से पत्तो का साग बनता है, जैसे पालक, मेथी आदि। पौधो द्वारा मनुष्य को अनाज

प्राप्त होता है जिसमे स्टार्च (Starch) अधिक मात्रा मे प्राप्त होती है। उदाहरण के लिये गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि। गेहूँ, चावल, बाजरा भारतवर्ष के विभिन्न स्थानो का प्रमुख भोजन है। पौधे के बीज दाल के रूप में काम आते है, इनमे प्रोटीन की प्रधानता होती है। जैसे मूंग, अरहर, मसूर, चना, उरद। इनके अतिरिक्त तरकारियो के रूप मे भी पौधा हमे भोजन देता है। उदाहरण के लिए लौकी, टमाटर, आलू, शकरकन्द आदि तरकारियो से हमे विटामिन्स तथा उपयोगी लवण मिलते है। फल भी पौधे द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते है। जैसे आम, जामुन केला, सेव, अनार, सन्तरा आदि। इन प्रमुख फलों से मनुष्य को कई प्रकार के विटामिन्स तथा लवण मिलते है जो कि हमारे लिए बहुत गुणकारी होते है। कुछ फलों मे प्रोटीन और चर्बी की मात्रा अधिक होती है और वे फल मेवा कहलाते हैं। उदाहरण के लिए बादाम, अखरोट, नारियल, पिस्ता आदि।

तेल जो कि न केवल भोजन बनाने के ही काम मे लाया जाता है, बल्कि मनुष्य के बहुत से दूसरे कामो मे भी उपयोगी होता है। सरसो, तिल्ली नारियल आदि से तेल निकाला जाता है। सौंफ धनिया, अदरक, मिरच, जीरा, दालचीनी, लौग, इलायची आदि मसाले भोजन को स्वादिष्ट बनाते है, जो पाचन क्रिया मे भी सहायक होते हैं। यह सब पौधो की ही देन है।

भोजन के उपयोग मे आने वाला माँस भी मनुष्य को प्रिय होता है। इसमे बकरा, खरगोश, तीतर, हिरन आदि हैं। इनके अतिरिक्त मछलियां भी अनेक जातियो का प्रधान भोजन है। बहुत से स्थानों पर मेढक, केकड़े, घोंघे आदि जानवरों का भोजन भी स्वादिष्ट समझा जाता है।

गाय, भैंस, बकरी आदि जन्तुओं से उत्पन्न दूध हमारा भोजनीय पदार्थ है। दूध अनेक रूप से मनुष्य के द्वारा ग्रहण किया जाता है। कुछ जन्तुओं के अंडे खाये जाते है, जिनमे मुर्गी के अण्डे विशेष उल्लेखनीय हैं।

ईंधन की व्यवस्था :—जीव जन्तुओं और पेड़ पौधों से न केवल हमें भोजन ही प्राप्त होता है बल्कि पेड के तने से हमे लकडी भी प्राप्त होती है जो कि जलाने के काम आती हैं। जलाने की लकडियों मे इमली, बबूल, नीम आदि है। इन लकडियो से कोयला भी बनता है। कोयलो की खानों से प्राप्त कोयला भी इन्ही लकड़ियो का परिणाम है। मिट्टी का तेल भी वृक्षों के विच्छेदन से बनता है। बहुत से जन्तुओं की चर्बी भी जलाने के काम मे ली जाती है।

वस्त्र व्यवस्था :—वस्त्र ऊन व रुई से बनाते हैं। ऊन जानवरो के बालो से प्राप्त होता है व रुई पौधो से उत्पन्न होती है। भारतवर्ष मे रुई जूट वस्त्र प्रदान

करने वाले पौधे भी अधिकतर हैं। जूट रस्सियां, पर्दे, बोरे बनाने के काम आती हैं। जन्तुओं से केवल ऊन ही नहीं बल्कि रेशम भी प्राप्त होती है। रेशम, रेशम के कीडे से प्राप्त होती है, जो कि उसके मुंह के थूक से बने धागे के रूप मे उसके चारों ओर लिपटा रहता है। रेशम का कीड़ा (Silk-Worm) एक कोया (Coooo) बनाता है जिसे उबाल कर रेशों के रूप मे प्राप्त किया जाता है। चमड़ा जो कि जानवरों की खालों से प्राप्त होता है, वस्त्र की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त इनसे जूतियां, चमडे के बक्स तथा अन्य उपयोगी पदार्थ भी बनाये जाते हैं। हिरन, शेर आदि की खालें आसन बनाने और घर की सजावट के उपयोग मे भी लाई जाती हैं।

इमारती लकड़ी :— जलाने और कोयला बनाने के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार का फर्नीचर बनाने के काम मे लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि बबूल सागवान, चीड, देवदार, शीशम आदि की लकड़ियाँ प्राप्त कर उनसे नाव, जहाज रेलगाडी के डिब्बे, मोटर बस की बाड़ी बैलगाड़ियाँ, आदि बनाई जाती हैं।

औषधियां :—यूनानी वैद्य तथा हकीमों द्वारा जड़ें, फूल, पत्तियें, छाले आदि औषधियों के रूप में ली जाती हैं। उदाहरण के लिये खांसी के लिये बनफ्शा मस्तिष्क के कमजोर हो जाने पर ब्राह्मी आंवला, मलेरिया में तुलसी की पत्तियां, जुकाम मे युक्लिप्टिस की पत्तियाँ तथा और कई प्रकार के पौधे किसी न किसी रूप में दवाइयों के काम मे आते है।

एलौपैथिक दवाइयों मे भी पेड़ पौधों का सार निकाल कर काम में लिया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि हकीम और वैद्य पेड़ और बीज को पूर्णरूप से दवाई के उपयोग में लेते हैं जबकि एलोपैथिक उसका मूल तत्व निकाल कर उस तत्व का ही उपयोग करते है।

मादक पदार्थ :—मादक पदार्थ में अफीम, चाय, कॉफी, मदिरा आदि उल्लेखनीय है। इनमें से कुछ ऐसी हैं जिनका यदि न्यून मात्रा में उपयोग किया जाये तो कोई हानि नही होती, बल्कि दिन भर के काम काज से उत्पन्न हुई थकावट तक दूर हो जाती है और मन प्रफुल्लित हो उठता है। इसके विपरीत तम्बाकू, अफीम, शराब आदि शरीर को चेतनाहीन बनाते हैं। मदिरा के प्रयोग से तो हृदय, मस्तिष्क आदि शरीर के सभी आवश्यक अग कमजोर हो जाते है और यह मस्तिष्क को निराशा की ओर ले जाते है। इसके अतिरिक्त अनेक जीवों के शरीर से उत्पन्न रस इन्जेक्शन का काम देते हैं। कॉड लीवर ऑयल तपेदिक रोग में बड़ा उपयोगी है। खेती मे भी कई जन्तु लाभ पहुंचाते है।

दूसरा अध्याय

साधारण-पौधों का निरीक्षण

जब हम बनस्पति पर दृष्टिपात करते है, तो हमे प्रकृति मे भिन्न-भिन्न पेड़-पौधे देखने को मिलते हैं। कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनका आकार रूप रग, एवं माप अन्य पौधों से बहुत ही भिन्न है। कुछ आपस में बहुत ही समान है। इतना ही नही कुछ पौधे तो पेड़ के रूप में तो कुछ बहुत ही छोटे, कुछ झाड़ी आदि के रूप मे देखने को मिलते है। इस प्रकार इन सब के कुछ विशेष कारण है। जो पौधे एक पेड़ के रूप मे होते है, उनका तना इतना मजबूत होता है कि वह पेड को भूमि मे सीधा खड़ा रखता है, लेकिन कुछ पौधो मे यह इतना कमजोर होता है कि उनको सीधा तो क्या ऊपर उठाये रखने के लिए अन्य सहारो की आवश्यकता पड़ती है। इनमे बहुत से ऐसे फल एव सब्जी सम्मिलित हैं, जो हमेशा हमारे दैनिक कार्य में सहायक है, परन्तु उपरोक्त सभी बाते उनमे भी देखने को मिलती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पेड पौधो की आदतें भिन्न-भिन्न है। अगर हम इसके विषय मे अध्ययन करें तो साधारण रूप से निम्नलिखित पेड़ पौधे इस वर्ग में मुख्य हैः—

1. शाक (Herbs).—यह बहुत ही छोटे एव अल्पकालीन जीवन व्यतीत करने वाले पौधे है। इनका तना बहुत ही मुलायम एव हरा होता है। आयु के अनुसार यह तीन भागो मे बाँटे जा सकते हैं:—(a) वार्षिक—इस प्रकार के पौधे अपना जीवन एक निश्चित मौसम मे व्यतीत करके नष्ट हो जाते है। यह एक साल से अधिक नही उगते हैं, ना फल-फूल आदि ही देते हैं। इनके मुख्य उदाहरण—गेहू चना, जौ, चावल, सरसों आदि हैं। गेहू जाड़े के शुरू मे बोया जाता है तथा जाडा खत्म होने पर इनकी फसल काटली जाती है। (b) द्विवार्षिक—इस वर्ग के पौधे की आयु लगभग दो साल तक होती है। पहले साल इनका तना तथा दूसरे साल फूल एव फल लगते है। इनका उदाहरण:—गाजर मूली एव शलगम आदि हैं। (c) बहुवार्षिक—यह शाकीय पौधे होते है जो कई साल तक जीवित रहते हैं। उदाहरण—हल्दी, अदरख, केला, जमीकन्द, आलू इत्यादि। इनमे बहुत से पौधो का तना भूमिगत होता है जिस पर हर साल नई पत्तिया आती हैं तथा पौधा हरा हो जाता है। जैसे अदरख, आलू, हल्दी आदि।

2. झाड़ी (Shrubs):—यह साधारण झाड़ियाँ होती है। इनका तना कुछ कड़ा, लेकिन छोटा होता है। इनके तने से बहुशाखायें निकलती है। यह

शाखायें तने के पास से उत्पन्न होती है तथा एक विशाल छोटे पेड़ का रूप धारण कर लेता है। उदाहरण.—बेरी, फोग आदि।

3. वृक्ष (Tree):—इनका मुख्य तना बहुत ही मोटा व मजबूत होता है। यह शाखाओ मे विभाजित रहता है, मुख्य तने तथा शाखाओ की सतह छाल से ढकी रहती है। सभी वृक्ष आपस में समान नही होते है। पेड़ो की आयु तीन-तीन चार-चार हजार वर्ष की होती है। कलकत्ते के बोटोनिकल गार्डन मे एक बहुत पुराना बरगद का पेड है जिसमे से करीब 250 स्कम्भ जडे शाखाओ मे से निकल कर जमीन के अन्दर गई है तथा छोटी तो करीब 300 से कही अधिक है। अमेरीका मे कुछ ऐसे पेड है जिनकी आयु 300 वर्ष से अधिक है और जो 280 फीट ऊंचे तथा चौडाई मे इतने अधिक होते है कि इनमे से सुरंग काट कर मोटर व सवारी आदि के आने जाने का मार्ग बन गया है।

आरोही पौधे उपरोहिया या एपीफाइट पौधें, परजीवी पौधे, मृतोपजीवी पौधे सहजीवी पौधें व मांसाहारी पौधे

आरोही-पौधे (Climbing plants):—कुछ पौधे अपने विशेष अंगो के द्वारा ऊपर चढ़ने में सहायक होते है, क्योंकि इनके तने बहुत ही पतले एवं कमजोर होते है। ये किसी पास वाले पेड पर या किसी और अन्य साधन द्वारा चढते है, उदाहरण:- अमरबेल, पान, मटर आदि। यह साधन इस भांति है—(a) जड़ों द्वारा चढ़ने वाले पौधे- इस प्रकार के पौधे किसी अन्य व सहायक जड़ो द्वारा जाते है। जड़े आगन्तुक जडे कहलाती है। यह एक दूसरे पेड़ व अन्य वस्तुओ से चिपक जाती है। इसके उदाहरण के लिए हम पान, अमर बेल, इत्यादि ले सकते है।

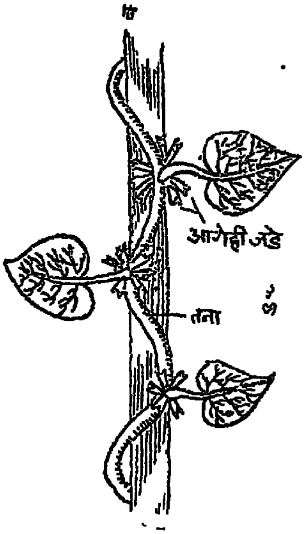

(b) आँकड़ों द्वारा (Hook climber)—इनमे विशेष प्रकार के काटेनुमा अङ्ग होते है, जिनके द्वारा दूसरे पेड़ो को सहारा मिलता है। उदाहरण—कटीली चम्पा, बाघ नखी, गुलाब इत्यादि।

गुलाब आरोही

(c) तन्तु द्वारा—कुछ आरोही पौधों मे विशेष प्रकार के तन्तु (Tendril) लगे रहते है, जिनके द्वारा पौधा पास वाले पेड़ पर चढ जाता है तथा सूर्य की रोशनी लेता है। यह गोल कुण्डलित होता है। उदाहरण—अंगूर व मटर इत्यादि।

उपरोहिया या एपीफाइट (Epiphyte)

यह वे पौधे होते है जो इन्ही पेड़ो पर उगते है, लेकिन उनसे भोज्य पदार्थ ग्रहण नही करते है। इनमे दो प्रकार की जडे होती है। एक प्रकार की जड के द्वारा पौधा किसी पेड पर अपने को जमा लेती है। दूसरी लटकने वाली जड़ होती है जिनसे पौधा हवा मे उपस्थित आक्सीजन का शोषण करता है। उदाहरण—बरगद, व नीम एव आरकिड आदि।

6. परजीवी (Parasite) पौधे.—यह ऐसे पौधे है जिनमे पर्णशाद का अभाव होता है, जिसके कारण इन्हे अपने भोजन के लिए दूसरो पौधो पर निर्भर रहना पडता है। ये जिस पेड़ से भोजन लेते है वह होस्ट कहलाता है। एपीफाइट एव पैरासाइट मे सिर्फ यही अन्तर होता है कि एपीफाइट स्वय ही अपना भोजन बनाते है, लेकिन परजीवी पौधे दूसरो पर निर्भर रहते है। इस तरह के पौधे दो प्रकार के होते है:—

(1) पूर्ण परजीवी (2) आंशिक परजीवी।

(1) पूर्ण परजीवी पौधे अपने भोजन के लिए दूसरे पौधो पर आश्रित रहते हैं। जिस पौधे पर आश्रित रहते है वह पौधा होस्ट कहलाता है। यह परजीवी पेड बारीक जडे उत्पन्न करता है जिन्हे पराश्रयी शोषक मूल कहते है। उदाहरण:— अमर बेल।

(2) आंशिक परजीवी पौधे मे कुछ थोड़ा हरे रगका पदार्थ अर्थात् पर्णशाद

होता है जो कुछ थोड़ा सा भोजन स्वय शोषण करते है और शेष भोजन के लिए होस्ट पर निर्भर रहते है। उदाहरणः—बादा।

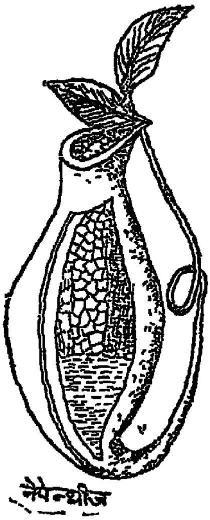

सहजीवी पौधे:—यह पौधे एक साथ एक दूसरे से बराबर लाभ उठाते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तब उन्हे सहजीवी कहते है। जैसे मटर, अरहर, तथा मूग के पौधे। इनमे एक प्रकार के जीवाणु रहते है जो पौधो से अपना भोजन प्राप्त करते रहते है। यह जीवाणु नाइट्रोजन व इसके यौगिक मे बदल कर खाद्य के रूप मे पौधो को दे देते हैं।

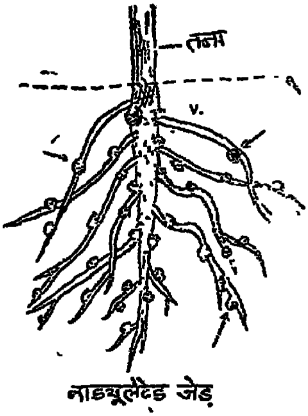

मृतोपजीवी (Saprophyte)—यह पौधे सडे गले कार्बनिक पदार्थों पर उगते है और इन्ही से अपना भोजन प्राप्त करते है। यह भोजन स्वय नही बनाते लेकिन प्रचूषण करते है ' उदाहरण'—फफूंदी।

मांसाहारी पौधे.—यह पौधे मकोडे आदि पकड कर खाते है। यह देखने मे बहुत ही सुन्दर लगते है। कीडो को पकडने के लिए इनमे विशेष प्रकार के अग होते है। इसका उदाहरण:—यूट्रीक्यू लेरिया, वीनसफ्लाई ट्रेप, तुम्बीलता या नैपेनथीफ्लाई आदि।

हम जानते है कि समस्त पौधे एक ही आधार पर बने है अतएव यदि हम किसी पौधे की रचना के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो किसी भी पौधे को लेकर उसका अध्ययन करना आवश्यक है। हम यहा पर अध्ययन की सुविधा के लिये सरसो के पौधे का वर्णन करेगे।

साधारणतया सरसो के पौधे का बीज (Seed) जाड़ा शुरू होते ही किसान लोग अपने खेतो मे बो देते है। बसंत ऋतु मे इसके पीले पीले फूल (Flower) खेतो मे लहलहाते हुए सुन्दर लगते है। यह गंधहीन होते है, जिनमे प्राय. शीघ्र ही लम्बी बीजोयुक्त फलिया लगने लग जाती है और करीब एक वर्ष तक रह कर अर्थात् गर्मी मे यह सूख कर झड जाती है।

इनके विभिन्न अङ्गों की रचना का ठीक ठीक अध्ययन करने के लिए एक फूल लगे हुये पूरे पौधे को जड सहित सावधानी से उखाडे। इसमे साधारणतया दो भाग दिखाई देगे.—

1. जड़ संस्थान—(Root-system)
2. तना संस्थान—(Shoot-system)

जड़ संस्थान—(Root-system)—पौधे का वह भाग जो पृथ्वी के अन्दर दूर तक फैला रहता है, जड सस्थान कहलाता है। इसमे क्लोरोफिल नही होता है और न ही इसमे गाँठ एव अर्त गाठ पायी जाती है।

पौधे का वह भाग जो प्रकाश से दूर, अन्धकार मे पृथ्वी के अन्दर पानी की खोज मे जाता है, वह जड (Root) कहलाता है। अधिमूल वा प्राथमिक या मुख्य जड (Primary Root) मुख्य तने (Main Stem) की सीध मे पृथ्वी के अन्दर होती है। साधारणतया उसका ऊपरी भाग मोटा होता है, एव नीचे शीर्ष की ओर क्रमश पतला होता है। जमीन के अन्दर अधिमूल (Main Root) से विभिन्न पतली पतली शाखाएँ निकलती है, जिन्हे द्वितीय जडे कहते है। यह पृथ्वी के अन्दर

अपना जाल सा बिछाए रखती है। इन द्वितीय जड़ों से तृतीया जडो भी निकलती है और यह अपना जाल पूर्ण रूप से पृथ्वी के अन्दर पौधे के स्थितिकरण के लिए फैलाए रखती है।

साधारणतया इस जड़ में निम्न भाग देखने को मिलते हैं:—

मूल टोपी–(Root cap)—प्रत्येक जड़ के शीर्ष पर एक टोपी के आकार की रचना दिखाई देती है, जिन्हे मूल टोपी कहते है। यह जड़ को क्रमश: नीचे की ओर बढ़ने पर रक्षा करती है।

वर्धि प्रदेश (Growing Region)—मूल टोपी के ठीक पीछे वर्धि प्रदेश का भाग होता है। इस वर्धि प्रदेश की कोशाएँ हमेशा बढ़ती रहती है, जिनसे जड़ भूमि के अन्दर लम्बाई मे बढ़ती है।

मूल रोम प्रवेश (Root Hair Region)—वर्धि प्रदेश मे पीछे बहुत बारीक बारीक बाल के समान रोए होते है जिन्हे मूल रोम कहते हैं। सावधानी के साथ उखाडे गये सरसो के पौधे के इस भाग के साथ बहुत मिट्टी चिपक जाती है, जो मिट्टी के कणो मे घुस कर जल का शोषण करती है।

तना संस्थान (Shoot System)—पौधे का वह भाग जो अन्धकार से दूर प्रकाश की ओर बढ़ता है अर्थात् जमीन की सतह से ऊपर रहता है, तना सस्थान कहलाता है। उसमे क्लोरोफिल पाया जाता है तथा गाठे और अर्त गांठे पायी जाती है।

तना सस्थान मे साधारणतया तीन भाग होते है—तना, पत्तियां, फल–फूल आदि। मुख्य तने का निचला भाग मोटा होता है और धीरे धीरे ऊपर शीर्ष की ओर पतला होता जाता है। यह गोल, बेलनाकार होता है जो करीब 2–3 फीट लम्बा कोमल एव हरा होता है। पर्व सन्धि पौधे के तने का वह स्थान होता है जिससे पत्ती निकलती है। एक पर्व सन्धि से एक पत्ती निकलती है और अपनी निचली वाली पत्ती की उल्टी दिशा मे होती है। इन्टर नोड या पर्व, दो पर्व सन्धि के बीच के तने के स्थान को कहते है। कक्ष पत्ती या तने के ऊपरी भाग के बीच के कोण को कहते है। प्रत्येक कक्ष मे एक शाखा होती है, जिसे कक्ष–कलिका कहते हैं। कक्ष कलिका एक अविकसित शाखा होती है, जो बढने पर एक शाखा का रूप ले लेती है। तने के ऊपरी सिरे पर जो कली होती है, उसे अग्र कलिका कहते है। इसके विकसित होने से तना लम्बाई मे बढ़ता है, कक्ष कलिया ही कहलाती है, जिसके विकास से शाखाओं का जन्म होता है।

सरसों के पौधे मे पत्तिया एक विशेष क्रम द्वारा निकलती है, जिसे कुन्तल कहते है। इसके अनुसार एक पर्व सधि से केवल एक ही पत्ती निकलती है। यदि कोई पत्ती दांई ओर निकलती है तो ऊपर वाली दूसरी पत्ती बाईं ओर निकलती है। इसकी पत्तिया अनियमित आकार एवं कीटाणुदार होती हैं। प्रत्येक पत्ती के तीन

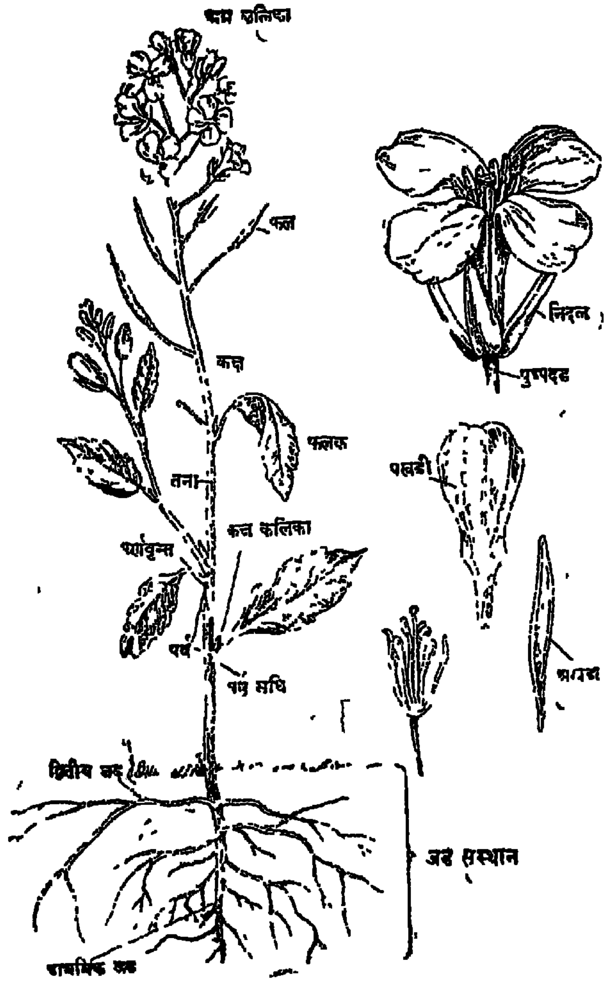

भाग होते है। पत्ती के सबसे ऊपर का पतला, चपटा, हरा, भाग लैमिना या फलक कहलाता है। दूसरा भाग पत्र वृन्तयु या पीटियोल कहलाता है जो लैमिना को ऊपर उठाये रखता है, जिससे सूर्य का प्रकाश पर्याप्त रूप से मिलता रहे। पीटियोल का निचला सिरा जो मोटा होता है और तने से जुड़ा रहता है पत्राधार कहलाता है।

तने के ऊपरी सिरे पर पीले रंग के फूलों का गुच्छा मिलता है जो पत्तियों के भाग से प्राय: विलकुल अलग होता है। तने का वह भाग जो फूल से जुड़ा रहता है, पुष्पवृक्ष कहलाता है। पुष्पवृक्ष या पुष्प दण्ड का ऊपरी सिरा स्तम्भक कहलाता है जिससे अंखडी, पंखडी, परागकेसर, गर्भ केसर जुड़े रहते हैं।

अंखडी फूल के बाहर चारो ओर होती है जो आरम्भ मे हरी होती हैं किन्तु पूर्ण फूल मिलने पर हल्के पीले रंग की हो जाती है। इस चक्र को पुट चक्री कहते हैं जिसकी संख्या चार होती है। इसके अन्दर पंखड़ी का एक घेरा होता है। पंखड़ी अंखडी की अपेक्षा बड़ी एवं रंग में गहरी पीली होती है। इनकी भी संख्या चार होती है। चारों दलपत्र पंखडी मिलकर दलचक्र बनाते है। दलचक्र के अन्दर 6 लम्बे पराग केशर होते हैं। इन सब की लम्बाई एक सी नही होती है, ये 4 बड़े और 2 छोटे होते है। परागकेसर के ऊपरी सिरे पर दो थैले के आकार की रचना होती है, जिसे परागाशय कहते हैं, इनमे परागकण रहते हैं और बंधक द्वारा आपस में जुड़े रहते है। इसके नीचे एक लम्बी और डोरे के समान सी पतली रचना को अंशु या लिंग सूत्र कहते हैं। यह परागाशय को ऊपर उठाये रखते हैं। फूल के केन्द्र में अर्थात परागकेसर के बीचों बीच गर्भ केसर स्थिर रहता है। गर्भ केसर के ऊपरी सतह को योनिछत्र कुक्षि या Stigma कहते है। इसके नीचे एक छोटी नली होती है जो कुक्षि वृन्तुयु (योनिसूत्र) या Style कहलाता है। योनिसूत्र (Style) के ठीक नीचे एक मटकी के आकार की रचना होती है जिसे अण्डाशय कहते है। अण्डाशय के भीतर अनेक छोटे–छोटे Ovules होते हैं जो आगे चलकर बीज बना लेते हैं। शुरू मे फल लम्बे, मुलायम एवं हरे होते हैं, जो पकने पर पीले पड़ जाते हैं।

तीसरा अध्याय

बीज एवं उनका अंकुरण

बीजः—बीज पेड़ का मुख्य अङ्ग है, जिससे पेड़ का जन्म होता है। पेड़ पौधे अपना जीवन बीज से ही आरम्भ करके फिर इस बीज की उत्पत्ति करके समाप्त कर देते हैं। बीज पौधे में बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। ये बाहरी सहायता जैसे वायु, पानी या मानव आदि के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचाये जाते है। जल के अतिरिक्त भूमि आवश्यक है। अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर बीज उगना शुरू कर देता है। इस बीज में उन सब अङ्गो की उपस्थिति रहती है जो कुछ समय पश्चात् एक सम्पूर्ण पेड़ का रूप धारण कर लेती हैं। पेड़ो के विषय में ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि हम पहले बीज का अध्ययन करे। अतएव बीज पेड़ का मुख्य भाग है, जिसमें पेड़ एक मोटे रूप में उपस्थित रहता है और साथ ही साथ उसमें वह भोजन भी संचय कर रखता है। एक दीवार में अपने आपको बाध कर सुप्त अवस्था में रहता है। बीज के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए बीज को कम से कम एक दिन अगर पानी में भिगो दिया जाय तो हम देखेंगे कि वह फूलकर मोटा एवं नरम हो जाता है, जिससे उसके सब अङ्गो को सुगमतापूर्वक विच्छेदन करके देखा जा सके। इसके लिये थोड़े से परिचित बीज जैसे, सेम, मटर, अरण्डी, चावल के बीज अधिक महत्वपूर्ण है।

रचना.—साधारण तौर पर अगर एक बीज की रचना के विषय में देखें तो निम्नलिखित अङ्ग देखने के लिए मिलते हैं:—

चने का बीज:—चने के सम्पूर्ण बीज को देखने पर कि उसका एक सिरा कुछ चौड़ा व दूसरा पतला व नुकीला होता है। मोटे रूप से इस बीज में चार अङ्ग दिखाई

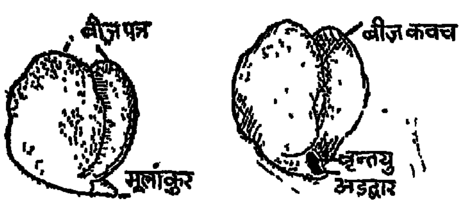

देते हैं। सबसे पहला वह अङ्ग है जो एक आवरण के रूप में बीज पर चढ़ा होता है। इसका रंग हलका भूरा व झुर्रीदार होता है, जिसे बीज कवच कहते हैं। यह बीज कवच दो भागों में विभाजित होता है। एक तो बाहर वाला मोटा व झुर्रीदार आवरण जो वाह्य कवच है दूसरा वह जो इसीके साथ चिपका रहता है, और जो बहुत ही पतला एक झिल्ली के समान होता है। इसका रंग सफेद होता है, इसे अन्त. कवच कहते हैं।

बीज के नुकीले भाग की ओर–कुछ झुका हुआ नुकीला हिस्सा होता है, जिसे वृन्तयु कहते हैं। इसी अङ्ग के द्वारा बीज, फल की गर्भाशय में जुड़ा रहता है। ठीक इसी के नीचे एक छोटासा छिद्र दिखाई देता है जिसे अण्डद्वार कहते हैं। इसी छिद्र द्वारा बीज अंकुरण के समय पानी लेता है। पानी में भिगोए बीज को दबाने से इस छिद्र में से पानी निकलता है और यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। तीनों आवरणों को हटाने पर एक पीला गुदैला भाग दिखाई देता है। इस भाग को भ्रूण कहते हैं। इसी भाग में पौधे का सच्चा रूप छिपा रहता है। यही अङ्ग पौधे का एक शिशुपादप होता है और इसी में अंकुरण क्रिया होकर यह एक छोटे से बीज को पौधे का रूप देकर एक वृक्ष में बदल देता है। यह बीज में पाये जाने वाले सभी अङ्गों में प्रमुख है। इस अङ्ग के दो मुख्य भाग हैं:—पहला–बीज पत्र एवं दूसरा अक्ष।

2. बीज पत्र:–यह हल्के, पीले गुदैले व मासल होते हैं। यह अपने में खाद्य सामग्री संचित करते हैं। अंकुरण के समय यह खाद्य सामग्री नवजात या शिशुपालन को प्राप्त होती रहती है। इसके द्वारा उनमें पूर्ण अंकुरण होता है। इनकी संख्या अनियमित है। यह संख्या में एक ही मिलते हैं। जिस बीज में इसकी संख्या एक होती है उसे एक बीज पत्र कहते हैं। जिसमें संख्या दो या दो से अधिक होती है वह द्विबीज पत्र कहलाते हैं। यह अपने में छिपाए अक्ष की रक्षा करते हैं।

3. अक्ष:—दोनों बीज पत्र के मध्य में छिपा हुआ यह भाग अक्ष कहलाता है। इसी भाग से दोनों बीज पत्र जुड़े रहते हैं। अक्ष के स्वयं के दो भाग होते हैं। (1) पहला भाग मूलांकुर जिसके द्वारा पौधे में जड़ की उत्पत्ति होती है। जड़—पौधे की वह भाग होती है जो रंगहीन प्रकाश से दूरः अन्धकार में भूमि से नीचे की ओर पानी व अन्य लवण रहता है। यह पौधों को आंधी तूफान आदि से बचाती है।

दूसरा भाग जो प्रांकुर कहलता है—यह भाग उगने पर तने को जन्म देता है जो प्रायः भूमि से ऊपर प्रकाश में उगता है। इसी पर कलिकाएँ एवं फूल आदि लगते हैं।

उपरोक्त बीज के आवरण में छिपे हुये सब अङ्गों के द्वारा एक नन्हें से पौधे का जन्म होता है जो कुछ काल बाद एक वृक्ष के रूप में बदल जाता है।

अंकुरण (Germination)

अंकुरण की परिभाषा—बीज के अन्दर भ्रूण बिल्कुल अक्रियाशील अवस्था में होता है। जब इन्हें थोड़ी नमी तथा हवा मिलती है तो यह अक्रियाशील अवस्था क्रियाशील में परिवर्तित हो जाती है और यह उगना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार कुछ समय बाद सम्पूर्ण बीज एक पौधे अथवा पेड़ के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

जब बीज में स्थित भ्रूण सुप्तावस्था में रहता है और इस अवस्था में जिसे विषय अवस्था भी कह सकते हैं, बीज में जल की मात्रा बहुत ही कम होती है। लेकिन भ्रूण ऐसी हालत में जीवित अवस्था में रहता है और स्वसन रसायनिक क्रिया भी करता रहता है। सजीव वस्तुओं के प्रति बीज अपनी सुप्त अवस्था में विशेषता प्रकट करने लगता है। भ्रूण की सुषुप्त अवस्था त्याग कर तथा वृद्धि प्राप्त करने की क्रिया को अंकुरण कहते हैं। अतः अंकुरण शब्द में वे सब परिवर्तन शामिल हैं जो सूखे बीज को मोटा बनाने के बाद पूर्ण रूप से अपने आपको जमाने तक होता है अर्थात् वे समस्त क्रियाएँ जिनके द्वारा एक बीज पौधे के रूप में परिवर्तित होता है, अंकुरण में निहित है।

अंकुरण की पहली अवस्था होती है पानी का अवशेषण, वह तेजी से होती है। पानी अण्ड द्वार से अवशेषित भ्रूण में पहुँचता है जिससे बीज फूल जाता है और बाद में फट जाता है। यह दशा 25° सेंटीग्रेड से 28° सेंटीग्रेड तापक्रम तक अधिक सुविधा पूर्ण होती है। इसके उपरान्त बीज बीजांकुर पादप बन जाता है। इस क्रिया में बीज का भ्रूण बीज द्वारा संचित खाद्य पदार्थ द्वारा जीवित रहता है। इसके उपरान्त मूल अंकुरण शुरू में शीघ्र होता है और फिर बीज से बाहर की ओर उगता है। चाहे बीज को मिट्टी में किसी दशा में भी डाला जाय, यह सदैव नीचे पृथ्वी की ओर ही जायगा। नीचे जाकर मूल अंकुर जड़ रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार मूल अंकुरण जड़ की उत्पत्ति का उद्गम स्थान है। मूल अंकुरण की वृद्धि के साथ साथ बीज का दूसरा भाग भी जिससे अंकुरण बढ़ता है, यह बीज से निकलकर भूमि के ऊपर आता है और प्रकाश की ओर वृद्धि करता है। यह पौधे के तने के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जिससे बाद में पत्तियाँ निकलती हैं। शुरू में तार हरे रंग का होता है और कभी यह अपने साथ बीज पत्र पृथ्वी के बाहर निकल आता है, जिनका अंकुरण पत्तियों के समान होता है और यह कार्य भी पत्तियाँ करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक दशा में बीज पृथ्वी के भीतर रहता है और दूसरी अवस्था में पृथ्वी के बाहर। इस प्रकार अंकुरण को दो भागों में बाटा जा सकता है। एक वह अंकुरण जिसमें बीज पृथ्वी के भीतर रहता है, इसे हम अधोमूलिक अंकुरण कहते हैं। दूसरा वह जिसमें बीज भूमि के ऊपर आजाता है और इस प्रकार के अंकुरण को हम ऊपरी भूमिक अंकुरण कहते हैं। यह वह अंकुरण है जिसमें बीज पृथ्वी के ऊपर आकर पत्तियों का रूप धारण कर लेता है और पत्तियों का कार्य करने लगता है। उदाहरण के लिए अरण्डी का अंकुरण।

यह अधोभूमिक अंकुरण है, इनमें बीज पृथ्वी पर न आकर नीचे ही रहता है और पौधे को भोजन प्रदान करता रहता है। यह अंकुरण चने के बीज, मटर के

बीज और मक्का के बीज में मिलता है। इस प्रकार यह भ्रूण पहले बीज में सुरक्षित था अब वह एक छोटे शिशु पौधे के रूप में बन जाता है। इस विधि को जिसके द्वारा

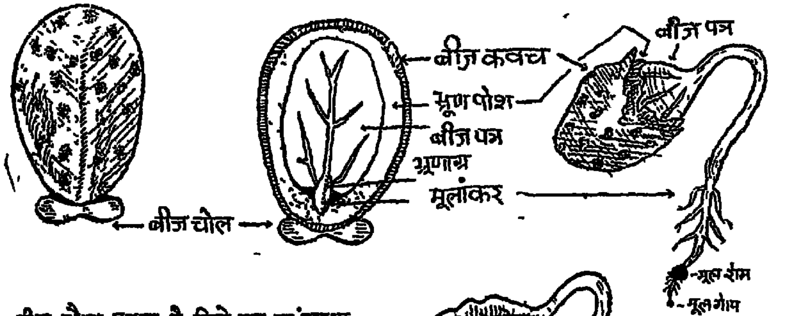

बीज पौधा बनता है जिसे हम अंकुरण कहते हैं।

अंकुरण दो प्रकार के होते हैं—

1. उपरिभूमिक अंकुरण (Epigial)
2. अधोभूमिक अंकुरण (Hypogial).

1. उपरिभूमिक अंकुरण (Epigial germination) :—जिसमें

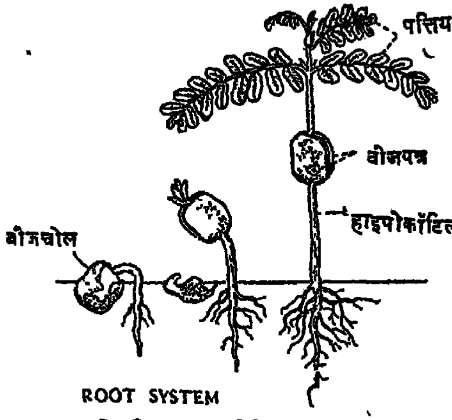

उपरिभूमिक या एपीजियल अंकुरण

TAMARIND SEED

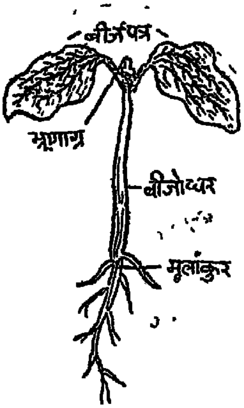

बीज पत्र ऊपर आ जाते हैं तथा पत्ती का रूप धारण कर उनकी कमी को पूरा करते हैं, जैसे अरण्डी का अंकुरण आदि।

2. अधोभूमिक अंकुरण (Hypogial germination) :—इसमें बीज पत्र ऊपर न आकर मिट्टी के नीचे ही रहते है। इसे "अधोभूमिक अंकुरण कहते हैं। यह अंकुरण चने का बीज, मटर का बीज व मक्का आदि में मिलते हैं।

इस प्रकार वह भ्रूण जो पहले बीज पत्रो में दिया था एक छोटे शीशुपादप के रूप में आकर पौधा बन जाता है। इस विधि को अंकुरण (Germination) कहते हैं।

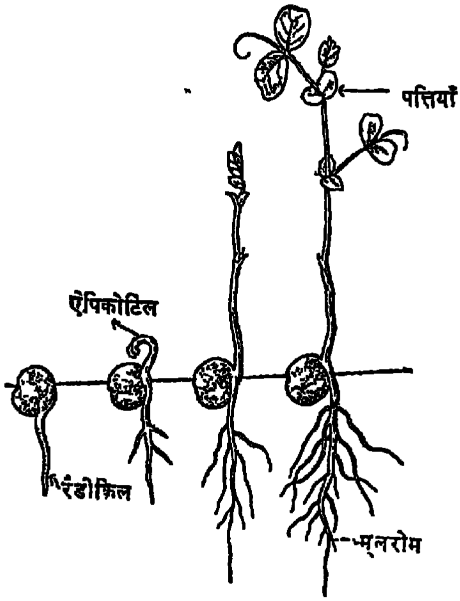

मटर का अंकुरण

अंकुरण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ (Conditon necessary for germination) :—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बीज के अंकुरण के लिए निम्नलिखित चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है :—

(1) पानी, (2) आक्सीजन, (3) निश्चित तापक्रम, (4) प्रकाश।

1 पानी (Water) —पानी के द्वारा सुषुप्त भ्रूण अथवा वह क्रियाशील भ्रूण क्रियाशील हो जाता है, जिससे यह अंकुरित होना आरम्भ कर देता है। यह जल बीज में अण्ड द्वार से प्रवेश करता है; जिससे बीज चोल फट जाता है और बीज स्वयं बाहर आ जाता है। अंकुरण के लिए पानी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पानी का इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सहयोग है। इसका प्रमाण है कि वर्षा काल में थोड़ी सी वर्षा होते ही छोटे छोटे पौधे शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते हैं। अगर हम दो प्यालो में बीज रखे। एक मे बीज को पानी में डुबो दे और दूसरे को सूखा पड़ा रहने दें तो हम देखेंगे कि केवल उन ही बीजो से अंकुर निकलता है जो पानी मे रखे गये हैं, जब कि पानी मे रखे बीज मे कोई ऐसी बात नही होती है।

अंकुरण के लिए जल की उपयोगिता है:—पहले पानी बीज चोल को नम कर देता है तथा बीज पार और भ्रूण फट जाता है। इससे बीज पार सुगमता पूर्वक चोल से बाहर आ सकता है।

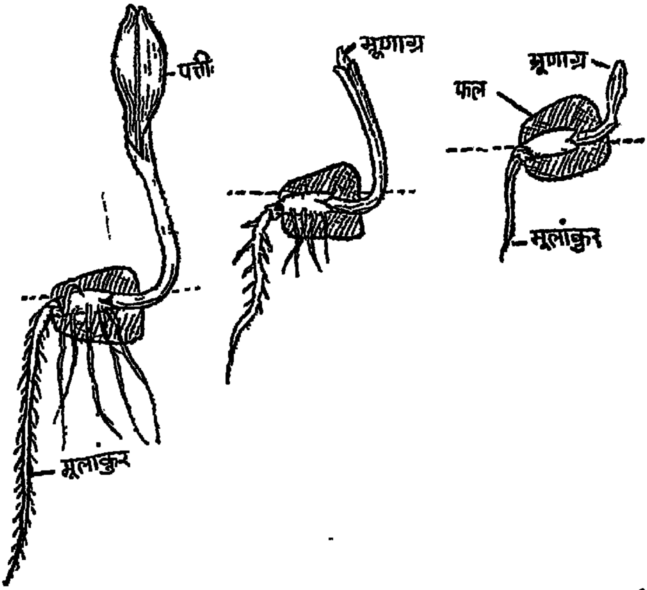

जल बीज चोल की शोषण शक्ति को भी बढ़ा देता है, जिससे कार्बन-डाई-आक्साइड का शोषण और आक्सीजन का निकलना सुगमता पूर्वक होता रहता है। इससे बीज को शक्ति मिलती रहती है व नम्र होने पर बीज चोल बाहरी आक्सीजन को भीतर प्रवेश करने देता है, जिससे शोषण क्रिया भी शीघ्रता से और सुगम होने लगती है। साथ ही उसके द्वारा पर्याप्त मात्रा में ऊष्मा भी प्राप्त होती है।

बीज में पानी के शोषण से सुषुप्त अवस्था त्याग कर सक्रियता ग्रहण कर लेता है।

बीज पार में भोज्य पदार्थ संचित रहते है। वे सभी अघुलनशील अवस्था में होते हैं। इसलिये पानी का शोषण होते ही वे जब भ्रूण को सक्रिय कर देते है तो संचित भोजन का पाचन आरम्भ होने लगता है और यह अघुलनशील पदार्थ घुलनशीलता में परिवर्तित कर दिये जाते हैं, जिससे पौधे को उचित मात्रा में भोजन मिलता रहता है।

2. आक्सीजन:—आक्सीजन पौधे की शोषण क्रिया के लिए बहुत आवश्यक होता है, लेकिन यह तभी सम्भव है जब उसे पूरी तरह से आक्सीजन प्राप्त होता रहे,

अन्यथा वह न वृद्धि करेगा और न ही शक्ति का ऊरफा का उन्मोचन होगा। आक्सीजन द्वारा भ्रूण सुपुप्त अवस्था छोड़कर चेतन अवस्था में आ जाता है। बीज की सुपुप्त अवस्था में भी शोषण क्रिया होती रहती है, लेकिन यह इतनी मन्द होती है कि उसका पता लगाना सम्भव नही। क्योंकि बीज यदि भूमि में भी अधिक गहराई से बो दिया जाता है तो उसका अंकुरण नहीं हो पाता है। इस निम्नलिखित प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर सकते हैं कि अंकुरण के लिए आक्सीजन का होना आवश्यक है :—

प्रयोग: – चित्र में दिखाये गये आकार का एक फ्लास्क लें। इसमें एक ब्लाटिंग पर कुछ बीजो को रखदें और इसके उपरान्त इसे पैरागेलिक ऐसिड के घोल में रखदें। इस घोल को जिसे क्षारीय पैरागेलिक कहते हैं, आक्सीजन को सोख लेने की क्षमता होती है। हम देखेंगे कि इस तरह रखा गया बीज कभी अंकुरित नहीं हो पाता है, जब कि उसे पानी व दूसरी वस्तुएँ उचित मात्रा में प्राप्त हो रही हैं। इन बीजों को केवल आक्सीजन प्राप्त नहीं हो सकनी जो कि क्षारीय पैरागेलिक ऐसिड द्वारा सोख ली गई है। इसके विपरीत अगर हम उन्हें आक्सीजन दें तो उसमें अंकुरण के लिए पानी और आक्सीजन दोनों की ही आवश्यकता है। यह निम्नलिखित प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है:—

प्रयोग:—एक बीकर में आधी दूरी तक उबला हुआ पानी भरले। इसके उपरान्त एक शीशे की चौड़ी प्लेट के ऊपर तीन चने व सेम के बीज बराबर बराबर दूरी पर बांध दे और शीशे की प्लेट को इस पानी में इस प्रकार रखदें कि एक बीज तो पानी में पूर्णतया डूबा रहे, दूसरा आधा पानी में और आधा पानी के बाहर ही रहे तथा तीसरा पूर्णतया पानी के बाहर हवा में रहे। अब इस बीकर को पड़ा रहने दें, तो हम देखेंगे कि पानी में रखे गये बीज और केवल हवा में रखे हुए बीज में अंकुरण नहीं होता, जब कि उस बीज में जो कि आधा पानी में और हवा में है अंकुरण हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि अंकुरण के लिए न केवल आक्सीजन की और न केवल पानी की ही आवश्यकता होती है बल्कि इन दोनों का एक साथ होना आवश्यक है। क्योकि वह बीज जो केवल पानी में रखा गया है, उसे बिल्कुल ही आक्सीजन प्राप्त नही हो पाता है, कारण पानी के उबालने से आक्सीजन निकल जाती है और इस प्रकार हवा में रखे गये बीज को भी बिल्कुल पानी प्राप्त नही होता है। लेकिन बीच वाले बीज को हवा और आक्सीजन दोनों ही उचित मात्रा में मिलती रहती हैं।

3. उचित तापक्रम:—अधिक शीत या अधिक गर्मी में भी बीज कभी नहीं उगता। इसीलिये रेगिस्तानो में जहां पर बहुत अधिक गर्मी पड़ती है पौधों की संख्या

नहीं के बराबर होती है और ध्रुव प्रदेश में जहां पर बहुत अधिक शीत पड़ता है, वहा पर भी पौधा नहीं पाया जाता है। वैसे तो विभिन्न प्रकार के बीजों के लिए विभिन्न

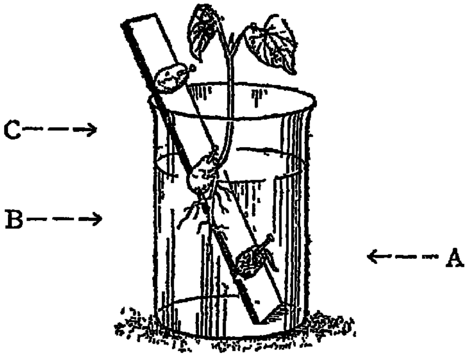

बीज-अंकुरण पर प्रभाव

तापक्रमो की आवश्यकता होनी है। लेकिन अधिकाश बीज 24° सेंटीग्रेड से 28° सेटीग्रेट में सबसे अधिक सुविधा पूर्वक उगते हैं। अधिकांश बीजो के लिए यह तापक्रम सबसे अधिक अंकुरण के लिए अनुकूल होती है। अधिकांश बीजो का अंकुरण 0° से लेकर 50° सेटीग्रेड के बीच में और 45° से अधिक तापक्रम पर नहीं हो पाता है और वे मर जाते है।

प्रकाश:—वास्तव में अंकुरण के लिए प्रकाश का भी काफी महत्व है। अधिकतर लोग यह सोचते हैं कि भूमि के भीतर बीज अंकुरित होता है। लेकिन भूमि के भीतर उन्हे प्रकाश कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये बीज अंकुरण में प्रकाश की भी आवश्यकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) एक साधारण बीज की रचना चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।

(2) अंकुरण किसे कहते हैं ? इस क्रिया को पूर्ण रूप से समझा कर लिखे।

(3) ऊपरिभूमिक व अधोभूमिक अंकुरण से क्या समझते हैं, उदाहरण व चित्र सहित वर्णन करें।

(4) अंकुरण के लिए किन किन परिस्थितियों का होना अनिवार्य है, प्रयोग द्वारा समझावे।

चौथा अध्याय

जड़, तना, और पत्तियों के कार्य

पौधे के विभिन्न अंगो की (जड, तना, पत्तियां) रचना के सम्बन्ध में तो ऊपर बताया ही जा चुका है। अब उनके कार्यों के सम्बन्ध मे यदि कुछ संक्षेप मे बताया जाय तो अनुचित न होगा।

जड़ों के कार्य—साधारणतया अधिकांश जड़े निम्नलिखित तीन कार्य करती है :—

(1) पौधो को भूमि में जमाये रखना।

(2) भूमि मे उपस्थित पानी और खनिज लवण को घोल के रूप मे सोखना।

(3) पृथ्वी द्वारा शोषित घोल को तने तक पहुंचाना। इनके अतिरिक्त भी कई जडे कुछ और कार्य भी करती है। इन जडो का अलग अलग कार्यों के अनुसार आकार में भी काफी परिवर्तन हो जाता है। इनके कार्य निम्नलिखित है :—

(i) भोजन इकट्ठा करना—कुछ जडे अपने मे भोजन इकट्ठा करने का काम करती है। भोजन इकट्ठा करने के कारण यह जड़े फूल कर मोटी हो जाती है और इनका कार्य भी वदल जाता है। इस प्रकार की जडों मे गाजर, मूली, शलगम, शकरकन्द आदि मुख्य है।

(ii) सहारा देना—इस प्रकार की जडे मुख्य तनें या उसकी शाखाओ को सहारा देती हैं। जैसे बरगद, रवड, केवडा आदि की जडे।

(iii) पौधों को उचित प्रकाश तक पहुंचाना—कुछ पौधों की जडों के द्वारा एक पौधा दूसरे पौधे का सहारा लेकर उस पर चढ जाता है और इस प्रकार उसको उचित प्रकाश और रक्षा मिल जाती है। जैसे पान, टिकोमा आदि की जडे। दूसरे पौधों पर चिपककर उचित सूर्य के प्रकाश तक पहुंचा देती हैं।

(iv) सांस लेना—कुछ जडे वायु मे लटकती रहती है अथवा जमीन से खूंटों के रूप मे बाहर निकल आती है और सास लेने का कार्य करती है, ऐसी जडों को हम स्वसन जडे कहते है।

(v) नाइट्रोजन इकट्ठा करना—कुछ जडे वातावरण से नाइट्रोजन का शोषण कर उसे अपने गांठों के भीतर एकत्रित कर लेती है। इस तरह की जडों वाले पौधों का उपयोग भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने मे किया जाता है।

तनों के कार्य—तने का मुख्य कार्य तो पौधे को सीधा खड़ा रखना तथा जडो द्वारा प्राप्त घोल के रूप मे आये हुए भोजन को पत्तियों तक पहुचा ही है, लेकिन बहुत से तनें इनके अतिरिक्त भी बहुत से कार्य करते है और इन कार्यो के अनुसार ही अपने मे परिवर्तन भी कर लेते है ।

(1) कुछ तने भोजन एकत्रित करने का कार्य करते है और इसलिये फूल कर मोटे हो जाते है, जैसे आलू, अदरक, प्याज, अरवी आदि ।

(2) कुछ तने कांटों के रूप मे परिवर्तित हो जाते है और पौधो की रक्षा का साधन बन जाते है ।

(3) कुछ तने हुक, काटे अथवा तन्तुओ के रूप मे परिवर्तित हो जाते है और कुछ दूसरे पौधो पर चढ़ने मे सहायता देते है ।

(4) रेगिस्तानों मे कुछ तने पत्तियों का आकार ग्रहण कर लेते है और पत्तियो की भाति ही सूर्य की रोशनी मे क्लोरोफिल की सहायता से अपना भोजन बनाते हैं ।

पत्तियों के कार्य—पत्तियो का आकार और उनमे क्लोरोफिल का होना पत्तियो को उनके कार्यों के लिये बहुत सहायता देता है । साधारण पत्ती के निम्न-लिखित तीन मुख्य कार्य हैः—

(1) **उत्स्वेदन**—पौधा जड़ो के द्वारा निरन्तर भूमि से पानी का शोषण करता रहता है और इस प्रकार पौधे को आवश्यकता से अधिक पानी प्राप्त हो जाता है । इस अनावश्यक पानी की पत्तियो वाष्प को रूप मे बाहर निकाल देती है । पानी को इस तरह से पत्तियो द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को उत्स्वेदन कहते है ।

(2) **भोजन बनाना**—पत्तियां भूमि द्वारा ग्रहण किए गए लवण एंव पानी को आक्सीजन के साथ संयोग कर सूर्य की रोशनी मे क्लोरोफिल की सहायता से भोजन के रूप मे परिवर्तन कर देती है । अपना भोजन स्वय बनाने का विशेष गुण पौधों मे पत्तियों के द्वारा ही होता है ।

(3) **सांस लेना**—पत्तियो मे बहुत से छोटे छोटे छिद्र होते है जिन्हे स्टोमेटा कहते है । इन छिद्रो की सहायता से स्वसन का कार्य करती है अर्थात वायुमण्डल से आक्सीजन ग्रहण करती है तथा उसी आयतन मे कार्बन डाइ आक्साइड तथा वाष्पकरण बाहर निकालती है । इन कार्यो के अतिरिक्त पत्तियां कुछ अन्य कार्य भी करती है और इन कार्यो के अनुसार उनके आकार मे भी परिवर्तन हो जाता है ।

(4) **पेड़ पर चढ़ना**—कुछ पत्तिया सूत्रक (tendrils) के रूप मे वदल

जाती है और इन सूत्रक की सहायता से ये अपने पौधो को दूसरे पौधो पर चढ़ने मे सहायता देती है।

(5) वर्धि प्रजनन करना—कुछ पौधो की पत्तिया नये नये पौधो को उत्पन्न करने मे सहायता देती है और इस प्रकार बिना बीज के ही नये पौधो का जन्म हो जाता है, जैसे अजूबा, विगोनिया आदि मे पानी की बचत करना, कुछ पौधों की पत्तियां शीघ्र ही झर जाती है या काटो के रूप मे बदल जाती है जिससे जल के उत्स्वेदन की मात्रा मे कमी हो जाती है यह अधिकतर उन पौधो की पत्तियों में होता है जो रेगिस्तान या सूखे जलवायु वाले स्थानो मे पाये जाते हैं, जैसे आस्ट्रेलियन बबूल, नागफनी आदि मे।

पौधों की रक्षा करना—बेर, बबूल, आदि पौधो की पत्तियों मे नुकीले काटे होते है अथवा उनका कोई भाग कांटो के रूप मे परिवर्तित हो जाता है जिससे ये पेड पौधो की रक्षा करने मे समर्थ होते है।

भोजन एकत्रित करना—प्याज, लहसुन आदि पौधो मे पत्तिया अपने मे फूल जाती है और लसदार हो जाती है और समय पड़ने पर यह भोजन पौधे को प्रदान किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जड़ो के कार्यों को सविस्तार बतलाईये।
2. तना पौधे के लिये क्यों आवश्यक है और इसके क्या क्या कार्य है ?
3. पत्तियां पौधे के किस काम आती है और मनुष्य को इनसे क्या लाभ है ?

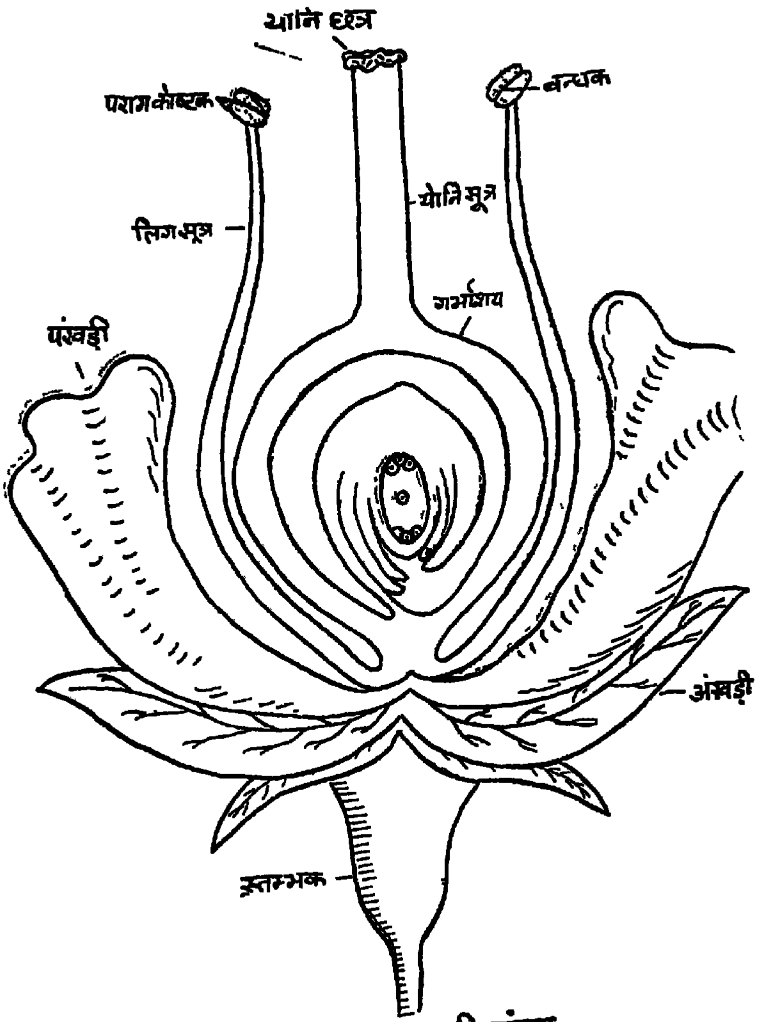

साधारण पुष्प की रचना

पांचवां अध्याय

फूल के अङ्ग एवं उनके कार्य

(Flower Parts & Functions)

वनस्पति जगत मे, फूल प्राय. रग विरंगे, चमकीले, भड़कीले एव सुन्दर रूप वाले देखने को मिलते हैं। बहुत से फूलो मे मनोहर सुगन्धी होती है। फूल का मुख्य उद्देश्य फल एवं बीज उत्पन्न करना है और अपना यह कार्य करने के बाद इसकी मृत्यु हो जाती है। पौधे पर हम देखे तो फल लगने से पहले फूल लगता है, जिसमें सेंचन एवं गर्भाधान क्रिया होने के पश्चात् ही फल एव बीज की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार फूल अपना एक मुख्य उद्देश्य लेकर पैदा होता है तथा उसकी पूर्त्ति करने के बाद वह नष्ट हो जाता है। इसी बीज के द्वारा उस के समान नए पौधे का जन्म होता है। भिन्न भिन्न पौधो पर मिलने वाले पुष्पों का रग, रूप और आकार भी भिन्न भिन्न होता है।

1. फूल के अङ्ग :—अगर हम एक फूल के साधारण अंगों के विषय में अध्ययन करें तो हमे निम्न अग देखने को मिलते है :—

(i) **अंखड़ी**—बहुत के समूह मे यह चक्र बनाती है जिसे पुटचक्र कहते हैं। (ii) **पंखड़ी**—इसी समूह को दलचक्र कहते है। (iii) **पराग केशर**—इसे पुलिंग चक्र कहते है। (iv) **गर्भ केशर**—इसके चक्र को स्त्रीलिंग चक्र कहते है।

सबसे बाहरी चक्र पर अखड़ी होती है इसके बाद अन्दर की ओर पंखड़ी फिर पराग केशर तथा अन्त में फूल के ठीक केन्द्र में स्थित गर्भकेशर स्थित रहता है। ये सब अंग एक प्रकार के विशेष मन्च पर स्थित होते है जिसे स्तम्भक कहते हैं। यह पुष्प एक डंठल द्वारा शाखा पर पर लगे रहते है, जिसे पुष्प दण्ड कहते है।

जिस पुष्प मे उपरोक्त चारो अंग स्थित रहते हैं, उसको पूर्ण फूल कहते हैं। लेकिन जिस पुष्प मे इनमे से एक भी अंग नही होता है वह अपूर्ण फूल कहलाता है।

2. फूलों के अङ्गों के कार्य—मोटे रूप से पुष्प को निम्नलिखित दो समूह में बांटा जा सकता है।

(A) **आवश्यक अङ्ग** (B) **अनावश्यक अङ्ग**

आवश्यक अङ्ग—यह पुष्प के वे अंग है जो उसकी उत्पादन क्रिया मे सहायक होते हैं। इन्ही के द्वारा फूल अपनी वंशज परम्परा निर्धारित रखता है।

इस वर्ग मे आने वाले दो मुख्य अंग है—पहला पराग केसर जो कि पुष्प के नर अंग हैं। दूसरा–गर्भकेसर जो कि पुष्प का मादा अंग कहलाता है।

अनावश्यक अङ्ग—इसमे पुष्प मे उपस्थित अखडो और पखडी दोनो ही सम्मिलित है।

अंखड़ी—यह सबसे बाहरी चक्र पर छोटी पत्तियो के रूप मे हरे रग की होती है। इनकी संख्या विभिन्न पुष्पो मे भिन्न होती है, लेकिन एक जाति के पुष्प में यह सुनिश्चित एवं स्थिर रहती है। अधिक पुष्पो मे यह 2 से 5 तक पाई जाती है। जब अ खडी एक दूसरे से अलग अलग रहती है तो उन्हे पोलीसेपेलस और जब परस्पर जुड़ी होती है तो गैमोसेपेलस कहते है। इनका मुख्य कार्य निम्नलिखित है—

(1) यह हरी होती है और साधारण पत्तियो के समान सूर्य की रोशनी मे भोजन बनाती है। (2) इनका मुख्य कार्य पुष्प की कली की अवस्था मे रक्षा करना है। (3) कभी कभी रग मे चमकीली तथा भडकीली होती हैं, जिससे यह सेचन क्रिया मे कीडो को आकर्षित करके मदद करती है। (4) कभी कभी यह बाल के रूप मे होती है तथा बीजो मे बखेरने मे सहायता करती है।

पंखड़ी—यह सदैव रग बिरगी तथा चमकीली होती है। पुष्प की सुन्दरता इन्ही पर निर्भर करती है। इनकी सख्या प्रत्येक जाति के पुष्प मे लाक्षनिक होती है अर्थात् सुनिश्चित एव स्थिर होती है। अधिक पुष्पो मे यह अलग अलग पहचानी जा सकती है। लेकिन कुछ पुष्पो मे अ खडी तथा प खड़ी मिलकर एक रूप धारण कर लेती हैं। इस दशा में उन्हे पेरियेंथ कहते हैं। जब यह एक दूसरे से चिन्हित होती है तो पोलीपेटलस तथा संयुक्त होने पर गैमोपेटलस कहलाती हैं।

कार्य—(1) पखडियां प्रायः रंग विरंगी तथा मनोहर सुगधित होती है। इनका मुख्य कार्य अपनी सुन्दरता, रग तथा सुगन्धी द्वारा कीड़ो को फूल की ओर आर्कषित करना है। यह अपने मे मीठा रस भी उत्पन्न करती है, जिससे कीडे इनकी ओर आते है। यह कीडे एक फूल से दूसरे फूल तक पराग कण पहुचा कर सेचन क्रिया मे मदद करते है। (2) यह परागकेशर तथा गर्भकेशर आदि को ढक कर गर्मी, सर्दी व बरसात आदि से उनकी रक्षा करती है। (3) कुछ पुष्पों में इन दल चक्रो के नीचे वाले भाग मे विशेष मकरन्द ग्रन्थियां होती हैं, जिनमे मकरन्द इकट्ठा रहता है। यह भी कीडो को आर्कषित करता है। यह ग्रन्थिया कभी कभी विशेष रेखाओ द्वारा प्रदर्शित होती है जिन्हे—मधु-प्रदर्शक कहते है। यह रेखाये कीड़ो को मधु तक पहुचाने मे सहायता करती है।

6. **पराग केशर**—यह पुष्प का नर अंग है जो पराग उत्पन्न करता है। इनकी सख्या भिन्न भिन्न जाति के पुष्पो मे भिन्न भिन्न है। यह आकार मे रंग विरगे होते हैं, इनको पृथक परागकेशर कहते है। इनकी संख्या अनिश्चित है। यह दो से लेकर संख्या में असंख्य हो सकते है। यह आपस मे सब जुडे रहते है तो इनको सलांग अवस्था मे United कहते है, और जब जुड़े हुए नहीं होते है तो इनको पृथक परागकेशर कहते हैं। जुडे हुए की दशा मे इनके कितने ही पुल बन जाते हैं। यह लम्बाई मे भी अधिक होते हैं।

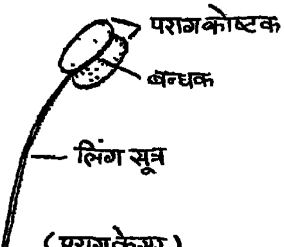

(परागकेसर)

7. इनकी रचना के आधार पर यह तीन भागों में विभाजित रहसे है:—

1. परागकोष्ठक 2. वन्धक 3. लिंगसूत्र।

यह लिंग सूत्र परागकोष्ठको को ऊपर की ओर उठाये रखते हैं, क्योकि जब पुंगकेशर परागकोष्ठक से बाहर आते है तो आसानी से योनि छत्र पर पहुच जाते है। परागकोष्ठक—यह दो पालिकाओ का बना होता है। प्रत्येक पालिका मे दो कोष्टको मे बहुत महीन, पतले, पीले पाऊडर के रूप मे यह कण भरे रहते है, इन बारीक कणो को परागकण कहते है।

8. **पराग क्रिया की रचना**—यह आकृति में बहुत ही पतले, पाऊडर के समान होते है। यह हल्के अधिक होते है। अणुवीक्षण यंत्र से होने पर इनकी आकृति भिन्न भिन्न फूलों में भिन्न होती है। यह दो भित्तियों का बना होता है। पहली बाहरी दीवार को बाह्यकवच कहते है। यह बहुत मोटी एवं खुरदरी होती है। इसके अन्दर वाली दीवार पतली एवं कोमल होती है, जिसे अन्त.कवच कहते है। इन दीवारो के मध्य मे कोशारस भरा रहता है जिसके मध्य मे एक न्यूष्टी रहता है। कोष्ठक की दीवार फटती है तो यह पराग कण स्वतन्त्र हो जाता है।

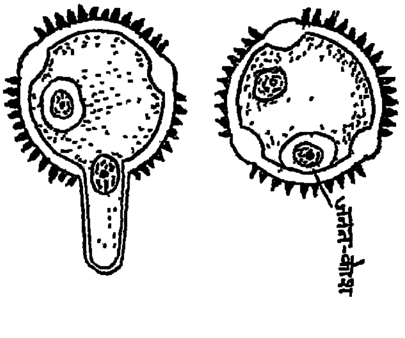

9. **गर्भकेशर**—यह पुष्प का मादा अंग है तथा सदैव केन्द्र मे स्थित रहता है। इसकी आकृति एक

सुई के समान होती है। यह निम्नलिखित तीन भागों मे विभाजित रहती हैं:—

1. योनिछत्र 2 योनिसूत्र 3. गर्भाशय

योनिछत्र:—(1) भिन्न भिन्न फूलो मे योनिछत्र का रूप भिन्न होता है। यह घुन्डी नुमा, नोंकदार, चपटी या लम्वी भी हो सकती है। इसकी तह चिकनी एव चिपचिपी होती है, जिससे परागकण आसानी से चिपक जाते है।

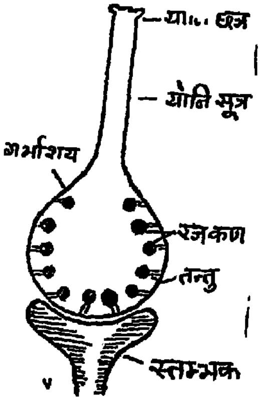

(गर्भकेसर)

(2) योनिसूत्र:—यह योनिछत्र को उठाये रखता है। यह आकार मे पतला एवं डोरे के समान होता है। गर्भाधान के समय योनिछत्र पर आये हुए पराग भाग की पराग नली इसी योनिसूत्र की नाल मे से जाती है। योनिसूत्र एक खोखला होता है जो इसकी योनि नाल कहलाता है।

(3) गर्भाशय:—यह भाग खोखला तथा सुराई के निचले भाग की आकार के समान होता है। इसमें विशेष प्रकार के कण जो कि मादा अग हैं, यह कोमल दीवार के द्वारा जुड़े रहते है, जिन्हे रजकण कहते है। गर्भाधान क्रिया के पश्चात् रजकण से वीज एवं गर्भाशय के शेप भाग से फल वनता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पंखडी, पराग केशर और गर्भ केशर के कार्यो का उल्लेख करें।

2. पराग केशर किसे कहते है और यह क्रिया किस प्रकार होती है ?

3. पुष्प के आवश्यक अंगो का सविस्तार वर्णन करे।

छठा अध्याय

सेंचन क्रियाएं एवं गर्भाधान व फल तथा बीज का बनना

सेंचन क्रिया: -फूलों में बीज बनने के लिये सेचन क्रिया परमावश्यक है। इस क्रिया मे फूल के आवश्यक अंग (पराग केशर और गर्भ केशर) भाग लेते है।

परिभाषा:—सेंचन क्रिया अथवा परागण वह क्रिया है जिसके द्वारा पराग, परागकेशर से गर्भ केशर के योनिछत्र तक पहुचाये जाते है। यह क्रिया भिन्न भिन्न साधनो द्वारा होती है। इस क्रिया के निम्न दो मुख्य भेद है:—

स्वयं सेंचन (Self Pollination)

पर सेंचन (Cross Pollination)

स्वयं सेंचन (Self Pollination):—जब किसी भी पुष्प के परागकण उसी पुष्प के योनिछत्र तक पहुचाये जाते है तो उसे स्वयं सेचन कहते है।

पर सेंचन (Cross Pollnation):—जब किसी पुष्प के पराग कण दूसरे फूल के योनिछत्र को पहुंचाये जाते है चाहे वे एक ही पौधे का हो अथवा उसी जाति के भिन्न भिन्न पौधे का हो, इस क्रिया को पर सेचन कहते है। अतएव पर सेंचन के लिये किसी न किसी साधन का होना आवश्यक है। यह अधिकतर एकलिंगी और कुछ द्विलिंगी पुष्पों मे होता है।

स्वयं सेंचन:—यह अधिकतर द्विलिंगी पुष्पों मे ही होता है, लेकिन द्विलिंगी पुष्पो मे भी कभी कभी ऐसे साधन उत्पन्न हो जाते है, जिसके फलस्वरूप यह सफल नही हो पाता है। स्वय सेचन कभी कभी उस समय भी होता है जब पर सेचन असफल हो जाता है। निम्न लिखित परिवर्तनो के कारण पुष्पो मे स्वयं सेचन सफल हो जाता है:—

(1) **समोद्वाह** (Homogamy) :—ऐसे पुष्प जिनमे परागकेशर और गर्भ केशर एक साथ पकते हैं और अधिक पास पास रहते हैं तो उनमे स्वयं सेंचन संभव हो जाता है।

(अ) इस प्रकार की दशा मे वायु अथवा कीड़ों द्वारा पराग कण उसी पुष्प की योनिछत्र पर पहुंच जाते है और स्वय सेचन करते है।

(ब) गुला बास (Mirabilis) आदि पौधो के पुष्पों मे ऐसे उदाहरण भी मिलते है जिनमे जब परागकेसर परिपक्व हो जाते हैं तो आपस मे जुड़कर ऐंठ जाते है और पराग कोष्टक गर्भ केसर के समीप ले आते है। इस प्रकार जब पराग कोष्टक फटते है तो पराग कण योनिछत्र पर ही गिरते है और स्वय सेचन हो जाता है। कभी कभी इसके विपरीत भी होता है अर्थात् गर्भ केसर बढता है और पराग कोष्टक को छू लेता है और उसके फटने पर स्वय सेचन हो जाता है, जैसे सग्रहित कुल और गुड़हल कुल मे पाया जाता है।

(स) कुछ पुष्पो मे जिनका मुंह नीचे की ओर होता है योनिसूत्र अंशु से बडी होती है। इससे पराग कण योनिछत्र पर ही गिरते है। कभी कभी सीधे पुष्पों मे अर्थात् उन पुष्पों मे जिनके पुष्पों का मुंह ऊपर की ओर रहता है योनिसूत्र से अंशु बडे होते है, इसमे भी पराग कण योनिछत्र पर ही गिरते है।

(द) कभी कभी पराग केशर दलचक्र की नाल के मुंह पर लगे रहते है और जैसे ही योनिछत्र ऊपर की ओर वृद्धि कर बढता है पराग कोष्टक फट जाते है और पराग कण को योनिछत्र पर गिरा देते है, उदाहरण:—रगन व गन्धराज।

(2) स्वयं परागिता (Clesitogamy) : - कुछ ऐसे भी द्विलिंगी पुष्प मिलते है, जो कभी खिलते नही है, ऐसे पुष्पो को स्वय परागी कहते हैं। इस प्रकार के पुष्पो मे पराग केशर और गर्भकेसर बहुत निकट होते हैं अथवा कभी आपस मे लिपटे हुए होते है। अतएव जैसे ही पराग कोष्टक फटते है पराग कण योनिछत्र पर पहुच जाते है, ऐसे पुष्प अधिकतर छोटे होते है और पृथ्वी के भीतर रहते है, जैसे:— कनशीरा।

1. वायु द्वारा (Wind Collination) :—यह साधारण छोटे छोटे पुष्पो मे होती है तथा बिल्कुल रगहीन व गधहीन होती है। इनमे किसी प्रकार की सुन्दरता व शहद आदि नही होता। जब वायु चलती है तो पके हुये पराग कोष्टको का परागकण वायु के वेग से योनिछत्र पर आजाता है जो लसलसे पदार्थ के द्वारा चिपक जाता है। यह परागकण बहुत ही पतले एव छोटे होते हैं। यह सख्याओ में असंख्य होते है क्योकि बहुत से पराग रास्ते मे नष्ट हो जाते है। इसलिये यह सख्या में बहुत ही अधिक होते है। यह क्रिया अधिकतर कितने ही पौधे मे होती है। एक लिंगी पुष्प मे भी यह क्रिया अधिक उपयोगी है, जैसे अरण्ड का फल व बीज। साथ ही साथ गर्भकेशर का भाग अधिक बडा होता है। इसका मुख्य उदाहरण गेहूँ, बाजरा, मक्का व चावल आदि है। योनिछत्र के बडे होने का उदाहरण मक्का

मे अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। इसके ऊपरी हिस्से मे नर पुष्प होता है तथा नीचे मादा अंग के पुष्प का गुच्छा रहता है। जब हवा चलती है तो यह असंख्य पराग कण बालदार चमकीली योनिछत्र पर पहुच जाते है।

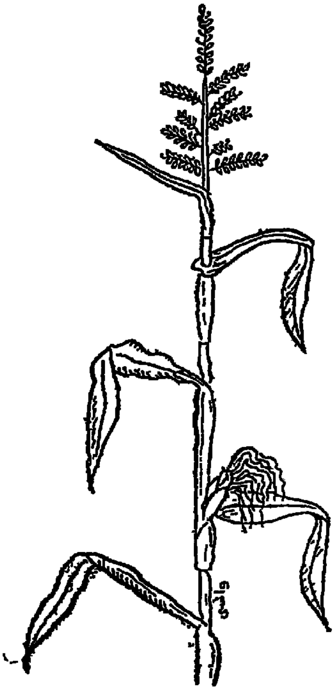

2. कीट द्वारा:—पर सेचन जिन पुष्पों मे निश्चित रूप से देखने को मिलता है। इनमे पराग कणो की सख्या अधिक रहती है। पौधे कीडो को अपनी ओर से आकर्षित करने के लिए अपने मे कई परिवर्तन कर लेते है, जैसा कि कुछ फूलों की पखडिया रग बिरंगी होती हैं। इसके द्वारा कीडे पुष्प की ओर आकर्षित होते है। दूसरे फूल के नीचे की ओर तह मे इस प्रकार का रस अथवा शहद बनता है जिसके लिये कीट एक पुष्प दूसरे पुष्प तक घूमते रहते है। तीसरे, रात मे उगने वाले फूल मे जिनकी पखड़ियां रग हीन होती है, सुगधी पाई जाती है। तब इसकी सुगन्ध के कारण कीड़े उनकी ओर आकर्षित होते है। चौथे, पराग कणो की सख्या बहुत कम होती है तथा वे लसलसे भी

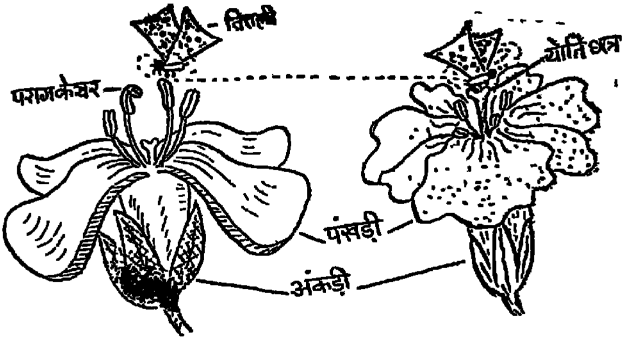

होते है जिससे वे पुष्प के कक्ष मे आने वाले कीडो के बदन पर आसानी से चिपक जाते है पाचवें, कुछ पौधो मे यह क्रिया पाई जाती है उसमे कुछ विशेष प्रकार के अग

विकसित हो जाते हे। जिसके फल स्वरूप जब कि कीडे फूल पर शहद की खोज मे जाते है तो उसके पराग करण कीडे के शरीर से चिपक जाते है और जब ये कीडे दूसरे पुष्प पर पहुचते है, वहा, पर पराग करण योनि के क्षत्र मे पहुच जाते है। उदाहरण केलिये सेलविया, मटर के फूल है।

सेचन क्रिया मे फूल अपने मे कुछ विशेष परिवर्तन कर लेते है जो इस प्रकार हैं — पहला रंग, दूसरा मधु, तीसरा गध।

रंग.—फूल अपनी पखडियो को रंगीन बना लेते है। यह रग अधिकतर भडकीला व चमकदार होता है। फूलो की पंखडियो की बनावट भी कीडो को अपनी ओर आर्कषित करती है। कई बार जब फूल रंगीन नही होते तो पौधे के कई भाग रगीन होकर कीडो को अपनी ओर आर्कषित करते है। इस प्रकार भडकीले तथा चमकदार रग के कारण कीडे पौधे की ओर आर्कषित होकर एक फूल से दूसरे फूल तक पराग करण पहुचाते है। उदाहरण के लिये, जैसे गाजर, सुरजमुखी, केला, फोरविया आदि।

मधु—रग या सुगन्ध दोनो कीडो आर्कषित करने मे सहायक नही होते है, तो कई बार फूल अपने मे एक प्रकार की ग्रंथी उत्पन्न करता है जिसमे एक प्रकार का रस बनता है, जिसे मधु कहते है। यह मधु कीडो को अपनी ओर आर्कषित करने का गुण रखता है। मधुमक्खिया विशेष कर मधु के कारण इनकी ओर बहुत अधिक आर्कषित होती है। कई कीडो के एक फूल से दूसरे फूल तक भागने का एक मात्र कारण यह भी है कि वे अडे जमा करने भी जाते है जो पराग को खोलते है और मधु पीते है। इन दोनो कार्यो को सम्पादित करने में कीड़ों के शरीर पर पराग लग जाती है और यह पराग करण इसके द्वारा एक फूल से दूसरे फूल तक पहुचा दिये जाते है। उदाहरण के लिये, नारगी, पुमेलो आदि।

सुगन्ध—फूल मे कीडे के आर्कषित होने का एक कारण सुगन्ध भी है। सुगन्ध के कारण कीडे फूल की ओर आर्कषित होते हैं। यहा पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कीडे को आर्कपित करने मे सुगन्ध फूल से अच्छा कार्य करता है। सुगन्ध के कारण कीड़े दूर-दूर से भी आर्कषित होकर चले जाते आते हैं। विशेषकर रात मे तो जब कि कीड़ो के लिये रग पहचानना मुश्किल हो जाता है, अतएव रग उस समय बेकार हो जाता है और सुगन्ध कीडे को अपनी ओर आर्कषित करने का कार्य करती है। इसलिये साधारणतया रात को खिलने वाले सभी फूलो मे रग नही होता है। अर्थात् वे सफेद होते है। उदाहरण के लिए, बेला, रात की रानी आदि।

कुछ फूलो में जिन पर कीड़े भ्रमण करने जाते है, अपने मे कुछ विशेष परिवर्तन कर लेते है, जिनसे कि सेचन क्रिया आसानी से हो जाती है। जैसे कुछ फूलो के पत्ते इस आकार के हो जाते है कि उन पर कीड़ो के बैठने के लिये स्थान से बन जाते है। और जब कीडे बैठते है तो पराग केसर उनके शरीर से रगड़ खाकर पराग उनके शरीर से चिपक जाती है। दूसरे पौधों मे नर केसर दो भागो मे इस प्रकार बंटती है कि अगर कीड़ा एक भाग पर बैठता है तो उसके दूसरे भाग से पराग कण झटककर गिर जाते है। जैसा सेलविया के फूलो मे पाया जाता है।

जल द्वारा—यह सेचन उन पौधों मे पाया जाता है जो जल मे ऊगते है। इसमे पुष्प जलकी भीतरी सतह पर रहते है तथा सदैव एकलिंगीय होते है। पर नर पौधों के नर अंग और मादा पौधो के मादा अंग अलग-अलग होते है। अतएव इनमें भी पर सेचन होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये वेलिसनेरिया आदि पौधो के लिये पानी की आवश्यकता है और इनमे सेचन क्रिया भी जल द्वारा होती है।

सेचन किया नर पुष्पो के परिपक्व होने पर पानी की सतह पर बहने लगते है और मादा पुष्प भी एक पतली कुंडलित डोरे के समान अङ्ग पर लगे रह कर पानी की उपरी सतह पर तैरने लगते हैं। सेचन के समय जब यह इस डोरे के द्वारा

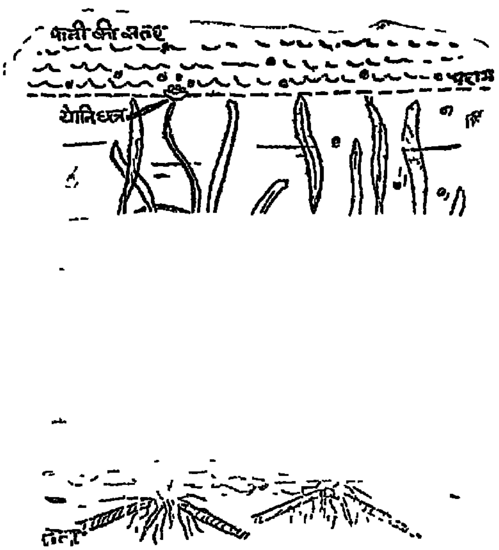

पानी की सतह पर पहुंचते हुए।

सहायता से पहुच जाते है और वहा पहुचने पर परागकोश फूट जाते है तथा पराग

कण मादा पुष्प के योनिछत्र पर स्थानान्तरित हो जाते है और इससे फिर सेंचन क्रिया पूर्ण हो जाती है।

जन्तुओं द्वारा:—बहुत से जन्तु जैसे चिड़िया, गिलहरी, चमगादड़ आदि सेचन क्रिया के लिये बहुत अधिक कार्य करते है। उदाहरण के लिये, चिड़िया, गिलहरी, बोम्बेक्स आदि सेचन क्रिया करते है। इस तरह की क्रिया मे यह एक फूल से दूसरे फूल तक जब घूमते है, और जिस फूल से वे स्वय शरीर से भी रगड़ खाते है तो अपने शरीर से पराग कण चिपका कर ले जाते है और जब ये स्वयं स्थानातरित होतें है तो इसके द्वारा परागकण दूसरे फूल तक स्थानान्तरित हो जाते है, जिसकी सहायता से सेचन क्रिया पूर्ण हो जाती है। चिड़िया, गिलहरी, चमगादड़ आदि फल खाने के लिये जाते है तो परागकण उनकी चोंच पर एवं शरीर पर लग जाते हैं, जो दूसरे पुष्प के योनिछत्र पर जाकर लग जाते है। इस प्रकार पराग कण योनिछत्र तक पहुचने मे सहायक होते हैं। जब मनुष्य भी काम करता है तो उसके हाथ अथवा शरीर के अगों पर पराग कण लग जाते हैं और वह जब उन हाथो से किसी दूसरे फूल को छूता है या रगड़ खाता है तो दूसरे फूल पर ये कण स्थानातरित हो जाते है। मनुष्य स्वयं जानकर भी कृतिम रूप से सेचन क्रिया करवाता है, जिससे आने वाली पीढी मे कुछ अच्छे परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है।

पर सेचन से लाभ:—स्वयं सेंचन से जो बीज बनते हैं, वे अधिक शक्तिशाली नही होते है और उनसे बनने वाले पौधे भी कम समय तक तन्दुरुस्त व स्वास्थ पूर्वक रहने पाते है। जब कि पर सेचन से बीज और अधिक मजबूत व तनदुरुस्त पौधे पैदा करता है और साथ ही बीज भी, स्वयं सेचन की अपेक्षा अधिक बनते है। पर सेचन से पौधो मे नई नई जातियां पैदा होती हैं। इस क्रिया में दो असमान चीजो का सहयोग होता है, जिसमें एक नर और दूसरी मादा है। इस प्रकार की सेचन क्रिया मे कृतिम रूप से भी मनुष्य ने बहुत सी नई जातियां खोज निकाली है।

गर्भाधान—पराग योनिछत्र तक पहुंचने की क्रिया को सेचन क्रिया कहते हैं। इसके पश्चात् जिस विधि से इन पराग कणो का मिलान गर्भाधान की स्थिति मे रज कण से होता है, उसे गर्भाधान कहते है। इसलिये परागकण रज कण से जिस विधि द्वारा मेल करता है उसे गर्भादान कहते हैं। इसके समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले रज कण के बारे मे भलीभांति समझ लिया जाय।

रजकण:—गर्भाशय की भीतरी भित्ती से जुडे हुये एक या अनेकों रजकण मिलते है। एक छोटे डंठल द्वारा जिसे पन्तु कहते है, ये गर्भाशय की दिवार से जुड़े रहते हैं। जिस बिन्दु पर रजकण डंठल से जुड़ा रहता है उसे वृन्तयु कहते है। इन रजकणो के चारों ओर एक या दो आवरण होते है जिन्हे आच्छद कहते हैं। जिस स्थान पर से आच्छद निकलते है उसे विभाग कहते है। रजकण के एक सिरे पर एक छोटा सा

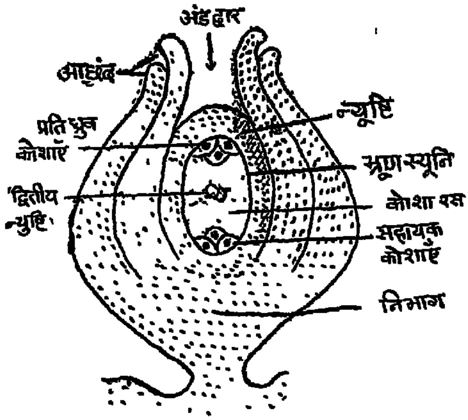

छिद्र होता है जिसे अंडद्वार कहते है। इस छिद्र के समीप एक छोटी सी थैली होती है जिसे भ्रूण-स्यूनि कहते है। इसी में अंडसेल तथा उसकी सहायक कोशाये छिपी रहती हैं। जैसा कि आप पीछे पढ़ चुके है कि नर अंग परागकण है, यह परागकण दो भित्तियो का बना होता है। एक तो बाहरवाली भित्ति जिसे एक्जाइन व अन्दर वाली भित्ति को इनटाइन कहते है। प्रत्येक परागकण मे दो न्युष्ट्री होती है, एक जनन न्युष्टि तथा दूसरी वर्धी न्यूष्टि कहलाती है। योनिछत्र परागकण की कुछ देर बाद विश्राम करने के बाद उनकी बाहर वाली दीवार फटती है, तथा अतः कवच एक नली के

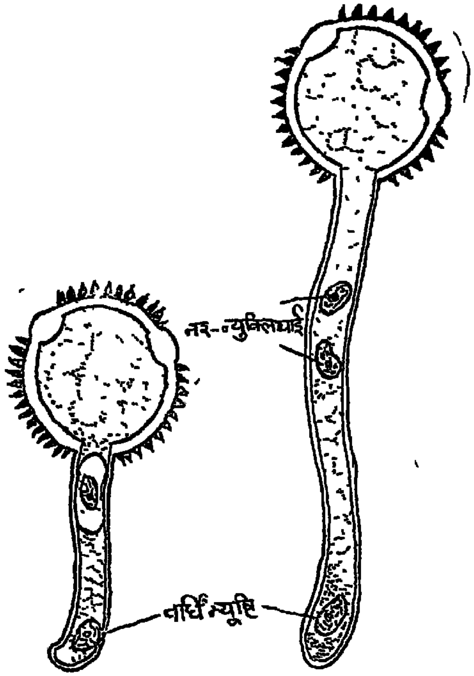

रूप मे बाहर निकलता है। यह नली पराग नली कहलाती है। यह योनिछत्र की

दीवार को चिरती हुई योनिनाल से आती है। यहां से यह सीधी गर्भाशय मे पहुंचती है और बढ़ती है तथा अंडद्वार छिद्र द्वारा यह रजकरण के अन्दर पहुंच जाती है। इस बीच में परागकरण में स्थित जनन न्युष्टि दो नर जन्यु मे विभाजित हो जाती है और वर्धी न्यूष्टि तथा नर जन्यु इस पराग नली के निचले सिरो पर उतर आते हैं फिर इसके कुछ समय पश्चात परागनली की निचली दीवार फटती है और तब नरजन्यु रजकरण के अडकोश से सयुक्त हो जाता है। नरजन्यु तथा अडकोश के इस प्रकार के पारस्परिक संयोग को गर्भाधान कहते है और इस सयोग का परिणाम एक बीज होता है तथा गर्भाशय का अन्य भाग एक फल मे परिवर्तित हो जाता है। इस गर्भाधान के पश्चात् पुष्प में होने वाला परिवर्तन संक्षेप मे निम्नलिखित हैः—

(1) अँखुडी.—यह प्राय. मुरझा कर झर जाती है। (2) पंखुड़ी—यह भी झर जाती है या किसी भी फल मे परिवर्तित होती है। (3) पराग केसर—यह भी मुरझा जाते है तथा नष्ट हो जाते हैं। (4) गर्भ केसर—यह भी मुरझा कर नष्ट हो जाती है। (5) गर्भाशय—यह एक पूर्ण फल मे बदल जाती है। (6) गर्भाशय भित्ति—यह फल भित्ति के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। (7) रजकरण (a) आच्छद, बीज आचरण, बन जाते हैं। (b) अडद्वार—यह छिद्र बीज मे अडद्वार ही रहता है। (c) अण्डकोश—भ्रूण पोषकोश, भ्रूण पोष बनाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) परसेंचन क्रिया किसे कहते है और इससे क्या लाभ हैं ?

(2) वायुद्वारा सेंचन क्रिया के लिए आवश्यकताओ का वर्णन करें।

(3) सेंचन क्रिया में कीट किस किस प्रकार सहायता करते है, सविस्तार वर्णन करें।

(4) गर्भाधान क्रिया का चित्र सहित वर्णन करें।

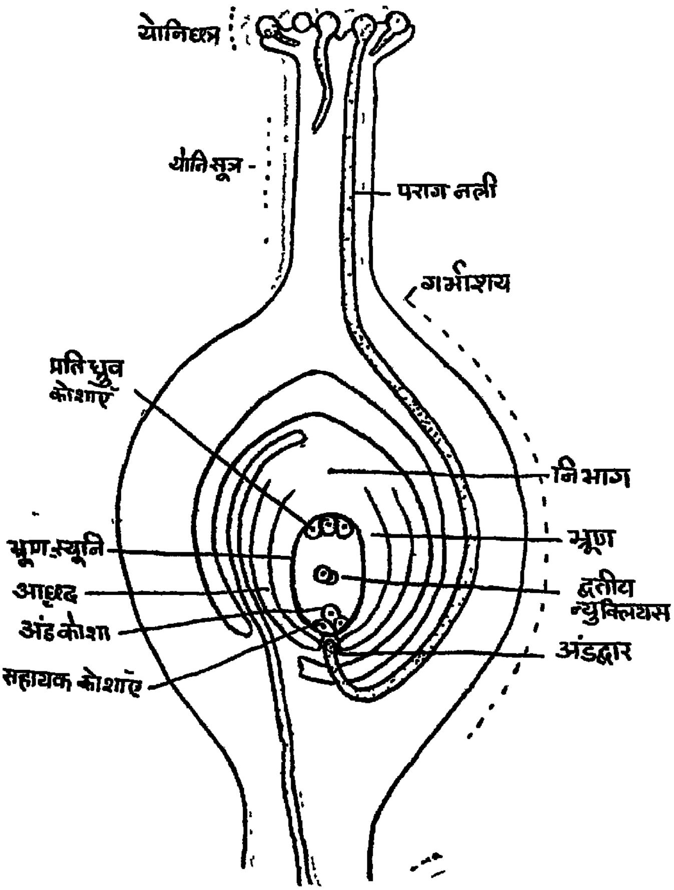
योनिछत्र
योनि सूत्र
पराग नली
गर्भाशय
प्रति ध्रुव कोशाएँ
नि भाग
भ्रूण स्यूनि
भ्रूण
आछद
तृतीय न्युक्लियस
अंड कोशा
अंडद्वार
सहायक कोशाएं

सांतवां अध्याय

राजस्थान के कुछ जन्तु एवं पौधे

किसी भी स्थान के पौधे व जन्तु वहा की भूमि व जल-वायु के अनुसार होते है। राजस्थान की भूमि और जलवायु विभिन्न स्थालो पर भिन्न-भिन्न है। इसीलिए राजस्थान मे भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे व जन्तु पाए जाते है। अधिक उष्ण जलवायु मे व रेतीले भाग मे ऐसे जन्तु पाए जाते है जो कि कम पानी और अधिक गर्मी मे जीवित रह सकने मे समर्थ हैं। ऐसे स्थान पर पाए जाने वाले पौधे भी अधिक ताप व पानी की कमी में अपना जीवन यापन कर सकते है। इसके विपरीत राजस्थान के ऐसे भागों मे जहां की जलवायु नम होती है और पानी की अधिकता होती है, वहां पर ऐसे पौधे पाए जाते है जो कि अधिक पानी मे ही उत्पन्न हो सकते है। यहां पर रहने वाले जन्तु भी इस वातावरण के अनुसार अपने आपको बना लेते है और अपना जीवन सुगमता से व्तीत करने मे समर्थ होते हैं।

भूमि के अनुसार हम राजस्थान को मुख्य ३ भागो मे विभाजित कर सकते है।

1. उत्तर पश्चिम का रेगिस्तानी भाग।
2. पूर्व का मैदानी भाग।
3. दक्षिण पूर्व का पठारी भाग।

उत्तर पश्चिम का रेगिस्तानी भागः—इस स्थान में रहने वाले जन्तु अधिकतर ऐसे होगे जो कम पानी और उष्ण जलवायु में जीवित रह सकें। रेगिस्तानी भाग मे पाए जाने वाले पौधों में मुख्य बबूल, खेजड़ा, कर, गूंदी, फोग, आकड़ा, बेरी, बेर आदि है। इनके अतिरिक्त नागफनी, आम, अनार, पपीता, मालटा, संतरा, पीपल, बड़ आदि भी जोधपुर गंगानगर आदि जिलो मे पाए जाते है। रेगिस्तानी भाग में पाए जाने वाले पौधों में अधिकतर छोटी-छोटी पत्तियां पाई जाती है जिससे कि पत्तियो द्वारा पानी का वाष्पीकरण कम से कम हो। इन पौधो की जड़े काफी दूर-दूर तक भूमि के भीतर फैली रहती हैं। ताकि ये भूमि के भीतर से अधिक गहराई से पानी का शोषण कर सके। कुछ पौधे तो उष्ण जलवायु में रहने के लिए अपने में विशेष परिवर्तन कर लेते है। जैसे नागफनी नामक पौधे मे पत्तियां तो कांटों का रूप धारण कर लेती हैं ताफि उनके द्वारा पानी का वाष्पीकरण कम हो तथा तना हरा होकर गुदेला हो जाता है। और पत्तियों का का कार्य करने लगता है।

इस स्थान मे पाए जाने वाले जन्तुओं में ऊंट, हिरण, भेड़, बकरी, चीतल, तीतर, गिरगिट, खरगोश, गिद्ध, सांड, गोह, सांप, बिच्छू, चूहा, छछूंदर, तोता, छिपकली आदि मुख्य है। इनमें से अधिकांश जन्तुओं का काम पानी और मोटे चारे से चल जाता है। जोधपुर में मलानी नाम के स्थान के घोड़े प्रसिद्ध हैं। नागौर के बैल तो सारे देश मे मशहूर ही है। ये बहुत ऊचे और मजबूत होते है। इसी तरह बीकानेर मे पुगल तथा पश्चिमी राजस्थान मे सांचोर की गाये मशहूर हैं। राजस्थान के हर भाग मे गधे और भैंस पाए जाते हैं। और इनका लाभ तो हम सभी जानते है।

पूर्व का मैदानी भागः—यहां पानी की अधिकता के कारण लगभग सभी प्रकार के पौधे प्राप्त हो जाते है। आम, इमली, जामुन, शहतूत, पपीता, नीम, बड़, पीपल आदि पेड यहा अधिकता से प्राप्त होते हैं। कोटा के आस-पास अफीम की भी खेती की जाती है। यहा के तालाबो मे सिंघाडे की खेती भी की जाती है और यहा के जगलो से कत्था भी प्राप्त होता है। यहा के जंगलों मे पाए जाने वाले जन्तुओ मे शेर, चीता, हिरण, मोर, भालू, गीदड़, लोमड़ी खरगोश, तोता, जुगनू, बन्दर आदि हैं। तालाबो मे विभिन्न प्रकार की मछलिया पाई जाती है और मगरमच्छ तथा कछुए भी पाए जाते है।

दक्षिण पूर्व का पठारी भागः—यहां जंगल अधिक है, इसलिए यहां पर हमे ऐसे पेड़ पौधे मिलते हैं जो नमी वाले स्थानो मे जीवन व्यतीत करते है। इनमे नीम, बड़, गूलर, पीपल, कत्था, आम, जामुन, करौदा, शहतूत, आंवला आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार की जड़ी बूटिया भी यहा के जगलो मे प्राप्त होती हैं। इन जंगलों मे जो कि दक्षिण पूर्व की ओर फैले है–शेर, चीते, जरक, लोमडी, सूअर, मोर अधिक होते है। कही-कही पर भेड़िये भी पाए जाते हैं। बन्दर तो सभी जगह मिलते है। कुम्भलगढ के जगलो मे भालू भी पाए जाते है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थान मे पाए जाने वाले जन्तु व पौधे वे दोनो प्रकार सम्मिलित हैं जो उष्ण जलवायु मे रह सके तथा कम पानी से अपना जीवन चला सके और वे अधिक पानी तथा नम जलवायु मे रह सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रेगिस्तानी जन्तु एवं पौधो की विशेषता लिखिए।
2. मैदानी भाग मे किस प्रकार के जन्तु और पौधे पाए जाते है?
3. पठारी भाग में पाए जाने वाले जन्तुओं एवं पौधो का वर्णन करे।

आठवाँ अध्याय

वनस्पति जगत का सरल वर्गीकरण

(General classification of Plant Kingdom)

प्राचीन काल से ही वनस्पति वैज्ञानिकों को पौधों के विषय में ज्ञान था। लेकिन वे सब पौधों को सरल रूप से एक साथ न रख सके थे। इस तरह उनको इनके विषय का ज्ञान प्राप्त करने मे कठिनाई पड़ने लगी। जैसे जैसे पृथ्वी पर विकास होता गया, उसी के अनुसार इन वैज्ञानिकों के विचार भी बदलते गए। उन्होने देखा कि संसार में इन पौधो की संख्या बहुत अधिक है और उनका एक साथ अध्ययन करना प्रायः असम्भव है, इसलिये उन्होने इनको भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बाट दिया। यह बंटवारा उन्होने उनके कुछ विशेष गुण को ध्यान में रखते हुए जो कि एक दूसरे से समान थे, किया और इसी प्रकार ज्यो-ज्यो विकास होता गया वैज्ञानिको के विचार भी बदलते गये और उन समानताओ एव गुणों की अनुसंधान मे लग गये जिनके कारण वह आसानी से वनस्पति जगत का विभाजन कर सकते थे। इस प्रकार इस युग मे इस वनस्पति जगत का वर्गीकरण चरम सीमा तक हो चुका है। अतः ससार मे मिलने वाले इन सभी पौधो का जो अपने समान गुणो के आधार पर भिन्न-भिन्न कक्षाओ मे बांटे गये हैं, उसे उनका वर्गीकरण कहते हैं।

संसार मे पाये जाने वाले पौधो की अनेक जातियां हैं। इन सब का अध्ययन करना असम्भव है। यह पौधे एक दूसरे से अनेको बातो मे समान है तो अनेको बातों मे भिन्न भी हैं। विभिन्न पौधो के जीवन के अनेको भिन्न अवस्थाओं में पाई जाने वाली भिन्न-भिन्न रचनाओ की समानना और असमानता के आधार पर, अनेक अध्ययन का एकमात्र साधन उनका वर्गीकरण है। प्रत्येक गुणो को मुख्य-मुख्य कुछ पौधो का अध्ययन करने से उस श्रेणी के पौधो के विषय मे ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पृथ्वी पर करीब $2\frac{1}{2}$ लाख के लगभग पौधे देखने को मिलते है। कुछ ऐसे भी है जो लाखों वर्ष पूर्व खूब फूलते थे, लेकिन अब इनका अवशेष चिन्ह भी नही मिलता। इस प्रकार के पौधों को Fossils कहते है।

अपनी सरचना आकार प्रजनन या विकास क्रम के आधार पर ससार की कुल वनस्पति को दो प्रधान कक्षाओ मे बांटा जा सकता है—

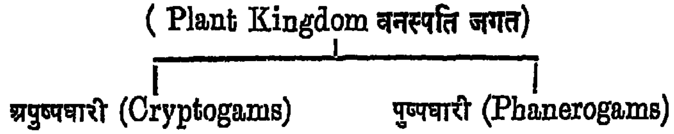

1. "क्रिप्टोगम्स"-अपुष्पधारी (अपुष्पोद्भिद Non Flowering Plants) :—यह वह पौधे है, जिनमे पुष्पो का अभाव होता है। इनमे फूल या फल नही लगते है और न बीज ही उत्पन्न होते है । नये पेड-पौधो की उत्पत्ति बिना बीज के ही होती है। इस प्रकार उत्पादन क्रिया बिलकुल भिन्न होती है।

(2) फैन रोगम्स–पुष्पधारी (सपुष्पोद्भिद):—ऐसे पौधे होते हैं जो पुष्प एव बीज धारण करते है। इनके दो भाग होते है:-(1) जिनके बीज सदैव गर्भाशय मे स्थित रहते है, इन्हे गुप्त बीजधारी (ग्रीक भाषा मे वृक्ष तथा बाज) भी कहते हैं। इन पौधो मे फूल के बाद फल और बीज बनता है। बीज से तना, पेड व पौधो का जन्म होता है (2) नग्न बीज धारी–इनमे बीज गर्भाशय मे बन्द नही रहते, ग्रीक भाषा मे इसे Gymno कहते हैं।

अपुष्पधारी पौधे.—इस वर्ग मे वे सब पौधे सम्मिलित है, जिन मे फल एवं बीज की उत्पत्ति नही होती है। यह मुख्यत. निम्न तीन उप-वर्ग मे विभाजित किये जा सकते है –

(1) थैलोफाइटा:—इस उपवर्ग मे शैवाल तथा फफूंदी और जिवाणु सम्मिलित हैं।

(2) ब्रायो फाइटा —इसमे मौस या हरित तथा द्रहरित सम्मिलित है :

(3) टेरिडोफाइटा —इसमे फर्न है।

थैलोफाइटा—यह वनस्पति मे पाये जाने वाले सब पौधो मे सबसे निम्नतम प्रकार के पौधे होते है, जिन...
मे ही विभाजित होता है; इसका आकार एक पतले सूत्र के समान होता
सूत्र इतने छोटे होते है, कि हम इन्हे बिना सूक्ष्म ...
देख सकते है। इनमे कुछ तो कई फीट लम्बे भी होते
से विभाजित किया जा सकता है:—

1. शैवाल
2. फफूंदिया
3. जीवाणु

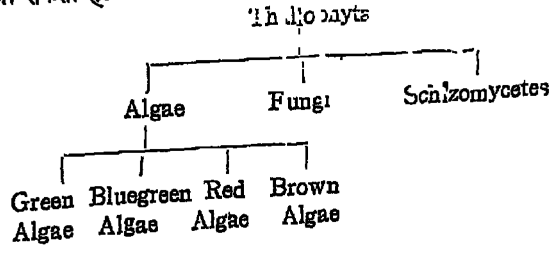

वनस्पति (Plant–Kingdom)

- पुष्पधारी (Phanerogams)
  - गुप्त बीज धारी (Angiosperm) बीज गर्भाशय मे स्थित-सुरक्षित रहता है
    - एकबीज पत्र (Monocotyledons)
    - द्विबीज पत्र (Dicotyledons)
  - नग्न बीज धारी (Gymnosperm) इसमे बीज गर्भाशय मे स्थित-नग्न रहता है
    - शकुधर (Conifers)
    - कगुताल (Cycas)
- अपुष्पधारी (Cryptogams)
  - थैलोफाइटा (Thallophyta)
    - काई या शैवल (Algae)
    - फफूदी (Fungi)
    - शाकाणु (Sehizomycetes)
  - ब्रायो फाईटा (Bryophyta)
  - टेरिडोफाईटा (Pteridophyta)

1 शैवाल—यह अधिकतर पानी व नमी के स्थान पर उगती है । यह शारीरिक रचना के कोशा से लेकर बहु-कोशी होते है । इनमे एक विशेष प्रकार के हरा रंग का पदार्थ भी भरा रहता है जो पर्णशाद कहलाता है, जिसकी सहायता से यह अपना भोजन सूर्य की रोशनी मे बनाता है । अपने रग के आधार पर यह निम्न-लिखित मुख्य चार शैवाल मे विभाजित है:—

(i) हरी शैवाल:—इसमे पर्णशाद मुख्य होता है । यह पतले धागे के समान होती है । इसका शारीरिक गठन एक कोशीय से बहुकोशीय होता है । ये गड्ढो तालावो नदी, तथा समुद्र मे पाई जाती है, इनमें उत्पादन लैंगिक तथा अलैंगिक दोनो प्रकार से होता है । इसके मुख्य उदाहरण बाल वॉक्स, स्पाइरोगारा, यूलोथ्रिक्स इत्यादि है ।

(ii) नीली-हरी शैवाल:—इसमे पर्णशाद के अतिरिक्त विशेष नीले रंग के कण होते है, जिससे इसका रंग नीला हरा दिखाई देता है । इसमे एक पदार्थ निकलता है, जिससे वह बहुत चिकना होता है । इसका उदाहरण.—ओसिलेटोरिया तथा नौसटोक मे मिलता है ।

(iii) भूरा शैवाल.—यह खारे पानी मे उगता है, इसमे पर्णशाद के अतिरिक्त भूरा कण भी होता है । यह लम्बाई मे भी बहुत अधिक होते है, इसका उदाहरण:—फ्यूक्स आदि है ।

(iv) लाल शैवाल—इसमे पर्णशाद के साथ-साथ लाल रंग के कण भी मौजूद रहते है । यह अधिकतर समुद्र मे मिलती है, इसका उदाहरण:—पोली-साइफोनिया आदि है ।

2. फफुंदिया.—इसमे पर्णशाद का पूर्ण रूप से आभाव होता है । यह अपना भोजन स्वय नही बना सकते । इसलिये इन्हे दूसरे पौधो पर एवं प्राणियो पर आश्रित रहना पड़ता है । इनका रंग प्राय: नीला, लाल, या रगहीन, लेकिन हरा कभी नही होता है । जब यह जीवित वस्तुओ से अपना भोजन प्राप्त करती है जो इन्हे परोप-जीवि कहते है, उदाहरण:—गेरुई–कन्डुआ आदि । यह मृत पौधो व जीवो से भोजन प्राप्त करती है तो मृत परोपजीवी कहलाती है । जैसे खुम्बी, अगेरिकस आदि । यह परजीवी फफुंदियां पौधो को भिन्न-भिन्न बीमारियो से पीड़ित करती है, जिससे पौधो को नुकसान होता है । यह हमारे खाने मे भी काम आती हैं । काश्मीर की गुच्छी खाने मे बडी स्वादिष्ट होती है । इसी प्रकार एग्रीकस, जिससे छत्र एवं डठल होता है, जो खानेमे भी अच्छी लगती है ।

(3) शकाणु:—यह बहुत सूक्ष्म एव एक कोशीय जीवन वाले होते है और अणुविक्षण यँत्र से ही दिखाई देते है, इनके आकार कई प्रकार के होते हे । यह गोल सैल, धागेदार, कौमा दार आदि आकार मे होते है ।

यह पैरासाइटिक जीवन व्यतीत करते है, इनकी उत्पादन क्रिया कोशा विभाजन क्रिया के द्वारा बहुत तेजी के साथ होती है। यह मानव शरीर में भिन्न भिन्न प्रकार की बीमारिया पैदा करते है।

पुष्पधारी पौधे—ये पौधे प्राय हरे होते हैं। इनका शरीर सदैव वास्तविक जड, तना और पत्तियो मे विभाजित रहता है, इनकी मुख्य विशेषता—फूल, फल एव बीज उत्पन्न करना है। यह प्रकृति में कितने ही रूप मे देखने को मिलते है। इनकी सख्या बहुत अधिक है, इनकी जातिया लगभग डेढ लाख के है, अपने प्रजनन एवं बीज के आधार प ये निम्न दो भागो मे विभाजित है :—

(i) **नग्न बीजधारी** (ii) **गुप्त बीजधारी**।

नग्न बीजधारी—इनके बीज सदैव नग्न होते है, अर्थात् गर्भाशय का इनमे आभाव होता है। यह सदा हरे रहने वाले पेड़ होते है और अधिकतर बहुत ऊचाई पर ठडे देशो मे पाये जाते है। भारतवर्ष मे भी यह पेड़ पर्वतो पर बहुतायत मिलते है। इस कक्षा के सब पौधे काफी बड़े होते है, जो एक वृक्ष का रूप धारण करते है। इनमे पूर्व विकसित जड, तना, पत्तिया होती है। इनमे पंखडी का आभाव होता है। इसके भी दो भाग है :—

(i) **शंकुधर** (ii) **कंगुताल**।

चीडके नर शकु

देवदार तथा सनोवर की लकडी बहुत ही कीमती व मजबूत होती है। जो हमारे लिए बड़ी उपयोगी भी है, इनकी ही देन है।

शंकुधर—यह पर्वती प्रदेशो मे बहुत अधिक सख्या मै मिलते हैं। इनके फूल का आकार एक शक के आकार सा होता है, जिन्हे Conus कहते है, इसी आधार

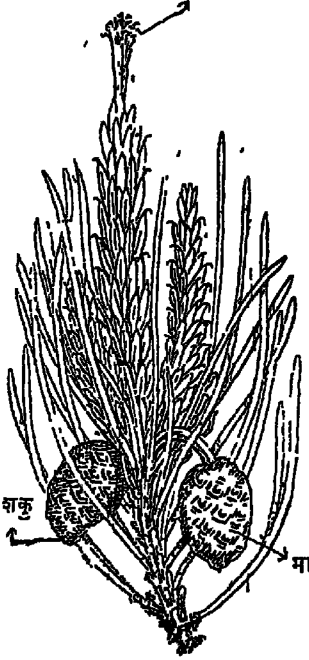

पर इस कक्षा को शंकुधर करते है। यह फूल एक लिंगी होता है, परन्तु नर तथा मादा दोनों प्रकार के पुष्प अलग अलग शंकु मे एक ही वृक्ष पर मिलते है।

इनकी पत्तिया सुई की भाति पतली, नुकीली, गोल एव सदा बहार होती हैं। इनकी बाहरी सतह चिकनी तथा मोटी होती है। एक बार उत्पन्न हुई पत्ति तीन या चार साल तक लगातार जीवित रहती है। इस वर्ग के मुख्य उदाहरण चीड देवदार, मोरपखी और सनोवर के वृक्ष है, ये पेड बहुत ही लाभ प्रद है। चीड की लकडी, दियासलाई व पेन्सिल बनाने मे उपयोगी है। इससे एक तेल निकलता है जो तारपीन का तेल कहलाता है। मोम जैसा पदार्थ इसमे निकलता है, जो रेसिन कहलता है।

(2) कंगुताल–साधारणतया यह शाखाहीन होता है, लेकिन ऊपरी भाग मे पत्तियों का एक गुच्छा होता है। यह पत्तियां एक पंखे के समान होती है, जो अनेक वर्षों तक एक लिंग रहता है। अर्थात् मादा व नर अंग एक ही वृक्ष पर न मिलकर, भिन्न भिन्न वृक्षों पर मिलता है। यह शंकुधर की तरह अधिक ऊंचे नही होते है। इनकी पत्तियां फर्न से अधिक मिलती जुलती होती है।

साइकस (Cycas)

(2) गुप्त बीजधारी :—इनके बीज ढके रहते है। अर्थात् वह गर्भाशय के भीतर स्थित रहते है। यह पौधे भी बीज पत्र के अनुसार दो भागो में बांटे जाते है।

पहले वह एक, जिनमे बीजपत्र की सख्या केवल एक ही होती है, उन्हे एक बीज पत्री पौधे कहते है। जैसा मक्का, चावल, गेहू आदि। तथा दूसरे वह है, जिनमे बीज पत्र की संख्या एक न होकर इससे अधिक होती है, उन्हे द्विबीज पत्री कहते है। जैसे चना, मटर, सेम इत्यादि।

इनके रूप भिन्न भिन्न देखने को मिलते है :—कुछ शाकीय होते है, जो एक साल तक जीवित रहते हैं। दूसरे झाड़ी, जो आकार मे छोटे तथा दो साल तक जीवित रहते है। तीसरे वृक्ष, जो बहुत ही बडे व पूर्ण विभाजित होते है। इनकी आयु बहुत अधिक होती है। यह सब निश्चित समय मे अपने जीवन चक्र को समाप्त कर लेते है। पूर्ण विकसित—यह पौधे निम्न तीन भागो मे विभक्त होते है :—

(1) भूमि मे रहने वाले।

(2) जल मे रहने वाले पौधे।

(3) रेगिस्थानी पौधे।

(1) भूमि में रहने वाले पौधे—जो भूमि पर रहते है—इनकी संख्या बहुत

भूस्तारी (सकर),

अधिक है। इनकी जड़ें मजबूत होती है जो पृथ्वी मे से पानी सीचती है। इनका तना विभाजित एव शाखायुक्त होता है। इनके भिन्न भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। यह प्रतानी, भूस्तारी, परजीवी आदि हो सकते हैं। उदाहरण—चमेली, अमरूद गुलाब व इमली आदि।

(2) जल मे रहने वाले पौधे :—यह सदैव जल मे रहते हैं। यह प्राय पानी मे डूबे रहते है। जैसे हाईड्रेला तथा वेलीमनेरिया, इनकी पत्तियां पतली रेशो के समान होती है। कुछ पानी पर तैरती भी है। जिन्हे Floaing Roots कहते

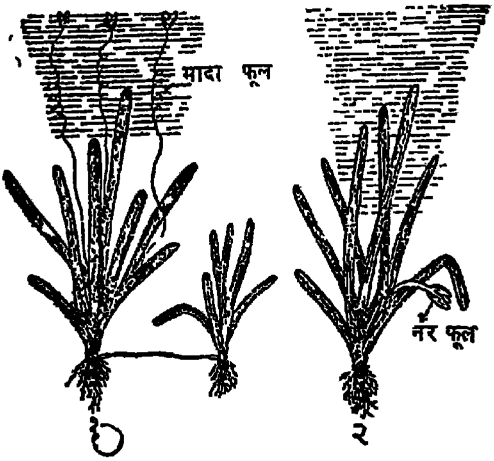

—वैलिसनेरिया (सिवार)

हैं। यह गैसो का आदान-प्रदान करती है। उदाहरण—सिंघाड़ा आदि कुछ पौधे जल एवं हवा दोनो ही मे पूर्ण रूप से रहते हैं। उदाहरणः—सेनीटेरिया।

(3) रेगिस्थानी पौधे—यह पौधे रेगिस्तान एव शुष्क स्थानो पर मिलते हैं। इनकी जड़े बहुत ही लम्बी होती हैं। यह कडी धूप, पानी की कमी आदि से रक्षा

करने के लिए इनकी पत्तियां बहुत ही छोटी तथा अधिक मोटी होती है। इनका

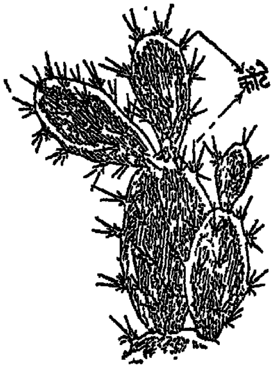

नागफनी

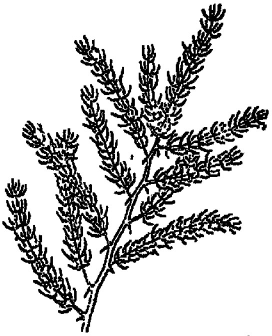

सतावर (asparagus)

तना प्रायः छोटा तथा चपटा व शाखाहीन होता है। उदाहरणार्थ नागफनी, बबूल कोकोलोका सतावर आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) वनस्पति वर्गीकरण से क्या समझो है ? उदाहरण सहित उत्तर लिखें।

(2) जिम्नोस्पर्म तथा ऐनीजयोस्पर्म मे अन्तर बतलाते हुए उदाहरण द्वारा अपने उत्तर की पुष्टि करे।

(3) अपुष्पधारी पौधों का सम्पूर्ण विवरण उदाहरण सहित लिखे।

(4) शैवाल के मुख्य मुख्य क्या लक्षण हैं ? फफूंदी से उनका अन्तर समझावे।

(5) नीचे लिखे पर टिप्पणियां लिखे:—

(i) शकाणु, (ii) शंकुधर (iii) ब्रायोफाईट।

नवां अध्याय

जन्तु जगत का सरल वर्गीकरण

संसार में मिलने वाले जन्तुओं की संख्या बहुत ही अधिक है और इनकी अनेको जातियां होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक जीव जन्तु का अध्ययन करना असम्भव सा है। कुछ ऐसे भी जन्तु हैं जिनका रहन-सहन खान-पान शरीर रचना अन्य जन्तुओं से मिलती जुलती हैं। इन्हीं आधार को लेकर जन्तु विज्ञान के वैज्ञानिको ने इन्हें कई श्रेणियों में बांटा है जिससे इसका अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। ऐसे जन्तु जिनमें बहुत कुछ समानता है उन्हें एक ही कक्षा में रखकर उनके समान सब लक्षणो का अध्ययन करके उनके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, अतः इस सिद्धान्त को, जिसके अनुसार उन जन्तुओं को, जिनके प्रायः समान लक्षण हैं, एक ही कक्षा में रखकर विभाजन करने को वर्गीकरण कहते हैं। यह वर्गीकरण जन्तुओ के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराने में अवश्य सहायक हो सकेगा। वैसे तो जन्तुओं को उनके श्रेणियों और कक्षाओ में बाँटा गया है। श्रेणियां केवल 20 ही हैं, लेकिन हम निम्नलिखित वर्गीकरण में अनावश्यक श्रेणियो को नहीं ले रहे हैं, क्योकि वे ऊंची कक्षाओं के लिए ही उपयोगी हैं।

समस्त जन्तुओं को दो श्रेणियों में बांटा गया हैः—(1) अपृष्ठ वंशीय या मेरु दण्ड विहिन जन्तु (2) पृष्ठ वंशीय या मेरु दण्ड धारी जन्तु।

1. **अपृष्ठ वंशीयः**—अपृष्ठ वंशीय श्रेणी में उन जन्तुओं को रखा जाता है जिनमें रीढ की हड्डी उपस्थित नही होती है अर्थात् रीढ की हड्डी का पूर्ण रूप से अभाव रहता है, इन्हे अपृष्ठ वंशीय अथवा Invertebrates कहते हैं। उदाहरणः—मच्छर, केंचुआ, टिड्डी, बिच्छु, मकड़ी, घोंघा इत्यादि।

2. **पृष्ठ वंशीयः**—इनमें वे जन्तु रखे गये हैं जिनमें रीढ की हड्डी होती हैं और इसी कारण उनका रूप निश्चित रहता है। इन जन्तुओं को पृष्ठ वंशीय जीव अथवा Vertebrates भी कहते हैं। उदाहरणः—मछली, सर्प, तोता मनुष्य इत्यादि।

जन्तु जगत
Animal kingdom

- पृष्ठ वंशी — Chordates (Vertebrates)
  - मत्स्य श्रेणी (Pisses) उ० मछली
  - मंडूक श्रेणी (Amphibia) उ० मेंढक
  - सर्प श्रेणी (Reptilia) उ० साप
  - पक्षी श्रेणी (Aves) उ० तोता
  - स्तन पोषी श्रेणी (Mammalia) उ० गाय
    - अण्डे वाले स्तनधारी (Prototheria) उ० इकिडना
    - थैले वाले स्तनधारी (Metaheria) उ० कगारू
    - नाल वाले स्तनधारी (Eutheria) उ० मनुष्य
- अपृष्ठ वंशी — Non Chordates or Inverteberates
  - एककोशीय जन्तु (Protozoa) उ० अमीबा
  - बहुकोशीय जन्तु (Metazoa)
    - पोरी फेरा (Porifera)
    - सिलेंट्रेटा (Coelenterata)
    - प्लेटी हेलमेन्थीज चपटे कीड़े (Platyhelminthes) or Flat worms
    - निमेटोड बेलनाकार कीड़े (Nematodes or Round worms)
    - आरथ्रोपोडा (Arthropeda)
      - कीट वर्ग (Insecta)
      - केकड़ा वर्ग (Crustasea)
      - मकड़ी वर्ग (Arachnidea)
      - बहुपादीय वर्ग (Myriapoda)
    - इकाईनोडरमेटा (Echinodermata)
    - मोलस्का (Mollusca)

अपृष्ठ वंशीय या मेरुदंड विहिन जन्तु—इन जन्तुओं की पुनः दो श्रेणियां की की गई हैं (1) एक कोशीय जन्तु ।

(2) बहुकोशीय जन्तु

एक कोशीय जन्तु एक कोश के बने होते हैं और बहुकोषीय जन्तु एक से अधिक कोश के बने होते हैं ।

एक कोशीय जन्तु :—यह संसार में मिलने वाले सब जन्तुओं में

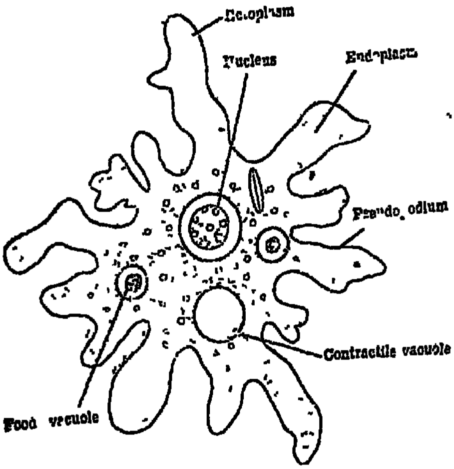

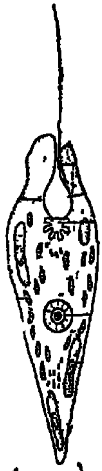

(यूग्लीना)

सबसे निम्न श्रेणी के जन्तु हैं, ये आकार में बहुत ही छोटे होते हैं तथा इनका शरीर एक कोश का बना होता है जिसमें न्युष्टि तथा जीवन रस होता है । इनकी उत्पत्ति सृष्टि में सबसे पहले हुई मानी जाती है । कभी कभी बहुत से एक कोषीय जन्तु आपस में इकट्ठे होकर एक बस्ती-सी बना लेते हैं, लेकिन प्रत्येक बस्ती का प्रत्येक कोश अपने स्वतन्त्र रूप से जीव का कार्य करता रहता है, इनमें बहुत से परजीवी जन्तु भी अनेक रोग उत्पन्न करते हैं । ये जन्तु इतने छोटे होते हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता के यह देखे नहीं जा सकते । उदाहरण — अमीबा, पैरामिशियम, प्लास्मोडियम आदि ।

बहुकोशीय जन्तु :—इस वर्ग की, जिसमें कि ऐसे जन्तु पाये जाते हैं जो कि एक से अधिक कोश वाले होते है, कई श्रेणिया की गई हैं । ये निम्न लिखित हैं :—

स्पंज

(क) पोरीफरा .—इस श्रेणी में स्पंज

सम्मिलित है। ये अधिकतर पानी के जीव होते हैं। इनमें बहुत से केवल समुद्र में एक ही स्थान पर रहने वाले जीव होते हैं। कभी कभी इनमें से पेड़ की शाखाये निकलती हैं और यह Budding द्वारा प्रजनन कार्य करते हैं। ये जन्तु अधिकतर समुद्र में चट्टानो आदि से चिपके हुए मिलते हैं। इनका शरीर छिद्रदार होता है तथा शरीर के चारो ओर छिद्र होते हैं जो कि शरीर के भीतर एक दूसरे में खुलते है और एक प्रकार की नलिका बनाते है। समुद्र का पानी शरीर में इन्हीं छिद्रो द्वारा जाता है और सब ओर का चक्कर लगाकर वापस छिद्रो द्वारा बाहर निकल जाता है। इस पानी से ये जन्तु भोजन एवं ऑक्सिजन प्राप्त करते हैं। भीतरी नलिका में जो कोष होते हैं उनमें पतले डोरें के समान की बनावट होती है जिसके हिलने से ही पानी की धारा निश्चित दिशा में बहती है। इसके शरीर का आवरण कठोर होता है जो कि कैलशियम या शिलिका के बने होते है। बाजार में जो स्पंज बिकते हैं वे इन्ही जीवो का आवरण होता है।

(ख) सिलेन्टेराटाः—इस वर्ग के जन्तु समुद्र तालाब व नाली आदि में मिलते हैं, इनका शरीर बेलनाकार व अन्दर से खोखला होता है। इनमें सिर नहीं होता और नही मल द्वार होता है, लेकिन इनके आगे की ओर एक छिद्र होता है, जिसे मुख द्वार कहते हैं। इसके चारो ओर अनेक सूत्रक लगे रहते है, जिनकी सहायता से ये जन्तुओ को पकड़ते। ये छिद्र जिसे मुख द्वार कहते है, भोजन नली में खुलता है और इस छिद्र के द्वारा भोजन; भोजन नली में तथा अवशेष भी इसी छिद्र द्वारा वापिस बाहर कर दिये जाते हैं। इनमें देहुआ नहीं पाया जाता है और ये अधिकतर स्थिर एवं धीरे धीरे चलने वाले जन्तु होते है। कभी २ इन जन्तुओं में कुछ ऐसे कोष भी पाये जाते हैं जो दूसरे जन्तुओं पर आक्रमण कर उन्हे कार्यहीन बना देते हैं। इन कोषो को स्टिंगिंग सेल कहते हैं। इस श्रेणी के जन्तु दोनो प्रकार से अर्थात लेंगिक और अलेंगिक विधि से प्रजनन करते हैं, उदाहरण हाइड्रा, ओवेलिया, सी अनेमोन, कोरल आदि। मुंगा जो कि इसी श्रेणी का जन्तु है,

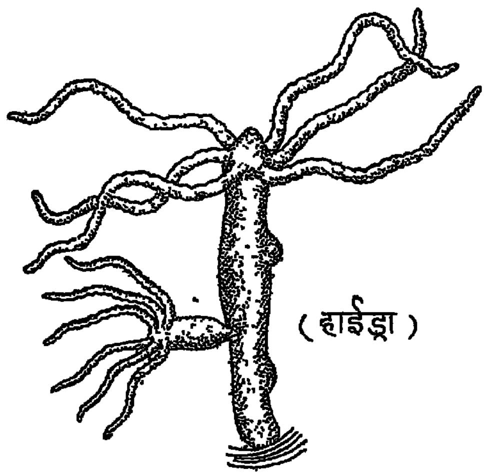

(हाईड्रा)

चट्टानो से चिपका रहता है और कुछ ही समय में एक समूह या झुंड बना कर एक बड़ा समूह जिसका आकार पेड़ जैसा होता है, बना लेता है । आस्ट्रेलिया के पूर्वी किनारे पर हजारों मील लम्बे तथा लंका और भारत के बीच कई स्थानों पर इसी मूंगा की अनेको चट्टाने हैं । बाजार में जो मुंगा कपड़ा बिकने को आता है वह इन्हीं मुंगों का ककाल मात्र होता है ।

(ग) फाइलम, प्लैटीहेल, मेन्थीज या चपटे कीड़े —

यह कीड़े सदैव चपटे चिकने और पतले होते हैं, इनका आकार पत्ती योरिबन जैसा होता है, लेकिन इसमें मल द्वार नहीं होता है । बहुत से जन्तु पानी में और कुछ

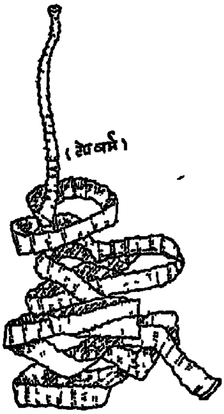

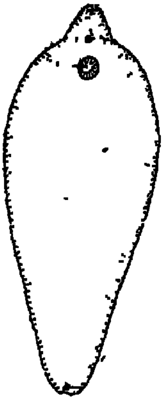

(लीवर फिल्यूक)

जन्तु परोप जीवी होते हैं । लिवर फलूक और टेपवर्म इस कक्षा के मुख्य उदाहरण हैं । लिवर फलूक जड़ों की आतों में और टेपवर्म मनुष्य की आतो में पर जीवी के रूप में रहते हैं । इनके शरीर के अकले सिरे पर काटे के समान अङ्ग होते हैं, जिनसे यह उस जन्तु में जिसमें परोपजीवी होते हैं, उसकी आतो में चिपक जाते हैं और आगे की ओर रहने वाले छिद्र से जिसे मुख द्वार कहते हैं, उनका भोजन हमेशा करते हैं । ये कई प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं । उदाहरणः—प्लेनेरिया, लिवरफलूक, टिनिया, सोलयिम आदि ।

(घ) फाईलम निमेटोडा या बेलनाकार कीड़े: —जैसा कि नाम से ही विदित है, इन कीड़ो का शरीर बेलनाकार होता है । इनके शरीर में भोजन प्रणाली पूर्ण रूप से विकसित होती है तथा मुख द्वार और मल द्वार अलग अलग होते हैं । उनका शरीर लम्बा, गोलाकार और डोरे की भाति होता है । ये भी रेंगकर चलने वाले होते

हैं। इनमें कुछ परोपजीवी और कुछ स्वतंत्र रूप में रहने वाले जन्तु है। इनके दोनों सिरों कुछ निकीले होते हैं। बच्चो के मल द्वार के पास ही धागे की तरह के आकार के पाये जाने वाले कीड़े इसी श्रेणियों के होते हैं। मनुष्यों की आंतों में भी एक कीड़ा पाया जाता है जिसे एसकेरिस कहते हैं। कभी कभी मनुष्यो के पीठ से चौंच के समान जो जन्तु निकलता है, वह भी इसी के कीटाणु हैं, उदाहरण:—ऐसकेरिस, हुकवल इत्यादि।

(च) फाईलम एनेलिडा:—ये जन्तु गोल तथा बेलनाकार होते हैं और इनके पूर्ण शरीर पर गोल छल्ले से रहते हैं जिनसे शरीर भी छल्ले के रूप में विभाजित

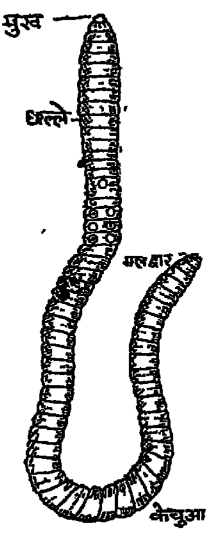

रहता है। इनके शरीर में पूर्ण विकसित नली होती है, अतएव एक सिरे पर मुख द्वार तथा दूसरे सिरे पर मल द्वार स्थित होता है। इन जन्तुओ के कान व नाक इत्यादि नहीं होते है। ये अपनी त्वचा से सांस लेते है। इनमें प्रजनन के लिए कुछ विशेष आकार शरीर पर लगे रहते हैं। रक्त संस्थान बन्द होता है और भोजन नली के ऊपर की ओर होता है। मस्तिष्क और नाड़ी सस्थान भी पूर्ण विकसित होते है। शुषुम्ना भोजन नली के नीचे की ओर होता है। कैंचुआ इसका उदाहरण है। यह मिट्टी में घुसा रहता है तथा किसानो के लिए पूर्ण मित्र के रूप में पुकारा जाता है। क्योकि ये खेत की मिट्टी के अन्दर

घुसकर छिद्र करते है और छिद्र करते समय मिट्टी को खाते हैं। इस मिट्टी से ये अपना भोजन ग्रहण कर अवशेष बाहर निकालते रहते है जिससे मिट्टी पोली तथा भुरभुरी हो जाती है, इससे हवा को अन्दर तक जाने मे सुविधा होती है। जोक भी इसी श्रेणी का जन्तु है। इसके अगले तथा पिछले सिरे पर चुंसक लगे रहते है जिनसे यह अन्य जन्तुओं का रुधिर चूंसता रहता है।
उदाहरण:—नीरीज, कैंचुआ, जोक इत्यादि।

(छ) फायलम आरथोपोडा (Phylum Arthropoda).—इन जन्तुओ का शरीर एक आवरण से सुरक्षित रहता है जिसे एक्सो-स्कैलटन कहते है। ढाचा क्यूटिकल नामक पदार्थ का बना होता है, जिनकी टागे जोडदार होती हैं और मुख

पर विशेष अग होते है । इनमे सयुक्त आखें पायी जाती है । हृदय भोजन नली के ऊपर की ओर तथा नाडी सस्थान नीचे की ओर रहता है । सास की क्रिया गलफड़े अथवा ट्रैकिया से, जिसे कि वायु नली कहते है, होती है । भोजन नली पूर्णतया विकसित होती है । रक्त सस्थान बन्द नही होता बल्कि खुला रहता है । विसर्जन के लिए मेलपीघीयन केप्स्यूल या रीनल ग्लान्डस होती है । इनमे नर और मादा अलग-अलग पायी जाती हैं और निश्सेचन क्रिया शरीर के भीतर होती है । इस ढांचे का विकास अधिक मैटामोरफोसियस या रूपान्तर द्वारा होता है । इनको निम्न चार उपवर्गों मे विभाजित किया गया है:—

(1) केकडा वर्ग (Crustacea):—इस कक्ष में दो जोडी एन्टीनी (सूघने वाले अग) पाये जाते हैं । शरीर अधिकतर ऊपर की ओर से एक कठोर आवरण से ढका रहता है जिसे केरापस कहते हैं । अधिकतर ये जीव पानी अथवा समुद्र मे रहने वाले होते है । इनके 10 या अधिक टागे होती है और अगली टागो पर काटे होते हैं । इनसे यह सूओ को आसानी से पकड सकता है । स्वसन क्रिया गलफड़ो के द्वारा होती है । उदाहरण:—केकडा, झीगा मछली, पानी की मक्खिया आदि ।

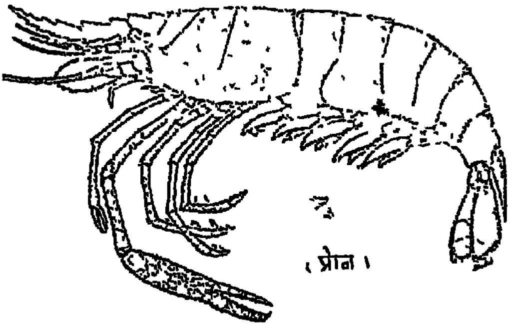

(प्रोन)

(2) कीट वर्ग (Insecta):—इनका शरीर तीन भागो मे विभाजित रहता हैं जो क्रमश. सिर, वक्ष और उदर कहलाते है । इस मे केवल एक जोडी एनटीनी पाई जाती हैं । इनमे वक्ष से जुडी हुई तीन जोडी जोडदार टागे होती है । कभी-कभी इनमे एक या दो जोडी पाखे की भी होती है जो कि वक्ष से जुड़ी रहती है । इनके उदर मे टागे नही पायी जाती है । शुपुम्ना क्रिया वायु नली या टेकरियर से होती है । यह जन्तु बहुत अधिक समझ का प्राणी होता है और करीब पौन लाख जातिया

इनकी अभी तक मालूम की गई है। उदाहरण-खटमल, मक्खियां, तितली, दीमक, चींटी, टिड्डियां, मच्छर, मधुमक्खी आदि।

(3) आरकनीडा (मकडी वर्ग):—इस कक्षा के जन्तुओ का सिर और वक्ष आपस मे जुडे रहते है और जुड कर सीफेलोथोरेस नामक रचना बनाते है। इनमे एनटीनी नही होता है। इनमे चार जोडी जोडदार पाव या पैर पाये जाते है। इनमे

पाखे कभी नही होती है। आखे साधारण होती है और अधिकतर ये पृथ्वी पर चलने वाले जन्तु होते है। उदाहरण—बिच्छु, मकडी, किलनी, माइट इत्यादि।

(4) बहुपादिय वर्ग (Class Myriopoda):—इस श्रेणी के जन्तुओ का शरीर लम्बा व बेलनाकार होता है तथा यह सिर, वक्ष और उदर आदि किसी भाग मे भी विभाजित नही होता है। शुरू से अन्त तक ये समान होते है। केवल सिर,

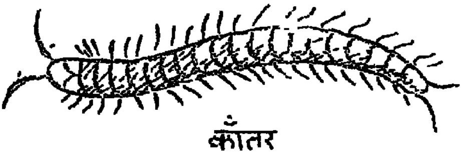

कांतर

पर थोडे छोटे होते है। इनमे छल्ले जैसे विभाजन रहते है और प्रत्येक विभाजन मे एक या एक से अधिक जुडी टागे होती है। इनमे एक जोडी आखे और एनटीना पाया जाता है, उदाहरण—कनकखूरा या कांतर आदि।

सीप श्रेणी:—इनके सिर पर एक कोमल त्वचा चढ़ी रहती है, जिसे मेन्ठल कहते है। ये मेन्टल कैलशियम कारबोनेट का एक कठोर आवरण अपने से कुछ दूर बनाता है जो कि इनके सारे शरीर पर एक कडी सीप बना देता है जिससे ये सुरक्षित रहते है। ये अधिकतर समुद्री जन्तु है और तालाबो आदि मे भी पाये जाते है। इनका नाडी सस्थान व रूधिर रास्थान पूर्णतया विकसित रहता है। भोजन नली भी पूर्ण रूप से विकसित रहती है। उदाहरण—घोंघा, सीप, कोडी, शंख, आक्टोपस, डेन्टेलियम आदि। जो शख मन्दिर मे बजता है वह इसी वर्ग का जन्तु खोखला मात्र है। जो मोती हमे प्राप्त होते है वे सीप से ही बनते है। इनकी शरीर रचना भी मॉसपशियो की होती है।

फायलम इकाइनोडरमेटा:—ये जन्तु केवल समुद्र में मिलते है और गोलाकार होते है, इनमे कैलशियम कारवोनेट के स्पज और पेलटस होते है जो कि इनकी त्वचा

स्टार फिश

में घुसी रहती है । इनके शरीर के भीतर पानी रक्त नलिका जब जुडी रहती है, वह प्रजनन के काम मे आती है । कई जन्तुओ मे इनमे शरीर के एक ही केन्द्र से 5 भुजाये निकलती है । पानी रूधिर नलिका से ये जन्तु भोजन ग्रहण करते हैं। उदाहरण—सितारा मछली, समुद्री अरचिन, सी अरचस, ओफिउरा एनटोडोन हालुतेरिया आदि ।

पृष्ठवंशीय जन्तु :—इन जन्तुओ मे तीन निम्नलिखित ऐसे गुण है जो कि

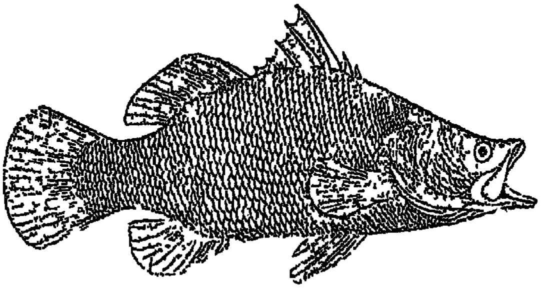

उनके जीवन काल मे किसी न किसी समय ही उपस्थित रहते है। (1) केन्द्रीय नाड़ी मण्डल अर्थात् मस्तिष्क और सुषुम्ना (जो कि खोखली होती है) पीठ की ओर रहते है। (2) गलफडे इनके जीवन की किसी न किसी अवस्था मे अवश्य ही उपस्थित रहते है। (3) नीचे कई जीवन के किसी न किसी काल मे अवश्य ही उपस्थित रहती है। इस श्रेणी को कई श्रेणियो मे बाँटा गया है, जो निम्नलिखित है :—

मत्स्य श्रेणी या मीन श्रेणी :—जल मे रहने वाली मछलिया श्रेणी की

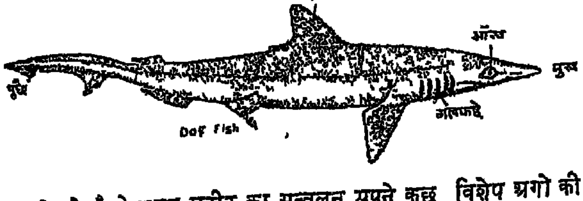

प्रमुख जीव है जो तैरते समय शरीर का सन्तुलन अपने कुछ विशेप अगो की सहायत

से करती है, जिन्हे फिन्स कहते है। फिन्स का होना इनकी विशेषता है। इनमें गलफड़े होते है जिनके द्वारा ये जल मे ही साँस लेती रहती है। इनमे नोजल केप्सूल कभी भी मुख द्वार के साथ नही मिलते है। त्वचा पर कुछ कठोर आवरण जिन्हे स्केल्स कहते है, पाये जाते है। अत. इन जन्तुओं का शरीर स्केल्स के द्वारा ढका रहता है। हृदय मे केवल दो कोष्ठ होते है जो Entricle और दूसरा Ventricle कहलाता है। ये शीत रुधिर प्राणी है और इनके शरीर का तापक्रम वातावरण के अनुसार घटना बढता रहता है। इनमे मल और मूत्र द्वार के छिद्र अलग अलग होते है। डिम्ब जब मादा के शरीर से बाहर आ जाता है तब नर के शुक्र द्वारा उनमें प्रजनन होता है।

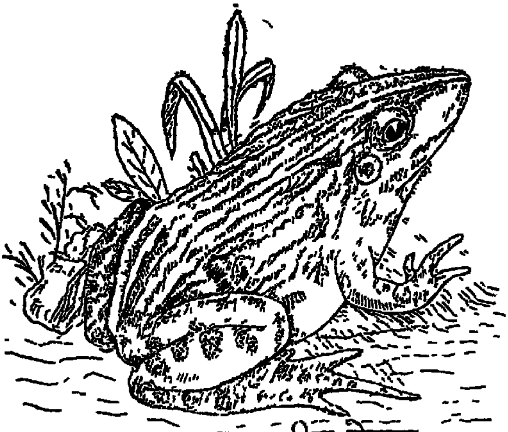

भारतीय मेंढक

मंडुक श्रेणी :—इस प्रकार के जन्तु पूर्णतया जलचर और थलचर जन्तुओं के बीच के स्थान को भरते है। इनका शरीर चिकना मुलायम और लसलसा तरल पदार्थ युक्त होता हैं। इस श्रेणी का मेंढक प्रमुख जीव है। पैदा होने पर इनकी आकृति मछली के समान होती है, जिसे टैडपोल कहते है।

सर्प श्रेणी :—ये अधिकतर भूमि पर रहने वाले जीव होते हे जिनमे

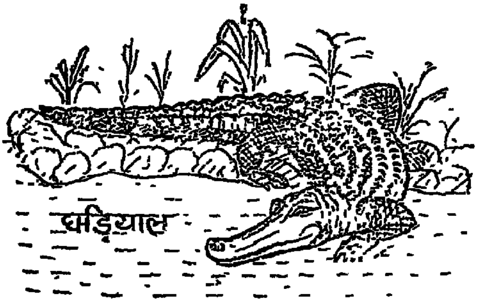

घड़ियाल

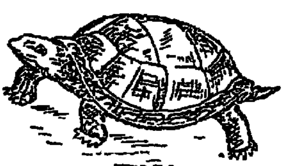

कछुआ

रूपान्तर की क्रिया नही पाई जाती है। ये जन्तु मेढक की तरह अपने अडे कभी पानी मे नही देते हैं। इनका शरीर भी स्केल्स द्वारा ढका रहता है। ये फेफड़ो द्वारा सास

लेते है। इनका शरीर बहुत अधिक विकसित और विभाजित होता है, लेकिन कुछ जन्तुओ में भुजायें नही होती है, जैसे सर्प। शरीर का आवरण ही इनकी रक्षा करता है। कछुवे मे तो यह आवरण बहुत ही मोटा और मजबूत होता है। ये जन्तु अंडे से जब निकलते है तो सदैव फेफडे युक्त होते है और इनमे गलफड़े नही पाये जाते है। इनका हृदय चार कोष्ठो का बना होता है। प्रजनन क्रिया मादा के शरीर मे ही डिम्ब नालियो मे होती है जिनसे अडे निकलते हैं और शरीर से बाहर आने पर अडे का विकास होता है। उदाहरण—सर्प जिसकी दो सौ से भी अधिक जातिया विषैली होती है, जिनमे छिपकली, गिरगिट, घड़ियाल, मगरमच्छ, कछुआ आदि है।

(घ) पक्षी श्रेणी—इस श्रेणी के उदाहरण समस्त पक्षी हैं। इनकी विशेष पहिचान एवं मुख्य गुण इनके पख हैं जिनसे ये वायु मे विचरण करते है। इनकी हड्डी मे रिक्त स्थान होते है जिनमे वायु भरी रहती है जिससे इनका शरीर बहुत ही हलका हो जाता है और उडने मे सहायक होता है। इनके शरीर का तापक्रम स्थिर रहता है अर्थात घटता बढता नही है। इन्हे उष्ण रुधिर जन्तु कहते है। इनकी दो पखयुक्त पिछली टागे होती है। अगली टागें परो के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इनका हृदय ४ कोष्ठो मे विभाजित होता है और दायी अरोटिक आर्च केवल उपस्थित होती है, बायी नही। आधुनिक पक्षियो मे पख पाये जाते है और इनका मुंह चोच वाला होता है। इनके फेफडे भी बहुत अधिक विकसित होते है। उदाहरण—मोर, बतख, कबूतर, चिडिया, तोता, हंस, शुतुरमुर्ग वर्ग आदि।

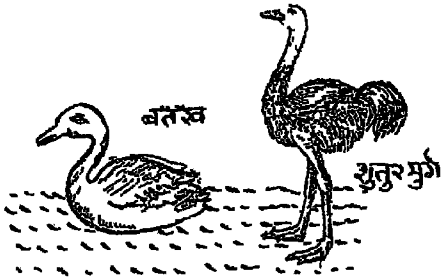

(च) स्तनपोषी—इस श्रेणी के जीवो के विशेष गुण इनके शरीर पर बालो का होना तथा मादा मे दूध देने वाले अग जिन्हे स्तन कहते है, का होना है। इनके शरीर का तापक्रम एकसा रहता है। यह अधिकतर स्थल पर अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते है। इनमे बाहरी कान पाये जाते है, इनके दांत भी कई समूहो मे उपस्थित रहते है। मल-मूत्र द्वार अलग २ होते हैं। वक्षस्थल और उदर स्थल के बीच मे बाएँ ओर एक पर्दा होता है जिसे (Diaphram) कहते है। इन जीवो के

रक्त के लाल कण न्यूक्लियस विहिन होते है और हृदय ४ कोष्टो मे बंटा रहता है तथा दायी ओर ऐरोटिक आर्च उपस्थित रहती है। स्तनधारी को पुनः निम्नलिखित तीन भागो मे बाटा गया है :—

(1) **अण्डे वाले स्तनधारी** .—ये जन्तु सर्प श्रेणियों के जन्तुओं की तरह बडे बड़े अन्डे देते है और इनके शरीर का तापक्रम भी समान नही रहता है। अन्डो से बच्चा निकलता है तथा बच्चे अन्डे से बाहर आने पर स्तनो से दूध पीने लगते है। इनका उदाहरण आस्ट्रेलिया मे पाये जाने वाले दो जन्तु है जो कि 'डक बील्ड मोल' और 'स्पीग ऐंट ईटर' कहलाते हैं।

डक-बिल्ड मोल (duck-billed mole)

(2) **थैले वाले स्तनधारी** :—इस प्रकार के जन्तु अधिकतर अमेरिका व आस्ट्रेलिया मे पाये जाते है। इनमें बच्चे कुछ काल तक गर्भाशय में बढते है तथा अपूर्ण अवस्था मे ही शरीर से बाहर निकल जाते है तथा मादा के पेट पर बनी हुई एक थैली जिसे मारसूपियस कहते है, में रख लिये जाते है। इस थैले मे मादा का स्तन होता है जिससे बच्चा मुंह लगाकर दूध पीता रहता है, इससे वह पूर्ण विकसित हो जाता है।

(3) **नाल वाले स्तनधारी** :—इनके बच्चे पूर्ण अवस्था मे पैदा होते है। इनका सम्बन्ध गर्भाशय में भ्रूण में एक नाल द्वारा होता है। इसी नाल के द्वारा बच्चा माता के शरीर से भोजन आदि प्राप्त करता है और पूर्णरूप से विकसित होने पर ही बच्चा बाहर आता है। अधिकांश पूर्ण स्तनी विकसित जन्तु इसी वर्ग मे है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कारडेट्स के क्या प्रमुख लक्षण हैं ? इस वर्ग का पूर्ण वर्गीकरण करें ?
2. आरथ्रोपोडा की विभिन्न उपवर्ग का मय उदाहरण वर्णन करें।
3. "नान कारडेटा" वर्ग के समस्त वर्ग का स उदाहरण वर्णन करे।

दसवां अध्याय

वायु और उसके अवयव

जीवित प्राणी जिनके अस्तित्व से हम परिचित है, बिना वायु के नही रह सकते। हो सकता है कि मनुष्य भोजन के बिना महिना-सवा महिना निकाल ले, बिना पानी के दो-तीन दिन रह जाय, परन्तु बिना वायु के दस-पन्द्रह मिनट भी रहना कठिन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति मे वायु का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन उचित और आवश्यक है।

आरम्भ मे लोगो की धारणा थी कि पृथ्वी चार तत्वो की और भारतीय विचारधारा के अनुसार "पच भूतानि" अर्थात् पाच भूतो की बनी हुई है। अरस्तू ने ईसा से सवा तीन सौ वर्ष पहिले इसी विचार-धारा का प्रतिपादन किया था, और उसके शब्द तो ब्रह्म वाक्य माने जाते थे जिसके फलस्वरूप लगभग 2000 वर्ष तक इसी विचार-धारा का प्रतिपादन होता रहा। यद्यपि आरम्भ मे भी यह बात तो मानी जाती थी कि वायु मे पानी की भाप विद्यमान है, परन्तु उसको वायु का एक आवश्यक अग नही समझा जाता था।

सम्भवत. पहिली बार सन् 1625 ई० मे मेओ (Mayow) ने यह सिद्ध करने के प्रयास किये कि वायु अकेला पदार्थ नही है। सन् 1772 ई० मे कुछ अन्य प्रयोग किये गये और वायु मे कार्बन-डाइ-आक्साइड का विश्वनीय अस्तित्व ब्लैक ने सन् 1655 ई० मे स्थापित किया। वायु के विषय मे सही-सही जानकारी प्राप्त करने का श्रेय लेवोजिए को हे। उसने वायु मे आक्सीजन के अस्तित्व की ठीक-ठीक व्याख्या की।

यह तो आप भलीभाति जानते हैं, कि सबके सब प्राणी स्वांस लेते है, जब हम स्वांस लेते है, तो वायु मे कार्बन-डाइ-आक्साइड की मात्रा दस हजार मे तीन भाग होती है, और जब स्वास निकालते है, तो यह मात्रा बढ़कर दस हजार मे चार सौ के लगभग हो जाती है। अत: जब हमने स्वास ली, तो कुछ और गैसें थी, और जब स्वांस निकाली तो कुछ और थी। अतः हम निश्चय पूर्वक कह सकते है, कि वायु में कई गैसें मिली हुई होती है। पहिले इस सम्बन्ध में कुछ वाद-विवाद था कि वायु यौगिक है, अथवा कुछ गैसो का मिश्रण। अब हम निम्नलिखित कारणो से निश्चयपूर्वक कह सकते है कि वायु मिश्रण है, यौगिक नही।

वायु मिश्रण है

(1) यदि वायु को बहुत अधिक दबाव पर और निम्न तापक्रम पर रखा जाए, तो वह द्रव बन जाती है। यदि इस द्रव को उड़ने देवे तो उसमें से नाइट्रोजन नाम की गैस कुछ अधिक मात्रा मे पहिले निकल जाती है और आक्सीजन उसके पश्चात्।

(2) यदि शुद्ध पानी में वायु को घोलने का प्रयत्न किया जाय तो आक्सीजन अधिक घुलती है, नाइट्रोजन कम।

(3) यदि उपयुक्त अनुपात में आक्सीजन और नाइट्रोजन को मिलाया जाय तो न शक्ति व्यय होती है, न प्राप्त ही। और यह मिश्रण वायु के समान होता है। जब रासायनिक यौगिक बनते हैं, तो शक्ति का आदान-प्रदान होता है।

(4) डीवर (Dewar) नाम के व्यक्ति ने वायु को ठंडा करके शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव से आक्सीजन को ऐसा अलग करने का प्रयास किया था।

(5) कोई भी ऐसा यौगिक आक्सीजन और नाइट्रोजन का ज्ञात नही है, जिनमे ये दोनो तत्व वायु मे विद्यमान अनुपात के अनुसार मिलकर यौगिक बनाते हो।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वायु मिश्रण है, यौगिक नही। इस मिश्रण मे प्रयोगो द्वारा सिद्ध हुआ है कि नाइट्रोजन आयतन मे 70% वृद्धि होती है। आक्सीजन 21% + कार्बन-डाइ आक्साइड 0·0 3% शेष बचे हुए भाग मे पानी की भाप, निष्क्रिय गैसे और अन्तरिक्षीय उल्कापात द्वारा प्राप्त तथा पृथ्वी से उड़ने वाले धूल के कण भी-विद्यमान होते हैं।

यह वायु जिसके निम्नतम भाग मे हम लोग रहते है, ज्यों-ज्यो हम ऊपर जाते है, विरल होती जाती है। यहा तक कि सारे वायु मण्डल की वायु का लगभग आधा भाग 6 किलोमिटर अथवा 3½ मील से कुछ अधिक ऊपर तक सीमित है, अत. पर्वतारोहियों को जब वे ऊपर जाते है, कृत्रिम साधनो द्वारा स्वास लेने के लिए घनी वायु अथवा आक्सीजन का सेवन करना होता है। ज्यो-ज्यों ऊपर जाते हैं, त्यों-त्यो आरम्भ में तो तापक्रम कम होता ही जाता है। यहा तक कि बैल्जियम के पिक्कर्ड (Piccard) नाम के व्यक्ति द्वारा समताप मण्डल (Stratosphere) जिसकी सीमा 6 मील अथवा 10 किलोमीटर से, ऊपर मानी जाती है, का तापक्रम 55° × शतांश ज्ञात किया गया था ?

वायु में भार होता है

वायु भी एक पदार्थ है। प्रत्येक पदार्थ का गुण है कि उसमे भार होता है, तो क्या वायु मे भी भार होता है ¿

प्रयोग:—दो फुटवाल के ब्लेडर प्राप्त कर उनके मुंह पर ठीक बैठने वाली वन्द नली लगाकर दोनो को सन्तुलित करो। अब एक ब्लेडर में हवा भर दो, फिर सतुलन देखो-इस हवा को निकल जाने दो, फिर सन्तुलन देखो। आप देखेगे कि पहिली और तीसरी समान है, परन्तु दूसरी बार जब ब्लेडर मे वायु अधिक दवाव पर भरी हुई थी, कुछ अधिक है।

यह तो आप जानते ही हो कि वायु दव सकती है। अत. जब भी वायु के सम्बन्ध मे कुछ कहा जाता है, तो उसके दवाव को ध्यान मे रखना आवश्यक हो

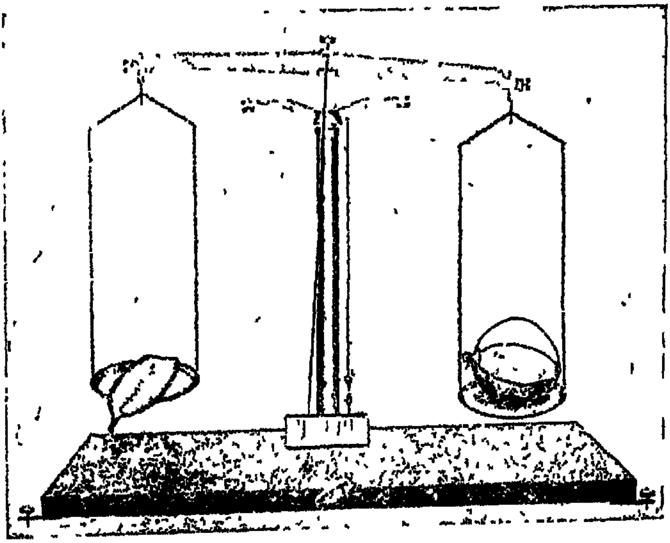

जाता है। यह दबाव पृथ्वीतल पर अत्यधिक होता है। यहा तक कि समुद्रो के किनारे वायु का दवाव 1·3 किलोग्राम्स प्रतिघन सैन्टीमीटर हो जाता है।

यदि गणना कर हम ज्ञात करे कि हमारे शरीर पर वायु कितना दवाव डालती है, तो हमे यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह दवाव लगभग तीन हाथियो के भार जितना है।

जैसा अभी बताया कि ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं, त्यों-त्यों वायु विरल होती जाती है। प्रश्न होता है, कि यह वायु कितनी ऊँचाई तक स्थित है। कुछ वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि यह लगभग 1000 मील ऊपर तक स्थित है। परन्तु जैसा कि आपको अभी बताया था, ये इस सारी वायु का लगभग आधा भाग 6 किलोमीटर तक ही सीमित है। इस दबाव को बैरोमीटर की सहायता से नापा जाता है।

अभी यह भी बताया गया था कि वायु जो हम स्वास मे लेते है, उसमे कार्बन-डाइ-आक्साइड की बहुत थोडी ही मात्रा होती है । जब स्वाँस निकालते है, तो बहुत अधिक हो जाती है । परन्तु प्राणी तो बार-बार स्वास लेते रहते है, तो यह कार्बन-डाइ-आक्साइड बढ़ती क्यो नही ? बात यह है कि पेडो के पत्तो का हरा पदार्थ जिसे क्लोरोफिल कहते है, इस कार्बन-डाई-आक्साइड को ग्रहण कर धूप की सहायता से अन्य यौगिक बना डालता है और आक्सीजन फिर वायस हवा को दे दी जाती है । अतः अनुपात ज्यो का त्यो बना रहता दे ।

सारांश—पहिले वायु को एक तत्व समझा जाता था, परन्तु हम अब निश्चय पूर्वक कह सकते है, कि वायु एक मिश्रण है, जिसमे 78% नाइट्रोजन 21% आक्सीजन, 0·03 प्रतिशत कार्बन-डाई-आक्साइड, और शेष बचे हुए भाग मे पानी की भाप, निष्क्रिय, गैसे और धूल के कण सम्मिलित है । वायु एक पदार्थ है, और पदार्थो मे भार होता ही है, इस कारण से वायु दबाव भी डालती हैं । यह दबाव पृथ्वीतल पर अत्यधिक होता है । पारे के 766 मिलीमीटर के स्तम्भ को प्रमाणिक दवाव माना जाता है । परन्तु ज्यो-ज्यो ऊपर जाते है । त्यो-त्यो यह दबाव कम होता जाता है । गणना से लोगो ने ज्ञात किया है, कि जितनी वायु ससार मे है, उसके कुल भाग का आधा लगभग ६ किलोमीटर तक ही सीमित है ।

—: अभ्यासार्थ प्रश्न :—

1. यह आप कैसे सिद्ध कर सकते है, कि वायु एक मिश्रण है, यौगिक नही ?
2. वायु के सगठन के विषय मे आप क्या जानते है ? सविस्तार लिखिए ।
3. हम लोग सदा सर्वदा आक्सीजन ग्रहण किया करते है, परन्तु वह समाप्त क्यो नही हो जाती ¿

ग्यारहवां अध्याय

ऑक्सीजन

(संकेत O: अणु O_2 परमाणुभार 16.)

यद्यपि वायु मे स्वतंत्र रूप से आक्सीजन का भाग 21% ही होता है, परतु पृथ्वी के पृष्ठ पर प्राप्त होने वाले तत्वो मे से यह सबसे अधिक है। यौगिक के रूप मे पानी तथा भूमि पर पाए जाने वाले अनेको पदार्थ इसीके यौगिक है। खनिज और सजीव पदार्थों मे इसका ही बाहुल्य होता है। बालू मे भी जो सफेद कण दिखलाई देते है, और जिनसे शीशे के ऊपर रगड़ का निशान रह जाता है। यह तत्व 70% के लगभग के विद्यमान रहता है।

इतिहास

यद्यपि यह तत्व वायु मे 21 % विद्यमान होता है। परन्तु इसका बोध भलीभाति प्रथम वार लेबोजिए (Laboisiar) की गवेषणा से हुआ था। इस गैस को बनाने का श्रेय सन् 1771-1772 कार्ल विलिहैल्म शोले (Carl Wilbelum Scheele) और उसी के समकालीन जोसफ प्रोस्टले (Joseph Priestley)[1774] को है। इन लोगो ने इस गैस को पारे के लाल आक्साइड से गर्म करके तथा गन्धक के तेजाब व मेगनीज डाई आक्साइड को गर्म करके और शोरे कोगर्म करके प्राप्त किया था। परन्तु अब प्रयोगशाला में बनाने के लिए पोटेशियम क्लोरेट ($KClO_3$) नामका यौगिक बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

व्यवसायिक मात्रा मे प्राप्त करने के लिए यह तत्व वायु को द्रवीभूत कर और उसमे से नाइट्रोजन का वाष्पीकरण कर प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार लगभग 99·5 प्रतिशत शुद्ध आक्सीजन प्राप्त कर ली जाती है। पानी के विद्युत विश्लेषण से भी आक्सीजन और हाइड्रोजन प्राप्त होते हैं। परन्तु आक्सीजन प्राप्त करने की यह विधि अत्यधिक मूल्यवान होती है। कभी-कभी सोडियम पर-आक्साइड (Na_2O_2) पानी की प्रतिक्रिया से भी निम्नलिखित समीकरणो के अनुसार यह तत्व प्राप्त किया जाता है।

$$2Na_2O_2+2H_2O=4NaOH+O_2$$

प्रयोग शाला मे जैसा कि पहिले बताया, इसे पोटेशियम क्लोरेट से प्राप्त करते है। इस कार्य के लिए पोटेशियम क्लोरेट मे लगभग समान आयतन मैगनीज–डाई आक्साइड (MnO_2) को मिलाकर एक मिश्रण तैयार कर लेते है। पौटेशियम

क्लोरेट को बारीक चूर्ण मे परिणित नही होने देते, जबकि मैंगनीज–डाइ–आक्साइड पूर्ण रूपेण चूर्ण ही होता है, जैसा कि पहिले पोटेशियम क्लोरेट के गुणों मे बताया जा चुका है। आक्सीजन तो पोटेशियम क्लोरेट से ही आती है, परन्तु इस मैंगनीज डाई-आक्साइड के मिलाने से पोटेशियम क्लोरेट निम्न तापक्रम पर ही सम्पूर्ण आक्सीजन दे देने मे समर्थ होता है। प्रतिक्रिया के पश्चात मैंगनीज–डाई–आक्साइड ज्यो का त्यो प्राप्त होता है।

$$2KClO_3 + (MnO_2) = 2KCl + (MnO_2) + 3O_2$$

हां, अभी मैंगनीज डाई आक्साइड (MnO_2) के सम्बन्ध मे कुछ बताया था। इस यौगिक की सहायता से पोटेशियम क्लोरेट से बहुत सुगमता पूर्वक आक्सीजन प्राप्त की जा सकती है। बिना इसके कुछ असुविधा होती है। इसी प्रकार यदि साफ मंजा हुआ लोहे का बर्तन सूखा पड़ा रहे तो जग नही लगता, पानी के छीटे पड़े कि जग लगना शुरू हुआ। इसी प्रकार वनस्पति घी बनाते समय यदि निकल धातु का चूर्ण हो तो तेलो मे और सब सुविधाएं होते हुए भी हाइड्रोजन सम्मिलित नही होती। निकल के चूरे से यह कार्य सम्पन्न हो जाता है, और निकल मे कोई परिवर्तन नही होता। इस प्रकार हम क्या देखते है, कि कुछ पदार्थ रासायनिक क्रियाओं मे सहायक तो होते है, परन्तु गौण रूप से उनकी अपने संगठन मे कोई परिवर्तन नही होता। ऐसे पदार्थ जो किसी रासायनिक क्रिया मे इस प्रकार योग तो दे, परन्तु उनके अपने सगठन मे कोई परिवर्तन न हो, उत्प्रेरक कहते है।

इस गैस को बनाने के लिए उपरोक्त मिश्रण को एक कडे काच की नली

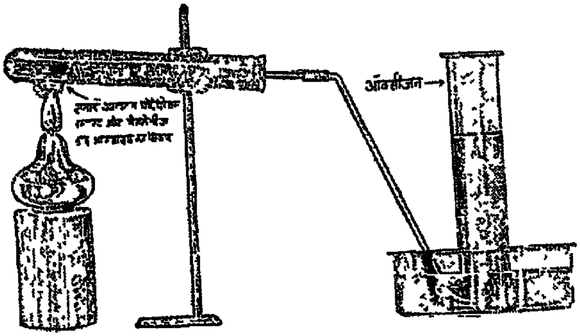

मे उपरोक्त चित्र के अनुसार रख कर गरम किया जाता है और इससे छः सात गैस जार भर लिए जाते है, जिनसे कि इस गैस के गुणो का अध्ययन किया जा सके।

प्रयोग —एक कडे काच की परख नली का चौथाई भाग तक ही भरे। अब इसके मुंह पर निकास नली युक्त कार्क लगावे। निकास नली का दूसरा भाग जल

द्रोणी मे रखे मधुकोष मच के नीचे तक पहुचना चाहिए। मधुकोष मच पर पानी से भरा गैस जार इस प्रकार उलट कर रखे कि जार मे वायु न जा सके। जार का मुंह द्रोणी के अन्दर होना आवश्यक है।

आक्सीजन के गुण

भौतिक गुण - आक्सीजन एक रगहीन, गधहीन और स्वादहीन गैस है। यह वायु से तनिक भारी होती है। यह पानी मे बहुत ही थोडी सी घुलती है। 20 शताश पर 100 घन सेन्टीमीटर पानी 3 घन सेन्टीमीटर आक्सीजन को विलीन कर लेता है। इसी पानी मे घुली हुई आक्सीजन पर उन पानी के जीवो का जो कि गलफडो के द्वारा स्वासोच्छ्वास करते हैं, जीवन निर्भर है। यदि शुद्ध आक्सीजन मे कुछ ही समय तक साँस ली जाय, तो कोई हानि नही होती, परन्तु अधिक देर तक इस गैस मे साँस लिए जाने से तापक्रम मे भयानक वृद्धि होती है, यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है।

रासायनिक गुण.—आक्सीजन गैस अत्यधिक-क्रियाशील है।

प्रयोग —एक गैस जार मे सुलगती हुई तिनकी ले जावे। गैस के सम्पर्क मे आते ही आप देखेगे कि वह तेजी से जलने लगेगी।

2. आक्सीजन गैस से भरे हुए एक गैस जार मे जलती हुई मोमबत्ती किसी उद्‌जन चम्मच पर रखकर अन्दर डाले। आप देखेगे कि मोमबत्ती जब तक उसमे आक्सीजन है, तीव्र प्रकाश से जलती है, परन्तु बाद मे कार्बन डाई आक्साइड होने के कारण बुझ जाती है।

3. एक उद्‌जन चम्मच मे थोड़ी सी बालू रखकर एक छोटा सा टुकडा पीले फासफोरस का रखे और इस चम्मच को फासफोरस सहित आक्सीजन के गैस जार मे डाल कर ऊपर से ढक दे। आप देखेगे कि कुछ ही समय पश्चात् फासफोरस बहुत तेज प्रकाश के साथ जलने लगेगा।

गन्धक, कोयले आदि के साथ भी यह प्रयोग किया जा सकता है, यदि सोडियम अथवा मेगनेशियम के तार को जला कर आक्सीजन के बडे गैस जार मे प्रविष्ठ किया जाय तो ये दोनो ही तथा कुछ अन्य धातु भी आक्सीजन मे जलते हुए दिखाई देते है। लोहा तक आक्सीजन मे जलता है।

4. एक पतले से लोहे के तार को गरम करके गन्धक के चूर्ण मे डालें। आप देखेगे कि तार पर गन्धक लग गई। इस तार पर लगी गन्धक को जलाकर यदि आक्सीजन के गैस जार मे, जिसके तले मे कुछ पानी या बालू हो, डाल दे।

गन्धक के जलने के पश्चात तार के जलने मे फुलझड़ी सी छूटती हुई प्रतीत होगी ।

आक्सीजन के उपयोग—कभी-कभी मनुष्यो का दम घुटने लगता है (पानी मे डूबने से बडी देर तक ऐसे बन्द कमरे मे रहने से जहाँ अगीठी आदि ल रही हो, या अन्य किसी कारण से) शुद्ध आक्सीजन थोड़ी सी कार्बनडाई आक्साइड मिश्रित करके औषधि के रूप मे कृत्रिम स्वासोच्छ्वास के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। हाइड्रोजन अथवा एसीटिलो न गैस के साथ मिलकर आक्सीजन जो लौ देती है, उसका तापक्रम इतना अधिक होता है कि उस लौ से लोहे की तीन-चार इंच मोटी चादर काटने का काम लिया जाता है। कुछ तेलो से वार्निश आदि बनाने के लिए आक्सीजन व्यवहार मे ली जाती है।

जिन अन्य तत्वो के साथ मिलकर आक्सीजन यौगिक बनाती है, उन्हे आक्साइड कहते हैं। इनका विवरण अगले अध्याय मे पढना। यह गैस स्वय तो उदासीन होती है, परन्तु इससे जो यौगिक बनते है, वे अम्लीय, क्षारीय और उदासीन भी होते हैं। इनका वर्णन आगे और किया गया है।

किसी-किसी आक्साइड को गरम करके सोडियम पर-आक्साइड (Na_2O_2) भी जल से प्रतिक्रिया द्वारा या आक्सीजन युक्त कुछ यौगिक को गरम कर इसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोगशाला मे इसे पोटेशियम क्लोरेट को गरम कर बनाया जाता है। मैंगनीज डाई आक्साइड मिला देने से यह कार्य अधिक सुविधाजनक हो जाता है। यहाँ मैंगनीज डाई आक्साइड को उत्प्रेरक कहते है। उत्प्रेरक ऐसे पदार्थ होते है जो कि रासायनिक क्रियाएं अपनी उपस्थिति मात्र से अधिक सुविधाजनक परिस्थितियों मे सम्पन्न करें। क्रियाओं की समाप्ति पर उनका संगठन ज्यों का त्यो रहता है।

इसमे पदार्थ बड़े वेग से जलते हैं। यह लिटमस के प्रति उदासीन होती है परन्तु इसके यौगिक अम्लीय, क्षारीय और उदासीन तीनो प्रकार के होते है।

आक्सीजन, हाइड्रोजन अथवा एसीटीलीन गैसों की सहायता से बहुत ऊंचा तापक्रम प्राप्त करने मे उपयोगी सिद्ध होती है, अत. लोहा काटने अथवा झाल लगाने के काम मे आती है। कृत्रिम स्वासोच्छ्वास के लिए भी काम आती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रयोगशाला मे आक्सीजन बनाने की विधि लिखिए और इसके गुणो का वर्णन भी कीजिए।
2. स्वासोच्छ्वास मे आक्सीजन का क्या अनुदान है ?

बारहवाँ अध्याय

नाइट्रोजन

: इसका बनाना और इसके गुणो का अध्ययन, नाइट्रोजन चक्र :

यद्यपि वायु मे आक्सीजन और कार्बन-डाई-आक्साइड निकाल दी जाए, तो जो शेष पदार्थ बचता है, वह नाइट्रोजन ही नाइट्रोजन है। परन्तु प्रयोगशाला मे इसके बनाने की विधि कुछ भिन्न है।

रसायन-शास्त्र मे कुछ प्रतिक्रियाओ को द्विक्‌विच्छेदन कहते हैं। यदि नमक के घोल मे सिल्वर नाइट्रेट का घोल डाला जाय, तो सिल्वर क्लोराइड का अवक्षेप बन कर अलग हो जाता है, और शेष सोडियम नाइट्रेट रहता है।

$$NaCl + AgNO_3 = AgCl + NaNO_3$$

अथवा कोपर सल्फेट के घोल मे बेरियम क्लोराइड डाले, तो बेरियम सल्फेट का अवक्षेप अलग हो जायगा, और कोपर क्लोराइड बचेगा।

$$CuSO_4 + BaCl_2 = BaSO_4 + CuCl_2$$

इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया जिसे द्विक्‌विच्छेदन कहते है, नाइट्रोजन बनाने मे उपयोगी सिद्ध होती है। इस प्रतिक्रिया के लिए नौसादर और सोडियम नाइट्राइट का उपयोग करते है। यदि सोडियम अथवा पोटेशियम नाइट्राइट को जैसा कि आपको पहले नवे अध्याय मे बताया गया है, गरम किया जाय, तो उसमे से आक्सीजन निकलती है, और जो नया यौगिक बनता है, उसे पोटेशियम या सोडियम नाइट्राइट कहते है। हा तो सोडियम नाइट्राइट और नौसादर के हल्के घोलो के मिलाने पर द्विक्‌विच्छेदन हो अमोनियम नाइट्राइट और सोडियम क्लोराइड बन जाया करते है।

$$NH_4Cl + NaNO_2 = NaCl + NH_4NO$$

अमोनियम क्लोराइड + सोडियम नाइट्राइट = नमक + अमोनियम नाइट्राइट।

ऊँचे तापक्रम पर अमोनियम नाइट्राइट विच्छेदित हो तो नाइट्रोजन और पानी बनाने मे समर्थ होता है।

समीकरण निम्नलिखित है:—

$$NH_4NO_2 = 2H_2O + N_2$$

इस प्रकार निम्न चित्र के अनुसार फ्लास्क मे हल्का नौसादर और सोडियम नाइट्राइट का मिश्रण थिसिलकीप मे डाल दिया जाता है। गरम करने पर जो गैस

निकलती है, वह नाइट्रोजन होती है। इसे जल द्रोणी मे मधुकोष मंच पर रखें जलयुक्त गैस जार मे प्रवाहित करने पर गैस जार में एकत्रित होती जाती है, और

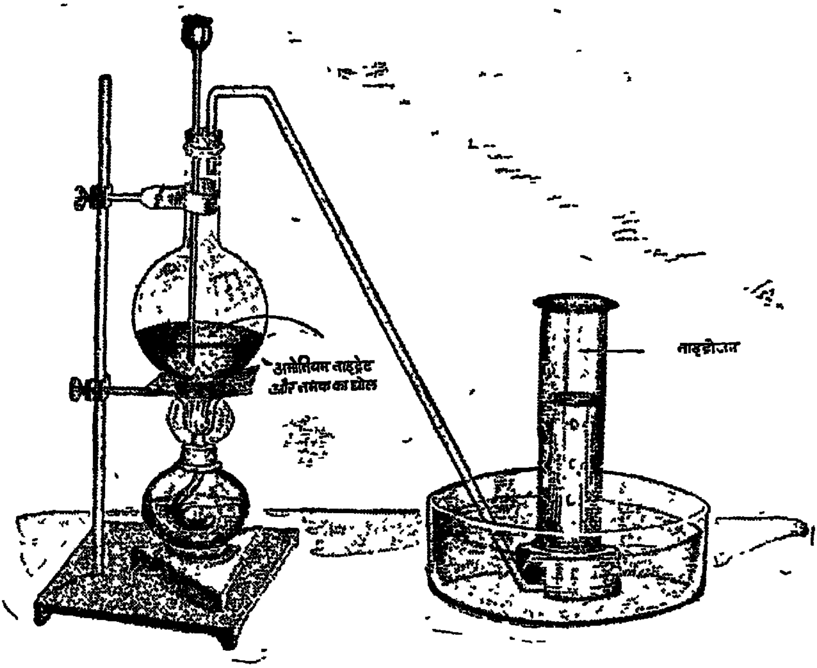

पानी सीधे द्रोणी मे आ जाता है। इस प्रकार नाइट्रोजन के कई गैस जार भर कर उसके गुणों का अध्ययन किया जाता है।

नाइट्रोजन के गुण

यह गैस रंगहीन, गन्धहीन और स्वादहीन होती है। पानी मे आक्सीजन से कम घुलनशील है। यह जहरीली तो हो ही नही सकती, क्योंकि सदा सर्वदा इसे साँस के साथ सारे प्राणी ग्रहण करते है, परन्तु फिर भी इसमे यदि कोई प्राणी कुछ मिनटों तक रखा जाय, तो दम घुटने से अर्थात् आक्सीजन के अभाव के कारण मर जाता है। न तो नाइट्रोजन स्वयं जलती है, और न जलाने मे सहायक होती है। वास्तव मे नाइट्रोजन के अणु क्रियाहीन होते है, परन्तु जब नाइट्रोजन किसी भी विधि से यौगिक बनाती है, तो इन यौगिकों की क्रियाशीलता नाइट्रोजन की क्रिया हीनता से प्रतिस्पर्धा करती है।

प्रयोग:—एक नाइट्रोजन के भरे गैस जार मे जलता हुआ मेगनेशियम का तार डालें। आप देखेंगे कि गैस जार में जाने के साथ ही मेगनेशियम के वायु में

जलने से जो द्युति प्राप्त हो रही थी, समाप्त होगई। परन्तु तार फिर भी सुलगता सा रहा।

वास्तव में मेगनेशियम के तार मे ऊंचे तापक्रम पर नाइट्रोजन ने मिल कर नया यौगिक बनाया। नाइट्रोजन के इस गुण को छोड़कर जो अभी बताया गया। अन्य सब गुण नकारात्मक है।

नाइट्रोजन के उपयोग:—कृत्रिम विधि से अमोनिया बनाने मे इस गैस का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। थोडी मात्रा मे बिजली के बल्बो मे भी भरी जाती है, और ऊचे तापक्रम पर व्यवहार किये जाने वाले थर्मामीटरो मे भी रिक्त स्थान के बदले नाइट्रोजन गैस रहती है।

नाइट्रोजन के चक्र.—यद्यपि वायु की गैसीय नाइट्रोजन निष्क्रिय सी प्रतीत होती है, परन्तु संयोजित अवस्था मे यह इतनी अधिक उपयोगी है, कि इसके बिना जीवन संभव नही होता। प्रत्येक प्रकार के जीवित प्राणियो को चाहे वे वनस्पति हो, अथवा जीव, यह आवश्यक अग है। पेड–पौधे इसे नाइट्रेटस के रूप मे ग्रहण कर इससे विभिन्न यौगिक की रचना करते हैं। इन यौगिको का उपयोग कर जीवधारी अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। जीवधारी जो मल-मूत्र आदि

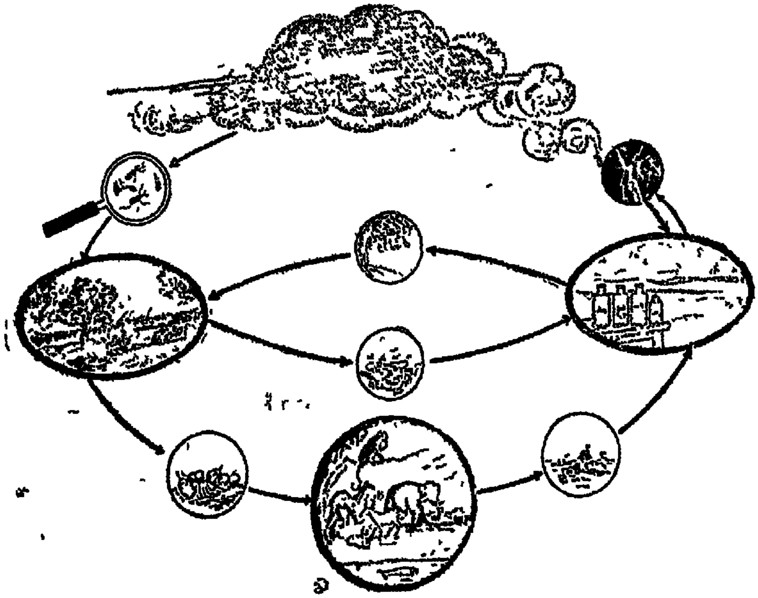

त्यागते हैं उनमें भी उनके उन जीवधारियो के द्वारा ग्रहण किया हुआ कुछ

नाइट्रोजन का अंश यौगिक रूप में विद्यमान होता है। कुछ इसमें से क्षय होकर वायु मे विलीन हो जाता है, और कुछ वैक्टीरिया की सहायता से फिर नाइट्रेटस में परिणित होकर पृथ्वी मे चला जाता है। कुछ पेड-पौधे जिनमें मटर, चना, मूंग, मोठ आदि एक प्रकार के वैक्टीरिया को अपनी जडों में स्थान देते है, और बदले में ये वायु की नाइट्रोजन को ग्रहण कर उसे नाइट्रेटस में परिणित कर देते है, जो कि इन पौधों के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। आधुनिक समय मे कृत्रिम विधियों से नाइट्रोजन को उपयोगी योगिकों मे परिणित करने का कार्य सम्पन्न हो रहा है। इस प्रकार हम देखते है, कि यह क्रम चक्र सा है, जो कि अनन्त समय से चलता आ रहा है। पिछले पृष्ठ पर दिए गये चित्र से यह क्रम स्पष्ट हो जायगा।

सारांश:—कुछ लवणों के आपस में मिल कर नये लवणों की सृष्टि करने को द्विक्-विच्छेदन (Donble Decomposition) कहते हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ में जब दो लवण किसी घोल मे मिलते है, तो परिस्थितियों के अनुसार उस मिश्रण मे तीन या चार लवण हो जाते है।

नाइट्रोजन बनाने मे इसी प्रकार द्विक्-विच्छेदन की सहायता से सोडियम या पोटेशियम नाइट्राइट और अमोनियम क्लोराइड की अन्तर प्रतिक्रिया द्वारा एमेनियम नाइट्रोइट प्राप्त होता है। इस अमोनियम नाइट्राइट के हल्के घोल को जब गरम किया जाता है, तो जलीय तत्वों के परमाणु अर्थात् हाइड्रोजन आक्सीजन तो आयात मिल कर जल बनाते है। शेष बची हुई नाइट्रोजन जल द्रोणी मे प्रवेश कर गैस जारों मे एकत्रित हो जाती है।

यह रंगहीन, गन्धहीन, स्वादहीन, उदासीन गैस सर्वथा निष्क्रिय होती है। यदि खूब गरम तेज जलता हुआ मेगनेशियम का तार इस गैस से भरे एक गैस जार मे ले जाया जाय, तो उसकी लो और द्युति तो समाप्त हो जाती है, परन्तु कुछ समय तक यह सुलगता हुआ सा प्रतीत होता है।

यह गैस स्वतंत्र अवस्था मे जितनी अधिक निष्क्रिय होती है, यौगिक अवस्था मे उतनी ही अधिक क्रियाशील होती है, अतः इसके यौगिक वहुत उपयोगी सिद्ध होते है। बिना इस योगिको का जीवन संभव नही होता। इसी के यौगिकों में अत्याधिक क्रियाशील विष भी होते हैं। कुछ अन्य नाइट्रोजन के यौगिक विस्फोटकों मे उपयागी सिद्ध होते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. द्विक विच्छेदन से आप क्या समझते है? उदाहरण देकर समझाइये।
2. नाइट्रोजन चक्र से आप का समझते है? रेखाचित्र बनाकर समझाइये।

कार्बन-डाई-आक्साइड के गुण :—

इस रंगहीन गैस मे बहुत ही हल्का मीठा सा स्वाद होता है और यद्यपि थोडी मात्रा मे कोई गन्ध प्रतीत नही होती, परन्तु अधिक मात्रा मे सूंघने से हल्की सी गंध भी आती है। यद्यपि ये जहरीली तो प्रतीत नही होती, फिर भी वायु के अभाव के कारण इसमे स्थित प्राणी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होते है। यह गैस थोडी मात्रा में पानी में घुल जाती है। इस गैस से निम्नलिखित प्रयोग रुचिकर होगे :—

एक परख नलिका मे चूने का पानी लें और उसमे से ये गैस प्रभावित होने दे। आप देखेंगे कि पानी दूधिया हो गया। गैस और प्रवाहित होने दें, इस बार आप देखेंगे कि दूधियापन पहले से हल्का होकर सर्वथा विलीन हो गया। देखने में पानी पहले जैसा प्रतीत होने लगा। प्रतिक्रिया इस प्रकार है :—

$Ca\ OH)_2\ 2\ CO_2\ Ca\ (HCO_3)_2$ (घुलनशील कैल्शियम बाई कार्बोनेट)। यह पानी अब वास्तव मे अस्थायी कठोर जल है, जिसका वर्णन आगे किया गया है। इस पानी को यदि उबाले तो फिर दूधिया हो जाता है और एक सफेद सा पदार्थ नीचे बैठ जाता है।

एक परख नलिका मे नीले लिटमस का घोल लें, और उसमे से यह गैस प्रवाहित करना आरम्भ करें, आप देखेगे कि आरम्भ मे तो कोई प्रभाव नही होता परन्तु बाद मे वह नीला रंग बिल्कुल लाल तो नही होता, परन्तु नीला भी नही रहता, कुछ बैंगनिया सा हो जाता है। अत यह गैस अम्लीय है।

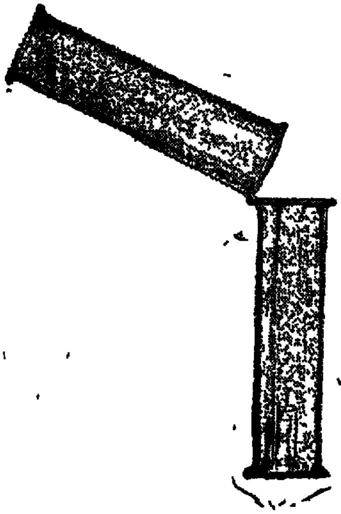

एक गैस जार मे जलती हुई मोमबत्ती नीचे लगा दे। मोमबत्ती जलती रहेगी, अब दूसरे गैस जार से जिसमे कार्बन-डाई-आक्साइड भरी हो, इस मोमबत्ती के ऊपर इस प्रकार कार्बन-डाई-आक्साइड डालने का प्रयत्न करें—जैसे कि कोई द्रव जल रहे हैं। आप देखेगे कि मोमबत्ती बुझकर प्रमाणित करती है कि यह गैस वायु से भारी होती है, न स्वयम् जलती है और न जलने मे सहायक होती है।

यद्यपि साधारण तापक्रम पर जलने वाले पदार्थ इस गैस से बुझ जाते

है, परन्तु ऊंचे तापक्रम पर जलने वाले पदार्थ इन गैस आक्सीजन को लेकर स्वयं तो जलते रहते है और कार्बन-डाई-आक्साइड का कार्बन अवक्षिप्त हो जाता है।

एक कार्बन-डाइ-आक्साइड से भरा गैस जार लें और उसके पार्श्वों को भली-भांति देखें। इनमे कही कोई काला धब्बा नही होना चाहिए। अब इस गैस जार मे जलता हुआ एक मेगनेशियम का तार ले जावें। आप देखेंगे कि तार जलता रहा, और यद्यपि यह तार वायु मे जलकर सफेद राख देगा, गैस जार मे जो जलने पर राख बची उसमे कुछ काले छीटे पडे हुए है, और जार के पार्श्वों मे ही कुछ काले-काले से छीटे दिखाई देते है। प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है :—

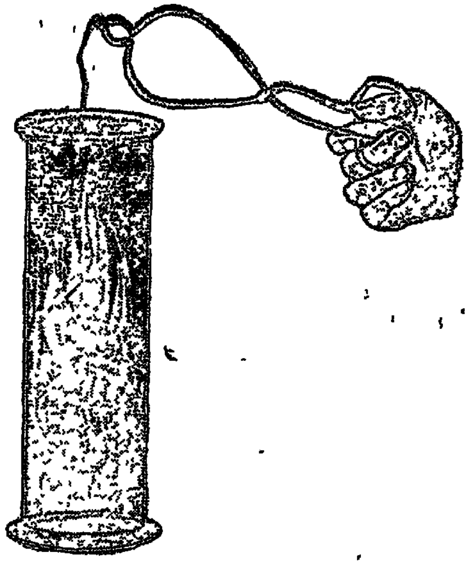

$$CO_2+2Mg=MgO+C$$

कार्बन-डाइ-आक्साइड के उपयोग:—औद्योगिक कार्यो मे कार्बन-डाइ-आक्साइड का सबसे अधिक उपयोग सोडावाटर आदि बनाने मे होता है। यह गैस आग बुझाने के साधनों मे भी उपयोगी सिद्ध होती है। कार्बन-डाइ-आक्साइड थोडे ही दबाव पर द्रव बन जाती है, और शीघ्र ही ठोस बन जाती है। इस परिस्थिति मे इसका तापक्रम काफी नीचा होता है, अत इसे सूखी बरफ के रूप मे व्यवहार करते है। इसे चीनी मिलो मे सोडियम कार्बोनेट और लैड ह्वाइट (Lead white) बनाने आदि के काम मे लिया जाता है। आधुनिक समय मे इस गैस का उपयोग फलो के सुरक्षण मे भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह वुल्फ बोतल (दो मुँह वाली बोतल) मे बचे हुए द्रव को निथार कर खुला छोड दे, तो ते सूखता ही नही। यदि गरम कर सुखा दिया जाए, तो एक सफेद सा पदार्थ कैल्शियम क्लोराइड रह जाता है, जो पुन. वायु से जव ग्रहण कर द्रव बन जाता है। ऐसे पदार्थो को कैल्शियम क्लोराइड के समान वायु आदि से जो जल ग्रहण करने मे समर्थ होते है, आर्द्रता-ग्राही (Hygroscopic) कहा जाता है।

सारांश:—प्राणीमात्र वायु से आक्सीजन ग्रहण कर कार्बन-डाइ-आक्साइड बाहर निकालते रहते है। कार्बन युक्त पदार्थो के जलने से भी यही प्रतिक्रिया होती

हो, तो उपकरण ठीक-ठीक तैयार नही हुआ। आवश्यकतानुसार कार्क बदल कर वायु रोधक बनावे। इतना सबके करने पर निम्न चित्र के अनुसार उपकरण रख कर

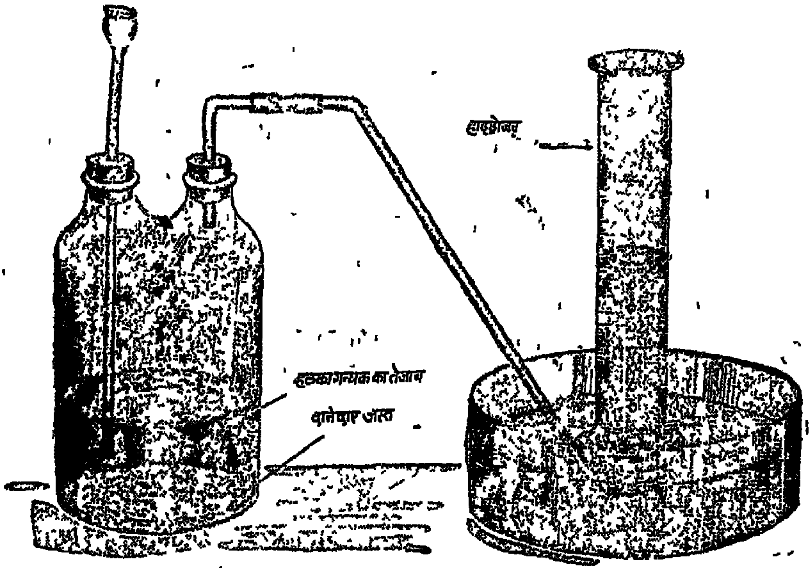

थिसिल कीप से हल्का गन्धक का अम्ल डाले। गैस निकलने लगेगी और मधुकोष मंच से होती हुई गैस जार मे भर जायगी। पहले दो गैस जारो मे वायु का कुछ अश होने की सम्भावना है, अतः इसके पाश्चात् प्राप्त होने वाले गैस जारो का प्रयोगो के लिए उपयोग करना उचित होगा। प्रतिक्रिया निम्नलिखित होगी :—

$$Zn + H_2SO = ZnSO_4 + H_2.$$

हाइड्रोजन के गुणः—हाइड्रोजन शुद्ध अवस्था मे रगहीन गधहीन और स्वाद हीन गैस होती है। परन्तु जिस प्रकार अभी ऊपर बताये मुताबिक बनाई उसमे कुछ अशुद्धियो के कारण इसमे से एक दुर्गन्ध आती है। हाइड्रोजन पानी मे बहुत ही कम घुलती है, और यद्यपि यह जहरीली नही होती है, यह जीवन को आश्रय देने मे असमर्थ भी होती है, अत इसमे सास लेने से प्राणी आक्सीजन के अभाव के कारण जीवन त्याग देता है। यह स्वयम् जलती है, पर जलाने मे सहायक नही होती।

प्रयोगः—निम्न चित्र मे दिखाए अनुसार हाइड्रोजन के गैस जारका मुंह नीचा कर उसमें जलती हुई मोमबत्ती ले जावे। आप देखेंगे, कि मोमबत्ती बुझ गई, और गैस यदि शुद्ध है, तो हल्की सी आवाज कर जलने लगी। मोमबत्ती निकाल ले, वह फिर जलती हुई दिखाई देगी, क्योंकि हाइड्रोजन की जलती हुई लौ से इस मोमबत्ती के ने पुनः लौ प्राप्त करली।

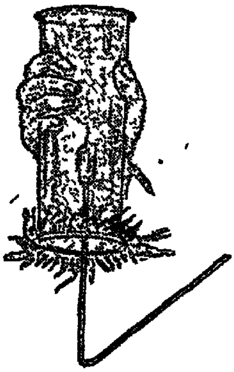

1. एक खाली (वायु से भरे गैस जार पर) हाइड्रोजन का गैस जार उल्टा रखे अब दोनो एक दूसरे द्वारा भली भांति दो—एक वार ऊपर वाले जार को नीचे, और नीचे वाले जार को ऊपर करे। फिर इन दोनो का मुंह किसी लौ के पास खोले। भड़ाके की आवाज से विस्फोट का बोध होगा। ये वायु के साथ मिलकर विस्फोटक मिश्रण बनाती है।

3. उपरोक्त प्रयोग के समान ही एक खाली गैस जार पर हाइड्रोजन का गैस जार रखे और इस बार केवल एक बार उलट दे, जिससे हाइड्रोजन वाला गैस जार नीचे और वायु वाला गैस जार ऊपर हो जाए। दोनो को अलग-अलग लौ के पास ले जावे। इस ऊपर वाले जार को उलटा ही रहने देना, आप देखेंगे कि नीचे वाले जार मे, जिसमें पहिले हाइड्रोजन थी, उससे कोई विस्फोट नही हुआ परन्तु ऊपर वाले गैस जार से जिसमे पहले वायु थी, फिस्फोट हुआ। अतः कह सकते है कि हाइड्रोजन गैस वायु से हल्की होती है।

कैवेन्डिश (Cavendish) नाम के व्यक्ति ने अट्ठारहवी शताब्दी के पिछले भाग मे दिखाया था, कि वह गैस जो जस्त, लोहा आदि निम्नकोटि के धातुओ और हल्के खनिज अम्लो की प्रतिक्रिया से प्राप्त होती है, जल कर पानी बनाने में समर्थ होती है।

यद्यपि निम्नलिखित प्रयोग कुछ कठिन है और इसमे गैस जार आदि के टूटने की सम्भावना है, परन्तु कुशल अध्यापक इसे दिखाने मे अवश्य समर्थ होगे।

चित्र के अनुसार जल द्रोणि में जल भरे। मधुकोष मच के ऊपर के छेद पर एक कार्क इस प्रकार लगावे कि वह निकल न सके। इस कार्य में साफ की हुई ताबे के लाल-लाल तरह की कुण्डली इस प्रकार लगावे कि उसका बहुत अधिक भाग जल से बाहर रहे। यदि इस कुण्डली को फुंकनी ज्वाला की सहायता से गरम करके हवा मे खुला छोड देंगे तो वह काली हो जायेगी। (तावा यदि गरम किया जाता है, तो उसके पृष्ठ पर एक काला सा आवरण ताम्र आक्साइड का वन जाता है।) फुंकनी ज्वाला की सहायता से इस कुण्डली को इतना गरम करे कि यह लाल सी दिखने लगे। जब यह ताप के मारे लाल हो, तो इस हाइड्रोजन गैस का भरा एक जार ढक दें। आप देखेंगे कि पानी कुछ ऊपर चढ़ गया और कालान्तर मे शुद्ध ताँबे का सा प्रतीत होने लगा।

यदि तार के ठण्डा होने से पहिले ही गैस जार हटा देंगे तो तार वायु की आक्सीजन के सम्पर्क मे आकर अपनी चमक खो देगा। यदि ठण्डा होने के बाद तार को निकालेंगे तो वह लाल-लाल चमकता हुआ दिखाई देगा।

हाइड्रोजन की इस प्रतिक्रिया को अवकरण कहते है। अवकरण मे साधारणत: पदार्थ आक्सीजन अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य तत्व को ग्रहण कर नये पदार्थों की रचना करते हैं। यथा समय आप इसका विवरण फिर पढेंगे।

हाइड्रोजन के उपयोग

दिन प्रति दिन औद्योगिक कार्यो मे हाइड्रोजन की उपयोगिता बढती जा रही है। मुख्य-मुख्य उपयोग इस प्रकार है—कृत्रिम अमोनिया बनाने मे हाइड्रोजन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। आधुनिक समय मे बिनौले, मूंगफली आदि के तेलों मे निकल धातु की उपस्थिति मे उपयुक्त तापक्रम पर इस गैस के संयोग से वनस्पति घी भी बनता है। फैरिक आक्साइड आदि उत्प्रेरको की सहायता से पत्थर के कोयले के साथ इसे सयोजित कर के मोटर का तेल बनाया जाता है। इसका उपयोग हाइड्रोक्सी ज्वाला या लौ (जिसका तापक्रम 2800 शताश के लगभग होता है) के लिए भी किया जाता है। आधुनिक समय मे पारमाणविक हाइड्रोजन की फुकनी से 3400 शताश तापक्रम भी प्राप्त किया जाता है। पहिले वायु से हल्के यानो मे भी इसका प्रयोग किया जाता था, परन्तु बहुधा आग लग जाने के कारण इस कार्य के लिए हीलियम गैस जो हाइड्रोजन से लगभग दुगनी भारी होती है, अधिक उपयोगी सिद्ध हुई।

सारांश—हाइड्रोजन यौगिक के रूप मे पृथ्वीतल पर बहुत अधिक मात्रा मे विद्यमान है। औद्योगिक रूप मे इसकी प्राप्ति कुछ अन्य रासायनिक व्यवसायो से

अतिरिक्त पदार्थ के रूप मे प्रचुर मात्रा मे होती है। अतः जहाँ विद्युत बहुत सस्ती होती है, वहाँ ही जल के विद्युत विश्लेषण द्वारा इसे प्राप्त किया जाता है।

प्रयोगशाला मे बनाने के लिए हल्के गन्धक का अम्ल और जस्त की प्रतिक्रिया का उपयोग करते हैं।

यह गैस शुद्धावस्था में रंगहीन, गंधहीन व स्वादहीन होती है, परन्तु जस्त और गन्धक के अम्ल से बनी हुई गैस मे कुछ अशुद्धियाँ होती हैं, जिनके फलस्वरूप इस गैस से दुर्गन्ध आती है। हाइड्रोजन पानी मे बहुत कम घुलती है। जलने मे सहायक तो नही होती, पर स्वयँ जलती है। जहरीली न होते हुए भी जीवन क्रिया मे बाधा पहुंचाती है। वायु से बहुत अधिक हल्की होती है। वास्तव में यह ससार का सबसे हल्का पदार्थ है।

ऊँचे तापक्रम पर आक्साइड को लघ्वीकृत कर धातु बनाने मे समर्थ होती है। यह कृत्रिम अमोनिया, वनस्पति घी और कोयले से कृत्रिम पेट्रोल आदि बानने के काम मे आती है। इसकी ज्वाला का ताप क्रम लगभग 2800 शतांश होता है। अतः अनेक ऐसे कार्यो मे जहाँ आक्सीकृत होने का भय हो और कार्बन अवांछनीय हो, इसी लघ्वीकारक लौ का उपयोग किया जाता है। पहिले वायु से हल्के जहाज बनाने के काम मे भी इसका उपयोग किया जाता था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रयोगशाला में हाइड्रोजन कैसे बनाई जाती है ? इसके बनाते समय क्या-क्या सावधानियाँ आवश्यक है और क्यों ? इस गैस के गुणों का वर्णन करें।
2. इस गैस के क्या-क्या उपयोग है ? और व्यवसायिक मात्रा में इसे किस-किस प्रकार प्राप्त किया जाता है ?
3. इसके द्वारा अत्याधिक ऊँचा तापक्रम कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?
4. यह आप कैसे सिद्ध करेंगे, कि हाइड्रोजन पानी का अंश है ?

पन्द्रहवां अध्याय

कार्बोहाइड्रेट्स

हम लोग स्वास मे सदा सर्वदा कार्बन-डाई-आक्साइड छोडते रहते हैं। जलने आदि से भी कार्बन डाई आक्साइड बना करती है। पेड–पौधो के पत्तो के हरे भाग जिसे क्लोरोफिल कहते है, इसी कार्बन-डाई-आक्साइड को ग्रहण कर कुछ यौगिक बनता है, जिन्हे शर्करा कहते हैं। इस प्रतिक्रिया को प्रकाश सश्लेषण कहते है। यह केवल पेड़–पौधो का हरा भाग ही सम्पन्न करने मे समर्थ होता है। प्राणी मात्र इस प्रकार संश्लेषण करने मे सफल नही होते।

जीव, जलचर, थलचर और गगनचर या तो इस शर्करा जाति के पदार्थो को अपनी शरीर की शक्ति बनाये रखने के लिए पेड–पौधो से प्राप्त करते है अथवा दूसरे शाकाहारी प्राणियो के मास से। वे फिर इससे कार्बन-डाई-आक्साइड बना कर कार्बन वाले अंश को वायु मे पहुचा देते हैं। यह क्रिया सतत चलती रहती है।

कार्बोहाइड्रेट्स कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन के ऐसे योगिक है कि जिनमे हाइड्रोजन और आक्सीजन का वही अनुपात होता है, जो कि जल मे। कुछ अन्य यौगिक भी इस श्रेणी मे आते जाते हैं,परन्तु उन्हे कार्बोहाइड्रेट्स मे सम्मिलित नही किया जाता।

अपने सरलतम रूप मे कार्बोहाइड्रेट्स का एक उदाहरण ग्लूकोज अर्थात् इक्षु शर्करा है। इसमे छै कार्बन के परमाणुओ मे, छै आक्सीजन के और बारह हाइड्रोजन के परमाणु सयोजित हो एक अणु बनाते है। ($C_6 H_{12} O_6$) प्रकृति मे वनस्पति वर्ग इन छोटे छोटे से अणुओ का पुनर्संगठन कर ऐसे यौगिक बनाने मे समर्थ होता है, जिसमे कार्बन के परमाणुओ की सख्या बारह, हाइड्रोजन की बाईस और आक्सीजन की ग्यारह होती है। ($C_{12} H_{22} O_{11}$) साधारण शक्कर जिसे वैज्ञानिक भाषा मे इक्षु शर्करा कहते हैं, इसी प्रकार का एक योगिक है। वनस्पति वर्ग उपरोक्त छोटे अणुओ को अधिकतर और जटिल अणुओ मे भी परिवर्तित कर देते है, जिनमे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्लूकोज के कई अणु सम्मिलित हो गए हैं। हम लोगो के खाद्य पदार्थो मे जो स्टार्च गेहू, जौ, बाजरा, ज्वार, मकई, चावल आदि मे विद्यमान होता है, इसी प्रकार का एक यौगिक होता है।

सोलहवाँ अध्याय

जल (H_2O) और उसका संगठन

(कठोर जल और कठोरता दूर करने की विधियाँ)

जल का महत्व:—पानी व्यक्ति विशेष, पेड़-पौधे व जानवरों सब ही के काम आता है। इसके बिना विश्व मे कोई भी जीवित नही रह सकता। मनुष्य भी भोजन बिना तो लगभग दो महिने तक रह सकता है, पर पानी के अभाव मे 3 या 4 दिन से अधिक नही। हमारे घरों मे, चाहे वह शहर मे हो या गाव मे, पानी स्वास्थ्य व सफाई के लिये बहुत आवश्यक है। जहा तक स्वास्थ्य का प्रश्न है पानी बडा उपयोगी है। हमारे शरीर का लगभग 70% भाग जल ही है। इसके अतिरिक्त (1) शरीर के जीव कोषों (टिश्यूज) मे पानी बदलने (2) रक्त को द्रव बनाये रखने (3) भोजन को पचाने व इससे रक्त बनने तथा (4) रक्त मे से विषैले व अवाछनीय पदार्थो को निकालने मे जल काम मे आता है। शरीर के तापक्रम को एक स्तर पर बनाये रखना भी जल का ही काम है।

इनके अतिरिक्त पानी खाद्य पदार्थों के लिये सस्ता से सस्ता व मुख्य पदार्थ (Raw material) है, यह जानवरो व पेडो के बढने के लिये आवश्यक है। दूध व अण्डे का बहुत आवश्यक अग है। जैसे इस्पात की कमी से मोटर गाड़ियों का बनना बन्ध हो जाता है वैसे ही पानी की कमी से खाद्य पदार्थों की कमी हो जाती है, जैसा कि रेगिस्तान मे पाया जाता है।

पानी घरेलू कार्य व खेतो में खाद्य पदार्थों के लिये ही आवश्यक नही अपितु वह और भी कई प्रकार से अपने जीवन पर असर डालता है। बिजली के तथा अन्य घरेलू सामान के उत्पादन मे, यातायात में, प्रजनन मे तथा और भी अनेक दैनिक कार्यो मे इसकी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। भारत के शहरो में लगभग एक व्यक्ति पर करीब 5–15 गैलन पानी नित्य व्यय होता है और उसकी आवश्यकता नित्य बढ़ती ही जा रही है।

जहां तक स्वच्छता का प्रश्न है पानी शरीर की बाह्य व आन्तरिक शुद्धि के अतिरिक्त, घरो की, रसोई की खाद्य पदार्थों की व गाय बैलों की, उनके रहने के स्थानो की सफाई के लिए आवश्यक है। कही कही तो सड़कों की भी पानी से रोज धुलाई होती है।

जल की प्रकृति—रासायनिक तौर पर पानी दो तत्वों का यौगिक पदार्थ है—हाइड्रोजन तथा आक्सीजन। इसका रासायनिक संकेत H_2O है।

प्रयोग—किसी उच्च प्रकार के वोल्टा मीटर में शुद्ध पानी भरकर उसमें (दो या चार सेल की बैटरी की) विद्युत द्वारा प्रवाहित करें। कुछ समय पश्चात आप देखेंगे, कि पानी से दो गैसें बन रही हैं। इन दोनों गैसों का अनुपात आयतन में 1:2 का प्रतीत होगा। यदि इन एकत्रित गैसों का अध्ययन करें, तो आपको ज्ञात होगा, कि इन में से एक आक्सीजन और दूसरी हाइड्रोजन आक्सीजन से दुगनी है। हाइड्रोजन को यदि जलाया जाय, तो वह वायु की आक्सीजन के साथ संयोग करके पानी बनाती है।

कैवेन्डिश ने सर्व प्रथम पानी को हाइड्रोजन का एक यौगिक होना इसी प्रकार सिद्ध किया था। ड्यूमा ने सन् 1843 में पानी का मात्रात्मक संगठन ज्ञात किया था। उसने शुद्ध की हुई हाइड्रोजन को तांबे के गर्म किये हुए काले आक्साइड पर से प्रवाहित किया। हाइड्रोजन आक्साइड से आक्सीजन लेकर पानी में परिवर्तित हो गई, पानी की जो मात्रा बनी और तांबे के आक्साइड की मात्रा में जो कमी आई, उससे पानी का मात्रात्मक संगठन ज्ञात हुआ। अब यह भली भांति ज्ञात है कि सोलह इकाई मात्राएं आक्सीजन की और 2·016 इकाई मात्राएं हाइड्रोजन की मिलकर पानी बनता है।

पानी निम्नलिखित तीन रूपों में पाया जाता है—(1) द्रव (पानी) (2) ठोस (जैसे बरफ आदि) (3) गैस के रूप में। यह हवा से 801 गुणा भारी होता है पर भाप हवा से आयतन के अनुसार लिया जावे तो 1·55 गुनी हल्की होती है। यही कारण है कि भाप हवा में ऊपर उठती है। पानी का सबसे अधिक भार 39·2°F पर होता है। यह 32° फारेनहाइट पर जमता व 212° फा० समुद्र की सतह पर खौलने लगता है। पानी में ऐसी ताकत होती है कि इसमें ठोस, द्रव व गैस सब ही घुल जाते हैं चाहे थोड़ा या ज्यादा। इसलिये ही इसे प्रधान घोलक (Universal solvent) कहते हैं। यही कारण है कि प्रकृति में पानी में अत्यधिक खनिज व गैसें घुली रहती हैं। समुद्र के पानी में तो इतना खनिज लवण होता है कि वह पीने के काम तो आ ही नहीं सकता। इसी प्रकार कई जगह कुओं व तालाबों में भी पानी में इतना नमक, लवण व तोड़ा होता है कि वह पीने योग्य नहीं रहता।

जलीय चक्र—प्रकृति में पानी एक रूप से दूसरे रूप में बदलता रहता है। सूर्य की रश्मियों की गर्मी से नदियों तथा जलाशयों से भाप के रूप में पानी ऊपर

उठता रहता है। यह पानी जो भाप के रूप मे होता है हवा से हल्का होने के कारण ऊपर उठता है और वायुमडल के ठण्डे भाग मे पहुच कर बादलों के रूप मे परिणित हो जाता है। बादल हवा के वेग से इधर उधर वायुमंडल मे घूमते रहते है। जब तक कि वह और भी ठण्डे नही हो जाते। वहा पर वह पानी के रूप मे परिणत होकर वर्षा, बर्फ व ओलो के रूप मे जमीन पर आ गिरते है। यह पानी जो बादलो से गिरता है इंचों मे नापा जाता है। वर्षा से गिरा हुआ जल पुनः अनेक साधनो से वायुमडल मे वाष्प बनकर मिलता रहता है। (इसके लिये इसी पुस्तक का भूगोल वाला भाग देखें)।

पानी के साधन:—घरेलू काम मे आने वाले जल की प्राप्ति के तीन साधन है। (1) वर्षा का पानी तो मकानों की छत्तो या खासतौर पर बनाये गये पक्के चौको मे इकट्ठा करके, सीमेट की टंकियो या हौजो मे रखा जाता है। (2) दूसरा वह जो जमीन की सतह पर इकट्ठा होता है, जैसे नदी, तालाब व बांध। (3) तीसरा वह जो गावो या शहरों मे जमीन को फोड़कर निकाला जाता है या अपने आप निकलता है, जैसे कुआ या झरना।

वर्षा का पानी—यह भाप के द्रवीभूत होने से बनता है, यह प्रकृति मे सबसे स्वच्छ पानी होता है और आसवन किए हुए जल की तरह होता है। पर जब वर्षा की बूंये वायुमण्डल मे से धात, गैसें, धुआँ जैसी चीजे घोल लेती है। धुआं इत्यादि का पानी मे घुलना औद्योगिक नगरों के आस-पास अधिक होता है। नमक इत्यादि धातुओ का घुलना समुद्र के किनारे वाले शहरों व गाँवों में ज्यादा होता है। यह पानी बहुत मृदु होता है। इसमे इतनी शक्ति होती है कि यह शीशे जैसे धातु को घोल लेता है।

उन उन स्थानो पर जहाँ पानी पर्याप्त मात्रा में बरसता है, वर्षा के जल को घरो की छतो पर या विशेष रूप से बने सीमेट के चौकों पर इकट्ठा किया जाता है। कई जगह तो यह ही पानी पीने, घरेलू कार्यो व सिंचाई के काम मे भी आता है। ऐसा विशेषतया वहाँ होता है जहाँ पर जमीन का पानी नही मिलता क्योंकि पानी बहुत नीचा होता है, जैसे मध्यपूर्व के कुछ रेगिस्तानों मे। अथवा जो पानी निकलता है वह कुछ कारणो से पीने या और काम लेने योग्य नही रहता। ऐसा छोटे-छोटे मूंगे के द्वीपों मे पाया जाता है। क्योंकि समुद्र का खारा पानी इन कुओ मे निकलता है। जब वर्षा का जल ही एकमात्र पीने के पानी का साधन होता है तो वह जैसा कि पहले वताया जा चुका है घरो की छतों पर एकत्रित किया है। जातावहाँ से वह एक नल द्वारा पानी के हौजो व टंकियों मे ले जाया जाता

है। यह टंकियाँ भी सीमेंट और कांक्रीट की होनी चाहिये और जमीन की सतह से नीचे होनी चाहिए, या यदि पानी और भी ज्यादा इकट्ठा करना हो तो टंकी जमीन की सतह के ऊपर रखी जा सकती है। एक 6 फुट घन टंकी मे 1000 गैलन पानी इकट्ठा किया जाता है। जब वर्षा का पानी इन टंकियों मे एकत्रित किया जाता है तो यह ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि प्रथम एक या दो वर्षाओं का पानी जल अलग करने वाले यन्त्र (Rainwater Separater) द्वारा अलग कर दिया गया है। यह जल टंकी मे नहीं जाना चाहिए क्योंकि इस पानी मे छत पर का कूड़ा व पक्षियों का मल इत्यादि घुल कर आ जाता है। दो एक वर्षा के बाद जब छत बिल्कुल साफ हो जावे तब यह पानी टंकी मे जाने देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इन टंकियो को ढके रखना चाहिए, नही तो जल का जानवरों के बीट से दूषित हो जाने का डर रहता है व इसमे मच्छरो की भी उत्पत्ति हो सकती है। अन्त में वर्षा के पानी पर ज्यादा निर्भर नही किया जा सकता क्योंकि वर्षा कुछ ही महीनों मे होती है और वह भी हरसाल एक सी नही। परन्तु इस प्रकार वर्षा पानी के अन्य साधनो की मदद कर सकती है।

यदि वर्षा के पानी को पीने के काम मे लिया जावे तो या तो इसे उबाल लेना चाहिये अथवा चूने से शोध लेना चाहिये जिससे कि वह जल स्वच्छ और कीटाणु रहित हो जावे।

सतह का पानी (Surface water)—वर्षा का पानी जैसे ही जमीन की सतह पर गिरता है वह सतह का पानी कहलाने लगता है। वर्षा का पानी हवा में से गैस, कीटाणु व धातु घोल लेने के उपरान्त भी बीमारी नहीं फैलाता पर सतह के पानी पर कभी भी भरोसा नही किया जा सकता, क्योंकि उसमें जमीन की सतह पर में बहुत सी बीमारियों के कीटाणु जो आदमी या जानवरों के मल पदार्थ में होते हैं, मिल सकते हैं। जो वर्षा या झरनों का पानी ऊँची-ऊँची पहाड़ियो पर इकट्ठा हो जाता है उसे (Upland surface water) ऊँची सतह का पानी कहते हैं।

ऊँची सतह का जल—यह पानी ऊँची पहाड़ी इलाकों में इकट्ठा किया जाता है। यह पानी जो बाँध बनाकर पहाड़ियों की तलहटी मे इकट्ठा किया जाता है, काफी बड़े-बड़े शहरो को पानी देता है। ऊँची सतह के जल का मिश्रण जिस पर से वह बह कर निकलता हैं उस जमीन के अनुसार बदलता रहता है। यह और सतह के पानी से साफ होता हैं पर विकृति और दूषित होने से बचा नही होता।

ऊपरी सतह् का जल—झील के रूप मे दो पहाड़ो के बीच के दर्रे को बन्द करके बनाया जाता है । इसमे से पानी शहरो मे भेजने के लिए, यह इतना बड़ा होना चाहिये कि उसमे गर्मी की मौसम के लिए भी पानी इकट्टा रह सके । साथ ही उस जमीन की सतह पर जहाँ से उस जमीन की सतह पर जहाँ से उस बाँध मे पानी आता है (Catchment) मे व्यक्ति या जानवर नही रहना चाहिये । वह जमीन खेती के काम मे नही आनी चाहिए । उस पर किसी को मल त्याग करने की इजाजत नही होनी चाहिए । यदि ऐसा नही हो सके तो पानी को साफ व कीटाणु रहित करना चाहिये ।

ऊपर की सतह से पानी इकट्ठा किया हुआ जल हमेशा मृदु (Soft) होता है और कुछ भूरे रंग का होता है ।

झील का पानी.—झीले अनेक प्रकार की होती है । (१) साफ पीने के पानी की; जैसे फतह सागर, उदयपुर; या नमक की झील, जैसे सांभर की झील, साभर, इनका पानी यदि दूषित होने से बचाया गया है तो संतोष जनक होता है । यदि झील काफी बड़ी होती है तो पानी की गन्दगी अपने आप सूर्य की रश्मियों से व पदार्थों के जमने से कुछ समय मे स्वच्छ हो जाता है ।

नदी का पानी :—नदियों मे पानी जमीन की सतह व झरनो से आता है । यह नदियां किनारो पर बसे शहरो के मनुष्यों तथा जानवरो का यत्न इत्यादि, तथा कारखानो के नष्ट पदार्थो को साथ लेकर बहती है । इस दौरान में कई खनिज लवण व बीमारी फैलाने वाले कीटाणु भी पानी में मिल जाते है । वर्षा के दिनों मे तो पानी वास्तव में बहुत ही गन्दा हो जाता है क्योकि उस समय वर्षा के पानी से शहरो व गांवो की गन्दगी घुल कर उसमे आ मिलती है । भारतवर्ष मे नदियो के जल के दूषित होने के कई कारण है । उनमे मुख्य मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(1) गांव वाले लोग किनारो पर ही मल-मूत्र त्यागते है तथा नदी ही में हाथ मुह धोते हैं ।
(2) गावो की गन्दगी नालियों द्वारा नदी मे मिलती रहती है ।
(3) मृत व्यक्ति व जानवरो को पानी मे डाल दिया जाता है । वहाँ उनको जलाया नही जाता ।
(4) अर्द्ध जले व्यक्ति को नदी में फेंक दिया जाता है व बीमारी के कीटाणु युक्त वस्त्रो को भी नदी मे ही फेक दिया जाता है ।
(5) हिन्दुओ के पर्वो पर नदी स्नान की प्रथा भी जल को दूषित करती है ।

यह एक कहावत है कि नदी सात मील मे अपने आप साफ हो जाती है। यह कहावत तो वास्तव में पूरी नही उतरती, यद्यपि स्वत नदी का कुछ पानी साफ अवश्य होता रहता है। नदी के पानी के स्वय स्वच्छ होने मे कई चीजे काम करती है; जैसे तली में पदार्थो का बैठना, सूर्य कीटाणु इत्यादि। अन्त मे बीमारी फैलाने वाले कीटाणुओ को मारने वाले जीव व मछलिया भी पानी को साफ करने मे काफी सहायता करती है।

नदी का पानी कभी भी साफ व सुरक्षित नही माना जा सकता। यदि नदी का पानी ही एक मात्र जल का साधन हो तो पानी किनारे से 10–20 फुट की दूरी से या नदी के बीच मे से लिया जाना चाहिए। फिर भी उसको किसी न किसी तरह से शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिए। चमकता हुआ जल शुद्ध जल की निशानी है।

भूगर्भ जल :—इस प्रकार का पानी दो तरह से पाया जाता है। (1) कुआं (2) झरना। गावो में पानी की आमद अधिकतर कुओ से और कही कही झरनों से होती हैं। किसी किसी शहर मे कुओ से भी पानी लिया जाता है। इनका पानी इस बात पर निर्भर रहता है कि वह पानी किस तरह की जमीन मे होकर निचली सतहो मे गया है। जमीन पथरीली, चिकनी मिट्टी की है या स्लेट पत्थर की या चाक की। यदि जमीन ऐसी है जिसमे से खनिज लवण पानी मे कही घुल सकते है तब तो पानी मृदु (Soft) होगा नही तो भारी (Hard) होगा। चू कि मिट्टी एक छलनी की तरह काम करती है इसलिए कुए का पानी साफ व कीटाणु रहित होता है।

कुआं.—एक प्रकार के कृत्रिम सुराख होते है जो ऊपरी धरातल से पानी की सतह तक जाते हैं। भारत के करीब 5 लाख गावो मे से बहुतों में कुए ही जल के एकमात्र साधन है। यह निम्न लिखित प्रकारो के होते हैं :—

(१) उथला कुआं:—यह कुआ भूपटल की पहली अछिद्र सतह के ऊपर से लिया जाता है। अर्थात् वह कुआ जो जमीन की पहिली अछिद्र सतह को नही फोडता। ऐसे कुओ के जल के दूषित होने की अधिक गुंजाइश रहती है। जल सतह के पानी से या जमीन की परत से दोनो प्रकार ही दूषित हो सकता है।

गहरे कुवें:—यह वह कुवे होते है जिनमे पानी प्रथम (अभेद्य परत) के नीचे की पानी वाली सतह मे से आता है। चूंकि कुए मे पानी उसके आस पास की मिट्टी मे से छन कर आता है। इसलिये उथले कुवो से गहरे कुवे अच्छे होते है। इसका कारण है कि अभेद्य सतह की वजह से सतह से ऊपर वाले कीटाणु मिट्टी मे छनने के बाद

भी बडी कठिनता से पहुच पाते है। गहरे कुओं मे एक लाभ और है कि पानी ज्यादा परिमाण मे मिलता है और कुएं जल्दी सूखते नही। जमीन की दो प्रकार की परतें होती है (१) अभेद्य व (२) भेद्य। एक कुआ ऐसा भी होता है जो पाताल फोड कुआँ कहलाता है।

पाताल फोड कुओ की रचना ऐसी होती है कि दो नतोदर अभेद्य चट्टानों के बीच भेद या सछिद्र चट्टान आ जाती है। इस सछिद्र चट्टान मे भू-पटल के धरातल से जल आकर एकत्रित होता है। इसके बीच मे सूराख या कुएं खोद देने से जल अपनी सतह तक जाने के लिए स्वय निकलने लगता है। इसे ही पाताल फोड़ कुआ कहते है। साधारण कुओ और पाताल फोड़ कुओ मे यही अन्तर है कि अन्य कुओ में से जल निकालने के लिए शक्ति लगानी पडती है और पाताल फोड़ कुओं में ऐसी बात नही। उसमे अपने आप ही जल निकलता है। इसीलिए इसका नाम भी "पाताल फोड" है।

उथले कुए से काफी नुकसान हो सकता है। गावों मे ज्यादातर कुए उथले ही होते है। उनमे जल के दूषित होने का बड़ा डर रहता है। क्योंकि जमीन के ऊपर की गन्दगी कुएं के आस-पास की मिट्टी मे से आसानी से छन कर आ सकती है. इससे बचाने के लिये ऐसे कुओ की जमीन के नीचे के पानी का बहाव देख कर बनाना चाहिये। पानी का बहाव कुएं की ओर से शहर के गन्दे नाले, गड्ढे या तालावो की ओर होना चाहिये न कि ऐसी गन्दी जगहो से कुए की ओर। जहा तक हो सके शौचालय तथा नालियां इत्यादि कुएं से कम से कम 200 या 300 फुट दूर हों।

एक आदर्श कुआं बनाते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(1) जमीन की मिट्टी जिसमे कुआं खोदा जावेगा, उसकी मिट्टी अच्छी होनी चाहिये। वहा से कूडा-करकट तथा शौचालय इत्यादि कम से कम 200 या 300 फुट दूर खुदवाना चाहिये।

(2) कुआं खोदने की जगह जमीन की सतह से काफी ऊँची होनी चाहिये जिससे बाहर से जमीन की सतह का पानी कुएं मे नही आवे।

(3) यह कुआ गहरा होना चाहिये और पक्का हो। कुएं के चारों तरफ सीमेंट का चबूतरा व अन्दर सीमेंट का प्लास्टर हो जो कि [illegible] अभेद्य सतह तक पहुंचना चाहिये।

(4) कुएं [illegible] चिड़ियों की बीट इत्यादि न गिर सके।

(5) कुए के चारो तरफ 6 फुट चौड़ा, ऊँचा प्लेटफार्म होना चाहिये और कुएं की दीवार चबूतरे से $2\frac{1}{2}$ फुट ऊँची होनी चाहिये।

(6) प्लेटफार्म से एक पक्की नाली गन्दे पानी को दूर ले जाने के लिये होनी चाहिये।

(7) कुएं पर किसी को नहाने, कपडे धोने व मवेशियो को नहलाने की मनाही होनी चाहिए।

(8) जहा तक हो सके एक हाथ पाइप (Hand Pump) उस कुए मे लगा होना चाहिये। यदि यह न हो सके तो वही पर एक चैन व एक बाल्टी रहनी चाहिये और हरेक को अपनी बाल्टी इत्यादि कुए मे नही डालने देना चाहिये।

जहां पानी का शुद्धिकरण आवश्यक है। ऐसे पानी को पीने योग्य बनाने के लिये कुछ रसायन-शास्त्रो मे जो तीन या चार प्रकार वाली विधिया लिखी हैं वे सर्वथा अव्यवहारिक प्रतीत होती है। यदि ऐसे पानी मे थोडी फिटकरी मिलाई जावे तो एक अवक्षेप बनता है। यह अवक्षेप अविलेय अशुद्धियो के साथ कुछ बीमारी के जीवाणुओ को भी नीचे ले बैठता है। परन्तु जल को सर्वथा सुरक्षित करने के लिए क्लोरीन का मिलाना उपयोगी होता है। इस काम के लिए जल के दस लाख भागो मे केवल तीन भाग क्लोरीन प्रर्याप्त होती है। यदि क्लोरीन न मिले तो एक दो मणिभ लाल दवा (Potassium permanganate $KMnO_4$) की इतनी मात्रा पानी मे घोलना चाहिए कि रग केवल हल्का गुलाबी ही हो जो जल को पीने योग्य बनाने मे लाभप्रद होता है।

किसी नए स्थान का जल बिना ठीक ठीक जानकारी प्राप्त किये ही पीना उचित नही है। क्योकि किसी किसी पहाड़ी प्रदेश के जल मे कुछ हानिकारक खनिज भी मिले हुए हो सकते है।

यद्यपि सर्वथा शुद्ध पानी तो एक कल्पना की ही वस्तु है, क्योकि अत्यधिक शुद्ध जल शीशे का कुछ अंश घोल सकने मे ही समर्थ होता हैं। जिस पानी मे घुल कर साबुन भली-भाति झाग देती है, उसे मृदु जल कहते है। इसके विपरीत जिस पानी मे साबुन के घुलने पर भलीभाति झाग न उठे, उसे कठोर जल कहते है। जिस पानी मे मैगनेशियम अथवा कैल्शियमके लवण घुले हुए होते है, वह कठोर जल का सा व्यवहार करता है। इसका एक रूप आपको कार्बन आक्साइड वाले अध्याय मे बताया गया था।

यदि कठोर जल मे कैलशियम वाई कार्बोनेट ही घुला हुआहो, तो केवल उबालने मात्र से कार्बन डाई आक्साइड गेस तो वायु मे विलीन हो

जाती है, और शेष बचा हुआ पदार्थ कैल्शियम कार्बोनेट के रूप मे अवक्षिप्त हो जाता है। प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है:—

$$Ca(4CO_3)_2 = CaCO_3 + H_2O + CO_2.$$

अतः जो पानी बचता है, उसमे साबुन भली भांति झाग देने मे समर्थ होता है। अतः हम कहते है कि कठोरता दूर हो गई।

इस प्रकार की जल की कठोरता को, जो केवल उबालने मात्र से दूर हो जाय, अस्थायी कठोरता कहते है। जिस पानी मे मेगनेशियम, कैल्शियम आदि के अन्य लवण घुले हुए होते है, वह उबालने मात्र से मृदु नही होता। इस प्रकार की जल की कठोरता को स्थायी कठोरता कहते है।

यद्यपि शुद्ध करने की विधियो में सबसे उत्तम तो स्रवण विधि ही है, परन्तु साधारण कामो के लिए थोड़ा सा बुझा हुआ चूना मिलाकर पानी को मृदु किया जा सकता है। कपड़े धोने के सोड़े को मिलाकर भी अथवा अस्थायी कठोरता को दूर किया जाता है। आधुनिक समय मे कुछ ऐसे साधन उपलब्ध हुए हैं, जिनको परम्यूटिट (Permutite) विधि कहते है। इनमे कुछ विविध संगठन वाले लवणो की सहायता से कठोर जल के कैल्शियम और मैगनेशियम को हटाने की शक्ति होती है। जब कठोर जल इनमे से प्रवाहित किया जाता है, तो कुछ समय तक मृदु जल प्राप्त होता रहता है। उसके परम्यूटिट का शुद्धिकरण आवश्यक है। शुद्ध होकर वह पुनः अपना कार्य करने मे समर्थ होता है।

सारांशः—पृथ्वी पर जल तीनो अवस्थाओ मे प्राप्त होता है। यदि जल का विद्युत विश्लेषण किया जाय तो दो आयतन हाइड्रोजन और एक आयतन आक्सीजन प्राप्त होती है। अतः कह सकते है कि जल हाइड्रोजन और आक्सीजन का यौगिक है, जिसमें हाइड्रोजन और आक्सीजन का अनुपात 2% है। अतः इसका सूत्र हुआ H_2O। ड्यूमा ने इसका भारात्मक संगठन ज्ञात किया था कि सोलह इकाई आक्सीजन हाइड्रोजन से सयोजित हो पानी बनाती है।

पानी मे अत्यधिक घोलने की शक्ति होती है, अतः जिस चीज के सम्पर्क मे यह आता है, उसका कुछ अश ग्रहण कर लेता है। ऐसी परिस्थिति मे शुद्ध पानी का मिलना असम्भव सा है। जिस पानी मे साबुन भली-भाँति घुलकर झाग देता है, उसे मृदु जल कहते है। यदि साबुन से पानी मे झाग न उठे तो जल कठोर कहलाता है। जितनी अधिक साबुन घोलनी पड़े, उतनी ही अधिक कठोरता मानी जाती है। यद्यपि कठोरता दूर करने का सबसे उत्तम साधन आसवन विधि है,

परन्तु साधारण कार्यों के लिए इसका उपयोग करना बहुत महगा पडता है । जल की कठोरता दो प्रकार की होती है । यदि उसमे कैल्शियम बाई कार्बोनेट घुला हो तो कठोरता उबालने मात्र से दूर हो जाती है । ऐसे कठोर जल को अस्थायी कठोर जल कहते है । यदि अन्य कोई लवण मिले हुए हों, तो कठोरता अस्थायी होती है और उबालने से दूर नही होती । बुझा हुआ चूना या कपड़े धोने का सोडा दोनो प्रकार की कठोरताओ को दूर करने मे समर्थ होता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हमे पानी कैसे और किस प्रकार प्राप्त होता है ?
2. पानी का संगठन किस-किस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है ?
3. कठोर जल कितने प्रकार का होता है और उनमें किस प्रकार की अशुद्धिया मिली हुई होती है ? कठोर जल के शुद्ध करने की विधियाँ लिखिए ।

सत्रहवाँ अध्याय

भौतिक और रासायनिक परिवर्तन

यह तो हम लोगों के नित्यप्रति के अनुभव की बात है, कि समय की गति के साथ साथ हमारे चारों ओर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। हम स्वयं ही इन परिवर्तनों से वंचित नहीं रहते। यद्यपि इन परिवर्तनों में आपस में कभी-कभी इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है कि उनको अलग-अलग समझना कठिन हो जाय, परन्तु फिर भी सुविधा के लिये इन परिवर्तनों को दो भागों में बांटा जाता है। एक को भौतिक परिवर्तन कहते हैं, और दूसरे को रासायनिक।

रासायनिक परिवर्तन:—यों तो कहने वाले कह देते हैं, कि पदार्थ की आन्तरिक बनावट में यदि किसी प्रकार का कोई परिवर्तन हो जाय, तो उसे रासायनिक परिवर्तन कहना चाहिए, और यदि ऐसा न हो, तो भौतिक परिवर्तन हुआ। परन्तु जब प्रत्यक्ष प्रयोग की कसौटी पर इस कथन को आंका जाता है, तो भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के अन्तर को ज्ञात करना अत्यन्त दुष्कर कार्य प्रतीत होता है।

साधारणतः यह जानने के लिए कि परिवर्तन भौतिक है अथवा रासायनिक, निम्न लिखित तथ्यों की ओर ध्यान दिया जाता है:—

(क) रासायनिक परिवर्तनों में पदार्थ के गुणों में अत्यधिक भिन्नता आ जाती है, जब कि भौतिक परिवर्तनों में इतनी अधिक भिन्नता नहीं प्रतीत होती।

(ख) रासायनिक परिवर्तन साधारणतया स्थायी होते हैं, जब कि प्रायः भौतिक परिवर्तनों में जिस कारण से वे सम्पन्न हुए हैं, उसके दूर होते ही अपना पुराना रूप ग्रहण कर लेते हैं।

(ग) रासायनिक परिवर्तनों में भौतिक परिवर्तनों से कहीं अधिक शक्ति की उत्पत्ति या शक्ति का शोषण होता है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित प्रयोग महत्वपूर्ण सिद्ध होगा:—

प्रयोग:—हाइड्रोजन के एक जार को हवा के जार के ऊपर उलटा रख कर भली-भांति मुँह बन्द करके दो दिन तक पड़ा रहने दें, अभी तक जो परिवर्तन हुए हैं, वह भौतिक है, इस मिश्रण को जलती हुई मोमबत्ती के पास ले जावें। दोनों जारों के मुँह एक दूसरे से अलग कर दें। ज्वाला के सम्पर्क में आते ही एक रासायनिक परिवर्तन होगा, तथा वे दोनों गैसें सम्मिलित हो द्रव (पानी) बन जावेंगी।

प्रयोग :—चीनी पानी में घोल दें। पानी का मिठास चीनी के प्रभाव को प्रदर्शित करने में समर्थ होता है। चीनी एक नली में गरम करें, रंग काला हो जायगा। मीठे से स्वाद का कड़ुवा होना, अथवा स्वाद का बिल्कुल फीका होना, और फिर वापस चीनी को प्राप्त न कर सकना, यही रासायनिक परिवर्तन का द्योतक है। पहिला भौतिक परिवर्तन ही था।

प्रयोग :—एक परख नलिका में लाल पारे का आक्साइड लें। उसे हल्का सा गरम करें। यह लाल आक्साइड काला हो गया। ठंडा होने दें, फिर लाल हो गया। परिवर्तन भौतिक था, इसी लाल आक्साइड को किसी कड़े शीशे की नली में बहुत ऊंचे तापक्रम पर गरम करें, यह लाल सा पदार्थ काला होकर लुप्त हो गया। ठंडा होने पर नली के पार्श्व को चारों ओर से रुई की सहायता से रगड़ दें। एक चांदी के रूप रंग वाला द्रव प्राप्त हुआ, यह पारा है। अब जो परिवर्तन हुआ वह रासायनिक था।

कुछ साधारण रासायनिक परिवर्तन:—

(i) पोटेशियम क्लोरेट ($KClO_3$) और चीनी को बराबर मात्राओं में मिलाकर सल्फ्युरिक अम्ल (H_2SO_4) में डुबावें व कांच की छड़ से छुआवें तो मिश्रण तुरन्त जल जायगा।

(ii) एक छनना कागज लें—इस पर थोड़ासा फिनोफ्थलीन का वर्ण रहित घोल डालें फिर इस पर अमोनिया डालें तो कागज का रंग गुलाबी हो जायगा; अब यदि इस गुलाबी कागज को गंधक के तेजाब में डुबाएं तो रंग मिट जावेगा।

(iii) सिल्वर नाइट्रेट के घोल में नमक के घोल मिलाने पर सफेद रंग का अवक्षेप (Precipitate) प्राप्त होता है।

3. भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तनों में अन्तर

भौतिक परिवर्तन (Physical changes)	रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes)
(i) भौतिक परिवर्तन से सदा पदार्थ के भौतिक गुणों में ही परिवर्तन होता है जैसे रंग, गंध, स्वाद अवस्था इत्यादि में, लेकिन कोई नया पदार्थ नहीं बनता।	(i) रासायनिक परिवर्तन पदार्थ के रासायनिक गुणों को पूर्ण रूप में बदल देते हैं और नया पदार्थ भिन्न गुणों वाला बनता है।

(ii) भौतिक परिवर्तन स्थायी नहीं होता और परिवर्तन साधक को जैसे दबाव व तापक्रम को बदलने से वापिस अपने पिछले रूप में लाया जा सकता है।	(ii) रासायनिक परिवर्तन स्थायी होते हैं और सरलता पूर्वक पदार्थ के गुण वापिस बदले नही जा सकते।
(iii) भौतिक परिवर्तन में पदार्थ के भार में कोई अन्तर नहीं होता है।	(iii) रासायनिक परिवर्तनो में पदार्थ के भार में अन्तर हो जाता है।
(iv) भौतिक परिवर्तनों में आमतौर से न तो ताप का शोषण होता है। और ना ही ताप की उत्पत्ति।	(iv) रासायनिक परिवर्तनो में ताप का शोषण या ताप का उत्पादन होना आवश्यक है।

सारांश :—परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं—एक भौतिक परिवर्तन और दूसरा रासायनिक परिवर्तन। यदि पदार्थों में परिवर्तन इस प्रकार के हो तो न तो उनके आंतरिक संगठन में कुछ अन्तर पड़े, अथवा किसी नये पदार्थ की रचना ही हो तो ऐसे परिवर्तनों को भौतिक परिवर्तन कहते हैं। यदि किसी परिवर्तन से पदार्थ के आन्तरिक संगठन में भी परिवर्तन हो जाय, नये पदार्थों की रचना हो, बहुत अधिक शक्ति व्यय हो, और परिवर्तन पदार्थ अपनी पुरानी परिस्थिति में न आ सके तो ऐसे परिवर्तनों को सामयिक परिवर्तन कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भौतिक तथा रासायनिक परिवर्त्तन से क्या समझते हैं? इनमें क्या अन्तर है? स्पष्ट रूप से समझाइए?
2. सिद्ध कीजिए कि निम्नलिखित परिवर्तन भौतिक या रासायनिक है:—
   [a] नमक का पानी में घोल।
   [b] मेगनीजियम के तार का हवा में जलना।
   [c] सोडियम का टुकडा पानी में।
   [d] चाय में चीनी का घुलना।
3. ताप क्षेपक एवं ताप शोषक क्रियाएं क्या हैं? उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

अट्ठारहवां अध्याय

मिश्रण और यौगिक

कभी कभी ऐसा भी होता है, कि भिन्न-भिन्न तत्त्व अथवा तत्व और यौगिक अथवा भिन्न भिन्न भौतिक आपस में मिल तो जाते हैं, परन्तु रासायनिक विधि से संयोजित नहीं होते। जैसे घर में पकी हुई दाल, उसमें हल्दी भी है, और नमक भी है। हल्दी अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ होती है, और नमक अपना स्वाद। यद्यपि यहां पर कई चीजे आपस में मिली हुई हैं, परन्तु प्रत्येक अपने अलग अलग गुण दिखाने में असमर्थ होते हैं। जब हमें कुछ इस प्रकार के मिले हुए पदार्थ प्राप्त होते हैं तो उन्हें हम मिश्रण कहते हैं। वायु भी एक इसी प्रकार का मिश्रण है। इसमें आक्सीजन और नाइट्रोजन नाम के तत्व विद्यमान होते हैं। जल और कार्बन डाई आक्साइड नामक यौगिक भी सदा सर्वदा मिले ही रहते हैं। चारों में से कोई भी किसी पर कोई क्रिया नही करता। अतः वायु एक मिश्रण है।

जब मिश्रण बनते हैं, जैसे कि ऊपर के प्रयोग में गन्धक और लोहे का मिश्रण बना था, तो न तो शक्ति व्यय होती है और न ग्रहण की जाती है। इसके अतिरिक्त मिश्रण के अवयवों में जो गुण होते हैं उनका सम्मिलित प्रभाव मिश्रण में मिला जुला सा दिखाई पड़ता है। जब यौगिक बनते हैं तो तत्वों का अनुपात निश्चित रहता है। मिश्रणों के बनने में ऐसा कोई बन्धन नहीं है। यौगिक सारे में एक से होते हैं। मिश्रण में यह बात भी आवश्यक रूप से पाई नहीं जाती। मिश्रण के अवयवों को भौतिक विधियों से साधारणतया सुविधापूर्वक अलग किया जा सकता है, जब कि योगिको में यह बात नही होती। जब यौगिक बनते हैं तो जिन पदार्थों से वे बने हैं उनके गुण लगभग लुप्त हो जाते हैं और नए गुणों का प्रादुर्भाव होता है। मिश्रणों में ऐसा नहीं होता।

यौगिक—जब दो या दो से अधिक असमान प्रकार के परमाणु आपस में रासायनिक संयोग करते हैं तो यौगिक बनता है। उदाहरण के लिए यदि Na का एक परमाणु Cl के एक परमाणु से रासायनिक संयोग करता है तो नमक की रचना होती है। जो कि एक यौगिक है।

$$Na + Cl = NaCl$$

"अतः यौगिक वह पदार्थ है जो दो या दो से अधिक तत्वों के स्थिर अनुपात में रासायनिक संयोग करने से बनता है। यौगिक सरल पदार्थों में रासायनिक क्रियाओं द्वारा किया जा सकता है।"

उदाहरण के लिए पारे का लाल आक्साईड एक यौगिक है जो कि खूब गर्म करने पर पारे में व आक्सीजन में विभक्त हो जाता है।

प्रयोग—एक बड़ी कांच की परख नली लें, इसमें एक रबड़ का कार्क लगावें। जिसमें एक कांच की निकास नली लगी हो। कांच की निकास नली का दूसरा सिरा एक पानी भरी वायवीय द्रोणिका में ही एक पानी से भरा गैस जार इस द्रोणिका पर उल्टा रख दें, जैसा कि यहां सामने चित्र में दिखाया गया है।

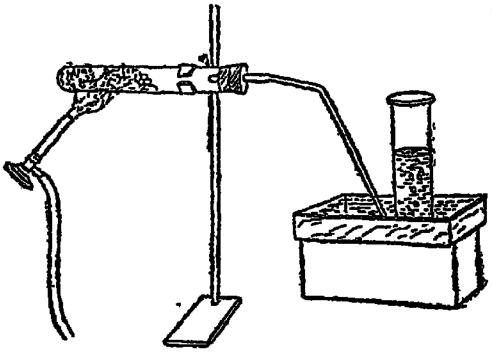

एक उपकरण चित्र के अनुसार लगावें, आक्साइड को गरम करें। आक्साइड का विच्छेदन होगा व गैस निकलेगी और पारे के बड़े बड़े दाने नली में जमा होने लगेंगे। इस गैस में एक सुलगता हुआ लकड़ी का टुकड़ा ले जाने पर वह हवा की अपेक्षा अधिक तेजी से जलने लगेगा जिससे यह सिद्ध होता है कि यह गैस आक्सीजन ही थी।

Mercury Oxide=Mercury+Oxygen

मिश्रण—मिश्रण जो कि यान्त्रिक मिश्रण भी कहलाता है भिन्न भिन्न वस्तुओं को किसी भी अनुपात में केवल मिला देने से ही बन जाता है। इसमें कोई रसायनिक संयोग नहीं होता और न ही इन वस्तुओं के गुणों में परिवर्तन होता है।

जैसे बारूद तीन वस्तुओं का मिश्रण है। ये तीन वस्तुएं पोटेशियम Nitrate, कोयला व गंधक है। वायु मुख्यतया नाईट्रोजन तथा आक्सीजन का मिश्रण है।

लोह-चूर्ण व गन्धक का मिश्रण—लोहा चुम्बक की तरफ आकर्षित होता है और यह गन्धक के तेजाब में भी घुलनशील है। गन्धक का चूर्ण कार्बन-डाई सल्फाईड में घुल जाता है।

यदि लोह-चूर्ण के गन्धक का मिश्रण हम एक कागज में रखें और चुम्बक उसके पास लावें तो लोहा चुम्बक की तरफ आकर्षित होता है और इस प्रकार हम गंधक के चूर्ण से लोह चूर्ण अलग कर सकते हैं। यदि हम इस मिश्रण का थोड़ा सा अंश गंधक के तेजाब में डाले तो लोहा इस तेजाब में घुल जावेगा, परन्तु गंधक नहीं घुलेगा और हाईड्रोजन गैस निकलेगी। लोह चूर्ण का रंग काला होता है और गंधक का रंग पीला, जब कि दोनों की मिश्रण का रंग इन दोनों का माध्यमिक होता है।

यदि हम इस लोहे के चूर्ण व गन्धक के मिश्रण में कार्बन-डाई-सल्फाईड डालें तो देखेंगे कि गन्धक तो कार्बन-डाई-सल्फाईड में घुल जाता है लेकिन लोहे का चूर्ण नहीं। इस विधि द्वारा भी हम गंधक को लोहे के चूर्ण से पृथक कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि जब कभी कोई यौगिक बनता है तो उसमें उसके अवयवो के गुण विद्यमान नही रहते हैं और बदल जाते हैं, जैसे आक्सीजन और हाइड्रोजन के रासायनिक संयोग से पानी नामक यौगिक बनता है। आक्सीजन एक गैस है और उसमें वस्तुएं तेजी से बलती हैं, हाईड्रोजन भी एक गैस है, जो जलाने में सहायक नहीं लेकिन स्वयं जलने लगती है, जब कि इनसे बना पानी द्रव है जो कि न स्वयं जलता है न ही जलाने में सहायक होता है, अर्थात इस यौगिक में उसके अवयवों के गुण पूर्णतया लुप्त हो गए और नए गुण उत्पन्न हो गए।

मिश्रण में ऐसा नहीं होता उसमें उसके अवयवों के गुण विद्यमान रहते हैं जैसा कि हम ऊपर गंधक और लोहे के चूर्ण के मिश्रण में बता चुके हैं।

यान्त्रिक मिश्रण और यौगिक में अन्तर

मिश्रण	यौगिक
(a) यान्त्रिक मिश्रण के अवयवों के गुण अपरिवर्तित रहते हैं।	(a) रासायनिक यौगिकों के गुण अपने अवयवों के गुणों से बिल्कुल भिन्न होते हैं और अपने गुण निश्चित रखते हैं।
(b) मिश्रण के अवयव भौतिक विधि द्वारा अलग किए जा सकते है।	(b) यौगिकों के अवयव भौतिक विधि द्वारा अलग नहीं किए जा सकते, यद्यपि रासायनिक विधि द्वारा अलग किए जा सकते हैं।

(c) मिश्रण में अवयवो की मात्रा निश्चित नही होती अर्थात अवयव यान्त्रिक मिश्रण में किसी भी मात्रा में मिले हुए हो सकते हैं।	(c) यौगिकों में अवयव हमेशा निश्चित अनुपात में होते हैं, अवयवों की निश्चित मात्रा यौगिकों को पहचानने की सब से बढ़िया व सरल विधि है।
(d) मिश्रण के बनाने में न तो ताप की आवश्यकता पड़ती है और न ताप बाहर ही निकलता है।	(d) यौगिक के बनने में या तो ताप का शोषण होता है या ताप बाहर निकलता है।

मिश्रणों के प्रकार—यान्त्रिक मिश्रण निम्न प्रकार के होते हैं:—

(i) ठोस और ठोस पदार्थ का—उदाहरण : रेत व नमक का, बारूद अशुद्ध खनिज।
(ii) ठोस और द्रव्य का—उदाहरण : दूध, फलों का रस. समुद्री जल।
(iii) ठोस और गैस का—उदाहरण : लकड़ी का कोयला, धुंआ।
(iv) द्रव और द्रव का—उदाहरण : सिरका और पानी।
(v) द्रव और गैस का—उदाहरण : सोडावाटर, गीली गैसे।
(vi) गैस ओर गैस का—उदाहरण : वायु, कोल, गैस।
(vii) ठोस द्रव्य और गैस का—उदाहरण : लेमोनेड।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यौगिक व मिश्रण से क्या समझते हैं ? यान्त्रिक मिश्रण व रासायनिक यौगिक में क्या अन्तर है ? स्पष्टतया समझावे।
2. यौगिक व मिश्रण में क्या भेद है ?

उन्नीसवां अध्याय

अम्ल, क्षार, लवण और मूलक

संसार में रासायनिज्ञो को हजारों यौगिको का बोध है। इनमें से सब का सब को पता हो, यह तो कठिन है, परन्तु बहुत से ऐसे हैं, जिनके गुणों में कुछ-कुछ साम्य होता है। और इस प्रकार इस साम्य की दृष्टि से वर्गीकरण कर दिया जाय तो मुख्यतः तीन श्रेणियां प्राप्त होगी। एक वे पदार्थ जिन्हे अम्ल (Acid) कहते हैं। दूसरे क्षार (Bases)। इन दोनो से भिन्न और कभी-कभी कुछ इनके से गुण रखने वाले पदार्थ भी लवण कहलाते हैं। साधारणतया लवण उदासीन होते हैं, अर्थात उनमें न अम्लीय गुण होते हैं, और न क्षारीय ही। कुछ लवण ऐसे भी होते हैं, जिनमें अम्लीय गुण विद्यमान हों, जैसे फिटकरी कुछ क्षारीय गुण वाले लवण भी हमारे सम्मुख आते हैं। जैसे सोडा अथवा सुहागा। परन्तु साधारणतया लवण उदासीन होते हैं।

प्रयोगशाला में तीन अम्ल बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है। एक गन्धकाम्ल-अथवा गन्धक का तेजाब, नमकाम्ल-नमक का तेजाब और शोरे का तेजाब। वहा पर ये साधारणतया द्रव रूप में व्यवहार किए जाते हैं, अतः कुछ भ्रांति सी हो गई है, कि अम्ल द्रव ही होते हैं। वास्तव में अम्ल, ठोस, द्रव और गैसीय तीनो अवस्था में प्राप्त होते हैं, जैसे-बोरिक एसिड, जिससे कभी डाक्टर लोग आंख धोने के लिए कहते है, यद्यपि यह अम्ल है, परन्तु ठोस है। हाइड्रोजन क्लोराइड अर्थात् हाइड्रोजन और क्लोरीन का यौगिक ($H_2 + Cl_2 = 2HCl$) अम्ल होते हुए भी गैसीय अवस्था में प्राप्त होता है।

अधिकतर यह अम्ल पानी में घुली हुई अवस्था में ही अपने प्रभाव दिखाने में समर्थ होते हैं। (1) यद्यपि सब के सब अम्ल चखे तो नहीं जा सकते, परन्तु जिन-जिन को चखा जा सकता है, वे सब के सब खट्टे होते हैं। (2) कुछ पदार्थ ऐसे होते, हैं, जो विशेष परिस्थितियों में अपना रंग बदलने में समर्थ होते हैं। हल्दी, गाजर का नीला रंग, लिटमस का नीला रग, आदि ऐसे ही पदार्थ हैं, इन्हे सूचक (Indicators) कहा जाता है। इनमें रग बदलने की शक्ति होती है। अम्ल हल्दी के लाल किए रंग को वापिस पीला कर देते हैं। गाजर के अथवा लिटमस के नीले रंग को लाल कर देते हैं। (3) निम्न कोटि के धातु अम्लो में से हाइड्रोजन को

स्थानान्तरित कर लवण बनाते हैं, और घुलते हुए से प्रतीत होते हैं, अतः साधारणतया कहा जाता है, अम्ल धातुओं को घोलने में समर्थ होते हैं। (4) यदि अम्ल का घोल कपड़े धोने के सोडे के सम्पर्क में आये तो एक उफान सा उठता हुआ दिखाई देता है। और कार्बनडाई-आक्साइड गैस निकलती है। (5) क्षारो के साथ मिलकर लवण बनाने में सफल होते है। (6)यदि गन्धक को चूने के घोल में डालकर उबाला जाय तो एक पीला सा द्रव प्राप्त होता है। यदि अम्ल इस द्रव में डाल दिये जायें तो गन्धक को अवक्षेपण कहते है। (7) अम्लो में स्थानान्तरित हो सकने वाली हाइड्रोजन का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है।

बहुत से लोग भारतवर्ष में पान खाते है। कुछ भाग भारत के ऐसे भी है, जहा पान के साथ कत्थे का उपयोग नहीं होकर चूना अर्थात् बुझे हुए चुने का ही उपयोग होता है। जहां भी पान खाया जाता है, अवश्य ही बुझा हुआ चूना व्यवहार किया जाता है। यह चूना क्या है? एक क्षार। कपड़े धोने के सोड़े से भी आप लोग परिचित होगे और लकड़ी का कोयला जलने के बाद जो राख बचती है, वह भी आपने देखी है। यह दोनों ही क्षार है, अर्थात् ऐसे पदार्थ जो ऊपर दिये हुए अम्लो के भिन्न-भिन्न प्रभावों को दूर करने में समर्थ होते है। (1) जब ये पानी में घुल जाते हैं तो घोल हाथ को साबुन का सा चिकना मालूम होता है। (2) यदि चख सकें तो इनका स्वाद कुछ कसैला सा, कुछ धातुओं का सा लगेगा। (3) ये फासफोरस अथवा गन्धक के साथ उबाले जाने पर इन्हे घोल लेने में समर्थ होते हैं। (4) गाजर और लिटमस के लाल रंग को पुनः नीला कर देते हैं, और हल्दी को लाल करने में समर्थ होते हैं। फिनोल्फथेलीन के रंगहीन घोल को लाल कर देते हैं, अम्लो के साथ मिलकर साधारणतया उदासीन पदार्थों की रचना करते हैं, जिन्हें लवण कहते हैं।

रसायन शास्त्र में लवण नाम का शब्द केवल एक कोई पदार्थ ही नहीं, वरन् पदार्थों के एक समुदाय को व्यक्त करता है।

इस समुदाय में ऐसे पदार्थ होते है जिनमें एक ओर तो कोई धातु या धातु का ओक्साइड होता और दूसरी ओर कोई अम्लीय आक्साइड होता है। यदि अम्ल की प्रधानता हो तो लवण अम्लीय प्रतीत होता है। यदि क्षार अधिक शक्तिशाली हो तो लवण क्षारीय प्रतीत होता है। अधिकतर लवण उदासीन होते है।

अम्ल बनाने की साधारण विधियां—अम्लो का कई प्रकार से निर्माण किया जाता है।

(i) दो तत्वों के संयोग से अम्ल बनते हैं। जैसे हाइड्रोजन और क्लोरीन के मिलने से हाइड्रोक्लोरिक बनता है।

(ii) अम्लीय आक्साइड पानी से संयोग कर अम्ल बनाते हैं। जैसे सल्फाईट पानी से क्रिया कर गधक के अम्ल का निर्माण करता है।

(iii) एक अम्ल के दूसरे निर्बल अम्ल के लवण से क्रिया करने पर अम्ल बनता है. जैसे नमक पर गंधक के अम्ल की प्रतिक्रिया से नमक का अम्ल बनता है।

अम्लों के साधारण गुण:—(1) ये नीले लिटमस को लाल मिथिल ओरेंज (Mothyle orange) को गुलाबी और गुलाबी फिनोल्फथलीन को रंगहीन करदेते हैं। (2) ये स्वाद में खट्टे होते हैं। (3) ये धातुओं के साथ क्रिया करके हाइड्रोजन उत्पन्न करते हैं जिससे धातु संगत लवण बनते हैं। (4) अम्ल भास्मिक आक्साईड से मिल कर पानी और लवण बनाते हैं। जैसे काष्टिक सोड़ा और नमक के तेजाब से पानी और साधारण नमक बनता है। (5) अम्ल पानी में घुलने पर हाईड्रोजन आयन देते हैं। (6) ये कपड़े व कागज को जला देते हैं।

अम्लों के साधारण गुणों को दर्शाने के कुछ मनोरंजन प्रयोग.—

1. प्रयोग- पिसी हुई हल्दी लें। इसका रंग पीला होता है। इसे पानी में घोलें। पानी का रंग पीला हो जायगा। अब इसमें यदि थोड़ासा चूना डाल दें तब इसका रंग लाल हो जायगा। इससे यह नतीजा निकला कि हल्दी का जल में विलयन पीला होता है, चूना एक क्षार है, जिसके डालने से हल्दी का रंग लाल हो जाता है। और खटाई एक अम्ल है क्योंकि इसके डालने से हल्दी का लाल रंग फिर वापिस पीला हो जाता है।

2. प्रयोग:—हल्दी के घोल में अब राख डालें। राख के डालने से पीला रग लाल हो जायगा। अब नींबू, इमली, अमचूर या अन्य किसी प्रकार की खटाई डालें। खटाई डालने से लाल रंग फिर वापिस पीला हो जायगा। इससे यह नतीजा निकला कि राख एक क्षार या भस्म है, तथा खटाई एक अम्ल है।

3. प्रयोग—एक गाजर ले। अब इसके छिलके पानी में डालें। पानी का रंग नीला हो जायगा। इस नीले पानी में नीबू या अन्य कोई खटाई डालें। इसका रंग लाल हो जायगा। अब इसमें कोयले की राख डालें तो फिर इसका रंग नीला हो जायगा। इससे स्पष्ट हुआ कि नीबू या खटाई एक अम्ल है तथा कोयले की राख एक क्षार है।

अम्लों का नामकरण—(1) खनिज अम्ल—अधातु तत्वों के नाम से संबोधित होते है, जैसे गंधक का अम्ल (2) हाइड्रो तथा आक्सी अम्ल—हाईड्रो अम्ल—(a) जैसे हाइड्रो क्लोरिक अम्ल (b) आक्सी अम्ल।

भस्म या क्षार–यह नित्य प्रति का अनुभव है कि चूने में हाथ डालने से हाथ फट जाते हैं। कास्टिक सोड़ा के विलयन को हाथ से छूने से प्रतीत होता है कि यह साबुन की भाति चिकना है। ये सब क्षार या भस्में हैं।

क्षारों की परिभाषा—क्षार वे पदार्थ हैं जो पानी में घुलकर हाइड्रोलिक्स आयन देते है या दूसरे शब्दो में ये वे पदार्थ हैं जो पानी में घुलकर अम्लों द्वारा दिये गये प्रोटीन को अंगीकृत करते है। अथवा वे पदार्थ जो अम्ल के साथ मिलकर पानी और लवण बनाते हैं।

क्षारों के बनाने की विधियां—क्षार कई प्रकार से बनाये जाते हैं। (1) क्षार धातुओं की पानी पर क्रिया से बनाये जाते है–जैसे सोडियम और पानी की प्रतिक्रिया से कास्टिक सोडा बनता है, जो कि एक क्षार है। (2) क्षार जल और क्षारीय आक्साईड की प्रतिक्रिया से भी बनाये जाते हैं—जैसे कैलिशियम आक्साइड और पानी के संयोग से कैलिशियम हाइड्रोक्साइड बनाता है।

क्षारों के गुण—(1) इनका स्वाद कड़वा होता है। (2) इनकी पानी के घोल में साबुन की भांति चिकनाहट होती है। (3) इनका जलीय घोल विद्युत चालक होता है। (4) पानी में ये हाईड्रोलिक्स (GH) आयन पैदा करते हैं। (5) इनमें तेल और गंधक को घोलने की शक्ति होती है। तैलो के साथ क्षार मिलकर साबुन बनाते हैं। (6) ये लाल लिटमस को नीला, फिनोल्पथलीन को गुलाबी कर देते हैं। (7) ये अम्ल के साथ मिलकर लवण बनाते हैं। (8) कुछ क्षार पानी में घुलते हैं और कुछ नहीं, जो पानी में घुलते हैं वह क्षार कहलाते है। (9) धातुओं के लवणो के घोल में मिलाये जाने पर उनके आक्साईड बनते हैं।

लवण—अम्ल और क्षार की पारस्परिक क्रिया से बनने वाले पदार्थ लवण कहलाते हैं। उदाहरण के लिए नमक के तेजाब व कास्टिक सोड़ा के संयोग से पानी और साधारण नमक बनता है।

लवण की परिभाषा—अतः लवण वे पदार्थ है जिनमें न तो क्षारीय गुण होते हैं और न आम्लीक ही। लवण विद्युत बंधनीय यौगिक है। लवण कई प्रकार के होते हैं, जैसे सामान्य लवण, अम्लीय लवण, भास्मिक लवण, मिश्रित लवण, जटिल लवण तथा द्वि लवण।

लवण बनाने की विधिया —(1) धातु व अधातु तत्वो के सहयोग से जैसे सोडियम और क्लोरीन के संयोग से नमक बनता है। (2) धातुओं पर अम्लो की प्रतिक्रिया से जैसे जिंक की नमक के तेजाब पर प्रतिक्रिया से. जिंक क्लोराइड बनता हैं। (3) अम्लीय और भास्मिक आक्साइडों की प्रतिक्रिया से, जैसे सल्फाइट व जिंक आक्साइड की प्रतिक्रिया से जिंक सल्फेट बनता है। इस प्रकार लवणो के बनाने की कई विधिया हैं।

लवणों के गुण—(1) लवण का पानी में घोल विद्युत का सुचालक है। (2) जल में इनके आयन बनते हैं। (3) ठोस अवस्था में माप स्फटिकीय यौगिक (4) लवण लिटमस के प्रति उदासीन है, परन्तु कुछ लवण अम्लीय व क्षारीय गुण भी रखते है।

कुछ साधारण अम्ल और क्षार.—

अम्ल	क्षार
शोरे का तेजाब (नाइट्रिक अम्ल)	सोडियम हाइड्राक्साइड
गधक का तेजाब (सल्फ्यूरिक अम्ल)	अमोनियम ,,
नमक का तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल)	पोटेशियम ,,
ऐसीटिक अम्ल	कैलशियम ,,
नीबू का तेजाब	सोडियम कार्बोनेट

सारांशः—पदार्थों को उनके कुछ-कुछ गुणों के अनुसार अम्ल, क्षार और उदासीन पदार्थों में बाटा जाता है। ये तीनो ठोस, द्रव और गैसीय अवस्थाओ में प्राप्त होते हैं। क्षार अधिकतर ठोस होते हैं और पानी में घुल जाते हैं, जबकि अम्ल अधिकतर द्रव ही होते हैं। अम्ल और क्षारो के गुण आपस में एक दूसरे के विरोधी होते है।

अम्ल खट्टे होते हैं। नीले लिटमस को लाल कर देते हैं। निम्नकोटि के धातुओ से मिल कर लवण बनाते हैं। चूने के पत्थर अथवा कपडे धोने के सोडे पर डाले जाय तो झाग उठते है, और क्षारो के साथ मिलकर लवण बनाते है।

क्षारो कसैला सा होता है। यह अम्लो के विपरीत हल्दी को लाल कर देते हैं। लाल लिटमस को नीला कर देते हैं। फिनोफ्थलीन के रंग हीन घोल को लाल कर देते है। उनका पानी में घोल साबुन जैसा चिकना होता है।

क्षार और अम्ल मिलकर जो यौगिक बनाते हैं, उन्हें लवण कहते हैं। ये लवण भी कभी-कभी क्षारीय और कभी-कभी अम्लीय होते हैं।

—: अभ्यासार्थ प्रश्न :—

1. अम्ल, क्षार और लवण की व्याख्या करें ?
2. क्षार शब्द से क्या समझते हैं ? इसके बनाने की विधियों तथा गुणों का वर्णन करें।
3. अम्ल क्या है ? अम्ल बनाने की साधारण रीतियों का वर्णन करें ? तथा इनके गुणों का परिचय दें।
4. हल्दी के पानी में चूना डालने से हल्दी का रंग लाल क्यों हो जाता है ? और खटाई डालने से वापिस पीला क्यों हो जाता है, समझावें ?
6. लवणों, अम्लों तथा भस्मों के क्या विशेष गुण हैं, सउदाहरण बतावें।

बीसवां अध्याय

नमक (Na Cl)

नमक तो आप रोज खाते हैं। भोजन मे तो नमक का प्रयोग किया ही जाता जाता है। भोज्य पदार्थों, जैसे-मास, मछली, मक्खन, अचार, चटनी आदि को सुरक्षित रखने मे, भी यह बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। इसी नमक से सोडियम के अन्य यौगिक जैसे सोडियम कार्बोनेट, कास्टिक सोडा आदि प्राप्त किये जाते है। साबुन बनाने मे यह उपयोगी सिद्ध होता है।

प्राप्ति स्थान:—प्रमुखतया यह निम्न दो रूपो मे प्राप्त किया जा सकता है:—

(१) समुद्र के जल से और (२) खानो से ठोस रूप मे

राजस्थान मे साभर झील बहुत बडी है और यहा बहुत नमक प्राप्त होता है। झीलो का पानी क्यारियो मे इकट्ठा कर के उसे सूखा दिया जाता है, नमक को साफ कर लिया जाता है। समुद्र के पानी से नमक छिछली क्यारियो मे भर कर और सूर्य के ताप से वाष्पीकृत करके मणिभ रूप मे प्राप्त किया जाता है।

नमक खानो मे यदि शुद्ध रूप मे होता है तो उकर निकाल लिया जाता है और यदि शुद्ध रूप मे हो तो जल मे घोलकर वाष्पीकृत किया जाता है।

गुण:—नमक आप रोज खाते है, इसका विशेष गुण खारा होना है। उसके घनाकार मणिभ होते है। यह सोडियम और क्लोरीन का यौगिक है।

आपने अपनी पाठ्य पुस्तक मे छपा हुआ देखा होगा, कि नमक गरम करने से केवल चट पट आवाज करके सारे मे फैल जाता है। परन्तु हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं, कि ताप के प्रभाव से लगभग 800 शताश पर नमक उस प्रकार पिघल जाता है, जिस प्रकार $0°C$ पर बरफ अथवा $114°C$ पर गन्धक। अन्तर केवल तापक्रम का है।

शुद्ध नमक जल आकर्षक नही है, परन्तु समुद्र मे प्राप्त नमक मे मेगनेशियम और केलशियम की अशुद्धियो से नमक मे आर्द्रता ग्रहण करने की प्रवृति हो जाती है।

सोडियम क्लोराइड के पिघले हुए घोल मे विद्युत विश्लेषण से सोडियम धातु प्राप्त होता है।

इक्कीसवां अध्याय

राजस्थान में धातु व खनिज पदार्थ

तांबा.—यह जयपुर के निकट खेतड़ी व सिंघाना मे निकाला जाता था। दरीवा (बीकानेर) और दरीवा (उदयपुर) मे भी तॉबा निकाला जाता था और शुद्ध धातु प्राप्त की जाती थी।

सीसा और जस्त.—उदयपुर के जावर स्थान मे जस्त के खनिज मिलते हैं, जिनमे सीसा और कही-कही चादी भी होती है।

वासवाड़ा (उदयपुर) और चौथका ,बरवाडा (जयपुर) मे भी सीसे के अस्तित्व का पता लगा है।

लोहा:—जयपुर के नीमला प्रदेश मे, उदयपुर के कुशलगढ़ और बाँसवाड़ा मे, अलवर के मानगढ मे लोह के अयवस्क (ore) का पता तो है, परन्तु उपयुक्त ईंधन के अभाव मे इनका उपयोग नही किया गया। हा, खेतड़ी के कुछ भागो से लोह खनिज जापान तक भेजे जाते है।

मैगनीज—उदयपुर जिले के लकड़वास जिले मे इस तत्व के यौगिक निकाले जाते है।

टंग्स्टन:—जयपुर के डेगाना जगह मे से थोडे से टग्स्टन के यौगिक निकाले जाते है। यद्यपि खनिजो मे इस तत्व की मात्रा तो कम ही है परन्तु मूल्यवान होने के कारण इन खनिजों को निकाला जा रहा है।

बेरिल:—यह खनिज बिरीलयम धातु का यौगिक है। यह तत्व परमाणविक विघटन मे उपयोगी सिद्ध होता है। यद्यपि वेरिल कही कही मिलता तो है परन्तु, राज्य का नियन्त्रण है।

लिग्नाइट—बीकानेर के पलाना मे लिग्नाइट (एक प्रकार का खनिज कोयला) इस पर चालीस पचास वर्षो से निकाला जा रहा है।

जिप्सम (Gypsem)—यह खनिज सीमेट बनाने मे आवश्यक होता है। बीकानेर के जामसर, लूणकरनसर के अलावा जैसलमेर, सुरतगढ़ आदि स्थानो मे जोधपुर के भदवासी, नागोर, खरात, भगू आदि स्थानो मे पाया जाता है।

चूने का पत्थर—उत्तम श्रेणी के चूने का पत्थर राजस्थान के अनेक स्थानों मे प्राप्त होता है। इससे बना चूना अनेक व्यवसायो मे काम आता है। यह इमारते बनाने के काम आता है, इसी चूने के पत्थर से सीमेट भी बनता है। सीमेट का एक कारखाना लाखेड़ी और एक सवाई माधोपुर मे स्थित है।

अभ्रक (भोडल)—राजस्थान के खनिजों में मूल्य और मात्रा की दृष्टि से अभ्रक एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह उदयपुर के भीलवाड़ा स्थान मे पाया जाता है।

सफेद बालू—स्फटिक (Silica) सवाई माधोपुर और बूंदी की सफेद वस्तु जिसमें शुद्ध स्फटिक होता है, विख्यात है। इससे शीशा बनाया जाता है। धौलपुर का काच का कारखाना पर्याप्त प्रगति कर रहा है। जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, भरतपुर आदि मे भी काच बनाया तो जाता है, परन्तु प्रगति संतोषजनक नही है।

संगराज या घीया भाटा (Soapstone or Talc)—भारत के प्रमुख घीया भाटा प्रदान करने वालो में राजस्थान सबसे आगे है। यह भारत की सारी उत्पत्ति का 60% राजस्थान मे ही निकलता है। यह जयपुर के निकट दौसा स्टेशन के पास उगोथा मे पाया जाता है। उदयपुर मे भीलवाडा के घेवरीया और चांदपुरा मे भी यह मिलता है।

संगमरमर और अन्य इमारती पत्थरः—इमारती पत्थरो मे भी राजस्थान किसी से पीछे नही है। यहा पर लाल और भूरे पत्थरों के अतिरिक्त मकराना मे बिलकुल सफेद अति उत्तम सगमरमर मिलता है। चित्तौड़ मे पत्थर की पट्टियां या चौक्टे भी निकलते है, कही-कही कुछ मूल्यवान रत्नो मे पन्ना भी मिल जाता है। पहिले राजस्थान का ताकडा नामक रत्न भी विख्यात था।

नमकः—(सोडियम क्लोराइड) भारत में जितना नमक का उत्पादन होता है उसका आधा केवल राजस्थान में ही साभर झील से तथा डीडवाना और पचभद्रा आदि मे मिलता है।

नमक के अतिरिक्त कुछ अन्य खनिज जैसे रेह, जिसमें विलयशील यौगिक, कपड़े धोने का सोडा आदि होते हैं राजस्थान के सूखे भागो में मिलता है।

भौतिक-शास्त्र

PHYSICS

पहला अध्याय

विज्ञान में प्रयुक्त मूल इकाइयां

भौतिक-शास्त्र का अध्ययन करते समय हम विभिन्न दृष्टिकोणों से किसी वस्तु को देखते है। कभी हमे किसी मैदान की लम्बाई का अनुमान करना पड़ता है, कभी किसी पर्वत की ऊँचाई को जानना पड़ता है और कभी किसी द्रव का आयतन देखना पड़ता है। अत: इनको मापने के लिए विशेष मापदंडों का प्रयोग करना पड़ता है। विशेष मापदंडों के एक भाग को इकाई कह सकते है, उदाहरण के लिए हम अपने दैनिक जीवन में वस्तुओ का तोल मन, सैर छटांक मे मापते हैं। जब हम कहते है, कि दस सेर शक्कर लाओ तो शक्कर के तोल की इकाई सेर हुई। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि पांच गज कपड़ा है तो गज कपड़े की लम्बाई की इकाई है। यही नही इकाइयों का प्रभाव जीवन पर बहुत व्यापक है, बिना इकाई के कोई भी कार्य नही हो सकता। मनुष्य का स्वभाव है कि वह प्रत्येक वस्तु माप डालना चाहता है, यहां तक कि मनुष्य का परिश्रम भी मापा जाता है। अत: इकाई का महत्व स्पष्ट है। अब हम यहाँ विज्ञान में प्रयुक्त इकाइयों का वर्णन करेगे।

विज्ञान में प्रयुक्त इकाइयों की निम्न दो प्रणालियां हैं:—

(1) ब्रिटिश प्रणाली

(2) मैट्रिक प्रणाली

1. *ब्रिटिश प्रणाली के अन्तर्गत लम्बाई की इकाई गज है।*

12 इंच = 1 फुट
3 फीट = 1 गज
9 फीट = 1 वर्ग गज
144 इंच = 1 वर्ग फुट
1760 गज = 1 मील

ब्रिटिश प्रणाली में तोल की इकाई पौण्ड है। पौण्ड का सबसे छोटा भाग ड्राम कहलाता है। नीचे ड्राम व 1 पौंड का सम्बन्ध बताया गया है:—

16 ड्राम = 1 आउन्स
16 आउन्स = 1 पौण्ड
28 पौण्ड = 1 क्वार्टर
4 क्वार्टर = 1 हंडरवेट
20 हंडरवेट = 1 टन

भारी बोझे मापने में अधिकतर यही प्रणाली काम में ली जाती है। आपने ट्रकों पर, वजन प्राय: 20 टन तो लिखा देखा ही होगा।

ब्रिटिश प्रणाली में समय की इकाई सैकिण्ड है। नीचे इस इकाई का समय की बड़ी इकाइयों से सम्बन्ध बताया गया है:—

60 सैकिण्ड = 1 मिनिट
60 मिनिट = 1 घण्टा

एक दिन और रात में मिला कर 24 घण्टे होते हैं, केवल दिन मे मात्र 12 घण्टे होते हैं।

मैट्रिक प्रणाली के अन्तर्गत लम्बाई की इकाई मीटर है। यह इकाई पैरिस में प्रचलित है। यह 0°C पर दो चिन्हों के बीच की दूरी है। मीटर का सबसे छोटा अंश मिली मीटर है।

10 मिली मीटर = 1 सेन्टी मीटर
10 सेन्टी मीटर = 1 डेसीमीटर
10 डेसी मीटर = 1 मीटर
10 मीटर = 1 डेका मीटर
10 डेका मीटर = 1 हैक्टोमीटर
10 हैक्टोमीटर = 1 किलोमीटर

इनके छोटे नाम इस प्रकार लिखे जाते हैं:—

मिली मीटर=मि० मी० (m. m.).
सेन्टी मीटर=से० मी० (c. m.).
डेसी मीटर=डे० मी० (c. m,).
मीटर =मीटर (Meter)
डेका मीटर =डेका मी० (Deca Meter).
किलोमीटर =K. Metre.

अतः एक मिलीमीटर एक मीटर का एक हजारवां अंश है।

मैट्रिक प्रणाली में तोल की इकाई ग्राम है। अधिकतर इसी का प्रयोग भौतिक शास्त्र में किया जाता है। ग्राम का सबसे छोटा अंश है मिलीग्राम। इनका सम्बन्ध इस प्रकार है:—

10 मिली ग्राम = 1 सेन्टी ग्राम
10 सेन्टी ग्राम = 1 डेसी ग्राम
10 डेसी ग्राम = 1 ग्राम
10 ग्राम = 1 डेका ग्राम

10 डेका ग्राम = 1 हैक्टो ग्राम
10 हैक्टो ग्राम = 1 किलो ग्राम

परन्तु प्रयोगशाला में हम मिली ग्राम, ग्राम, और किलो ग्राम का ही उपयोग करते है। इनके बीच के भाग, डेसी, डेका, ग्राम इत्यादि का नहीं।

इस प्रणाली में भी समय की इकाई सैकिण्ड, मिनिट, और घंटा है। अतः यह ब्रिटिश प्रणाली के जैसी ही है।

लम्बाई, व्यास, और आयतन मापने की विधियां और यन्त्र

लम्बाई—लम्बाई अधिकतर एक पैमाने द्वारा मापी जाती है। स्केल के नाम से सभी विद्यार्थी परिचित होंगे। यह लकड़ी की या किसी भी धातु की बनी हो सकती है। आज-कल सैलोलाइट की स्केले भी मिलती है; इसका चित्र नीचे दिखाया गया है:—

चित्र संख्या 1

इस चित्र में स्केल दिखाई गई है। एक ओर यह इंचों में है, दूसरी ओर सैन्टीमीटर में। मापने की विधि चित्र संख्या 2 में बताई गई है। जिस रेखा की लम्बाई मापनी होती है उसके सहारे इसे रखते हैं। स्केल को किनारे से नहीं रखना चाहिये क्योंकि किनारे घिस जाते हैं। अब जितनी लम्बाई हो उसे स्केल पर पढ़ लेना चाहिये। पढ़ते समय आंख ठीक 'अ' बिन्दु के ऊपर रखनी चाहिये। केवल एक बार ही लम्बाई माप कर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये वरन् कई बार माप लेकर औसत निकालनी चाहिये।

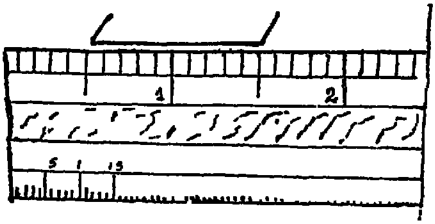

चित्र संख्या 2

यह तो हुआ सीधी रेखा को मापना, पर यदि रेखा टेढ़ी हो तो कैसे मापेंगे ? उसको मापने के लिए निम्नलिखित विधि का प्रयोग करना चाहिये। वक्र टेढ़ी रेखा बहुत सी छोटी छोटी सीधी रेखाओं की बनी होती है। यही बात चित्र संख्या 3 के क, ख,

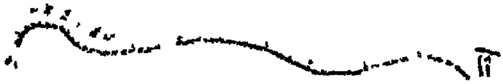

चित्र संख्या 3

वक्र रेखा बहुत सी छोटी छोटी रेखाओं से बनी दिखाई गई है। (क ख, ख ग, ग घ, घ च, इत्यादि)।

अब इन छोटी छोटी रेखाओं को मापा जा सकता है और सब की माप को जोड़ कर पूरी वक्र रेखा की लम्बाई निकाली जा सकती है, परन्तु स्केल की सहायता से यह नहीं हो सकता, पर एक साधारण डोरे की सहायता से हो सकता है। जैसा सामने दिखाये गये चित्र संख्या 4 में बताई गई विधि से इन छोटी-छोटी सीधी रेखाओं पर डोरा रखते हैं।

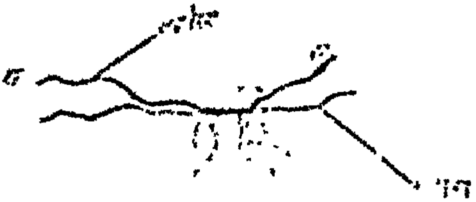

चित्र संख्या 4

इस प्रकार माप कर डोरे की कुल लम्बाई को स्केल की सहायता से मापा जा सकेगा। एक विधि और है:—परकार तो सभी ने प्रारम्भिक कक्षाओं में देखा होगा। उसकी सहायता से भी वक्र रेखा की लम्बाई निकाली जा सकती है। इसका चित्र सामने दिया गया है। इसको जरा सा खोलकर वक्र रेखा के छोटे सीधे टुकड़े पर रखना चाहिये और इस प्रकार समस्त वक्र रेखा के छोटे सीधे टुकड़ों को माप डालना चाहिये और तब पूरी लम्बाई को जोड़ कर निकाल लेना चाहिए।

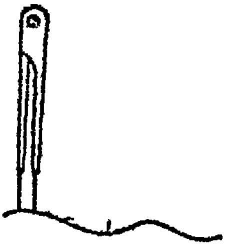

चित्र संख्या 5

व्यास मापने की विधियाँ

व्यास मापने में साधारणतः निम्न यन्त्रों का प्रयोग होता है :—

1. केलीपर्स और 2 स्क्रू गेज

केलीपर्स भी दो प्रकार के होते है—(i) साधारण केलीपर्स और (ii) वर्नियर केलीपर्स

साधारण केलीपर्स:—इसमें 'अ' और 'ब' दो फौलाद के टुकड़े होते है, ये 'च' पर चपटे और 'ब' पर नोकदार होते है। 'च' पर इनको इस प्रकार जोड़ दिया

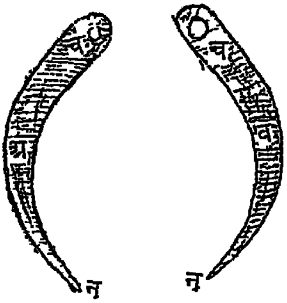

चित्र सख्या 6

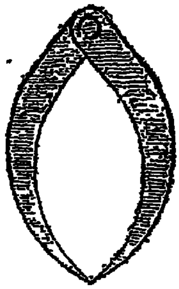

चित्र संख्या 7

गया है कि इनको चौड़ा भी कर सकते है और सकड़ा भी कर सकते हैं। उसकी सहायता से गोलाकार वस्तुओ का व्यास निकाला जा सकता है। किसी गोलाकार वस्तु का व्यास उसके केन्द्र से निकलने वाली रेखा की लम्बाई होती है।

किसी बेलन के भीतरी भाग को मापने के लिए दूसरे प्रकार का केलीपर्स काम मे लाया जाता है, जैसा कि चित्र संख्या 8 मे दिखाया गया है।

वर्नियर केलीपर्स—यह वर्नियर इसलिये कहलाया है कि इस पर एक स्केल और लगी होती है, जिसे वर्नियर स्केल कहते हैं। इस स्केल का सिद्धान्त वर्नियर नाम के वैज्ञानिक ने प्रचलित किया था। इसीलिये इसे वर्नियर स्केल कहते है। इसमे दो जबड़े होते है; एक स्थिर जिससे स्केल जुडी रहती है व दूसरा अस्थिर जिसे स्केल पर आगे या पीछे को सरकाया जा सकता है और दोनों जबड़ों के बीच उस वस्तु को जिसका व्यास या लम्बाई निकालना हो, रखते है। घूमने वाले जबड़े पर एक पेच है, जिसे कस देने पर जबडा स्थिर हो सकता है। "ब" इसमे वर्नियर स्केल लगी है।

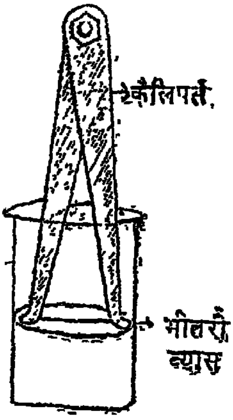

चित्र संख्या 8

साधारणतया वर्नियर स्केल के 10 भाग मुख्य स्केल के 9 भागो के बराबर होते है, पहले यह निकाल लेते है कि वर्नियर स्केल का एक भाग मुख्य स्केल के कितने भाग के बराबर होता है।

वर्नियर स्केल के 10 भाग = मुख्य स्केल के 9 भाग

वर्नियर स्केल के 1 भाग = मुख्य स्केल के $\frac{9}{10}$

अब वर्नियर के एक भाग मे और मुख्य स्केल के एक भाग के अन्तर को निकाल लिया जाता है: $1-\frac{9}{10}=\frac{1}{10}$ मि० मी०, इसे अल्पतमांक (least count) कहते है।

इसका चित्र नीचे दिया गया है.—

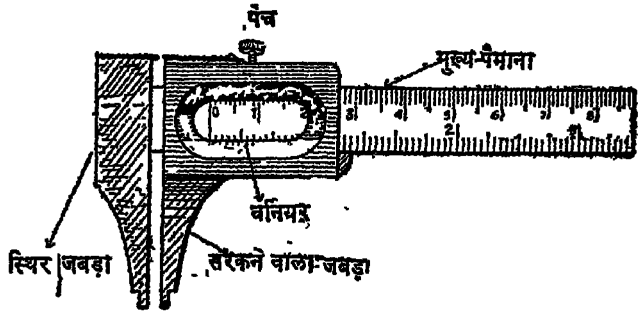

चित्र संख्या 9 वर्नियर पैमाना

स्क्रूगेज—वर्नियर पैमाने से हम मिली मीटर के दसवें अंश तक ठीक माप सकते है। परन्तु सूक्ष्म वस्तुओं के व्यास को मापने के लिए स्क्रूगेज की आवश्यकता है। इसमें U के प्रकार का एक टुकड़ा अ ब स होता है जिसके सिरे अ पर प्लेट प लगी होती है और स सिरा एक लम्बी नली से जुड़ा होता है। इस नली पर सेन्टीमीटर तथा उसके अंश बने होते है। नली में होकर एक पेच जाता है, इस पेच को क पेच के द्वारा आगे या पीछे चला सकते हैं। इस पर एक गोल पैमाना भी होता है। यह घूमने वाले पेच पर लगा होता है, जैसा कि यहां सामने चित्र संख्या 10 में दिखाया गया है।

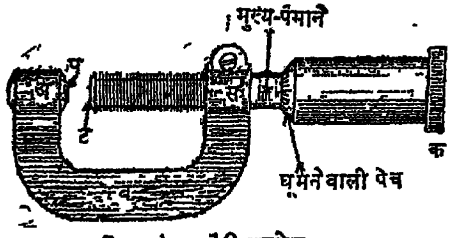

चित्र संख्या 10 स्क्रूगेज

गोल स्केल पर 50 या 100 भाग होते हैं। जिस वस्तु का व्यास निकालना हो उसे प और ट के बीच दबा देते है। सही यंत्र मे गोल स्केल का शून्यांक मुख्य स्केल के शून्यांक से मिलना चाहिये। जब ऐसा नही होता है तो इस त्रुटि को शून्य त्रुटि कहते है। इसको भी व्यास मापते समय गणना में लेना चाहिये। इसमें भी वर्नियर की भांति अल्पतमांक निकालना होता है।

किसी लम्बे चौड़े क्षेत्र का क्षेत्रफल उसकी लम्बाई और ऊंचाई का गुणनफल होता है।

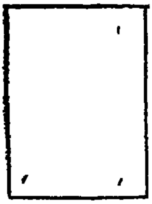

चौड़ाई

क्षेत्रफल=लम्बाई × चौड़ाई।

लम्बाई

चित्र सख्या 12

किसी वृत्त का क्षेत्रफल=πr^2 होता है, इसमे π (पाई) का मूल्य 3.14 है और r वृत्त का अर्द्धव्यास है।

क्षेत्रफल=πr= × (अर्द्धव्यास)

ठोस गोले का क्षेत्रफल=4π (अर्द्धव्यास)^2

बेलन का क्षेत्रफल=2(अर्द्धव्यास)^2

ठोस गोला

केलीपर्स से अर्द्धव्यास निकाल कर वृत्त गोल बेलन का अर्द्धव्यास निकाला जा सकता है।

आयतन—किसी वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई और का गुणनफल उसका आयतन कहलाता है। कोई मा स्थान घेरता है वह उसका आयतन होता है। का आयतन निकालने के लिए निम्न यन्त्रो का प्रयोग होता है:—

चित्र संख्या 13

अङ्कित जार—यह एक कांच का वेलनाकार बर्तन होता है जिस पर से० मी० के चिन्ह लगे होते है। जिस वस्तु का आयतन निकालना होता है, उस द्रव को इस बर्तन मे डाल देते है, जिस अक तक द्रव आता है उतने घन सेन्टीमीटर उसका आयतन है।

ब्यूरेट—यह रासायनिक प्रयोगो मे काम आता है। यह भी एक कांच का बेलन सा होता है, जिसमे नीचे एक टोटी होती है, जिससे द्रव निकाला जा सकता है। यह भी अकित होता है। इससे छोटे ठोस—जैसे लोहे की छोटी सी गेद का आयतन निकाल सकते है।

इसमे किसी विशेष चिन्ह तक पानी भर देते है और आयतन देख लेते है। अब ठोस डाल देते है, इससे पानी ऊपर चढ़ जाता

है, पानी जितना चढाते है, वह ठोस डालने के कारण से, प्राय' यह चढाव ही का आयतन होता है ।

पिपेट—यह भी एक काच का वेलनाकार वर्तन होता है, बीच मे और किनारो पर पतला ऊपर वाले सिरे पर एक चिन्ह लगा होता है । इसी सिरे मुँह लगाकर तथा नीचे वाले सिरे को द्रव मे डालकर मुँह से खीचकर इसमे द्रव भरा जाता है । पिपेट अलग अलग आयतन के होते है, साधारणत. ये 20 और 25 घन सेन्टीमीटर के होते है । ऊपर वाले सिरे को अंगूठे से रोकने पर द्रव इसमे ठहरा रहता है, इसका कारण यह है कि ऊपर से हवा का दबाव नही पडता, क्योकि यह अगूठे से बन्द है तथा नीचे के खुले सिरे पर हवा का दबाव है जो द्रव को वाहर नही आने देता ।

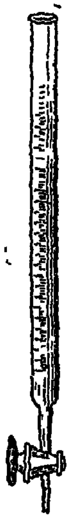

ब्यूरेट

पिपेट और ब्यूरेट दोनों का उपयोग रसायनिक प्रयोगशाला मे अधिक होता है । इनके द्वारा विभिन्न प्रकार के द्रवों की शुद्धता और उनमे उपस्थित तत्वों की प्रतिशत मात्रा का सही सही पता लगा लिया जाता है । यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि कोई भी प्रयोगशाला इनके बिना अधूरी है । जब कभी भी हमे किसी पदार्थ की शुद्धता की जाच करनी होती है तो उसे किसी भी रसायनिक क्रिया द्वारा द्रव रूप मे परिणित कर लिया जाता है फिर कोई ऐसा द्रव पदार्थ लिया जाता है जो उसके साथ रसायनिक क्रिया कर किसी न किसी रूप मे उसके तत्वों को उससे अलग कर दे । अब एक द्रव को ब्यूरेट मे व दूसरे को फ्लास्क मे पिपेट की सहायता से भर लिया जाता है और ब्यूरेट की टोटी खोल कर आपस मे रसायनिक क्रिया कराई जाती है जिसको पूर्णता का अनुमान विभिन्न प्रकार के रगो द्वारा किया जाता है । जब रसायनिक क्रिया हो जाती है तो उसकी मात्रा को तोल कर गणना द्वारा उनकी शुद्धता ज्ञात की जाती है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) आयतन मापने के यन्त्रो का वर्णन करे, आयतन क्या होता है ?

(2) वर्नियर केलीपर्स का वर्णन करे, इसे वर्नियर क्यो कहते है ?

(3) स्क्रूगेज क्या है ?

(4) साधारण केलीपर्स का वर्णन करे ।

(5) ईकाई की दो प्रणालिया कौनसी हैं ? इनकी तुलना करे ।

दूसरा अध्याय

पदार्थ और उसके गुण

समस्त ससार मे जो कुछ हम देखते हैं और संसार जिन वस्तुओं का बना है अर्थात् जिन वस्तुओ को हम देख कर और छू कर अनुभव कर सकते हैं, वे सभी वस्तुएं पदार्थ कोटि मे आती है। वायु नित्य हमे अपनी ओर आकर्षित करती है, पानी की कलकल ध्वनि हमे अपनी ओर बुलाती है, नन्हे नन्हे घास के पौधे और दूसरे फल युक्त पौधे हवा मे झूम-झूम कर हमे निमन्त्रण देते है। कहने का तात्पर्य यह है कि अनेक प्रकार के पदार्थ हमें दृष्टिगोचर होते हैं, ऊँचे पहाड़ भी पदार्थ हैं, मिट्टी भी पदार्थ है, पानी, वायु आदि सब पदार्थ श्रेणी मे ही आते है। इस प्रकार इस विचित्र संसार मे पदार्थ की महिमा दिखलाई पड़ती है। किन्ही दो पदार्थो को मिलाकर तीसरा पदार्थ बनाया जा सकता है। बडे-बडे पर्वत नदी आदि बहुत से स्थानों को घेरे रहते है। अत: पदार्थ का यह गुण है, कि उनमे भार होता है और वे बाधा उत्पन्न करते है, उनका निश्चित आकार होता है। पदार्थ एक दूसरे से मिलकर तीसरा पदार्थ भी बन सकता है, उदाहरण के लिए जब हम तीव्र गति से साईकिल चलाते हैं और वायु सामने की चल रही हो तो भी कुछ ही समय मे हम पसीने से लथपथ हो जाते है और कहने लगते है कि हवा सामने की है और हवा ने बाधा उत्पन्न की। इस प्रकार पर्वत और नदी भी मनुष्य की गति में बाधा देते है।

पदार्थ स्थान घेरता है। इस तथ्य का अनुभव हम अपने नित्य कार्यो मे करते है। एक पत्थर को मेज पर रखिये, वह स्थान घेरता है। अब किसी पदार्थ को जैसे मिट्टी, पानी या पत्थर को अपने हाथ पर रखिये, वह आपके हाथ को दबायेगा। वैज्ञानिक भाषा मे इसे भार कहते हैं। पदार्थ मे भार होता है। इसके लिए एक प्रयोग और किया जा सकता है, वह यह कि फुटबाल का ब्लेडर लो, और उसे भौतिक तुला द्वारा तोल लो, अब उसमे हवा भर कर फिर से तोलो तो देखोगे कि उसका भार बढ़ जाता है, इससे यह सिद्ध होता है कि हवा मे भार होता है और चूंकि हवा पदार्थ है इसलिए यह कहा जा सकता है कि पदार्थ में भी भार होता है। पदार्थ विभाजित भी किया जा सकता है। किसी भी प्रकार के पदार्थ को उचित रीति से छोटे-छोटे टुकडो अथवा भागो मे विभाजित किया जा सकता है। बड़े-बडे पत्थरो के चूर्ण किए जा सकते हैं और सोने आदि वस्तुओ के टुकड़े करके

छोटे-छोटे पत्थरो के रूप मे भी बदला जा सकता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि पदार्थों मे निम्नलिखित गुण हैं:—

(i) पदार्थ स्थान घेरता है,

(ii) पदार्थ रुकावट पैदा करता है,

(iii) पदार्थ मे भार होता है, और

(iv) पदार्थ को विभाजित किया जा सकता है।

पदार्थ निम्न अवस्थाओं में पाया जाता है

(१) ठोस, (२) द्रव, और (३) गैस

ठोस:—ठोस वह पदार्थ है जो अपना आकार व आयतन नही बदलता तथा अपने स्थान पर ही स्थित रहता है और जिनमे जड़त्व का गुण पाया जाता है।

द्रव:—द्रव वस्तुएं अपना आकार निश्चित नही रखती हैं। वे जिस बर्तन मे रखी जाती है उसी का रूप धारण कर लेती है, इनमे भी भार होता है और आयतन भी निश्चित होता है।

ठोस पदार्थों के गुण

1. घनवर्धनीयता:—वे ठोस पदार्थ जिन्हे पीट-पाट कर फैलाया जा सके, उन्हे घन वर्धनीय कहते है, और इस गुण को घन वर्धनीयता कहते हैं। जैसे सोना, चांदी, लोहा। लोहे की चादरें बनती है, सोना, चांदी के पत्तर बनते हैं। वे इसी गुण के कारण है, चोट मारने पर घन वर्धनीय पदार्थ टूटते नही वरन् फैल जाते है।

2. नम्यता—अगर किसी पदार्थ को मोड़े और वह मुड़ जाय फिर छोडने पर अपने आकार को ग्रहण न करे तो वह पदार्थ नम्य कहलाता है तथा इस गुण को नम्यता कहते है। जैसे:—लोहे व पीतल के तार इत्यादि।

3. भंजनशीलता—कांच के एक टुकड़े पर चोट मारने पर आप देखेंगे कि वह छोटे छोटे टुकड़ों मे टूट गया है। इसी प्रकार नमक व पत्थर भी टूट जाते हैं, इस गुण को भंजनशीलता कहते हैं और इन ठोस पदार्थों को भंजनशील पदार्थ कहते है।

4. तन्यता—जिन पदार्थों के तार खीचे जा सकते है वे दार्थ तन्य कहलाते है। जैसे, सोना, चादी, ताबा, लोहा, पीतल इत्यादि।

5. स्थिति स्थापकता—जब कोई ठोस पदार्थ खीचने पर खिच जाये और छोड़ने पर पुन: अपने रूप को धारण कर ले अथवा अपनी स्थिति में आ जाय तो वह ठोस पदार्थ स्थिति स्थापक कहलाता है और इस गुण को स्थिति स्थापकता कहते है। जैसे रबड़ आदि।

6. कड़ापन—ठोस पदार्थों में यह गुण भी होता है कि कौनसा पदार्थ कितना कडा है। यह देखने के लिये दो ठोस पदार्थों को लीजिये, और एक को दूसरे से खुरचिये, खुरचने वाला पदार्थ खुरचे जाने वाले से अधिक कड़ा होगा। जैसे पत्थर खड़िया से और हीरा-कांच से अधिक कड़ा है।

7. रंध्रता—ठोस पदार्थों में छोटे छोटे छेद होते है, इस गुण को रंध्रता कहते है।

द्रव वस्तुओं के विशेष गुण

द्रव वस्तुओं में समपीड्यकता (Compressibilty) का गुण नही होता है अर्थात द्रव दबाये नही जा सकते हैं। इसका कारण यह है कि द्रव के कणों में एक दूसरे से अधिक अन्तर नही होता है अर्थात इनमें अन्तर आकार नहीं होता बल्कि ठोसों की अपेक्षा इनके कण कुछ दूरी पर स्थित रहते है।

द्रव पदार्थ ऊँचे स्थान से नीचे की ओर बहते हैं।

प्रयोग 1—ढालू जमीन पर कुछ पानी डालो, आप देखेंगे कि पानी ढाल की ओर ही बहता है।

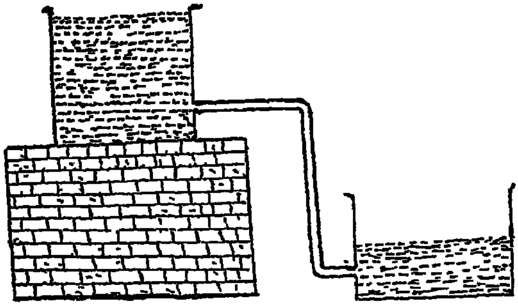

चित्र संख्या 17

प्रयोग 2—दो कांच की 'द्रोणियों' को चित्र सं. 17 के अनुसार रखें।

'अ' द्रोणी तथा 'ब' द्रोणी दोनों में पानी है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। अ, ब से ऊंची है, तथा हम देखेंगे कि पानी का प्रवाह 'अ' से 'ब' की ओर है, 'ब' से 'अ' की ओर नही। अतः यह सिद्ध है कि पानी ऊंचे से नीचे की ओर ही बहता है।

द्रव पदार्थ को जिस वस्तु में रखते हैं वह उसी की सूरत धारण कर लेता है।

प्रयोग—एक प्याला और एक लोटा ले, दोनों में लाल रंग का पानी भरें, प्याले मे पानी प्याले की और लोटे मे लोटे की सूरत धारण कर लेगा।

द्रव पदार्थ अपना तल समान रखते है.—चित्र संख्या 18 में दिखाये हुये बर्तन के समान एक बर्तन ले, इसमें एक ओर से पानी डालें, वह सब मे पहुंच जायेगा और पानी का तल सब में एकसा ही होगा।

द्रव पदार्थों का दवाव उनके धरातल की ऊंचाई पर निर्भर करता है।

यहां नीचे दिये गये चित्र में च और छ एकसे वर्तन है, च मे पानी की ऊँचाई अ ब है और छ मे क ख । यह स्पष्ट है कि ब छेद से निकलने वाला पानी अ ब ऊँचाई के कारण अधिक दूर तक जाता है जबकि छ के वर्तन मे ख छिद्र से निकलने वाला पानी कम दूर जाता है ।

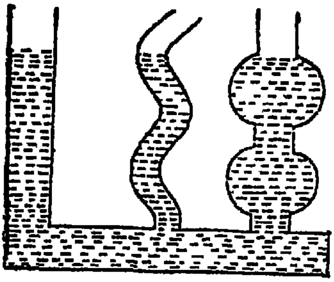

चित्र सं० 18

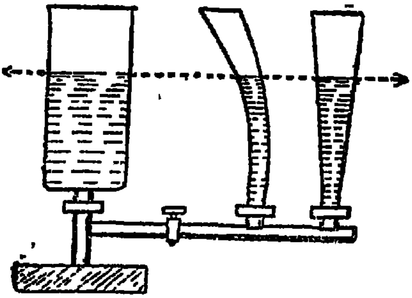

चित्र सं० 19

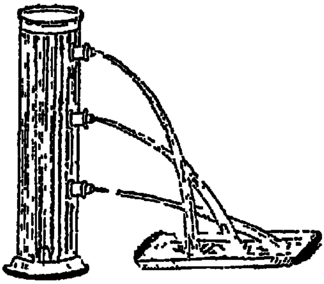

चित्र स० 20

अतः यह सिद्ध है कि द्रव पदार्थ का दबाव उसकी ऊँचाई पर निर्भर करता है ।

द्रव पदार्थ ऊपर की ओर उछाल मारते हैं—तैराक लोग अनुभव करते है कि जब वे पानी मे कूदते है तो पानी उन्हे ऊपर की ओर उछालता है—अथवा जब हम किसी लकड़ी के टुकडे को पानी मे डुबाना चाहे तो हमे बल लगाना पडता है—यह क्यो ? यह भी पानी के उछाल के कारण ही होता है ।

गैसों के गुण

गैस:—गैसो मे द्रवो की अपेक्षा अधिक अन्तर आकाश होता है और इनका कोई निश्चित आयतन भी नही होता है। इसी विशेष गुण के कारण गैस सब ओर आकाश मे फैल जाती है । अगर अन्तर आकाश गैस मे नही होता तो धुआ कभी भी नही उठ सकता था । इस प्रकार किसी वस्तु की खुशबू हमे दूर से नही आ सकती है।

(1) गैसों में भार होता है :

प्रयोग—एक खाली फुटबाल के ब्लेडर को तोल लें। पुनः उसे हवा भर कर तोलने पर मालूम होगा कि भार बढ़ गया है। अतः यह सिद्ध होता है कि हवा में भार होता है।

(2) गैसें एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर शीघ्र बहती हैं :

प्रयोग—एक एमोनिया की बोतल एक कमरे के कोने में जाकर खोलें, थोड़ी देर में एमोनिया की गन्ध सब कमरे में भर जायगी। अतः यह सिद्ध होता है कि गैस जल्दी फैलती है।

(3) गैस दबाव डालती है :

यह भी गैस पदार्थों का एक मुख्य गुण है।

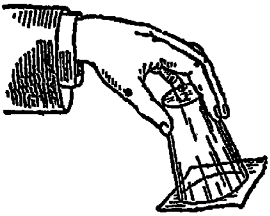

चित्र संख्या 21

प्रयोग—एक पानी से भरे गिलास पर एक काच की प्लेट को सटाकर लगा दे, फिर गिलास को उलट दे तो आप देखेंगे कि न तो प्लेट गिरी न पानी ही। यह इसलिये होता है कि प्लेट के नीचे हवा दबाव डाल रही है, जैसा कि चित्र संख्या 21 में दिखाया गया है।

प्रयोग—एक द्रोणी मे पारा भरें और एक ओर से बंद कांच की नली को पारे से भर कर द्रोणी में उल्टी रखें अर्थात् खुला सिरा पारे में हो, जैसा कि चित्र संख्या २२ में दिखाया गया है।

पारा नली में गिरेगा नहीं, यह भी हवा के दबाव के कारण है।

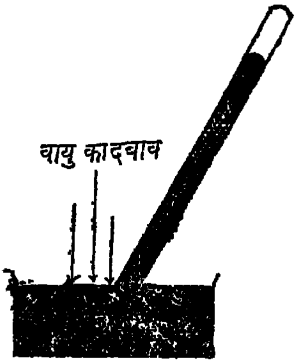

चित्र संख्या 22

ऊपर हमने ठोस, द्रव और गैस पदार्थों के कुछ विशेष गुणों का वर्णन किया है। ये गुण हमारे दैनिक जीवन पर बहुत प्रभाव डालते हैं, उदाहरण के लिए हम यह जानते है कि द्रव अपना तल एक सार रखते है। इस तथ्य से गटरों से पानी ऊंचे मकानों तक पहुंचाया जाता है और पानी इकट्ठा करने का स्थान पानी पहुंचने के स्थानों से ऊँचा रखा जाता है।

पतंग हवा के दबाव के कारण ही हवा में उड़ती है तथा इसी प्रकार कई अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते है।

अत: ठोस द्रव और गैस के गुण भिन्न-भिन्न है जिन्हे नीचे की तालिका मे दिया गया है —

ठोस	द्रव	गैस
1. ठोस का आयतन और आकार निश्चित होता है।	1 द्रव का निश्चित आयतन तो होता है लेकिन आकार निश्चित नही होता, ये जिस बर्तन मे रखे उसीका आकार ग्रहण कर लेते है।	1 गैस का कोई निश्चित आकार और आयतन नही होता है, ये जिस बर्तन मे ढाले जाते हैं उसी का आकार और आयतन ग्रहण कर लेते हे।
2. यह बहता नही है।	2. यह बहता है।	2. यह भी बहती है।
3. इसका धरातल या तल समतल होना आवश्यक नही है।	3. इसका तल हमेशा समतल रहता है।	3. इसका कोई तल ही नही होता है।
4. यह बहुत कम दबाया जा सकता है।	4. यह ठोस से अधिक दबाया जा सकता है।	4. यह बहुत अधिक दबाया जा सकता है।
5. इनके अलग अलग टुकड़ो को मिलाकर एक ठोस रूप मे नही बना सकते।	5. इसके अलग अलग टुकडों को आपस में मिलाकर द्रव के रूप मे बदल सकते है।	5. इसके अलग अलग टुकडो को भी आपस मे मिलाकर गैस के रूप मे बदल सकते हैं।
6. यह गर्म करने से बढ़ता है और सिकुडता है, लेकिन थोड़ा।	6. यह गर्म करने से बढता है और ठडा करने से सिकुडता है, लेकिन ठोस से अधिक।	6. यह गर्म करने से बढती है और ठडा करने से सिकुड़ती है, लेकिन द्रव से अधिक।

ठोस, द्रव और गैस पदार्थ के इन गुणो को आगे वतलायेगे । नीचे कुछ ठोस द्रव और गैस पदार्थो की सूची दी गई है :—

ठोस	द्रव	गैस
पत्थर	पानी	हवा
लोहा	ग्लेसरीन	आक्सीजन
शीशा	तेल	हाइड्रोजन
पीतल		नाइट्रोजन
तांबा		एमोनिया
सोना		क्लोरीन
चांदी		भाप
लकड़ी		गन्धक की गैस
कोयला		
मिट्टी, इत्यादि		

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) पदार्थ की तीन अवस्था कौन कौनसी है ? प्रत्येक के पाच-पाच उदाहरण दें ।

(2) द्रव पदार्थों के विशेष गुण बतावे और सिद्ध करे कि द्रव अपना तल ढूंढ लेते है । इससे दैनिक जीवन में क्या लाभ उठाया गया है ?

(3) रंध्रता, घन वर्धनीयता, तन्यता और नम्यता को उदाहरण देकर समझावें ।

(4) कैसे सिद्ध करेंगे कि हवा मे भार होता है ?

तीसरा अध्याय

हवा का दबाव और इसके उपयोग

वायु मण्डल—हम सब हवा के समुद्र मे घिरे रहते है। यह हवा हमे चारो ओर से घेरे हुए है। पृथ्वी से 200 मील की ऊचाई तक हवा मानी जाती है। इस हवा मे कई प्रकार की गैसे मिली रहती है, उदाहरण के लिये नाइट्रोजन, आक्सीजन कार्बन-डाई-आक्साइड। पृथ्वी के निकट की हवा का दवाव अधिक होता है क्योकि वह अधिक घना होता है। परन्तु ऊचाई पर हवा का दवाव कम होता जाता है और इसी कारण अधिक ऊचाई पर मनुष्य को स्वास लेना भी कठिन हो जाता है।

मानव शरीर पर हवा का दबाव—समुद्र तट पर हवा का दबाव 15 पौंड प्रति वर्ग इच होता है। हमारे शरीर का बाहरी क्षेत्रफल कई सौ वर्ग इंच है। अब यदि इस पर हवा का दवाव निकाले तो यह कई हजार पौंड निकलता है—तब हम उसका अनुभव क्यो नही करते? इसका कारण यह है कि यह दबाव सब ओर से पडता है। इस कारण हमें यह ज्ञात नही होता, यदि केवल एक ओर ही यह दबाव हो तो हम पिचक ही जाय। उदाहरण

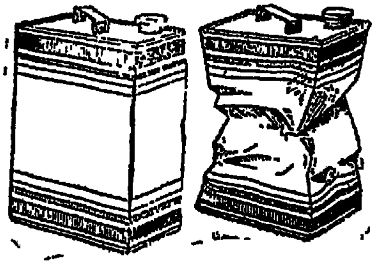

चित्र सख्या 24

के लिए (1) पीपे मे पानी भर कर खौलावे, भाप निकल जावेगी। पीपे को बन्द कर दे, उसे ठडा होने दे तो आप देखेगे कि भाप ने भीतर की हवा को निकाल दिया है और फिर बाहर की हवा के दबाव के कारण पीपा पिचक जावेगा। जब हवा पीपे के अन्दर थी तो वह बाहरी दबाव का प्रतिरोध करती थी, परन्तु जब भीतर की हवा निकल गई तो प्रतिरोध हट गया और बाहर की हवा ने पीपे को पिचका दिया जैसा कि ऊपर चित्र सख्या 24 दिखाया गया है।

हवा मे दवाव का प्रयोग—सर्व प्रथम मेग्डेबर्ग के ओटोवान गैरिक ने यह प्रयोग किया था।

प्रयोग 1—पीतल के दो खोखले गोलार्द्ध लिये, ये किनारे से इस प्रकार मिल जाते थे कि भीतर की हवा बाहर और बाहर की हवा भीतर नहीं जा सकती। दोनों गोलार्द्धों को मिला कर उनकी भीतर की हवा को वायुशोषक पम्प से निकाल दिया। अब इन गोलों को अलग करने का यत्न किया। यह तब हो सका, जब कि उसने आठ घोड़े एक ओर और आठ घोड़े दूसरी ओर लगाये, इसका कारण वायु मण्डल का दबाव ही था।

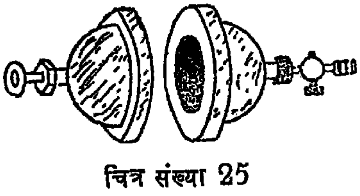

चित्र संख्या 25

प्रयोग 2—एक फुटबाल के ब्लेडर को हवा से भर कर कांच के ऐसे बर्तन में रखें जिसकी हवा निकाली जा सके। अब धीरे धीरे बर्तन की हवा निकालें तो देखेंगे कि ब्लेडर धीरे धीरे फूलने लगता है। इसका कारण यह है कि भीतर की हवा दबाव डालती है, बाहर हवा का दबाव नहीं है।

अतः यह सिद्ध हुआ कि हवा दबाव डालती है। यह दबाव आवश्यक है, यदि ऐसा न हो तो हमारा शरीर ही फट जाये। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि ऊंचे स्थानो पर हवा के कम दबाव के कारण नाड़ियां फटती सी ज्ञात होती है और श्वांस लेने मे भी कठिनाई पड़ती है।

हवा का दबाव दिखाने वाले कुछ यन्त्र

साइफन (Siphon)—किसी ऊचे स्थान के बर्तन से नीचे के स्थान के बर्तन को द्रव पहुंचाने के लिए साइफन का प्रयोग किया जाता है। इसमे एक मुडी हुई नली क, ख, ग, होती है, जिसकी ख ग भुजा, क ख की अपेक्षा लम्बी होती है। सर्व प्रथम इस नली को उस द्रव से भरते है जिसको निकालना होता है, और उसके दोनों सिरो को अंगूठे से बन्द कर लेते है जिससे कि द्रव पदार्थ बाहर न निकल जाये। अब इस नली को इस प्रकार रखते है कि छोटी भुजा ऊपर वाले बर्तन में डूब जाये फिर अंगूठो को हटा लेते है, तब द्रव पदार्थ निकलने लगता है। यह तब तक निकलेगा जब तक नली की छोटी भुजा के डूबे हुए सिरे तक द्रव नही पहुंच जाता। देखे चित्र स० 26

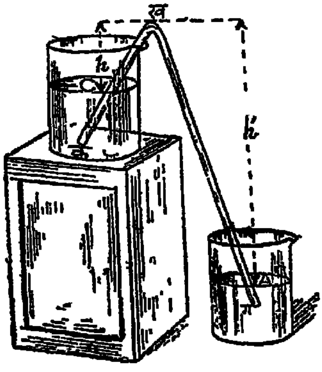

चित्र संख्या 26

पानी का पम्प—इसमें बेलनाकार धातु का बना एक खोखला नल होता है, जिसे बैरल कहते है। यह कुओ मे डूबी हुई नली ख ग में जुड़ा होता है। ख पर एक वाल्व 'व' लगा होता है। बैरल मे एक पिस्टन पम्प लगा होता है। इसके पिस्टन के इधर उधर होकर पानी ऊपर या नीचे नहीं आ जा सकता। फिर हैण्डिल 'ह' से पिस्टन को ऊपर नीचे चलाया जाता है।

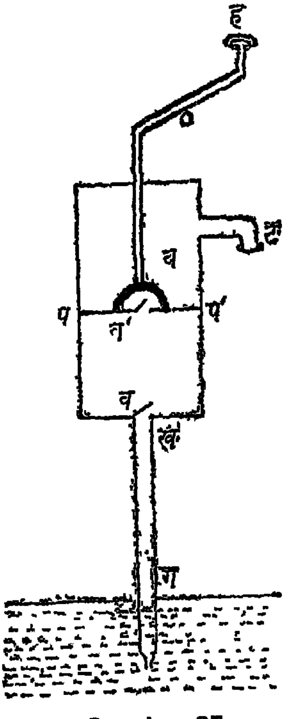

चित्र संख्या 27

इस पम्प की सहायता से पानी खींचने के लिये पिस्टन पप को वाल्व 'व' तक लाते हैं, जब पिस्टन नीचे पेंदे तक पहुंचता है तो इसके और पेंदे के बीच बहुत कम हवा रहती है, क्योंकि जब पिस्टन नीचे की ओर आता है तो वह हवा को नीचे दबाता है और हवा नीचे दबाने के बजाय 'व' को खोलकर ऊपर निकल जाती है। पिस्टन अब ऊपर उठाया जाता है, इससे व व' के बीच हवा का दबाव बहुत कम हो जाता है। इस स्थान को भरने के लिये नली 'ख ग' की हवा व और व' के बीच मे आ जाती है। यह हवा व से होकर नही निकल सकती क्योंकि व' के ऊपर हवा का दबाव अधिक होता है।

इस प्रकार पिस्टन प प' को ऊपर नीचे करने से ख ग नली की सब हवा निकल जाती है और इस स्थान को भरने के लिये पानी ऊपर चढ़ने लगता है। पानी पहले बैरल 'ब' मे पहुचता है, फिर टोटी मे से निकलने लगता है। पिस्टन नीचे ले जाने की दशा मे पानी नहीं निकलता, केवल पिस्टन के ऊपर चलने पर निकलता है। इसलिये इस पम्प को एक तरफा कार्य करने वाला पम्प कहते हैं।

हवा के पम्प दो प्रकार के होते है—एक वे जो हवा भरने के काम आते है दूसरे वे जो हवा निकालने के काम मे आते हैं। इन दूसरे प्रकार के पम्पो को शोषक पम्प कहते है।

हवा निकालने का पम्प—'शोषक-पम्प'

इसमे एक लम्बा बैरल 'ब' होता है, जिसके बीच मे एक नली 'स' होती है। इसके सिरों पर दो वाल्व व और व' लगे होते है। व और व' दोनों बाहर की ओर खुलते हैं।

इसमें हेण्डिल 'ह' होता है, जिसमे थोड़ी दूर पर दो पिस्टन लगे होते है। जिस वर्तन की हवा निकालनी होती है उसे 'स' से जोड़ देते हैं। अब पिस्टन को दायी ओर चलाते है, इससे 'प' और ब के बीच की हवा दबती है और 'ब' खुल जाता है और हवा बाहर चली जाती है। तथा प और अ के बीच हवा का दबाव कम हो जाता है, जिससे वाल्व व बन्द रहता है। जब पिस्टन प स के दायी ओर चला जाता है तो बर्तन की हवा आकर अ और प के बीच के स्थान भर देती है। अब पिस्टन 'ह' बायी ओर चलता है। प और अ के बीच की हवा वाल्व 'ब' मे से निकल जाती है। साथ ही 'प' और ब के बीच मे भी शून्यता आ जाती है जिससे वाल्व 'व' बन्द हो जाता है। जब पिस्टन 'स' के बायी ओर चला जाता है तो स की हवा प और ब के बीच के स्थान को भर देती है। जब पिस्टन पुनः दायी ओर चलता है तो प और ब के बीच की हवा 'व' से निकल जाती है। इस प्रकार बार-बार करने से 'स' पर लगे हुये वर्तन की हवा लगभग पूर्णतः निकाली जा सकती है।

साईकिल का पम्प—इस पम्प मे बेलन और पिस्टन होता है, पिस्टन मे वाशर लगा होता है, जो चमडे का होता है। यह वाशर ही वाल्व का कार्य करता है। जब पिस्टन प को ऊपर उठाते है तो बेलन ब मे हवा पम्प के ऊपर के छेद से भर जाती है। जब पिस्टन प को नीचे दबाते हैं तो बेलन ब की हवा को निकालने को कोई स्थान नहीं मिलता और वाशर उसे ऊपर नही जाने देता, अतः वह स से जुड़ी साइकिल ट्यूब मे चली जाती है।

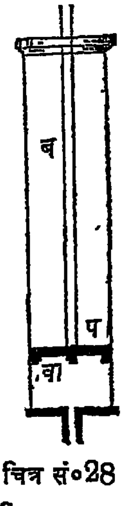

चित्र सं०28

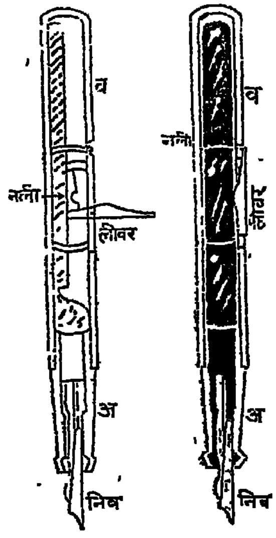

चित्र संख्या 29

फाउन्टेन पेन—फाउन्टेन पेन में स्याही भी हवा के दबाव के कारण ही भर जाती है। फाउन्टेन पैन मे एक रबर की नली होती है जिस पर एक धातु की पतली पत्ती पड़ी रहती है, बाहर लगे हुये एक धातु के लीवर द्वारा इस रबड़ की नली से चिपटी धातु की पत्ती को दबाया जा सकता है,

इसे दबाने से नली भी दबती है, जिससे हवा निकल जाती है और हवा शून्य स्थान पर स्याही पहुंच जाती है।

स्टोव:—स्टोव का सिद्धान्त–जब मिट्टी का तेल गरम किया जाता है तो व गैसीय अवस्था धारण कर लेता है और इस मिट्टी के तेल की गैस जब हवा व आक्सीजन के साथ मिलकर जलती है तो अधिक ताप उत्पन्न करती है। इसी सिद्धांत पर स्टोव का कार्य आधारित है। मिट्टी का तेल जब द्रव अवस्था मे जलता है तब हम देखते है कि उसके द्वारा प्राप्त ताप की मात्रा गैसीय अवस्था मे जलाये गये मिट्टी के तेल से कम होती है, इसीलिये हम मिट्टी के तेल की चिमनी का उपयोग न करके स्टोव का उपयोग करते है।

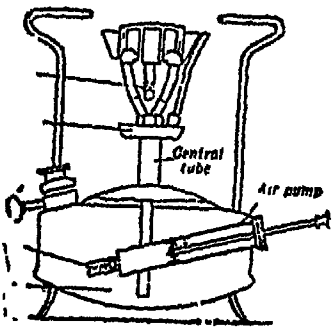

चित्र संख्या 30

बनावट.—इसमे एक तेल रखने की टंकी होती है। इस टंकी के एक ओर हवा भरने का एक पम्प लगा होता है, जिसकी बनावट साइकिल के पम्प जैसी होती है अर्थात इसमे भीतर की ओर खुलने वाला एक वाल्व और पिस्टन लगा होता है और टंकी के ऊपर की ओर एक छिद्र होता है, जिसके द्वारा एक नली टंकी मे भीतर की ओर नीचे तक गई हुई होती है तथा नली का दूसरा हिस्सा हवा मे बाहर ही रहता है। इस नली मे एक प्याली सी लगी होती है और नली के सिरे पर बर्नर लगा होता है। बर्नर का सम्बन्ध नली से होकर मिट्टी के तेल की टंकी से होता है जबकि प्याली का सम्बन्ध केवल नली के बाहरी सिरे से ही होता है। इस टंकी मे एक ओर एक पेच लगा होता है जिसके द्वारा टंकी मे मिट्टी का तेल भरा जा सकता है। टंकी के तीनो ओर तीन स्टेन्ड लगे होते हैं जिसके सहारे स्टोव को किसी भी समतल कोण पर सुगमता से रखा जा सकता है। स्टेन्ड के ऊपरी सिरे पर एक प्लेट रखी रहती है जिस पर बर्तन आदि रखा जा सकता है। हवा भरने के पम्प के नीचे की ओर एक स्प्रीट वाल्व लगा रहता है जो कि भीतर की ओर तो खुल सकता है लेकिन इसके द्वारा भीतर से कोई वस्तु या गैस बाहर की ओर नही निकल सकती।

कार्य करने का सिद्धान्त.—सबसे पहले मिट्टी के तेल को टंकी मे भर दिया जाता है, इसके उपरान्त नली के चारो ओर लगी हुई प्याली मे थोडी सी स्प्रीट डाल कर जला देते है, जिससे नली और बर्नर गरम हो जाते है। अब पम्प से हवा भरी जाती है, यह हवा मिट्टी के तेल मे से होकर उसके धरातल पर पहुच कर भरने

लगती है और मिट्टी के तेल पर दबाव डालती है, अतएव मिट्टी का तेल नली द्वारा ऊपर चढता है और ऊपर पहुचने पर नली गर्म होने के कारण गैसीय अवस्था मे परिणित हो जाता है और यह गैस बर्नर से बाहर निकलते ही हवा की ऑक्सीजन के साथ मिलकर जलने लगती है। इस प्रकार हमें थोड़ी सी ही शक्ति से अधिक ताप प्राप्त हो जाता है। यह बहुत लाभदायक यन्त्र है, क्योंकि इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि शीघ्र ही जल सकता है और सुगमता पूर्वक कही भी ले जाया जा सकता है। इसके बन्द करने के लिए ऊपर लगे हुए वाशर या पेच को खोल लेते है, जिससे टंकी की हवा निकल जाती है और टकी मे दबाव कम हो जाने से तेल का ऊपर चढना भी बन्द हो जाता है और स्टोब कार्य करना वन्द कर देता है। इसमे यह सावधानी रखना आवश्यक है कि टकी मे अधिक हवा न भरी जाय क्योंकि अधिक हवा भरने से टंकी के फट जाने का भय रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) हवा-भरने के पम्प का वर्णन करते हुए बताइये कि इसमे हवा का दबाव किस प्रकार कार्य करता है ?

(2) हवा निकालने के पम्प का चित्र बनाइये और इसका कार्य समझाइये।

(3) मिट्टी के तेल के चूल्हे (स्टोब) का सिद्वात और कार्य चित्र बनाकर सविस्तार समझाइये।

(4) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये:—

फाउन्टेन पैन, वाटर पम्प।

चौथा अध्याय

हवा के दबाव मापने के यन्त्र

हम पिछले अध्याय में हवा के दवाव के विषय मे पर्याप्त प्रकाश डाल चुके है। इस अध्याय मे हम कुछ ऐसे यन्त्रो का वर्णन करेगे जिनसे हवा का दबाव माप, जाता है। हवा के दबाव मापने के यन्त्र को बैरोमीटर, या हवा का दबाव मापक यन्त्र कहते हैं। सबसे सरल बैरोमीटर का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

दबाव मापकः—एक पारे से भरी नाँद लो, इसमे पारे से भरी हुई एक ओर से बँद कांच की एक नली लेकर उसे इस प्रकार खडी करो जैसा कि नीचे चित्र संख्या 31 मे दिखाया गया है।

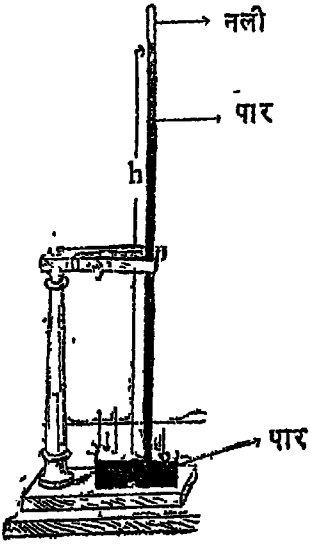

चित्र स० 31

सामने चित्र मे पारे से भरी नाद मे बंद नली इस प्रकार दिखाई गई है कि उसका बन्द सिरा ऊपर की ओर है—पारा इस नली मे 'h' ऊंचाई तक ठहर जाता है। यह हवा के दबाव के कारण है, हवा का दबाव क–ख सतह पर पड़ता है। हवा का दबाव जब सतह को दबाता है तो पारा नली मे ऊपर चढ़ता है और जब दबाव कम होता है तो नली मे पारा नीचे गिर जाता है। यदि बन्द नली के सिरे को तोड़ दे तो नली का पारा नाद के पारे की सतह तक गिर जावेगा।

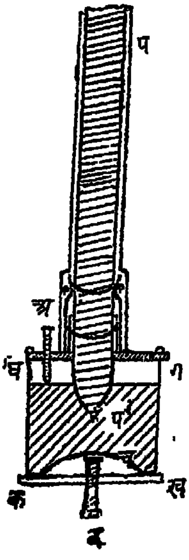

चित्र सख्या 32

वायु मंडल 76 सेन्टीमीटर ऊँचे पारे को पृथ्वी तल पर रोक सकता है। अब यदि वायु मडल का दबाव समस्त पृथ्वी पर निकालना चाहे तो वह उतना होगा जितना 76 से. मी. से भी ऊँचा, पारा समस्त पृथ्वी पर दबाव डालेगा।

फोर्टिन का दबाव मापक

प्रयोगशाला में हवा का दबाव निकालने के लिए फोर्टिन का बैरोमीटर काम में लिया जाता है। इसमें पारे से भरी नली प प" (चित्र सं० 32) होती है। यह ऊपर से बंद होती है और नीचे का खुला सिरा पारे से भरी नांद क ख ग घ में डूबा होता है। क ख ग घ वास्तव मे एक बेलनाकार बर्तन है जिसके नीचे के सिरे में चमड़ा 'च' लगा होता है। इस चमड़े मे होकर पारा बाहर नही निकल सकता यह चमड़े का पर्दा पेच 'न' पर ठहरा होता है।

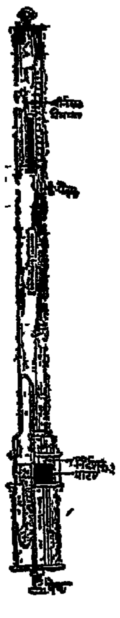

नांद क ख ग घ एक ढक्कन से ढकी होती है। नांद और नली को भली प्रकार बांध दिया जाता है। नांद के ढक्कन मे हाथी दांत का सूचक 'स' भी लगा होता है। इसमे ऊपर की ओर पारे का सतह देखने के लिए स्थान छोड़ा हुआ रहता है। इस स्थान पर पैमाना बना होता है। एक ओर यह पैमाना इंचों और उसके अंश तथा दूसरी ओर सेन्टीमीटर तथा मिली.मीटर में बँटा होता है। पैमाने के ये अङ्क इस प्रकार होते है कि इनका शून्य अङ्क हाथी दांत के सूचक की नोंक पर होता है। इस पैमाने पर एक फिसलने वाला वर्नियर भी लगा होता है। चित्र संख्या 34 मे देखें माप–दड बतलाया गया है। 'व' वर्नियर है। वर्नियर के बायी ओर ईंचों में बंटा पैमाना है और दायी ओर सेन्टीमीटर में बंटा हुआ पैमाना है। वर्नियर पारे की सतह से सटा हुआ दिखाया गया है।

चित्र सं० 33

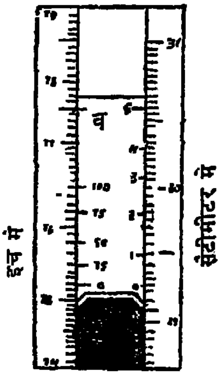

चित्र सं० 34

चित्र संख्या 34 में सम्पूर्ण फोर्टिन का दबाव मापक यंत्र दिखलाया गया है।

बैरोमीटर को सही करने की विधि

इस यन्त्र से दबाव मापने के पूर्व इसे सही करना होता है। सर्व प्रथम चित्र 32 में दिखाये अनुसार पेच 'न' को घुमाकर पारे की सतह से उठाकर हाथी-दांत के सूचक 'अ' की नोक से छुआ देते है। ऐसी दशा में सूचक की नोंक पारे में दिखाई देने लगेगी। यह इसलिए करते है कि नाद के पारे का तल मापदंड के शून्य अंक को छूने लगे, क्योंकि मापदंड का शून्य अङ्क हाथी दात के सूचक की नोक पर होता है।

अब वर्नियर को सैट करना होता है, वर्नियर के पेच को घुमाकर वर्नियर को पारे की सतह पर कर देते हैं, जैसा कि चित्र सं० 34 मे दिखाया गया है। इसमे पहले कठिनाई पड़ती है परन्तु फिर अभ्यास बन जाता है। अब इस वर्नियर की सहायता से दबाव सेन्टीमीटर अथवा इंचों में सुविधानुसार पढ लिया जाता है।

एक तापमापक (Thermometer) भी इस दबाव मापक के तख्ते पर लगा होता है, इससे उस समय का तापक्रम भी ज्ञात हो जाता है, जिस समय दबाव मापा गया है। क्योंकि बिना तापक्रम के दबाव पढना कोई मूल्य नही रखता। अत. यह आवश्यक है कि दबाव पढते समय का तापक्रम भी दिया जाय।

एनीरायड बैरोमीटर

फार्टिन के दबाव मापक में यह दोष है कि वह भारी होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही ले जाया जा सकता, क्योकि उसके टूटने का डर रहता है। इसलिए दुर्गम स्थानों पर तथा उड़ान के समय या हवाई जहाजो मे एनीरायड दबाव मापक को साथ रखने में सरलता होती है, साथ ही यह दबाव भी ठीक बतलाता है। इसमे किसी प्रकार का द्रव काम मे नही आता इसलिये इसे एनीरायड दबाव मापक यन्त्र कहते हैं, क्योकि एनीरायड ग्रीक शब्द है और इसका अर्थ होता है सूखा। (चित्र सं० 35)

यह एक धातु का बेलनाकार यन्त्र है। इसकी हवा अच्छी तरह निकाल दी जाती है और तब मजबूती से बन्द कर दिया जाता है, जिससे न हवा निकल सके न घुस सके, ऊपर से यह लहरियेदार ढक्कन से ढका होता है। यह ढक्कन अत्यन्त लचकदार होता है। हवा का दबाव जरा बढने या घटने पर यह लहरियेदार ढक्कन ऊपर उठ जाता है या नीचे गिर जाता है। यह उठना या गिरना हवा के दबाव पर निर्भर करता है। यद्यपि यह उठाव या गिराव बहुत छोटा होता है तथापि यह कलों द्वारा बढ़ा दिया जाता है

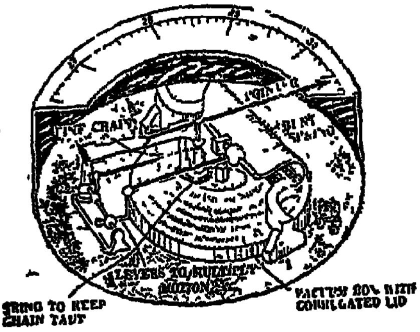

चित्र संख्या 35

दवाव मापक के लाभ—इससे मौसम का ज्ञान होता है, यदि दवाव मापक का पारा ऊंचा चढ़ता है तो इसका अर्थ हुआ हवा का दवाव वढना अर्थात् मौसम का साफ होना, यदि दवाव मापक का पारा एकदम गिरता है तो यह मौसम का खराव होना सूचित करता है। पारे का धीरे धीरे गिरना वर्षा और तेज हवा का द्योतक है। नित्य आप अपने रेडियो पर मौसम की सूचना सुनते हैं। यह इसी दवाव मापक की आधार पर वताया जाता है। हवाई जहाज पर उड़ने वालो के लिए तो यह वरदान है, क्योंकि इससे मौसम विगड़ने की सूचना इन्हे पहले ही मिल जाती है। दवाव मापक से ऊंचाई का ज्ञान भी होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) हवा का दवाव मापने के लिए यत्र कैसे बनावेगे, वर्णन करें।

(2) फोर्टिन का दवाव मापक क्या होता है? इससे हवा का दवाव कैसे पढेगे ?

(3) एनीरॉयड दवाव मापक का वर्णन करे, इसके लाभ भी बतलावें।

(4) दवाव मापक के क्या लाभ है ?

(5) दवाव, आयतन और तापक्रम के क्या सम्बन्ध है ?

पाँचवाँ अध्याय

घनत्व, आपेक्षित घनत्व और आर्किमिडिज का सिद्धांत

किसी वस्तु का परिमाण, उसकी मात्रा कहलाती है, अर्थात् उतनी वस्तु होती है। इसके साथ ही यह भी समझ लेना आवश्यक है कि कोई वस्तु जितना स्थान घेरती है वह इसका आयतन कहलाता है।

माना कि—अ ब स द क एक घन है जिसकी भुजाये अ ब, ब ग, अ क तीनो 1 सेन्टीमीटर लम्बी है। इस घन का आयतन हुआ :—

$$1cm \times 1cm \times 1cm. = 1 \text{घन से० मी०} = 1cm^3$$

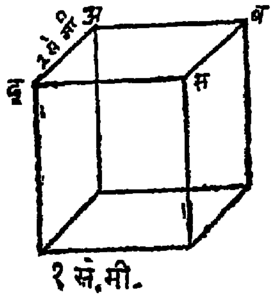

चित्र स० 36

यह आयतन की ईकाई है, अत: किसी वस्तु का आयतन घन सेन्टीमीटर में मापा जाता है।

इसी प्रकार मापने की इकाई ग्राम है।

अब यदि कोई वस्तु है, उसकी मात्रा 10 ग्राम है और उसका आयतन 8 घन सेन्टीमीटर है तो 1 घन सेन्टीमीटर की मात्रा क्या होगी ?

8 घन सेन्टीमीटर आयतन की मात्रा 10 ग्राम है।

1 घन सेन्टीमीटर आयतन की मात्रा $\dfrac{10 \text{ ग्राम है।}}{8 \text{ घ० से० मी०}}$

इस $\dfrac{10 \text{ ग्राम}}{8 \text{घ० से० मी०}}$ का अर्थ है वह मात्रा जो उस वस्तु के एक आयतन में होगी, इसी को घनत्व कहते है।

अर्थात् किसी वस्तु के इकाई आयतन मे जितनी मात्रा होती है वह उस वस्तु का घनत्व कहलाता है।

घनत्व की इकाई ग्राम प्रति घ० से० मी० होती है।

इसी को अन्य शब्दो मे इस प्रकार कह सकते हैं कि किसी वस्तु के 1 घन सेन्टीमीटर को लेकर तौला जाय तो उसकी जो मात्रा होगी वह उस वस्तु का घनत्व होगा।

आपेक्षित घनत्व—किसी वस्तु के घनत्व की तुलना जब पानी के घनत्व से करते हैं तो उस वस्तु को आपेक्षित घनत्व निकलता है।

$$\text{किसी वस्तु का आपेक्षित घनत्व(Raeltive density)} = \frac{\text{वस्तु का घनत्व}}{\text{पानी का घनत्व}}$$

आपेक्षित घनत्व की कोई इकाई नही होती, क्योंकि यह एक सी वस्तु का अनुपात है देखिये:—

$$\text{आपे० घ०} = \frac{\text{वस्तु का घनत्व gm/cc}}{\text{पानी का घनत्व gm/cc}}$$

$$\text{आपे० घ०} = \left. \frac{\dfrac{\text{वस्तु की मात्रा}}{\text{वस्तु का आयतन}}}{\dfrac{\text{पानी की मात्रा}}{\text{पानी का आयतन}}} \right\}$$

$$= \frac{\text{वस्तु की मात्रा}}{\text{पानी की मात्रा}} \times \frac{\text{पानी का आयतन}}{\text{वस्तु का आयतन}}$$

अब यदि वस्तु की मात्रा और पानी का आयतन समान हो तो

$$\text{आ० घ०} = \frac{\text{वस्तु की मात्रा}}{\text{वस्तु के आयतन के बराबर आयतन वाले पानी की मात्रा}}$$

1. अत. एक घनत्व इकाई आयतन की मात्रा है, आपेक्षित घनत्व वस्तु के घनत्व और पानी के घनत्व की तुलना हैं।

2. आपे० घनत्व की कोई इकाई नही होती, घनत्व की इकाई ग्राम प्रति घन सेन्टीमीटर होती है।

3. आपे० घनत्व को जानने के लिये आयतन के ज्ञान की आवश्यकता नही पड़ती, घनत्व जानने के लिये यह आवश्यक होता है।

उदाहरण—किसी वस्तु की मात्रा 100 gm है और उसका आयतन 14 घन सेन्टीमीटर है तो उसका घनत्व निकालिये।

उत्तर— $\text{घनत्व} = \frac{\text{मात्रा}}{\text{आयतन}} \quad \frac{\text{ग्राम}}{\text{घन से०मी}}$

$$= \frac{100}{14} = 7.14 \text{ ग्राम/घन से०मी०}$$

आर्किमिडिज का सिद्धान्त

जब हम पानी मे तैरते है तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि पानी हमें ऊपर फेंकता है, अर्थात् ऊपर की ओर उछालता है। इसी प्रकार पानी में वस्तुएं हल्की प्रतीत होती है।

आर्किमिडिज्

हवा में यदि किसी वस्तु को तोले और पुनः पानी मे लटका कर यदि तोले तो स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु का भार पानी मे हवा की अपेक्षा कम होता है।

स्नान के समय पानी से भरी नांद मे बैठते हुए आर्किमिडिज ने सर्व प्रथम इस उछाल का अनुभव किया था। उसी ने यह बताया कि जब वस्तु पानी मे डूबती है तो उसके भार में कमी होती है।

जब कोई वस्तु पानी में डूबती है तो वह पानी को हटाती है, उसका जितना आयतन पानी मे डूबता है उतना ही पानी वह हटाती है। अर्थात् यदि किसी वस्तु का 100 घ० सेन्टीमीटर आयतन पानी में अगर डूबता है तो वह 100 घ० मी० ही पानी हटायेगा। साथ ही यह भी समझने की बात है कि कोई वस्तु पानी में तब तक डूबती है जब तक उसका भार पानी के उछाल के बराबर नहीं हो जाता। वस्तु का भार नीचे की ओर होता है और पानी का उछाल ऊपर की ओर। हम पहले भी कह चुके है कि जब कोई वस्तु पानी में डूबती है तो उसके भार में कमी होती है—भार मे इस कमी का कारण यह उछाल ही है।

अतः अब यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु के भार में जो कमी होती है वह हटाए हुए द्रव के भार के बराबर होती है तथा हटाये हुए द्रव का आयतन वस्तु के डुबे हुए आयतन के बराबर होता है। यही आर्किमिडिज् का सिद्धान्त है।

आर्किमिडिज् के सिद्धान्त को प्रयोग द्वारा सिद्ध करना

किसी भी वस्तु का भार यदि पानी मे लिया जाय तो वह भार हवा के भार से कम प्रतीत होता है। इस भार की कमी का कारण यह है कि जिस द्रव पदार्थ में वह वस्तु डूबी रहती है वह नीचे से उछाल मारती है, जिसे द्रव का उछाल (Upthrust) कहते हैं। इसी उछाल के कारण पानी मे डूबी हुई वस्तुये हल्की प्रतीत होती हैं।

आर्किमिडिज् नामक वैज्ञानिक (250 बी० सी०) ने इस सिद्धात का आविष्कार किया, जो उसके नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त को आर्किमिडिज् का सिद्धान्त कहते है। इस सिद्धात को इस प्रकार कह सकते है :—

"जब कोई वस्तु पूर्णतया अथवा उसका कोई भाग किसी द्रव में डुबोया जाता है तब उसके भार में कमी आ जाती है, जो वस्तु द्वारा हटाये गये द्रव के भार के बराबर होता है।"

आर्किमिडिज् के सिद्धान्त की परीक्षा के लिए एक बेलननुमा बाल्टी (Bucket) तथा एक ठोस बेलन (Cylinder) की आवश्यकता होती है। एक तुला ले, (चित्र संख्या 38) इस तुला को हाइड्रोस्टेटिक तुला कहते है। यह तुला वस्तुओ का पानी में भार निकालने के काम में आती है।

इस तुला के एक तरफ बाल्टी को (अ) हुक में लटका दिया जाता है तथा बेलन (ख) को (अ) के नीचे वाले हुक में लटका दिया जाता है। फिर उनको दूसरे पलड़े मे बाट रख कर हवा मे तौल लिया जाता है। अब बेलन (ख) को पानी की बाल्टी में डुबा दिया जाता है जिससे डंडी की समता भग हो जाती है, अतः भार की कमी स्पष्ट हो जाती है। अब बाल्टी, (क) जिसका आयतन बेलन के बाहर के आयतन के बराबर होता है, में पानी भर दिया जाता है। इससे डंडी फिर समता की अवस्था मे आ जाती है। अतः सिद्ध है कि ख जब पानी मे डुबोया जाता है तो उसके भार मे कमी आ जाती है। यह कमी क मे भरे गये पानी के बराबर होती है। परन्तु ख क से आयतन मे बराबर है, अत. क मे ख के आयतन के बराबर पानी आता है या भार में कमी बेलन ख के द्वारा हटाये गये पानी के भार के बराबर होती है।

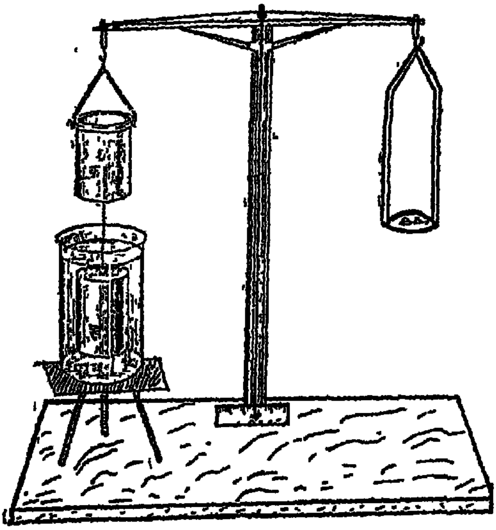

चित्र संख्या 38

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि जब कोई वस्तु पानी में डूबती है तो उसके भार मे कमी होती है और यह भार मे कमी उसके हटाये हुए द्रव के भार के बराबर होती है।

इस सिद्धान्त की सहायता से हम वस्तुओं का आपेक्षित घनत्व भी आसानी से निकाल सकते है, क्योंकि—

$$\text{आ० घ०} = \frac{\text{वस्तु की मात्रा}}{\text{वस्तु के आयतन के बराबर आयतन वाले पानी का भार}}$$

इस सिद्धान्त के अनुसार डूबी हुई वस्तु अपने आयतन के बराबर पानी हटाती है और इस हटाये हुए द्रव का भार वस्तु के भार में कमी के बराबर होता है।

अतः—

$$\text{आपे० घ०} = \frac{\text{वस्तु का हवा मे भार}}{\text{भार मे कमी}}$$

$$= \frac{\text{वस्तु का हवा मे भार}}{\text{वस्तु का हवा मे भार} - \text{वस्तु का पानी मे भार}}$$

इस प्रकार यदि किसी वस्तु का आपेक्षित घनत्व निकालना चाहें तो पहले उसे हवा में तौल ले, पुन. उसको पानी मे तौल ले। माना, हवा मे उसका भार M_1 M_2 ग्राम तो भार मे कमी हुई $M_1 - M_2$ ग्राम

अतः—

$$\text{आपे० घ०} = \frac{\text{वस्तु का हवा मे 'भार'}}{\text{वस्तु के भार मे कमी}}$$

पानी में हलकी वस्तु का आपेक्षित घनत्व ज्ञात करना :

जब कोई वस्तु पानी मे नही डुबती तो उसका पानी में तोल निकालने के लिए एक सहायक डुबाने वाले (Sinker) की आवश्यकता होती है, यह कोई धातु का टुकड़ा हो सकता है।

अब पानी से हल्की वस्तु को इस धातु के टुकडे से बांध कर पानी मे डुबा कर तौल ले। पुनः अकेले डुबा देने वाले धातु के टुकड़ों को पानी मे डुबोकर भार निकाल ले।

अब यदि डुबाने वाले धातु के टुकड़ो और पानी से हल्की वस्तु दोनो के सम्मिलित भार में से डुबाने वाली वस्तु का पानी मे भार निकाल दे तो पानी से हल्की वस्तु का पानी मे भार निकल आयेगा।

उदाहरण के लिए एक कार्क लिया :—

इसका हवा मे भार	$=M_1$ ग्राम
इसका और लोहे के टुकड़े का पानी मे भार	$=M_2$ ग्राम
लोहे के टुकडे का पानी मे भार	$=M_3$ ग्राम
केवल कार्क का पानी मे भार	$=M_2-M_3$ ग्राम
कार्क के भार मे कमी	$=M_1-(M_2-M_3)$
कार्क का आपेक्षित घनत्व	$=\dfrac{M_1}{M_1(M_2-M_3)}$

द्रव पदार्थ का आपेक्षित घनत्व

किसी ठोस को एक बार पानी मे तौल ले और फिर एक बार उस द्रव पदार्थ मे जिसका आपेक्षित घनत्व निकालना है, तौल ले, अब उस ठोस को हवा मे तौल ले।

माना, ठोस का हवा मे भार	$=M_1$ ग्राम
ठोस का द्रव मे भार	$=M_2$ ग्राम
ठोस का पानी मे भार	$=M_3$ ग्राम
हटाये हुये द्रव का भार	$=M_1-M_2$ ग्राम
हटाये हुये पानी का भार	$=M_1-M_2$ ग्राम

ध्यान देने की बात यह है कि हटाये हुए द्रव और पानी का आयतन समान है, अत. द्रव का आपेक्षित घनत्व

$$=\frac{M_1-M_2}{M_1-M_2} \quad \frac{\text{द्रव का भार}}{\text{द्रव के आयतन के समान आयतन वाले पानी का भार}}$$

पानी में घुलनशील वस्तु का आपेक्षित घनत्व

नमक जैसे पानी मे घुल जाता है तो इसका आपेक्षित घनत्व स्प्रीट मे निकालना चाहिये और स्प्रीट के घनत्व से उस फल को गुणा करने से नमक का आपेक्षित घनत्व पानी के द्वारा निकल आयेगा।

तैरने का सिद्धान्त (Floating principle)

हम पहले भी कह चुके है कि प्रत्येक पदार्थ मे नीचे की ओर गिरने की प्रवृत्ति होती है, इसका कारण है, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति । इसलिए जब कोई वस्तु पानी मे नीचे जाती है तो वह अपने भार के कारण वेग से नीचे जाती है। पानी का उछाल उसे ऊपर फेकने का प्रयत्न करता है। पाठक देखें कि दो बल

विपरीत दिशा में हो गये, एक वस्तु का भार W नीचे की ओर तथा उछाल का बल P ऊपर की ओर। चित्र में दिखाया गया है कि W नीचे की ओर है तथा P ऊपर की ओर। अब यह वस्तु अ तब तक नीचे आयेगी जब तक W बराबर P के नही हो जाये। अगर W अधिक है तो वस्तु नीचे चली जायगी और अगर P अधिक है तो वस्तु ऊपर उछल जायगी। यदि W=P है तो वस्तु तैरने लगेगी। जब कोई वस्तु डूबती है तो अपने आयतन के बराबर पानी हटाती है। सब सोचते है कि बडे-बडे जहाज पानी मे कैसे तैरते है। इसका कारण यही है कि जहाज अपने भार से बहुत अधिक पानी हटाते है क्योंकि उनका आयतन बहुत बडा कर दिया जाता है, इसलिए उनके द्वारा हटाये हुए पानी का भार उनके भार से अधिक होता है।

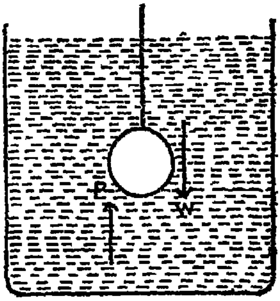

चित्र सख्या 39

अतः "जब कोई वस्तु किसी द्रव में तैरती है तो उसके द्वारा हटाये गये द्रव का भार उसके स्वयं के भार के बराबर होगा" यही तैरने का सिद्धान्त है।

तैराक इस बात को जानते है कि नदी के पानी मे तैरने की अपेक्षा समुद्र के पानी मे तैरना अधिक सरल होता है; इसका कारण यही है कि समुद्र के पानी में उछाल अधिक होता है, क्योंकि उसका घनत्व अधिक होता है, कारण उसमे नमक होता है।

बड़े-बड़े बर्फ के टुकड़े पानी मे तैरते है, इसका कारण यह है कि जब बर्फ जमती है तो उसका आयतन बढ जाता है, उसके द्वारा हटाये हुए पानी का भार उसके स्वयं के भार से अधिक हो जाता है और वह पानी से ऊपर उठ कर तैरने लगता है।

उत्तरी ध्रुव के पास समुद्र मे बडे-बडे बर्फ के टुकडे तैरते है, ये इतने बड़े होते है कि बहुत बडे-बडे जहाज भी इनसे टकरा कर तल मे समा जाते है। ऊपर से ये हिम खण्ड छोटे दिखाई पड़ते हैं परन्तु इनके नीचे के भाग बहुत विस्तृत होते हैं, इनका घनत्व समुद्र के घनत्व से कम होता है साथ ही उनका आयतन भी अधिक होता है, इसी कारण ये तैरते रहते है। इन्हे हिम खण्ड (Iceburg) कहते है।

चित्र संख्या 40

निकलसन हाइड्रोमीटर (घनत्व मापक)

जब बिना भौतिक तुला के किसी वस्तु का आपेक्षित घनत्व निकालना हो तो इस यन्त्र को काम मे लेते है। इसमे एक खोखला वेलन होता है। देखिये दिये हुये चित्रो मे अ और ब दो चित्र है, अ मे केवल वेलन दिखाया गया है और ब में वेलन से लटका हुआ एक भारी कोण (क) लटका हुआ दिखाया गया है। पानी से भरे जार मे लटकाने पर यह तैरने लगता है। क्योंकि यह खोखला होता है और अपने भार से अधिक भार का पानी हटाता है, इसलिये पानी मे तैरता है।

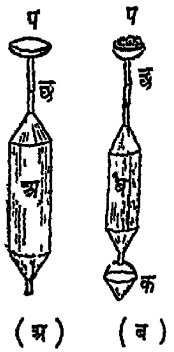

चित्र सख्या 41

वेलन मे एक ओर इसमे छड (छ) लगी होती है, इसमे एक चिन्ह बना होता है, छड पर एक पलडा 'प' लगा होता है।

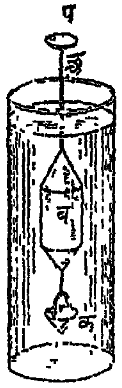

चित्र संख्या 42

दिये हुये चित्र मे पूर्ण निकलसन हाइड्रोमीटर दिखाया गया है अब इसके द्वारा किसी वस्तु का घनत्व कैसे निकाला जाता है यह बताते है :—

सर्व प्रथम इस यन्त्र को पानी मे डुबाते है और इतना भार रखते है कि यह यन्त्र चिन्ह तक डूब जाता है। माना कि यन्त्र का भार wh है और w_1 भार और रखना पड़े तब कुल भार w_1+wh हुआ जो उछाल के बराबर होगा, क्योंकि तैरने के सिद्धान्त के अनुसार निकलसन हाइड्रोमीटर तभी तैरेगा जब w_1+wh उछाल के बराबर होगा।

अब इस पर से w_1 वजन हटा दीजिए और वस्तु रखिए। माना कि वस्तु का भार w है और w_2 भार और रखना पडता है, इस यन्त्र को चिन्ह तक डुबाने के लिए तो कुल भार हुआ $w+w_2+wh$, परन्तु यह उछाल पहले वाले उछाल के बराबर होगा, क्योंकि यन्त्र तो दोनो बार एक ही चिन्ह तक डूबता है।

अतः

$$w_1+wh=w+wh+w_2$$

वस्तु का हवा मे भार$=w=w_1-w_2$

अब ठोस को नीचे के कोण मे रखा। माना ठोस वस्तु का पानी में भार w_1 है और यन्त्र को चिन्ह तक डुबाने के लिए w_3 वजन ऊपर के पलडे पर रखना पड़ता है, तो कुल उछाल हुआ $w'+w_3+wh$, परन्तु यह उछाल पहले वाले उछाल के बराबर है।

अतः

$$wh+w_1=w'+w_2+wh$$

ठोस का पानी में भार$=w_1= w_1-w_3$

ठोस के भार मे कमी=हवा मे भार—पानी में भार

$$=w'-w'$$

$$=(w_1-w_2)-(w_1-w_3)$$

ठोस का आपेक्षित घनत्व$=\dfrac{w_1-w_2}{(w_1-w_2)-(w_1-w_3)}$

निकलसन हाइड्रोमीटर से द्रव का आपेक्षित घनत्व

सर्वप्रथम द्रव को निकलसन हाइड्रोमीटर के जार से भर लेते है। अब निकलसन हाइड्रोमीटर को इसमे तैराते है। माना कि चिन्ह तक डुबाने के लिए इस पर w_1 भार रखना पडता है और यन्त्र का भार wh है, अतः कुल उछाल हुआ—

$$w_2+wh\text{————}(1)$$

यह बराबर है हाइड्रोमीटर के चिन्ह तक के आयतन के बराबर वाले आयतन के द्रव का भार, अब हाइड्रोमीटर को पानी मे तैरावें। माना अब चिन्ह तक डुबाने कें लिए w_2 भार रखना पड़ा। कुल उछाल हुआ –

$$w_2+wh\text{————}(2)$$

अतः w_2+wh उस पानी का भार होता है जिसका आयतन द्रव के आयतन के बराबर है। इसलिए द्रव का आपेक्षित घनत्व$=\dfrac{w_1+wh}{w_2+wh}$

किसी भी वस्तु का घनत्व तापक्रम के साथ घटता बढ़ता है क्योंकि वस्तुओं का आयतन भी तापक्रम के साथ घटता तथा बढ़ता है।

गुब्बारा—गुब्बारे भी तैरने के सिद्धान्त पर बनाये जाते हैं। हम जानते है कि हाइड्रोजन गैस तथा हीलियम गैस हवा से हलकी होती है। इन गैसो को कपड़े के मोटे गुब्बारे मे भर देते है, यह थैला बहुत मजबूत होता है जिससे इसके फटने

का डर नही होता। इसका आयतन इसके भार से अधिक होता है, इसलिए यह अपने भार से अधिक हवा हटाता है और ऊपर उठने लगता है। यद्यपि पृथ्वी के पास ही हवा घनी है फिर भी ज्यो-ज्यो हम ऊपर चलते है हवा विरल होने लगती है। इसलिए कुछ ऊँचाई पर गुब्बारा रुक जायगा। ऐसी दशा मे गुब्बारे मे रेत के बोरे ले जाये जाते है, जब गुब्बारा रुकने लगता है तो बोरे को नीचे गिरा कर उसका भार कम कर दिया जाता है।

यदि गुब्बारे को नीचे उतारते है तो धीरे धीरे इसमे भरी हल्की हल्की गैस को निकालना पड़ता है। परन्तु गुब्बारे की दिशा इसमे बैठने वाले व्यक्ति की इच्छा पर नही होती।

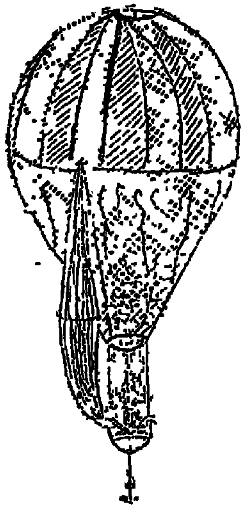

चित्र संख्या 43 गुब्बारा

दूध की शुद्धता मापने वाला यन्त्र

आजकल प्राय शुद्ध दूध नही मिलता, दूध वाले उसमें पानी मिला देते है। अत: दूध में पानी की मात्रा निकालने के लिए दूध मे पानी की मात्रा मापने वाले यन्त्र (lactometer) की सहायता ली जाती है। इसमे एक काच की नली होती है, इसके निचले भाग मे भारी वस्तु से भरी एक घुंडी होती है।

यह एक काच के छड, जिसकी शक्ल कुछ थर्मामीटर (Thermometer) से मिलती जुलती सी होती है, इसमे जैसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है, इसके निचले भाग मे भारी वस्तु से भरी एक घु डी होती है, शेष ऊपर के भाग मे संख्याएं अंकित होती हैं और इन्ही सख्याओ से जब इस Lactometer को दूध मे डुबाते है, दूध के कितने शुद्ध व अशुद्ध होने का प्रमाण मिलता है। शुद्ध दूध का आपेक्षित घनत्व 1·031 होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आयतन किसे कहते है, इसकी इकाई क्या है ?
2. घनत्व और आपेक्षित घनत्व मे क्या अन्तर है ?
3. आर्किमिडिज का सिद्धात क्या है, सविस्तार वर्णन करे।
4. आर्किमिडिज के सिद्धात के अनुसार किसी ठोस का आपेक्षित घनत्व कैसे निकालेंगे ?
5. निकलसन हाइड्रोमीटर क्या है, इसके द्वारा द्रव का आपेक्षित घनत्व कैसे निकालेंगे ?
6. सक्षेप मे लिखिये:—(क) लेक्टोमीटर। (ख) समुद्र के पानी मे तैरना आसान क्यों होता है ? (ग) गुब्बारा ऊपर क्यो उठता है ?

छठा अध्याय

मात्रा और भार

पदार्थों में एक विशेष गुण है, और वह है पृथ्वी की ओर गिरना। हम चाहें किसी वस्तु को कितनी ही बार ऊँचा क्यों न फेंके वह हर बार पृथ्वी की ही ओर गिरती है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खीचती है। पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को एक सी आकर्षण शक्ति से अपनी ओर नही खीचती। वरन् भिन्न-भिन्न शक्ति से अपने केन्द्र की ओर खीचती है। परन्तु यदि हम पृथ्वी से ऊंचे उठते जाये तो हम देखेंगे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति कम हो जाती है। एक स्थान ऐसा आयेगा जहा पृथ्वी की आकर्षण शक्ति शून्य हो जायगी। इसके विपरीत यदि हम पृथ्वी के केन्द्र की ओर भीतर चले तो आकर्षण शक्ति बढती जायगी। हमारी पृथ्वी एक गोले के समान है, जो सिरों पर चपटी है।

अतः सार यह निकला कि पृथ्वी के भिन्न स्थानों पर किसी एक ही वस्तु को ले जाये तो वह भिन्न भिन्न शक्तियो के द्वारा खीचा जायगा। उदाहरण के लिए पहाड पर आकर्षण कम होगा और पृथ्वी के धरातल के नीचे अधिक।

पृथ्वी जिस वस्तु को जिस शक्ति के साथ अपनी ओर खीचती है वह उसका भार कहलाता है।

अतः यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु का भार पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पर निर्भर करता है और आकर्षण शक्ति पृथ्वी के केन्द्र की दूरी पर निर्भर करती है। जो वस्तु पृथ्वी के केन्द्र से दूर होगी उसका भार कम होगा और जो पृथ्वी के केन्द्र के पास होगी उसका भार अधिक होगा।

कुछ केले लीजिए—उदाहरण के लिए 16 केले लिए-इनको मैदान में तौला, फिर ऊँचे पहाड़ पर ले जाकर तौला, हम देखेंगे कि केलो के भार मे अन्तर आ गया है, यद्यपि उनकी संख्या वही है अर्थात् उनका परिमाण भी वही है पर भार में अन्तर आ गया है। भार मे अन्तर का कारण हम कह चुके है कि यह पृथ्वी के केन्द्र की दूरी पर निर्भर है। परन्तु परिमाण एक स्वतन्त्र संख्या है।

इस न बदलने वाले परिमाण को मात्रा कहते है, यह सभी स्थानों पर एक सा होता है। चाहे पर्वत पर ले जायें या गहरी खाई मे। अतः मात्रा वस्तु विशेष से सम्बन्धित है।

भार को मापने के लिए कमानीदार तुला का प्रयोग किया जाता है, जिसका वर्णन आगे किया गया है।

मात्रा का अनुमान भौतिक तुला से लगाया जाता है। अतः पाठक अब मात्रा और भार का अन्तर समझ सकते है।

मात्रा (Mass)	भार (Weight)
(1) वस्तु का परिमाण ही मात्रा है।	(1) किसी वस्तु को पृथ्वी जिस आकर्षण शक्ति से अपने केन्द्र की ओर खीचती है वह उस वस्तु का भार होता है।
(2) परिमाण या मात्रा केवल वस्तु से सम्बन्धित है।	(2) भार पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पर निर्भर करता है।
(3) मात्रा सभी स्थानों पर एक सी रहती है।	(3) भार बदलता रहता है, जैसे गहरी खाई मे भार अधिक होता है व ऊँचे पर्वत पर कम।
(4) मात्रा की तुलना बाट की सहायता से होती है।	(4) इसमे ऐसा नहीं होता।
(5) मात्रा वस्तु की विशेषता है।	(5) भार स्थान विशेष, या पृथ्वी के केन्द्र की दूरी की विशेषता है।

नोट:—ऊपर यह उल्लेख हुआ है कि खाई मे किसी वस्तु का भार अधिक होगा, परन्तु अधिक नीचे जाने पर वस्तु का भार कम होता है। इसका कारण यह है कि खाई में आस पास के कण भी वस्तु को अपनी ओर खीचते हैं, जिससे पृथ्वी की केंद्रीय आकर्षण शक्ति बहुत कुछ कम हो जाती है।

पृथ्वी नारंगी की भांति ध्रुवों पर चपटी है और भूमध्य रेखा पर फूली हुई। अतः भूमध्य रेखा पर केन्द्र की दूरी अधिक है तथा ध्रुव और पृथ्वी के केन्द्र की दूरी कम है। इसलिए भूमध्य रेखा पर आकर्षण शक्ति कम होगी और ध्रुव पर अधिक। इसीलिए किसी वस्तु का भार भूमध्य रेखा पर कम होगा और ध्रुवों पर अधिक। इस प्रकार ध्रुवो पर भार अधिक होने का कारण पृथ्वी की गति भी है।

भार मापने का यन्त्र (कमानीदार तुला) (Spring balance)

इसमे 'प' एक पीतल की प्लेट है जिस पर निशान लगे हुए है, 'स' सूचक सुई है जो इन निशानों पर घूमती है और भार सूचित करती है। 'ह' एक हुक है जो भीतर की कमानी से जुड़ा रहता है। इसका चित्र अलग दिखाया गया है। जब किसी वस्तु का भार निकालना होता है तो उसे हुक से लटका देते है। पृथ्वी उस वस्तु को खीचती है और कमानी उसे ऊपर की ओर खीचती है। जब कमानी का ऊपर की ओर का खिचाव तथा पृथ्वी का नीचे की ओर का खिचाव बराबर हो जाता है तो सूचक सुई ठहर जाती है और भार ज्ञात कर लिया जाता है। इसका प्रयोग रेलवे स्टेशनो पर अधिक होता है।

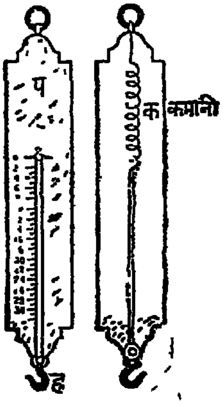

चित्र संख्या 44

भौतिक तुला (Physical balance)

भौतिक तुला दो पलडो (प प) से बनी हुई होती है। ये दोनों पलड़े एक टेक (Beam) की समान लम्बाई वाली भुजाओ के सिरों से तेज चाकू की धार वाले लटकन (Stirrup) से लटके रहते है। टेक (Beam) के बीचों बीच एगेट की बनी हुई दो चाकू की धारे होती है। टेक के दोनो सिरों पर पेच लगे रहते है। मध्य चाकू की धारें एक स्थिर भुजा (Beam Supporter) पर स्थिर होती है। टेक के मध्य मे एक सूचक होता है। चाकू की नुकीली धारे ही टेक के स्वतन्त्रता पूर्वक घूमने तथा साथ ही सूचक के घूमने के कारण है। मध्य चाकू की धारो के आधार एगेट के बने होते हैं। सूचक के बराबर साहुल रेखा (Plumb line) लटकी रहती है। टेक एक स्तम्भ (Pillar) पर स्थित होती है। स्तम्भ लकड़ी के तख्ते पर लगा रहता है। स्तम्भ के नीचे वाले सिरे पर एक स्केल लगी रहती है जिससे सूचक का घूमना मालुम किया जाता है। लकड़ी के तख्ते के नीचे समान धरातल करने वाले पेच (Levelling Screw) लगे रहते है।

भौतिक तुला से जब किसी वस्तु को तौला जाता है तो जिस वस्तु को तौला जाता है वह बाये मे बाट रखकर दाये पलडे मे रखा जाता है। बाटों को चिमटी से उठाना चाहिए। बाटो का बक्स भी दायी ओर रखना चाहिए। जब टेक उठी हुई हो तो न बाट उठाने चाहिए और न रखने चाहिए। टेक को उतार कर ही बाट रखने व उठाने चाहिए। नर्म, गर्म और लसीली वस्तुओ को पलड़े पर रखकर नही

तोलना चाहिए। किसी भी वस्तु को तोलने से पहले तुला को टेक के सिरे पर लगे हुए पेचों को दायें अथवा बाये घुमाकर ठीक कर लेना चाहिए।

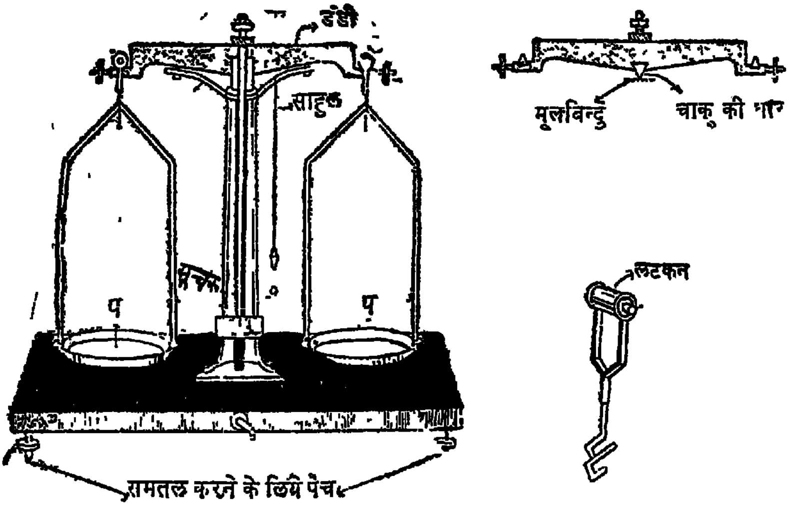

चित्र संख्या 45, 46, 47

एक अच्छी भौतिक तुला की विशेषताएँ

एक अच्छी भौतिक तुला में निम्नलिखित विशेषताएँ होना आवश्यक है —

1. तुला मे यथार्थता का गुण होना चाहिए।
2. तुला सूक्ष्मग्राही होनी चाहिए, और उसमे सूक्ष्मग्राहिता का गुण भी होना चाहिए।
3. तुला मे स्थायी साम्यता का गुण होना चाहिए।
4. तुला सुदृढ होनी चाहिए।

1. यथार्थता या सत्यता:—तुला को यथार्थ उस समय कहते है जब कि पलड़ों में बराबर की मात्रा अथवा कुछ नही रखने पर भी तुला की डंडी क्षितिज रहे, ऐसा होने के लिए तुला मे निम्नलिखित बाते आवश्यक है:—

1. तुला की दोनो भुजाये लम्बाई मे बराबर हो।
2. पलडो की मात्रायें लम्बाई इत्यादि मे बराबर हो।
3. तुला की डंडी का गुरुत्व केन्द्र अवलम्ब के ठीक नीचे हो (डंडी के क्षितिज होने पर)।

यह जानने के लिए कि तुला सत्य है या नही हम किसी वस्तु की कुछ मात्रा को बाये पलडे पर रख देते है और बाटों को दाये पलड़े पर। बाटो को इस तरह रखते हैं कि डडी क्षितिज मे रहे। अब पलड़ो मे बाटो और वस्तु के स्थान को परस्पर बदल देते है। अगर इस प्रकार बाटो और वस्तुओं के परिवर्तन कर देने पर भी डंडी क्षितिज मे रहे तो तुला को सत्य माना जाता है।

2 सूक्ष्मग्राहिताः—यदि तुला के दोनो पलडे मे से किसी एक पलडे में भी थोड़ा सा भार रख दिया जाय और उसमे अगर अधिक क्षितिज का अन्तर आ जाय तो तुला को सूक्ष्मग्राही कहते हैं, अर्थात् अगर हम एक मिलीग्राम के बाट को तुला के किसी एक पलडे मे रख दे और उसके कारण तुला की डडी और क्षितिज रेखा के बीच में बनने वाले कोण अधिक है तो वह अच्छी सूक्ष्मग्राहिता तुला कहलायेगी। एक रसायनिक सूक्ष्मग्राहिता तुला मिलीग्राम के १० वें भाग.तक शुद्ध तौल बतला सकती है।

सूक्ष्मग्राहिता के लिए तुला मे निम्नलिखित बाते होनी चाहिए :—

1 डंडी का गुरुत्व केन्द्र अवलम्ब के लगभग ठीक नीचे रहे।

2. तुला की डंडी समतल की हो।

3. तुला की डडी की भुजाये काफी लम्बी हो क्योकि उनके लम्बी अधिक होने पर पलड़ो पर रखी गई मात्राओ मे थोडा सा भी अन्तर होने पर उनके द्वारा घूमने वाला बिंदु अधिक कोण बनाकर घूम जायगा।

3. स्थिरांक.—स्थिरांक अर्थात ठहराव पुन तुला के निर्देशक को अपनी स्थिर दिशा मे शीघ्र से शीघ्र आजाने को कहते है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर तुला से कोई वस्तु तौली जाय तो डसकी डडी की घूमने की अवस्था शीघ्र ही स्थिर अवस्था मे आजाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि तुला का गुरुत्व केन्द्र अवलम्ब के काफी नीचे हो, परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं ऐसा होना सुग्राहिता के लिए आवश्यक गुण के विपरीत होता है, इसलिए अच्छी तुला मे स्थिरांक और सुग्राहिता एक ही समय मे नही हो सकती है अर्थात् स्थिरांक बढेगी तो सूक्ष्मग्राहिता उसी अनुपात मे कम होगी।

4. सुदृढ़—तुला ऊपर की तीन वस्तुओं के अतिरिक्त सुदृढ़ भी होनी चाहिए जिससे पलड़ो पर भार रखने से वह झुक न जाय।

दोषयुक्त तुला से सही मात्रा निकालने की विधि

1. जब दोनों पलड़ों का भार एकसा न हो तो एक बार वस्तु को दाये पलड़े में रख कर तौलो। पुन: बाये पलड़े में रख कर तौलो। माना पहली बार M_1 ग्राम तथा दूसरी बार M_2 ग्राम आता है, तो सही मात्रा $\frac{M_1+M_2}{2}$ होगी।

2. यदि डंडी की लम्बाई बराबर न हो–तो पहले एक पलड़े में रख कर तौलो। माना M_1 ग्राम रखने पडे। दुबारा दूसरे पलडे मे रख कर तौलो। माना M_2 ग्राम रखने पड़े। तो सही मात्रा $\sqrt{M_1 M_2}$ होगी।

तौलने के नियम

1. तौली जाने वाली वस्तु बांये पलडे मे रखी जानी चाहिये।
2 गीली व गर्म वस्तुएं पलडे मे न रखी जानी चाहिये।
3 बाटो को चिमटी से ही उठाना चाहिये।
4 जब लीवर उठा हो तो न बाट रखना चाहिये न उठाना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) मात्रा और भार का अन्तर समझाइये।
(2) कमानीदार तुला का चित्र देकर समझाइये।
(3) भौतिक तुला का वर्णन करें, अच्छी तुला के गुण बतावे।
(4) गलत तुला से सही मात्रा कैसे निकालेंगे, तौलते समय कौन कौन सी सावधानियां बरतनी चाहिये।

सातवाँ अध्याय

गुरुत्वाकर्षण

न्यूटन ने सर्व प्रथम गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध में सिद्धान्त बनाये थे। इनका जन्म सन् १६४२ मे हुआ। एक दिन जब ये अपने बाग में बैठे हुए थे उन्होने एक सेब नीचे गिरते हुए देखी। उन्होने सोचा कि सेब नीचे ही क्यो गिरी, अवश्य ही इसमें कोई शक्ति कार्य करती है जिसके कारण यह नीचे की ओर चली आती है। उसने यह कहा कि पृथ्वी मे एक प्रकार की आकर्षण शक्ति होती है जिसके फलस्वरूप वह विश्व के प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखती है। इन्होंने बताया कि ग्रह और उपग्रह जो सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षाओं मे घूमते है, इनका कारण भी इन ग्रहो का उपेक्षी आकर्षण है। यह आकर्षण शक्ति ग्रहों की दूरी कम होने पर बढ जाती है तथा दूरी के बढ़ने पर घट जाती है। गणित द्वारा ये शक्ति इस प्रकार दिखाई जा सकती है कि यदि दो ग्रहो की आकर्षण शक्ति इनकी बीच की दूरी के वर्ग की विपरीत समानुपाती है अर्थात् यदि दो ग्रहों के बीच की दूरी 'द' है तो उनके बीच आकर्षण :का बल $\frac{1}{द_2}$ का समानुपाती होगा। इस आकर्षण के बल को जो कि ग्रहों के और उपग्रहो के बीच कार्य करता है, गुरुत्वाकर्षण कहा जाता है। आकाश के समस्त ग्रह इसी आकर्षण मे बधे घूमते है. बहुत काल से ये इसी प्रकार घूमते चले आ रहे हैं। यही नही पृथ्वी का प्रत्येक कण एक दूसरे को आकर्षित करता है। इस नियम को इस प्रकार कहा जा सकता है :—

विश्व का प्रत्येक कण दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है और यह आकर्षण का बल उसकी मात्रा के गुणनफल के समानुपात में तथा उनकी बीच की दूरी के वर्ग के विपरीत समानुपात में होता है।

यदि हम दो वस्तुओ की मात्रा M_1 तथा M_2 माने तथा उनके बीच की दूरी d.c.m. ले तो न्यूटन के नियम के अनुसार उनके बीच की आकर्षण शक्ति

$$F r M_1 \times M_2$$

$$F r \frac{1}{d_2}$$

$$\therefore F = G \frac{M_1 M_2}{d_2}$$

G को गुरुत्वाकर्षण स्थिराक कहते है। अत इस प्रकार दो नियम हुए

(1) आकर्षण का बल दोनो बिन्दुओ की मात्रा के गुणनफल के समानुपाती होता है और (2) ये आकर्षण का बल उनके बीच की दूरी के वर्ग क विपरीत समानुपाती होता है, आकर्षण स्थिरांक है।

पृथ्वी की आकर्षण के द्वारा वेग वृद्धि

जब किसी ऊँचे स्थान से कोई वस्तु गिराये तो प्रारम्भ मे उसका वेग शून्य होता है लेकिन ज्यो ज्यो वह नीचे आती है वस्तु का वेग बढता जाता है और जब वह पृथ्वी से आकर टकराती है तो उसका वेग अधिकतम होता है।

वेग में यह वृद्धि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण होती है

इसी प्रकार जब किसी वस्तु को ऊपर की ओर फैंके तो वेग के साथ जाती है परन्तु कुछ दूर जाकर रुक जाती है, तब वेग के साथ नीचे आती है और नीचे आने के साथ उसका वेग बढता जाता है। यह वेग वृद्धि किसी एक स्थान पर प्रत्येक वस्तु के लिये समान होता है। उदाहरण के लिये यदि एक पर और एक लोहे के टुकड़े के बराबर की ऊँचाई से पटके तो वे एक ही समय मे नीचे आयेंगे। उन पर पृथ्वी की वेग वृद्धि समान होगी, परन्तु शर्त यह कि जिस स्थान से उन्हे पटके वह शून्य होना चाहिये।

प्रयोग रूप से पर को आने मे जो देर लगती है उसका कारण हवा की रुकावट है। यदि यह रुकावट न हो तो लोहे का टुकडा और पर दोनो साथ साथ ही गिरेगे। अर्थात् पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की वेग वृद्धि वस्तु की मात्रा पर निर्भर नही करती वह प्रत्येक वस्तु के लिये एक स्थान पर समान होती है।

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के द्वारा उत्पन्न वेग वृद्धि अंग्रेजी अक्षर 'g' के द्वारा व्यक्त की जाती है।

भूमध्य रेखा पर इसका मान 978 से. मी./सेकिन्ड^2 होता है तथा ध्रुवो पर 983 से. मी./सेकिन्ड^2 होता है।

किसी वस्तु का भार उस वस्तु की मात्रा और इस पृथ्वी की वेग वृद्धि का गुणनफल होता है।

गुरुत्वाकर्षण केन्द्र

किसी वस्तु के प्रत्येक कण पर पृथ्वी का आकर्षण होता है। इस प्रकार अनेको वस्तुओ पर अनेक बल होगे, उन आकर्षण बल का लब्ध बल जिस बिन्दु पर होता है वह बिन्दु गुरुत्वाकर्षण केन्द्र होता है। इसी ऱ ा बिन्दु पर पृथ्वी अपनी पूर्ण आकर्षण शक्ति रखती है।

इसी लब्ध बिन्दु पर पृथ्वी अपनी पूर्ण आकर्षण शक्ति लगाती है और उसीको को गुरुत्वाकर्षण केन्द्र कहते है।

नीचे के चित्र मे क ख एक छड है, इसका गुरुत्वाकर्षण केन्द्र 'च' पर है। अब यदि इसको बिल्कुल सीधा लटकाना चाहे तो इसे 'च' बिन्दु से लटकाना होगा।

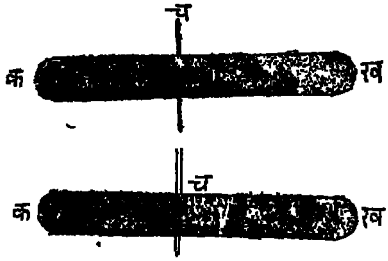

चित्र सख्या 48

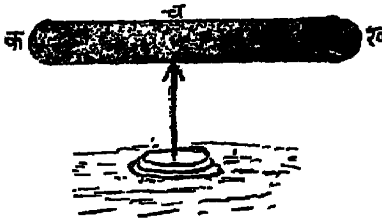

चित्र सख्या 49

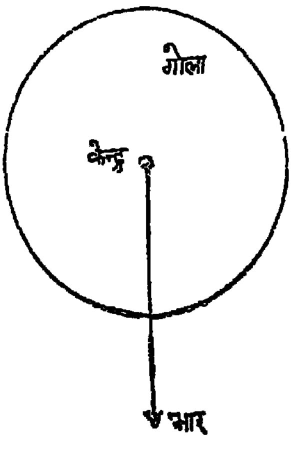

चित्र संख्या 50

किसी गोले का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र उस गोले का केन्द्र ही होता है अतः यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र वह विन्दु है जहाँ उस वस्तु का सम्पूर्ण भार केन्द्रित होता है। गुरुत्वाकर्षण केन्द्र वस्तु के आकार पर निर्भर करता है, आकार बदलते ही गुरुत्वाकर्षण केन्द्र भी बदल जाता है।

1. ध्रुवो पर पृथ्वी की वेग वृद्धि इसलिये अधिक होती है कि ध्रुव भूमध्य रेखा की अपेक्षा पृथ्वी के केन्द्र से 13 मील निकट है, इसलिये आकर्षण ध्रुवो पर अधिक है और इसीलिये वेग वृद्धि भी अधिक है।

2. पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, इसके साथ इसके तल से मिले हुए हवा के कण भी घूमने लगते है। भूमध्य रेखा पर पृथ्वी की गति सबसे अधिक होती है इसलिए पदार्थ कण भी भूमध्य रेखा पर अधिक तेजी से घूमते हैं। पृथ्वी के इस प्रकार घूमने से पदार्थो पर एक केन्द्रीयसारी बल (Centrifugal force) कार्य करने लगता है। यह केन्द्रीयसारी बल (Centrifugal force) भार को कम करता है। अत· भूमध्य रेखा पर 'g' का मूल्य कम होता है और ध्रुवो पर अधिक।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक को समझाइये।

(2) गुरुत्वाकर्षण केन्द्र क्या है, उदाहरण देकर समझाइये।

(3) 'g' क्या है, इसका मान विभिन्न स्थानो पर भिन्न भिन्न क्यों होता है?

आठवां अध्याय

यन्त्र तथा कलें

आधुनिक युग मशीन का युग है। बडी बडी कलें और धुआं उगलती मशीनें स्वयं अपनी घोषणा करती है। वास्तव मे यन्त्र ने मानव को नई शक्ति दी है, समय का सदुपयोग दिया है। सभी स्थानो पर आज कल यन्त्रो अथवा मशीनो का प्रयोग दिखलाई पडता है, यहा तक कि हम इसके आदी हो गये है। उद्योग के क्षेत्र मे आज यन्त्रों का ही साम्राज्य है।

यन्त्र की परिभाषा

मशीन अथवा यन्त्र किसी मशीन को कहते है जिसकी सहायता से एक विन्दु पर एक दिशा मे लगाया हुआ बल दूसरी दिशा मे दूसरे बिन्दु पर काम मे लाया जा सके अथवा यन्त्र उस विधि को कहते है जो किसी एक बिन्दु पर विशेष दिशा मे लगाया हुआ बल अन्य बिन्दु पर विशेष दिशा मे लगाने की व्यवस्था करे।

यन्त्र पर जितना बल लगाया जाता है वह प्रयत्न कहलाता है, इस बल को लगाने पर यन्त्र जितना कार्य करते है, वह भार कहलाता है। यन्त्र में कुछ लीवर, घिरनी, पहिया तथा पेंच आदि होते है।

यान्त्रिक लाभ

जब कोई बल लगाया जाता है तो उस मशीन से जो लाभ होता है उसे हम यान्त्रिक लाभ कहते है अर्थात किसी यन्त्र पर बल लगाया जाय और इस बल को लगाने से वह 'क' कार्य करे तो 'क' और 'ब' का अनुपात यान्त्रिक लाभ होगा।

$$\text{अत. यान्त्रिक लाभ} = \frac{\text{यन्त्र के द्वारा उठाया हुआ भार, या}}{\text{यन्त्र पर लगाया हुआ बल यन्त्र द्वारा किया हुआ कार्य}}$$

$$= \frac{\text{क}}{\text{ब}}$$

मशीन के लाभ

(१) मशीन के बिना यदि कोई व्यक्ति कुछ प्रतिरोध दूर कर सकता है तो मशीन की सहायता से वह उस प्रतिरोध को कई गुणा अधिक प्रतिरोध दूर भी कर सकता है।

(२) यदि किसी बिन्दु को बल लगा कर आप उसे चला देते है तो इस चाल को मशीन किसी दूसरे बिन्दु तक पहुँचा देती है जिसके द्वारा दूसरा बिन्दु पहले बिन्दु से अधिक शीघ्रता से चलने लगता है। जैसे साइकिल के पहिये हैं।

(३) मशीन की सहायता से उस भार को जो कि बिना मशीन के उठाया जा सकता है, उससे अधिक भार उठाया जा सकता है।

(४) मशीन की सहायता से कोई भी बल अनुकूल जगह पर और अनुकूल विधि से लगाया जा सकता है।

मशीन कई प्रकार की होती है—जो कई निम्नलिखित चीजों से मिल कर बनी होती है:—

(१) लीवर, (२) घिरनी और (३) झुका हुआ तल (४) प च ग
(५) पेंच (६) धुरी और पहिया (७) दांतुदार पहिया।

लीवर (Lever)

लीवर सबसे सरल यन्त्र है। इसमे एक सीधी सुदृढ़ अथवा मुड़ी हुई छड़ होती है। यह छड़ एक बिन्दु के सहारे चारो ओर घूमती है। जिस बिन्दु के सहारे छड़ घूमती है उसे लीवर का टेक फलक्रम (Fulcrum) कहते है। ऊपर दिये हुये चित्र में एक साधारण लीवर दिखलाया गया है। क ख एक छड़ है, यह अ बिन्दु के सहारे छड़ घूमती

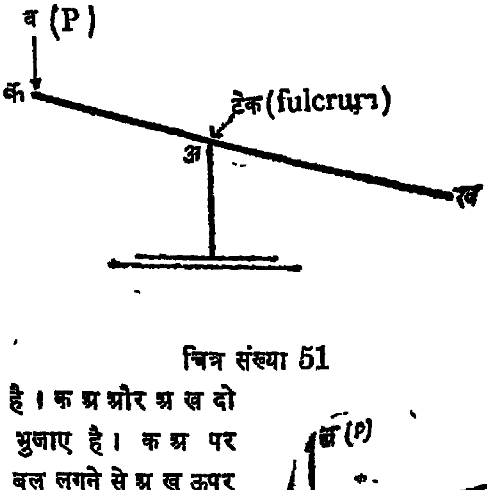

चित्र संख्या 51

है। क अ और अ ख दो भुजाए है। क अ पर बल लगने से अ ख ऊपर उठती है तथा किसी वस्तु को ऊपर उठाया जा सकता है। देखिये चित्र संख्या 52 मे क पर (P) बल लगाया गया

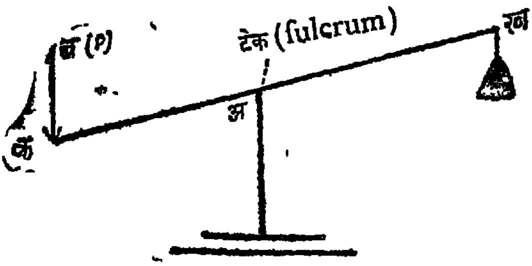

चित्र संख्या 52

है जिसमें भार 'ख' (W) ऊपर उठा दिया गया है। अब यान्त्रिक लाभ निकालना चाहे तो लगाये हुये बल का तथा किये हुए कार्य के अनुपात से निकाल सकते है।

लीवर के तीन वर्ग किये जाते है—

1. पहले वे होते है जिनमे (ब) P तथा (क) W दोनो टेक (फलक्रम) के

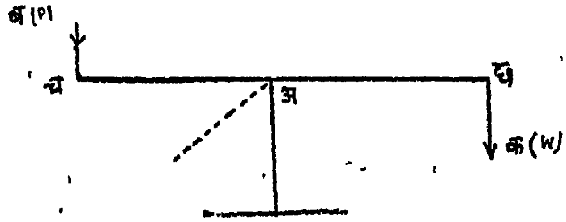

चित्र सख्या 53

दोनों ओर होते है। जैसा कि ऊपर के चित्र में दिखाया गया है।

2. दूसरे प्रकार मे प्रयत्न बल तथा कार्य भार टेक (फलक्रम) के एक ही ओर

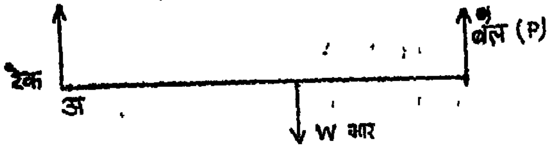

चित्र संख्या 54

होते हे तथा भार बल की अपेक्षा टेक (फलक्रम) के पास होता है। देखे चित्र सं० 54

3. तीसरे प्रकार में वे लीवर आते है जिनमे प्रयत्न बल और भार होते तो टेक (फलक्रम) के एक ही ओर हैं परन्तु प्रयत्न बल भार की अपेक्षा फल क्रम के अधिक पास होता है।

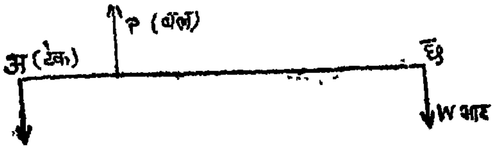

चित्र संख्या 55

उपरोक्त तीनो लीवरों में समानान्तर बल लगे है, इसलिये सम अवस्था मे टेक (फलक्रम) पर कार्य करने वाला प्रतिबल (Reaction) R तीनों लीवरो में ञ होगा।

पहले लीवर मे R=P+W के बराबर होगा।

दूसरे प्रकार के लीवर में R=P-W होगा।

तीसरे प्रकार के लीवर मे R=P-W होगा।

तीनो दशाओं मे लब्ध बल 'अ' टेक (फलक्रम) से गुजरता है। इसलिए अ पर ब तथा भ का घूर्ण भी समान होगा। इसलिये—

ब (P) × च अ = भ (W) छ अ

अतः यान्त्रिक लाभ $= \frac{W(भ)}{P(ब)} = \frac{च\ अ}{छ\ अ}$

पहले प्रकार के लीवर का एक उदाहरण कैंची है।

चित्र संख्या 56

दूसरे प्रकार के लीवर का उदाहरण सरौता है।

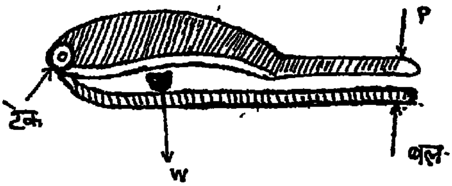

चित्र संख्या 57

तीसरे प्रकार के लीवर का उदाहरण मनुष्य की अग्र भुजा है जिसमें कोहनी टेक (fulcrum) है और हथेली पर बल उठाया जाता है जैसा कि निम्न चित्र संख्या 58 में बताया गया है।

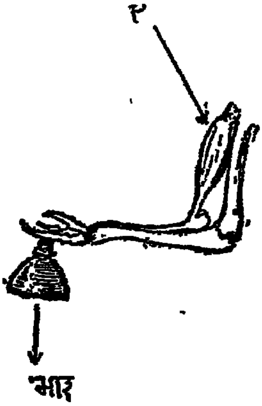

चित्र सं० 58

घिरनी (Pully)—इसमें एक पहिया होता है। यह पहिया धातु या लकड़ी किसी का भी हो सकता है। पहिये की परिधि के चारों ओर एक खाँचा होता है। खांचे में होकर डोरी चलती है। घिरनी में पहिये के केन्द्र पर पहिये के धरातल पर लम्बवत् एक धुरी होती है, जिसके सहारे पहिया घूम सकता है। देखिये नीचे दिये हुए चित्र में 'प' पहिया है। 'ख' खांचा दिखाया गया है। क धुरी है जो पहिये के धरातल के लम्बवत् है तथा पहिये के केन्द्र से गुजरती है। इसके सहारे पहिया घूमता है, डोरी स्पष्ट दिखाई गई है। यह घिरनी अपने भार से कई गुना अधिक भार उठा सकती है। कुओं में से पानी निकालते हुए तो सभी ने देखा होगा जिस पहिए पर बाल्टी नीचे जाती है वह भी घिरनी है।

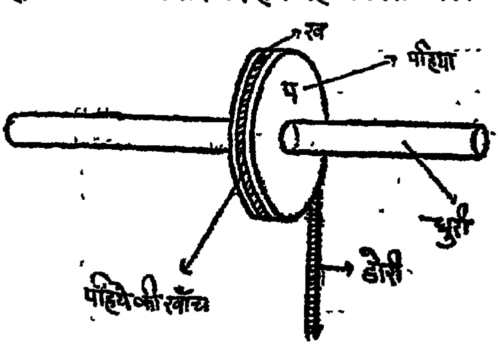

चित्र संख्या 59

एक घिरनी से कार्य नहीं चलता, इसलिए कई घिरनियां ली जाती है।

घिरनियों को सम्मिलित करने की दो विधियां है।

प्रथम विधि:—नीचे के चित्र में दिखाई गई पहली विधि है।

इसमें भार अन्तिम घिरनी से लटकाया जाता है। घिरनी के खांचे से जाने वाली डोरी का एक सिरा क ख से बंधा है, दूसरा सिरा घिरनी पर जाता है। प्रयत्न बल अन्तिम घिरनी से जाने वाली डोरी के सिरे पर किया जाता है।

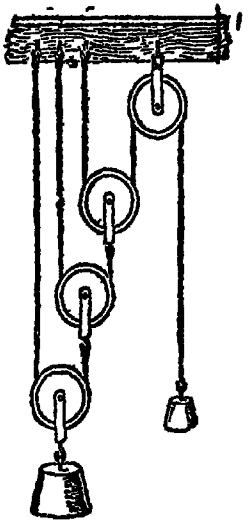

द्वितीय विधि:—इसका चित्र नीचे दिखाया गया है।

इसमें दो गुटके होते है। दोनों गुटकों मे बराबर की संख्या में घिरनी लगी होती है इसमें ऊपर का गुटका स्थिर होता है। नीचे का स्वतन्त्र होता है। नीचे वाले गुटके की सबसे नीचे वाली घिरनी से भार लटकाया जाता है। एक ही डोरी सब घिरनियों पर चढी होती है। इस डोरी के स्वतन्त्र सिरे पर प्रयत्न बल लगाया जाता है।

चित्र संख्या 60

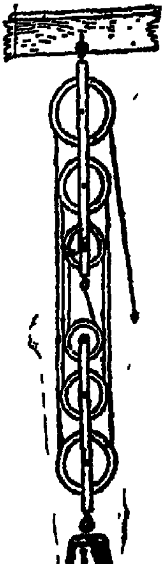

(लीवर तथा घिरनी का दैनिक जीवन में उपयोग)

हम बगीचों में लीवर, जो ऊपर वर्णित लीवरों में से प्रथम प्रकार का होता है, देखते है। इन पर दो बच्चे टेक के इधर उधर बैठ कर ऊपर नीचे हिलते हैं। कैची नित्य ही हमारे काम में आती है। बूढे बावा तो नित्य ही सरोते से सुपारी काटते है, ये सब लीवर के उपयोग ही है। अत: आजकल लीवर का उपयोग बहुत हो रहा है। लीवर का सिद्धान्त एक प्रकार से यन्त्रों का मूल सिद्धान्त है।

घिरनी से कुएं से पानी निकालते किसने नहीं देखा, यह इसका महत्वपूर्ण उपयोग है। बड़े बड़े जहाजो पर भारी बोझा उठाने के काम में आती है। आटा पीसने की चक्कियों में चक्की के पाट इन्ही घिरनियों की सहायता से चलते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यन्त्र किसे कहते हैं, यान्त्रिक लाभ समझाइए।
2. लीवर किसे कहते हैं, ये कितने प्रकार के होते हैं उदाहरण बतावें।
3. घिरनी क्या है, कई घिरनी सम्मिलित करने की दो विधियां कौनसी है ?
4. लीवर और घिरनी के कुछ दैनिक उपयोग बतलाइए।

नवाँ अध्याय

लचक

रबर की कमर पेटी का प्रयोग तो सभी ने किया होगा । यह खिंचने पर खिंच जाती है और छोड़ने पर पुनः अपनी स्थिति पर आ जाती है, यही गुण बेंत में भी पाया जाता है । वस्तु के इस प्रकार के गुण को ही लचक कहते है और यदि कोई वस्तु बल लगाकर मोड़ने पर मुड़ जाय तथा बल लगाने पर पुनः अपना आकार धारण करले तो वह वस्तु लचकदार कहलाती है ।

विकृति (Strain):—जब किसी वस्तु पर बल लगाया जाता है तो उसकी अवस्था विकृत हो जाती है । इसको विकृति कहते है । यह विकृति लम्बाई में भी होती है, क्षेत्रफल में भी और आयतन मे भी ।

माना किसी छड की लम्बाई L सेन्टी मीटर है तथा बल लगाने पर इसकी लम्बाई l से० मी० और बढ गई तो इसकी कुल लम्बाई हुई:—

$(L+l)$ से० मी०

अब L सेंटी मीटर 'लम्बी छड मे परिवर्तन हुआ l सेंटी मीटर

तो 1 सेंटी मीटर 'लम्बी छड़ मे परिवर्तन हुआ L सेंटी मीटर

यह $\frac{l}{L}$ विकृति कहलाती है ।

इसी प्रकार यदि V घ. से. आयतन के v घ० स० का परिवर्तन होता है तो 1 घ० से० आयातन में $\frac{v}{V}$ का परिवर्तन होगा । यह विकृति आयतन मे होगी ।

अतः विकृति की परिभाषा हुई—

प्रत्येक इकाई लम्बाई में बल लगाने पर जो परिवर्तन होता है वह विकृति कहलाता है ।

प्रतिबल (Stress).—जब किसी वस्तु पर बल लगाते है तो आकार बदलता है तथा स्वतः ही वस्तु के भीतर कुछ बल उत्पन्न हो जाते है, वे बाहर के बल प्रभाव को नष्ट करना चाहते है, तथा वस्तु को पहले आकार मे लाना चाहते है । समावस्था मे ये भीतरी बल बाहरी बल के बराबर होते है । प्रति इकाई क्षेत्र पर इन भीतरी बलों का जो भाग कार्य करता है वह प्रतिबल कहलाता है ।

परन्तु भीतरी बल = लगाया हुआ बाह्य बल

अतः लगाये हुए बाह्यबल मे वस्तु के क्षेत्रफल का भाग दे तो प्रतिबल निकलता है ।

माना किसी वस्तु का क्षेत्रफल A वर्ग सेंटी मीटर है और उस पर F डाइन का बल लगाया गया है तो प्रतिबल होगा ।

$$=\frac{F \text{ डाइन}}{A \text{ वर्ग सेंटी मीटर}}$$

हुक का नियम :—बल, विकृति और प्रतिबल के विषय मे सर्व प्रथम हुक ने एक नियम बनाया जो बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कहना था कि लगाया हुआ बल और इस बल से उत्पन्न विकृति आपस मे समानुपाती होते है अर्थात् प्रतिबल L विकृति। उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु पर W बल लगाने पर उसमे h विकृति होती है तो हम देखते है कि 2W बल लगाने पर उसमें 2h ही विकृति होगी।

वर्ग का लचक गुणक:—उक्त नियम के द्वारा यह हम देख चुके है कि प्रतिबल और विकृति आपस मे समानुपाती होते है अथवा इन दोनो का एक निश्चित अनुपात होना चाहिये जो कि कोई स्थिराक है। इस स्थिराक E को लचक का गुणक कहते है। यह लचक केवल जब लम्बाई मे मापी जाती है अर्थात् जब बल लगाने से लम्बाई में ही परिवर्तन होता है तो हम E के स्थान पर Y का प्रयोग करते है और इस Y को हम वर्ग का लचक गुणक कहते है।

$$Y-\frac{\text{प्रतिबल}}{\text{विकृति (लम्बाई मे)}}$$

जब बल आयतन मे परिवर्तन करता है तो उसे हम बल्कस मोडुलस कहते है या बल्कस का लचक गुणक कहते है।

माना अ ब एक छड़ है जिसका सिरे का क्षेत्रफल A वर्ग सेटीमीटर है। और लम्बाई L सेन्टीमीटर है।

माना छड़ पर F डाइन का बल लगाया गया है। यह बल A वर्ग सेंटीमीटर के क्षेत्रफल पर लगा है, अतः प्रतिबल हुआ.—

$$\frac{F \text{ डाइन}}{A \text{ वर्ग से० मी०}}$$

बल लगाने से छड़ की लम्बाई l से. मी. बढ गई तो विकृति होगी:—

$$\frac{l}{L}$$

अतः यंग का लचक गुणक,

$$Y=\frac{\frac{F}{A}}{\frac{l}{L}}$$

$$\text{अथवा } Y=\frac{F\times L}{A\times l}$$

यदि $A=\pi r^2$ जब कि r=अर्ध व्यास है।

तथा F=M×g (M=भार, g=पृथ्वी के आकर्षण शक्ति की वेग वृद्धि है) तो

$$Y=\frac{Mg\ L\ \text{dynes.}}{\pi\ r^2\ l\ \text{वर्ग से. मी.}}$$

(Y) यंग का लचक गुणक निकालने की विधि

इस यंग मे अ ब और स द दो तार है। तार अ ब से एक पैमाना 'प' जुड़ा हुआ है। तार को खिंचा रखने के लिए एक भारी वजन लटका हुआ है, दूसरे तार स द मे वर्नियर व लगा हुआ है जो पैमाने 'प' के सहारे फिसलता है। स द तार से एक पलडा लटका हुआ है।

पलडे मे एक किलोग्राम का भार रख लेते है। इससे स द तार की सिलवटे निकल जाती है। फिर इसमें एक एक करके एक या आधे किलोग्राम का भार रखते है और वर्नियर व से मापते जाते है। जब तार पर भार उसके तोड़ने वाले भार से आधा हो जाता है तो एक एक करके भार उठाते हैं और वर्नियर पढ़ते जाते है। अन्त मे एक किलोग्राम के द्वारा हम परिवर्तन का औसत निकाल लेते है। स द तार की पहली लम्बाई माप लेते है।

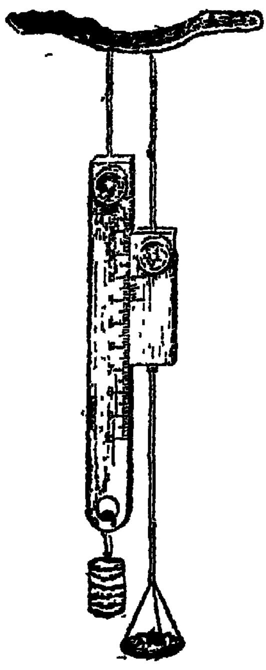

चित्र संख्या 62
(लचक का गुणक मालूम करने वाला सरल यंत्र)

अतः विकृति माप ली जाती है।

$$\text{विकृति}=\frac{\text{परिवर्तन}}{\text{स द की पहली लम्बाई}}$$

तार का अर्द्धव्यास स्क्रूगेज से निकाल लेते है।

अब $$Y=\frac{M\,g\ L.\ \text{डाइन}}{\pi r_2\ \text{वर्ग से० मी०}}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लचक क्या है ?
2. प्रतिबल तथा विकृति को सविस्तार समझावे।
3. यंग का लचक गुणक क्या है; प्रयोग द्वारा इसे कैसे निकालेगे ?

दसवाँ अध्याय

बॉयल तथा चार्ल्स का सिद्धान्त

जब कभी हम ठोस, द्रव और गैस के प्रसार को देखते है तो इस बात का ध्यान नही रखते कि दबाव का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है; क्योकि दबाव ठोसों के और द्रवों के आयतन में कोई खास प्रभाव नही डालता है, लेकिन जब गैसों पर दबाव का उपयोग किया जाता है तो हम देखते है कि दबाव के बढने से गैस का आयतन कम होता है और दबाव के घटने से गैस का आयतन बढने लगता है।

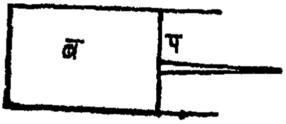

चित्र सं० 63

प्रयोग:—एक बेलन 'ब' लीजिये जिसमें पिस्टन 'प' लगा कर 'ब' में गैस भरिये, 'प' को बाईं ओर चला कर गैस पर दबाव बढ़ाया जा सकता है तथा 'प' को दाईं ओर सरका कर गैस पर दबाव कम किया जा सकता है। माना 'प' दबाव गैस पर बढ़ाया तो पिस्टन बाईं ओर सरकेगा, इस प्रकार सरकने से गैस का आयतन भी कम होगा। अतः यह स्पष्ट हुआ कि दबाव बढ़ाने पर गैस का आयतन कम होता चला जाता है और फिर पिस्टन को यदि दाईं ओर सरकाया अर्थात् दबाव कम किया तो गैस अधिक स्थान घेरती है। अतः दबाव घटने पर गैस का आयतन अधिक होता है। इस सिद्धान्त को सर्व प्रथम बॉयल नामक वैज्ञानिक ने स्थापित किया था जो उसके नाम के आधार पर बॉयल का नियम कहलाता है। किसी गैस का आयतन (अगर तापक्रम स्थिर रखा जाय) उसके दबाव के विपरीत समानुपाती है, यदि गैस का आयतन V है और उस पर दबाव P है तो हम उसे $P \propto \frac{1}{V}$ द्वारा दिखा सकते हैं।

$$PV=K$$

यहाँ पर K स्थिरांक है, लेकिन यह बात ध्यान रखने योग्य है कि तापक्रम स्थिर रखा जाता है। किसी गैस का तापक्रम स्थिर रखा जाय और उसका दबाव घटाया या बढाया जाय तो उसका आयतन भी उसी अनुपात मे बढ या घट जायेगा जब कि आयतन और दबाव का गुणनफल उस तापक्रम पर एकसा ही रहे। बॉयल के सिद्धान्त को निम्नलिखित प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है:—

इस यन्त्र में एक स्थिर नली होती है। यह ऊपर से एक ब्यूरेट से जुड़ी है जिसमे कैलिशियम क्लोराइड है। दूसरी नली ऊपर से खुली है। ये दोनो नलियाँ रबर की नली से चित्र सं० 64 के अनुसार जोड़ दी गई है। दोनो नलियो मे पारा भरा

नली में गैस का आयतन मापा जाता है। दूसरी खुली नली ऊपर नीचे उठाकर गैस के आयतन पर दवाव घटाया या बढ़ाया जा सकता है। गैस कैलशियम क्लोराइड से नली मे पहुचती है। कैलशियम क्लोराइड गैस के गीलेपन को सुखा देता है। दबाव को घटाते हैं, और साथ साथ आयतन भी मापते है। इनका गुणनफल एकसा रहता है। यह बॉयल का नियम है जो इस प्रकार सिद्ध हो जाता है :-

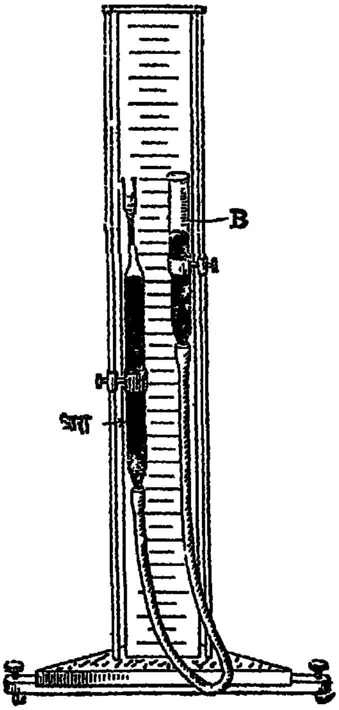

चार्ल्स का नियम—चार्ल्स का नियम–गैस का आयतन और तापक्रम का सम्बन्ध बतलाता है। इसमें दबावस्थिर रखा जाता है।

यदि दबाव स्थिर रखा जाय और गैस का तापक्रम बढ़ाया जाता है तो प्रत्येक डिगरी तापक्रम बढ़ाने पर गैस का आयतन का $\frac{1}{273}$ भाग बढ़ जाता। माना किसी गैस का आयतन V घ० से० मी० है तो 1^{o}C तापक्रम बढ़ाने पर इसका कुल आयतन होगा :—

$$V+\frac{V}{273}$$

आयतन $1^{o}C$ तापक्रम बढ़ाने पर $=V(1+\frac{1}{273})$

आयतन $2^{o}C$ तापक्रम बढ़ाने पर $=V(1\times\frac{2}{273})$

आयतन $3^{o}C$ तापक्रम बढाने पर $V=(1+\frac{3}{273})$

आयतन $9^{o}C$ तापक्रम बढ़ाने पर $=V(1+\frac{9}{273})$

यह चार्ल्स का नियम है :-

किसी गैस का परम शून्य तापक्रम वह तापक्रम है जिस पर उस गैस का आयतन शून्य होता है, परन्तु यह प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिखाया जा सकता।

प्रश्न

1. किसी गैस के दबाव और आयतन में क्या सम्बन्ध है।
2. बॉयल के सिद्धांत को प्रयोग द्वारा कैसे सिद्ध करेंगे ?
3. चार्ल्स का नियम क्या है ? परम शून्य की परिभाषा बतावें।

ग्यारहवां अध्याय

स्थिति विज्ञान

जब किसी बिन्दु पर एक या अनेक बल इस प्रकार लगाये जायँ कि वह बिंदु स्थिर रहे तब बलों की इस प्रणाली को स्थिति विज्ञान कहते है और स्थिति विज्ञान गणित का वह एक अंग है जिसमें दो या दो से अधिक बल लगाने पर वस्तु की स्थिति मे कुछ भी परिवर्तन न होने की दिशाओं का वर्णन हो।

बल (Force):—यह वह विधि है जो किसी स्थिर या गतिशील वस्तु की स्थिति पर परिवर्तन लाये अथवा लाने का यत्न करे। बल की वैज्ञानिक परिभाषा निम्नलिखित भी हो सकती हैं:—

बल के लगाने पर ठहरे हुए अथवा चलती हुई वस्तु की या तो स्थिति बदल दी जाती है अथवा उसमे स्थिति के बदलने की प्रवृत्ति आ जाती है।

राशिया दो प्रकार की होती हैं.—

1. दैशिक (Vector)
2. दिग्विहीन (Scalar)

जिन राशियो मे दिशा और मान दोनो दिये जाते है वे राशियां दैशिक कहलाती हैं। जिन राशियों मे केवल मान दिया जाता है दिशा नही, वे राशियां दिग्विहीन कहलाती है। बल मे वेग, दिशा मे मान दोनो दिये जाते है, अत: ये दैशिक राशियां कहलाती हैं। उदाहरण के लिए जब हम कहते है कि किसी वस्तु की लम्बाई 5 सेन्टीमीटर है अथवा किसी वस्तु की 10 ग्राम है तो इससे हम केवल उसके प्रमाण का ही पता व लगा सकते है। दिशा का इससे कोई सम्बन्ध नही होता है। अत. यह राशियां दिग्विहीन राशिया कहलाती है। दैशिक राशियो के लिए हम एक रेखा खीच कर तथा उसकी दिशा उस पर बल के शीष का चिन्ह लगाकर देखते हैं जो कि उसको दिशा का ज्ञान कराता है।

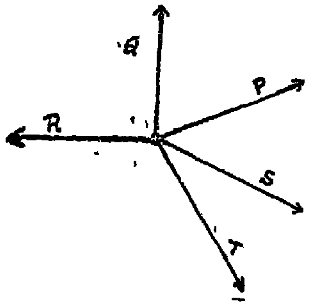

बल लब्द (Resultant Force):—जब किसी बिन्दु O बहुत से बल PQST कार्य कर रहे हों और एक बल R इस प्रकार लगाया जाय कि वह P Q S T सबके सम्मिलित बल के बराबर हो तो R लब्ध बल कहलाता है। दो बल जब एक ही बिन्दु पर एक ही बिन्दु पर एक ही रेखा

मे कार्य करें तथा दोनों की दिशा विपरीत हो तो जो अधिक होगा वही बिन्दु को ले जायगा, पर यदि दोनों बराबर है तो बिन्दु वही रहेगा। O बिन्दु पर P तथा Q बल लगे है, यदि P और Q बराबर हैं तो O स्थिर रहेगा।

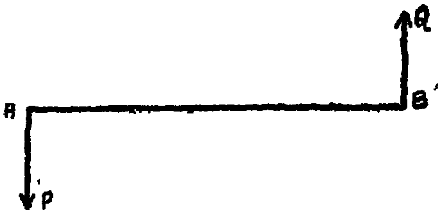

बल युग (Couple):—जब दो समान बल एक ही सरल रेखा के भिन्न बिन्दुओं पर एक दूसरे से विपरीत दिशा मे कार्य करें तो इस विधि को बलयुग (Couple) कहते है। जब बल इस प्रकार कार्य करेंगे तो रेखा घूम जायेगी।

घूर्ण (Moment):—यदि कोई बल F हो और O बिन्दु पर उसका घूर्ण निकालना हो तो O से बल पर लम्ब डालना चाहिए। अब बल और लम्ब की लम्बाई का गुणनफल F बल का O पर घूर्ण होगा।

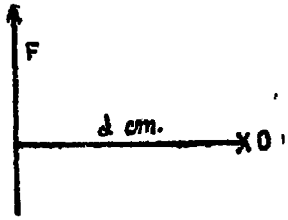

$$\text{घूर्ण} = F \times d$$

बलों का समानान्तर चतुर्भुज

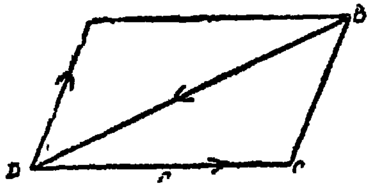

यदि दो बल किसी समानान्तर चतुर्भुज की क्रमशः दो भुजाओं द्वारा व्यक्त किए जायें तो उनका लब्ध बल उन्ही भुजाओं के मिलने वाले बिन्दु से खीचा गया कर्ण होगा।

यदि A B C D एक समानान्तर चतुर्भुज है जिसकी भुजाये A D और B C क्रमशः P और Q बलों को व्यक्त करती है तो इनका लब्ध बल D B कर्ण के द्वारा व्यक्त किया जायेगा।

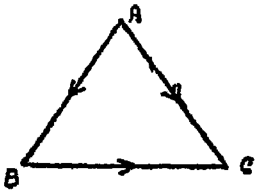

बलों का त्रिभुजः—यदि दो बल P और Q त्रिभुज ABC की दो भुजाओं AB तथा BC द्वारा क्रमशः व्यक्त किए जाते है तो इनका लब्ध बल AC के द्वारा व्यक्त किया जायेगा और दिखाई हुई दिशा मे होगा।

घूर्ण उपपत्ति सूत्रः—यदि कोई वस्तु किसी बिन्दु पर लटकी हुई है, उस पर दो बल ऐसे लगे है कि वस्तु ठहरी हुई है तो इस दशा में उस बिन्दु पर एक बल का घूर्ण दूसरे बल के घूर्ण के ठीक विरुद्ध तथा समान होगा। A B एक पैमाना है जो O बिन्दु पर लटक रहा है। पैमाने पर दो हुक A और B लगे है, जिन पर दो बल P और Q लटक रहे हैं। इनमें A और B को O से इनना दूर रखा जाता है कि पैमाना O के सहारे पूर्णतः क्षितिज रेखा पर समतुलित रहता है।

इस दशा में P का O पर घूर्ण $=P \times OA$

तथा P का O पर घूर्ण $=Q \times OB$

बरार होंगे, अर्थात् $P \times OA = Q \times OB$

घर्षण—यदि हम एक वस्तु को दूसरी पर रखकर खिसकायें तो हमको ज्ञात होगा कि कोई बल इस तरह काम कर रहा कि एक को दूसरे की अपेक्षा गति प्राप्त करने से रोकता है। इस प्रकार के बल को घर्षण का बल कहते है। घर्षण संसार में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि सड़क और हमारे पैरो के बीच घर्षण न हो तो हम कभी रुक ही नही सकते। घर्षण के कारण ही पहाड़ की ढाल पर पड़े भारी टुकड़े वही पड़े रहते हैं, अन्यथा नीचे खिसक आते। "घर्षण हीन संसार में हमारा जीवन ही भिन्न होता।"

बल की इकाई

1. मैट्रिक प्रणाली में इसकी इकाई डाइन (Dyne) है।

उस बल को एक डाइन कहते हैं जिसे यदि 1 ग्राम वस्तु पर लगाया जाय तो वह एक से० मी० प्रति सेकेन्ड की वेग वृद्धि करे।

2. ब्रिटिश प्रणाली में इसकी इकाई पाउन्डल (Poundal) कहलाती है।

एक पाउन्डल बल उस बल को कहते हैं जिसे यदि 1 पाउन्ड की मात्रा वाली वस्तु पर लगाये तो उसमे एक फुट प्रति वर्ग सेकेन्ड की वेग वृद्धि हो।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) राशियां कितने प्रकार की होती हैं ?

(2) लब्ध बल किसे कहते है ?

(3) बलो का समानान्तर चतुर्भुज क्या है ?

(4) (क) बलों के त्रिभुज की परिभाषा दीजिये ?

(ख) बलयुग, घूर्ण घर्षण कार्य की इकाई समझाइये ?

——

बारहवाँ अध्याय

गति विज्ञान

जब एक या अनेक बल किसी बिन्दु पर इस प्रकार कार्य करें कि बिन्दु स्थिर न रह सके वरन् चलने लग जाय तो बलो की इस प्रणाली को गति विज्ञान कहते है।

चित्र सं० 64

दूसरे शब्दों में गणित की वह शाखा जिसमें चलती हुई वस्तुओं का व्यवहार तथा उनकी गति के नियमों का सूचक होता है, गति विज्ञान कहलाता है। इसी प्रकार जब कोई वस्तु चलेगी तो उसमें कुछ गति और होगी। माना दो बिन्दु अ ब एक दूसरे के किसी निश्चित दूरी पर रखे गये है। यदि 'ब' 'अ' से आगे बढता है तो इनके बीच की दूरी बढ जाती है, अत. 'ब' बिन्दु 'अ' की तुलना मे गतिशील है।

जब कोई वस्तु एक ही दिशा से इस प्रकार चले कि समान दूरी को समान समय मे तय करे तो वस्तु की गति को हम समान वेग (Uniform velocity) कहते है। उदाहरण के लिए यदि कोई वस्तु समान वेग से 30 सेकिन्ड मे Do की दूरी तय करती है तो उसका वेग $=\frac{To}{Do}$ के बराबर होगा।

यदि समान काल में अथवा समान समय मे कोई भी वस्तु असमान दूरी तय करती है तो उसके वेग को विषम वेग (Varitable Velocity) कहते हैं।

चाल और वेग (Speed and Velocity)

माना कि कोई वस्तु 10 घण्टे मे 100 मील जाती है तो 1 घण्टे मे 10 मील जावेगी और हम कहते हैं कि वस्तु 10 मील प्रति घण्टा मे जा रही है। इसी 10 मील प्रति घण्टा को चाल कहते हैं। अर्थात् जितने समय मे कोई वस्तु जितनी दूर चलती है, उसी दूरी को समय से भाग देने पर चाल निकल आती है। चाल और वेग में यह अन्तर है कि वेग में दिशा भी बताई जाती है। अर्थात् जब यह कहा जाता है कि कोई वस्तु 10 मील प्रति घण्टा उत्तर दिशा में चलती हैं तो हम कहेगे कि वस्तु का वेग दिया गया है। जब हम कहते हैं कि कोई वस्तु 10 मील प्रति घण्टा चलती है तो हम कहेंगे कि चाल दी गई है। अतः चाल और वेग मे यही अन्तर है कि चाल में दिशा की आवश्यकता नही होती और वेग मे दिशा भी बतानी आवश्यक होती है। जिन राशियों मे दिशा भी दी जाती है वे दैशिक राशिया कहलाती हैं, जिनमे दिशा नहीं दी जाती वे दिग्विहीन कहलाती हैं। अतः चाल दिग्विहीन राशि है तथा वेग दैशिक राशि है।

वेग तथा वेग वृद्धि—(Velocity and and Acoleration)

वेग की परिभाषा हम ऊपर दे चुके है । मान लीजिये, एक मोटर चलना आरम्भ करती है, प्रारम्भ मे उसका वेग शून्य होता है । धीरे-धीरे वेग बढता है 1 घण्टे तक, माना वह 5 मील की चाल से चलती है, 1 घण्टे के अन्त में उसकी चाल 5 मील बढ़ा दी जाती है अर्थात् दूसरे घण्टे में वह 10 मील की चाल से चलती है, दूसरे घण्टे के समाप्त होने पर उसकी चाल 5 मील और बढा दी जाती है अर्थात् तीसरे घण्टे में वह 15 मील प्रति घण्टा चाल से चलती है ।

अतः उसके वेग में ५ मील प्रति घण्टा की वृद्धि की गई, इसे वेग वृद्धि क्रम कहते है ।

कुल दूरी को लगे हुए समय से विभाजित करने पर औसतन वेग आता है । जब वेग नियमित रूप में घटता है तो उसे ऋणात्मक वेग वृद्धि कहते हैं ।

आवेगः—किसी वस्तु का आवेग, उस वस्तु की मात्रा तथा वेग, गुणनफल के बराबर होता है । यदि किसी वस्तु की मात्रा M ग्राम है और उसका वेग V है तो उसका आवेग MXV होगा ।

न्यूटन के गति के नियम

सन् 1686 मे न्यूटन नामक वैज्ञानिक ने गति के तीन नियमो को जन्म दिया । इनमें से कुछ तो नियत 1590 के लगभग गेलिलीयो ने बतलाये थे और तीसरे नियम को भी हुक आदि वैज्ञानिको ने, जो किसी न किसी रूप मे अवश्य जानते थे, लेकिन न्यूटन ने ही इन नियमों को गति के नियमो के रूप मे सर्व प्रथम रखा । अतएव ये उसके नाम पर ही न्यूटन की गति के नियम कहलाते है ।

प्रथम नियमः—कोई वस्तु अपनी ही स्थिति मे रहती है, अर्थात् स्थिर है तो स्थिर रहेगी और गतिशील है तो गतिशील रहेगी, जब तक कोई अन्य बल उसकी स्थिति में परिवर्तन न करे । उदाहरण के लिये अ वस्तु यदि मार्ग क ख रेखा में चल रही है तो वह चलती ही रहेगी जब तक कोई बल उसे रोकने का अथवा उसके मार्ग को बदलने का प्रयत्न न करे ।

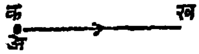

चित्र सख्या 65

उदाहरण के लिये एक पत्थर पडा है, जब तक इसके कोई बल न लगाया जाय तब तक यह पड़ा ही रहेगा, स्वय नही चलेगा ।

जब हम तेज साइकिल चलाते हुये एकदम ब्रेक देते हैं तो हमे धक्का लगता है, उसका कारण है कि साइकिल के रुकते ही हमारा नीचे का शरीर तो स्थिर हो जाता पर ऊपर का शरीर गतिशील ही रहता है, अत. धक्का लगता है ।

द्वितीय नियम—किसी वस्तु की मात्रा और उसके वेग के गुणनफल को वेग बल कहते हैं। यदि M मात्रा है और V वेग तो बल MV होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि P बल है तो यह बल वेग बल की परिवर्तन की दर का समानुपाती होगा। अर्थात्—

$P \propto$ वेग बल के परिवर्तन की दर

या $P \propto (M\ V)$ के परिवर्तन की दर

M तो स्थिर होगा है, अतः वेग मे ही परिवर्तन हो सकता है, इसलिये

$P \propto M \times V$ के परिवर्तन की दर

परन्तु वेग के परिवर्तन की दर वृद्धि होती है

अतः $P \propto M \times$ वेग वृद्धि (Acceleration)

यदि वेग वृद्धि को F से व्यक्त करे

$P \propto M F$

$P = K M F$

इसमे K अचल राशि है।

बल की इकाई वह बल होता है जो 1 ग्राम पर लगाये जाने पर उसके वेग मे 1 से. मी. प्रतिवर्ग सेकिण्ड की वेग वृद्धि करे।

एक पिस्तौल की गोली बहुत छोटी होती है तथा हल्की भी होती है, परन्तु वह आदमी की भुजा को पार कर जाती है। इसका कारण यह है कि वेग अधिक होने से गोली का वेग बल अधिक हो जाता है। अतः उसका बल भी बढ़ जाता है, इसलिये वह पार कर जाती है। इससे द्वितीय नियम की सत्यता स्पष्ट हो जाती है।

तृतीय नियम—जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु पर बल लगाती है तो वह दूसरी वस्तु भी पहली वस्तु पर उतना ही बल लगाती है, तथा इन परस्पर लगाये हुये दोनो बलो की दिशा विपरीत होती है—उदाहरण के लिये दो गोले अ और ब हैं, अ ब पर बल लगाता है। अब इस सिद्धान्त के अनुसार ब भी अ पर बल लगायेगा तथा इन बलों की दशा विपरीत होगी तथा दोनों बल बराबर होंगे।

अतः जब दो वस्तु टकराती है तो क्रिया और प्रति क्रिया समान होती है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा पृथ्वी को खींचता है। पृथ्वी भी चन्द्रमा को उतनी शक्ति से खीचती है। जब हम किसी पत्थर पर घूंसा मारते हैं तो चोट लगती है, इसका भी यही कारण है पत्थर पर चोट मारने की क्रिया करने से प्रतिक्रिया रूप मे चोट लगती है, आप जितनी जोर से घूसा मारेंगे उतनी ही चोट लगती है। अतः क्रिया और प्रतिक्रिया समान होती है।

कार्यः—बल को उसके कारण वस्तु द्वारा तय की हुई दूरी से गुणा करके करके निकालते है।

शक्तिः—किसी वस्तु की कार्य करने की क्षमता को उसकी शक्ति कहते है.।

एक वृत्त में गतिः—जब कोई वस्तु किसी वृत्त की परिधि पर एकसी चाल चलती है तो हम उसकी गति को समान वृत्ताकार गति U n i f o r m circular motion) कहते हैं। एक पत्थर के टुकडे को रस्सी के एक छोर से बाँध कर घुमावें तो वह एक वृत्त की परिधि पर घूमेगा। उस वृत्ति का अर्द्धव्यास हाथ एवं पत्थर के बीच की रस्सी के बराबर होगी तथा पत्थर की गति को समान वृत्ताकर गति कहेंगे। बिजली-पंखे की एक पखड़ी पर एक चिन्ह बना दे, जब पखा चलेगा तो यह चिन्ह एक वृत्त मे घूमता हुआ दिखाई देगा।

रैखिक एवं कौणीय वेगः—एक वस्तु जो किसी वृत्त की परिधि पर समान चाल से चलती है, उसमें दो प्रकार के वेग होते है, एक तो रैखिक अर्थात् वह परिधि की रेखा पर जिस वेग से चल रही है एक सेकिन्ड में वस्तु परिधि पर जितनी चलती है वह उसका रैखिक वेग होता है। जब हम यह हिसाब लगाते हैं कि वस्तु एक सेकिन्ड में उस वृत्त के केन्द्र-जिसकी परिधि पर यह घूम रही है कितना कोण बनाती है तो हमें उसका कौणीय वेग ज्ञात होता है। यहां देखिये चित्र में r अर्द्ध व्यास के वृत्त की परिधि पर एक वस्तु P घूम रही है, यदि t सेकिन्ड में यह एक बार पूरे वृत्त की परिधि पर घूमती है, तो :

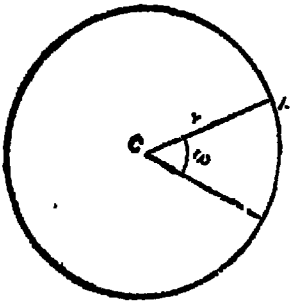

चित्र सख्या 60

$$w = \text{कौणीय वेग} = \frac{2\pi}{t}$$

$$v = \text{रैखिक वेग} = \frac{\text{परिधि}}{t} = \frac{2\pi r}{t}$$

$$w = \frac{2\pi}{t}$$

$$V = \frac{2\pi}{t}$$

$$v = wr$$

$$\frac{v}{w} = r$$

यहां V रैखिक वेग है, W कौणीय वेग। अतः ऊपर रैखिक तथा कौणीय वेग का सम्बन्ध दिया गया है।

केन्द्रीय बल.—एक पत्थर का टुकड़ा यदि एक रस्सी के छोर से बांध कर घुमाया जावे तो वह वृत्त मे घूमता है। यदि रस्सी कही एकाएक टूट जाय तो वह वृत्ताकार मार्ग छोड कर वृत्त से बनाने वाली स्पर्श रेखा की दिशा में चला जाता है। ऐसा क्यों होता है ?

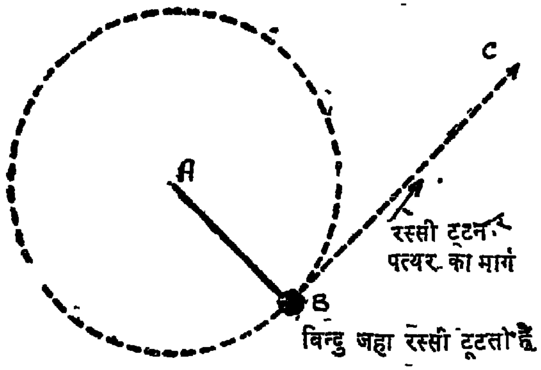

इसका उत्तर हमें न्यूटन का प्रथम सिद्धान्त देता है कि कोई वस्तु अपनी स्थिति में घूमती है जब तक कोई बल उसे ऐसा करने से रोके। प्रत्येक समय पर पत्थर एक स्पर्शीय वेग रहता है अर्थात् यदि हम वृत्त के किसी बिन्दु पर वेग की दिशा दिखाना चाहे तो उस बिन्दु पर स्पर्श रेखा की दिशा मे वेग रहता है और रस्सी टूटने पर उस दिशा मे चला जाता है। अब वह कौन सा बल है जो इस वृत्त मे घूमने को वाध्य करता है ? अतः स्वतः यह विचार उठता है कि कोई बल वृत्त के केन्द्र की ओर कार्य कर रहा है जो वस्तु को वृत्त मे घूमने को वाध्य करता है। इस बल को केन्द्राभिमुखी बल कहते है।

जब केन्द्राभिमुखी बल पत्थर के टुकड़े को वृत्त में घुमाने के लिए लगाया जाता है तो पत्थर का टुकडा उसका विरोध करता है तथा केन्द्राभिमुखी बल की विपरीत दिशा में बल लगाता है अर्थात् केन्द्र से दूर हटने का प्रयत्न करता है। इसे केन्द्रापसारी बल कहते है।

केन्द्राभिमुखी तथा केन्द्रापसारी बल मान मे एक ही है पर दिशा में विपरीत हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चाल और वेग मे क्या अन्तर है ?
2. वेग वृद्धि किसे कहते है ?
3. न्यूटन के गति सिद्धान्त को सविस्तार समझाइये।
4. रैखिक और कौणीय गति मे क्या संबंध है ?
5. केन्द्राभिमुखी तथा केन्द्रापसारी बल क्या होते है ?

तेरहवाँ अध्याय

ताप

ताप क्या है ?

प्राचीन काल से ही मनुष्य को ठण्ड व गर्मी का ज्ञान है। यदि हम धधकती हुई भट्टी के सामने या धूप में खड़े हो जावें तो हमको गर्मी का ज्ञान होता है। यदि हम जलती हुई भट्टी के निकट आवें तो हमको अधिक गर्मी का अनुभव होगा तथा यदि भट्टी से दूर जावें तो कम गर्मी का या हम यो कह सकते है कि ठण्ड का ज्ञान होता है। यदि हम धूप में रखे गए बर्तनो को स्पर्श करते हैं तो हमको बर्तन अधिक गर्म प्रतीत होते हैं। गर्मी व ठण्ड का ज्ञान हमको हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। हम यह बतला देना चाहते हैं कि बिना गर्मी के सृष्टि में एक क्षण भी जीवित रहना दुश्वार होता है। जैसा कि आप आज पृथ्वी को देख रहे हैं यह सब गर्मी ही की देन है। गर्मी के बिना पृथ्वी पर जिन्दगी (Life) का निशान भी नही मिलता। अनाज, फलों का पकना आदि यह सब गर्मी की ही देन है। अतः प्राणी मात्र मे गर्मी का रहना बहुत ही अनिवार्य है। इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। आपको अब यह मालूम हो गया कि मनुष्य ताप का कितना आभारी है। परन्तु ताप क्या है ? ताप वह है जिससे हमें गर्मी का अनुभव होता है तथा जिससे शरीर गर्म रहता है।

ताप की उत्पत्ति

घर्षण (Mechanical Process):—घर्षण ताप की उत्पत्ति का एक साधन है।

यह तो आपको अनुभव होगा कि जब हम दोनों हाथों को आपस में रगड़ते है तो गर्मी का अनुभव होता है अथवा गर्मी निकलती है। फुटबाल में हवा भरते समय पम्प गर्म हो जाता है। दो पत्थरों को रगड़ कर प्राचीन काल में अग्नि उत्पन्न की जाती थी। लोहे का टुकड़ा हथौड़े से चोट मारने पर गर्म हो जाता है।

2. विद्युत (Electricity) .—जब विद्युत को एक बारीक तार में से प्रवाह की जाती है तब तार गर्म होकर वह ताप देता है, इसी सिद्धान्त पर बिजली के स्टोव तथा बल्व बनाये जाते हैं।

3. भौतिक परिवर्तन (Physical changes)—जब पानी भाप में परिवर्तन होता है तब पानी ताप लेता है, परन्तु भाप जब पानी में पुन. आती है तब

भाप ताप देती है। पानी का भाप बनाना तथा भाप का पानी बनाना यह दोनों क्रियाएँ एक ही स्थिर तापक्रम पर होती हैं। पानी जिस समय बर्फ की अवस्था में आता है, उस समय गर्मी का निकास होता है।

4. **रासायनिक क्रिया के द्वारा** (Chemical means):–जब पानी गन्धक के अम्ल में डाला जाता है तब गर्मी उत्पन्न होती है। जब कार्बन आक्सीजन से सयोग करता है तब गर्मी उत्पन्न होती है। हमारे स्वांश क्रिया में भी ताप, भोजन आक्सीजन से संयोग करते समय निकलता है, जो जीवन के लिए बहुत ही जरूरी है।

5. **पृथ्वी की गर्मी** (Heat of the earth):–पृथ्वी के भीतरी भाग में काफी मात्रा में गर्मी मौजूद है, जो हमें ज्वालामुखी तथा पानी के गर्म स्रोतो के रूप में प्राप्त होती है।

6. **सूर्य** (Sun):–यह ताप की उत्पत्ति का सबसे बड़ा साधन है। इसी पर सारी सृष्टि निर्भर है।

ताप के प्रभाव

1. **आयतन में परिवर्तन** (Change in volume)–जब किसी पदार्थ को गर्म किया जाता है तो उस पदार्थ का आयतन गर्म करने पर बढ़ता है तथा ठण्डा करने पर कम हो जाता है।

2. **अवस्था परिवर्तन** (Change of state):–ठोस पदार्थ को गर्म करने पर ठोस द्रव अवस्था में तथा ज्यादा गर्म करने पर गैसिय अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। भाप को ठण्डी करने पर पानी तथा पानी को ठण्डा करने पर बर्फ बन जाती है।

3. **भौतिक गुण में परिवर्तन** (Change of Physical Properties) कच्चा लोहा (Soft Iron)–लोहा साधारण तापक्रम पर कड़ा तथा टूटने वाला होता है, परन्तु गर्म करने पर लचीला और मुलायम हो जाता है। लोहा गर्म करने के पश्चात इच्छानुसार ढाला जा सकता है। चीनी गर्म पानी में ठण्डे पानी की अपेक्षा अधिक घुलती है। इसका अभिप्राय यह है कि गर्म करने से घोलक शक्ति (Solvent Power) और खिंचाव (Flexibieity) बढ़ जाती है।

4. **तापक्रम का बढ़ना** (Change of Temperature):–किसी पदार्थ को गर्म करने पर उसका तापक्रम अधिक बढ़ जाता है। पानी गर्म करने पर असह्य हो जाता है।

5. भीतरी दबाव में परिवर्तन (Change of Pressure)—बैल गाडी के पहिये पर लोहे का हाल चढ़ाने के लिए गर्म किया जाता है, हाल के चढ़ने के पश्चात इसके ठण्डा होते ही पहिये को काफी दबाव के साथ जकड़ लेता है

6. विद्युत और रासायनिक प्रभाव (Chemical and electrical effect):—लोहे और पीतल की छड़ी के जोड़ को गर्म करने से विद्युत प्रवाह होने लगती है। मैगनीशियम को गर्म करने पर मैगनिशियम आक्सीजन से संयोग करके मैगनीशियम आक्साइड बन जाता है। प्रति दिन खाना पकाने में रासायनिक परिवर्तन होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गर्मी के कौन कौन से उत्पादक (Source) हैं ? और उनमें सबसे मुख्य कौनसा है ?
2. किसी वस्तु को गर्म करने पर उसमें क्या परिवर्तन होते हैं ?

———

चौदहवां अध्याय

तापक्रम की परिभाषा

यह तो आप पिछले अध्याय में ही पढ़ चुके हैं कि ताप का ज्ञान स्पर्शेन्द्रीय के द्वारा होता है। नित्य प्रतिदिन ताप और ठण्ड का अनुभव होता है। ग्रीष्म ऋतु में धूप में रखे हुए धातु के बने हुए बर्तनों को स्पर्श करे तो हमको बर्तन अधिक गर्म प्रतीत होंगे। ठीक इसके विपरीत एक बर्फ के टुकड़े को हाथ में ले लेंवे तो हम बर्फ के टुकड़े को ठण्डा अनुभव करेंगे। परन्तु भौतिक शास्त्र में ठण्ड और गर्मी का प्रयोग नहीं करते, बल्कि ठण्ड तथा गर्मी को ऊँचे तापक्रम और नीचे तापक्रम से सम्बोधित किया जाता है, परन्तु प्रश्न यह आता है कि ताप क्या है ? जिस प्रकार हमको लम्बाई और क्षेत्रफल लिखने के लिए भी एक इकाई की आवश्यकता होती है जो कि तापक्रम (Temperature) कहलाता है, अत तापक्रम एक वह संख्या है जो किसी वस्तु का तापक्रम बताता है।

ताप और तापक्रम में अन्तर

यद्यपि ताप और तापक्रम एक से ही प्रतीत होते है। परन्तु ताप और तापक्रम में बहुत अन्तर है। ऊँचे तापक्रम पर ताप की अधिकता तथा नीचे तापक्रम पर ताप की न्यूनता का विचार करना विद्यार्थियों की भूल है। उनको उपरोक्त विचार अपने मष्तिस्क से निकाल देना चाहिये। अतः हम देखें या विचार करे कि यदि ताप और तापक्रम एक नहीं है तो इनमें भिन्नता क्या है ?

दो बीकर में पानी 100 cc तथा 600 cc लें और 100 cc वाले बीकर में जिसको हम A नाम से सम्बोधित करेंगे, 10gm चीनी घोलिये, आप देखेंगे कि एक हलका शर्बत बन जावेगा। यदि हम 600cc वाले बीकर B के पानी को ठीक A वाले बीकर जैसा शर्बत बनाना चाहें तो हमको 60gm चीनी की आवश्यकता होगी, ठीक यही अन्तर ताप और तापक्रम का है। दोनो बीकरो को एक ही समान तापक्रम पर गर्म करने के लिए B बीकर को 6 गुना ताप की आवश्यकता होगी, क्योंकि ताप किसी वस्तु के तापक्रम को बढ़ा देता है।

ठीक उसी प्रकार जैसे कि पानी ऊँचे स्थान से नीचे को बहता है, वैसे ही ताप का बहना दो वस्तुओं के भिन्न-भिन्न तापक्रम पर निर्भर करता है। ताप का बहना किसी धातु के ताप की मात्रा पर निर्भर है। ताप ऊँचे तापक्रम वाली वस्तु से नीचे तापक्रम वाली वस्तु की तरफ बहता है।

हमारी स्पर्शेन्द्रियः—प्रायः एक अनुभवी डाक्टर हाथ से यह देखते ही बता देता है कि किस मनुष्य को कितना बुखार है। परन्तु आमतौर पर हमारी ज्ञानेन्द्रिय धोखा खा जाती है जैसे हमारी जिह्वा (जीभ) मिठाई खाने के पश्चात किसी फल को खाने में पहले की अपेक्षा कम मीठेपन का अनुभव करती है।

1. ग्रीष्म ऋतु में यद्यपि सब वस्तुओं का एक ही तापक्रम होता है परन्तु एक लकड़ी का टुकड़ा एक धातु के टुकड़े की अपेक्षा कम गर्म प्रतीत होता है। यद्यपि दोनो का ताप एक ही है।

2. दो बीकर A, B लें. A में थोडा ठण्डा पानी तथा दूसरे B में खौलता हुआ पानी ले। दोनों बीकरों में पहले एक के पश्चात् दूसरे में क्रमानुसार दोनों हाथों की दो भिन्न भिन्न उँगलियों को अलग अलग डाले। इसके पश्चात दोनों उँगलियो को एक साथ ही तीसरे बीकर (C) में, जिसमें गुनगुना पानी रखा हो, उँगलियाँ डालें तो अनुभव होगा कि उस उँगली को, जिसको आपने उबले हुऐ पानी में डाली थी वह गुनगुना पानी ठण्डा तथा ठण्डे पानी वाले बीकर में जिस उगँली को डाली थी उसको गुनगुना पानी काफी गर्म प्रतीत होगा यद्यपि बीकर (C) का तापक्रम एक सा है।

उपरोक्त उदाहरणों से हमको यह भली भाँति अनुभव हो गया कि तापक्रम को मापने के लिए हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर भरोसा नहीं कर सकते। तापक्रम को नापने के लिए हम एक यन्त्र का प्रयोग करते हैं जिसको कि हम Thermometer (थर्मामीटर) तापमापक यन्त्र कहते है।

पारे के तापमापक में गर्मी के द्वारा प्रसार की उपयोगिताएँ—जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि ताप से वस्तु बढ़ती है और ठण्ड से वस्तु सिकुड़ती हैं। तापमापक यन्त्र इसी सिद्धान्त पर बनाया गया है। आगे चलकर हम यह बतलावेंगे कि ठोस ताप पाकर कम बढता है। इसके अतिरिक्त गैस थोडे तापक्रम पर ही बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसी कारण ठोस और गैस तापमापक यन्त्र बनाने के काम में नहीं लाये जाते। द्रव का प्रसार समान तथा साधारण होता है—यही कारण है कि यन्त्र बनाते समय द्रव को ही प्रयोग में लाते हैं। द्रवो में से पारा और अल्कोहल ही तापमापक यन्त्र बनाने के काम आता है। पारा अल्कोहल से भी अच्छा है।

निम्न लिखित कारणों से हम पारे को प्रथम स्थान देते हैं।

1. इसका प्रसार समान है तापक्रम बढ़ने से पारा समान गति से बढता है; तथा तापक्रम कम होने पर समान गति से सिकुडता है।
2. थर्मामीटर की काँच की नली से यह नहीं चिपकता है।

3. यह गर्मी का अच्छा चालक है जो थोडा तापक्रम पाने पर वस्तु का तापक्रम बतलादे ।
4. अपार दर्शक होने के कारण इसका तल आसानी से पढ़ा जा सकता है ।
5. यह शुद्ध अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है तथा यह-39°C पर जमता है और 357°C पर उबलता है दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इसका हिमांक-39°C और क्वथनांक 357°C है । हम 39°C से 357°C तक के तापक्रम इसके द्वारा पढ़ सकते हैं । 39°C से नीचे तापक्रम को मालूम करने के लिए हम पारा नहीं ले सकते क्योकि यह 39°C पर ही जम जाता है । 39°C से नीचे तापक्रम पढने के लिए हम अल्कोहल लेते हैं क्योंकि यह – 130°C पर जमता है ।
6. (Mercury Vapour) की पारे की माप का दबाव बहुत कम होता है और पारे पर इसका कोई असर नहीं होता है ।

तापमापक का बनाना
(Construction of Thermometer)

तापमापक को बनाने के लिए हमको एक बारीक कांच वाली समान छिद्र वाली (Capillart yube) नली की आवश्यकता पड़ती है जिसके एक सिरे पर घुण्डी तथा दूसरे सिरे पर एक कीप लगी हुई हों । कीप के नीचे थोडी सी दूरी पर नली को गर्म करके कुछ नली की गर्दन को तंग करदें, जैसा कि पृष्ठ ७२ पर चित्र में दिखलाया जा रहा है । कीप में पारा डाले तो देखेगे कि पारा गर्दन के नीचे नही जाता बल्कि वह ऊपर कीप में ही रह-जाता है । इसका कारण है कि नली का छिद्र बहुत बारीक है और हवा पारे को नली के अन्दर नहीं आने देती । हवा को निकालने के लिए घुण्डी को गर्म किया जाता है जिससे हवा बढ़ जाती है तथा हवा थोड़ी सी मात्रा में कीप में से होकर बाहर निकल जाती है । काच की नली को ठण्डा करते ही हवा सिकुड़ जाती है और निकली हुई हवा का स्थान हवा वापिस नहीं ले पाती कारण कि हवा पारे में से होकर नली में आ सकती है पारा ले लेता है । ठीक इसी प्रकार नली को पुनः गर्म करने से घुण्ड़ी का पारा गर्म होकर पारे की वाष्प में परिवर्तित हो जाता है और पारे की वाष्प हवा को बाहर निकाल देती है । नली को पुनः ठण्डा करने से पारे का वाष्प पारा बन जावेगा और नली में दबाव कम होने के कारण थोडा सा पारा नली में प्रवेश कर जावेगा । ठीक इसी प्रकार घुण्डी को गर्म व ठण्डा करने से नली की हवा बाहर निकल जावेगी और नली में पारा भर जावेगा । तत्पश्चात्

नली को एक ऐसे द्रव के बर्तन में रखें कि जिसका ऊँचे से ऊँचा तापक्रम तापमापक के ऊँचे तापक्रम से अधिक हो। तब बर्तन को गर्म करें और कीप में से पारा निकाल लें। पारा गर्मी पाकर प्रसार करके कीप में आ जावेगा फिर इस पारे को भी निकालदें और कीप के नीचे वाली पतली गर्दन को गर्म करके खींच कर बन्द करदें। नली के अन्दर पारा और उसकी वाष्प के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

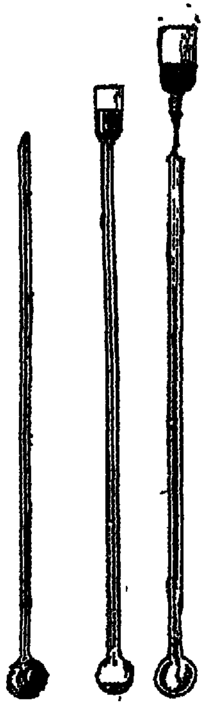

तापमापक में चिन्ह लगाना

तापक्रम मालूम करने के लिए तापक्रम में चिन्ह लगाना अति आवश्यक है क्योंकि तापक्रम मालूम करने के लिए हमको एक उचित पैमाना भी चुनना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम ऐसे दो तापक्रम एक ऊँचा और दूसरा नीचा लें जो स्थिर हों और सुगमता से दोनों तापक्रम मालुम किये जा सकें। क्योंकि पानी सब जगह शुद्ध और आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और इसके नीचे तथा ऊँचे तापक्रम स्थिर हैं। पानी का हिमांक अथवा बर्फ का द्रवणांक तापक्रम के नीचे का विशेष अंक है और क्वथनांक ऊँचा विशेष अंक है इसलिए चिन्ह लगाने से पहिले हमें हिमांक एवं क्वथनांक मालूम करना चाहिए।

नीचे के विशेष अंक (Lower fixed point) का ज्ञात करना:-प्रथम एक कीप को कुछ बर्फ के टुकड़ों से भर दीजिए उस बीकर में उपरोक्त बिना चिन्ह ले तापक्रम को बर्फ के बीकर में इस प्रकार रक्खें कि तापमापक घुंडी बर्फ के नीचे रहे तथा एक घण्टे पश्चात जब सारा पारा एक जगह एकत्रित होजावे तो उस जगह को खुरच कर निशान लगा देना चाहिये यही तापमापक के नीचे वाला विशेष अङ्क है।

ऊँचा विशेष अङ्क(Upper fixed point) ज्ञात करना:—यह वह अंक है जिस पर उबलते हुए पानी अथवा वाष्प में तापमापक रखने से पारा चढ़ कर एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। आमतौर पर पानी प्रयोग में नहीं लेते हैं इसका कारण यह है कि पानी में कई अशुद्धियां होती हैं और अशुद्धियों के कारण पानी का क्वथनांक बढ़ जाता है। इसलिए वाष्प को ही प्रयोग में लाते हैं क्योंकि वाष्प का तापक्रम नहीं बदलता इस अंक को मालूम करने के लिए हम एक यन्त्र जिसको हिप्सोमीटर (Hypsometer) कहते हैं प्रयोग में लाते हैं। इसमें दो पीतल के खोखले

बेलन होते है जो एक दूसरे के भीतर जुड़े हुए रहते हैं, अन्दर के बेलन, जिसमें पानी

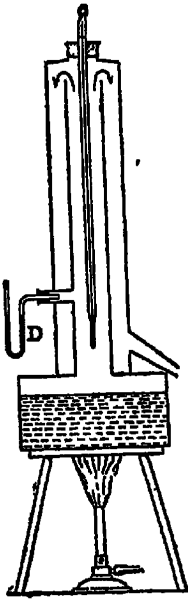

भरा रहता है, उसको गर्म करते हैं, जिससे वाष्प तीर लगाये रास्ते से होकर बाहर निकल जाती है। तापक्रम को एक छिद्र वाले कार्क में लगाकर हिप्सोमीटर में लगा देते हैं। ताप मापक की घुंडी पानी से ऊपर ही रखते हैं। जब पारा चढ़ कर स्थिर होने पर आवे तो उस जगह चिन्ह लगा देते हैं।

Scale of Temperature :—दोनों विशेष अंकों को मालूम करने के पश्चात तापमापक के दोनों चिन्हों की दूरी बराबर भागों में बांट दी जाती है। उन भागों को हम डिग्री के नाम से सम्बोधित करते हैं। साधारणतः यह दो चिन्हों की दूरी तीन विभिन्न हिसाब से बाँटी जाती है। इन विभिन्न चिन्हो के कारण तापमापक निम्न तीन प्रकार के होते हैं:—

1. सेन्टीग्रेड (Centigrade) 2. फारेनहाइट (Fahrenheit) और रियूमर (Reaumur).

1. सेन्टीग्रेड (Centigrade).—इस पैमाने का जन्म-दाता सैलसियस था। इसने ताप मापक के दोनों चिन्हो की दूरी को बराबर 100 भागो में बाँटा। नीचे

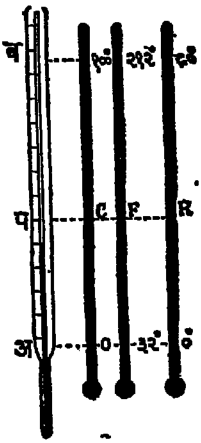

वाले को 0°C का नाम दिया गया, 0°C से नीचे की तरफ वाले ऋणात्मक और 0°C से ऊपर वाले चिन्ह धनात्मक कहलाते हैं। विज्ञान में बहुधा यह तापमापक प्रयोग में लाया जाता है।

2. फारेनहाइट (Fahrenheit Scale) इस पैमाने का नाम आविष्कारक के नाम पर रखा गया। इसको 180 बराबर बराबर भागो में बाँटा गया है। नीचे वाला अङ्क 32 लिखा जाता है और ऊपर वाला 212 लिखा जाता है। सैन्टग्रेड ताप मापक की तरह इसमें भी 32°F से ऊपर तथा 32°F से नीचे निशान होते हैं, जो कि धनात्मक और ऋणात्मक क्रमानुसार होते हैं। सैन्टीग्रेड का शून्य चिन्ह तथा फारेनहाइट का 32° चिन्ह एक ही है। क्योंकि दोनो चिन्ह वह तापक्रम बतलाते हैं जो बर्फ का द्रवणांक यानी पानी का हिमांक है। यह पैमाना अधिकतर डाक्टरों के प्रयोग में आता है।

डाक्टरी थर्मामीटर–(Clinical thermometer)–इस तापमापक में 95 F से 110 F तक ही चिन्ह होते हैं, घुण्डी के पास वाले हिस्से के पास मुडाव होता है। इस मुडाव का लाभ यह है कि तापक्रम मापने के लिए तापमापक को हटाने के पश्चात पारा वापिस नीचे नहीं आ सकता जब तक कि झटका नहीं दिया जावे पारा नीचे नहीं उतरेगा बल्कि गर्मी व ताप पाकर यह ऊपर ही चढ़ेगा।

3. रियूमर पैमाना (Reaumur Scale) इसमें हिमाङ्क $0°R$ तथा क्वथनांक $80°R$ कहलाता है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि दोनों चिन्हो की दूरी को हम 80 भागों में विभाजित करते हैं और प्रत्येक भाग को रियूमर कहते हैं। वह तापमापक जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि देशों के कुछ भागों में प्रयोग में लाया जाता है। इसमें ऋणात्मक चिन्ह लगे होते हैं।

सेन्टीग्रेड फारेनहाइट और रियूमर तापमापकों में सम्बन्ध

क्योंकि दोनों चिन्हों की दूरी सेन्टीग्रेड में 100 भागों में और फारेनहाइट में 180 भागों तथा रियूमर में 80 भागों में विभाजित होती है, जिसका अभिप्राय यह हुआ कि 100 बराबर है 180 फारेनहाइट के और 80 R बराबर है रियूमर के।

$$100°C = 180°F = 80°R$$
$$5°C = 9°F = 4°R$$
$$1°C = \frac{9°F}{5} = \frac{4°R}{5}$$

अतः जब सेन्टीग्रेड को फारेनहाइट अथवा रियूमर में बदलना है तो सेन्टीग्रेड को $\frac{9}{5}$ से गुणा करके 32 जोड़ देने से फारेनहाइट में तथा सेन्टीग्रेड को $\frac{4}{5}$ से गुणा करने से रियूमर में, सेन्टीग्रेड, फारेनहाइट में तथा रियूमर में उपरोक्त रीति से क्रमानुसार बदला जा सकता है।

हम यहाँ एक फार्मूला दे रहे हैं जिसके अनुसार किसी के तापमापक के किसी दूसरे तापक्रम को तापमापक तापक्रम में बदल सकते हैं।

$$\frac{C}{5} = \frac{F-32}{9} = \frac{R}{4}$$

उदाहरण पहला—40°C फारेनहाइट में बदलो।

$$\frac{C}{5} = \frac{F-32}{9}$$
$$\therefore \frac{40}{5} = \frac{F-32}{9} \text{ or } 5F = 360 + 160$$
$$F = \frac{520}{5} = 104°$$

उदाहरण दूसरा—100°F सैन्टीग्रेड में बदलो।

$$\frac{C}{5}=\frac{F-32}{9}$$

$$\therefore\frac{C}{5}=\frac{100-32}{9}$$

or $9C=500-160$

$9C=340$

$$C=340=\frac{37\cdot77^\circ}{5}$$

उदाहरण तीसरा—ऐसा कौनसा तापक्रम है जो फारेनहाइट और सेन्टीग्रेड पर बराबर है।

मानलो वह तापक्रम x^2 है।

तो $\frac{C}{5}=\frac{F-32}{9}$ or $\frac{x}{5}=\frac{x-32}{9}$

or$9x=5x-160$ or $4x=160$ or $x=-40$

वह तापक्रम—40° है जो सेन्टीग्रेड और फारेनहाइट पर बराबर होगा।

चौथा उदाहरणः—ऐसा तापक्रम ज्ञात कीजिए जो फारेनहाइट और सेन्टीग्रेड का दुगुना हो।

मानलो सेन्टीग्रेड पर तापक्रम x^0 है तो फारेनहाइट पर 2x हुआ।

$\frac{C}{5}=\frac{F-32}{9}$ or $\frac{X}{5}=\frac{2x-32}{9}$ or $10\ x-160=9x$

or $x=160x=-40$

न्टीग्रेड 160° बतायेगा तब फारेनहाइट 320° बतायेगा।

उच्चतम और न्यूनतम तापमापक

तापमापक के विपरीत अन्य प्रकार के तापमापक भी होते हैं, इसमें से हैं, इसे उच्चतम तथा न्यूनतम तापमापक कहते हैं। एक एक मुडी के चित्र में बताई गई है लो, जिसके दोनों सिरो में दो घुंडी होती हैं घुण्डी (B) तथा घुण्डी (A) बताई गई है, B घुण्डी में अल्कोहल भरा रहता है। P स्थान से P′ स्थान तक पारा भराहोता है तथा घुण्डी से पूरी भरी हुई नहीं रहती यानि बल्ब A के ऊपरी भाग में अल्कोहल

की वाष्प भरी होती है। बाईं वाली नली में चिन्ह नीचे से ऊपर P' की तरफ शून्य से 100 तक लगे होते हैं तथा दाहिनी तरफ की नली में निशान में ऊपर नीचे, यानि शून्य ऊपर की तरफ और 100° नीचे की तरफ लगे होते हैं। जब अल्कोहल बल्ब B में ताप पाकर बढ़ती है तो अल्कोहल बाईं नली वाले पारे के स्तम्भ को नीचे कर देती है, जिससे पारा दाहिनी नली में चढ़ जाता है। पारा कमानीदार लोहे की छड़ को जो कि (X) के दोनों तरफ की नली में पारे के स्तम्भ के ऊपर रखी होती है, ऊपर ढकेल देता है और तब तक ढकेलता रहता है जब तक कि उच्चतम तापक्रम मालूम नहीं हो जाता। बाईं वाली नली के अल्कोहल सिकुड़ने पर पारा दाईं वाली नली से गिर कर बाईं वाली नली में चढ़ता है और दाईं नली में पारे पर रखी हुई लोहे की कमानी (Index) को ऊपर ढकेल देती है जो कि न्यूनतम तापक्रम है। लोहे की कमानीदार छड़ के कारण यह तापमापक बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है क्योंकि हम उच्चतम एवं निम्नतम तापक्रम बिना मेहनत के मालूम कर लेते हैं। कमानीदार लोहे की छड़ का काम यह है कि यह छड़ (Index) को जिस जगह पारा छोड़ देता है वह वहीं पर रख देती है और पारे के उतरने के साथ नीचे नहीं जाती। उच्चतम तथा न्यूनतम तापमापक पढ़ने के बाद कमानीदार छड़ चुम्बक के द्वारा नीचे वापिस पारे के स्तम्भ के पास लाकर छोड़ दी जाती है।

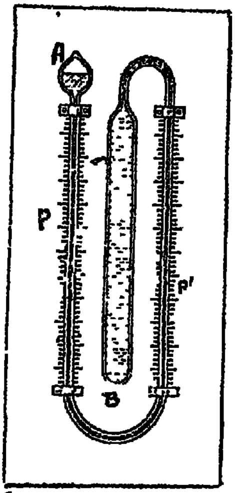

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) तापक्रम किसको कहते हैं? क्या हमारी स्पर्शेन्द्रिय तापक्रम ज्ञान करने के लिए उचित है?

(2) तापमापक बनाने की विधि का वर्णन करें। तापमापक कितने प्रकार के होते हैं और उनमें आपस में क्या सम्बन्ध है?

(3) पारे को ही तापमापक में क्यों प्रयोग करते हैं; क्या पारे के स्थान पर पानी प्रयोग में लाया जा सकता है?

(4) उच्चतम और न्यूनतम तापमापक का, चित्र खींच कर विस्तार पूर्वक वर्णन करें और बतावें कि यह कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ?

पन्द्रहवाँ अध्याय

अवस्था परिवर्तन

पिघलना (Fusion):–किसी ठोस को गर्म करने से जैसा कि तीसरे अध्याय मे बताया जा चुका है, बढता है । बढता ही नही वरन् तापक्रम निरन्तर बढाने से एक समय ऐसा आता हैं जब ठोस द्रव के रूप में परिणित हो जाता है । मोम, बर्फ गन्धक सब ठोस हैं तथा गर्म करने से द्रव मे परिवर्तित हो जाते हैं । परन्तु कुछ ऐसे ठोस पदार्थ जैसे Iodine कपूर (Camphor) नौसादर इस नियम का पालन नही करते और गर्म करने से बिना द्रव मे बदले हुए गैसीय अवस्था मे बदल जाते हैं । इस क्रिया को उद्धमन(Sublimation)कहते है व पिघलने को (Fusion) कहते हैं

प्रयोग:—बर्फ को गर्म करने से क्या होता है ? एक बीकर में बर्फ लेकर गर्म करें । बर्फ का तापक्रम 0°C होता है, गर्म करते समय आप देखेंगें कि बर्फ पिघलनी शुरू हो जाती है । परन्तु फिर भी पानी का तापक्रम 0°C ही रहता है जिसको हम ताप मापक से मालूम कर सकते है । तापक्रम तब तक नही बढने पाता जब तक सारी बर्फ पिघल नही जाती । इस तापक्रम (0°C) को बर्फ का द्रवणांक (Melting Point) कहते है ।

प्रयोग:—एक बीकर मे पानी ले और बीकर को दूसरे बड़े बीकर मे जिसमे बर्फ और नमक का मिश्रण हो, रखदें । आप देखेगे कि पानी जैसें ही जमने लगें ताप क्रम तापमापक के द्वारा पानी का तापक्रम 0°C ही है । जब तक पानी न जम जावे तापक्रम बराबर देखते रहे । तापक्रम 0°C ही रहता है । इसको पानी का हिमांक (Freezing Point) कहते हैं, अतः बर्फ का द्रवणांक और पानी का हिमांक दोनों एक ही होते है ।

वह तापक्रम जिस पर कोई ठोस पदार्थ पिघलता है, उस वस्तु का द्रवणांक कहलाता है और वह तापक्रम जिस पर द्रव जमता है वह उसका हिमांक कहलाता है :—

कुछ ठोस वस्तुओं के द्रवणांक

लोहा 1600 °C	मैगनीशियम 633°C
एल्युमीनियम 657°C	गन्धक 114°C
बर्फ 0°C	जस्ता 419°C
तावा 1083°C	टिन 232°C

किसी ठोस पदार्थ का द्रवणांक मालूम करना:—मोम का द्रवणांक मालूम करना-एक कांच की नली को गर्म करके खीच कर एक बारीक नली (Capillary tube) बनावे, इस बारीक नली (Capillary tube) मे जिस वस्तु का द्रवणांक मालूम करना है, भर दें तथा इस नली को तापमापक के साथ धागे से इस प्रकार बांधें कि नली तापमापक से सटी रहे तथा तापमापक पानी से भरे हुए बीकर मे एक क्लप के द्वारा इस प्रकार लटकावे कि नली का आधा भाग पानी में तथा नली का ऊपरी भाग पानी के ऊपर रहे, पानी को गर्म करते समय निरन्तर हिलाते रहना चाहिए ताकि सब पानी का ताप एकसार रहे। जब ठोस (मोम) पिघल कर पारदर्शक हो जावे, वह तापक्रम मालूम करले तथा पानी को ठण्डा होने दें, जब ठोस पुनः ठोस अवस्था मे आजावे तो उस तापक्रम को भी मालूम करले, इन दोनों तापक्रमो का औसतन तापक्रम ठोस वस्तु का द्रवणांक होगा।

नोट:—बीकर में वह द्रव लेना चाहिए जिसका क्वथनाक ठोस पदार्थ के द्रवणांक से ज्यादा हो। ऊंचे द्रवणांक वाले ठोस के लिए हम गन्धक का अम्ल तथा ग्लिसरीन लेते है।

पिघलने का गुप्त ताप (Latent Heat of Fusion) :—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बर्फ को गर्म करने से वह पिघलनी शुरू होती है, परन्तु बर्फ के पानी बने हुए का तापक्रम 0°C ही रहता है। तापक्रम तब तक नही बढने पाता जब तक सारी बर्फ पिघल कर पानी न बन जाये। प्रश्न यह आता है कि ताप हमने जो दिया वह कहाँ गया ? क्योंकि तापक्रम तो बढाता नही है। उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि ताप बर्फ के पिघलाने मे काम आ गया।

अतः ताप की वह मात्रा जो 1 mg. ठोस के पिघलने में विलीन हो जाती है तथा उसी तापक्रम पर फिर 1 gm. ठोस बनने मे निकल आती है पिघलने का गुप्त ताप कहते है।

पिघलने के आयतन में परिवर्तन (Change in volume during melting):—किसी वस्तु की अवस्था परिवर्तन में उसके आयतन मे भी परिवर्तन होता है। आम तौर पर जमने मे वस्तु सिकुडती है और पिघलने मे वस्तु बढती है। सोना, चांदी, लौहा, उपर्युक्त नियम का पालन करते हैं, परन्तु बर्फ उपरोक्त नियम का पालन नही करती। स्पष्ट शब्दो मे हम यों कह सकते हैं कि बर्फ के पिघलने पर उसका आयतन कम हो जाता है तथा जमने पर आयतन में बढोत्तरी होती है इसी कारण आप देखेंगे कि बर्फ पानी पर तैरा करती है।

द्रवणांक पर दबाव का प्रभाव (Effect of Pressure on melting point):—दबाव मे परिवर्तन भी द्रवणांक पर असर डालता है, क्योंकि कई वस्तु पिघलने पर बढती है। जैसे मोम तो उसका द्रवणांक के बढने के कारण बढ जाता है परन्तु पिघलने पर जो सिकुडती है जैसे बर्फ उसका द्रवणांक दबाव के बढाने से कम हो जाता है।

बर्फ का फिर से जमना (Regulation):—बर्फ के दो टुकड़े लें और दोनों टुकड़ों को कुछ समय तक जोर से दबायें तो देखेंगे कि दोनों टुकड़े एक हो गये हैं। जैसा कि आपने बहुधा चुस्की वाले को चुस्की बनाते हुए देखा होगा। एक बर्फ का टुकड़ा लें और बर्फ के टुकड़े पर एक तार को जिसके दोनों सिरो पर दो वजनदार बाट बांधकर रखते जाये तो आप देखेंगे कि तार बाट सहित बर्फ काट कर नीचे चला जावेगा और बर्फ फिर से जुड़ कर पहले जैसी हो जावेगी जैसा कि सामने चित्र मे बताया गया है।

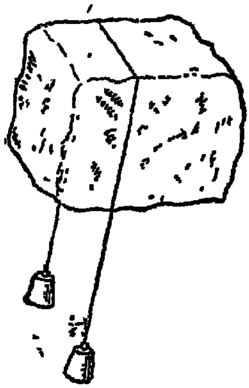

इसका अभिप्राय यह है कि दवाव पड़ने पर बर्फ पिघलती है और दबाव हटाने पर पानी वापिस जम जाता है इस रीति को बर्फ का फिर से जमना या (Regulation) कहते है।

इसी सिद्धान्त पर गैसो को ठण्डा करके द्रवो मे बदल सकते है, यदि गैस को काफी दबाव के साथ किसी बारीक छिद्र मे से निकालें तो गैस का दबाव छिद्र में से निकलते ही कम हो जावेगा। और गैस इतनी ठण्डी हो जावेगी कि गैस द्रव के रूप में परिवर्तन हो जावेगी।

वाष्पीकरण (Vaporisation) ठोस अपने स्थाई तापक्रम पर द्रव में बदल जाता है और द्रव किसी विशेष तापक्रम पर किसी गैसीय अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। गैस धीरे-धीरे और तेज दोनो अवस्था मे ही बन सकती है। आप रोजाना देखते हैं कि किसी बर्तन मे रखा गया पानी धीरे-धीरे सूख जाता है और वाष्प बनकर हवा में मिल जाता है। इसी प्रकार स्प्रीट आदि वाष्प में बदल कर हवा में मिल जाते है।

किसी भी तापक्रम पर किसी द्रव का धीरे धीरे उसके बल पर से निरन्तर गैसीय अवस्था मे बदलते रहने को वाष्पीकरण कहते हैं।

बहुत तेजी के साथ उडने वाले द्रव को तेज उडने वाला (Volatile) कहते है। विना द्रव मे बदले किसी गैस के वाष्प में परिवर्तन होने को सब्लीमैशन

(Sublimation) कहते है, जैसा कि ऊपर हम वर्णन कर चुके हैं और वाष्प को ठण्डा करने पर वापिस ठोस अवस्था में आ जाता है।

कुछ वाष्पीकरण की मुख्य बातें

1. गर्म करने से वाष्पीकरण जल्दी होता है, जिस तरह गीला कपड़ा छाया की अपेक्षा इसमें जल्दी सूखता है।

2. वाष्पीकरण का होना द्रव के तल पर निर्भर है। छटाँक पानी के प्याले मे वाष्पीकरण होने में कुछ समय लगेगा जबकि छटाँक पानी के चौक मे फैलाने से जल्दी ही उड़ेगा।

3. शुष्क हवा तेल वाष्पीकरण में सहायक होती है।

आपने प्राय: देखा होगा कि गिलास के बाहरी सतह पर जिसमे बर्फ रखी हुई हो कुछ बूंदे पानी की इकट्ठी हो जाती है। ऐसा इसलिए हुआ कि हवा में पानी वाष्प के रूप में है और वह ठण्डी होकर पानी बन जाती है। किसी वाष्प को ठण्डा होकर द्रव अवस्था मे आने को Condensation कहते है।

क्वथनांक (Boiling):—पानी को गर्म करने से पानी का भाप बनना शुरू हो जावेगा। पानी और अधिक गर्म होने से उसमें बुलबुले उठने लगेंगे और वाष्प बनना पहले से अधिक हो जावेगा ? और पानी का उबलना शुरू हो जावेगा। जबतक पानी उबलता रहे पानी का तापक्रम नही बदलता। ऐसा स्थाई तापक्रम जिस पर पानी उबलने लगे वह पानी का (Boileng point) का क्वथनांक कहलाता है। पानी का क्वथनांक 100°C और 2120 F होते है।

पानी का क्वथनांक निकालना

एक फ्लास्क में कुछ पानी लें तथा फ्लास्क को तिपाई (Tripod stand पर तारों की जाली (writgaudge) के ऊपर रखकर गर्म करे फ्लास्क की गर्दन को स्टेण्ड में एक clamp के द्वारा कसदें ताकि फ्लास्क टूट न जावे। फ्लास्क में एक-दो छिद्रों वाला कार्क लगादे, दो मे से एक छिद्र में ताप मापक इस प्रकार लगावें कि ताप मापक की घुण्डी पानी से ऊपर रहे। दूसरे छिद्र में एक निकास नली लगादें जिसमे से वाष्प बाहर निकल जावे। इतना करने के पश्चात् फ्लास्क को बर्नर के द्वारा गर्म करें और जब पानी उबलने लगे तथा तापमापक में तापक्रम समान स्थाई हो जावे तो उसे लिखलें, यही पानी का क्वथनांक होगा।

वाष्प का गुप्त ताप (Latent heat of vaporisation):—द्रव को गर्म करने से यह उबलने लगेगा और वाष्प मे बदलता रहेगा, परन्तु तापक्रम वही

रहेगा। प्रश्न उठता है कि जो ताप हमने दिया वह गया कहाँ ? स्पष्ट है कि यह वाष्प करने के काम आगया।

अतः ताप की वह मात्रा जो द्रव के 1 gm. को उसके क्वथनाक पर उसी तापक्रम पर वाष्प मे बदलदे उसको द्रव के वाष्प का गुप्त ताप कहते है।

क्वथनांक पर दबाव का प्रभाव (Effect of pressure Boiling-point):—दबाव के बढाने पर द्रव का क्वथनाक बढ जाता है तथा दबाव के घटाने पर क्वथनाक कम हो जाता है, जैसा कि हम प्रयोग द्वारा नीचे सिद्ध कर रहे है.—

पहला प्रयोग:—एक फ्लास्क में पानी ले और उसमें पम्प के द्वारा दबाव बढा दें, अन्दर दबाई हुई हवा निकलने न पावे। आप जानते है कि पानी का क्वथनांक 100°C होता है, फ्लास्क को गर्म करने से आप देखेंगे कि पानी 100°C पर नही उबलता और पानी 100°C से ऊंचे तापक्रम पर ही उबलता है। इसलिए दबाव बढने से क्वथनांक बढ जाता है।

दूसरा प्रयोग:—एक फ्लास्क में कुछ पानी ले और फ्लास्क को तिपाई पर रखकर गर्म करें, फ्लास्क की हवा बाहर निकल जावेगी तथा हवा का स्थान पानी की वाष्प ले लेगी। जब सब हवा निकल जावे और पानी उबलने लगे तो फ्लास्क की गर्दन को कार्क लगाकर बन्द करदें और फ्लास्क को ठण्डा होने देवें। जब काफी ठंडा, 40 या 50°C तक ठंडा हो जावे तो फ्लास्क को उल्टाकर Stand में क्लम्प (Clamp) के द्वारा कस दें और फिर पानी फ्लास्क पर स्पंज द्वारा जैसा कि यहाँ चित्र मे बताया गया है, डालें, पानी डालने से फ्लास्क की वाष्प ठण्डी होकर पानी बन जावेगी तथा दबाव कम हो जावेगा और आप देखेंगे कि पानी फिर से उबलने लगेगा। अतः दबाव कम करने के पानी का क्वथनांक कम हो जाता है। चूंकि अधिक ऊंचाई पर हवा का दबाव कम हो जाता है, इस कारण ऊंचे स्थानों पर पानी का क्वथनांक कम होता है।

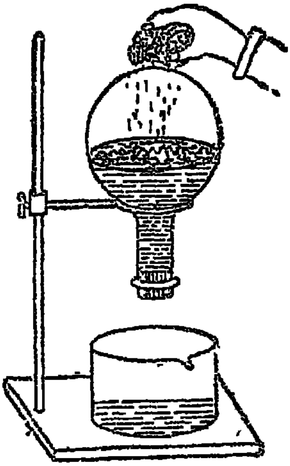

अशुद्धियों का क्वथनाक और द्रवणांक पर प्रभाव (Effect of impurity on boiling and melting points):—किसी द्रव मे कुछ वस्तु मिलाने से उस वस्तु का क्वथनाक बढ जाता है तथा ठोस का द्रवणाक और द्रव का हिमांक कम हो जाता है।

प्रयोग—एक बीकर में पानी लें, आप जानते हैं कि पानी का क्वथनांक 100°C होता है और उसमे कुछ चीनी घोलें और फिर घोल का क्वथनांक मालूम करे, आप देखेंगे कि चीनी का घोल 100°C से ऊंचे तापक्रम पर उबलेगा।

प्रयोग.—आप जानते है कि बर्फ का द्रवणांक और पानी का हिमांक 0° है परन्तु पानी मे चीनी डालने से चीनी का घोल 0°C पर नही जमता और तापक्रम 0°C से नीचे चला जाता है।

वाष्पीकरण से ठंड का प्रतीत होना—जब द्रव गैस बनती है तो गुप्त ताप लेती है। यदि ताप बाहर से नही पहुचाया जाये तो ताप आस-पास की वस्तुओ से लेगा, जिससे ठड प्रतीत होती है। इस प्रकार वाष्पीकरण मे भी ताप द्रव से लिया जाता है और द्रव ठडा हो जाता है। स्प्रीट की बूंद हथेली पर डालने से तुरन्त उड़ जाता है और हथेली ठंडी हो जाती है, यदि वास्पीकरण तेजी से हो तो पानी अत्यन्त शीत के कारण बर्फ बन जाता है।

असवर्ण (Distilation):-उबलना तथा जमना दोनो क्रियाये जब साथ साथ काम मे लाई जाती है तो मिली हुई रीति को (Distilation) या टपकाव कहते है।

प्रयोग:—एक फ्लास्क ले और उसमे गन्दा पानी जो साफ करने के लिए हो भरे तथा इस फ्लास्क मे एक छिद्र वाला कार्क लगा कर छिद्र मे निकास नली लगावे। इस निकास नली को पानी वाले बर्तन (Receiver) से जोड दे। निकास नली के चारों तरफ एक दूसरी बड़ी नली लगानी जरूरी है, जिसमे दो सुराख एक ऊपर और दूसरा नीचे की तरफ होना चाहिए। नीचे वाले सुराख को ठडा पानी भेजना चाहिए जो ऊपर से निकल जावेगा। फ्लास्क को तिपाई पर रखकर गर्म करे, इससे गन्दे पानी की भाप बनकर वाष्प निकास नली में ठंडी होकर वापिस स्वच्छ पानी बन जावेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) किसी वस्तु का द्रवणाक कैसे ज्ञात करेंगे, चित्र खीच कर बतावे ?

(2) दबाव और अशुद्धियो का द्रवणाक तथा क्वथनाक पर क्या प्रभाव होता है ?

(3) गन्दे पानी को पीने के योग्य पानी, आसवर्ण विधि द्वारा कैसे प्राप्त करेंगे।

सोलहवाँ अध्याय

आपेक्षित ताप

कैलोरी मीटरी :—किसी वस्तु को गर्म करने से गर्म और ठडी करने से ठण्डी हो जाती है, अर्थात् जिस समय किसी भी वस्तु की दशा मे परिवर्तन होता है वह गर्मी लेती है या देती है, पानी को भाप बनाने मे काफी मात्रा मे ताप देना पड़ता है भाप जब ठण्डी होकर पानी बनती है तो काफी मात्रा मे गर्मी देती है, इस ताप के लेने व देने को मापा जा सकता है और इस मापने को कैलोरी मीटर कहते है।

ताप की मात्रा की इकाई:—प्रत्येक वस्तु को मापने के लिए इकाई की आवश्यकता होती है, वैसे लम्बाई को सैन्टीमीटर से मापा जाता है, भार को ग्राम से मापा जाता है। उसी प्रकार ताप के लिए भी एक इकाई की आवश्यकता होती है। ताप की मात्रा की इकाई-ताप की उस मात्रा को कहते है जो कि पानी की इकाई मात्रा का तापक्रम 1°C बढ़ा देती है अर्थात् पानी की एक ग्राम मात्रा का तापक्रम यदि 1°C बढाया जावे तो जितने ताप की आवश्यकता होगी उसे एक एकाई ताप अथवा कैलोरी कहते है।

तापग्राहिता (Thermal capacity).—ताप की वह मात्रा जो वस्तु के तापक्रम को 1°C बढाने के लिए आवश्यक होती है, तापग्राहिता कहलाती है। उदाहरण के लिए दो वस्तुएं बराबर मात्रा की ले और मानले कि एक वस्तु 5 gm लोहा और दूसरी चांदी है। दोनों एक ही समय तक गरम करके दो एक से ही बीकरो मे जिनमे पानी बराबर मात्रा मे हो, अलग अलग डाल दे, आप देखेंगे कि दोनो बीकरो का पानी भिन्न भिन्न तापक्रम तक गर्म होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि समान मात्रा वाली वस्तुएं एक ही समय तक गर्म होने पर भी भिन्न भिन्न ताप लेती है तथा ठण्डा होने से भिन्न भिन्न ताप देती है।

ताप की वह मात्रा जो वस्तु के तापक्रम 1°C बढाने के लिए आवश्यक होती है, तापग्राहिता (Thermal Capacity) कहते है।

आपेक्षित ताप (Specific Heat):—किसी वस्तु के तापक्रम को 1°C बढाने के लिए जितने ताप की आवश्यकता होती है और उसके समान मात्रा के पानी को 1° गर्म करने में जितने ताप की आवश्यकता होती उन दोनों तापो की मात्राओ के अनुपात को उस ताप का आपेक्षित ताप कहते है।

मानले, हम M gm. वाली वस्तु को T°C तक गर्म करना चाहते है, यदि उसका आपेक्षित ताप S है तो उसको $M \times S \times T$ ताप की मात्रा की आवश्यकता

होगी। इसी प्रकार उतने भार वाली वही वस्तु उतने ही तापक्रम तक ठंडा होने पर $M \times S \times T$ ताप देगी। पदार्थ की भांति गर्मी भी नष्ट नहीं होती, जितनी गर्म वस्तु ताप देती है उतना ही ताप ठंडी वस्तु ले लेती है।

उदाहरण 1 :—500 gm लोहे को 52°C तक गर्म करने से कितने से कितने ताप की मात्रा की आवश्यकता होगी—

लोहे का आपेक्षित ताप .114 है।

M=500, S=.114, T=25°C

ताप की मात्रा $M \times S \times T$ Calories

$500 \times 114 \times 25 = 1425$

1425 Caories Ans.

उदाहरण 2 –50 gm. जिसका तापक्रम 20°C है, 100 gm, वाले पानी जिसका तापक्रम 50°C है, मिलाया जावे तो मिश्रण का तापक्रम बतावे, पानी का आपेक्षित ताप 1 होता है।

मानले, मिश्रण का तापक्रम T°C है

ताप दिया=और ताप लिया

$M \times S \times T = M \times S \times T$

$100\ (50-T) = 50\ (T-20)$

$5000 - 100T = 50T - 1000$

$150\ T = 5000 + 1000$

$150\ T = 6000$

$T = 40°C$ Ans

उदाहरण 3:—40 gm लोहे का टुकड़ा जिसका ताप 80° है, 20°C तापक्रम के 50 gm पानी मे डाला जाता है, हिलाने पर मिश्रण का तापक्रम 25°C हो जाता है, तो लोहे का आपेक्षित ताप क्या है ?

ताप दिया=ताप लिया

$M \times S \times T = M \times S \times T$

$40 \times 5\ (80-25) = 50 \times 1 \times\ (25-5)$

$40 \times 5 \times 55 = 50 \times 1 \times 5$

$$5 = \frac{50 \times 5}{40 \times 55} = {}^{\circ}112 \text{ Ans.}$$

कैलोरीमीटर:— यह वह यन्त्र है जिसकी सहायता से ताप की मात्रा मापी जा सकती है, जैसा कि नाम से विदित है, यह लगभग 250 c.c आयतन

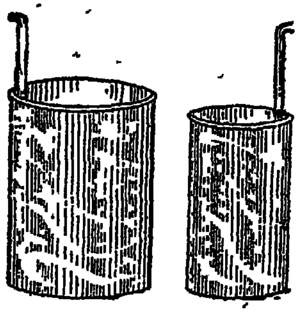

का बेलनाकार तांबे का बर्तन होता है। इसमें चलाने के लिए एक मथनी (Stires) भी रखी रहती है जो तांबे की ही बनी होती है इसको न निकलने देने के लिए एक दूसरे तांबे के बड़े बर्तन मे रख देते है और तांबे के बड़े बर्तन को लकडी के बीच लकडी का बुरादा भर देते है जिससे कि इसके द्वारा ताप का वातावरण नहीं हो सके।

पानी का समतुल्य जल (Water equivalent of Calorimeter) कैलोरीमीटर का समतुल्य जल ग्राम मे दी हुई वह पानी की मात्रा है जिसकी ताप-ग्राहिता कैलोरीमीटर के ताप-समावेशन के बराबर रहता है। जैसे कैलोरीमीटर का समतुल्य जल जिसका भार M gm है, जिसका आपेक्षित ताप S है तो उसे $1^{\circ}C$ तक गर्म करने के लिए $M \times S$ कैलोरी ताप की आवश्यकता होगी और इस प्रकार कैलोरीमीटर की ताप ग्राहिता $M \times S$ होगी। $M \times S$ कैलोरी की आवश्यकता जितने भी पानी को होगी वह पानी का भार कैलोरीमीटर का समतुल्य जल कहलावेगा। यदि हम M gm पानी को 1° तक गर्म करे और अगर $M \times S$ की कैलोरी आवश्यकता उतनी होती है तो पानी की ताप ग्राहिता $M \times S$ होगी और चूंकि ताप ग्राहिता कैलोरीमीटर की है इसलिए कैलोरीमीटर का समतुल्य ग्राम $M \times S$ हुआ।

कैलोरी मीटर को तोला, माना वह M gm है। ठंडा पानी भर कर फिर तोलें, माना कि पानी और कैलोरी मीटर की मात्रा M_1 gm है। ठण्डे पानी का तापक्रम $T^{\circ}C$ है, बीकर में कुछ पानी लेकर $T^{\circ}C$ तक गर्म करें।

कैलोरीमीटर मे गर्म पानी डालें, माना कि वह M_2 gm है, कैलोरी मीटर का समतुल्य जल W है, तो :

गर्म पानी द्वारा दिये गये ताप की मात्रा $= M_2 (t_1 - Q) \times 1$

ठण्डे पानी की ली हुई ताप की मात्रा $= M_1 (T-t) \times 1$

कैलोरीमीटर द्वारा लिये हुए ताप की मात्रा $= W (T-t)$

$$M (t_1 - T)) \times 1 = M_1 (T-t) \times 1 + W (T-t)$$

$$W = \frac{M_2 (t_1 - T) - M_2 (T-t)}{(T-t)}$$

उदाहरण—नीचे दी हुई संख्या से कैलोरी मीटर का समतुल्य जल ज्ञात करे
कैलोरीमीटर का तोल gm कैलोरीमीटर + ठण्डे पानी का तोल 80 gm.
ठण्डे पानी का ताप क्रम 30°C
गर्म पानी का ताप क्रम 80°C
मिश्रण का ताप क्रम 50°C
कैलोरी मीटर ठण्डे पानी और गर्म पानी का तोल 105 gm. हों
कैलोरी मीटर के ठंडे पानी का तोल =80−45=35 gm.
गर्म पानी का तोल =105-80=25 gm.

$$25\times(80-50)=35(50-30)+w(50-30)$$
$$25\times30=35\times20+w\times20$$
$$750=700+w\times20$$
$$750-700+w\times20$$
$$750-700=20\,w$$
$$\frac{750-700}{20}=w$$
$$2\tfrac{1}{2}=w$$
$$w=2\tfrac{1}{2}\text{ gm. Ans.}$$

किसी धातु का आपेक्षित ताप ज्ञात करना :—कैलोरीमीटर को तोलें। कैलोरीमीटर में ठण्डा पानी भरकर उसका तोल और ताप क्रम ज्ञात करें, धातु के

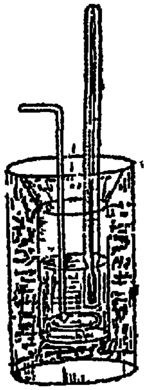

टुकड़े को तोलें, उसको किसी भी तापक्रम तक गर्म करें और गर्म धातु को तथा ठण्डे पानी को कैलोरी मीटर मे डालदें, ठण्डे पानी को हिलाकर मिश्रण का ताप क्रम निकालें।

1 धातू के टुकड़े का तोल M gm., कैलोरीमीटर का तोल M gm, ठण्ढे पानी का तोल M gm., ठण्डे पानी का ताप क्रम $t^{o}c$ और गर्म धातु का तापक्रम $t^{o}c$, मिश्रण का ताप क्रम $t^{v}c$, तांबे के कैलोरीमीटर का आपेक्षित ताप ·095 है और यादि 5 धातु के टुकड़े का आपेक्षित ताप हो तो:—

$$M(t^{o}_{1}-T)\times S=M(T-t^{o})+M_{1}(T-t)\times\cdot095$$

$$S=\frac{M(T^{o}-t_{1})+M_{1}(T^{o}-t^{o})\times\cdot095}{M(t_{1}^{o}-T^{o})}$$

उदाहरण:—एक शीशे का टुकडा जिसका भार 300 gm. है। 100°C तक गर्म करके 1·85°C तापक्रम ताप क्रम के 54 gm. पानी में रखा गया। कैलोरीमीटर का वजन 27·5 gm. है, यदि मिश्रण का तापक्रम 30°C है और ताँबे का आपेक्षित ताप ·095 है तो शीशे का आपेक्षित ताप क्या है ?

शीशे के गोले द्वारा दिया गया ताप = 303 (100—30) × S Cal.

ठण्डे पानी द्वारा लिया हुआ ताप = 54 (30—18.5) Cal.

कैलोरीमीटर के द्वारा लिया हुआ ताप = 27·5 (30—18·5) × ·095

$$300\ (100-30) \times S = 54\ (30-18{\cdot}5) + 27{\cdot}5(30-18{\cdot}5) \times {\cdot}095$$

$$21000 \times S = 621 + 30{\cdot}04$$

$$S = \frac{651{\cdot}04}{51000}$$

$$= {\cdot}31 \text{ Ans.}$$

उदाहरण:—0·1 आपेक्षित ताप वाले एक धातु को जिसका भार 150 gm है, उसको 100°C तक गर्म करके 15°C के 200 ग्राम तारपीन मे डाल दिया जाता है। मिश्रण का तापक्रम 24°C है तो तारपीन का आपेक्षित ताप क्या है ?

मानलें कि तारपीन का आपेक्षित ताप S है, कैलोरीमीटर का समतुल्य जल 5 gm है।

धातु के गोले का दिया हुआ ताप=150 (100—25) × ·1 Cal

तारपीन के द्वारा लिया हुआ ताप=250 (25—15) × S Cal.

कैलोरी मीटर द्वारा लिया हुआ ताप=5 (25—5) Cal.

$$150\ (100-25) \times {\cdot}1 = 250\ (25-15) + S + 5\ (25-15)$$

$$1125 = 2500\ S + 50$$

$$5 = \frac{1125-50}{25000} = {\cdot}43 \text{ Ans.}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) ताप की इकाई क्या है ? ताप ग्राहिता किसको कहते है ? स्पष्ट करके समझाइये।

(2) किसी ठोस वस्तु का आपेक्षित ताप किस प्रकार ज्ञात करेंगे ? आपेक्षित ताप की परिभाषा क्या है ?

(3) कैलोरीमीटर का समतुल्य जल किस प्रकार ज्ञात करेंगे ? समतुल्य जल किसे कहते है ?

सतरहवाँ अध्याय

ताप का परिचालन

यह तो आपने पिछले अध्याय मे ही पढ लिया कि ताप सदैव ही ऊंचे तापक्रम से (गर्म वस्तु) नीचे तापक्रम (ठंडी वस्तु) की ओर जाता है। ताप का प्रकृति मे तीन प्रकार से परिचालन होता है। यह तीन विधिया (1) (Conduction) सचालन (2) (Convection) सवाहन और (3) (Radiatian) विकिरण हैं। संचालन (Conduction), सवाहन (Convection), विकिरण (Radiation) विधियो को भली प्रकार समझने के लिए पहले निम्न उदाहरण का समझना आवश्यक होगा:—

उदाहरण:—यदि एक आमो के ढेर को किसी दूसरी जगह लेजाना है तो हम आमो के ढेर को तीन प्रकार से लेजा सकते हैं।

(1) लडकों को एक पक्ति मे खडा करके आम के ढेर के पास वाला लडका आम को उठा कर पक्ति मे खडे हुए पास वाले लडके को बिना चले हुए दे, और दूसरा तीसरे को व तीसरा चौथे को देता रहे और यही क्रम यदि चलता रहे तो आम का ढेर एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाया जा सकता है, ठीक इसी प्रकार सचालन विधि होती है।

(2) लडका स्वयं आमो को उठा कर दूसरी जगह पहुचा दे, इसमे लडके को आम उठा कर स्वयं जाना पडता है; इसी प्रकार सवाहन होता है।

(3) यदि आमों के ढेर के पास एक लडका और जिस स्थान पर पहुंचना है वहा भी एक लडका अर्थात् दोनो जगह दो लडके खडे करदे और पहला लडका आमों को उठाकर एक एक करके दूसरे लडके के पास फैंके। इस रीति मे लड़के को स्वय चलना नही पड़ता, विकिरण ठीक इसी प्रकार होता है।

(1) संचालन प्रयोग:—एक धातु की छड लेकर उसका एक सिरा आग मे रखें, आप देखेगे कि अग्नि वाला छड का सिरा गर्म हो जावेगा जिसको आप स्पर्श करके ज्ञात कर सकते है। परन्तु छड़ का दूसरा सिरा अभी गर्म नही हुआ है, थोडी देर तक गर्म करने पर, आपके हाथ वाला छड़ का सिरा भी गर्म होने लगता है और कुछ अधिक समय तक गर्म करने पर हाथ वाले छड के सिरो को पकडना भी कठिन हो जावेगा।

छड का सिरा अग्नि में रखने पर गर्म होता है और गर्म कण बराबर वाले ठण्डे कणो को ताप देते रहते है। इस प्रकार ताप एक सिरे से दूसरे सिरे तक गर्म कण एक के पश्चात् दूसरे ठण्डे कण को ताप देता हुआ दूसरे सिरे तक पहुंच जाता है, परन्तु कण स्वयं नहीं चलता, जैसा कि उदाहरण पहले मे समझाया गया है। ताप की इस परिचालन विधि को **संचालन** विधि कहते है।

जिस धातु मे संचालन होता है उसे संचालक (Conductor) कहते हैं। जो वस्तु अपने मे से ताप को शीघ्रता से जाने देती है उत्तम संचालक कहलाती (Good Conductor) है और जिस वस्तु मे से ताप नही जा सकता वह अधम संचालक (Bad Conductor) कहलाती है।

भिन्न-भिन्न धातुओं की संचालन शक्ति की तुलना करना (Conducting Power) इन्जन होज प्रयोग:–यह टीन का बना हुआ एक आयताकार बर्तन होता है। इसकी एक दिवार मे बहुत से छिद्र होते है और उन छिद्रो मे भिन्न धातु की छडे होती हैं। उन छडो का थोडा-थोडा भाग अन्दर होता है। मानलो छडें लकडी, चादी, ताँबा, जस्ता व लोहे की बनी हैं, तो

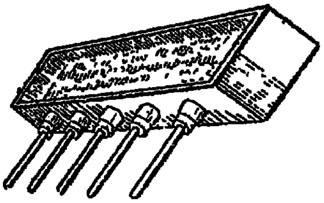

इन छडों के बाहरी भाग पर मोम पिघला कर चढादे, अब इस आयताकार बर्तन मे उबलता हुआ पानी भरे। इन छडो मे ताप का संचालन होगा और छडें गर्म हो जावेंगी तथा मोम का पिघलना आरम्भ हो जावेगा। आप देखेंगे कि मोम भिन्न भिन्न छड़ो पर भिन्न भिन्न दूरी तक पिघलता है, परन्तु लकड़ी की छड़ पर मोम सबसे कम पिघलता है। इसका कारण यह हुआ कि चादी अति उत्तम और तांबा लोहा व जस्ता ताप के उत्तम सचालक है, जबकि लकड़ी अधम सचालक है। आपने प्रायः घरो के बर्तनो पर लकड़ी के मुट्ठे लगे हुए देखे होगे। क्योकि वे अधम संचालक (Bad Conductor) होने के कारण गर्म नही होते।

जब किसी वस्तु को गर्म करते है तो उसके किसी भाग का तापक्रम बढ़ना न केवल उसकी संचालन शक्ति पर ही निर्भर है बल्कि उसके आपेक्षित ताप (Specific Heat) पर निर्भर है। उपरोक्त प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि धातु ताप के अच्छे सचालक हैं और कॉच व लकड़ी ताप के अधम संचालक है।

पानी ताप का अधम परिचालक है—यह हम प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकते है। बर्फ के एक टुकड़े को तार से लपेट कर एक परख नली मे पानी रख दे, भारी होने के कारण बर्फ पानी के पैदे मे बैठ जायेगी। अब परख नली मे पानी की

सतह को गर्म करने पर पानी उबलने लगेगा, परन्तु बर्फ नही पिघलेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि पानी ताप का अधम परिचालक है।

कागज अधम परिचालक है:—एक ऐसा बेलन जो आधा लकड़ी का तथा आधा पीतल का बना हुआ हो, उसके चारो तरफ कागज लपेट दें। बेलन को जोड़ के स्थान पर बर्नर की (Flame) ज्वाला मे रख दें, आप देखेंगे कि लकड़ी पर चढ़ा हुआ कागज तुरन्त झुलस जावेगा जबकि पीतल पर चढ़े हुए कागज पर कोई प्रभाव नही पड़ता, कारण कि पीतल लकड़ी की अपेक्षा उत्तम परिचालक होने के कारण कागज के ताप को लेकर दूसरे सिरे पर भेज देता है।

झुलसने का तापक्रम (Ignition Point):—बुन्सन बर्नर में एक दियासलाई रखें, वह तुरन्त नही जलती, बल्कि जलने में कुछ समय लेती है। कोई वस्तु तब तक नहीं जलती जब तक कि उसका तापक्रम उस तापक्रम तक नही पहुंच जावे जिसको (Ignition Point) या झुलसने का तापक्रम कहते हैं। अतः (Ignition Point) झुलसने का तापक्रम वह तापक्रम है जिस तापक्रम पर वह जलने लगती है।

प्रयोग :—एक बारीक ज्वाला को बुन्सन बर्नर पर नीचा करके देख ले। जाली (Flame) के नीचे फैल जाती है और जाली के ऊपर नही आती, कारण कि जाली गर्मी को लेकर इधर-उधर फैला देती है और तापक्रम जाली के ऊपर आने वाली गैस के जलने वाले तापक्रम तक नही पहुचता इस कारण बर्नर के ऊपर गैस नही जलती। अब बर्नर बुझादे और गैस को दुबारा निकलने दे। जाली को बर्नर से जरा सा ऊपर रखें और जाली के ऊपर एक जलती हुई दियासलाई ले जावें आप देखेंगे कि जाली के ऊपर गैस जलने लगती है और थोड़ी देर नीचे की गैस नही जलती, कारण कि जाली ताप को हवा मे इधर-उधर फैला देती है। गैस के जलने का तापक्रम नही आ पाता, परन्तु कुछ समय पश्चात जाली के नीचे का तापक्रम गैस जलने के तापक्रम तक आ जाता है और गैस जलने लगती है जैसा कि ऊपर चित्र मे बताया गया है।

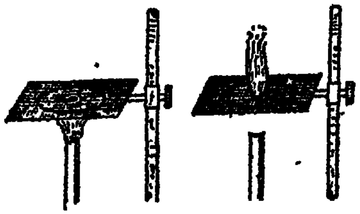

डेवी का सैफ्टी लैम्प (Devy's safty Lamp):—यह एक साधारण तेल की लैम्प है जिसकी लौ चारों तरफ से एक लोहे की बारीक जाली से घिरी रहती है

जो ऊपर की तरफ एक लोहे की प्लेट से ढकी रहती है और खान से निकलने वाली गैस अन्दर जाकर नीली लौ के साथ जलने लगती है, परन्तु लौ बाहर नही आने पाती । जब लौ अधिक मात्रा में जलने लगती है, खान के मजदूर खान से बाहर आ जाते हैं, क्योंकि खान में गैस की मात्रा अधिक हो जाती है और खान में अग्नि लगने का भय रहता है ।

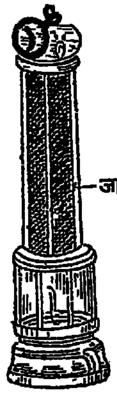

ताप के अधम सँचालकों के "दैनिक जीवन में प्रयोग"

जाडे के दिनों में हम गर्म कपडे इसलिए पहिनते हैं कि हमारे शरीर को वे गर्म रख सकें । गर्म कपड़े शरीर को गर्म इसलिये ही नही रखते हैं कि वे गर्म है परन्तु वह ताप के अधम संचालक है और बाहर की गर्मी को अन्दर तथा अन्दर की गर्मी को बाहर नही आने-जाने देते । बहुधा बर्फ को हम बुरादे में लपेट कर रखते हैं ताकि बर्फ पिघल न जावे । प्राय: ठण्डे देशों में खिडकियां और दरवाजे दोहरे बनाये जाते हैं ताकि दोनों पलड़ों के अन्दर की हवा अधम संचालक का कार्य करे और कमरे की गर्मी को बाहर की सर्दी को, अन्दर नही आने दे ।

संवाहन (Convection):—संवाहन विधि को पिछले आमों के उदाहरण नं० 2 को पढकर भली-भांति समझा जा सकता है । उदाहरण नं० 2 मे लड़का स्वयं चल कर जाता है । इसी प्रकार ताप को वस्तु के कण स्वयं चलकर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाते है ।

प्रयोग.—एक फ्लास्क में थोड़ा पानी भर लें और उसमें (Potassium Permanganate) लाल दवा के कण डाल दे । इस फ्लास्क को स्टेण्ड पर रख कर बुनबुन बर्नर द्वारा गर्म करे पानी गर्म हो जावे तो आप देखेंगे कि पानी की लाल लाल धारा उठ कर ऊपर सीधी जाती है और फिर वह लाल धारा वापिस फ्लास्क की दीवार के सहारे-सहारे नीचे वापिस आ जाती है, जैसा कि यहां चित्र में तीर के चिन्हो से दर्शाया गया है। कारण यह है कि पानी गर्म होकर हलका हो जाता है और ऊपर उठता है । ऊपर के भागों मे विभाजित होकर फ्लास्क के सहारे ठण्डा पानी ऊपर से नीचे आता है यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है और सब पानी लाल तथा गर्म हो जाता है पानी के नीचे-ऊपर जाने वाली धाराओं को संवाहन धारा कहते हैं ।

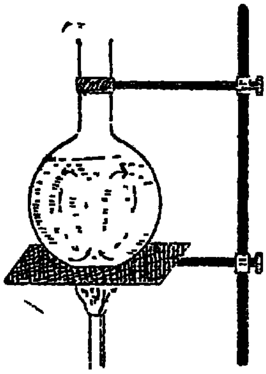

हवा में वहन (Convection in Air)—पृथ्वी सूर्य से ताप लेकर गर्म हो जाती है, पृथ्वी के निकट की हवा गर्म होकर फैलती है और हल्की होने के कारण ऊपर उठती है और उठी हुई हवा का स्थान आस-पास की ठण्डी हवा ले लेती है, यह क्रिया निरन्तर होती रहती है, इस कारण हवा की धारायें बहने लगती है। जब पृथ्वी अत्यन्त गर्म हो जाती है तो हवा तुरन्त गर्म होकर ऊपर उठ जाती है और ठण्डी हवा तेजी के साथ आ जाती है जिससे तूफान आता है।

कमरों में हवा का आवागमन:—मनुष्य द्वारा श्वास क्रिया मे छोडी हुई हवा हल्की होती है तथा ऊपर उठ जाती है और उसके स्थान पर शुद्ध हवा दरवाजे व खिड़कियों से आ जाती है। इस कारण मकानो मे ऊपर रोशनदान और नीचे की तरफ खिडकियो का होना अनिवार्य है।

खानों में हवा के आने-जाने का प्रबन्ध:—एक बक्स लें जिसकी छत मे दो सूराख हो, बक्स के सामने की दीवार कांच की होनी चाहिए ताकि दिखाई दे सकें। बक्स के छेद के नीचे मोमबत्ती जलावे, आप देखेंगे कि हवा गर्म होकर बत्ती के ठीक ऊपर वाले छिद्र से ऊपर निकल जाती है और शुद्ध हवा दूसरे छिद्र मे से बक्स मे आ जाता है। ठीक इसी सिद्धान्त पर खान मे दो रास्ते आने-जाने के बनाये जाते है। जाने वाले रास्ते पर अग्नि सुलगा दी जाती है वहा की हवा गर्म होकर बाहर निकल जाती है तथा शुद्ध हवा आने वाले रास्ते से अन्दर आ जाती है।

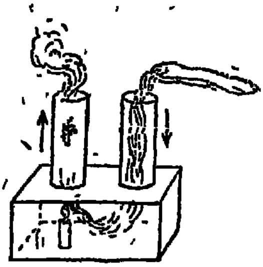

समुद्री हवायें :—(Lend and Sea breezes)—आपने भूगोल मे भू और समुद्री हवाओं के विषय मे पढा होगा और यह धारायें समुद्र के किनारो पर पानी और पृथ्वी के कम और अधिक गर्म होने से चलती हैं। दिन मे पृथ्वी पानी की अपेक्षा ज्यादा गर्म हो जाती है और पृथ्वी की हवा गर्म होकर ऊपर उठ जाती है। ऊपर उठी हुई हवा का स्थान समुद्र की ठण्डी हवा ले लेती है, इस हवा को सामुद्रिक हवा(Sea breeze) कहते हैं। दोपहर के बाद यह बहुत तेज हो जाती है।

चूंकि पानी पृथ्वी की अपेक्षा देर मे गर्म होता है और देर ही से ठण्डा होता है। रात्रि मे पृथ्वी जल्दी ठण्डी हो जाती है, पृथ्वी के ऊपर की ठण्डी हवा समुद्र की हवा का स्थान ले लेती है। क्योकि समुद्र की हवा गर्म होकर ऊपर उठ जाती है, इसको (Land breezes) पृथ्वी से समुद्र की तरफ बहने वाली हवाये कहते है। यह आधीरात के बाद तेज़ी से चलती है।

विकिरण विधि (Radiation) :—इस विधि को हम भली प्रकार आम के उदाहरण नं० ३ से समझ सकते है जिस प्रकार लडका आम को फैंक कर दूसरे स्थान पर सीधा पहुंच सकता है, जब कि वह स्वयं नही चलता, ठीक उसी प्रकार जब ताप एक स्थान से दूसरी जगह सीधी रेखाओ मे चलता है तो रास्ते मे ताप का कुछ प्रभाव नही मालूम होता, इसी विधि को विकिरण विधि कहते हैं।

प्रयोग:—सूर्य की किरणें उन्नत्तोदर ताल में से भेजी जाती है, ताल को सूर्य के सामने आगे पीछे हटाने से किरणें एक स्थान पर इकट्ठी हो जाती हैं, यदि इकट्ठी की हुई किरणों के स्थान पर काला कागज रखदें तो कागज जलने लगता है, परन्तु ताल गर्म नहीं होता।

प्रयोग:—एक भट्ठी के सामने खड़े रहें तो हमको गर्मी प्रतीत होगी। यदि एक लकड़ी का टुकडा या अखबार हमारे बीच में रखले तो हमें गर्मी प्रतीत नहीं होगी और बीच की हवा गर्म नही होगी। इससे स्पष्ट है कि विकिरण में ताप सीधा तेज तथा बीच की वस्तुओं पर बगैर गर्म किये चलता है। ताप विकिरण में ताप के चलने के लिए माध्यम की आवश्यकता नही होती।

विकिरण विधि से हम सूर्य से ताप पाते है। ग्रीष्म काल मे गर्मी से बचने के लिए छाता लगाते है। यदि ताप सूर्य से सचालन विधि से आता तो छाता गर्म हो जाता और हम गर्मी प्रतीत करते परन्तु ताप सूर्य से विकिरण द्वारा आता है। क्योकि छाता गर्म नही होने पाता, धूप से बचने के लिए पेडो की छाया मे खडे हो जाते है परन्तु पेड़ गर्म नही हो पाते।

उदाहरण:—दो बीकर एक समान के लेवे, एक बीकर की बाहरी दीवारे काले रग से रंग ले, दोनो बीकरो मे उबलता पानी बराबर बराबर मात्रा मे डाले अब ठण्डा होने दे, ताप दोनो बीकरो का देखते रहे। काले बीकर का पानी सफेद बीकर की अपेक्षा जल्दी ठण्डा हो जावेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि काली वस्तु गर्मी जल्दी निकाल देती है और सफेद कम। यह वस्तु जो गर्मी जल्दी निकाल देती हैं (Good Radiator) उत्तम विकिरक कहलाती है।

वस्तुओं की शोषण शक्ति :—जैसे वस्तुओ की विकिरण शक्ति मे अन्तर है, उसी प्रकार वस्तुओ की शोषण शक्ति मे भी अन्तर होता है। उपरोक्त उदाहरण से आपने यह अनुमान लगाया होगा कि सफेद वस्तु अधिक देर तक गर्मी रख सकती है। इसी सिद्धान्त पर चाय पीने के प्याले चमकीले और सफेद बनाये जाते है ताकि प्याले गर्मी रख सके और चाय ज्यादा देर तक गर्म रह सके। प्राय: अच्छे विकिरक (Good Radiators), खराब शोषक (Bad Absorbers) होते हैं तथा बुरे विकिरक (Bad Radiators), अच्छे शोपक। (Good Absorbers)।

थर्मस फ्लास्क (Thermos flask) :—फ्लास्क गर्म वस्तु को गर्म और ठण्डी को ठण्डी बनाये रखता है, यह एक दोहरी दीवारों की कांच की बोतल है, इस शीशी की दोनों दीवारों के भीतरी भाग पर चांदी की कलई चढ़ा देते हैं तथा दोनो दिवारों के बीच की हवा भी निकाल देते है शून्य स्थान (Vacuum) और चमकदार सतह होने के कारण शीशी में रखी हुई वस्तु की गर्मी या शीतल वस्तु की ठण्ड बाहर नही जा सकती और बाहर की गर्मी या ठण्ड अन्दर नहीं आने पाती है। चमकदार सतह ताप को परावर्तित कर देती है। शून्य (Vacuum) ताप का कुचालक है और कार्क भी ताप के कुचालक हैं। अतएव ताप संचालन, संवाहन और विकिरण इन तीनों में से किसी के भी कारण बाहर नही जा पाता हैं और थर्मस फ्लास्क मे रखी हुई वस्तु के तापक्रम में कोई अन्तर नही आ पाता। इस कारण यह गर्म वस्तु को गरम तथा ठण्डी वस्तु को ठण्डी बनाये रखने के लिए अति हितकारी सिद्ध हुआ है। इस दोहरी चमकदार शीशी को एक टीन के बर्तन में जिसको केस कहते है, रखते हैं ताकि शीशी की रक्षा हो सके और हानि न होने पावे। शीशी के मुँह पर कार्क लगाकर ढक्कन लगा देते हैं।

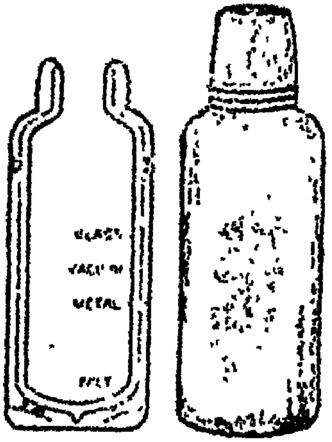

चित्र संख्या

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पानी को सतह पर गर्म करने की अपेक्षा नीचे से गर्म करने पर जल्दी गर्म क्यो हो जाता है ?
2. कागज के बक्स में पानी उबालना क्यो सम्भव है ?
3. गर्म कपडों से क्या तात्पर्य है और यह केवल शरीर को गर्म और बर्फ को ठण्डा रखता है, क्यो ?
4. धातुओं की संचालन शक्ति की तुलना प्रयोग द्वारा बतावे।
5. संचालन, संवाहन और विकिरण किसको कहते हे और उसमे आपस मे क्या अन्तर है ? प्रयोग द्वारा सिद्ध करे।
6. सिद्ध करें कि भिन्न भिन्न धातुओं की संचालन शक्ति भिन्न भिन्न होती है और यह भी सिद्ध करे कि पानी और कागज ताप के अधम परिचालक है।

अठाहरवां अध्याय

प्रकाश

प्रकाश क्या है ? (What is light ?) :-इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है; जितना ही इस समस्या को हल करना चाहते है उतना ही यह प्रश्न जटिल और कठिन मालूम पड़ता है । जब हम कमरे में होते हैं तो अपने चारों ओर बहुत सी चीजे देखते है । परन्तु नेत्रों को बन्द कर लेने से हमें कोई वस्तु नहीं दीखती । कमरे के सब दरवाजे व खिड़कियां बन्द कर दे तो भी हम कमरे की किसी वस्तु को देख नही सकते । इससे स्पष्ट है कि कमरा बन्द करने से पहले एक ऐसी शक्ति कमरे में थी जो हमे वस्तु का ज्ञान कराती थी । अब यदि कमरे मे सूर्य का प्रकाश आने दें या एक दियासलाई या लैम्प जलाये तो कमरे की सब वस्तुएं दिखाई देने लगती है। सूर्य का प्रकाश, दियासलाई का प्रकाश या लैम्प की ज्वाला मे एक शक्ति है जिसकी सहायता से हम चीजे देखते हैं । इस शक्ति को जो प्रकाश का ज्ञान कराए प्रकाश कहते है ।

जब हम धूप में खड़े होते है और किसी अखबार को अपने चेहरे और सूर्य के बीच मे कर ले तो हम केवल ताप से ही नही बचते वरन् प्रकाश भी छिन्न-भिन्न हो जाता है । इससे स्पष्ट है कि ताप और प्रकाश में घनिष्ट सम्बन्ध है । अब यह भली प्रकार मान लिया गया है कि ताप और प्रकाश दोनो एक ही प्रकार के विकिरण (Radiations) है । ऊंचे ताप पर दोनों साथ साथ चलते है ।

यदि एक बन्द कमरे में जिसमे प्रकाश न हो एक लोहे के टुकड़े को गरम करें तो जैसे ही लोहे के टुकड़े का तापक्रम बढ़ता है लोहे से ताप का विकिरण होता है । अधिक तापक्रम बढ़ने पर विकिरण अधिक हो जाता है, परन्तु लोहे का टुकड़ा दिखलाई नही देता ।

यदि तापक्रम 500°C से ऊँचा कर दिया जाये तो ताप के साथ साथ प्रकाश का भी विकिरण होता है । यदि लोहे के टुकडे को 13000° C तक गर्म किया जाये तो प्रकाश तेज और सफेद हो जाता है, अतः प्रकाश भी ताप की तरह एक शक्ति है जो वस्तु से चलकर आँख पर प्रभाव डालती है । विज्ञान की वह शाखा जो प्रकाश के गुणो का वर्णन करते हैं आप्टिक्स कहलाती है ।

प्रकाश के मूल :—(Sources of Light) चूंकि प्रकाश और ताप मे घनिष्ट सम्बन्ध है । इसलिए दोनो की उत्पत्ति का एक ही कारण है । ताप और

प्रकाश का अपना कोई रूप नही होता। संसार मे सूर्य प्रकाश का सबसे बडा मूल है। बहुत से तारागण भी प्रकाश के मूल है। यह प्राकृतिक मूल कहलाते है। इनके अतिरिक्त विद्युत रासायनिक क्रियाये आदि प्रकाश के मूल है। सूर्य की अनुपस्थिति मे प्रकाश जलती हुई वस्तुओ जैसे मोमबत्ती, गैस, बिजली या तेल से मिलता है।

प्रकाशमान और प्रकाशहीन वस्तुयें (Luminous and Non Luminous Bodies) :—वस्तुए या तो अपने प्रकाश से प्रकाशित होती है। पहले प्रकार की वस्तुए प्रकाश स्रोत के रूप मे विकिरण का कार्य करती है। इनको प्रकाशमान और दूसरी प्रकार की वस्तुओ को प्रकाशहीन कहते हैं। सूर्य, लैम्प, जलती हुई दियासलाई, मोमबत्ती की ज्वाला आदि प्रकाशमान वस्तुओ के उदाहरण हैं। प्रायः इनको हम स्वयम् दीप्त (Self Luminous) भी कहते है। ऐसी वस्तुये कम हैं। मकान, कुर्सी, चन्द्रमा और पृथ्वी आदि प्रकाशहीन के उदाहरण हैं।

जब प्रकाश वस्तुओ मे से आर पार चला जाता है और वस्तुएं स्पष्ट दिखाई पड़ती है तो वह पारदर्शक (Transparent) कहलाती हैं। जिन पदार्थो मे प्रकाश की किरणे दूसरी ओर नही देखी जा सकती उन्हे अपारदर्शीय (Opaque) कहते है जिन वस्तुओ मे से प्रकाश कुछ कुछ निकल सके परन्तु दूसरी ओर की वस्तु स्पष्ट न दीख सके तो उनको पारभात्पक (Transbecent) कहते है। पानी, हवा, काच आदि पारभात्पक के उदाहरण है।

प्रकाश माध्यम (Medium) :—जिस वस्तु मे से प्रकाश जा सकता है उसको माध्यम कहते है। उदाहरण के तौर पर पानी, तेल, भोडल (Mica) शीशा, इन सब मे से प्रकाश निकल सकता है। यदि माध्यम के प्रत्येक अंश के गुण समान हों तो यह समागी (Homogeneous) कहलाती है। यदि माध्यम के प्रत्येक अंश के गुण समान न हो तो विषमागी (Heterogeneous) कहते हैं। प्रकाश हवा के शून्य स्थान (Vacuum) मे भी निकल सकता है।

प्रकाश दृष्टिगोचर नहीं होता (Light is invisible) :—यद्यपि प्रकाश द्वारा ही हम अपने चारो तरफ की वस्तुओ को देखने मे समर्थ है, लेकिन प्रकाश स्वयम् दृष्टिगोचर नही होता। यदि एक बन्द कमरे मे एक छिद्र से सूर्य का प्रकाश आने दे तो प्रकाश के मार्ग मे पडने वाले धूल के कणों के द्वारा प्रकाश का मार्ग चमकने लगता है। यदि हवा मे धूल के कण न हो तो प्रकाश का मार्ग दिखाई देना बन्द हो जाता है।

प्रकाश का सीधी रेखा में गमन :—(Rectilinear Propagation) समांगी माध्यम मे प्रकाश सीधी रेखाओ मे चलता है। यदि हम एक अपारदर्शक वस्तु

परदे का काम करता है। छिद्र और पर्दे की दूरी घटाई-बढ़ाई जा सकती है। जिससे बिम्ब छोटा-बड़ा इच्छानुसार बना सकते हैं। सूक्ष्म छिद्र कैमरा किसी चमकदार वस्तु की तरफ किया जाता है और छिद्र की दूरी को बढ़ाने से पर्दे पर एक स्पष्ट बिम्ब बन जाता है। यदि शीशे को हटा कर फोटो की प्लेट उस पर रखदे तो उस वस्तु का चित्र उस पर आ जाता है।

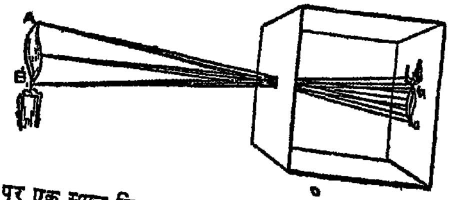

मुख्य छाया और उपछाया (Umbra and Penumbra)

प्रकाश के सीधी रेखाओं में चलने का फल छाया का बनना है। जब प्रकाश किसी अपारदर्शक वस्तु मे नही जा सकता तो अपारदर्शक वस्तु के पीछे की वह जगह जहां प्रकाश नही पड सकता, यह छाया कहलाती है।

किसी वस्तु की छाया का रूप और आकार जानने के लिए निम्न तीन बातो का ध्यान रखना जरूरी है:--

(१) प्रकाशमूल बहुत ही छोटा, बिन्दु के समान हो।
(२) प्रकाशमूल काफी बड़ा किन्तु, अपारदर्शक वस्तु से छोटा हो।
(३) प्रकाश मूल अपारदर्शक मूल से बड़ा हो।

प्रकाशमूल बिन्दु के आकार का हो:—मान लो S एक प्रकाश मूल है जो बिन्दु के आकार का Q है। एक अपारदर्शक गोला है और A B एक परदा है। गोला प्रकाश के अंशु (cone) को रोकता है और गोले PQ की छाया CD परदे AB पर बनती है। यह छाया सब स्थानो पर समान काली और गोल है।

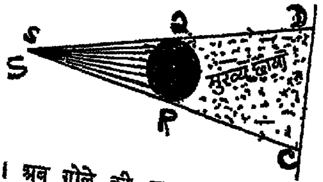

प्रकाशमूल अपारदर्शक से छोटा हो:—मान लो कि प्रकाशमूल अपारदर्शक से छोटा है। अब गोले की छाया ऐसी होगी जैसा कि चित्र में बतलाया गया है। यहां बीच का भाग CD का मूल से काई प्रकाश नही मिलता और इसलिए C और D के भाग का प्रत्येक स्थान समान रूप से काला है। इसके चारो तरफ हल्की छाया है जो C D तक फैली हुई है और किनारे की तरफ छाया फीकी पड़ जाती है। इस छाया को मूल के किसी भाग से प्रकाश अवश्य मिलता होगा।

प्रयोग.—दो दफ्ती के टुकड़े A और B लो। एक दफ्ती B मे एक छिद्र करदो और दफ्तियों के टुकडो को थोडी-थोडी दूर पर रख दो। दफ्ती A पर्दे का काम करती है। दफ्ती B के सामने एक जलती हुई मोमबत्ती रख दो। तुम देखोगे कि दफ्ती A पर मोमबत्ती का उल्टा बिम्ब (Inverted image) बन जाता है। मोमबत्ती के बिन्दु की तरफ हवा न दो इससे प्रकाश सब तरफ सीधी रखाओ मे चलता है, लेकिन एक पतली अपसृसपुंज छिद्र मे से A परदे पर P स्थान पर जाकर गिरती है और C का बिम्ब P स्थान पर बन जाता है और इसी प्रकार D का बिम्ब पर्दे पर Q स्थान पर बन जाता है। इसी प्रकार C और D के बीच के

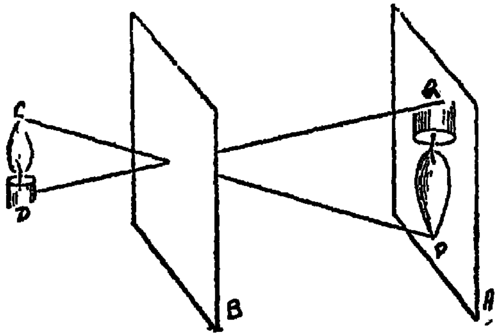

बिन्दुओ के बिम्ब पर्दे पर P और Q के बीच मे बन जाते है। बिम्ब उल्टा इसलिए बनता है कि सब किरणे B दफ्ती मे छिद्र O पर एक दूसरे को काटती है। बत्ती के विभिन्न चमकीले बिन्दुओ से केवल थोडा सा प्रकाश छिद्र मे होकर जाता है। बिम्ब का विकार सदा वस्तु जैसा ही होता है। बिम्ब छिद्र के आकार पर ही निर्भर करता है। बिम्ब की लम्बाई परदे से छिद्र तक की दूरी पर निर्भर करती है। यदि पर्दे को छिद्र के पास लाया जाए तो बिम्ब छोटा और चमकदार बनता है। यदि परदे को छिद्र से दूर ले जाया जाए तो बिम्ब धुंधला और बड़ा बनता है।

$$\frac{\text{वस्तु की लम्बाई}}{\text{बिम्ब की लम्बाई}} = \frac{\text{वस्तु से छिद्र की दूरी}}{\text{छिद्र से बिम्ब की दूरी}}$$

इससे स्पष्ट है कि यदि बिम्ब की दूरी वस्तु की दूरी से दुगुनी करदी जाऐ तो बिम्ब की लम्बाई वस्तु की लम्बाई से दुगुनी हो जाएगी। यदि पर्दे मे छिद्र के पास एक दूसरा छिद्र और कर दिया जाए तो दूसरा बिम्ब और बन जाएगा।

सूक्ष्मछिद्र कैमरा (Pin Hole-Camera)

सूक्ष्मछिद्र कैमरा उपरोक्त सिद्धान्त पर बनाया गया है। यह एक आयताकार होता है जिसकी अन्दर की दीवारे काली होती है। एक दीवार मे एक बारीक है छिद्र, के सामने की दीवार पर एक धुंधला शीशा लगा होता है, जो

चन्द्र ग्रहण (Lunar Eclipse):— जब पृथ्वी पूर्णिमा (पूर्ण चन्द्रमा) के दिन सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में आ जाती है तो चन्द्रमा, पृथ्वी की छाया मे से होकर जाता है। पृथ्वी की मुख्य छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चंद्र ग्रहण होता है। जब चन्द्रमा मुख्य छाया मे होता है, तो ग्रहण संपूर्ण होता है। जब चन्द्रमा उपछाया में होता है तो आंशिक चन्द्र ग्रहण होता है। प्राय: सम्पूर्ण चंद्र ग्रहण ही हुआ करते हैं, क्योंकि पृथ्वी का व्यास चन्द्रमा के व्यास की अपेक्षा अधिक बड़ा है।

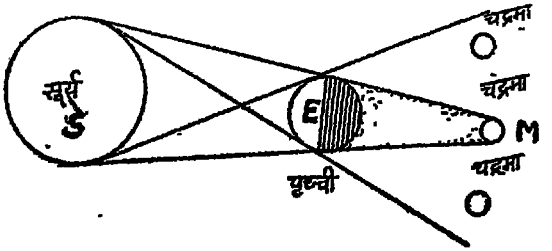

प्रकाश का वेग (Velocity of Lighr):—प्रकाश सीधी रेखाओं मे ही नही चलता वरन् अति वेग से चलता है। जब तोप चलती है तो तोप की आवाज सुनने से पहले हम तोप के चलते समय के प्रकाश को देखते है। प्रकाश ध्वनि की अपेक्षा अधिक तेजी से चलता है। सर्व प्रथम डेन्मार्क के ज्योतिषी ने सन् 1675 ई० में 'प्रकाश' के वेग पर प्रकाश डाला था। उसके पश्चात् कई वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न पर प्रकाश डाला और मालूम किया कि प्रकाश 186000 मील या 300000 किलोमीटर प्रति सैकिन्ड के वेग से चलता है। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी पर आने मे 8·25 सेकिंड लगते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यह कैसे सिद्ध करोगे कि प्रकाश सीधी रेखाओं मे चलता है, अपने उत्तर की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरण भी दो। (H.S. 1923.)
2. छाया कैसे बनती है ? मुख्य छाया और उपछाया में क्या अन्तर है ?
3. पर-भाषक, अपारदर्शक, पारदर्शक, अपंसृत पुंज, और संसृत पुंज से आप क्या समझते हैं ?
4. सूक्ष्म छिद्र कैमरे का चित्र खीच कर वर्णन करे, और बतावें कि यह किस सिद्धांत पर बनाया जाता है ? प्राय: इसमे उल्टा चित्र क्यों बनता है ?
5. लैम्प और दीवार के बीच रक्खी हुई वस्तु की छाया किनारो पर हल्की होती है। क्यों, कारण बतावे।

इसी प्रकार जब एक गोला सफेद परेदे और लैम्प के बीच मे रखा जाता है तो छाया के बीच का भाग बहुत काला होता है और इसके चारों ओर का भाग हल्का काला। काले भाग को छाया और हल्के काले भाग को उपछाया (Penumbra) कहते है। उपछाया की लम्बाई चौड़ाई प्रकाशित और अपारदर्शक वस्तुओं के आकार पर निर्भर करती है।

प्रकाशमूल अपारदर्शक से बड़ा हो:—जब प्रकाश मूल बडा होता जाता है तो मुख्य छाया घटती जाती है और उपछाया बढती जाती है, जब तक कि प्रकाशमूल और अपारदर्शक दोनो समान न हो जाये। इस समय मुख्य छाया बेलनाकार सी हो जाती है।

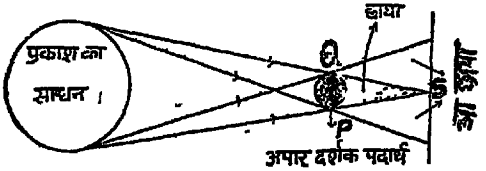

जब प्रकाशमूल अपारदर्शक वस्तु से बडा होता है तो मुख्य छाया संवृत हो जाती है और दिखाई नही पड़ती, परन्तु छाया फैलने वाले शंकु जैसे होती है। यही कारण है कि ज्यादा ऊंचे उडते हुए पक्षियों की छाया पृथ्वी पर नही पडती।

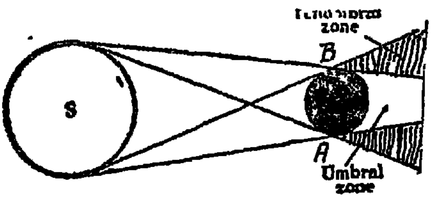

सूर्य और चंद्र ग्रहण (Polar Eclipse and Lunar Eclipse) सूर्य और चन्द्र ग्रहण बहुत बडी छाया के उदाहरण है। सूर्य ग्रहण उस समय होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के मध्य मे आ जाता है और तीनों एक सीध मे होते है। पृथ्वी चन्द्रमा की छाया मे से होकर जाती है। अर्थात् चन्द्रमा की छाया

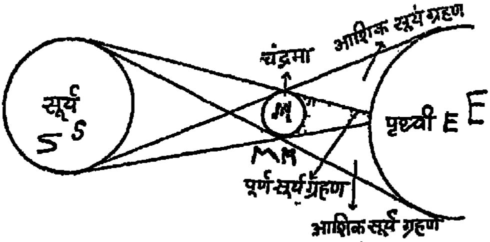

पृथ्वी पर पडती है। पृथ्वी के मुख्य छाया वाले भाग मे सूर्य का कोई भाग भी नही दिखाई देता। इसलिए पृथ्वी के किसी भाग पर मुख्य छाया मे देखने वाले को संपूर्ण सूर्य ग्रहण दिखाई पड़ता है। यदि देखने वाले उपछाया मे हो, तो ग्रहण आंशिक दिखलाई देगा। सूर्य ग्रहण अमावस्या के दिन होता है। उस दिन पृथ्वी और सूर्य के मध्य में चन्द्रमा होता है और तीनो एक सीध में होते है।

डाला जाय, तो उस लम्ब को अभिलम्ब रेखा या Normal कहते है। प्रकाश की उस किरण को जो निश्चित मार्ग से वापिस उसी माध्यम मे परावर्तित हो जाती है परावर्तित किरण (Reflected Ray) कहते हैं।

मानलें कि प्रकाश की किरण PQ समतल दर्पण AB पर पड़ कर RS की ओर परावर्तित हो जाती है। PQ आपतित किरण कहलाती है व RS परावर्तित किरण कहलाती है। NO एक बिन्दु पर अभिलम्ब रेखा है। आपतित बिदु पर आपतित और अभिलम्ब (Normal) रेखाओ के बीच के कोण को आयतन कोण (Angle oi incidence) कहते है। परावर्तित लम्ब रेखा के बीच का कोण परावर्तित कोण (Angle of reflection) कहलाता है। ∠PQN आपतन

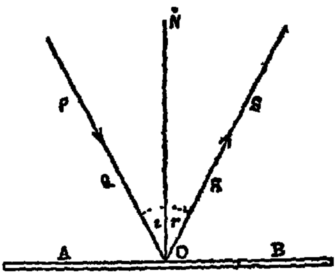

कोण ∠NOS परावर्तित कोण है। आवर्तित और परावर्तित किरणे दो साधारण नियमो का पालन करती है, इनको परावर्तन के नियम (law of reflecin) कहते है।

1. आपतित किरण परावर्तित किरण और अभिलम्ब रेखा तीनो एक ही धरातल के आयतन बिन्दु पर मिलते हैं।

2. आपतन कोण, परावर्तन कोण के बराबर होता है।

परावर्तन के नियमों की सिद्धि (Varification of the laws of Reflection):—एक दफ्ती मे सफेद कागज पर एक अर्द्धवृत्त (Protactor) रखो और N अर्द्धवृत्त के केन्द्र पर एक साधारण दर्पण Plane Mirror पिन के सहारे खड़ा है। अर्द्धवृत्त पर दो भुजायें NR और MN उसी पिन से जुड़ी हुई घूम सकती

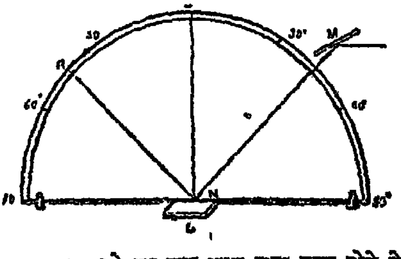

है। इन भुजाओ का कुछ भाग कटा हुआ होने के कारण अर्द्धवृत्त पर अंकित शब्द पढे जा सकते है। RN भुजा पर एक आलपिन P और भुजा MN को इधर घुमा कर P का बिम्ब देखे और चिन्ह लगा दे। N स्थान पर एक लम्ब डाल दें, आप देखेगे कि आपतन का कोण और परावर्तित कोण जो अर्द्धवृत्त पर पढ़े जा सकते है, बराबर निकलेगे।

उन्नीसवां अध्याय

प्रकाश का परावर्तन

जब प्रकाश एक माध्यम में चलने के पश्चात् किसी दूसरे माध्यम के तल से टकराता है तो थोड़ा प्रकाश तल पर पड़ कर पहले माध्यम में निश्चित नियम के अनुसार उल्टा चला जाता है, थोड़ा सा चारों ओर फैल जाता है, कुछ तल सोख लेता है और शेष भाग यदि वस्तु पारदर्शक है तो उसमें से होकर निकल जाता है। परन्तु यदि वस्तु धुन्धला शीशा या कागज की तरह खुरदरी है तो प्रकाश फैल जाता है। रंगीन वस्तु पर प्रकाश गिरने से अधिकतर प्रकाश सोख लिया जाता है। तल जब चमकदार धातु या शीशे का दर्पण जैसा होता है तो प्रकाश तल पर गिर कर अधिकतर हवा मे ही एक निश्चित मार्ग से उल्टा चला जाता है। यदि प्रकाश की किरणें दर्पण पर लम्ब से पड़ती है तो वे लम्ब रूप से ही उल्टी जाती हैं और यदि वे तिरछी पड़ती है तो तिरछी ही लौटती हैं।

"प्रकाश की किरणों का किसी धरातल पर पड़ कर निश्चित रास्ते पर उल्टा जाना प्रकाश का "परावर्तन" (Reflection) कहलाता है। अथवा जब प्रकाश की किरणें किसी माध्यम से टकरा कर उसी माध्यम मे लौट जाये जिस माध्यम से वे चली थी, तो प्रकाश के इस गुण को परावर्तन कहते है।

नियमित और अनियमित परावर्तन (Regular and Irregular Reflection):— परावर्तन दो प्रकार का होता है। जब परावर्तन समतल चमकदार धरातल मे होता है तो उसे नियमित परावर्तन कहते है। जब प्रकाश धुन्धले शीशे या कागज पर पड़ता है तो अधिकतर प्रकाश फैल जाता है, उसको अनियमित परावर्तन कहते हैं, ऐसा परावर्तन धरातल के खुरदरे होने के कारण होता है।

(अ) नियमित (ब) विक्षिप्त

दर्पण (Mirror):—बहुत चिकने चमकदार धरातल को जिससे प्रकाश परावर्तित होता है, दर्पण कहते हैं। यदि इसका धरातल समतल हो तो वह समतल (Plane) दर्पण कहलाता है। अच्छे दर्पण भी थोडा बहुत प्रकाश फैलाते है।

प्रकाश की किरण जो दर्पण पर पड़ती है। वह आपातित या संस्पर्श किरण (Incident Ray) कहलाती है। धरातल का वह बिन्दु जहां पर किरण पडती है; आयतन बिन्दु (Point of Incident) कहलाता है। आयतन बिन्दु पर लम्ब

$$\angle SON = \angle N'OR'$$
$$\angle SO'N' = \angle N'OR'$$

O R और O R' फैलती हुई (Divergent) किरणे है। वह आगे बढ़ने पर नही मिलेगी। पीछे बढ़ाने पर स्थान S' पर मिल जाती है, यदि आंख चित्र के अनुसार रखी जाये तो प्रकाश की किरण स्थान S' से आती हुई प्रतीत होगी जो कि वस्तु S का बिम्ब है। इसका स्थान ज्ञात करने के लिये SS' को मिला दो। SS' को मिलाने वाली रेखा दर्पण को स्थान P पर काटती है।

बिम्ब दर्पण में उतने ही पीछे होता है जितना कि बिन्दु दर्पण के सामने होता है। इसका तात्पर्य है कि दीवार पर लगे हुए दर्पण मे यदि हम एक गज की दूरी पर खड़े हों तो हमारा बिम्ब भी एक गज दूर ही बनेगा।

समतल दर्पण में बिम्ब का नापः—चित्र मे RS एक वस्तु है। उसका प्रतिबिम्ब R'S' है और S से दर्पण पर बिम्ब खीचो और इन रेखाओ को दर्पण के पीछे इतना बढ़ाओ, जितना कि दर्पण से वस्तु है। R'S' RS ,का प्रतिबिम्ब बन जायगा। चित्र मे स्पष्ट है कि प्रतिबिम्ब वस्तु के आकार के बराबर उतना ही बड़ा और लम्बा बनता है।

पार्श्विक विपर्यय :—(Lateral Inversion) यदि एक समतल दर्पण मे बने हुए प्रतिबिम्ब और सामने रखी वस्तु की तुलना करे तो हमको एक अन्तर प्रतीत होता है। जब हम स्वय दर्पण के सामने खड़े होकर अपना प्रतिबिम्ब देखे तो हमको हमारा दायां हाथ हमारे बिम्ब का बाया हाथ प्रतीत होगा। यदि हम बायां हाथ उठाये तो बिम्ब का दाया हाथ उठता हुआ प्रतीत होगा। दर्पण में अक्षर उल्टे प्रतीत होते है। परावर्तन ने एक परिवर्तन कर दिया है, जिसको पार्श्विक विपर्यय (Lateral Inversion) कहते है। इसमे दाया भाग बाया और बाया भाग सीधा हो जाता है।

वास्तविक और काल्पनिक बिम्ब (Real and virtual Images)

किसी एक बिन्दु से चलने और फैलने वाली प्रकाश की किरणे परावर्तित होकर या आवर्तित होकर एक दूसरे बिन्दु से चलती और फैलती हुई ज्ञात होती है, तो दूसरे इस बिन्दु को पहले बिन्दु का प्रतीयमान प्रतिबिम्ब (Virtual Image) कहते है।

परावर्तन और आवर्तन से बनने वाले वास्तविक बिम्ब के उदाहरण:—सूक्ष्म छिद्र कमरे मे वस्तु का चित्र परदे पर बनाओ। नतोदर (Concave) दर्पण मे कुछ स्थानो पर वस्तु रखने पर परदे पर प्रतिबिम्ब बन जाता है और कुछ स्थानों

पिन की रीति(Pin method):— एक दफ्ती पर सफेद कागज का टुकडा रखो, कागज को पिनों से जड़ दो ताकि कागज हिल न सके, कागज पर एक सीधी रेखा AB पर दर्पण इस प्रकार रखो कि चमकदार धरातल, रेखा AB पर हो। कागज पर एक पिन P दर्पण के चमकदार धरातल के समीप और दूसरा पिन Q पहले पिन से कुछ दूरी पर इस प्रकार खड़ा करो कि रेखा PQ दर्पण के विन्दु Q पर तिरछी पड़े। दर्पण मे दूसरी तरफ से तिरछा देख कर,पहले वाले पिनो की बिम्बो के सीध मे दो पिन R और S इस प्रकार लगाओ कि पिनों के बिम्ब और दोनों नये लगाये गये पिन एक सीध में हो जाये अर्थात् दोनों पिन दोनों बिम्बों को ढक ले। दर्पण को हटाकर PQ और RS के स्थान पर एक चिन्ह कर दो। P, Q के चिन्हो को मिलाकर एक रेखा दर्पण तक खीचो, इसी प्रकार RS के चिन्हों को मिला कर रेखा को दर्पण तक बढा दो। यदि O स्थान पर एक लम्ब डाले तो हम प्रतीत करेंगे कि आपतित किरण अभिलम्ब किरण और परावर्तित किरण तीनों एक स्थान O पर मिलते हैं तथा आपतित कोण और परावर्तित कोण दोनो बराबर है।

बिम्ब (Image):—प्रतिदिन हम दर्पण मे वस्तुओ का बिम्ब देखते हैं। यह कुछ प्राकृतिक सा है। बिम्ब बनने के कारण बहुत कम जानते है। यदि यह मालूम हो जाय कि किसी बिन्दु का बिम्ब किस प्रकार बनता है तो यह मालूम किया जा सकता है कि पूरी वस्तु का बिम्ब किस प्रकार बनता है। दिखावटी वस्तु को, जिससे आंखो पर प्रकाश आता दिखाई देता है, उस वस्तु का बिम्ब कहलाता है।

निम्नलिखित वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि बिन्दु का बिम्ब कहां बनता है :—

प्रयोग:— एक दफ्ती पर सफेद कागज पिन से लगा दो, कागज पर एक दर्पण इस प्रकार रखो कि वह सीधा खड़ा रहे। मानो कि किसी बिन्दु S से प्रकाश की फैलती हुई किरण पुंज (Divergent beam) दर्पण mm′ पर स्थान O और O′ पर लम्ब टकराती है। O और O′ पर लम्ब ON और ON′ डालो।

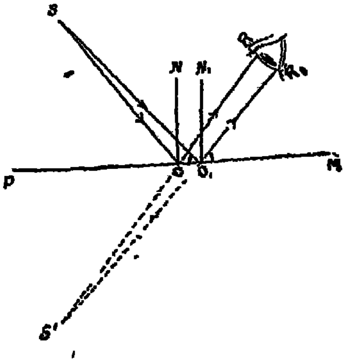

यदि आपतित किरणें SO और SO′ परावर्तित होकर OR और OR′ की तरफ क्रमानुसार जाये तो परावर्तन

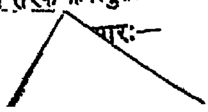

...ार:—

बीसवां अध्याय

गोलाकार दर्पण (Spherical Mirrors)

वे दर्पण जो गोल आकार के होते हैं गोलाकार दर्पण कहलाते है। यह दो प्रकार के होते हैं। (1) उन्नतोदर या उतल दर्पण (convex mirror)। उन्नतोदर या उतल का तात्पर्य उभरे हुए से होता है। (2) नतोदर या अवतल दर्पण (concave mirror), नतोदर और अवतल का तात्पर्य बैठे हुए से होता है।

जब परावर्तन (Reflection) दवी ओर से होता है तो उसे नतोदर या अवतल दर्पण (concave mirror) कहते है। उन्नतोदर या उतल दर्पण (convex mirror) उसे कहते है जिसमे परावर्तन उभरी ओर से होता है।

चूंकि उतल, (उन्नतोदर convex) और अवतल (नतोदर concave) दर्पण दोनों एक गोले के भाग होते हैं, अत. इन गोलों के केन्द्र को वक्रता केन्द्र (centre of curvature) कहते है। चित्र में C विन्दु दर्पण का वक्रता केन्द्र है। बिंदु A जो दर्पण के मध्य में है, दर्पण का ध्रुव (Pole) कहलाता है।

परावर्तन के नियम (Laws of reflection)—परावर्तन के जो नियम समतल दर्पण के हैं वे ही नियम गोलाकार दर्पण के हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि समतल दर्पण पर सभी अभिलम्ब समानान्तर होंगे जब कि गोलाकार दर्पण में, दर्पण के किसी भी स्थान से, वक्रता केन्द्र को मिलाने वाली रेखा अभिलम्ब कहलाती है। उदाहरण BC एक अभिलम्ब है। मुख्य नाभि और नाभ्यान्तर (Principal focus and focal length) सूर्य की किरणें (बहुत दूर से आने वाली किरणे) मुख्य अक्ष (Principal Axis) के समानान्तर समझी जाती हैं। यदि एक अवतल (Concave mirror) दर्पण पर सूर्य की किरणें मुख्य अक्ष (prinicipal axis) के समानान्तर पड़ें तो परावर्तित किरणें दर्पण के सामने एक विन्दु पर इकट्ठी होती हैं, जो कि सूर्य का बिम्ब कहलाता है। इसलिए उसे मुख्य नाभि (pri-

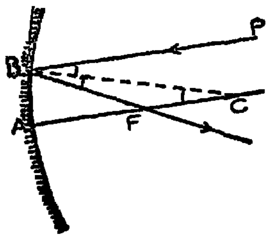

एक काच का गोल टुकडा लगा हुआ होता है जिसमे मे होकर देख सकते हैं। नली को हिलाने पर कांच के टुकड़े हिलाये जा सकते हैं। प्रत्येक काच के दर्पण मे पाच चित्र बनते है और इन टुकडो के बिंबों के मिलने पर कलापूर्ण और सुन्दर नमूने दिखाई देते है।

विसरण और परावर्तन में अन्तर (Diffusion and Reflection)·— नियमित रूप से परावर्तन होने को परावर्तन कहते हैं। जैसे कि परावर्तन एक चमकदार समतल दर्पण से होता है। अनियमित रूप से परावर्तन होने को 'Diffusion' कहते हैं। जैसे कि प्रकाश सफेद कागज पर पडकर चारो दिशाओं मे फैल जाता है। प्रकाश का वितरण हवा मे स्थित धूल के कणों द्वारा होता है। प्रकाश चारो दिशाओं मे फैल जाता है और फैला हुआ प्रकाश हमारे कमरो मे आता है।

—अभ्यासार्थ प्रश्न—

(1) परावर्तन के नियमों का वर्णन करो। प्रयोग द्वारा इसे कैसे सिद्ध करोगे ? किन किन बातो मे बिंब वस्तु से भिन्न है, और बिंब कहा पर बनता है ?

(2) सिद्ध करो कि मनुष्य अपने शरीर का पूरा का पूरा बिंब, अपने से आधे लम्बे समतल दर्पण मे देख सकता है।

(3) वास्तविक (Real) और प्रतीयमान (Virtual) बिंबो से क्या समझते हो ?

(4) सिद्ध करो कि यदि दर्पण घुमाया जाय तो परावर्तित किरण दर्पण घूमने के कोण से दुगने कोण मे घूमेगी।

(2) वक्रता केन्द्र से चलने वाली किरणे दर्पण पर टकरा कर, अभिलम्ब होने के कारण वापिस उसी मार्ग से चली जाती हैं।

(3) मुख्य नाभि (Focus Point) से चलने वाली आपतित किरणें दर्पण पर टकराने के पश्चात परावर्तित हो कर मुख्य अक्ष (Principal axis) के समानान्तर चली जाती है।

(4) समतल दर्पण की भाँति, परावर्तित किरणें जब आपस मे मिलती हैं. तो बिम्ब बनता है।

गोलाकार दर्पण मे बिम्ब वस्तु की दर्पण से दूरी और वस्तु के आकार पर निर्भर करता है।

अवतल दर्पण में बिम्बों का बनना:—(1) वस्तु (Object) जब अनन्त (Infinity) पर हो तो अनन्त से आने वाली आपतित किरणे मुख्य अक्ष (Principal axis) के समानान्तर होगी और परावर्तित होकर मुख्य नाभि पर मिल जायेंगी। इस प्रकार बिम्ब मुख्य नाभि पर बनेगा। यह बहुत ही छोटा व उल्टा होता है। जब वस्तु अनन्त पर हो तो उसका बिम्ब मुख्य नाभि (Focus) पर छोटा वास्तविक और उल्टा बनता है।

जब वस्तु वक्रता केन्द्र से थोड़ी दूर हो:—AB दर्पण के सामने, वक्रता

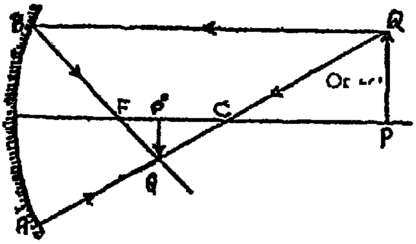

केन्द्र से दूर, एक वस्तु रखी गई है। इसका बिम्ब मालूम करने के लिए दो आपतित किरणें BQ और AQ लो, BQ मुख्य अक्ष (Principal) axis) के समानान्तर और दूसरी वक्रता केन्द्र मे से जाती है। समानान्तर किरण परावर्तित होकर मुख्य नाभि (Focus Point) में जाती है। दोनों परावर्तित किरणें मुख्य नाभि और वक्रता केन्द्र के बीच मिलती है और वही एक बिम्ब बनता है जो उल्टा और छोटा होता है। जब वस्तु वक्रता केन्द्र से परे हो तो बिम्ब मुख्य नाभि और वक्रता केन्द्र पर छोटा, वास्तविक और उल्टा बनता है।

ncipal Focus) कहते हैं। उत्तल दर्पण में समानान्तर किरणें परावर्तन के

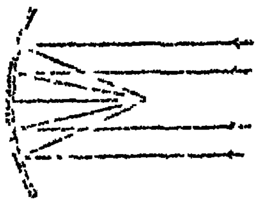

पश्चात दर्पण के पीछे मुख्य अक्ष पर एक बिंदु से आती हुई दिखाई देती हैं। यह बिंदु उत्तल दर्पण (उन्नतोदर दर्पण) की

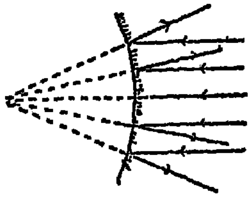

मुख्य नाभि है। अवतल दर्पण (नतोदर) की मुख्य नाभि वास्तविक है और उन्नतोदर (उत्तल) की मुख्य नाभि काल्पनिक है। दर्पण ध्रुव (Pole) और मुख्य नाभि (Principal Focus) की दूरी को नाभ्यान्तर (Focal length) कहते हैं।

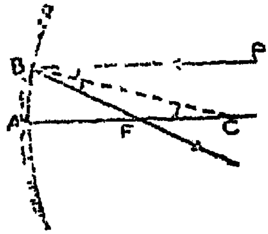

यदि एक BP आपतित किरण मुख्य अक्ष के समानान्तर, नतोदर से B स्थान पर टकराती है तो परावर्तित होकर BF की दिशा मे चली जाती है।

$\angle PBC$ आपतित कोण, $\angle CBF$ परावर्तन कोण

$\therefore \angle PBC = \angle CBF$ परावर्तन के नियम अनुसार

और $BP = AC$ के समानान्तर

$\therefore \angle BPC = \angle BCF$

$\therefore \angle CBF = \angle BCF$

$\therefore BF = FC$

अतः BF की लम्बाई AF के बराबर हुई।

यदि B, A के बहुत नजदीक है।

तो $FC = AF$

$\therefore AF = \frac{1}{2} AC$

इसलिए नाभ्यान्तर (Focal Length) वक्रता का अर्द्ध व्यास (Radius of Curvature) के आधे के बराबर होता है।

निम्नलिखित सिद्धान्त याद रखने चाहिए :—

(1) मुख्य अक्ष (Principal Axis) के समानान्तर आने वाली किरण मुख्य नाभि में जाती है।

है। जब वस्तु मुख्य नाभि पर स्थित होती है तो विम्ब अनन्त पर वहुत बड़ा उलटा और वास्तविक बनता है।

जब वस्तु मुख्य नाभि ध्रुव के बीच में हो:—एक आपतित किरण BQ दपर्ण से परावर्त्तित होकर उसी पथ से चल कर वक्रता केन्द्र मे से चली जाती है।

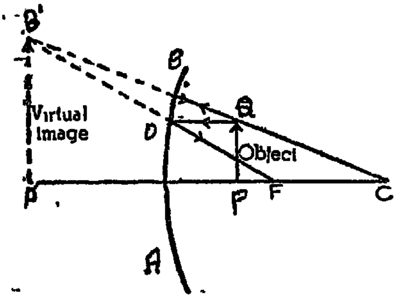

दूसरी किरण मुख्य अक्ष के समानान्तर चल कर परावर्तित होकर मुख्य नाभि मे से चली जाती है। यह दोनों परावर्त्तित किरणें दर्पण के सामने नही मिलती परन्तु पीछे बढ़ाने पर मिल जाती हैं और एक बड़ा उसी आकार का विम्ब बन जाता है। जब वस्तु मुख्य नाभि और ध्रुव के बीच मे हो तो बिम्ब बड़ा और काल्पनिक (Virtual) दर्पण के पीछे बनता है।

अवनतोदर दर्पण से बनने वाले बिम्ब

क्रम सं०	वस्तु का स्थान	बिम्ब का स्थान	आकार	उल्टा या सीधा	वास्तविक अथवा काल्पनिक
१	अनन्त दूरी पर	नाभि पर	छोटा	उल्टा	वास्तविक
२	केन्द्र के परे	केन्द्र और नाभि के बीच मे	छोटा	,,	,,
३	केन्द्र पर	केन्द्र पर	बराबर	उल्टा	वास्त वेक
४	केन्द्र और नाभि के बीच मे	केन्द्र से परे	बड़ा	,,	,,
५	नाभि पर	अनन्त दूरी पर	बड़ा	उल्टा	वास्तविक
६	बिंदु केन्द्र और नाभि के बीच मे	केन्द्र और नाभि के बीच मे	वड़ा	सीधा	काल्पनिक

उन्नतोदर दर्पण में बिम्ब का बनना:—(Convex mirror) के सामने वस्तु रखो, मुख्य अक्ष के समानान्तर एक रेखा B Q वस्तु Q के स्थान से चलती है जो दर्पण से परावर्तित होकर मुख्य नाभि F मे से जाती है। इस दर्पण मे मुख्य नाभि

जब वस्तु वक्रता केन्द्र (Centre of Curvature) पर स्थित हो:—
AB एक दर्पण है और PQ एक वस्तु C पर स्थित है। Q से एक मुख्य अक्ष के समानान्तर रेखा दर्पण से टकरा कर मुख्य नाभि मे से जाती है, दूसरी रेखा Q से मुख्य नाभि में से होकर, दर्पण B पर टकरा कर मुख्य अक्ष के समानान्तर चली जाती हैं दोनों रेखाएं C स्थान पर मिल जाती है और PQ का एक उल्टा और वस्तु के बराबर बिम्ब P'Q' बन जाता है । जब वस्तु वक्रता केन्द्र (Principal axis) पर होती है तो बिम्ब वक्रता केन्द्र पर ही वास्तविक उल्टा और बराबर बनता है ।

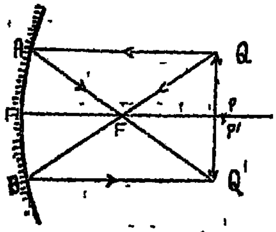

यदि वस्तु मुख्य नाभि (Focus) और वक्रता केन्द्र के बीच स्थित हो:—
दो आपतित किरणे एक मुख्य अक्ष के समानान्तर और दूसरी वक्रता केन्द्र मे से जाती हुई लो । समानान्तर रेखा परावर्तित होकर मुख्य नाभि मे से और दूसरी रेखा परावर्तित होकर उसी पथ से वक्रता केन्द्र में से होकर चली जाती है। दोनो रेखाए वक्रता केंद्र से आगे थोडी दूरी पर मिलती हैं और बिम्ब बनाती हैं। बिम्ब वास्तविक, उल्टा और बड़ा होता है। जब वस्तु वक्रता केन्द्र और मुख्य नाभि के बीच मे रखी जाती है तो बिम्ब वक्रता केन्द्र से परे और वास्तविक बनता है।

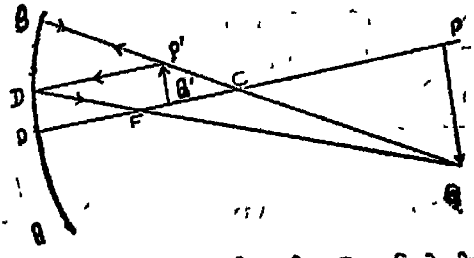

वस्तु मुख्य नाभि (Focus) पर:—यदि एक वस्तु मुख्य नाभि पर रखी हो तो उसका बिम्ब अनन्त पर बनेगा, कारण कि मुख्य नाभि से चलने वाली किरणें परावर्तित होकर मुख्य अक्ष के समानान्तर चली जाती है। समानान्तर रेखाएँ आपस में कही नही मिलती हैं। समानान्तर रेखाएँ अनन्त पर मिलती हैंऐसा हमारा विश्वास है। बिम्ब बहुत बड़ा और वास्तविक होता

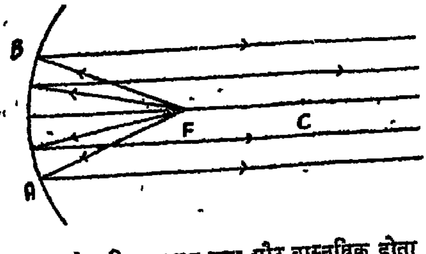

आवर्धन U और V में सम्बन्ध AB दर्पण में PQ का प्रतिबिम्ब P'Q' हैं। रेखा AQ और AQ' को मिलाओ—

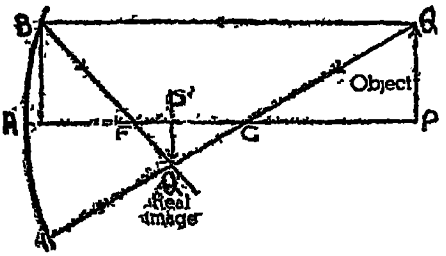

$\angle QAP = P \angle AQ$

$\triangle S$ QAP और P'AQ' समान (Similar) है।

$$\frac{Q'P'}{PQ} = \frac{AP'}{AP} = \frac{V}{U}$$

और आवर्धन $\frac{1}{O}$ के बराबर होता है

तो $\frac{1}{O} = \frac{V}{U}$ के बराबर हुआ।

सम्बन्ध फोकस : समीकरण $\frac{1}{V} + \frac{1}{U} = \frac{1}{F}$ से यह बिलकुल स्पष्ट है कि यदि हम U को पहली V मान लें तो उस बार V पहले के U के बराबर होगा। इससे स्पष्ट है कि वस्तु और बिम्ब के स्थान को परस्पर बदला भी जा सकता है। इन स्थानों को सम्बन्ध फोकस कहते है। सम्बन्ध फोकस वह दो स्थान है जिसमे से किसी स्थान पर वस्तु रखने से दूसरे स्थान पर बिम्ब बन जाता है। ऐसी अवस्था मे U और V स्थान एक दूसरे से बदले जा सकते है।

किसी अवतल दर्पण का नाभ्यान्तर ज्ञात करना:—हम नाभ्यान्तर निम्न लिखित विधियों से ज्ञात कर सकते है।

(1) सूर्य की किरणों को एक बिन्दु पर इकट्ठा करके, दूरी ज्ञात करने से, यह दूरी नाभ्यान्तर (Focal length) होगी।

(2) $\frac{1}{v} + \frac{1}{u} = \frac{1}{F}$ गुरु की सहायता से संवद्ध तरीके से सम्बन्ध फोकस होता है।

(3) वक्रता का अर्ध व्यास (Radius of curvature $\frac{2}{r}$) नाभ्यान्तर होता है।

(4) विस्थापना भाज्य (Parallax) विधि से अवतल दर्पण के सामने एक पिन इस प्रकार रखे कि पिन का बिम्ब दर्पण में उल्टा दिखाई दे। अब पिन को आगे

और वक्रता केन्द्र दर्पण के पीछे होते है। एक ऐसी दूसरी रेखा QS लो। परावर्तित

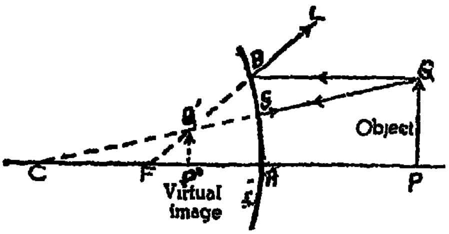

रेखा पीछे बढ़ाने पर वक्रता केन्द्र में होकर जाए। अभिलम्ब होने के कारण QS रेखा वापिस उसी मार्ग से होकर जाती है। दोनो रेखाएँ आगे बढ़ाने पर नही मिलेगी परन्तु पीछे बढाने पर दोनों मुख्य नाभि और ध्रुव के बीच मिल जाती हैं और बिम्ब बनता है जो वस्तु से छोटा काल्पनिक बनता है। इसमे सिर्फ एक ही प्रकार का बिम्ब बनता है।

चिह्नों के चिह्न (Convention of Signs) :—दर्पण के ध्रुव से सब दूरियां गिनी जाती है। ध्रुव और मुख्य नाभि के बीच की दूरी को नाभ्यान्तर (Focal length) कहते हैं और F लिखते है। वक्रता के अर्धव्यास को (Radius of curvature) r से लिखते है। वस्तु से ध्रुव तक की दूरी को U और ध्रुव से बिम्ब तक की दूरी को V लिखते हैं। दर्पण से वस्तु की धनात्मक और दूसरी ओर की दूरी ऋणात्मक होती है। अवतल दर्पण के F और R धनात्मक और उत्तल दर्पण के F और R ऋणात्मक होते हैं

U, V और F में सम्बन्ध—वक्रता केन्द्र से दूर होने पर बिम्ब चित्र के अनुसार बनता है। A P दूरी को U और AP' दूरी को V से संकेत करते है।

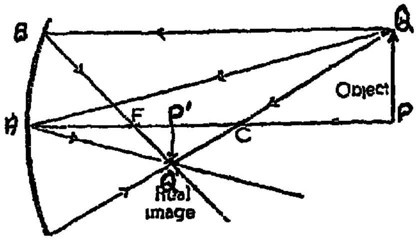

AF=F

AC=r

$$\frac{1}{F}=\frac{1}{V}+\frac{1}{U}$$

वस्तु से बिम्ब आकार मे छोटा, बड़ा और बराबर हो सकता है; वस्तु से बिम्ब आकार मे कितना गुणा है उसे हम आवर्तन कहते हैं, जिसे हम निम्नलिखित सूत्र से दर्शा सकते हैं:—

$$\text{आवर्धन अर्थात् आकार वृद्धि आवर्धन} = \frac{\text{बिम्ब की लम्बाई}}{\text{वस्तु की लम्बाई}}$$

$=\frac{1}{0}$ वस्तु की लम्बाई और प्रतिबिम्ब की लम्बाई को I, लिखते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रकाश का वर्तन

प्रकाश समान माध्यम (Homogeneous) में सीधी रेखाओं में चलता है। परंतु जब वह एक समान वाले माध्यम से दूसरे समान माध्यम में जाता है तो प्रकाश किरणों की दिशा बदल जाती है। दिशा परिवर्तन दोनों माध्यमों के बीच के तल पर ही होता है।

चित्र में P Q दो माध्यमों को अलग करने वाला एक तल है। एक माध्यम तल के ऊपर और दूसरा माध्यम तल के नीचे है। एक आपतित किरण AB PQ तल पर स्थान B पर टकरा कर दूसरे माध्यम में BC दिशा में सीधी जाने की अपेक्षा मुड़ जाती है। इस प्रकार प्रकाश के मुड़ने को प्रकाश का वर्तन कहते हैं।

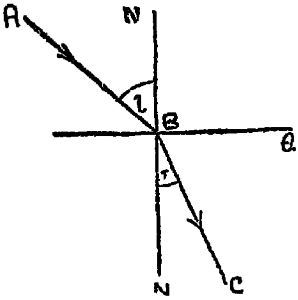

AB एक आपतित किरण (Incident ray) है। BC एक वर्तित किरण (Refracted ray) है। N'N B स्थान पर एक लम्ब है। ∠ABN आपतन कोण (Angle of incidence) और ∠CBN' वर्तित कोण (Angle of refraction) है। (i) यह कोण सदैव वर्तित और अभिलम्ब रेखा के बीच का होता है।

प्रकाश किरणें निम्नलिखित नियम के अनुसार मुडती है.—(1) प्रकाश की कोई किरण जब विरल (Rare) माध्यम से सघन (Dense) में प्रवेश करती है तो किरण अभिलम्ब की तरफ मुड़ जाती है और यदि प्रकाश की किरण सघन (Dense) माध्यम से विरल (Rare) माध्यम में प्रवेश करती है तो किरण अभिलम्ब से दूर हट जाती है, जैसा कि चित्र में स्पष्ट बताया गया है।

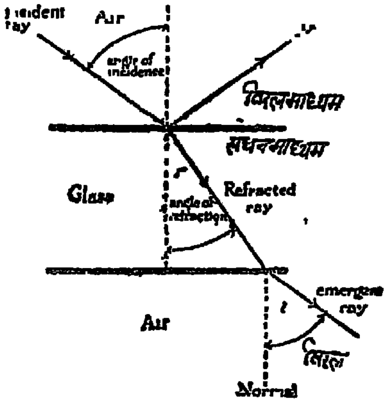

(2, वर्तन उसी समय होता है जब कि प्रकाश दोनों माध्यमों के तल पर तिरछा पड़ता है। यदि किरणें पृथक करने वाले तल पर 90° पर टकराती हैं तो वह वर्तित होने की अपेक्षा अपने उसी आने वाले मार्ग से वापिस लौट जाती है।

पीछे कर उस स्थान पर ठहराओ जहाँ पर पिन मे और उसके बिम्ब में कोई विस्थापना भाष्य (Parallax) न हो। इस अवस्था मे बिम्ब और वस्तु आँख के दाएँ, बाएँ हिलाने से दोनों सीध मे साथ साथ चलते हुए प्रतीत होंगे पर यह तब ही हो सकता है जब कि बिम्ब वस्तु के स्थान पर खड़ा हो।

—अभ्यासार्थ प्रश्न—

(1) आप परावर्तन से क्या समझते है ? समतल दर्पण मे बिम्ब कैसे बनते है। परावर्तन के नियम बतलाइये।

(2) गोलाकार दर्पणों मे बिम्ब बनने के नियम बतलाइये। यह दर्पण कितने प्रकार के होते है ?

(3) परावर्तन के नियमो को प्रयोग शाला मे कैसे सिद्ध करोगे।

(4) कभी-कभी जहाजों और अन्य वस्तुओं के क्षितिज (Horizon) के नीचे होने पर उनका बिम्ब हवा में उठा हुआ उल्टा दिखाई देता है। वस्तु से आने वाली किरणें सघन से विरल माध्यम में आने के कारण अभिलम्ब से दूर मुड़ जाती हैं।

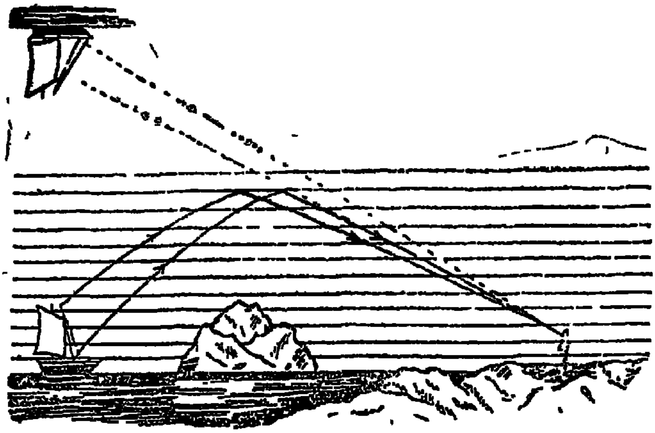

आपतन कोण-चरम कोण से बड़ा होते ही सम्पूर्ण परावर्तन का होना शुरू हो जाता है। किरणें लौट कर वापिस उसी माध्यम में चली जाती हैं जो कि देखने वाले के दोनों नेत्रों तक पहुंचती हैं और एक उल्टा बिम्ब हवा में दीखने लगता है। यह ठंडे देशों में (आर्कटिक समुद्र के पास) होता है। इसी प्रकार सूर्य क्षितिज (Horizon) में जाने के पश्चात् दिखता रहता है।

ताल से आवर्तन (Refraction through lens)

ताल (lens):—ताल आवर्तन करने वाले माध्यम (शीशे) का वह भाग है जो दो गोलाकार धरातलों से या एक गोलाकार और एक समतल धरातल से बना होता है। ताल (lens) निम्न दो प्रकार के होते हैं:—

1. उत्तल (convex):-जो किनारों की अपेक्षा बीच में अधिक मोटे होते हैं।

2. अवतल (concave):—जो किनारों की अपेक्षा बीच में कम मोटे होते हैं।

प्रत्येक ताल तीन प्रकार के होते हैं.—

(i) उत्तल ताल (Double convex):—जिसके दोनों किनारे उभरे हुए हों।

(ii) समोतल (Plane convex):—जिसका एक धरातल उत्तल और दूसरा समतल हो।

से भरे हुए बीकर में रखो। आपको पानी के अन्दर डूबी हुई नली अधिक चमकीली प्रतीत होती है और नली में पानी भरने से चमक चली जाती है।

(2) बहुमूल्य पत्थरों: जैसे हीरा, पन्ना, पुखराज में चमक सम्पूर्ण परावर्तन (Total internal reflection) के कारण ही होती है।

(3) मरीचिका (Mirage) यह एक प्रकार के धोखे का खेल है। दूर की वस्तुओं के उल्टे बिम्ब ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे वे पानी से परावर्तित होकर बने हों। सारा रेगिस्तान पानी से भरी हुई झील की भांति मालूम होता है। पृथ्वी के निकट की हवा भारी और ऊपर की हवा हल्की होती है। परन्तु रेगिस्तान की वायु का निचला भाग, गर्म रेत के पास होने के कारण गर्म हो जाता है। नीचे की वायु हल्की तथा ऊपर की वायु भारी हो जाती है और वायुमडल में नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते हुए घनत्व की बहुत सी सतह होती है। इस कारण दूर की वस्तु से आने वाला प्रकाश

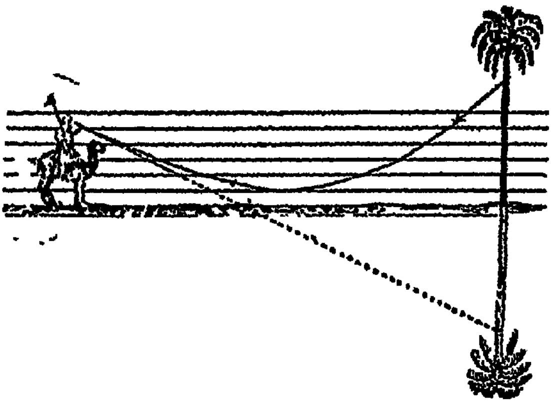

सघन से विरल माध्यम में जाता है और हर बार प्रकाश की किरण सघन से विरल माध्यम में जाने से, अभिलम्ब से दूर हटती जाती है। इस कारण हर सतह पर आपतन कोण बढ़ता जाता है और अन्त में चरमकोण (critical angle) से ज्यादा हो जाता है और प्रकाश का आवर्तन होने की अपेक्षा सम्पूर्ण परावर्तन (Total internal reflection) होता है।

सम्पूर्ण परावर्तन के पश्चात् किरण सघन से विरल माध्यम में जाने लगती है और वह अभिलम्ब की ओर झुक जाती है। जब वह आंख तक पहुंचती है तो देखने वाले को उल्टे प्रतिबिम्ब का अनुभव होता है और वह यह समझने लगता है कि वहां पर झील है जिसमें वस्तुओं का उल्टा बिम्ब दिखाई दे रहा है इसको मृग तृष्णा भी कहते हैं।

(1) मुख्य अक्ष के समानान्तर आने वाली किरण, आवर्तन के पश्चात मुख्य नाभि में होकर जाती है।

(2) जो किरण मुख्य नाभि में होकर जाती है और फिर ताल पर पड़ती है तो वह ताल से निकल कर मुख्य अक्ष के समानान्तर हो जाती है।

(3) जो किरण ताल के प्रकाश केन्द्र में होकर जाती है वह सीधी चली जाती है। जब हमको किसी वस्तु का बिम्ब बनाना होता है तो उपरोक्त विधियों में से दो का प्रयोग करते है। व्यवहार में पहली और तीसरी का ही प्रयोग करते हैं।

(1) वस्तु अनन्त पर हो —यदि वस्तु अनन्त पर हो तो प्रकाश की सब 'किरणें मुख्य कक्ष' के समानान्तर आयेंगी, यह सब किरणें ताल से टकरा कर मुख्य नाभि F में से होकर जावेंगी और एक बहुत ही छोटा वास्तविक बिम्ब बन जाएगा। आतशी शीशे से जो एक बहुत छोटा सफेद धब्बा बनता है, वह सूर्य का ही बिम्ब होता है, जैसा कि चित्र में बनाया गया है। इस बने हुए बिम्ब पर यदि काला कपड़ा या कागज रख दिया जाय तो वह जलने लगेगा

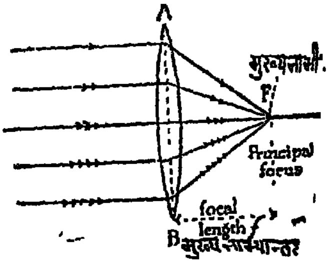

इसका कारण यह है कि सूर्य की किरणों में उष्मा होती है। जब ये किरणें केन्द्रीभूत होती हैं तो इतनी उष्मा देती हैं कि आग पकड़ने वाली वस्तुएँ जलने लगती हैं।

(2) वस्तु 2F से अधिक दूरी पर हो:—यदि एक वस्तु AB मुख्य अक्ष पर

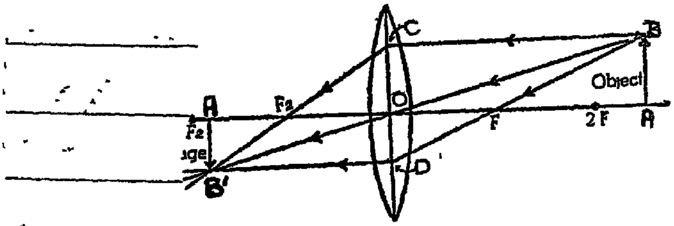

की दुगुनी दूरीसे अधिक दूरी पर खड़ी हुई है तो इसका बिम्ब ज्ञात करने पतित किरण BC मुख्य अक्ष के समानान्तर लो, वह F से होकर नरी किरण जो प्रकाश बिन्दु (Optical centre) से जाती हुई लो O की दिशा में सीधी चली जाती है। ये दोनों निर्गत किरणें B'O बिन्दु पर मिलती हैं और AB का बिम्ब A'B' बन जाता है जो और छोटा होता है।

तु 2F पर.—यदि वस्तु को नाभ्यान्तर से दुगुनी दूरी पर रखा जाए

बाईसवां अध्याय

त्रिपार्श्व या प्रिज्म से आवर्तन

(Refraction through a Prism)

त्रिपार्श्व (Prism):—(त्रिपार्श्व) यह एक पारदर्शक वर्तन वाले माध्यम (Refractive medium) का बना होता है जिसके दोनो तल समतल होते हैं और वे एक दूसरे पर किसी कोण पर झुके होते हैं। चौकोर टुकड़े की आमने-सामने की भुजा समानान्तर होती हैं और प्रिज्म के दो तल किसी कोण पर झुके होते हैं। दोनो तलों के मिलने वाली रेखा को प्रिज्म (Prism) की कर (edge) कहते हैं। प्रतिदिन काम आने वाले प्रिज्म त्रिभुज की भांति होते हैं जो कांच के बने होते हैं। इनको त्रिपार्श्व (Prism) कहते है।

त्रिपार्श्व (Prism) में होकर जाने वाली वर्तित किरण का पथ खींचना:— एक टेबल पर सफेद कागज पिन से लगाओ, कागज पर कांच का त्रिपार्श्व (Prism) रख कर उसकी सीमात बनाओ। यह सीमांत निम्न चित्र में A,B,C त्रिभुज से दर्शाया गया है। इसके एक ओर दो पिन P और Q लगा दी जाती हैं और दूसरी ओर दो पिन R और S इस प्रकार लगाई जाती हैं कि P और Q के प्रतिबिंब और दोनो सिरे R और S चारों एक सीध में दिखलाई दें। पिनें हटा दी जाती हैं,

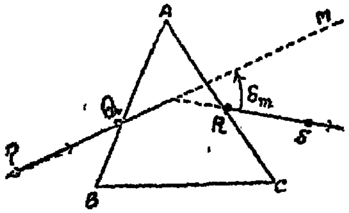

और उनके स्थान पर चिह्न लगा दिये जाते हैं। रेखा PQ और R S बढ़ा दी जाती है जो त्रिपार्श्व (Prism) पर K और L पर मिल जावें। K और L को मिला दे। PQ आपतित किरण K L वर्तित किरण और R S निर्गत किरण है। P Q का प्रति निर्गत किरण को पीछे बढ़ाने पर P′ Q′ बन जाता है, जो बिम्ब कुछ उठा हुआ प्रतीत होता है।

विचलण कोण (Angle of Deviation):—यदि आपतित किरण PQ और निर्गत किरण दोनों को बढ़ाया जाय, तो दोनों रेखा O पर मिल जाती हैं और उससे एक कोण ∠ MOS बनता है। यह वह कोण है जिस पर निर्गत किरण आपतित किरण से झुकी रहती है। इस

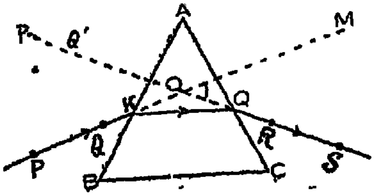

त्रिपार्श्व के द्वारा पूर्ण परावर्तनः—जब कोई किरण समकोण वाले त्रिपार्श्व पर इस प्रकार पड़ती है जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है तो पूर्ण परावर्तित हो जाता है, दर्पण से तो अच्छी नतीजे नहीं निकलते जैसा कि त्रिपार्श्व से पूर्ण परावर्तन होकर निकलते हैं। इसी कारण जहाज और पनडुब्बी के (पेरीस्कोप) (Periscope) में दो ऐसे त्रिपार्श्व हैं। दूसरा त्रिपार्श्व पूर्ण परावर्तन से दिशा को फिर बदल देता है। वायनोक्यूलर में भी दो त्रिपार्श्व होते है। इससे फैली हुई दूर की वस्तु भली प्रकार दिखने लगती है।

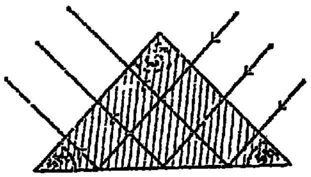

—ःअभ्यासार्थ प्रश्न.—

(1) त्रिपार्श्व किसे कहते हैं ? यदि प्रकाश की किरण इनमें से होकर जावे तो उसका क्या होता है ? पिन खींच कर बतलाइये।

(2) कैसे सिद्ध करोगे कि सफेद प्रकाश सात रंगो से मिल कर बना होता है ?

(3) प्रकाश के विक्षेपण (Dispersion of light) और वर्णक्रम (Spectrum) का वर्णन करो।

(4) एक त्रिपार्श्व सफेद कागज को सात रंगों के प्रकाश में पृथक कर देता है, आप इन पृथक रंगो को कैसे मिलाओगे ?

करके उसके रंगों को पृथक-पृथक कर देती हैं और इन्द्रधनुष बन जाता है। इन्द्रधनुष सदैव वर्षा होने के बाद ही बन सकता है।

त्रिपार्श्व (Prism) किरण को रंगता नहीं है:—त्रिपार्श्व किरण को नहीं रंगता है, यह बात निम्न प्रयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती है:—

प्रयोग—यदि एक नमक के गाढ़े घोल में भीगे हुये अॅसबेस्टस (Asbestos) को बुन्सन बर्नर की लौ पर रक्खें तो नमक के घोल का वाष्प बनना आरम्भ हो जावेगा और बर्नर की लौ को पीला रंग देगा। लौ में से पीला प्रकाश निकलता दिखलाई देगा, इस पीले प्रकाश को एक बारीक छिद्र के द्वारा त्रिपार्श्व पर डालें त्रिपार्श्व में से निकलने वाली किरण L, Y परदे पर टकरावेगी और परदे पर पीला प्रकाश दिखलाई देगा। इससे सिद्ध होता है कि त्रिपार्श्व प्रकाश को नहीं रंगता। यदि सूर्य का सफेद प्रकाश एक रंग का बना होता तो निर्गत प्रकाश सात रंगो का बना होता और फिर त्रिपार्श्व में से जाते समय प्रकाश के सातो रंग पृथक हो जाते है।

त्रिपार्श्व से सफेद प्रकाश क्यों विश्लेषण हो जाता है:—त्रिपार्श्व (Prism) सफेद प्रकाश को उसके सात रंगों में पृथक कर देता हैं, कारण यह है कि प्रत्येक रंग के प्रकाश का वर्तनाक (Refractive index) अलग-अलग होता है। इसलिए जब सफेद प्रकाश त्रिपार्श्व पर टकराता है तो भिन्न रंग के प्रकाश अपने-अपने वर्तनांक के अनुसार भिन्न-भिन्न मार्ग पर चले जाते हैं। सफेद प्रकाश के विभिन्न भाग पृथक हो जाते हैं। वर्ण क्रम में सात रंग होते हैं, इसलिए यह समझा जाता है कि सूर्य का सफेद प्रकाश सात रंग का बना होता है। यह सात रंग ऊपर बताये जा चुके हैं।

रंगों का फिर मिल जाना—एक वस्तु के बने हुए दो (Prism) जो जिनका कोण बराबर हों, पहला त्रिपार्श्व सर्व प्रथम उसे सात रंगों में विक्षेपण कर देता है और दूसरा त्रिपार्श्व विक्षेपण किये हुये प्रकाश को परस्पर मिलाकर वापिस सफेद प्रकाश बना देता है। दोनों त्रिपार्श्व को चित्र के अनुसार रखे। इस प्रकार दो प्रकाश एक

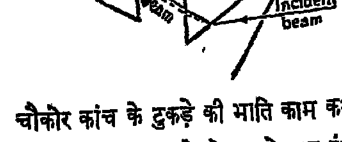

चौकोर कांच के टुकड़े की भाति काम करते हैं, यदि उपरोक्त तश्तरी को उपरोक्त सातों रंगों से रंग दिया जावे तो हमको सात रंग पृथक-पृथक दिखाई देंगे। अब यदि तश्तरी को धीमी गति से घुमाया जावे तो रंग अपने-अपने रंग के प्रकाश को परिवर्तित करते हैं और हमको सात रंग दिखाई देते हैं, परन्तु यदि तश्तरी अति तेजी से घुमाई जावे तो सब रंग अपना मिला हुआ प्रभाव आंखों पर डालते हैं और तश्तरी सफेद मालूम होती है।

काल्पनिक और उल्टे होते है। अथवा इसके द्वारा दिखने वाली वस्तु पहले से ही पलटी रखी जाती है ताकि उसका बिम्ब हमे बडा और सीधा दिखाई दे।

सूक्ष्म दर्शक यन्त्र का अभिवर्धन अर्थात् उसके द्वारा वस्तु के अभिवर्धन के बराबर होता है जब कि और क्रमशः बिम्ब मे ताल की दूरी और वस्तु से ताल की दूरी है। नाभी अन्तर है और नेत्र से दूरी है । इस प्रकार हम देखते है कि नेत्र के नाभी अन्तर के हिलने पर सूक्ष्म दर्शक के यन्त्र की अभिवर्द्धनता बन जाती है और यदि दिये ग्राह्य ताल के नाभी अन्तर को कम कर दिया जावे तो उसके साथ-साथ वस्तु का वास्तविक बिम्ब बनाने के लिए वस्तु की दूरी भी घटती चली जावेगी और इस

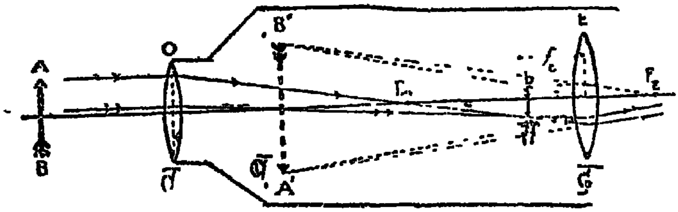

प्रकार अभिवर्द्धनता भी बढ जावेगी। इसीलिए सूक्ष्म दर्शक मे दिये नेत्र ताल तथा दिये दृश्य ताल दोनो की नाभी अन्तर कम होना चाहिए । इसे प्रयोग मे लाने की सुविधा के लिए उपनेत्र के साथ एक दूसरे के कटते हुए तार लगा देते है और इनके अतिरिक्त सूक्ष्म दर्शक की भिन्न-भिन्न अभिवर्द्धनाओ के लिए उनमे एक स्थान पर कई उपदृश्य तालो का उपयोग करते है जिससे कि हम वस्तु को कई गुणा बड़ी देख सकते है। जब बहुत अधिक अभिवर्द्धनता की आवश्यकता होती है तो उप दृश्य ताल तथा वस्तु के ताल मे डुबो देते है । यह ताल स्वय भी एक ताल का कार्य करता है जिससे कि वस्तु और भी अधिक गुणी दिखाई देती है ।

एक दूसरे मे फिट बैठने वाली पीतल की दो नलियो के एक-एक सिरे पर एक-एक उन्नतोदर ताल लगा दिये जाते है। एक ताल जिसे वस्तु ताल कहते है और जो वस्तु के बहुत निकट रहता है नाभ्यान्तर लगभग $\frac{1}{2}$ 0. .0 रखा जाता है। दूसरे ताल को जिसका नाभ्यान्तर अधिक होता है चक्षु ताल कहते हैं।

ज और म दो नलियाँ है व द दो उन्नतोदर ताल है जिसमे त वस्तु ताल है व द चक्षुताल है वस्तु अ का ताल त से उल्ट। वास्तविक एक बडा बिम्ब स बनता है जो नली को आगे पीछे सरका कर इस प्रकार रखा जाता है कि चक्षुताल द द्वारा स का बडा एव काल्पनिक बिम्ब बने, इस प्रकार एक छोटी सी वस्तु अ का एक बडा बिम्ब बन जाता है, इस यन्त्र मे ही बहुत से परिवर्द्धन व परिवर्तन करके कीटाणुओ व रक्त की जाच करने के लिए शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक बना लिया जाता है।

तेईसवां अध्याय

प्रकाश यन्त्र

प्रकाश यन्त्रः—मानव विकास के साथ-साथ सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना भी अति आवश्यक होगया। सूक्ष्म वस्तुओ का निरीक्षण करने के लिए सूक्ष्म दर्शक यन्त्रो का आविष्कार किया गया। दो मुख्य प्रकार के सूक्ष्म दर्शक निम्न है.-

साधारण सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (Simple microscope):—यदि उन्नतोदर ताल और उनकी नाभी के बीच मे कोई वस्तु रखी जाय तो उसका सीधा बडा आलम्भ काल्पनिक भी उसी ओर बनता है, इस प्रकार हम एक उन्नतोदर ताल को बडे कर देखने के काम मे लेते है, इसे एक साधारण सूक्ष्म दर्शक कहते है। क्योंकि उन्नतोदर ताल मे वस्तु बडी और उसी रूप मे दिखलाई देती है

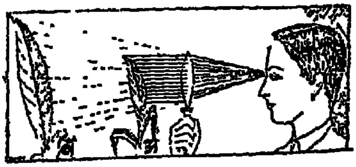

अथवा उन्नतोदर ताल को अभिवर्धन ताल भी कहा जाता है। साधारण सूक्ष्म दर्शक यन्त्र मे एक बहुत कम नाभी अन्तर (नाभी की ओर बिन्दु के बीच के दूरी) वाला उन्नतोदर ताल होता है, जो कि उसी फ्रेम मे लगा होता है, यह यन्त्र साधारण कामो मे प्रयोग की जाने वाली सूक्ष्म वस्तुओ के देखने के काम आता है। वस्तु 'अ' ताल और उसकी नाभी के मध्य मे 'ब' स्थित हैं, उसका बड़ा सीधा और काल्पनिक बिम्ब बनता है।

Compound microscope—इस प्रकार के यन्त्र मे दो उन्नतोदर ताल लगे रहते है जिनमे से एक ताल जो कि वस्तु के निकट होता है कम नाभी अन्तर वाला होता है जो Objective कहलाता है और दूसरा ताल जो कि पर्खों के समान होता है अधिक नाभी अन्तर वाला होता है और चक्षु ताल (eye-piece) होता है, यह एक दूसरे मे ठीक समा जाने वाली पीतल की दो नालियों के एक-एक सिरो पर लगा दिया जाता है, इसकी रचना सर्व प्रथम हॉलैंड के निवासी लाटेन हुक ने की थी और अब तो इसका प्रयोग जीव शास्त्र मे और रोगों के उपचार मे बढता ही जा रहा है। इससे हम वस्तु के वास्तविक आकार से एक हजार गुणा से भी अधिक देख सकते है। एक बाल इसके द्वारा देखने पर एक रस्सी के समान प्रतीत होता है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि इसके द्वारा बनने वाले बिम्ब

ही होती है, जिनका उल्टा एक वास्तविक बिम्ब स पर बनता है। स पर बनने वाला बिम्ब चक्षु ताल च द्वारा काल्पनिक बिम्ब श्र मे परिवर्तित कर दिया जाता है, यह काल्पनिक बिम्ब भी बडा एव उल्टा हो जाता है। इस दूर दर्शक को सितारे अथवा दूसरी आकाशीय वस्तुओ के अध्ययन के काम मे लाया जाता है, क्योकि तारो मे उल्टे व सीधे का कोई भेद नही होता, इसलिए तारा वीक्षण दूर दर्शक का आसानी से उपयोग किया जा सकता है।

गैलीलियो का दूरदर्शक.—यह गैलिलियो द्वारा बने हुऐ दूर दर्शक का ही एक रूप है दोनो आँखो के लिए समान प्रकार के दो दूर दर्शक एक दूसरी वगल मे लगे रहते है जिससे कि दृष्टि मे भ्रम न हो, इसमे एक बडे ताल पर एक उन्नतोदर ताल होता है। जो किरण सदूरस्त वस्तु से आती है वह इसके द्वारा बिम्ब बनाने के लिए एकत्रित हो जाती है, किन्तु बीच मे ही मधुव्रत चक्षु ताल किरणों को मिला कर एक सीधा बडा आलम्म काल्पनिक बिम्ब बना देते है। इसका प्रयोग खेलो, दृश्यो इत्यादि के देखने मे होता है इसकी अभिवर्द्धनता भी ज्योतिषी दूर दर्शक की भाँति- $\frac{F}{B}$ के बराबर होती है।

इस दूर दर्शक मे ये प्रमुख दोष है.—(1) इसकी अभिवर्द्धनता बहुत अधिक होती है। (2) बिम्ब का बहुत थोडा भाग ही आख मे पहुच पाता है अथवा इस दूर दर्शक के द्वारा देखने के लिए हमको इसे इधर-उधर और आगे-पीछे घुमाना पड़ता है।

आजकल दोनो नेत्रो मे लगने वाले द्वि नेत्री दूर दर्शक काम में लाये जाते है इसमे पूर्ण परावर्तन मे दूर समय के उपयोग के कारण इसकी लम्बाई छोटी होती जाती है और इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुविधा पूर्वक ले जाया सकता है।

. **दूर-बीन** (Binaoulars) यह गैलीलियो के द्वारा वनाये हुये दूर दर्शक का ही एक रूप है। दोनों आंखो के लिए समान प्रकार की दूर-बीन एक दूसरे की बगल मे लगी रहती है, जिससे दृष्टि व भ्रम उत्पन्न न हो। इसमे एक वस्तु ताल व एक उन्नतोदर ताल होता है। जो कि दूरस्थ वस्तु श्र से आती हुई किरणों को विम्ब वनाने के लिए एकत्रित करना चाहता है। किन्तु बीच मे ही नतोदर चक्षु ताल च' किरणो को आवर्तित कर एक सीधा बड़ा एक काल्पनिक विम्ब व बना देता है। यह यन्त्र खेल व दृश्य इत्यादि देखने के काम आता है।

ज्योतिषी दूर दर्शक यन्त्र (Astronomical Telescope) — दूरी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बनाई गई है। इसकी आवश्यकता व अनुभव प्रथम गैलीलियो को हुआ, इसमें संयुक्त सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की तरह दो नलियां कायम होती है जिसकी बडी नली मे एक बडा ताल लगा होता है तथा छोटी नलियों मे एक छोटा

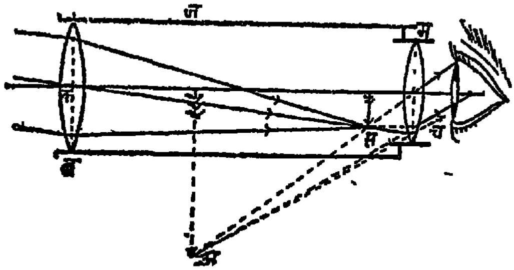

चक्षु ताल होता है। दोनो तालो का उन्नतोदर होना आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते है कि इस दूर दर्शक के तीन अग हुए-पहला उपद्रश्य ताल (Objective) दूसरा उपनेत्र ताल (Eye-piece) और तीसरा स्वस्तिका सूत्र (Crossvives) उपद्रश्य ताल केवल एक ताल या दो तालो का जुडा होता है ? इसका नाभी अन्तर बहुत अधिक होता है, इससे दूर की वस्तु से आने वाली इस प्रकार जान पडती है कि इसकी नाभी पर उस वस्तु का उल्टा तथा वास्तविक बिम्ब बन जाता है।

उपनेत्र ताल के छोटे नाभी अन्तर के कई ताल 2 या 2 से अधिक हो सकते है अथवा एक ताल होता है। पहिला ताल से बना बिम्ब इस ताल के लिए वस्तु का काम करता है और इससे बनने वाला काल्पनिक बडा तथा सीधा हो जाता है अथवा इसमे बनने वाला वस्तु का बिम्ब उल्टा होता है। उपद्रश्य ताल प्रायः आगे पीछे सरकाया जा सकता है। इसके इस प्रकार सरकने से निम्न की स्थिति बदल जाती है और उपद्रश्य तालो को हम ऐसी अवस्था मे स्थिर कर सकते है जिसके बिम्ब स्वस्तिका सूत्र पर ही बने और इसी प्रकार बिम्ब मे इस स्थिति मे तथा स्वस्तिका सूत्र मे कोई लम्बन नही रहता। इसकी अभिवर्द्धनियता —

$$\frac{\text{बिम्बकी लम्बाई}}{\text{वस्तु की लम्बाई}} = \frac{U}{V} = \frac{V}{U} \text{ होती है।}$$

इस प्रकार अभिवर्धनता $\frac{F}{b}$ के बरावर रहे। इसलिए किसी दूर दर्शक की अभिवर्द्धनता उपद्रश्य तालो के नाभी अन्तर तथा उपनेत्र ताल के नाभी अन्तर कि निष्पता के बराबर है। इससे यह स्पष्ट है कि उपद्रश्य ताल बडे तथा उपतेत्र ताल छोटे नाभी अन्तर के चाहिए।

नलिका न के एक सिरे पर वस्तु ताल व लगा हुआ है तथा नलिका मे के सिरे पर चक्षु ताल च। सुदुर वस्तु से आने वाली प्रकाश किरणे लगभग समानान्तर

है । लैम्प से प्रकाश की किरण एक ताल (C) मे होकर जाती है जो वाक्स मे ही लगा होता है, यह तार कन्डेन्सर कहलाता है, इसका कार्य लैम्प के प्रकाश को एकत्रित कर स्लाइड (S) पर डालना होता है, स्लाइड से चल कर प्रकाश की किरणें एक दूसरे ताल (D) पर पडती है और स्लाइड (S) का विस्तृत विम्व परदे पर वन जाता है यह बिम्ब उल्टा होता है । सीधा विम्ब पाने के लिए स्लाइड उल्टा रखा जाता है ।

सिनेमा फोटोग्राफी.— परदे पर शक्तिशाली प्रौजेक्टरों द्वारा बनाये गये चल चित्र दिखा देना विज्ञान की एक बड़ी करामात मानी जाती है, किन्तु देखा जावे तो यह एक साधारण से सिद्धान्त पर आधारित है । जब हम कोई वस्तु देखते है तो उसका चित्र रैटिना पर बनता है । प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि यह बिम्ब $\frac{1}{16}$ सेकिण्ड की छोटी सी अवधि तक रैटिना पर स्थिर रहता है । यदि एक रस्सी के एक सिरे पर टार्च को लगा कर बाध दिया जावे और फिर रस्सी को सिर के चारो ओर घुमाया जावे तो एक अग्नि चक्र घूमता प्रतीत होगा । इसका कारण द्रष्टि की स्थिरता (Persistence of rison) है । इस प्रकार जलती हुई वस्तुओ के फोटो मूती कैमरों से एक सैकिन्ड मे 20 से 50 फोटो की गति से लिये जाते है और फिर उन्हे उस ही गति से परदे पर दिखलाया जाता है । एक चित्र का विम्ब रैटिना पर बनता है तथा दूसरे चित्र का विम्ब आ जाता है फिर तीसरे चौथे इत्यादि का······

इस प्रकार एक सैकिन्ड मे अनेक चित्र आते है और वस्तुएं चलती फिरती दिखाई देती है । विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ ही फिल्मो मे आवाज भरना भी शुरू हो गया और इस कारण ही आज हम चित्र पर चलते-फिरते हँसते गाते पात्रों को देख सुन लेते है ।

कैमराः—यह एक प्रकार का प्रकाशरोधक यन्त्र है जिसके सामने वाले बाक्स पर एक उन्नतोदर ताल होता है व दूसरे भाग पर धु धले काच (Ground glass) का परदा होता है। जिस वस्तु का फोटो खीचना है उस ही की ओर कैमरे का लैंस कर दिया जाता है। वस्तु का जब साफ उल्टा बिम्ब परदे पर जाता है तो

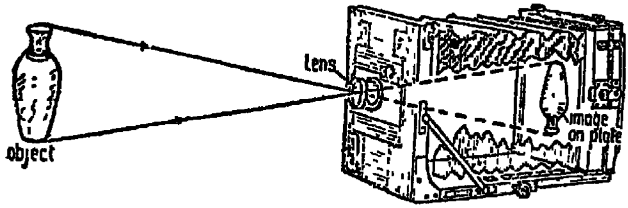

परदे को हटाकर उसकी जगह फोटोग्राफी प्लेट रख देते है। प्रकाश की किरणें प्लेट पर रासायनिक क्रियाएँ करती है एव एक बिम्ब बन जाता है वही उस वस्तु का फोटो होता है।

आँख —यदि वारीकी से देखा जावे तो कैमरे और मानव चक्षु की कार्य प्रणाली समान ही है। आख का आकार गेंद के स्वरूप होता है जिसका उभरा हुआ भाग कोरनिया कहलाता है। इसके पीछे आँख का लैंस होता है। कोरनिया से लैस तक का भाग एक पतले द्रव से भरा हुआ होता है। एक अपार दर्शक परदा आइरिस जिसके बीच मे एक छेद होता है मास-पेशियो से लैस के आगे पडा होता है आइरिस के बीच का छिद्र घट-बढ़ सकता है, इसको पुतली कहते है। आख के पीछे का भाग बहुत वारीक नाडियो व एक सूक्ष्म झिल्ली के परदे

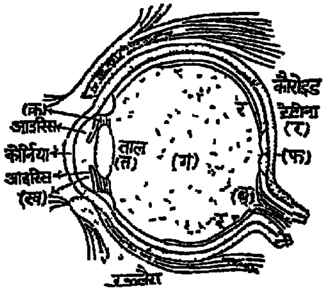

का बना होता है। परदे को (Retina) कहते है । इस पर दिखाई देने वाली वस्तुओ के उल्टे बिम्ब बनते है । रैटिना और बिम्ब के बीच का भाग विट्रियस ह्यूमर नामक एक गाढे द्रव से भरा होता है रैटिना के मध्य मे एक पीला धब्बा, जहा से दृष्टि नाडी मस्तिस्क को जाती है। मस्तिस्क की सक्रियता के कारण रैटिना पर बने हुए उल्टे बिम्ब हमे सीधे दिखाई देते है।

चित्र दर्शक लालटेन —इस यन्त्र से परदे पर वस्तुओ के वडे एव अच्छे बिम्ब डाले जा सकते है। एक काले पेन्ट किये हुए बाक्स मे एक शक्ति शाली बिजली का लैम्प लगा होता है, लैम्प एक तनोदर परावर्तक (M) की वस्तु नाभी पर रखा जाता

कृत्रिम चुम्बक के प्रकार

1. छड़ चुम्बक—आयताकार लम्बे और चपटे ठोस चुम्बक को छड़ चुम्बक कहते है।

2. नाल चुम्बक (Horse Shoe Magnet): यह एक घोड़े के नाल की प्रकार का चुम्बक होता है जैसा कि सामने दिए गए चित्र मे दिखाया गया है।

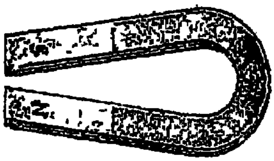

3. चुम्बकीय:—यह इस्पात की सूई होती है। इसके दोनों सिरे पतले और बीच मे चपटे और चौड़े होते है। बीच में इस सूई को एक स्तम्भ पर सहारा देते है जैसा कि यहां चित्र में दिखाया गया है। सूई ठीक क्षैतिज तल मे आ जाती है और सदैव उत्तर दक्षिण मे ठहरती है।

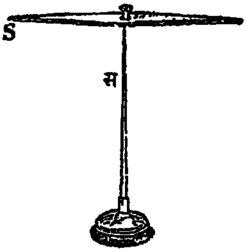

4. गोल सिरे वाला चुम्बक:—यह इस्पात का बना, एक लम्बा और बेलनाकार छड़ के रूप मे होता है, छड़ के दोनों सिरो पर एक एक गोला जुड़ा रहता है। यह एक प्रकार का छड़ चुम्बक कहलाता है।

चुम्बक के ध्रुव—अगर लोहे के बुरादे मे कोई चुम्बक रखा जाता है तो इसके उठाने पर पता लगेगा कि लोहे के कण अधिकतर चुम्बक के दोनों सिरो पर ही चिपक जाते है। जैसे जैसे हम चुम्बक के मध्य की ओर चलने लगते है, चिपके हुए कणो की सख्या कम होती जाती है और मध्य मे कोई कण भी नही चिपकता। अत: मध्य से यदि सिरो की ओर चले तो आकर्षण शक्ति बढती जाती है। इसके सिरो पर ऐसे बिन्दु अवश्य होगे जहा शक्ति अधिकतम होगी। इन्ही बिन्दुओ को ध्रुव कहते हैं। जब चुम्बक को स्वतन्त्रता पूर्वक लटकाते हैं तो वह उत्तर दक्षिण मे ठहर जाता है। स्थिर स्थिति मे जो ध्रुव उत्तर की ओर हो उसे उत्तरी ध्रुव कहते हैं और जो दक्षिण की ओर है उसे दक्षिणी ध्रुव कहते है।

चुम्बकीय अक्ष (Magnetic axis):—चुम्बक के ध्रुवो को जोड़ने वाली रेखा चुम्बकीय अक्ष कहलाती है।

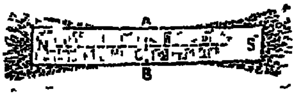

चौबीसवाँ अध्याय

चुम्बकत्त्व (Magnetism)

चुम्बक क्या है.—एशिया माईनर के मैगनेशिया नामक स्थान पर एक गहरे भूरे रग की धातु पत्थर के रूप मे पाई जाती थी। उस पदार्थ को उस स्थान के नाम पर मैगनेटाइट कहते थे। इसका गुण लोहे के छोटे छोटे टुकडो को अपनी ओर आकर्षित करना था अतएव इन गुणो के आधार पर उसका नाम बाद मे मैगनेट पडा था। इसमे प्रधान गुण निम्न हैः—

1. यह लोहे के छोटे २ टुकडो को अपनी ओर आकर्षित करता है।

2. यह डोरे द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक लटकाया जाने पर निश्चित दिशा-उत्तर दक्षिण मे ठहरता है।

प्राचीन काल के नाविको को ऐसे धातु के इस गुण का पता लगा, वे इससे दिशा का ज्ञान किया करते थे, क्योकि पत्थर मार्ग सूचित किया करता था। अत. उन्होने इसका नाम लोड स्टोन (Lode-stone—Leading stone) रख दिया। आधुनिक युग मे भी दिशा का ज्ञान करने के यंत्रो मे अच्छे लोड स्टोन ही लगाये जाते हैं।

ऊपर बताए हुए गुण रखने वाला और पृथ्वी मे पाया जाने वाला यह खनिज पदार्थ प्राकृतिक चुम्बक कहलाता है। तथा इन गुणों को चुम्बकत्त्व कहा जाता है। इसमे लोहा और आक्सीजन $Fe_3 O_8$ के अनुपात मे होते है। यह कनाडा, फिनलैड नार्वे, यूराल आदि मे भी पाया जाता है। स्वतन्त्रता पूर्वक लटकाया जाने पर यह उत्तर दक्षिण दिशा मे ठहरता है। इसका सिरा उत्तर की तरफ रहता है उसे उत्तरी ध्रुव कहते है तथा वह सिरा जो दक्षिण की ओर रहता है दक्षिणी ध्रुव कहलाता है।

कृत्रिम चुम्बकः—प्राकृतिक चुम्बको की बनावट ठीक नही होती साथ ही इसकी आकर्षण शक्ति भी प्रबल नही होती। इसलिए इनके प्रयोग से सतोष जनक कार्य नही होता। अतः लोहे के टुकड़ो मे भी यह गुण उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार उन लोहे के टुकडो को जिन्हे चुम्बकत्व दिया जाता है कृत्रिम चुम्बक कहते है।

चुम्बक बनाने की विधियां

बनावटी चुम्बक बनाने की दो विधियां हैः-

1. चुम्बक को छड़ से रगड़कर। 2. विद्युत द्वारा।

(i) चुम्बक को छड़ से रगड़ कर—एकपक्षीय स्पर्श विधि (Single touch Method)—मान लीजिए अ ब छड़ को चुम्बक बनाना है। इसे टेबिल पर रखिए। अब एक छड़ चुम्बक को उत्तरी ध्रुव "अ" पर रखिए, इसे रगड़ते हुए "ब" तक ले जाइए। "ब" पर जाकर चुम्बक को उठा लीजिए। पुनः उसको उत्तरी ध्रुव "अ" पर रखिए फिर "ब" तक रगड़ते ले जाइए।

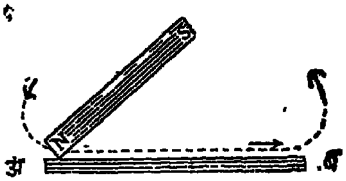

इस क्रिया को कई बार करना पड़ता है। अब "अ" "ब" छड की सतह को उलट कर इसी प्रकार चुम्बक से रगड़े। इस प्रकार पूर्ण क्रिया करने से अब छड़ चुम्बक बन जायगी और "ब" सिरा दक्षिणी ध्रुव और अ सिरा उत्तरी ध्रुव बन जायगा।

(ii) पृथकपक्षी स्पर्श विधि—लम्बी या फिर एक छोटी सी छड अ ब जिसे चुम्बक बनाना है, मेज पर रखें। इस प्रकार दो चुम्बकों को दोनों हाथों मे पकड़ कर रखे। इन्हे रगडते हुए सिरो तक ले जायें फिर उठाकर बीच में उसी तरह रखे। पुन किनारों तक ले जाएं। इस प्रकार कई बार करें। पुनः सतह बदल कर ऐसा ही करें। ऐसी दशा में अ उत्तरी ध्रुव बनेगा व ब दक्षिणी ध्रुव।

(iii) द्विपक्षी स्पर्श विधिः—(Method of double touch) इस विधि में छड़ अ ब को और उसके ऊपर दो छड़ों को वैसा ही रखा जाता है जैसा पृथक पक्षी स्पर्श विधि मे। अन्तर

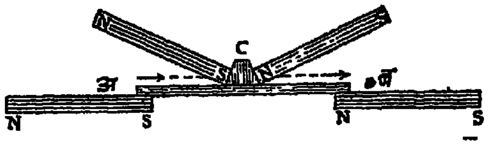

इतना है कि इन ऊपर वाले चुम्बकों के बीच कार्क रखा जाता है। जब इन दोनों सिरों को कार्क सहित जुटाए हुए, छड़ के मध्य से, एक सिरे तक ले जाते हैं। सिरे पर पहुच कर रगड़ने की दिशा बदल देते है और दोनो सिरो को उसी प्रकार छड़ की लम्बाई पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक रगड़ते हैं। दूसरा आने पर चुम्बक को बिना उठाए वापिस दूसरे सिरे तक ले जाते हैं।

सार्थक लम्बाई:—चुम्बकीय अक्ष पर दोनो ध्रुवों का जो अन्तर होता है उसे सार्थक लम्बाई (Effective Length) कहते हैं।

चुम्बकीय देशान्तर (Magnetic Meridian) चुम्बकीय अक्ष से जाने वाला कल्पित ऊर्ध्व धरातल (Vertical plane) को चुम्बकीय देशान्तर कहते है।

चुम्बकीय आकर्षण और विकर्षण

यदि किसी चुम्बक के एक ध्रुव को दूसरे चुम्बक के पास लाते है तो दोनो एक दूसरे को पास लाते है या दूर फेंकते है। उदाहरण के लिये एक चुम्बकीय सूई के उत्तरी ध्रुव के निकट धीरे धीरे एक छड़ चुम्बक को उत्तरी ध्रुव लायें तो हम देखेंगे कि चुम्बकीय सुई दूर हट जाती है। इसी प्रकार चुम्बकीय सुई के उत्तरी ध्रुव के पास छड़ चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लाते है तो उनमे खिचाव होता है। अतः विपरीत ध्रुव एक दूसरे को खीचते है तथा समान ध्रुव एक दूसरे को हटाते है।

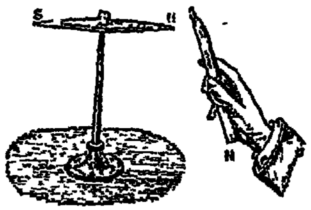

कोई स्वतन्त्रता पूर्वक लटकाया हुआ चुम्बक सदैव उत्तर दक्षिण मे ही क्यो सदैव ठहरता है?

ऐसा माना गया है कि एक चुम्बक, विषुवत् रेखा के सहारे पृथ्वी मे पड़ा हुआ है। वास्तव मे ऐसा कोई चुम्बक नही है, यह केवल कल्पना है। पृथ्वी के चुम्बकीय गुण को देख कर यह कल्पना की गई हैं। पृथ्वी के चुम्बक का उत्तरी ध्रुव भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव की ओर है तथा पृथ्वी के चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव भौगोलिक उत्तरी ध्रुव की ओर है। जब हम किसी चुम्बक को स्वतंत्रता पूर्वक लटकाते है तो उसे पृथ्वी का चुम्बक आकर्षित करता है। इसलिये चुम्बक सदा एक ही दिशा में ठहरता है, और वह दिशा है उत्तर दक्षिण।

चुम्बकीय पदार्थ:—जिन पदार्थों को चुम्बक आकर्षित कर लेता है उन्हे चुम्बकीय पदार्थ कहते हैं। लोहा तथा इस्पात अच्छे चुम्बकीय पदार्थ हैं; निकल तथा कोबाल्ट कम।

कोई छड़ चुम्बक है या नही-यह देखने के लिए उसके दोनो सिरो के पास बारी २ से लोहा लावे। यदि किसी एक सिरे मे हटाव होता है तो आपके हाथ वाली छड चुम्बक है यदि दोनो सिरो मे आकर्षण होता हैं तो चुम्बक नही।

वाले चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव ले जाये तो हम देखेंगे कि दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुव की ओर आकर्षित होता है। इसी प्रकार लटके हुए चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव की ओर हाथ वाले चुम्बक का उत्तरी ध्रुव ले जाया जाए तो भी उनके बीच आकर्षण दृष्टिगोचर होगा अर्थात असमान ध्रुव एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते है।

4. चुम्बक मे चुम्बकीय गुण सदैव उनके सिरो पर रहता है। यदि हम एक छड़ चुम्बक कागज पर लेटा दें और उसके चारो तरफ लोहे का बुरादा फैलाये तो हम देखेंगे कि लोहे का बुरादा सिरों पर अधिक चिपकता है व ज्यों जैसे चुम्बक का केन्द्र उसकी ओर बढ़ाते हैं वैसे वैसे कम चिपकता है और मध्य पर बिल्कुल नही। इससे सिद्ध होता है कि चुम्बक मे चुम्बकीय गुण ध्रुवों पर स्थित रहते है और मध्य मे चुम्बकीय तत्व नही होता।

5. चुम्बक से रगड़ (Induction) द्वारा—हम दूसरे लोहे की वस्तुओं को भी चुम्बक बना सकते है। इसके लिए निम्नलिखित प्रयोग किया जा सकता है। अगर हम एक चुम्बक ले और उसके सिरे पर आलपिन ले जाव तो उससे चिपक जाती हैं। और यदि इस आलपिन के पास दूसरी आलपिन ले जावे तो वह भी उससे चिपक जाती है। इस प्रकार एक के बाद एक आलपिन ले जाने पर आलपिनो की एक चैन सी बन जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चुम्बक में Induction की विधि से दूसरी वस्तुओ मे चुम्बकत्व पैदा कर सकने की शक्ति है। यदि हम किसी लोहे की छड पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक लगातार किसी चुम्बक को रगडें तो उस लोहे की पत्ती मे भी चुम्बक का गुण आ जाता है।

6. यदि हम एक चुम्बक को दो टुकड़ो मे तोड़ दे तो हम देखेंगे कि प्रत्येक चुम्बक का प्रत्येक टुकड़ा पृथक चुम्बक के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

चुम्बकीय उपपादन— चुम्बक को किसी चुम्बकीय पदार्थ पर रगड़ने से उस पदार्थ मे चुम्बकत्व उत्पन्न हो जाता है पर यदि चुम्बक पर्याप्त शक्तिशाली हो तो बिना स्पर्श किये ही पदार्थ मे चुम्बकत्व आ जाती है। बिना स्पर्श किए ही उत्पन्न चुम्बकत्व को उपपादित कहते हैं।

मुलायम लोहे की छड़ लेकर उसके एक सिरे को किसी शक्तिशाली चुम्बक के एक ध्रुव के पास रखें। कुछ समय बाद हम देखेंगे कि लोहे की छड़ मे चुम्बकत्व

इस क्रिया को दोनो सतहो पर करते हैं। रगड़ने का का कार्य छड़ के मध्य मे समाप्त किया जाना चाहिए। रगड़ जाने वाले सिरों के ध्रुवों के विपरीत ही छड के सिरे पर चुम्बकीय ध्रुव उत्पन्न होते है। कभी २ छड के नीचे दो छड़ चुम्बक उनके विपरीत ध्रुव पास-पास रख कर भी इस प्रयोग को करते है।

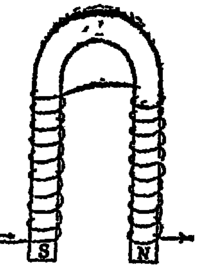

विद्युत द्वारा चुम्बक—जिस छड़ को चुम्बक बनाना ही उस पर कपडा चढ़ा हुआ तावे का तार लपेट देते है। तब तावे के तार में विद्युत प्रवाहित करने पर छड़ चुम्बक बन जाता है।

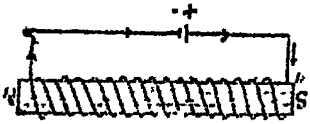

चुम्बक के गुण—चुम्बक मे निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं। (1) चुम्बक लोहे के छोटे २ टुकड़ों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसको हम प्रयोग द्वारा आसानी से सिद्ध कर सकते है। एक कागज अथवा गत्ते का टुकड़ा लो और उस पर लोहे का बुरादा डाल दो अगर चुम्बक उस बुरादे के पास ले जाए तो यह देखेंगे कि लोहे का बुरादा चुम्बक से आकर्षित होकर उससे चिपक जाता हैं। अब यदि चुम्बक को गत्ते के नीचे ले जाया जाए तो देखोगे कि जिस स्थान पर चुम्बक घुमाया जाता है उसी स्थान पर लोहे के टुकड़े चुम्बक से आकर्षित हो जाने के कारण खड़े हो जाते है।

2. यदि चुम्बक को स्वतन्त्रतापूर्वक किसी डोरे से बाँधकर लटका दिया जाए तो वह सदैव उत्तर दक्षिण दिशा की ओर स्थिर रहता है। चुम्बक का वह सिरा जो उत्तर की ओर रहता है उत्तरी ध्रुव एव जो दक्षिण की तरफ रहता है दक्षिणी ध्रुव कहलाता है।

3. असमान ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित करते हैं व समान ध्रुव एक दूसरे का विकर्षण करते है। इस प्रयोग के लिए यदि हम एक चुम्बक की छड़ लें और उसे डोरे से बाधकर लटका दें, उसके उत्तरी ध्रुव की ओर दूसरे चुम्बक को उत्तरी ध्रुव ले जाएं तो हम देखेंगे कि चुम्बक उससे दूर रहता है अर्थात उत्तरी ध्रुव और उत्तरी ध्रुव में विकर्षण होता है। इसी प्रकार यदि हम हाथ वाले दक्षिणी ध्रुव को लटकने वाले दक्षिणी ध्रुव की ओर ले जाएं तो हम उसमे भी विकर्षण पायेंगे। अब यदि लटके हुए चुम्बक के उत्तरी ध्रुव की ओर हाथ

पच्चीसवाँ अध्याय

भू-चुम्बकत्व

सामान्य सिद्धांत—वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी एक बड़े चुम्बक की भांति है अथवा यह कहिए कि पृथ्वी एक बडा चुम्बक है। इस बड़े चुम्बक का उत्तरी ध्रुव पृथ्वी के भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव की ओर है तथा दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी के भौगोलिक उत्तरी ध्रुव की ओर है।

चुम्बक उत्तर दक्षिण मे ही क्यो ठहरता है इसका कारण यह है कि पृथ्वी के चुम्बक के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव लटकाए जाने वाले चुम्बक के दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव को आकर्षित करते है। फलस्वरूप चुम्बक उत्तर दक्षिण दिशा में ठहर जाता है। इस प्रकार लटकाया हुआ चुम्बक भूमध्यरेखा पर पृथ्वी के समानान्तर रहता है — क्योंकि उसके दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव की दूरी पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से समान रहती है। परन्तु यदि हम इस चुम्बक को उत्तरी ध्रुव की ओर ले जाएँ तो चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी के चुम्बक के उत्तरी ध्रुव से अधिक दूर हो जाता है साथ ही चुम्बक का उत्तरी ध्रुव पृथ्वी के चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव के पास आ जाता है। अतः आकर्षण शक्ति पास वाले ध्रुवों मे अधिक होने के कारण वह ध्रुव पृथ्वी की ओर झुक जाता है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव मे चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी के चुम्बक के उत्तरी ध्रुव से आकर्षित होकर नीचे झुक जाता है।

जिस स्थान पर चुम्बक लटकाने के केन्द्र से गुजरने वाले केन्द्र से जितना झुकता है उस कोण को डिप का कोण कहते हैं अतः भिन्न स्थानो पर डिप के कोण का मान भिन्न २ होता है किसी एक चुम्बक के दोनो ध्रुवों की शक्ति समान होती है।

. एक स्वतन्त्रता पूर्वक लटका हुआ चुम्बक जो दिशा ग्रहण करता है वह दिशा पृथ्वी के चुम्बकीय वेल एवम् चुम्बक के वल के लव्व वल की दिशा इंगित करती है। नीचे चित्र में AB वह दिशा है जो NS चुम्बक ने ग्रहण की है। अतः लव्व चुम्बकीय शक्ति की दिशा भी AB ही होगी।

पृथ्वी के भिन्न २ स्थानो पर चुम्बक भिन्न २ झुकेगा तथा क्षितिज रेखा से कोण वनाएगा। जिस स्थान पर स्वतन्त्रतापूर्वक लटका हुआ चुम्बक जितना कोण वनाएगा उस कोण को उस स्थान पर नमन कोण कहते है। इसका अधिकतम मान 90° हो सकता है और वह ध्रुवों पर ही होगा।

आ गया है और छड़ को जिस ध्रुव के पास रखा था उससे विपरीत ध्रुव छड़ मे बनता है उपपादित चुम्बकत्व निम्नलिखित बातो पर निर्भर करता है।

(क) पदार्थ का स्वभाव

(ख) चुम्बक की शक्ति

(ग) पदार्थ और ध्रुव की दूरी

(घ) पदार्थ और चुम्बक के बीच में स्थित माध्यम का स्वभाव

उपरोक्त विवरण के बाद हम निम्न परिणाम निकाल सकते हैं :—

(i) चुम्बक दूसरे चुम्बकीय पदार्थों को आकर्षित करता है।

(ii) स्वतन्त्रता पूर्वक लटकाए जाने पर वह उत्तर दक्षिण में ठहरता है।

(iii) उसमे दो ध्रुव है

(iv) दोनो ध्रुवो को जोडने वाली रेखा चुम्बकीय अक्ष कहलाती है।

(v) वह उपपादन कर सकता है।

(vi) दो चुम्बकों के समान ध्रुव एक दूसरे को हटाते है और विपरीत ध्रुव आकर्षित करते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कृत्रिम चुम्बक और प्राकृतिक चुम्बक मे क्या अन्तर है ?
2 चुम्बक के गुणों को उदाहरण देकर समझाइए।
3. चुम्बक बनाने की भिन्न २ विधियों का वर्णन कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षेप में लिखो :—

(i) चुम्बकीय अक्ष (ii) चुम्बकीय ध्रुव (iii) उपपादन (iv) विद्युत् चुम्बक (v) चुम्बकीय देशान्तर (vi) चुम्बकीय सार्थक लम्बाई

बनाने वाले कोण को दो समभागों मे बांटने वाली रेखा उस स्थान पर भौगोलिक देशांतर कहलाती है।

इस प्रकार भौगोलिक तथा चुम्बकीय देशान्तर ज्ञात होने पर उनके बीच का कोण व दिक्पात का कोण ज्ञात हो सकता है।

डिप का कोण मापने का यंत्रः—डिप की चक्र (Dip circle):—यह एक चुम्बकीय सूई होती है जो ऊर्ध्वाधर धरातल में एक गोलाकार पैमाने के केन्द्र पर लगी होती है यह उर्ध्वाधर मे स्वतन्त्रता पूर्वक घूम सकती है। इस सूई को सर्वप्रथम चुम्बकीय देशान्तर की दिशा मे रखते है, इस अवस्था मे सूई जितनी झुक जाती है वह उस स्थान पर डिप का कोण होता है।

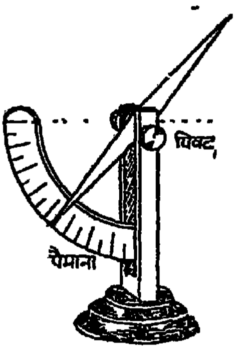

चुम्बकीय क्षेत्रः—किसी रखे हुए चुम्बक का प्रभाव किसी विशेष दूरी मे ही किया जा सकता है। प्रत्येक दूरी पर नही अतः किसी चुम्बक के पास जितने क्षेत्र मे चुम्बक का प्रभाव देखा जा सकता है वह क्षेत्र चुम्बकीय क्षेत्र कहलाता है।

एक चुम्बक को एक मेज पर सफेद कागज पर रखा। अब एक चुम्बकीय सूई इसके पास रखें। भिन्न-भिन्न स्थानों पर सूई भिन्न-भिन्न दिशाओं मे ठहरती है इसका अर्थ यह हुआ कि चुम्बक का भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न प्रभाव होता है। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहां चुम्बकीय सूई पुनः उत्तर दक्षिण दिशा में ठहरती है अर्थात् वहा चुम्बक का प्रभाव नही है।

अतः उस क्षेत्र को जहां पर चुम्बक के प्रभाव का अनुभव किया जा सके चुम्बक का चुम्बकीय क्षेत्र कहते है।

बल रेखाएंः—बल रेखाएँ चुम्बकीय क्षेत्र मे कल्पित रेखाएँ होती है। इनकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है (1) चुम्बकीय बल रेखा वह रेखा है जिस पर एकाई उत्तरी ध्रुव चुम्बकीय क्षेत्र में घूमता है (2) चुम्बकीय बल रेखा वह रेखा है जिस पर यदि किसी बिन्दु पर स्पर्श रेखा खीचे तो स्पर्श रेखा चुम्बकीय शक्ति की दिशा (उस विन्दु पर) दिखलाती है।

ऊपर के चित्र मे एक बल रेखा दिखलाई है अब यदि उसके "क" विन्दु पर स्पर्श रेखा "स ट" डाले तो वह क विन्दु पर चुम्बकीय शक्ति की दिशा दिखलाएगा।

भौगोलिक उत्तर और दक्षिण के जोड़ने वाली रेखा भौगोलिक अक्ष कहलाती है। इस रेखा से गुजरने वाला ऊर्ध्व धरातल भौगोलिक देशान्तर कहलाता है। भौगोलिक देशान्तर व चुम्बकीय देशान्तर किसी स्थान पर एक नहीं होते। चुम्बकीय देशान्तर तथा भौगोलिक देशान्तर के बीच के कोण को दिक्पात (Declination) का कोण कहते हैं।

यदि अब भौगोलिक देशान्तर तथा स द चुम्बकीय देशान्तर है तो इनके बीच का कोण दिकपात् का कोण होगा।

चुम्बकीय देशान्तर ज्ञात करना

एक छड़ चुम्बक को एक पतले डोरे की सहायता से लटकाया कि वह मेज से २-३ मि० मि० ऊपर रहे। इस चुम्बक के ध्रुवो पर बीचो बीच दो पिन मोम

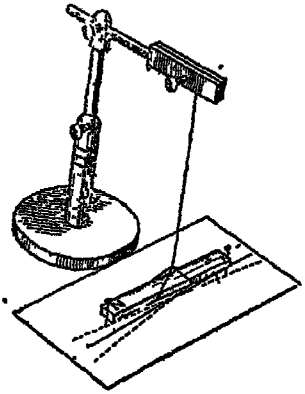

की सहायता से लगा देते है। अब चुम्बक को स्थिर होने देते हैं। स्थिर होने पर पिनो के नीचे चिन्ह लगा देते हैं। तब चुम्बक के धरातल पलट देते हैं और पुन उसके स्थिर होने पर पिनो के नीचे चिन्ह लगा देते हैं। पहली रेखा तथा दूसरी खीची गई रेखा के बीच के कोण को समभागो मे बाटने वाली रेखा ही चुम्बकीय देशान्तर कहलाती है।

भौगोलिक देशान्तर ज्ञात करना

प्रात : दस बजे एक 1 फुट लबी छड को सफेद कागज पर धूप मे खडी कर देते है। इसकी छाया जितनी बडी होती है उस

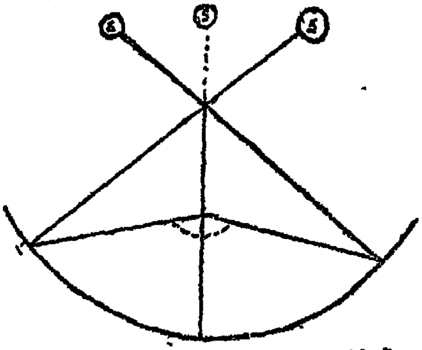

लंबाई को अर्द्ध व्यास और छड के नीचे वाले सिरे को केन्द्र मान कर एक वृत्त खीच देते हैं। दोपहर तक छड़ की छाया की लम्बाई छोटी होने लगती है। जब वह बढ़ने लगे और (अर्थात् 12 बजे के बाद) बढ कर वृत्त की परिधि को छूने लगे तो वृत्त की परिधि पर चिन्ह लगा देते है, इस चिन्ह को केन्द्र से मिला देते हैं।

अच्छी दिक् सूची की विशेषताएं—(१) चुम्बको की तुलना से दफ्ती पर N–चिन्ह का समजन।

(2) कीलक का शुद्ध समंजन।

(3) चुम्बको का हल्का होना।

(4) घर्षण का न होना।

(5) दिक् सूची की झटके सहने की सामर्थ्य।

समुद्र यात्रा मे दिक् सूची तथा समकोणिक रेखाओ के मानचित्र आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पृथ्वी चुम्बक की भाँति किस प्रकार कार्य करती है ?
2. डिप का कोण, दिक्पात का कोण से क्या समझते हो, इन्हे कैसे नापोगे ?
3. भौगोलिक देशान्तर और चुम्बकीय देशान्तर क्या है ?
4. नाविक दिक् सूची की बनावट चित्र देकर समझाइये।

बल रेखाओं का खींचना:—एक मेज पर एक सफेद कागज बिछा कर उस पर चुम्बकीय सूई (Compass needle) से चुम्बकीय देशान्तर बना लेते है

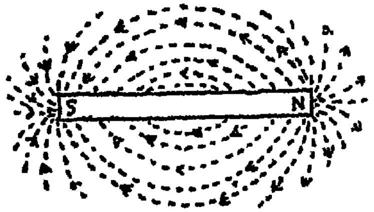

तथा चुम्बक को इस देशान्तर पर रख कर चुम्बकीय सूई को इस चुम्बक के उत्तरी ध्रुव के पास रखते हैं। उसकी दिशा पर पैंसिल से चिह्न बना लेते है फिर उस चिह्न पर चुम्बकीय सूई को रखते है तथा आगे उसकी दिशा पर चिह्न लगा देते है। इस तरह करते हुए चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव तक पहुच जाते है। चिह्नों को जोड कर रेखा खींच देते है यही बल रेखा है। इस प्रकार अनेकों रेखाऐं खींच लेते है।

नाविक दिक् सूची (Mariners Compass):—चुम्बकीय दिशा ज्ञान कराने वाला यन्त्र नाविको के लिए महान् उपयोगी यन्त्र है

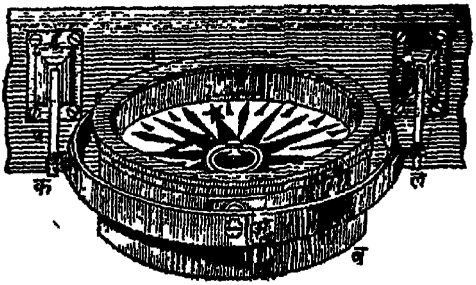

बनावट–१. इसमे कई छोटे छोटे, हल्के, चुम्बक होते है। ये एक दफ्ती–पर जो रत्न की बेयरिंग पर कीलित (Pivioted) हैं, समानान्तर कसे होते हैं।

२. चुम्बकों के उत्तरी ध्रुव एक ओर रखे जाते है।

३. दफ्ती पर दिशाएं बनी होती है।

४. अर्द्धगोलार्द्ध बक्स जिसमें दफ्ती होती है उसे (gimbal) पर कसा जाता है।

इस यन्त्र की विशेषता यह है कि जहाज के हिलने-डुलने पर भी यह क्षैतिज रहती है।

इस यन्त्र मे जहाज मे लगे लोहे के कारण दोष आ जाता है, इस दोष को दूर करने के लिए दिक् सूची के पास चुम्बकीय धातु रखी जाती है जो प्रेरित चुम्बकत्व को नष्ट करती है।

सुई के कम्पन को कम करने के लिए दफ्ती तथा चुम्बक को एल्कोहल में डुबा कर रखा जाता है।

भी माध्यम की आवश्यता होती है। एक बेलजार है, जिसके ऊपर मुँह पर एक रबड़ का कार्क लगा है, तथा नीचे पेंदे में एक हवा निकालने वाला पम्प जुड़ा है।

इसमें एक विद्युत की घंटी रखी गई, जिसका सम्बन्ध बाहर की विद्युत बैटरी से है। बेलजार में हवा है, विद्युत प्रवाह चालू करने पर घंटी बजने लगती है, तथा बाहर सुनाई पड़ती है, अब धीरे धीरे नीचे लगे हुए, हवा निकालने के पम्प द्वारा हवा निकालना प्रारम्भ किया, ज्यो ज्यो जार की वायु निकलती जाती है ध्वनि भी कमजोर पड़ती जाती है और जब लगभग पूर्ण हवा निकल जाती तो ध्वनि भी बहुत कम सुनवाई पड़ती है। ध्वनि पूर्णतः बन्द नहीं होती कारण यह है कि कुछ न कुछ हवा जार में रह ही जाती है। अब धीरे धीरे जार में हवा जाने दे तो घटी की ध्वनि भी पुनः बढ़ने लगती है।

अतः यह सिद्ध हो गया कि ध्वनि के प्रसारण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। तरगे भी बिना माध्यम के प्रशरित नही हो सकती, अतः यह ध्वनि तरंगो के रूप में चलती है।

तरंगो का वेग मापा जा सकता है (Wave travel with finite Velocity) :—ध्वनि का प्रसारण वेग भी निश्चित है। वायु में ध्वनि का वेग 1·100 फुट प्रति सैकिंड अथवा 33,200 से० मी० प्रति सेकिंड है। अतः ध्वनि तरगों के रूप में चलती हैं। आसमान में जब बिजली चमकती है और बादल गरजते हैं, तो गरज की ध्वनि बाद में सुनवाई पड़ती है। प्रकाश की चमक पहले दिखाई पड़ती है। इसका भी अर्थ यह है कि ध्वनि का वेग कम होता है और प्रकाश अधिक।

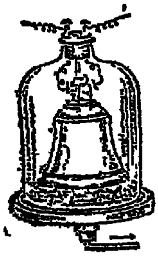

तरंगों मे आवर्त्तन होता है :— ध्वनि में भी आवर्तन होता है। अतः इससे भी यही सिद्ध होता है कि ध्वनि तरंगो के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती है।

तरंगों में परिवर्त्तन होता है .—ध्वनि का भी परिवर्तन होता है, इससे भी ध्वनि का तरगो के रूप में चलना सिद्ध होता है।

तरंग विशेष अवस्था में .—एक दूसरे की सहायता कर ध्वनि बढ़ती है तथा कभी कभी एक दूसरे को नष्ट कर देती है। ध्वनि में भी ऐसा होता है। यह भी ध्वनि का तरगो के रूप में प्रसरण सिद्ध करता है।

अतः उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध हो गया है कि ध्वनि में भी वे सभी गुण पाये जाते है जो एक तरंग में होते है। अतः ध्वनि तरग के रूप में चलती है।

पच्चीसवां अध्याय

ध्वनि

• ध्वनि क्या है ? .—ध्वनि भौतिक परिवर्तनों का वह वर्ग है जिसे हम सुनने की इन्द्रिय—कान द्वारा आभास करते हैं। कुछ ध्वनियां जो सुनने में अच्छी लगती हैं उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं जैसे वायलिन इत्यादि की ध्वनि और वे ध्वनियां जो कर्ण कटु लगती हैं उन्हें शोर (Noise) कहते हैं।

ध्वनि उत्पादक के कम्पन का परिणाम है '—अर्थात् प्रत्येक ध्वनि उत्पादक कंपन करता है। इस कथन की सत्यता के लिए साईकिल की ध्वनिशील घंटी अथवा अन्य किसी भी ध्वनि उत्पादक को स्पर्श किया जा सकता है।

ध्वनि की विशेषता या लक्षण '—एक ही तीव्रता तथा आवृत्ति की अनेक यंत्रों से उत्पादित ध्वनि इतनी भिन्न होती है कि हम ध्वनि सुनकर यत्र या स्रोत पहचान सकते हैं। जिस प्रकार भिन्न वाद्यों एव मनुष्यों की आवाज पहचानी जाती है, उसमें यही सिद्धान्त काम में लाया जाता है।

ध्वनि के उस गुण को, जिसके कारण हम एक ही तीव्रता तथा आवृत्ति के अनेक स्रोतों से उत्पादित ध्वनि को पहचान सकते हैं ध्वनि की विशेषता या लक्षण कहते हैं।

तारत्व वस्तु के कम्पन काल .पर तथा तीव्रता कम्पन के आयाम पर निर्भर होती है। ध्वनि की विशेषता आवृत्ति तथा आयाम पर निर्भर नहीं होती। इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ध्वनि की विशेषता तरग वक्र के आकार पर निर्भर होती है। इसकी पुष्टि में निम्न प्रायोगिक वक्र दिये जाते हैं :—

(अ) एक स्वरित का कम्पन वक्र।

(ब) चार स्वरितों के कम्पन का परिणामित वक्र।

(स) मनुष्य ध्वनि का कम्पन वक्र।

ध्वनि तरंगों के रूप में प्रसारित होती हैं :—

अब प्रश्न यह उठता है कि ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान को कैसे पहुँचती है? माध्यम के कणों द्वारा यह पहुँचती है अथवा तरंगों के रूप में पहुँचती है।

ध्वनि तरंगों के रूप में प्रसारित होती है, नीचे हम यही सिद्ध करेंगे।

(१) तरंग को चलने में माध्यम की आवश्यकता पड़ती है; बिना माध्यम के तरंगे नहीं चल सकती। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि ध्वनि के लिए

अनुप्रस्थ तरंगें (Transverse Waves) :—तरगों में ऐसे माध्यम की आवश्यकता होती है जिसके कण एक दूसरे से मिले हो। अतः तारों की डोरियों में अनुप्रस्थ तरंगे ही उत्पन्न होती हैं। परन्तु हवा में ध्वनि की तरगें अनुदैर्ध्य होती हैं क्योंकि हवा के कणों को केवल दबाया जा सकता है। ध्वनि तरंगें, गैस, द्रव तथा ठोस सब में चलती है, परन्तु इस सब माध्यमों में वेग भिन्न-भिन्न होता है।

ध्वनि उत्पादनः—ध्वनि उत्पादक वस्तुओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. तांत या तार वाले उपकरण, जैसे सितार, वायलिन, सारंगी इत्यादि।
2. रीड वाले उपकरण, जैसे हारमोनियम, क्लेरियोनेट ।
3. पाइप वाले उपकरण, जैसे बाँसुरी या आर्गन बाजा।
4. प्लेट वाले उपकरण, जैसे घंटा, घड़ियाल इत्यादि।
5. छिद्रपट वाले उपकरण, जैसे तबला, मृदंग, ढप, नगाड़ा इत्यादि। ऊपर दिये हुये यन्त्रो में से कोई भी क्यो न हो ऐसा देखा गया है कि जब उनसे ध्वनि निकलती है तो उनमें कम्पन होता है अर्थात जब तक कम्पन है तभी तक ध्वनि है। कम्पन के बिना ध्वनि भी नहीं हो सकती, अतः कम्पन और ध्वनि में कारण कार्य का सम्बन्ध है। कम्पन के कारण ध्वनि होती है।

एक ताँत या पतले तार को दो खूंटियों के बीच कस कर बाँध दीजिये फिर उसे उँगली से दबा कर छोड़ दीजिए, तार स्पष्ट रूप से कम्पन करता दिखलाई देगा। साथ ही ध्वनि भी उत्पन्न होगी।

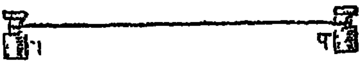

तार बिना कम्पन के

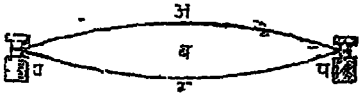

कम्पन सहित तार ध्वनि उत्पन्न कर रहा है

यदि कम्पन करते हुए तार पर एक छोटा सा कागज का टुकड़ा लगा दे तो वह कूद कर गिर जायेगा। यदि तार को हाथ से छू कर रोक दे तो ध्वनि भी रुक जायेगी।

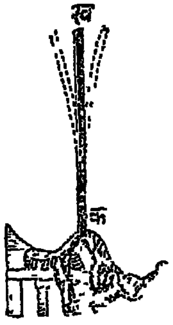

एक पीतल की पत्ती को एक ओर कस दें और दूसरे किनारे को खीच कर छोड़ दे तो वह काँपने लगती है साथ ही ध्वनि भी उत्पन्न होती है।

प्रयोगशालाओं में समान रूप से ध्वनि उत्पन्न करने वाला यन्त्र 'द्विभुज' होता है। यह U के आधार की मुड़ी हुई धातीया पत्ती होती है। बीच मे एक दृढ़ धातु की छड़

तरंगें निम्नलिखित दो प्रकार की होती हैं :—

१. अनुप्रस्थ तरंग (Transverse waves)

२. अनुदैर्ध्य तरंग (Longitudinal waves)

अनुप्रस्थ तरंगें (Transverse wave) :—एक डोरी को दो व्यक्ति सिरों से पकड़ कर खड़े हो जायें, अब एक व्यक्ति इसे ऊपर से नीचे की ओर एक झटका दें तो डोरी में एक तरंग उत्पन्न होती है और वह तरंग दूसरे व्यक्ति के हाथ तक पहुंचती है।

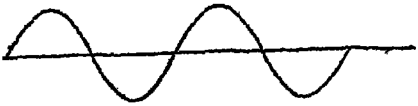

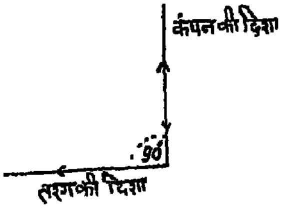

दिये गये चित्र में ब से अ की ओर तरंग चल रही है। इस तरङ्ग प्रणाली में तरंग चलती है। ब से अ की ओर तथा कम्पन होता है ऊपर से नीचे की ओर। अर्थात् कम्पन की दिशा और तरंग के चलने की दिशा में 90° का कोण बनता है। इस प्रकार की तरंगें अनुप्रस्थ तरंगें कहलाती हैं।

अनुदैर्ध्य तरंगें (Longitudinal waves) :—जब माध्यम का कम्पन तथा तरंग के चलने की दिशा एक ही हो तो तरंगें अनुदैर्ध्य कहलाती हैं।

यहां चित्र में देखें—अ ब एक डोरी है, इसमें डोरी की लम्बाई की दिशा में झटका दिया तो डोरी की लम्बाई की दिशा में ही एक तरंग ब से अ तक पडेगी।

कम्पन की दिशा

अ ———————————————— ब

कुछ गेंदों को कमानी से नीचे दिये हुए चित्र के अनुसार लगाओ, अब यदि स सिरे को पकड़ कर खींच कर छोड़ दिया जावे तो क ख ग गोले दायें, बायें कम्पन करेंगे इस प्रकार की तरंग प्रणाली को अनुदैर्ध्य तरंग कहते है।

अतः अनुदैर्ध्य प्रणाली में तरंग के चलने की दिशा तथा कम्पन की दिशा समान होती है, जिस दिशा में तरंग चलती है उसी दिशा में कम्पन होता है।

छब्बीसवां अध्याय

ध्वनि का आवर्तन, व्यतिकरण एवं प्रमुख ध्वनि यंत्र

ध्वनि का आवर्तन.—जब ध्वनि तरगे एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती हैं, तो उनका कुछ अंश इस दूसरे माध्यम में प्रसारित होने लगता है। यह क्रिया आवर्तन के साधारण नियमो के अनुसार ही होती है।

प्रयोगः—एक अच्छे रबड़ के थैले में, जिसमें हवा से भरी गैस जैसे कार्बन-डाई-ऑक्साइड भर कर लैंस के रूप में काम में लेते हैं, इससे ध्वनि का आवर्तन दिखाया जाता है। इस प्रकार बनाये हुये ध्वनि लैंस को स्टैण्ड में लगा देते हैं। इसकी प्रधानता अक्ष का पता लगाना है इस अक्ष पर एक जेब घडी रखी जाती है। गैस लैंस के दूसरी ओर मुख्य अक्ष पर वह बिन्दु ढूंढ़ा जाता है जहा घड़ी की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

मान लीजिये कि गैस लैंस के एक ओर घड़ी की दूरी U से. मी. तथा दूसरी ओर उस बिन्दु की दूरी जिस पर ध्वनि सुनाई पड़ती है V से. मी. है, तो लैंस नाभ्यान्तर निम्न समीकरण से निकाला जा सकता है :—

$$\frac{1}{F} = \frac{1}{V} + \frac{1}{U}$$

ध्वनि आवर्तन के उदाहरणः—तापमान का ध्वनि प्रसारण पर प्रभाव-शीत-ऋतु की रात्रि में पृथ्वी के निकट वाली पर्त ऊपर वाली हवा की तुलना में अधिक घनी होती है, अतः पृथ्वी के धरातल पर उत्पन्न होने वाली तरंग ज्यों-ज्यो ऊपर उठेगी विरल माध्यम में जावेगी, अत: अभिलम्ब से दूर रहेगी। जब आपतन का कोण, चरमकोण से बड़ा हो जावेगा तो ध्वनि पुनः लौटकर पृथ्वी पर ही आ जावेगी।

ध्वनि का व्यतिकरणः—कोई ध्वनि उत्पादक 1 सैकिन्ड में जितने कम्पन करता है वह उसका कम्पनाक (Frequency) कहलाता है। यदि दो ध्वनि उत्पादकों के कम्पनांक का अन्तर बहुत ही थोड़ा हो और यदि वे साथ-साथ ही कम्पन करें तो दोनो उत्पदको के कम्पन एक दूसरे को नष्ट कर देंगे, उस समय ध्वनि सुनाई नहीं पड़ेगी, परन्तु कुछ समय बाद वे एक दूसरे को सहायता देंगे और तीव्र ध्वनि सुनाई देगी।

लगी होती है जिसे हाथ से पकड़ लेते हैं। अब यदि इसकी भुजाओं में से किसी एक को भी रबड़ की गद्दी से टकरायें तो इसकी दोनों भुजाओं में कम्पन होता है तथा ध्वनि भी उत्पन्न होती है। इसका चित्र सामने दिया गया है।

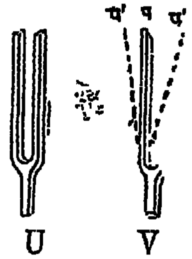

चित्र (U) में एक द्विभुज दिखाया गया है तथा चित्र (V) में कम्पन करता हुआ द्विभुज दिखाया गया है। कम्पन का उदाहरण:—पानी से भरा हुआ प्याला लें, इस प्याले के किनारे पर यदि हल्की चोटें लगाएँ तो इसके कणों में कम्पन उत्पन्न होने लगता है, जिसके कारण पानी में भी लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। अब यदि प्याले के किनारे को छूती हुई एक गोली लटकावें तो उसमें भी कम्पन दिखाई पड़ता है।

अतः सिद्ध हो गया कि ध्वनि उत्पादक वस्तु में कम्पन होता है तथा कम्पन के परिणामस्वरूप ध्वनि भी उत्पन्न होती है तथा कम्पन को रोकने से ध्वनि भी बन्द हो जाती है और यह ध्वनि तरंगों के रूप में प्रसारित होती है।

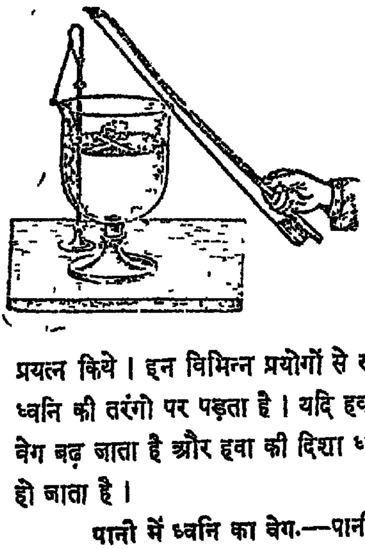

ध्वनि-तरंगों का वेग—ध्वनि, वायु तथा अन्य माध्यमों में अदैनुर्ध्य तरंगों के रूप में चलती है। अनेकों वैज्ञानिकों ने समय-समय पर ध्वनि के वेग निकालने के प्रयत्न किये। इन विभिन्न प्रयोगों से सही वेग नहीं आता क्योंकि हवा का प्रभाव ध्वनि की तरंगों पर पड़ता है। यदि हवा की दिशा ध्वनि की दिशा में होती है तो वेग बढ़ जाता है और हवा की दिशा ध्वनि के विपरीत हुई तो ध्वनि का वेग कम हो जाता है।

पानी में ध्वनि का वेग—पानी में ध्वनि का वेग सर्वप्रथम कॉलडेन तथा स्टूम ने जेनिवा झील में किया था। यह वेग 4700 फीट प्रति सैकिन्ड होता है। ठोस पदार्थों में हवा का वेग अधिक होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ध्वनि क्या है ? कैसे सिद्ध करोगे कि ध्वनि तरगों के रूप में चलती है ?
2. तरंगें कितने प्रकार की होती हैं, उनका परस्पर अन्तर समझावें।
3. ध्वनि की विशेषता क्या है, सिद्ध करिये की ध्वनि में कपन होता है।

(ब, स) पर आगे सरकाई जा सकती है। इस प्रकार नली द को आगे पीछे करने से मार्ग (अ, स, द, ई) की लम्बाई घटाई बढ़ाई जा सकती है। कम्पित द्विभुज या "गाल्टन सीटी" के मुख पृष्ठ (अ) पर लगाकर उसके दूसरे सिरे पर कीप की आकार

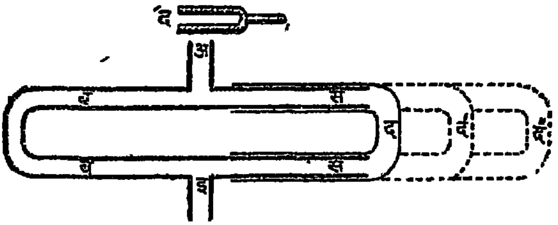

वाली वस्तु लगा देते हैं। जब यह सरकने वाली नली (द) स्थान पर होती है तो मार्ग (अ, ब) और (अ, स, द, ई) बराबर होते हैं। अतः मुख पृष्ठ (अ) पर से चलने वाली ध्वनि तरंगें (ई) स्थान पर कहीं कला में पहुंचती है। अब नली (द, द) पर लाकर (अ, स, द, ई) की लम्बाई धीरे-धीरे बढ़ाई जाती है। माना (द) स्थिति में (ई) पर ध्वनि मन्दतम सुनाई पड़ती है।

अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि ध्वनि तरंगें कभी एक दूसरे की सहायता करती हैं; कभी एक दूसरे को नष्ट भी।

प्रमुख ध्वनि यंत्र

विशिष्ट ध्वनि यंत्र और उसके उपयोग (Acoustical Technology)

ध्वनि अनुलेखन व पुनरुत्पादन (Recording & Reproduction of Sound):–विज्ञान तथा वार्तालाप को यांत्रिक विधि द्वारा रिकार्ड करने का सर्व प्रथम प्रयास स्कॉट व कोनिंग नामक वैज्ञानिकों ने 1864 में किया, उन्होंने इस कार्य के हेतु फोनो ऑटोग्राफ नामक यंत्र बनाया।

सन् 1877 में एडीसन ने अपना फोनोग्राम बनाया, यह उपकरण ध्वनि का अनुलेखन व पुनुरुत्पादन करता था। बाद में इस दिशा में बैल टटर व बर्लिनर ने प्रगति करके उपकरण को नया ही रूप दे दिया। अभी कुछ वर्षों में एक नवीन विधि का पता लगा है, इससे विद्युत व प्रकाश शक्तियों का सहारा लेकर फोनो-फिल्म व फोटो-फोन बनाये गये हैं। इसनें रेंकिंग तथा केश आदि वैज्ञानिकों का सतत प्रयत्न रहा है।

फोनोग्राफ (Phonograph):—अगले पृष्ठ पर फोनोग्राफ का चित्र है। इसमें 'स' एक छल्ला है, उसके थोड़े नीचे ही काच का या अभ्रक का बना डायाफ्राम है। यह चारों ओर से समान भाव से तना रहता है। डायफ्राम व छल्ला दोनों ध्वति बक्स कहलाते हैं। डायफ्राम के केन्द्र पर धातु की एक नुकीली सुई मजबूती से जड़ी रहती है। सुई का नुकीला सिरा सिलेंडर 'द' को स्पर्श करता है। 'द' अपने

ध्वनि के इस उतार चढ़ाव को (कम व अधिक होने को) ध्वनि का व्यतिकरण

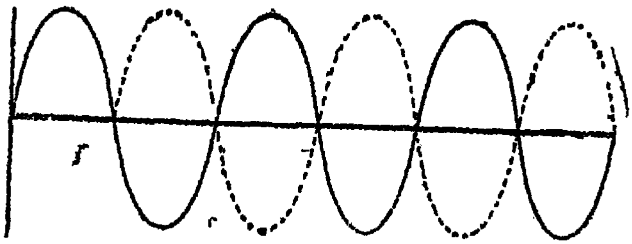

कहते हैं। एक ध्वनि स्रोत की तरंग ऊपर दिखाई गई है, पूर्ण रेखा से तथा दूसरे ध्वनि स्रोत की ध्वनि तरंग कटती रेखा से दिखाई गई है।

जब ये तरंगें उक्त चित्र के समान होगी तो ध्वनि नष्ट हो जायेगी। जब ये

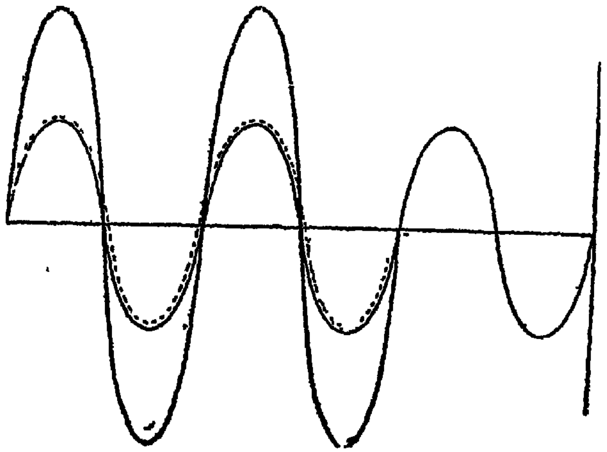

दूसरे चित्र के अनुसार होगी तो कम्पन विस्तार-बढ़ने से तीव्र ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

ध्वनि का यह व्यवहार व्यतिकरण (Interference) कहलाता है।

ध्वनि व्यतिकरण का प्रयोग:—इसके (Interference) लिये निम्नलिखित कुछ बातें आवश्यक हैं:—

(१) दोनो ध्वनि उत्पादकों का कम्पनांक और कम्पन विस्तार बराबर हो।

(२) दोनो से उत्पन्न ध्वनि तरंगो का प्रकार एक ही हो।

प्रयोग के लिये एक 'क्विंकेल्से की नलिका' (Quinckels tube) ली जाती है। इस नलिका में एक मुख पृष्ठ (अ) (निम्न चित्रानुसार) पर नली को दो भागो (ब, स) में बाट दिया जाता है। यह दोनों भाग (ब, स) आगे चलकर बिन्दु (ई) पर मिल कर एक हो जाते हैं। (द) एक दूसरी (D) के आकार वाली नलिका है जो कि नली

प्रारम्भिक ध्वनि तरंगों के अनुसार होता है। अतः डायफ्राम पहले जैसे ही कम्पन करके अपनी निकट की हवा में इससे तरंगें उत्पन्न कर देता है। हार्न को लगाने से इस ध्वनि की तीव्रता बढ़ जाती है। इस प्रकार स्पष्ट होगया होगा कि जो ध्वनि बक्स आवाज का रेकार्ड (Record) बनाता है, वही उसे फिर से सुनने में सहायक होता है। इस क्रिया में सुई के ऊर्ध्वतल वाले 'कम्पन' डायफ्राम द्वारा वायु में ध्वनि तरंगों में बदल देते हैं।

फोनो-ग्राम के प्रमुख दोष —निम्न दोषो के कारण पुराने एडीशन वाले रिकार्ड के स्थान पर नये रिकार्ड बनाने पड़े :—

1. पुराने प्रकार वाले रिकार्डों को बनाने वाला पदार्थ काफी मुलायम होता था, अत उसके खांचे शीघ्र खराब हो जाते हैं।

2. ध्वनि पुनरुत्पादन करते समय सुई जब खाँचे में से सिलेंडर पर बढती तो खांचे की गहराई कम अधिक होने के कारण सुई ऊर्ध्वतल में केवल ऊपर की ओर चल सकती थी। इसकी विपरीत वाली दिशा की गति डायफ्राम की अपनी लचक के कारण होती थी। अतः मोम की पर्त पर काफी दबाव पड़ने लगता था। इससे बात चीत के कारण जल्दी जल्दी उत्पन्न होने वाले कम्पन उस पर ठीक प्रकार से अङ्कित नहीं होते थे।

3. ऊपर बतलाये गये दूसरे कारण के फलस्वरूप, पुनरुत्पादित ध्वनि से भिन्न होती थी, न तो वह स्पष्ट और न कर्णप्रिय ही होती थी। इसके स्वरों की तीव्रता भी समान नही रहती थी।

ग्रामोफोन (Gramophone):—जब किसी स्रोत से निकली ध्वनि तरंग किसी तनुपट से टकराती है तो तनुपर में कम्पन होने लगते हैं। इन कम्पनो की प्रकृति ध्वनि की विशेषता पर निर्भर होती है। विलोम रूप में यदि तनुपट मे उसी प्रकार के कम्पन उत्पन किये जायें तो वह वायु में उसी प्रकार की तरंगें उत्पन्न करेगा और मूल ध्वनि उत्पन्न होगी। यही ग्रामोफोन का सिद्धान्त है। इसके अनुसार ग्रामोफोन-में:—

(1) कम्पन करने वाला तनुपट, और

(2) मूल ध्वनि के कम्पन का स्थायी रिकार्ड होना चाहिये।

आधुनिक ग्रामोफोन में ध्वनि को एक वृत्ताकार मंडलक पर अभिलेखित किया जाता है। अभिलेखित करते समय मंडलक को घुमाया जाता है तथा उस पर तनुपट से संयोजित सुई चलती है। तनुपर के सामने स्रोत जैसे गायक ध्वनि उत्पन्न करता है जिसके कारण सुई मंडलक में वृत्ताकार नलियां काट देती है जिनकी गहराई वक्र रूप में होती है।

स्थाई रेकार्ड बनाने के लिये पहले रेकार्ड पैराफीन मोम के मंडलक पर बनाया जाता है फिर इस रेकार्ड पर कोयले के चूर्ण (Graphite) की तह जमा कर इसे

अक्ष पर मुठिया 'क' द्वारा घुमाया गया है और यह सिलेंडर 'अ' पर सम आक्षिक जड़ा रहता है, जैसे ही सिलेंडर अपने अक्ष पर घूमता है, पेच की सहायता से सुई का

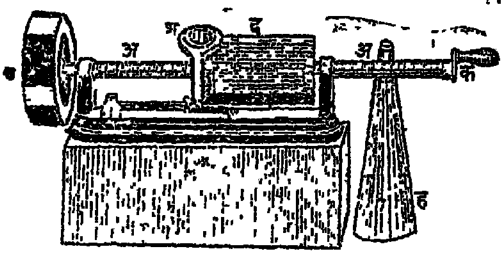

नुकीला सिरा सिलेंडर की लम्बाई पर सर्पाकार गति से आगे चलता है। पेच के हाथ सिरे पर एक गति पालक चक्र (Fly-wheel) 'ब' लगा रहता है जिसके कारण सिलेंडर समगति करना चाहता है। ध्वनि पुनुरुत्थापन की क्रिया में तीव्रता कोणाकार हार्न (Horn) 'ह' भी लगा रहता है। हार्न के पतले सिरे पर बनी चूड़ियों को छल्ले पर कस कर हार्न को ध्वनि बक्स के साथ लगाया जाता है।

ध्वनि लेखन का सिद्धान्त :—जिस वस्तु की ध्वनि का रिकार्ड बनाना है उसे हार्न के चौड़े मुंह के पास रख देते है। वस्तु के ध्वनित होने पर निकट की हवा में उसके कणों का कम्पन होने लगता है। जैसे जैसे यह ध्वनि तरँगें हार्न में घुसती जाती हैं, हार्न के कोणाकार हार्न होने की वजह से सघनता बढ़ती जाती है। हार्न के छोटे मुख पृष्ठ पर लगी डायफ्राम पर यह टकराती है, तो वह भी वैसे ही कम्पन करने लगती है। फलतः डायफ्राम के साथ लगी सुई भी सिलेंडर की सतह पर ऊपर नीचे कम्पन करती है। सिलेंडर पर टीन की मुलायम पत्री या मोम की पर्त जमी होती है। जब सिलेंडर को समगति से घुमाते हैं, उसकी सतह पर नुकीली सुई के दबाव से एक पतली रेखा सी खुदती चली जाती है। पेंच के साथ जुडी होने के कारण यह रेखा सिलेंडर की लम्बाई पर सर्पाकार धीरे धीरे लगातार बढ़ती जाती है। ध्वनि तरंगों के कारण उत्पन्न कम्पन से सुई 'ड' ऊर्ध्वतल में ऊँचा नीचा हटती है। अतः उसके निशान वाली रेखा की गहराई ध्वनि तरंगों के अनुपात में होती है। इस प्रकार रेखा के रूप में खुदे हुये सिलेंडर को 'प्रारम्भिक रिकार्ड' कहते हैं।

ध्वनि पुनरुत्पादन का सिद्धान्त :—प्रारम्भिक रिकार्ड में ध्वनि उत्पादन के लिये नुकीली सुई के स्थान पर गोल नोक वाली सुई लगा देते हैं। जब यह सुई प्रारम्भिक रेकार्ड पर बनी खाँच (Groove) में रहकर सिलेंडर पर आगे बढती है, तो खांच की गहराई कम अधिक होने से अपनी इस रैखिक गति के साथ साथ यह ऊर्ध्वतल में भी कम्पन करने लगती है। परन्तु खांचो की गहराई का यह परिवर्तन

सत्ताईसवां अध्याय

स्थिर विद्युत

जब कुछ पदार्थों (जैसे कि कांच, एबोनाइट इत्यादि) को फलालेन या सिल्क के टुकड़े से रगडते है, तो इन पदार्थो (जैसे कागज के टुकडे इत्यादि) को अपनी ओर आकर्षित करते है । इस तथ्य का ज्ञान बहुत पहले से लोगो का था । ईसा से 600 वर्ष पूर्व मिलेट्स नामक स्थान का थेल्स ने पता लगाया था कि एम्बर एक ऐसा पदार्थ है जो रेशम इत्यादि से रगडे जाने पर दूसरी वस्तुओ को आकर्षित करता है । पदार्थ के इस गुण को उन्होने विद्युत (Elcctricity) कहा । यह शब्द ग्रीक भाषा के शब्द इलेक्ट्रोन (Electron) से लिया गया । इलेक्ट्रोन का अर्थ है एम्बर । इस प्रभाव से प्रभावित वस्तुओ को विद्युन्वित (Electrified) कहा जाता है । रगड़ने से उत्पन्न विद्युत को घर्षण विद्युत कहते है ।

विद्युत के दो प्रकार :—यह प्रयोग द्वारा दिखलाया जा सकता है कि आविष्ठित (Charged) वस्तु अनाविष्ठित (Uncnarged) वस्तु को अपनी ओर खीचती है । (1) अ व एक काच की छड लीजिए, इसको रेशम से रगड़ कर डोरे की सहायता से लटका दीजिये । अ व एक और काच की छड़ रेशम से रगड़ कर लटकी हुई काच की छड के पास लाइए, आप देखेगे कि दोनो मे हटाव होता है । (2) एक एबोनाइट की छड़ को बिल्ली की खाल से रगड़ कर लटका दीजिए तथा एक दूसरी एबोनाइट की छड़ को बिल्ली की खाल से रगड़ कर लटकी हुई छड़ के पास लाइये, आप देखेगे कि दोनो मे हटाव होगा । (3) परन्तु रेशम से रगड़ी हुई काच की छड़ के पास बिल्ली की खाल से रगड़ी हुई एबोनाइट की छड़ लाने से दोनो छड़ो मे खिचाव होता है । इसका क्या कारण है ?

1. दो कांच की रेशम से रगड़ी हुई छड़ों में समान स्वभाव की विद्युत थी इसलिए दोनों मे हटाव हुआ ।

2. एक काच की रेशम से रगड़ी हुई तथा एक एबोनाइट की बिल्ली की खाल में विपरीत स्वभाव की विद्युत थी, अत; दोनों में आकर्षण हुआ ।

इससे सार यह निकला कि विद्युत दो प्रकार की होती है । एक वह जो कांच की छड़ को रेशम से रगड़ने पर उत्पन्न होती है और दूसरी वह जो एबोनाइट मे बिल्ली की खाल से रगड़ने पर उत्पन्न होती है ।

यदि कोई चालक टेढा मेढ़ा है तो; और यदि उस पर आवेश दे तो वह समान रूप से चालक पर नही फैलेगा, वरन् नोक वाले स्थानों पर इकट्ठा हो जावेगा। दिये गये चित्र मे अ ब स एक क्षेत्र है, यदि इस पर आवेश दें तो वह स पर एकत्रित होगा। इसीलिए नोकीली बिन्दु विद्युत शीघ्र ही गवाते है।

विद्युत भाषक (Electrophorus)—इस यत्र के प्रमुख भाग इस प्रकार है—यहा दिये गये चित्र के अनुसार (क) सग्रहक व (ब) एक गोलाकार धातु की प्लेट के रूप मे होता है। इसे उठाने, रखने के लिए अचालक वस्तु का हत्था लगा रहता है। इसे हत्थे को पकड़ कर ही सग्राहक को उठाया या रखा जाता है। कुछ उपकरणों मे प्लेट से जुडे धातु की छड़ लगी रहती है, जिसके सिरे पर घुंडी लगी रहती है। चालक प्लेट (ब) का आवेश इस गोल घुंडी को छू कर हटाया जाता है, अन्यथा प्लेट (ब) को सीधे ही हाथ से छूना पडता है।

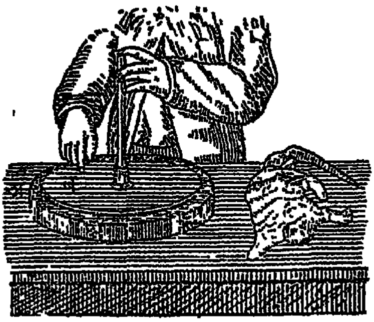

(ख) अचालक पटरी (Cake)—(अ) यह किसी अचालक पदार्थ (जो अबोनाईट; मोम, रबड) की बनी गोल चकती होती है—इसका व्यास सग्राहक की प्लेट (ब) से अधिक होता है। साथ ही ऊपरी सतह खुरदरी होती है। जब संग्राहक की प्लेट (ब) को हत्थे द्वारा, इस तल्ले पर रख देते हैं तो चालक प्लेट, तल्ले को केवल थोड़े ही बिन्दुओ पर छूती है।

(ग) चालक चकती (स) या आधार (Sole):—यह धातु की चालक व गोलाकार चकती होती है—इसी की ऊपरी सतह पर अचानक पटरी को फिट करते हैं।

कार्य विधि·—प्रयोग करने से पहले उपकरण के सभी भागों को भली-भाति धूप या (Ovon) मे सुखा देते हैं—तब अचानक पटरी को अच्छी तरह से फलालेन या फर से रगडते हैं, फिर सग्राहक को इस अचालक पटरी के ऊपर रख कर सग्राहक की प्लेट को क्षण भर के लिये हाथ से छू देते है। अब सग्राहक की मुडिया पकड़ कर ऊपर उठा लेने पर उपकरण आवेष्टित हुआ प्रतीत होता है।

इस उप पादित आवेश का कुछ भी लाभ उठाया जा सकता है। संग्राहक को फिर से उसी प्रकार आवेश किया जा सकता है। इस प्रकार इस उपकरण मे लगातार

चालन विधि (Conduction Method) :—इसमें जिस वस्तु को देखना चाहते हैं उसे प्लेट से स्पर्श कर देते हैं। वस्तु का आवेश पत्तियों मे पहुंचता है और पत्तिया फैल जाती है। इसमे जैसा आवेश वस्तु पर होता है वैसा ही पत्तियों में आता है।

वैद्युतिक घनत्व (Electrical Density)—यदि किसी वस्तु का क्षेत्रफल A है और उस पर Q आवेश है तो उसे $\frac{A}{Q}$ वैद्युतिक घनत्व कहते है। अर्थात् इकाई क्षेत्र पर जितना आवेश होता है वह वैद्युतिक घनत्व कहलाता है।

दो वस्तुओ को रगडने से समान मात्रा में विद्युत उत्पन्न होती हैं तथा यह विद्युत विपरीत प्रकार की होती है।

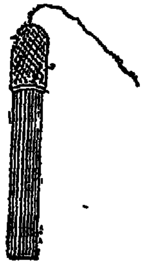

एक रेशम की टोपी मे काच की छड डाल कर रगडो, फिर केवल टोपी को स्वर्ण पत्र विद्युत दर्शक के पास ले जाओ, पत्तिया फैल जावेगी, तब कांच की छड को ले जाओ, पत्तियां उतनी ही फैल जावेगी।

किन्तु यदि यही हम दोनो को साथ ले जाते है तो पत्तिया नही फैलेंगी।

(आवेश ऊपरी तह पर होता है)

इससे सिद्ध हुआ कि रेशम और कांच मे विपरीत प्रकार की विद्युत उत्पन्न हुई तथा समान मात्रा मे उत्पन्न हुई।

बायट का सिद्धान्त —बायट का सिद्धान्त था कि आवेश किसी चालक की ऊपरी सतह पर ही रहता है। इसको सिद्ध करने के लिए उसने निम्न प्रयोग दिया था—

'अ' एक गोलाकार चालक है जो लकड़ी के स्तम्भ 'ब' पर खड़ा है।

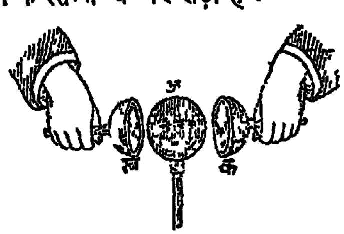

'क' और 'ख' खोखले गोले के दो भाग हैं। इन पर भी अचालक के दस्ते लगे हैं, ये दोनो चालक गोले 'अ' पर ठीक बैठते है।

अब 'अ' पर आवेश दिया और उस पर ये दोनों अर्द्धगोले लगा दिये। प्रयोग करने से ज्ञात होता है कि आवेश 'क' और 'ख' के ऊपरी सतह पर आ गया है।

जाती है। जो वस्तुएँ धरातल के करीब है एव ऊँची व नुकीली है उनमे उत्पन्न की हुई विद्युत काफी सख्या मे एकत्रित हो जाती है, इसकी वजह से बिजली अधिकाश जमीन पर उठे ऊँचे-ऊँचे भवनो, मीनारो या पेडों पर पड़ती है। बिजली पड़ते ही या तो वह वस्तु उसकी गर्मी से भस्म हो जाती है या टूट जाती है। इसी कारण जोरो के तूफान (Thunder Storm) के समय पेड़ के नीचे शरण लेने वाले मनुष्यो को हमेशा जान का खतरा बना रहता है। जानवर एव मनुष्य पर विद्युताघात होते ही वह मर जाता है। यह मृत्यु क्यो और किस प्रकार होती है, अभी तक वैज्ञानिकगण इसका ठीक पता नही लगा सके है। कुछ का मत है कि विद्युताघात होते ही विसर्जन के कारण हृदय एक दम सकुचित हो जाता है और वह अपना कार्य करना बन्द कर देता है। तभी यह कहावत है कि यदि किसी ने बिजली की चमक देख ली तो समझ लो कि वह मौत से बच गया। क्योकि यदि किसी पर विद्युताघात होता है तो वह उसकी चमक देखने से पूर्व ही मर जाता है।

इसी कारण से ऊँची-ऊँची इमारतो, मीनारो को विद्युताघात से बचने के लिए विद्युता-ग्राहक लगाते है। यह एक धातु की लम्बी छड सी होती है जिसके ऊपर त्रिसूल के आकार के काटे लगे रहते है। यह काटे बहुत ही नुकीले होते है तथा इमारत से ऊपर निकले रहते है। इस तार या छड को सीधा रखा जाता है और यह ध्यान रखा जाता है कि मोड (Kinks) न हो। इस धातु की छड़ का दूसरा हिस्सा नीचे जमीन मे गहरी गड़ी धातुयी प्लेट से जोड़ दिया जाता है।

जब कोई भी आवेष्ठित बादल इस विद्युत ग्राहक के करीब आता है, तो इस पर विपरीत प्रकार की विद्युत उत्पन्न हो करके एकत्रित हो जाती है। इस जड़ का ऊपरी हिस्सा निकला होने के कारण काफी मात्रा मे विद्युत नि सरण होता है। इस नि.सरण के कारण उस निकले भाग के चारो तरफ विद्युत-वायु चलने लग जाती है। यह वायु ऊपर वायुमण्डल मे पहुच कर बादलों पर के आवेश को अशत: समाप्त कर देती है। इस प्रकार दोनो बादलो व धरातल के विभवान्तर को कम कर देती है और उस पर विद्युताघात नही होता। यही कारण है कि ऊँची-ऊँची इमारतो, मीनारो तथा चिमनियो आदि पर विद्युताघात से बचने के लिए विद्युत-ग्राहक का उपयोग किया जाता है।

आवेश किया जा सकता है। इसके लिए सग्राहक को बार-बार अचालक पट्टी पर रख कर हाथ से छूना, थोड़ा ऊपर उठाना और फिर पटरी पर रखना पडेगा।

बिजली (Lightning):—जब विपरीत आविगी दो बादल नजदीक आते है तो उनके बीच की हवा मे तनाव बल लगने लगता है, जितना कि दोनो बादलो के बीच विभवान्तर होगा उतना ही अधिक तनाव बल होगा। जब यह तनाव सीमा से अधिक पहुच जाता है, तो दोनो बादलो के बीच हवा के मध्य मे विद्युत विसर्जन हो जाता है। इस क्रिया से तेज प्रकाश की वक्र रेखा बादलो के बीच खिच जाती है व इनके बीच गड़गड़ाहट प्रतिध्वनि के कारण देर तक सुनाई देता है। कभी-कभी धरातल की वस्तु और किसी निकटवर्ती बादल के बीच विद्युत आवेश पर भी बिजली की चमक व तडक उत्पन्न हो जाती है। जब कोई आवेष्ठित बादल, पृथ्वी के निकट पहुचता है, तो उसके द्वारा ठीक नीचे वाले धरातल की चीजो पर विपरीत विद्युत उपपादित हो जाती है—इस प्रकार दोनो के बीच विभवान्तर बढ जाता है। इस विभवान्तर की मात्रा काफी अधिक हो जाने पर विद्युत विसर्जन हो जाता है—बादल से लेकर धरातल तक एक लम्बी चिनगारी पैदा होती है, उसके तत्काल बाद ही गड़गड़ाहट की आवाज आती है, इस प्रकार की विद्युत विसर्जन का चित्र दिखलाया गया है—चिनगारी के साथ उत्पन्न होने वाले तीव्र ताप से हवा मे वाहन धाराएँ उठती हैं—इससे हवा का एकाएक प्रसरण व सकुचन होता है—यही बादल की गरज का कारण है।

बिजली के प्रकार:—मुख्यत: बिजली की चमक की मुख्य रेखा, बादल के किसी भी भाग से निकल कर, मार्ग की सुगमतानुसार इधर-उधर छोटे-छोटे मार्गो मे विभाजित हो जाती है। इसको "तड़ित" बिजली (Streat lightning) कहते है। एक दूसरी प्रकार की विद्युताघात मे चमक रेखा का रास्ता राकेट के चल जैसा होता है, उसे राकेट विद्युताघात (Rockot lightning) कहते है। एक तीसरे प्रकार की विद्युताघात होती है, जिसमे चमक ऊपर से एक प्रकाशमान सोले के रूप मे चल कर कट जाता है और विस्फोट की तरह इसके चारो ओर प्रकाश फैल जाता है। इसे "गोलिय-विद्युताघात" (Ball-lightninig) कहते है। विद्युताघात के प्रकाशन का मार्ग जब छोटा एव सीधा होता है तो 'कडाक' की सी आवाज तथा लम्बा एवं टेढा होने पर कुछ समय तक "चरचराहट" की आवाज सुनाई देती है।

विद्युत-ग्राहक (Lightning-Conductors)—जैसा कि बताया जा चुका है कि जब कोई भी आवेष्ठित बादल भूमि पर आ जाता है तो उसके प्रभाव से ठीक-ठीक नीचे वाली पृथ्वी पर की वस्तुओ मे विपरीत प्रकार की विद्युत उत्पन्न हो

समावेशन (Capacity).—एक गोले (अ) को आवेश देने पर उसका विभव बढ़ता है। दो समान विभव वाली वस्तुओ को आपस मे जोड़ने से उनमें विद्युत का प्रवाह नही होगा, पर यदि उनमे से किसी एक पर आवेश दिया जाय तो विद्युत का प्रवाह इस आवेश दिये जाने वाली वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर बहने लगेगा।

इससे सिद्ध होता है कि आवेश बढ़ता है, अतः विभव आवेश का समानुपाती है। यदि Q कोल्यूम्ब (Coloumb) आवेश देने से V वोल्ट (Volt) विभव होता है तो:

$$Q \propto V.$$

अथवा $Q = C\,V.$

या $\dfrac{Q \text{ कोल्यूम्ब}}{V \text{ वोल्ट}} = C$ या $C = \dfrac{Q}{V}$

C स्थिरांक है—इसे समावेशन कहते हैं। इसकी इकाई फैरड (Farad) होती है, यदि 1 कोल्यूम्ब आवेश देने से 1 वोल्ट विभव बढ़ता है तो समावेश इकाई होगा। यह इकाई फैरड कहलाती है। यदि किसी चालक का समावेशन निकालना हो तो उस पर आवेश देना चाहिये, आवेश देने से जो विभव बढता है, उसको माप लेना चाहिये, आवेश तथा विभव के अनुपात को समावेशन कहेगे।

एक गोलाकार चालक का समावेशन उसके अर्द्धव्यास के बराबर होता है।

एक आँविष्ठित चालक के पास यदि दूसरा अनाविष्ठित चालक का समावेशन बढ़ जाता है तथा इस प्रकार रखे दो चालकों की विधि का समावेशन (Condenser) कहते है, देखिये—

'अ' अविष्ठित चालक है और 'ब' अनाविष्ठित चालक। अ पर धनात्मक आवेश है। यह 'ब' की भीतरी सतह पर ऋणात्मक आवेश उत्पन्न करता है, तथा बाहरी सतह पर धनात्मक ब का ऋणात्मक आवेश 'अ' के + विभव को कम करता है। ब की बाहरी सतह को पृथ्वी से जोड देते है जिससे ब का आवेश चला जाता है।

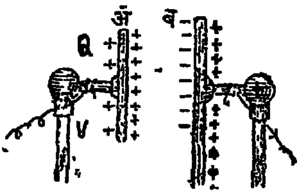

हम जानते है कि.—

$$\frac{Q}{V} = C.$$

अट्ठाईसवाँ अध्याय

विभव तथा समावेशन

विभवः—यदि पानी से भरी एक नाद को ऊँचे स्थान पर रखे और उसके पेंदे में से एक नल नीचे बर्तन मे लगा दे तो पानी ऊँचे धरातल से नीचे की ओर बहने लगेगा।

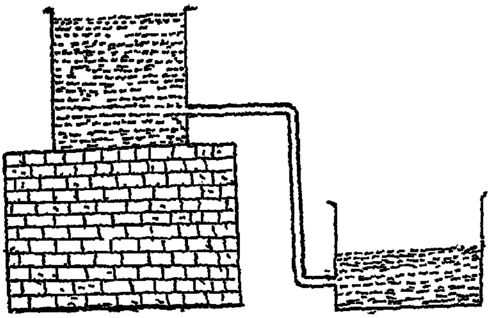

ऊपर दिये हुए चित्र मे पानी (अ) से (ब) की ओर बहता है।

यदि अधिक आवेश वाले गोले (क) को कम आवेश वाले गोले (ब) से जोडा जाय तो विद्युत का प्रवाह (क) से (ख) की ओर होगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि विद्युत अधिक आवेश से कम आवेश की ओर प्रवाहित होती है।

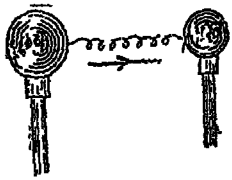

इस स्थिति को जिस से यह ज्ञात होता है कि विद्युत का प्रवाह किस ओर से किस ओर होगा विभव कहते है। विद्युत ऊँचे विभव से नीचे विभव की ओर प्रवाहित होती है। जब हम यह कहते हैं कि 'क' का विभव 'ख' से ऊँचा है तो यह स्वतः ही मान लिया जायेगा कि विद्युत का प्रवाह 'क' से 'ख' की ओर होगा। यह प्रवाह तब तक ही होगा जब तक 'क' और 'ख' का विभव समान नही हो जाता। दो बिन्दुओ के विभव मे जो अन्तर होता है वह विभव अन्तर (Potential difference) कहलाता है। पृथ्वी का विभव हमेशा एक सा ही रहता है, चाहे जितना आवेश इस मे दे दिया जाय।

विभव अन्तर की व्यावहारिक इकाई वोल्ट है। आवेश की इकाई कोल्यूम्ब है।

उनतीसवां अध्याय

विद्युत धारा (Electrical Currents)

जब अधिक आवेश वाले सुचालक को कम आवेश वाले सुचालक से पतले तार द्वारा जोडते है तो विद्युत अधिक आवेश वाले सुचालक से कम आवेश वाले सुचालक की ओर बहने लगती है अर्थात् ऊंचे विभव से नीचे विभव की ओर बहती है। यह विद्युत प्रवाह तब तक होता है जब तक दोनों चालको का विभव बराबर नही हो जाता, विद्युत के इस प्रवाह को विद्युत धारा कहते है। सुचालकों में यह प्रवाह शीघ्र होता है क्योंकि बहुत थोडे समय में सुचालक के दोनों सिरो का विभव समान हो जाता है। परन्तु यदि अलग-अलग रखे हुए सुचालकोंकेबीच विभव का अन्तर रखा जा सके तो हमे धारा प्राप्त हो सकेगी। धन आवेश का अधिक विभव से कम विभव की ओर चलना ही विद्युत धारा कहलाता है। इसी प्रकार ऋण आवेश का ऊंचे विभव से कम विभव की ओर चलना भी विद्युत धारा कहलावेगा।

जब विद्युत धारा द्रवो (घोल तथा गैसों) में होकर प्रवाहित होती है तो धन ऋण आवेश विद्युत क्षेत्र के प्रवाह से विपरीत दिशा में चलने लगते हैं।

वोल्टा का सिद्धान्तः—इस सिद्धान्त के अनुसार दो भिन्न भिन्न-धातु जब स्पर्श मे आती है तो दोनों पर विपरीत आवेश उत्पन्न हो जाता है। इससे उनके बीच कुछ विभव अन्तर भी होता जाता है।

वोल्टीय समूहः—वोल्टा ने इस सिद्धान्त की सत्यता बतलाने के लिये तांबे और जस्ते के बीच होने वाले विभव अन्तर से विद्युत दर्शन द्वारा दिखाया गया,

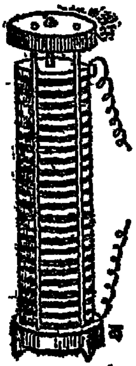

केवल एक-एक पट्टी तांबे और जस्ते की लेने से विभव अन्तर बहुत कम हुआ था, इसलिये उसने कई पट्टियां ली थी। एक तांबे की पट्टी उस पर एक कागज की तह, उसके ऊपर जस्ते की पट्टी फिर एक कागज की तह तब तांबे की पट्टी, इस प्रकार कई पट्टियां रखीं।

जब ऊपर वाली तांबे की पट्टी को नीचे वाली जस्ते की पट्टी से जोड़ा गया तो विभव अन्तर अधिक आया तथा तांबे का विभव धनात्मक और जस्ते का ऋणात्मक पाया गया।

जब श्र का V कम होता है तो C बढ जाता है। इस विधि को समावेशक कहते हैं।

समावेशक का चिन्ह दो खड़ी बराबर की समानान्तर रेखाये (||) है।

जब दो समावेशको की प्लेटों को एक के बाद दूसरी से जोड़ते हैं तो इस जोड़ने की विधि को जोड़ना क्रम मे कहते है।

यदि एक समावेशन का समावेशक C_1 है तथा दूसरे का C_2 तो कुल सयावेशन C निम्न सूत्र से दिया जावेगा.—

$$\frac{1}{C}=\frac{1}{C_1}+\frac{1}{C_2}$$

$$C=\frac{C_1C_2}{C_1+C_2}.$$

यदि दो समावेशको को परस्पर जाड़ा जाता है तो वे समानान्तर मे कहे जाते है।

यदि C_1 तथा C_2 समावेशन है तो कुल समावेशन $C=C_1+C_2$ होगा।

चालक का समावेशन निम्न तीन बातो पर निर्भर करता है.—

1. क्षेत्रफल। 2 आकार। 3. दूसरे चालकों से दूरी।

समावेशक कई प्रकार के होते हैं। रेडियो के मुख्य अवयव समावेशक ही है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विभव क्या है और इसकी इकाई क्या है ?
2. समावेशन की परिभाषा दीजिये।
3. समावेशक का क्या सिद्धान्त है ?
4. समावेशक को क्रम मे तथा समानान्तर मे कैसे जोड़ते है ?
5. फैरड क्या है ? इकाई फैरड की परिभाषा दीजिये।

स्थानीय क्रिया तथा ध्रुवीकरण

1. स्थानीय क्रिया (Local action):—साधारणतः जस्ते की छड़ शुद्ध नही होती, उनमे अन्य पदार्थ जैसे लोहा, सीसा इत्यादि भी मिले रहते हैं, जब इन

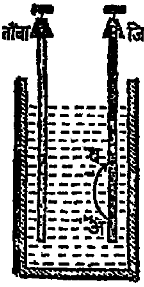

अशुद्धियों में कोई भी धातु जस्ते की सतह पर आ जाती है तो वह अशुद्ध धातु घोल के तेजाब से मिल कर एक छोटी सी घटक (Cell) बन जाती है, अशुद्ध धातु और जस्ते की छड़ पर विद्युत धारा का प्रवाह होने लगता है, इसे स्थानीय क्रिया कहते है। जितनी अधिक अशुद्धि होगी उतनी अधिक छोटी घटके (Cell) बन जायेंगी। इन स्थानीय विद्युत धाराओ से मुख्य धारा मे कोई सहायता नही मिलती। इस क्रिया को स्थानीय क्रिया कहते है।

ध्रुवीकरण (Polarisation):—साधारण वोल्ट घटक में विद्युत धारा प्रवाहित करने पर हाइड्रोजन की एक परत सी तांबे की छड़ पर छा जाती है। इससे विद्युत धारा की शक्ति काफी कम हो जाती है, कभी-कभी विद्युत धारा का प्रवाह भी रुक जाता है। इस प्रकार हाइड्रोजन के जमा होने को ध्रुवीकरण (Polarisation) कहते हैं।

इस ध्रुवीकरण को हटाने के लिये निम्न विधियां काम में ली जा सकती हैं :-

1. कुछ समय के अन्तर से तांबे की छड़ को ब्रुश से स्वच्छ कर दिया जावे। पर यह विधि ठीक नही।

2. उत्पन्न हुई हाइड्रोजन को आक्सीकारक (Oxidising Agent) द्वारा जल मे परिवर्तित कर दिया जाय। इस प्रकार के आक्सीजन पदार्थ हैं:—

(क) पोटेशियम बाइक्रोमेट

(ख) नाइट्रिक ऐसिड

(ग) मैगनीज-डाई-आक्साइड

विद्युत रासायनिक विधि (Electro chemical means)—इस रीति मे दो घोल अलग-अलग लिये जाते है। जब हाइड्रोजन आयन (Ion) दूसरे घोल में प्रवेश करते हैं तो इनकी रासायनिक क्रिया से उसी धातु के धनात्मक आयन (Ion) निकलने लगते है जो कि घटक (Cell) की धनात्मक छड़ होती है। अथवा ऐसी गैस निकालती है तो धनात्मक छड़ पर पर्त नही बनाती।

डेनियल घटक (Cell)—इस घटक में पारा चढ़ी हुई जस्ते की छड़ गधक के हल्के तेजाब मे डूबी रहती है। छड़ के सिरे पर तार जोड़ने के लिए पेच

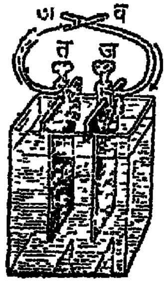

वोल्टा का साधारण घटक (Cell)—इसमे एक कांच के बर्तन मे हल्का गंधक का तेजाब भरा होता है, उसमे एक तांवे और जस्ते की छड़ डुबो दी जाती है । जब पतले तार द्वारा इन्हे आपस मे जोड़ देतें हैं तो इलेक्ट्रोन जस्ते मे तावे की ओर प्रवाहित होने लगते हैं। इस प्रकार विद्युत धारा स्थापित हो जाती है। इसमें तांवे की प्लेट का विभव अधिक और धनात्मक होता है, जस्ते का कम व ऋणात्मक । धन आवेश, तांवे की छड से जस्ते की प्लेट की ओर प्रवाहित होता है। घटक (Cell) में विद्युत धारा के वोल्टा का साधारण प्रवाह को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है :—

घटक:—गंधक के तेजाब मे डुबाने पर तावे की पट्टी पर धन आवेश और घोल ऋण आवेश स्पर्श के कारण उत्पन्न हो जाते है । जस्ते की छड पर, घोल मे डुबोने पर ऋण आवेश उत्पन्न हो जाता है और इसका विभव घोल के विभव से कम होता है। इस प्रकार घोल मे रखे तावे और जस्ते की छड़ों के बीच विभव अन्तर स्थापित हो जाता है। जब तक छडो को तार से नही जोड़ते तब तक दोनों छड़ो का विभव अन्तर 'विद्युत वाहक बल' (Electromotive force E. M. F.) कहलाता है। यह विद्युत वाहक वल व्यावहारिक इकाई वोल्ट है।

जब धन आवेश वाली तावे की छड को ऋणावेश वाली जस्ते की छड से जोड़ देते हैं तो धारा ऊंचे विभव वाली ताँवे की छड से कम विभव वाली जस्ते की छड की ओर बहने लगती है। इससे विभव अन्तर कम होने की चेष्टा करता है। विभव अन्तर बनाये रखने के लिये जस्ते के और आयन (Ion) घोल में चले जाते हैं और गंधक के तेजाब मे मिल जाते है। रासायनिक क्रिया निम्नलिखित है:—

$$\overset{++}{Zn} + H_2SO_4 = ZnSO_4 + 2H^{-}$$

अतः हाइड्रोजन के दो आयन (Ion) जस्त के प्रत्येक आयन (Ion) के घुलने से उत्पन्न होगे। हाइड्रोजन के आयन (Ion) अपना आवेश तावे की छड़ को दे देते हैं। क्रिया चलने लगती है। जब पुन. विभव समान होने लगता है तो जस्ते के कुछ और आयन (Ion) घोल मे चले जाते हैं । इस प्रकार जस्ता घुलता रहता है और क्रिया चलती रहती है।

इस घट में—चूंकि विद्युत का प्रवाह धन आवेश से ऋण की ओर मानते हैं इसलिये विद्युत प्रवाह वाहर तांवे से जस्त की छड की ओर होगा, परन्तु घटक (Cell) के भीतर जस्ते से तावे की छड़ की ओर होगा।

मिश्रण होता है। कार्बन की छड धनात्मक होती है और जस्ते की छड़ ऋणात्मक। इसमे जस्ते और अमोनियम क्लोराइड से हाइड्रोजन निकलती है, यह रंध्रमय बर्तन से भीतर पहुचती है व मैंगनीज डाइ आक्साइड से मिल कर पानी बना देती है और ध्रुवीकरण नही होता। इसे अधिक समय तक काम मे नही ले सकते क्योंकि इसमें हाइड्रोजन अधिक बनती है।

सूखी घटक (Dry cell).—ये लेकलांशी घटको का ही दूसरा रूप है। इसमे किसी प्रकार का घोल नही होता। अतः इनको किसी भी स्थिति मे रखा जा सकता है और कही भी ले जाया जा सकता है।

प्राथमिक (Primary) और सेकेन्डरी घटक मे यही अन्तर है कि प्राथमिक घटक मे जो पदार्थ रासायनिक क्रिया से व्यर्थ हो जाते है वे सेकेन्डरी मे उल्टी दशा मे विद्युत प्रवाह करने से पुनः क्रियात्मक हो जाते है।

(घटकों का क्रम व समानान्तर में जमाना)

क्रम मे:—इस विधि मे विभिन्न घटकों को को ऐक शृङ्खला मे इस प्रकार

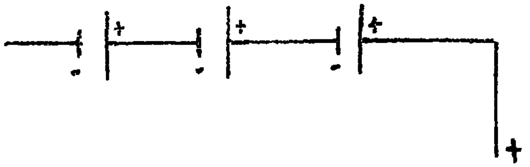

एक के बाद एक लगाते है कि पहली घटक की कम विभव वाली प्लेट एक दूसरी घटक की अधिक विभव वाली प्लेट से जोड़ देते है, दूसरे घटक की प्लेट तीसरी घटक की अधिक विभव वाली प्लेट बड़ी रेखा से इस प्रकार जितनी घटकें जोड़नी हो जोड़ दी जाती है। ऊपर चित्र मे घटक की अधिक विभव वाली प्लेट दिखाई गई है और छोटी रेखा से कम विभव वाली प्लेट भी दिखलाई गई है।

यह इसलिए किया जाता है कि अधिक शक्ति वाली विद्युत धारा की आवश्यकता एक घटक से पूर्ण नही होती। इस प्रकार घटको को जमाने से शक्ति बढ जाती है, अतः धारा की शक्ति बढाने के लिए क्रम मे लमाना चाहिये, माना कि एक घटक की प्लेटो का विभव अन्त 1·5 वोल्ट है

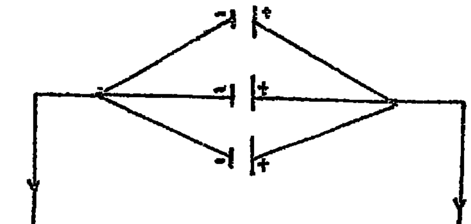

तथा पाच घटक लगाये गये हैं तो कुल विभव का अन्तर 1·5+5 =6·5 वोल्ट।

और ढिबरी लगी रहती है । यह घोल सफेद मिट्टी के बने एक रंध्रमय (Porous) वर्तन के व व' में रहता है । यह वर्तन तावे के बड़े वर्तन मे रहता है । तांवे और रंध्रमय वर्तन के बीच मे नीले थोथे का सतृप्त घोल होता है । तावे के वर्तन पर किनारे पर एक पेच लगा होता है ।

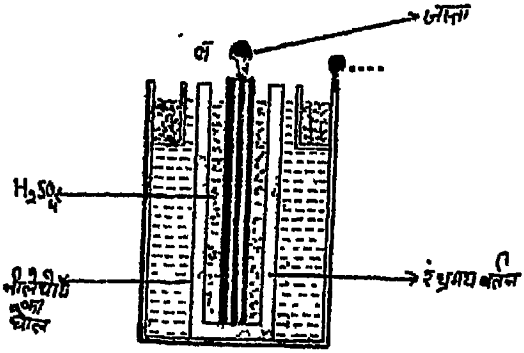

डेनियल घटक (Cell)

तावे का वर्तन अधिक विभव वाली छड और जस्ते की छड कम विभव वाली छड है । जस्ते के आयन (Ion) घोल मे मिल जाते है, जिससे जस्ते पर ऋण आवेश आ जाता है, आयन स्वयं घनात्मक होते हैं । हाइड्रोजन जो जस्ते और गंधक के तेजाब की क्रिया से बनती है, रंध्रमय वर्तन से निकाल कर नीले थोथे से सयोग करके तांवा बनाती है तथा गंधक के अम्ल बनाती है ।

$$2H+Cu\ SO_4=H_2\ SO_4+Cu$$

तांवे के आयन (Ion) तांवे की प्लेट पर जमा हो जाते है और फिर अपना आवेश तावे के वर्तन को दे देते है, इस बल का विद्युत वाहक बल (E.M.F.) 1·1 वोल्ट होता है ।

लेकलांशी घटक (Laclenchi cell):—इसमें एक चौड़े मुंह की बोतल होती है तथा इसमें अमोनियम क्लोराइड का घोल भरा होता है । घोल में एक जस्ते की छड होती है । वर्तन के रंध्रमय मिट्टी के वर्तन मे एक कार्वन की छड होती है, इस छड़ के चारो ओर मैगनीज-डाइ-आक्साइड और कार्वन के चूर्ण का

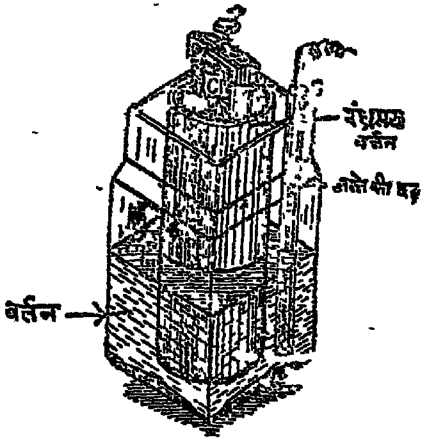

लेकलांशी घटक (Laclanchi Cell)

लेप्लेस का सिद्धान्तः—किसी इकाई चुम्बकीय ध्रुव पर विद्युत धारा द्वारा लगने वाले बल का मान निकालने के लिये लेप्लेस ने अपना सिद्धांत दिया है। यदि एक तार का बना वृत्त AB है, उसमें C विद्युत प्रवाहित हो रही है, उसका अर्द्धव्यास r से० मी० है। अब यदि इकाई चुम्बकीय ध्रुव इस वृत्त के केन्द्र पर रखा जाय तो C धारा द्वारा लगाया हुआ बल F होगा।

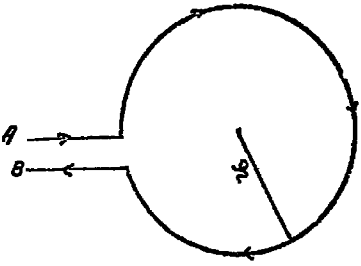

1. धारा की शक्ति का समानुपाती होगा : $F \propto C,$

2. तार की परिधि का समानुपाती होगा :

$$F \propto AB$$

या $F \propto 2\pi r.$

3. वृत्त के अर्द्धव्यास के वर्ग का न्यूनतम समानुपाती होगा :

$$F \propto \frac{1}{r^2}$$

अत:
$$F \propto \frac{2\pi r\, C.}{r^2} = \frac{2\pi\, C}{r}$$

यदि वृत्त के n चक्कर हो तो बल :

$$F \propto \frac{2\pi cn.}{r}$$

$$F = K\frac{2\pi cn.}{r}$$ K स्थिरांक है।

परन्तु केन्द्र पर रखी हुई चुम्बकीय सुई पर बल होता है।

$$F = H \tan\theta.$$

यहा $F = K\frac{2\pi n c}{r.}$ K विद्युत की इकाई पर निर्भर करता है

यहां हम इसे 1 मानेंगे, अत K=1

$$\frac{2\pi n. c}{r,} = H \tan\theta.$$

$$2\pi n.\ c. = r\,H \tan\theta.$$

$$C = \frac{r\,H.}{2\pi n} H \tan\theta.$$

तीसवाँ अध्याय

धारा के चुम्बकीय प्रभाव

चुम्बकत्व और विद्युत मे बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। ओरस्टैड ने 1819 ई० में यह देखा कि जब एक पतले तार के पास, जिसमें विद्युत प्रवाह हो रहा हो एक चुम्बकीय सुई लायें तो वह घूम जाती है, यदि धारा की दिशा बदलें तो सुई के घूमने की दिशा भी बदल जाती है। भौतिक विज्ञान का वह अंग जिसमे विद्युत धारा के चुम्बकीय प्रभाव का वर्णन होता है वैद्युतिक चुम्करव कहलाता है।

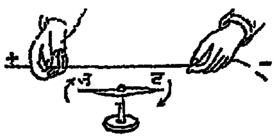

एम्पीयर का नियम—

एम्पीयर ने विद्युत धारा के प्रभाव के कारण चुम्बकीय सुई के घूमने की दिशा के सम्वन्ध मे अपना नियम इस प्रकार दिया था :—

"कल्पना कीजिये कि कोई तैराक, अपना मुंह सदैव कम्पास की सुई की ओर करके विद्युत्वाही तार की धारा की दिशा में तैर रहा है तो सुई का उत्तरी ध्रुव उसके बायें हाथ की ओर घूम जावेगा।" एक समतल चिकने कार्ड बोर्ड के बीच में एक छेद में से मोटा तावे का तार लगा दीजिये, अब कुछ लोहे का बुरादा उस तख्ते पर डाल दीजिये, तार मे विद्युत प्रवाह कीजिये उंगली से तख्ते को खटखटाने से लोहे का बुरादा विशेष रेखाओं मे जम जाता है। ये बल रेखायें हैं। तार मे विद्युत की दिशा बदलने से इन बल रेखाओं की दिशा भी बदल जाती है।

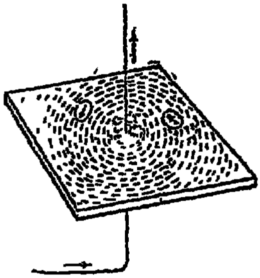

इसमे विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि तार के समीप किसी भी बिन्दु पर दो चुम्बकीय क्षेत्र लगते हैं। एक पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र और दूसरा विद्युत धारा के कारण उत्पन्न चुम्बकीय क्षेत्र।

का सूचक ऊपर से देखने में वृत्त के लम्ब स्वरूप दिखता है। अब जितने तार के वृत्त काम मे लेने हों उन पेचों से विद्युत तार जोड़ दिये जाते है। विद्युत प्रवाह से सुई घूमती है। कोण नाप लिया जाता है। θ इस प्रकार लिया गया। r भी डोरे की सहायता से नाप लिया जाता है।

$$\text{अतः धारा } C = \frac{10.\, r\, H}{2\pi\, n} \tan\theta$$

θ ज्ञात हो गया n वृतो की संख्या है, r वृत्त का अर्द्ध व्यास है। H का मूल्य दिया होता है, अतः धारा की शक्ति एम्पीयर है।

—: अभ्यासार्थ प्रश्न :—

1. धारा के चुम्बकीय प्रभाव दिखलाने के प्रयोगों का वर्णन करो ?
2. एम्पीयर का सिद्धांन्त क्या है ?
3. टेन्जेन्ट गेल्वेनोमीटर में धारा मापक का वर्णन करो ?

वह विद्युत जो किसी 1 से० मी० अर्द्धव्यास वृत्त के केन्द्र पर रखे हुए इकाई ध्रुव पर 2π डाइन का बल लगाये इकाई वैद्युतिक चुम्बकीय धारा (Electro magnetic current) कहलाती है।

विद्युत धारा की व्यावहारिक इकाई एम्पीयर है।

$$1 \text{ एम्पीयर} = \frac{1}{10} \text{ वैद्युतिक चुम्बकीय इकाई}$$

उपरोक्त सूत्र मे C वैद्युतिक चुम्बकीय इकाई मे मानी गई है।

अत. एम्पीयर मे इसका मान

$$C = \frac{10\, r\, H}{2\, \pi\, n} \tan. \text{ होगा।}$$

इस सूत्र में r, n, π, H, स्थिर है

अतः धारा C, tan θ की समानुपाती होगी

$$C \propto \tan \theta$$

टेन्जेन्ट गेल्वेनोमीटर—(धारा मापक)

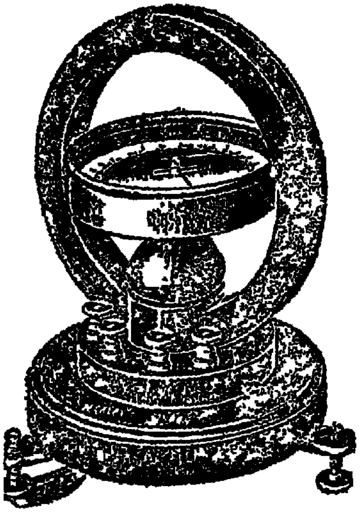

इस सिद्धान्त पर जो यंत्र धारा की शक्ति नापने के लिये, बनाया गया है टेन्जेन्ट धारामापक यंत्र कहलाता है, इसका वर्णन यहा दिया गया है।

अ ब एक वृत्त है जिसमे तार चढ़ाये गये हैं, इनकी सख्या को सुविधानुसार काम मे ले सकते है। नीचे लगे पेचो से इन तारो का सम्बन्ध है, पेचो पर तारो की सख्या लगी है, जिस सख्या के पेच से तार जोडते है, उतने तार कार्य मे आ जाते है। इस वृत्त के केन्द्र पर एक बक्स मे चुम्बकीय सुई रखी है। सुई की लम्बाई से लम्ब बनता हुआ एक सूचक, जो अल्यूमिनम का बना होता है, लगा है। सुई के नीचे गोलाकार पैमाना है जिस पर सूचक घूमता है, यह 360° मे बंटा है। पैमाने पर सुई के ठीक नीचे दर्पण है, जो सही माप लेने मे सहायता करता है।

विधि—पहले इस धारा मापक के पैंदे मे लगे पेचो को धरातल में समान करते है। अब सुई को चुम्बकीय देशातर मे रखते हैं। इस अवस्था मे अल्यूमिनम

मिला देते है। इससे पानी की चालकता बढ जाती है। इलेक्ट्रोडो पर पानी से भरी दो नलियाँ उल्टी लगा दी जाती हैं। इलेक्ट्रोडो की सहायता से पानी मे विद्युत प्रवाह किया जाता है। दोनो नलियों में से हवा के बुलबुले ऊपर चढ़ने लगते हैं तथा पानी नीचे उतरने लगता है। देखने से पता लगेगा कि एक नली में गैस का आयतन दूसरी नली की गैस के आयतन से दुगना है। प्रयोग से ज्ञात है कि दुगनी आयतन वाली गैस हाईड्रोजन है तथा दूसरी आक्सीजन।

फेराडे के विद्युत विच्छेदन का नियम

फेराडे ने विद्युत विच्छेदन के बारे में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया और अन्त मे वह दो नियमो पर पहुचा जिन्हे कि फेराडे के विद्युत विच्छेदन के नियम कहते हैं। इसका पहला नियम यह है कि जब किसी घोल मे से विद्युत प्रवाहित की जाती है तो आयन विघटित होते है तथा प्रवेश द्वारों पर इकठ्ठे होते हैं और इकठ्ठें होने पदार्थो की मात्रा गुजरने वाली विद्युत के समानुपाती होती है। अगर हम यह माने कि किसी वोल्टामीटर मे से T सैकिन्ड के लिए C विद्युत प्रवाहित की जाय और उसमे एकत्रित होने वाले पदार्थ की मात्रा M ग्राम है तो फेराडे के नियम के अनुसार:—

$$M \propto C \times T$$

फेराडे का दूसरा नियम यह है कि जब एक सी विद्युत धारा विभिन्न घोल (Electrolyte) मे से गुजारी जाती है तो उनमे एकत्रित होने वाले विभिन्न पदार्थ उनके समतुल्य भार के समानुपात मे होते है। अगर यह माना कि दो वोल्टामीटरों मे विद्युत धारा गुजारी जा रही है-प्रथम मे M^1 ग्राम, द्वितीय में M_2 ग्राम एकत्रित हुए हैं और इनका रासायनिक तुल्यांक क्रमश: K_1 K_2 हों तो

$$\frac{M}{M_?} = \frac{K_2}{K_1}$$

रासायनिक तुल्यांक:—फराडे के नियम द्वारा हम देखते है कि

$$M \propto C \times T$$

अगर हम इसमें कोई स्थिरांक लगायें तो देखेंगे कि

$$M = E\ C \times T$$

यहां पर F एक स्थिरांक है जिसे हम विद्युत रासायनिक तुल्यांक करते है। अगर करेन्ट A और समय 1 सैकिंड है तो

$$M = E$$

इस प्रकार रासायनिक तुल्यांक की परिभाषा निम्नलिखित हुई.—

किसी पदार्थ को रासायनिक तुल्यांक पदार्थ की ग्राम मे वह मात्रा है जो कि एक इकाई धारा के 1 सैंकिंड के लिए उसके घोल में से गुजरने पर प्राप्त होती है।

एकतीसवाँ अध्याय

विद्युत के रासायनिक प्रभाव

विद्युत विच्छेदन:—सभी द्रव पदार्थ सिवाय पारे के, शुद्ध अवस्था में विद्युत के लिये कुचालक होते हैं। जब इन द्रवों में कोई तेजाब मिला देते हैं तो इनकी विद्युत चालकता बढ जाती है। पानी में घुलते ही धातीय नमक अथवा तेजाब दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। दो भागों मे से एक धन आवेष्ठित (+) एवं दूसरा ऋणावेष्टित (—) होता है। यह क्रिया आयनिक पृथक्कीकरण (Innic dissociation) कहलाती है। इस द्रव के घोल मे यदि धातु के दो छड़ डाल कर उनके बीच कुछ विभव अन्तर स्थापित कर दिया जाय तो आवेष्ठित आयन विपरीत आवेश वाली छड़ की ओर चलने लगती है।

१. घोल को विच्छेदक (Electrolyte) कहते हैं।

२. जिस बर्तन मे यह सब होता है उसे वोल्टामीटर कहते हैं।

३. धातु के छड़ों को प्रवेश द्वार (Electrod) कहते है।

४. जिस इलेक्ट्रोड से विद्युत वोल्टामीटर मे प्रवेश करती है वह धनोद (Anode) कहलाते है।

५ जिस इलेक्ट्रोड से विद्युत वोल्टामीटर से बाहर निकलती है वह ऋणोद (Cathode) कहलाता है।

६. धनोद (Anode) पर इकट्ठे होने वाले आयन धनायनु (Anion) कहलाते हैं।

७. ऋणोद पर इकट्ठे होने वाले आयन 'ऋणायन' (Cation) कहलाते हैं।

८. धनायन चूंकि ध्रुव की ओर जाते है, अतः उनका आवेश ऋणात्मक होता है।

९. ऋणायन का आवेश धनात्मक होता है।

इस क्रिया को विद्युत विच्छेदन कहते हैं।

पानी अथवा अम्ल के पतले घोल का विद्युत विच्छेदन—पानी का विद्युत विच्छेदन करने का यन्त्र नीचे वर्णित किया गया है :—

इसमें एक बर्तन सा होता है, इसके पेंदे प्लेटिनम धातु की दो छड़ 'इ' 'इ' लगे होते हैं, ये दोनों ही वोल्टामीटर के प्रवेश द्वार हैं। बाहर ये संयोजक मे पेच प प से जुडे हैं। पानी को बर्तन 'स' मे भर कर उसमे गन्धक के तेजाब की कुछ बूँदें

बत्तीसवाँ अध्याय

विद्युत के ताप के प्रभाव

जूल नामक वैज्ञानिक ने विद्युत के ताप के प्रवाह पर काफी अध्ययन किया और उसने यह कहा कि जब किसी भी तार में से विद्युत धारा गुजारी जाती है तो वह तार गरम हो जाता है, इसने कई प्रयोगो के आधार पर कुछे नियम बनाये जिन्है उनके नाम पर जूल के नियम कहते हैं। यह निम्नलिखित है:—

1. जब किसी तार मे से विद्युत धारा गुजारी जाती है तो उत्पन्न हुए ताप की मात्रा उसमें से बहने वाली विद्युत की मात्रा के वर्ग के समानुपात में होती है अर्थात् अगर हम उत्पन्न हुए ताप को H मानें और उसमे से बहने वाली विद्युत धारा को C तो :

$$H \propto C^2$$

2. तार मे विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है तो उत्पन्न हुई विद्युत उसके प्रतिरोध के समानुपात मे होती है अर्थात् हम उत्पन्न हुई ताप की मात्रा को H माने और तार प्रतिरोध को R तो :

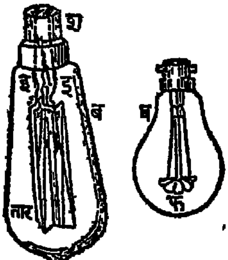

$$H \propto R$$

3. जब किसी तार मे से विद्युत धारा गुजारी जाती है तो उत्पन्न हुई ताप की मात्रा उस समय के समानुपात मे होती है, जितने समय के लिये उसमें से विद्युत प्रवाहित की गई और H यदि इसे हम विद्युत ताप की मात्रा T मानें तो :

$$H \propto T$$

इस प्रकार तीनों नियमो को हम गणित द्वारा निम्न तर्क से दर्शा सकते है—

$$H \propto C^2$$

$$H \propto R$$

$$H \propto T$$

$$\therefore H \propto C^2RT$$

$$\therefore H = \frac{1}{J} C^2RT$$

विद्युत कलई करना (Electro Plating).—यह विद्युत विच्छेदन के आधार पर आधारित एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्यापारिक क्रिया है, इस क्रिया में किसी भी धातु के वर्तन अथवा पदार्थ पर दूसरे कोई चमकदार धातु की तह विद्युत विधि से चढ़ाई जाती है, जिस वस्तु पर कलई चढ़ानी होती है उसको अच्छी तरह साफ करके एक तांबे के तार से बांध कर जिस वस्तु की कलई चढ़नी होती है उसको किसी लवण के घोल मे डुबो लेते हैं। अब जिस वस्तु के कलई छड़ानी होती है उसकी एक छड भी एक तावे के तार से बांध कर उस लवण के घोल मे डुबो दी जाती है, फिर विद्युत का प्रवाह उसमें से गुंजारा जाता है। छड को धनोद (Anode) और वस्तु को ऋणोद (Cathode) बनाते हैं। विद्युत विच्छेदन के कारण घोल का आयतन अलग–अलग हो जाता है और वस्तु का आयतन जिस पर कलई चढानी होती है उस पर इकट्ठे होने लगते हैं। इन आयतन की पूर्ति के लिए धारा घोलने लगती है। इस कार्य के लिए कम शक्ति की धारा चाहिए। इस प्रकार से साधारणतया कलई, निकल, चांदी, सोना इत्यादि धातुओं की की जाती है।

प्लेटिनम अथवा निकल की कलई के लिये जो घोल बनता है वह अधिकतर नीचे लिखा होता है —

निकल सफ्लटिक	१००	ग्राम
साधारण नमक	३	ग्राम
सोडियम क्लोराइट	६	ग्राम
वरक असमड	२५	ग्राम
और पानी	५	लीटर

चांदी की कलई के लिए सिलवर नाइट्रेट अथवा सिलवर नाइट्रेड आदि का प्रयोग किया जाता है। सोने की कलई के लिए धलांड क्लोराइड और पोटेशियम सनट का प्रयोग किया जाता है।

विद्युत विच्छेदन के द्वारा उद्योग के क्षेत्र मे Electric typing का भी प्रयोग बढता जा रहा है। इसका अधिकतर प्रयोग ग्रामोफोन के रेकार्डस् बनाने वाले करते है। इसमें किसी धातु को ऐसी सतह के ऊपर जमाना होता है जो कि सुचालक होती है और जब यह सतह के ऊपर व धातु निश्चित आकार में जम जाता है तो उसके सांचे के रूप में काम में लिया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विद्युत विच्छेदन की क्रिया क्या है, समझाओ।
2. फैराडे के विद्युत विच्छेदन के नियम क्या हैं?

तेतीसवाँ अध्याय

विद्युत प्रतिरोध तथा ओह्म (Ohm) का नियम

प्रतिरोध (Resistance).—कुछ पदार्थो जैसे काच, अभ्रक, लकड़ी, मोम, रबड़ आदि विद्युत को अपने मे से प्रभावित नही होने पाते हैं। ऐसे पदार्थों को विद्युत का कुचालक कहते है। कुछ ऐसे पदार्थ भी है जो कि अपने मे से विद्युत को सुगमता पूर्वक गुजार देते है, जैसे तांबा, चांदी, लोहा, प्लेटिनम आदि इन पदार्थों को हम विद्युत का सुचालक अथवा चालक कहते है। इन सुचालको मे भी हम देखते है कि कुछ पदार्थ अधिक जल्दी विद्युत अपने मे से गुजार देते है। जबकि कुछ कम लेकिन फिर भी किसी भी पदार्थ मे से अगर विद्युत गुजारी जाती है तो उसमे से गुजरने मे कुछ समय लगता है अर्थात वह पदार्थ विद्युत के प्रवाह को रोकने की इस चेष्टा का नाम प्रतिरोध है। यह प्रतिरोध किसी भी पदार्थ की प्रकृति पर निर्भर होता है। सोने के तार मे प्रतिरोध सबसे कम होता है, तावे मे उससे अधिक तब भी तावे के तार ही विद्युत को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के काम मे लाये जाते है, क्योकि स्वर्ण बहुत अधिक मूल्यवान होता है, इसलिए तावे के तार काम मे लाये जाते है। प्रतिरोध का सम्बन्ध ओह्म (Ohm) ने ज्ञात किया था। उसका कहना यह था कि विभव (Voltage) धारा का समानुपाती है।

$$V \propto C$$
$$\therefore V = CR$$

एक तार अ ब है इसमे I एम्पीयर की विद्युत प्रवाहित की जा रही है विद्युत अ से ब की ओर वह रही है। अत: अ ऊचे विभव पर है और ब नीचे विभव पर, यदि अ और ब का विभव अन्तर V वोल्ट है तो विभव अन्तर धारा शक्ति का सीधा समानुपाती होगा

अर्थात्

$$V \propto C.$$

या $V = C\,R.$

अत: $\dfrac{V \text{ वोल्ट}}{C \text{ एम्पीयर}} = R$

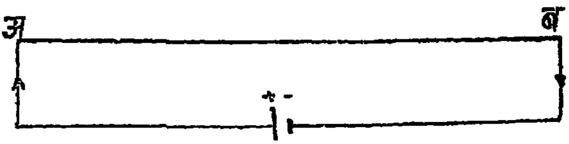

R उस तार का प्रतिरोधक कहलाता है। इसकी इकाई ओह्म होती है।

$$1 \text{ ओह्म} = \frac{1 \text{ वोल्ट}}{1 \text{ एम्पीयर}}$$

यहां $\frac{1}{J}$ एक स्थिराक है और J को हम जूल्स के नाम से पुकारते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर विद्युत तापक (Heater) विद्युतलोहा (Electric Iron) इत्यादि बनाये गये है।

विद्युत तापक (Heater):—इसे एक ऐसा धातु का पतले तार के कुंडली के आकार मे चीनी मिट्टी की प्लेट मे इस प्रकार रखते हैं कि तार के कुंल एक दूसरे को छू न सकें, जिसका द्रवणांक बहुत अधिक हो। यह तार निकल व प्लेटमियम के मिलाने से मिश्र धातु के बने होते है, जिसे नाईक्रीम कहते हैं। इस नाईक्रीम नामक मिश्रित धातु का द्रवणांक बहुत अधिक होने के कारण जब विद्युत धारा इसके तार से प्रवाहित की जाती है तो यह गरम हो जाता है और ताप देने लगता है। इस प्रकार बने हुए ताप विद्युत तापक खाना बनाने, पानी को गरम करने आदि के काम मे लाये जाते हैं।

विद्युत लोहा (Electric Iron).—यह भी विद्युत तापक के आधार पर ही बनाया जाता है। इस मे उसी प्रकार ऊंचे द्रवणाक वाले किसी मिश्र धातु के पतले तार की कुंडली सी होती है। कुंडली के बीच तथा नीचे और ऊपर अभ्रक आदि ऐसे पदार्थ का उपयोग किया जाता है जिनका कि द्रवणाक बहुत अधिक हो और जो विद्युत के कुचालक भी हो जिससे कि लोहे के बर्तन अथवा इस्तरी पर विद्युत धारा का कोई भी प्रवाह न हो सके क्योंकि अगर ऐसा न हो तो तार लोहे को छू लेगा और हमारे हाथ में विद्युत आने का हमेशा खतरा बना रहेगा।

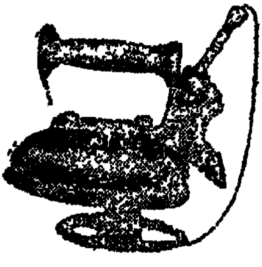

वैद्युतक लोहा (इस्तरा)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जूल के विद्युत के तापीय प्रभाव के नियमो का वर्णन करें।
2. विद्युत लोहा और बिजली के Lamp की बनावट व कार्यों का वर्णन करे।

है श्रौर इसी प्रकार तापक्रम कम कर देने से उसका प्रतिरोध भी कम हो जाता है। इनके लिए जो सूत्र काम में लिए जाते है, वह निम्नलिखित होंगे:—

RT=RO (IT+=AT)

विभव श्रन्तर नापने वाले यन्त्र वोल्ट मीटर (Volt meter) तथा धारा शक्ति एम्पीयर में नापने वाला एम्मीटर (Ammeter) कहलाता है।

एक धारा मापक के संयोजक पेचों के समानान्तर प्रतिरोध लगाने से एम्मीटर बनता है। इससे सीधे एम्पीयर्स में धारा नापी जा सकती है।

एक धारा मापक में क्रम से श्रेणी उचित मात्रा मे प्रतिरोध लगाने के विभव श्रन्तर मापक यंत्र (Volt meter) वोल्ट मीटर बन जाता है, श्रब हम इसी का वर्णन करेंगे:—

यंत्र में तांबे का तार में कुछ लपेटो से बनी श्रायताकार वेस्टन (Coil) श्रल्यूमिनियम के फ्रेम में लगी हुई सीधी झूलती है। वेष्ठन के श्रामने-सामने के सिरों पर एक एक कील होती है जिन पर कमानी लिपटी होती है। कमानियों के लपेट इस प्रकार होते हैं कि यदि ऊपर वाली कमानी खुलती है तो नीचे वाली बन्द होती है। कमानियो के दूसरे सिरे संयोजक पेचो (प प) से जुड़े रहते है।

वेष्ठन के इधर-उधर नाल चुम्बक के विपरीत ध्रुव रखे रहते हैं। वेष्ठन के साथ लम्बा सूचक लगा होता है। इसके श्रंग नीचे श्रलग श्रलग दिखलाये गये है।

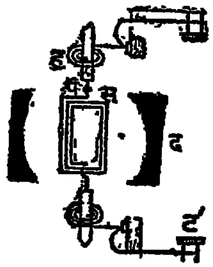

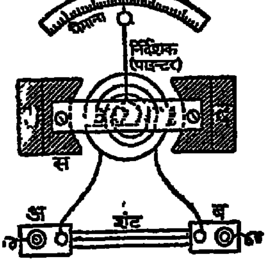

इस धारा मापक (Galvonometer) में यदि प्रतिरोध संयोजक पेचों के बीच लगा दिया जाता है तो यह एम्मीटर बन जाता है। पैमाना जिस पर सूचक घूमता है, एम्पीयर में बँटा होता है। धारा की शक्ति को सीधा एम्पीयर में पढ़ा जा सकता है।

माना कि किसी घटक की धारा शक्ति को नापना है तो श्रगले पेज पर दिये हुए चित्र के श्रनुसार एम्मीटर को लगाते है। विद्युत का प्रवेश, यंत्र में + चिन्ह वाले संयोजक से होना चाहिए।

श्रोह्म के नियम की जांच करना :—चाल मे एक के अनुसार एक तार 'श्र' श्रौर 'ब' लो। 'श्र' श्रौर 'ब' को एक वोल्ट मीटर (Volt meter) से जोड़ दो। अब 'श्र' को एक बैटरी उसके वाद एक प्रतिरोध श्रौर फिर एक गैलवेनोमीटर (Galvono meter) से जोड़ते हुए 'व' से जोड़ो, अगर अब प्रतिरोव की कुन्जी सरकाई जावे तो ताल 'श्र' श्रौर 'ब' के बीच का विभव ताल उसमे से बहता हुश्रा करेन्ट क्रमशः वोल्ट मीटर श्रौर 'श्र' मीटर की सहायता से ज्ञात हो जावेगा। अब प्रतिरोध तार की कुंजी को सरकायें वोल्टमीटर मे श्रौर 'श्र' मीटर मे श्रर्थात् गैलवेनो मीटर मे फिर श्रन्तर श्रायेगा, इनको भी नोट कर लो। इस प्रकार तीन वार बराबर प्रयोग करो, श्राप देखोगे कि विभव का श्रन्तर श्रौर धारा मे सदैव एक निश्चित श्रनुपात रहता है।

श्रापेक्षित प्रतिरोध :—प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्रतिरोव तार की लम्बाई के समानुपात मे तथा उनके क्रॉस-सैक्शन (Cross Section) के क्षेत्रफल के विपरीत श्रनुपात मे होता है।

यदि हम वस्तु का प्रतिरोध R मानें, उसकी लम्वाई श्रौर उसकी क्रॉस सैक्शन का क्षेत्रफल S है तो हम देखेंगे :—

$$R \propto L$$

$$R \propto \frac{1}{S}$$

$$\therefore R \propto \frac{L}{S}$$

$$\because R = K = \frac{L}{S}$$

यह K एक स्थिरांक है, जिसे श्रापेक्षित प्रतिरोध कहते है। इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की जाती सकती है :—

यदि हम L एक इससे ले

$$S = L^2$$

तो हम देखेंगे कि R, K के बराबर हो जाता है। इस प्रकार किसी वस्तु का श्रापेक्षित प्रतिरोध ऐसी वस्तु का वह प्रतिरोध है जिसकी लम्बाई 1 सेन्टीमीटर तथा क्रॉस सैक्शन का क्षेत्रफल 12 सेन्टीमीटर है।

प्रतिरोध श्रौर तापक्रम:—वस्तु का प्रतिरोव तापक्रम पर निर्भर होता है श्रर्थात् यदि हम किसी वस्तु का तापक्रम बढ़ा दे तो उसका प्रतिरोध भी बढ़ जाता

चित्र मे (A) एम्मीटर और (V) वोल्टमीटर है। V प्र और ब के बीच विभव अन्तर नापेगा और A विद्युत धारा की शक्ति नापेगा।

ओह्म के नियम के अनुसार:—

$\frac{V}{A}$=R का प्रतिरोध होना चाहिये

अब A का मान बदला जाता है तो V अपने आप इतना हो जाता है कि V और A का अनुपात R के बराबर आता है, इस प्रकार ओह्म का नियम सिद्ध किया जाता है।

ओह्म के नियम का सत्यापन प्रयोग की निरीक्षण तालिका

क्रम	एम्मीटर से धारा C एम्पीयर में	वोल्टमीटर मे विभव अन्तर	$\frac{V}{C}$=R.
1.	·2	·8	$\frac{·8}{·2}$=4 ohm
2.	·1	·4	$\frac{·4}{·1}$=4 ohm
3.	·3	1·2	$\frac{1·2}{·3}$=4 ohm

इस प्रकार प्रयोगशाला में ओह्म के नियम की सत्यता सिद्ध की जाती हैं:—

प्रतिरोध को क्रम में तथा सामान्तर में सजाना

यदि चार प्रतिरोधों r_1, r_2, r_3, r_4 को नीचे दिये लगाये तोवे क्रम मे कहे जायेंगे।

तो कुल प्रतिरोध $R=r_1+r_2+r_3+r_4$ होगा।

यह ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा यन्त्र के टूटने का भय होता है।

वोल्टमीटर:—ऊपर वर्णित धारा मापक मे वेष्ठन की श्रेणी में अधिक प्रतिरोध लगाने से वोल्टमीटर बन जाता है। नीचे देखिए चित्र (वोल्टमीटर)

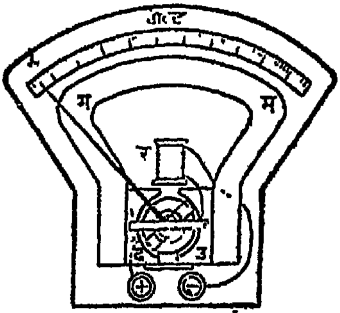

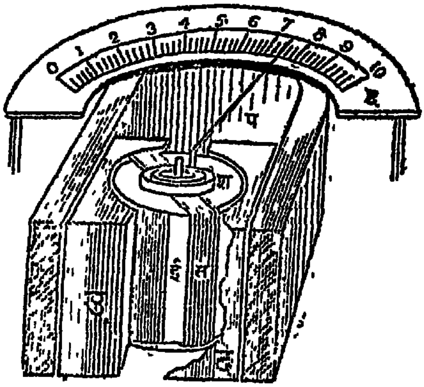

शंट (Shunt):—यदि धारात्मक या वोल्टमीटर मे अधिक धारा प्रविष्ट कर दी जाये तो इनके वेष्ठन जल जाते हैं। इसलिए इनके सयोजक पेचो के बीच प्रतिरोध तार लगा दिये जाते हैं, जिनसे धारा का कुछ भाग यन्त्र में से जाता है (शेष पेचों के बीच लगाये हुए तार मे सेजाते है)। इस तार को ही शट (Shunt) कहते है।

प्रतिरोध बक्स (Resistance box):—प्रतिरोध बक्स मे विभिन्न भागो के तार लगे होते हैं जिनके प्रतिरोध अलग अलग होते हैं। इनमे प्लग्स होते हैं, जिस प्रतिरोध का प्लग निकालते है वह प्रतिरोध कम मे आ जाता है। देखिये चित्र:—

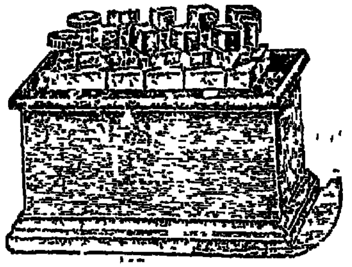

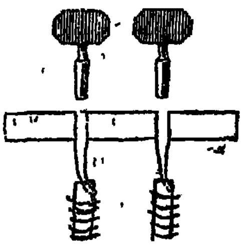

ओह्म के नियम का सत्यापन अब एक तार है, जिसका प्रतिरोध निकालना है, इस प्रयोग में एक वोल्टमीटर, एक एम्मीटर, एक घटक की आवश्यकता होती है। इनको ऊपर दिये चित्र के अनुसार तारों से जोड देते है।

चौंतीसवां अध्याय

विद्युत चालित यन्त्र और उनके दैनिक जीवन में उपयोग

आधुनिक जीवन मे विद्युत चालित यन्त्रों ने पर्याप्त स्थान पा लिया है, बिजली के लेप, चूल्हे, भट्टियां इत्यादि, ठंडी कलई, भी इसी विद्युत धारा के उपयोग है। डायनमो मोटर आदि इसी विद्युत के चमत्कार है। इस अध्याय में विद्युत के कुछ यन्त्रो का वर्णन करेगे।

विद्युत घंटी (Electric bell):—इसमें विद्युत धारा द्वारा घंटी बनाई जाती है।

(1) इसमे एक नाल चुम्बक होता है। इसकी दोनो भुजाओ पर तावे के पतले, कपड़े चढ़े हुए तार लिपटे होते हैं, ये दोनों भुजाओ पर एक दूसरे से विपरीत दिशा मे, वेस्ठन (coil) के रूप में होते है।

(2) इन वेस्ठनो के तार का एक सिरा धातु की पट्टी 'ब' जुड़ा होता है।

(3) पट्टी 'ज' पर कमानी 'श' लगी होती है।

(4) कमानी पर कच्चे लोहे का टुकड़ा 'अ' लगा होता है।

(5) साधारण अवस्था में 'अ' स्पर्श पेच 'द' का स्पर्श करता है।

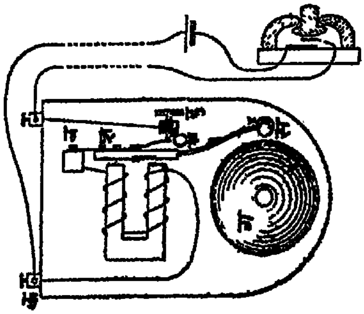

(6) 'अ' के बाहरी सिरे पर हथौडी 'स' लगी होती है, यह धातु की कटोरी 'ग' से कुछ ही दूर होती है।

(7) वेस्ठन का दूसरा सिरा संयोजक पेच (क) जुड़ा रहता है।

(8) दूसरा संयोजक पेच 'ब' स्पर्श पेच 'द' से जुड़ा रहता है।

(9) अ और ब के बीच बैटरी लगायी जाती है। इससे वेस्ठन में विद्युत प्रवाह होने लगता है तथा नाल चुम्बक बन जाता है। चुम्बक बनकर 'अ' को अपनी ओर खीचता है। अ के खीचने से हथौड़ी 'स' घंटी ग से टकरा जाती है और घंटी वज जाती है।

(10) परन्तु अ के नीचे खीचने से कमानी श का सम्बन्ध स्पर्श पेच 'द' से टूट जाता है और विद्युत प्रवाह रुक जाता है। नाल का चुम्बकत्व समाप्त हो जाता

यदि इन प्रतिरोधों को नीचे दिये चित्र के अनुसार लगायें तो वे समानान्तर होंगे

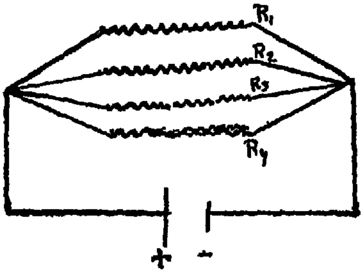

इस अवस्था में कुल प्रतिरोध R, नीचे दिये सूत्र के अनुसार होगा :

$$\frac{1}{R}=\frac{1}{r_1}+\frac{2}{r_2}+\frac{1}{r_3}+\frac{1}{r_4}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ओह्म का नियम क्या है, इसे प्रयोग शाला में कैसे सिद्ध करोगे ?
2. धारा मापक का वर्णन कीजिये।
3. एम्मीटर की बनावट और कार्य विधि का वर्णन करो।

3 ग्राहक (receiver,.–यह भी मोर्स कुंजी जैसा ही होता है।

(1) एक खड़े वैद्युतिक चुम्बक (च) को अचालक पट्टी से जोड़ देते है।

(2) इस वैद्युतिक चुम्बक के वेष्टन का एक सिरा पृथ्वी से जोड़ देते हैं दूसरा लाइन से।

(3) एक लीवर (क) के साथ आर्मेचर छड़ जुडी रहती है।

(4) इस आर्मेचर का एक सिरा 'अ' और 'ब' पेचों के बीच घूम सकता है।

(5) साधारण अवस्था मे आर्मेचर पेच 'ब' से जुडा रहता है।

(6) जब वैद्युतिक चुम्बक मे विद्युत प्रवाह होने लगता है तो आर्मेचर उसकी ओर खिच जाता है। इससे पेच 'अ' पर चोट लगने से ध्वनि उत्पन्न होती है।

(7) विद्युत प्रवाह रुकने से आर्मेचर पुनः अपने स्थान पर पहुच जाता है।

(8) विद्युत प्रवाह कम या अधिक समय तक रखने से छोटी या लम्बी ध्वनियां उत्पन्न की जा सकती है।

(9) इन्ही ध्वनियों को सवाद कहा जाता है।

(10) छोटी ध्वनि को डॉट (.) कहते है और बडी ध्वनि को डैश (—)

(11) इन्हीं डॉट और डैश से वर्णमाला के विभिन्न अक्षर व्यक्त होते है। जैसे A= —,· B= —....

टेलीफोन (Telephone) इस उपकरण द्वारा आपस की बातचीत को विद्युत विधि द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है।

इसमे भी तीन प्रमुख भाग है।

1. प्रेषक (Transmitter) 2. लाइन (Line) 3. ग्राहक Reciver)

इसका प्रेषक (Transmitter) तथा ग्राहक (Reciever) एक से ही होते है। इसका आविष्कार जी० बेल ने 1876 ई० मे किया था।

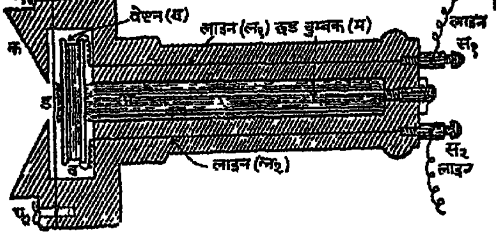

1. इसमे एक स्थायी चुम्बक 'म' को लकडी के खोल मे बन्द कर दिया जाता है।

2. इस चुम्बक के एक सिरे के सामने तार के काफी लपेटों वाली वेष्टन 'व' लगी होती है। इस वेष्टन के तार के दोनों सिरे सयोजक पेचो ($स_1$ $स_2$) से जुड़े

है तथा कमानी के द्वारा 'अ' अपनी पहली स्थिति मे आ जाता है, पहली स्थिति मे आते ही 'द' तथा 'श' का सम्बन्ध हो जाता है, नाल पुनः चुम्बक बन जाता है और घंटी पुनः बज उठती है।

तारप्रेषण (Telegraphy) इस विधि द्वारा दो अलग-अलग स्थानो मे तार द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस कार्य मे तीन प्रधान उपकरण होते हैं।

1. प्रेषक (Transmitter)
2. तार (Line)
3. ग्राहक (Reciever)

प्रेषक—यह एक कुंजी के रूप मे होता है। इसको मोर्स कुंजी भी कहते हैं। जर्मन वैज्ञानिक मोर्स ने इसका आविष्कार किया था।

(1) इसमे आबनूस की प्लेट पर पीतल की पट्टी (अ ब) लगी होती है।

(2) पीतल की पट्टी बीच मे अपने क्षेत्रीय अक्ष पर दोनो ओर ऊपर नीचे झुक सकती है।

(3) पट्टी के अक्ष का सम्बन्ध संयोजक पेच 'द' से होता है।

(4) प्लेट के दोनो सिरो पर एक-एक संयोजक पेच (प च) लगा होता है, पेचो से धातु के टुकडे लगे होते है। टुकडे के सिरे पर एक-एक नोंक उठी रहती है ऐसी ही नोंक पीतल की पट्टी मे भी होती है।

(5) साधारण अवस्था मे लीवर (अ ब) 'च' से स्पर्श करता है।

(6) पीतल के पट्टी के एक सिरे (अ) पर आबनूस की घुंडी (क) लगी है, जब इसे ऊंगली से दबाते है तो द और च का सम्पर्क टूट जाता है, प और द का जुड़ जाता है।

(7) संयोजक (प) बैटरी के (+) ध्रुव से जोड दिया जाता है।

(8) बैटरी का दूसरा ध्रुव पृथ्वी से जोड दिया जाता है।

(9) सयोजक पेच (च) भी पृथ्वी से जोड दिया जाता है।

(10) सयोजक पेच (द) को लाइन से जोड देते है।

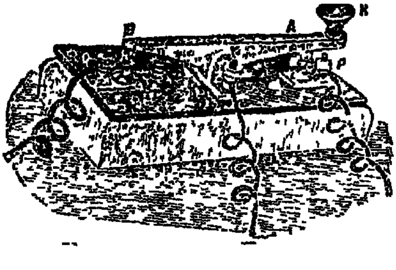

2. (लाइन) तारः—तावे या लोहे के तारो को सीधे खडे खम्भो पर सीधा खडा खीच कर तार की लाइन बनाई जाती है। कभी-कभी तार पृथ्वी के नीचे होकर भी जाते है। इन पर ऋतु आदि का प्रभाव नही पडता।

ग्यारहवीं कक्षा के लिए

उन महापुरुषों की जीवन झांकी व उनके प्रमुख कार्य
जिन्होंने—
विज्ञान की नींव रखी

रहते हैं। वेष्टन के पास ही लोहे की बहुत पतली और गोल चकती (ङ) लगी रहती है। इसको डायफ्राम या छिद्रपट कहते है।

3. डायफ्राम या छिद्र पट के सामने बने कोणाकार द्वार को मुख द्वार कहते है।

कार्यविधिः—1. दो एक जैसे टेलीफोनो को लाइन मे जोट देते है।

2. अब किसी एक टेलीफोन के सामने बोलने से सामने की वायु मे कपन होने लगते है।

3. ये कंपन डायफ्राम से टकराते है।

4. डायफ्राम भी कंपन करने लगता है।

5. यह चुम्बक के ध्रुव को सह कपन करके चालित कर देता है।

जब आरमेचर ध्रुव के निकट आता है वेष्टन को आर पार करने वाली बल रेखाओं के बदलने की दर बढ जाती है और आर्मेचर के पीछे हटने पर दर कम हो जाती है। इस प्रकार वेष्टन मे प्रत्यावर्ती धारा उत्पन्न हो जाती है। यह प्रत्यावर्ती धारा लाइन से होकर दूसरे टेलीफोन पर पहुंचती है। वहा यह धारा यत्र के वेष्टन में जाकर स्थायी ध्रुव पर प्रकाश डाल कर, उसकी ध्रुव शक्ति को उसी अनुपात में कम या अधिक करती है। इससे आर्मेचर भी उसी गति से कार्य करता है और आर्मेचर के गति करने से डायफ्राम मे भी वे ही कम्पन उत्पन्न होते है इससे वायु में ध्वनि तरगे बनती है और ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. विद्युत घटी का वर्णन करो।

२. तार प्रेषक की व्यवस्था पर लेख लिखिये।

३. विद्युत तापक और विद्युत लोहा का वर्णन करिये।

परमाणु तथा आणविक शक्ति

आणविक शक्ति का प्रथम परिचय मानव के इतिहास में सदा घृणा की दृष्टि से देखा जायेगा। इस प्रथम परिचय ने 6 अगस्त 1945 ई० को जापान के हरे-भरे हिरोशिमा नगर के 92133 मानवों को स्वाहा कर दिया तथा 100000 से भी अधिक व्यक्ति सदा के लिए अपाहिज तथा एकदम पंगु बना दिये। अभी इस अमानवीय कृत्य द्वारा झुलसे प्राणियो का उपचार भी न हो पाया था कि तीसरे ही दिन जापान के ही एक दूसरे नगर नागासाकी को भी इसी प्रकार अपने 39000 नागरिको से हाथ धोना पड़ा। लगभग 25000 लोग घायल कराहते रहे। सारा शहर झुलस गया। न पशु, न पक्षी, वायुमण्डल के कण–कण मे मानो मृत्यु का ताण्डव नृत्य हो रहा था, ऐसा था आणविक शक्ति का इस मानवता के साथ प्रथम परिचय !

इसके पश्चात् विश्व के मनुष्यवादी व्यक्तियो द्वारा इसकी विभीषिका पर विचार हुआ। इस भयकर आणविक शक्ति के उपयोग से विभिन्न क्षेत्रों की चर्चाएं चली। हमें भी उनका अध्ययन करना आवश्यक है कि किस प्रकार यह अणुशक्ति मनुष्य जाति के विनाश मे नही उसके उत्थान मे काम आ सकती है, किन्तु इसके पूर्व हमे अणुओ और परमाणुओ की खोज करनी पडेगी। प्रकृति के कण कण के आधार इन परमाणुओ के रहस्य का पता लगाना पडेगा।

विज्ञान विश्लेषणात्मक है। उसकी दृष्टि बडी पैनी है। जब तक वह किसी वस्तु की जड मे जाकर उसके सम्पूर्ण रहस्यो का पता नही लगा लेता तब तक उसे चैन नही। विश्व मे लगे पदार्थो की व्याख्या भारत मे पाँच 'तत्वों' के आधार पर की गई। क्षिति, जल, पावक, गगन–समीरा। पर आधुनिक विज्ञान ने देखा कि वे पाँचो ही अपने से छोटे–छोटे टुकड़ो में बंट सकते है। या दूसरे शब्दों मे यो भी कह सकते हैं कि किन्ही दो या दो से अधिक पदार्थो के संयोग से इनकी रचना हुई है। उदाहरण के लिए पानी को ही ले। पानी को प्रयोगशाला मे आसानी से इसके मिश्रणों आक्सीजन तथा हाइड्रोजन मे विभक्त कर सकते है। इसी प्रकार हाइड्रोजन के दो तथा आक्सीजन के एक परमाणु के अनुपात मे दोनो से पानी बनाया भी जा सकता है। पाश्चात्य विद्वान् लगभग पीछले दो सहस्र वर्षो से इस बात को मानते आए थे कि प्रत्येक पदार्थ बहुत ही छोटे कणो से मिलकर बना है। ऐसे इकाई मूलक कणो को वे एटम (Atom) कहते थे। ग्रीक मे एटमस् (Atomos)

इन्हे तोड़कर अपार शक्ति भी प्राप्त की जा चुकी है जिसका एक रूप नागासाकी और हिरोशिमा के प्रसग मे जान चुके है। यदि सच पूछा जाय तो परमाणुओ के तोडने से जो ऊष्मा (गर्मी) या शक्ति उत्पन्न होती है उसे ही आणविक शक्ति कहते हैं। पर परमाणु टूटते कैसे है ? और इनके टूटने पर फिर शेप क्या रहता है ?

परमाणुओ को तोड़ने की क्रिया जानने के पूर्व यह जानना उचित रहेगा कि इनकी रचना कैसे हुई ? वस्तुत. एक-एक परमाणु छोटे रूप मे एक-एक सौर-मण्डल है। अर्थात् जिस प्रकार सौर-मण्डल मे एक सूर्य के चारो ओर ग्रह चक्कर लगाते है, उसी प्रकार परमाणुओ मे भी केन्द्र के चारों ओर कुछ अन्य कण भी चक्कर लगाते रहते है। परमाणुओ क केन्द्र को बीज (Neucleus) कहते है। बीज मे प्रोटीन तथा न्यूट्रान होते है। प्रोटान वे कण है जिनमे धन विद्युत् रहती है और न्यूट्रोन मे न तो धन विद्युत् होती है न ऋण विद्युत् ही। इस बीज के चारो ओर एलेक्ट्रोन चक्कर लगाते है। ये एलेक्ट्रोन ऋण विद्युत्कण होते हैं। बीजस्थ प्रोटान तथा चतुर्दिक् धुलनशील एलेक्ट्रोन की संख्या बराबर होती है और इनका भार भी एक होता है। यही कारण है कि परिधि और केन्द्र पर विद्युत् की संतुलित शक्तियो के कारण परमाणु (Neutral) होते है। विभिन्न पनार्थों की भिन्नता इन्ही प्रोटान की संख्या की भिन्नता पर निर्भर है। अब तक ज्ञात तत्वो मे से हाइड्रोजन सबसे हल्का है जिसमे केन्द्र पर एक प्रोटान (और परिधि पर एक एलेक्ट्रोन) होता है; तथा यूरेनियम सबसे भारी, 92 प्रोटान। यदि परमाणुओ के प्रोटान की सख्या बदली जाय तो आसानी से एक पदार्थ दूसरा बन सकता है।

परमाणुओ के वे केन्द्र अति लघु होते है। वैसे केन्द्र जहा प्रोटान तथा न्यूट्रान रहते है तथा परिधि (जहा एलेक्ट्रोन चक्कर लगाते हैं) के बीच बहुत अन्तर रहता है किन्तु अपनी लघुता के कारण ये दृष्टिगोचर नही होते है। सूई की नोक पर टिकने वाले जल बिन्दु मे भी परमाणुओ की सख्या अरबो होती है। यदि किसी परमाणु को दस लाख गुना बढाया जा सके तो कही वह दृष्टिगोचर हो सके। यदि इसे पुन. 20000 गुणा बढाया जा सके तब कही बीज (Neoleus) दिखाई पड़ेगा। अनेक प्रकार विद्युत् चुम्बकों की सहायता से वैज्ञानिक किसी प्रकार एलेक्ट्रोन का भार लेने मे समर्थ हुए हैं और पता चला है कि एक एलेक्ट्रोन का भार हाइड्रोजन के परमाणु का 1810 ही होता है। वैसे प्रत्येक एलेक्ट्रोन का भार ठीक एक सा होता है तथा उनमे विद्युत मात्रा भी समान ही होती है। बीज के चारो ओर एलेक्ट्रोन प्रति सैकेन्ड लाखो चक्कर काटा करते है।

इस प्रकार हम देखते है कि परमाणु भी एलेक्ट्रोन, प्रोटान तथा न्यूट्रान से मिलकर बने है। बीज के चतुर्दिक एलेक्ट्रोन्स को बाधे रखने के लिए प्रकृति अपार

का अर्थ होता है अविभाज्य। उनका विचार था कि एटम पदार्थ के वे अंश है जिनके टुकड़े नही हो सकते।

यहाँ पर परमाणु तथा अणु मे अन्तर स्पष्ट कर देना जरूरी होगा। अच्छा रहे वही पानी वाला उदाहरण लें। यदि पानी की एक बूंद को लाखो और करोड़ों बूंदों में विभक्त करें और इस प्रकार इतनी छोटी बूंद प्राप्त करने का प्रयत्न करें कि अब उमसे छोटी बूंद नही हो सकती तो वह लघुतम बूंद पानी का एक अणु कहलाएगी। किन्तु यह हम जानते है कि पानी तभी बन सकता है जब हाइड्रोजन के दो परमाणु आक्सीजन के एक परमाणु से संयोजित हो। इसके अनुसार पानी की छोटी से छोटी बूंद जिसे हमने अणु माना है, मे भी हाइड्रोजन के दो और आक्सीजन के परमाणु सम्मिलित हैं। इस प्रकार परमाणु पदार्थों के छोटे से छोटे स्वतन्त्र अश हैं। रसायन शास्त्र में पढा होगा कि पदार्थ तीन प्रकार के होते है, तत्व, यौगिक और मिश्रण। तत्वों के छोटे से छोटे भाग को परमाणु कहते हैं, जबकि मिश्रणो के अणुओ की रचना उनके मूल तत्वो के परमाणुओ से होती है।

संसार का प्रत्येक पदार्थ इन्ही परमाणुओ से मिलकर बना है। अलग-अलग तत्वो के परमाणु अपना एक निश्चित भार रखते है और अन्य परमाणुओं से मिल कर विभिन्न पदार्थ बनाते है। हमने जल का उदाहरण देख ही लिया है। इसी प्रकार कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन मिलकर शर्करा-स्टार्च इत्यादि बनाते है। परमाणुओ के ये मिश्रण बदले जा सकते हैं और वस्तुतः जीवन मे और है ही क्या ? जब तक खाना खाते हैं तो भोजन रक्त और मांस मे बदल जाता है, जब पेट्रोल जलाते है तो धुआ निकलता है, जब पौधे सडी-गली खाद ग्रहण करते है तो लाल किसलय निकलते हैं, यह सब क्या और कैसे होता है ? वास्तविकता यह है कि इन प्रत्येक घटनाओं मे क्षण-क्षण रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। इसका अर्थ है कि परमाणु एकत्रित किए जाते हैं, अलग किए जाते हैं या एक अन्य क्रम मे संयोजित किए जाते है।

अब तक हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अणु परमाणु मे या स्पष्टतया कोई भी पदार्थ परमाणुओं मे विभक्त किया जा सकता है। पर प्रश्न उठता है, क्या परमाणु भी अपने से छोटे टुकड़ों मे विभक्त हो सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर अब सरल होगया है, केवल 'हाँ' मात्र कहना पडता है। किन्तु अब से कुछ दशाब्दियों पूर्व इसका उत्तर देना बड़ा कठिन था। अब तो न केवल सिद्धान्त रूप में परमाणुओ को तोड़ना सम्भव है, अपितु क्रियात्मक रूप मे

नाओ पर लगे हुए है। वस्तुत यह एक ऐसा दानव है—अपितु अल्लादीन का चिराग है कि इससे जो चाहे काम कराया जा सकता है। भारत जैसे देश मे इस शक्ति की बहुत अधिक आवश्यकता है। यदि अच्छी मात्रा मे यह शक्ति उपलब्ध हो और इसे नियन्त्रित रखा जा सके तो भारत के उन भागो मे भी नदिया बहाई जा सकती है जो अब तक जल हीन पडे है—राजस्थान की सम्पूर्ण रेत-राशियो को हटाकर अच्छे मैदान बनाये जा सकते है, गाडियां चल सकती है, कारखाने चल सकते है और सफाई के लिए कुओ की खुदाई आसानी से की जा सकती है। आज संसार के हाथों मे इस महान शक्ति का रहस्य आ गया है। लोग इसे प्राप्त करने मे लगे है। इस शक्ति की अच्छाई-बुराई इसके प्रयोग पर निर्भर है। इससे चाहे तो लहलहाते खेतो को रेगिस्तान बना सकते है। चहल-पहल से भरे शहरों को खण्डहर मे बदल सकते है और इन्सान को कुत्तों की मौत भी मार सकते है। किन्तु यदि इस शक्ति का प्रयोग मानवता के कल्याण के लिए किया जाय तो इसी से बन्जर भूमि हरे-भरे खेतो मे बदली जा सकती है—खण्डहर मुस्करा सकते है और मृत्यू के शव पर खडा हुआ जीवन विहंस सकता है। इस शक्ति के द्वारा बडे बडे रोगो का जड़ से नाश किया जा सकता है। शक्तिशाली किरणों वाले रेडियो आइसोटोप्स शरीर के रोग ग्रस्त भाग मे प्रविष्ट होकर रोग को नष्ट कर सकते हैं। यदि यह शक्ति पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो गई तो भारत के घर घर मे विद्युत प्रकाश फैल उठेगा। ईंधन की समस्या दूर हो जावेगी, क्योंकि कोयले तथा पैट्रोल की अपेक्षा कई गुना अधिक शक्ति प्राप्त होने लगेगी।

भारत में सन् 1557 की 20 जनवरी को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने बम्बई मे एक आणविक भट्टी (Atomic Reactor) का उद्घाटन किया। इसका नाम जैसा बतलाया गया है, अप्सरा है। रीऐक्टर का भवन वड़ा ही विशाल है। इसमे 100 फीट लम्बा, 50 फीट चौडा और 60 फीट ऊंचा एक वड़ा कमरा है। इसके एक ओर के कमरो मे रीऐक्टर के सहायक यंत्र लगाए गए हैं, दूसरी ओर के कमरो में ग्रेफाइट का भण्डार है जो प्रयोगो मे काम आता है। इस वड़े कमरे मे एक तालाब है जो 28 फीट लम्बा, 10 फीट चौडा और 28 फीट गहरा है। इस जलराशि के नीचे अल्यूमिनियम के बने एक स्ट्रक्चर मे रीऐक्टर का प्रमुख भाग (Core) है जहा यूरेनियम के परमाणु तोडे जाते हैं। इस प्रक्रिया को अंग्रेजी मे फिसन (Fission) कहते है। परमाणुओ के टूटने से गर्मी निकलती है और यह गर्मी तालाब के जल मे मिल जाती है। रीऐक्टर इस प्रकार का बना है कि इस प्रकार प्राप्त गर्मी 1000 किलोवाट तक रह सकती है। तालाब के पानी का कार्य इस

शक्ति लगाती है। इस तरह प्रत्येक परमाणु मे अपार शक्ति निहित है। यदि किसी प्रकार ये परमाणु अपने मिश्रणो मे विभक्त किए जा सके तो इनमे निहित अपार शक्ति प्राप्त हो सकती है। परमाणुओ के भीतर निहित इसी शक्ति को आणविक शक्ति या परमाणु शक्ति कहते है। परमाणुओ मे निहित शक्ति के विषय मे विचार करते हुए रदर फोर्ड ने यह सिद्धकिया कि वस्तुत. मात्रा और शक्ति मे कोई अन्तर नही है। आइन्स्टीन ने 1905 मे अपनी विशिष्ट सापेक्षवाद ससार के सम्मुख रख ही दिया था कि यदि पदार्थ को उसके परमाणुओ को तोडकर शक्ति मे बदला जाय तो इस प्रक्रिया को '$E=mc^2$ के एकीकरण से प्रगट कर सकते है। यहा पर प्रश्न उठता है कि यह समीकरण बतलाता क्या है? यह समीकरण बतलाता है कि पदार्थो के नष्ट होने से कितनी शक्ति प्राप्त हो सकती है। इसमे E अर्ग मे शक्ति के लिए आया है; m आया है ग्राम मे पदार्थ के लिए और c प्रति सैकेन्ड सेन्टीमीटरो मे प्रकाश की गति के लिए (30,000,000,000)। इस प्रकार c^2 बराबर हुआ 900,000,000,000,000,000,000 अर्ग। यह तो हुआ एक ग्राम पदार्थ के पूर्णतया शक्ति मे परिवर्तित होने का परिणाम। वस्तुत· परमाणुओ मे अपार शक्ति भरी पडी है। उनके टूटने से यह शक्ति बाहर निकली है। यदि पदार्थ का एक औस भाग पूर्णतया शक्ति मे परिवर्तित किया जा सके तो इतनी शक्ति मिलेगी जितनी 100,000 टन कोयला जलाने से, किन्तु इसके लिए प्रत्येक परमाणु का विनाश आवश्यक है और क्या आप सोच सकते है एक औस यूरेनियम मे कितने परमाणु होगे ? राजस्थान के सम्पूर्ण टीलो मे जितने कण है उनके हजार गुने से भी कही अधिक—लाखों गुना !

आणविक शक्ति के विकास

अभी तक प्रत्येक पदार्थ के परमाणु को तोडना सम्भव नही हो सका है, नही तो जिस पुस्तक को आप पढ रहे है या जिस कुर्सी पर आप बैठे है उसमे इतनी शक्ति बन्द पडी है कि यदि वह प्राप्त की जा सके तो बडे बडे कारखाने महीनो चलते रहे। जो कुछ शक्ति प्राप्त हुई है वह यूरेनियम के परमाणुओ को तोडकर ही हाइड्रोजन के परमाणु भी तोड़े गए है। पर विज्ञान को आशा है कि शीघ्र ही उसे प्रत्येक प्रकार के परमाणुओ को तोडने मे सफलता प्राप्त हो जावेगी। विश्व के उन्नतशील देशो मे बडी बडी आणविक भट्टिया बनी हैं जहा पर शक्ति प्राप्त की जाती है। भारत मे भी बम्बई मे 'अप्सरा' नाम की एक भट्टी बनाई गई है। अभी अभी कल पत्रो मे चर्चा थी कि आणविक शक्ति द्वारा चालित प्रथम पोत जल मे उतार दिया गया है। विश्व के वैज्ञानिक आणविक शक्ति के उपयोग की सम्भाव-

श्री कोपर्निकस

आज प्रत्येक विद्यार्थी यह जानता है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है और अपनी कीली पर भी २४ घण्टो मे एक बार घूम आती है। यदि कोई छात्र परीक्षा में यह लिख आए कि पृथ्वी अपनी कीली पर नहीं घूमती अपितु सूर्य और तारे ही इसकी परिक्रमा करते है तो परीक्षक महोदय क्या करेंगे, यह सर्वविदित है। पर एक समय था जब संसार के ज्ञानी और विज्ञानी यही मानते थे कि पृथ्वी सम्पूर्ण ब्रह्मांडक केन्द्र मे स्थित है और सूर्य तथा तारे इस पृथ्वी का चक्कर लगाते है, इसीलिए वे नित्य पूव मे उदित होते तथा पश्चिम मे डूबते हैं। इस सिद्धान्त का प्रवर्तक टालेमी (Ptolemy) था। यह सिकन्दरिया में रहता था। इसका सिद्धान्त लगभग १५०० वर्षो तक सम्मान पूर्वक माना गया। एक बार टालेमी को यह शंका हुई कि शायद पृथ्वी ही अपनी कीली पर घूमती हो और इसीलिए सूर्य-तारे इत्यादि इसकी परिक्रमा करते से लगते हैं। पर उसने जब यह सोचा कि यदि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती तो धूप, बादल, वायु इत्यादि ऐसे पदार्थ जो पृथ्वी के साथ जकडे हुए नही है अवश्य ही दूसरी ओर शीघ्रता से भागते हुए दिखाई देते। उसने अपने इस तर्क को प्रधानता दी और वह स्वयं अपनी ही बुद्धि पर जोर से हँसा। खूब हस लेने पर वह कमरे के बाहर आया, देखा कोई नही था। उसे सन्तोष हुआ कि उसकी तथाकथित बुद्धि हीनता का गवाह कोई नही। इस प्रकार टालेमी की बात कि पृथ्वी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के केन्द्र पर है और सारे आकाशीय पिण्ड इसकी परिक्रमा करते है, पूर्ववत् सम्मानित रही और लगभग 1500 वर्षों तक टालेमी ज्योतिष-जगत् पर एक छत्र सम्राट् की तरह छाया रहा।

विद्वानों ने वैसे टालेमी की बात मान तो ली थी किन्तु विचारक अब भी सत्य की खोज मे थे कि वास्तविकता क्या है? क्या यह सम्भव है कि इस पृथ्वी के चारो ओर सूर्य इत्यादि चक्कर लगाए! ऐसे ही विचारको में से एक था-कोपर्निकस। वह भी यही आकर रुक गया था कि यदि यह मान ले कि पृथ्वी अपनी किली पर घूमती है तो वे पदार्थ जो इससे चिपके नही हैं, क्यो नही पृथ्वी की गति की विपरीत दिशा में चले जाते? वर्षों कोपर्निकस इस समस्या का कोई समाधान नही ढूंढ पाया, फिर भी उसने अपनी खोज जारी रखी।

एक दिन सहसा उसके मन में आया कि यदि यह मान लिया जाय कि उन पदार्थो मे भी जो पृथ्वी से जकड़े तो नही हैं, किन्तु इसके साथ हैं, जैसे वायु मण्डल

प्रकार मुख्यतया रीऐक्टर के 'कोर' को ठण्डा रखता है। इसके अतिरिक्त यह जल परमाणु विघटन के समय निकलने वाले न्यूट्रन की गति को 18600 से लगभग 1–1½ मील प्रति सेकेन्ड कर देता है, तालाब की दीवाले वहाँ पर जहाँ 'कोर' है, 8½ फीट मोटी है। यह मोटाई इसलिए रखी गई है कि विकिरण का विषाक्त प्रभाव कार्यकर्त्ताओ पर न पड़ सके। ऊपर कार्य करने वालो की विकिरण से रक्षा के लिए जल की लगभग 22 फीट मोटी चद्दर पर्याप्त है। इस भट्टी की रचना इस प्रकार हुई है कि इसमे हो रही क्रियाओ का लेखा–जोखा स्वय अकित होता रहता है। तापक्रम, रेडियो विकिरण या किसी भी अन्य बात की अधिकता जब इतनी हो जाये कि उससे खतरा उत्पन्न होने लगे तो यह भट्टी अपने आप बन्द हो जाती है। इसी प्रकार यदि किसी यन्त्र मे कुछ खराबी उत्पन्न हो और खतरे का डर होने लगे तो भी यह भट्टी स्वयं ही बन्द हो जाती है।

कोपर्निकस ने लगभग 33 वर्ष की अवस्था तक अपना अध्ययन जारी रखा। सन् 1506 ई० मे वह फेरारा के विश्वविद्यालय से स्नातक बना था और उपर्युक्त प्रोफेसर महोदय डोमिनिको नोवारा का सहायक नियुक्त हुआ था। गाँव आने पर उसने अपना अधिकतर समय खगोल के अध्ययन तथा निरीक्षणो में ही बिताया। वैसे डाक्टरी पढ़ने के नाते कभी कभी अपने मित्रो और परिचितों की देख-भाल भी कर लिया करता था। कोपर्निकस ने जो कुछ किया उसका उचित सम्मान उसे उसकी जिन्दगी मे मिल नही पाया। वैसे बहुत से लोग कोपर्निकस की बात मानने लगे थे। फिर भी अभी शका बनी थी। कोपर्निकस की प्रबल इच्छा थी कि उसने जो कुछ भी खोजे की है, उन्हे वह पुस्तक के रूप मे सुरक्षित छोड जाय, किन्तु उसके अन्तिम दिनो तक उसकी इच्छा की पूर्ति न हो सकी। उसने अपनी पुस्तक का नाम रखा था *आकाशीय पिण्डों का परिभ्रमण* उसके जीवन के अन्तिम दिनो मे दो कार्य हो रहे थे, उसकी पुस्तक छप रही थी और वह मृत्यु शैय्या पर अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था। कहते है, जब उसकी छपी हुई पुस्तक की एक प्रति उसके हाथ मे दी गई तो उसकी आँखो में आनन्द के आँसू आ गए! पर जीवन प्रदीप भी बुझ रहा था, उसने उस पुस्तक को खोलकर देखना चाहा, पर यह नश्वर शरीर काम न दे सका। उसके दाहिने हाथ की उँगलियाँ पुस्तक के पृष्ठो मे ही उलझी रही और कोपर्निकस की इह लीला समाप्त हो गई! उसके नेत्रो मे अब भी आनन्द के अश्रु चमक रहे थे और मुखमण्डल पर उल्लास की रेखाएं बिखरी पड़ी थी।

कोपर्निकस ने संसार को केवल इतना ही नही दिया, उसने यह बताया कि पृथ्वी मे दैनिक गति है और वह सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है। उसने अन्य आकाशीय पिण्डों की भी गति निकाली और इन सब का समावेश उसने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक मे किया है।। इसके साथ ही साथ उसने आगे आने वालो के लिए पथ प्रशस्त किया। कोपर्निकस की मृत्यु के सात वर्ष पश्चात् सन् 1550 मे या इकेल मास्टमिन का जन्म हुआ। यह कोपर्निकस का भक्त था और इसी ने अपने शिष्य केप्लर को कोपर्निकस के सिद्धान्तों से परिचित कराया जिसने आकाशीय पिण्डों के परिभ्रमण के बारे मे अपने प्रमुख तीन नियमों की खोज की। इस प्रकार कोपर्निकस द्वारा उद्भूत प्रकाश सम्पूर्ण विश्व मे फैला।

पृथ्वी की गति के समान ही गति है और वे भी साथ साथ घूमते है तो समस्या सुलझ जायेगी, अब क्या था ! कोपर्निकस को प्रकाश प्राप्त हो गया था जहाँ टालेमी आकर हार मान गया था, उसी समस्या को कोपर्निकस ने जीत लिया था, उसने अपने शिष्यों से यह बात कही, इधर उधार-प्रचार किया। पर जानते हो जो तथ्य लोगो के मस्तिष्क मे 1500 वर्षो से घुसा हुआ था वह क्या इस प्रकार सहज ही निकल सकता था ? लोगो ने कोपर्निकस की सुनी-अनसुनी कर दी। उसका उपहास किया गया। कोपर्निकस को इससे बड़ा दुःख हुआ, उसने अपनी सारी खोजों तथा निरीक्षणों के आधार पर जो ज्ञान अर्जित किया था, उसे किसी पुस्तक के रूप मे दे देना ही अच्छा समझा।

कोपर्निकस का जन्म सन् 1473 ई० मे विस्चुला नदी के किनारे थार्न नामक स्थान पर हुआ था। इसका प्रारम्भिक नाम था—निकलास कोपरनिक (Niklas Coppernigk)। बाद में यह निकोलस कोपर्निकस के नाम से विख्यात हुआ। 17 वर्ष की अवस्था तक बालक कोपर्निकस थार्न की पाठशाला मे ही अध्ययन करता रहा। जब वह 10 वर्ष का था तभी कोपर्निकस के पिता का देहावसान हो गया था। उसके मामा सम्पन्न थे और उन्होने ही कोपर्निकस तथा उसकी मां की देख-भाल की। थार्न की पढाई समाप्त करने के पश्चात कोपर्निकस क्राको के विश्वविद्यालय मे इसलिए भेजा गया कि वहाँ पर वह धार्मिक ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन करके एक धार्मिक पुरुष बन सके। उसका मन धार्मिक बातों मे न लग सका। कहते हैं "होनहार विरवान के होंत चीकने पात।" उसने सोचा ससार को कुछ देना चाहिए, कम से कम ज्ञान ऐसा हो जिससे औरो का सचमुच लाभ होता हो। इसीलिए उसने डाक्टरी पढना आरम्भ किया, किन्तु इसमें भी उसका मन नही लगा और उसने शीघ्र ही ज्योतिष तथा गणित को अपना लिया। खर्चा उसके माता-पिता करते थे। पर सम्भवतः उसके स्वाधीन विचारों के कारण कोपर्निकस की माता से निभ नही सकी। उसने अपना खर्चा चलाने के लिए स्वयं व्यवस्था की और अध्ययनकाल मे ही थोड़ा बहुत कमाता रहा जिससे वह अपना अध्ययन जारी रख सके।

कुछ वर्ष क्राको में व्यतीत करने के पश्चात् वह उच्च अध्ययन के लिए इटली चला आया। इटली मे उसने 1496 से लेकर 1506 ई० तक लगभग 12 वर्ष व्यतीत किए। वह पहले बोलोना फिर पादुआ मे अध्ययन करता रहा। तत्पश्चात् वह फेरारा आया। उसका फेरारा आना बड़ा महत्वपूर्ण रहा। यही पर उसका परिचय प्रोफेसर डोमेनिको नोवारा से हुआ जो ज्योतिष के प्राध्यापक थे।

अग्रण्यश्रा समझना भी उनके लिए सम्भव नही था। ज्योतिष ज्ञान के इस संक्रमण काल मे गैलिलियो का उदय हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा एक पाठशाला मे समाप्त करके गैलिलियो को पीसा के विश्विदालय मे सत्रह वर्ष की अवस्था मे इसलिए भेजा गया कि वह डाक्ट्री पढ सके और जीवन मे एक सफल डाक्टर बने। किन्तु खगोल गैलिलियो की प्रतीक्षा मे था। उसे ससार को बहुत कुछ देना था। फलतः उसने अपने पिता से कहकर डाक्ट्री त्यागकर ज्योतिष तथा गणित ले लिए। गणित तथा मशीनो में उसकी इतनी रुचि थी कि थोड़े ही दिनो मे उसने पेण्डुलम का सिद्धान्त निकाला और बताया कि पेण्डुलम के सहारे समय की निश्चित माप हो सकती है। इसी कारण उसने रोगियो की नब्ज देखने के लिए पेण्डुलम का आविष्कार किया। डाक्टर इन पेण्डुलमो की चाल पर ही समय निश्चित करके अपने रोगियो की नब्ज देखा करते थे। बाद मे इसी पेण्डुलम के आधार पर घड़ियो का अविष्कार हुआ।

विश्वद्यालय मे अध्ययन के लिए प्रारम्भिक कठिनाई गैलिलियो के सामने आर्थिक थी और विवश होकर उसे विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा से वचित रहना पड़ा। फलतः एक बार वह घर लौट आया। पर अब तक उसने काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी और गणित मे कुछ किया भी था। विश्वविद्यालय के अधिकारी उसकी योग्यता से प्रभावित थे। उन्होने उसे पीसा के विश्वविद्यालय मे ही गणित का प्राध्यापक नियुक्त कर दिया।

पर गैलिलियो सत्य का अन्वेषक था और अपनी सच्चाई के लिए उसे पग पग पर कठिनाइयो का सामना करना पडा। गैलिलियो से पूर्व अरस्तू का सम्पूर्ण समाज पर प्रभाव था। अरस्तू एक दार्शनिक था—पर उसका सम्मान इतना था कि जो कुछ उसने कहा जनता तथा शासको ने ब्रह्मवाक्य मान लिया। अरस्तू का कहना था कि यदि एक बडी वस्तु एक छोटी वस्तु एक ही ऊंचाई से एक साथ गिराई जाय तो बडी वस्तु पहले गिरेगी और छोटी बाद में। गैलिलियो इस विषय के लिए एक प्रश्नवाचक चिन्ह बन गया। अपने अन्य प्रयोगों को करते समय उसे ऐसा लगा था कि अरस्तू के इस कथन में सत्यता नही है। फिर क्या था—वह वैज्ञानिक ही क्या जिसने प्रत्येक सत्य को परीक्षण की कसौटी पर खरा नही उतारा। गैलिलियो ने भी दो लोहे के गोले लिए—एक बड़ा और दूसरा छोटा, उसने दोनो को साथ ही एक ऊंची मीनार से गिराया और सब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब दोनो गोले एक साथ ही धरती पर आ गिरे। उसने विश्वविद्यालय मे खुल्लम खुल्ला अरस्तू के इस नियम का विरोध किया। फलस्वरूप अधिकारी वर्ग गैलिलियो

गैलिलियो

सोलहवी शताब्दी की बात है। सत्य के एक अन्वेषक ने कह दिया था—ऐ दुनियां वालो ! *तुम जिसकी पूजा करते हो, 'जिसे महा तेजस्वी समझते हो, उस सूर्य में भी काले काले धब्बे है !"*

उस जमाने में यह एक भयंकर अपराध था। तब इटली और योरोप के लोग धार्मिक प्रभाव मे अधिक थे। विज्ञान का प्रकाश अभी नही फैल पाया था। तब जनता सूर्य को देवता मानती थी, वैसे ही जैसे अभी भारत मे भी सूर्य को देवता माना जाता है। उनके परम तेजस्वी सूर्य देव पर किसी का इस प्रकार आरोप लगाना कि वह कलंकित है, उसके ऊपर काले धब्बे हैं, उन धर्म के पुजारियो को सह्य नही था, फिर ऐसा कहने वाला चाहे कितना ही बडा सत्य का अन्वेषक क्यो न हो, लोगो ने पूछा तुमने जाना कैसे कि सूर्य मे धब्बे ? है उस अन्वेषक ने बडे स्वाभिमान से अपने नवनिर्मित दूर-दर्शक की ओर सकेत करते हुए कहा-इसके सहारे' पर जनता और शासक वर्ग समान रूप से क्षुब्ध हुए। उन्होने कहा निश्चित ही इस झूठे के यत्र मे या आख मे कोई खराबी है, इसीलिए इसे सूर्य मे धब्बे दिखाई देते है। अपने इस भयकर अपराध के कारण इस अन्वेषक को कैद मे डाल दिया गया, क्योकि उसने सूर्य देव का अपमान जो किया था ?

अन्वेषक कैद की यन्त्रणाओ से दुखी था। उससे कहा गया कि यदि वह क्षमा याचना कर ले कि सूर्य मे धब्बे नही है तो उसे छोड दिया जायगा, पर नहीं, यह उससे नही हो सका, अन्त मे जेल के कष्टो से ऊब कर उसने अधिकारियो की बात मानली। वह जेल से छूटा। मुख द्वार पर स्वागत के लिए उसके मित्रगण उपस्थित थे, द्वार से बाहर आते ही उसने अपने एक परिचित के कान मे कहा—चाहे ये मुझे पुनः कैद मे डाल दे, किन्तु *सूर्य में धब्बे है अवश्य* !

ऐसा था उस अन्वेषक का आत्म विश्वास, यह सत्यान्वेषक और कोई नही, *गैलिलियो* था !

गैलिलियो का जन्म १५६४ ईस्वी मे पीसा नामक स्थान मे हुआ था। यह वह समय था जब आकाशीय पिण्डो की गति के बारे मे पढे लिखे लोगो तथा तत्कालीन वैज्ञानिक समाज मे टालेमी तथा कोपर्निक्स के सिद्धान्त अभी निश्चित रूप से अपना नही लिए गए थे। उस समय का बुद्धिवादी समाज कोपर्निकस के सिद्धान्त से अधिक प्रभावित था पर साथ ही परम्परागत टालेमी से सिद्धान्तो को

नूतन-सामान्य विज्ञान

श्री गेलिलियो

से क्रुद्ध हो उठा और उसे सन १५७१ ईस्वी में पीसा के विश्वविद्यालय को त्यागना पड़ा । त्यागना पड़ा इसलिए कि उसने एक झूठ का खण्डन करके संसार के समक्ष सत्य को रखा था—अजीब है, यह दुनियां ! इसीलिए गैलिलियो के पिता का देहावासन हो गया और उसे विवश होकर बेकारी की हालत मे अपने मामा के यहां फ्लौरेन्स जाना पड़ा । वहा वह २० वर्षों तक निजी रूप से कार्य करता रहा ।

इन्ही दिनो पादुआ मे गणित के प्रोफेसर का स्थान रिक्त था । वहा के अधिकारी तक गैलिलियोकी ख्याति पहुंच चुकी थी । जब उन्हे यह विदित हुआ कि गैलिलियो ने पीसा छोड दिया है तो उन्होंने सहर्ष सन् १५९२ मे ६ साल के लिए उसे अपने यहां गणित का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया । पर गैलिलियो का मन लगा नही । वह चाहता था पुन· पीसा ही जाना । उसे ऐसा विदित होता था मानो उसे देश निकाला दे दिया गया हो । पादुआ मे उसे तनख्वाह भी कम मिलती थी इतनी कम कि उसके तथा उसके परिवार का गुजारा भी न चल सके । फलतः उसने कुछ प्राइवेट ट्यूशन करना आरम्भ किया । विश्वविद्यालय के तथा अपने पारिवारिक कर्त्तव्यो के पालन करने मे गैलिलियो का अधिकांश समय व्यतीत हो जाया करता था । फिर भी खगोल-शास्त्र के अध्ययन मे उसकी इतनी रुचि थी कि वह कुछ न कुछ समय निकाल ही लिया करता था । पादुआ मे सबसे बडा लाभ गैलिलियो को यह हुआ कि उसका परिचय अनेक ऐसे विद्वानों से हुआ जो कोपर्निकस के सिद्धान्तों को मानते थे । धीरे धीरे गैलिलियो की भी इस सिद्धान्त के प्रति आस्था बढी और अन्त मे उसने मान लिया कि वस्तुतः पृथ्वी ही अपनी कीली पर भ्रमण करती है, जिससे दिन-रात होते है और हमे पूर्व से पश्चिम को घूमते प्रतीत होते है । उसने पृथ्वी की वार्षिक गति भी मान ली थी । वैसे गैलिलियो को कोपर्निकस के अनुसंधानो की खबर किशोरावस्था मे ही लग गई थी जब वह पीसा मे दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी था । उसके जीवन की एक मनोरजक बात यह है कि यद्यपि वह मन मे कोपर्निकस की बात को मानता था कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है, किन्तु परम्परात ज्ञान के आधार पर उसे अपने ही छात्रो को यह पढाना पड़ता था कि पृथ्वी केन्द्र मे है और सभी तारे तथा सूर्य इसकी परिक्रमा करते हैं ।

सन् १६१० ईस्वी तक गैलिलियो की ख्याति बहुत हो चुकी थी । पीसा के विश्वविद्यालय के अधिकारी चाहते हुए भी गैलिलियो से प्रभावित थे । अन्त मे इसी वर्ष गैलिलियो की नियुक्ति पुनः पीसा विश्वविद्यालय मे गणित के प्रोफेसर की जगह पर हो गई । उसे खासी अच्छी तनख्वाह मिलने लगी और कार्य के नाम पर कोई काम नही था । यहा उसका सम्मान भी ऊंचा हुआ । वहा के ड्यूक ने इसे

राजकीय सम्मान से विभूपित किया तथा इसे "प्रथम राजकीय दार्शनिक तथा गणितज्ञ" की उपाधि से विभूषित किया।

उसके अनुसन्धान

गैलिलियो ने अपने जीवन मे अनेक अनुसन्धान किये। उसने एक दूरदर्शक वनाया जिससे आख की शक्ति ३२ गुना अधिक देखने की हो जाती थी। अपने इसी दूर-दर्शक से उसने सूर्य मे धब्बे देखे। वैसे गैलिलियो के पूर्व भी अनेक व्यक्ति हो चुके जिन्होंने दूरदर्शक बनाए और काम में भी लिए। आकाशीय पिण्डों के लिए निरीक्षण के लिए दूर-दर्शक के प्रयोग की घटना का सम्बन्ध गैलिलियो से ही जोडा जाता है। गैलिलियो ने इस प्रकार वैज्ञानिक जगत को दूर-दर्शक दिया जिसकी सहायता से ही आज खगोल शास्त्र इतना आगे बढ़ा हुआ है।

जब गैलिलियो ने अपने दूर-दर्शक से आकाशीय पिण्डों को देखना आरम्भ किया तो उसके सामने ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्य खुलने लगे। उसने अपने दूर-दर्शक से सूर्य के धब्बे ही नही देखे, अपितु उन धब्बो को सूर्य के धरातल पर सरकते भी देखा जिससे उसने निष्कर्ष निकाला कि सूर्य भी अपने कीली पर लगभग २७ दिनो मे चक्कर लगा लेता है। उसने चन्द्रमा की ओर जब अपने दूर-दर्शक को घुमाया तो विदित हुआ कि जिसे पृथ्वी वासी चन्द्रमा का कलक, बुढिया, हिरण और न जाने क्या २ कहते है, वह और कुछ नही, चन्द्रमा के धरातल के ज्वालामुखियों के शान्त मुख, गड्ढे, मैदान और पर्वत है। उसने ही सर्व प्रथम यह विदित किया कि दूर दर्शक से देखने पर ग्रह तारो जैसे ही प्रकाश के बिन्दु से नही दीखते, अपितु उनका आकार बडा दिखाई देता है। उसने यह भी विदित किया कि शुक्र भी चन्द्रमा की तरह घटता-बढता रहता है। यही नही उसने बृहस्पति तथा शनि के उपग्रह का पता लगाया, कीर्तिकाओं मे ३६ तारों को ढूंढ निकाला जब कि आख से देखने पर कीर्तिकाओमे ६-७ तक ही द्रष्टिगोचर होते है। उसी ने सर्व प्रथम यह उद्घोप किया कि आकाश गंगा के तारे इतने समीप है कि इसका रंग दूधिया हो गया है।

गैलिलियो ने सत्य के अन्वेषण मे यह भुला दिया कि उसका युग धार्मिक रुढ़िवादियों का है। इसीलिए उसने परमपरागत सन्मानित सत्य का खण्डन किया। अपने अनुसन्धानो की प्रतिष्ठा के लिए उसने अरस्तू तथा टालेमी का विरोध किया। वह कोपर्निकस का अनुयायी था, इसलिए उसने एक पुस्तक प्रकाशित कराई। टालेमी तथा कोपर्निकस के सिद्धान्तो का विवेचन (Dialogue on the two chief 'systems of the world, the to Ptolemic and the Copernican)। निश्चित ही उसने इस पुस्तक मे टालेमी और अरस्तू का

निश्चित समय पर उसे आता जाता दिखाई दे। वह देर तक इस घटना को देखता रहा। अचानक उसे ध्यान आया कि इस प्रकार किसी लटकती हुई भारी चीज को दिखा कर ठीक ठीक समय ज्ञात किया जा सकता है। उसकी इस प्रेरणा का फल संसार के सम्मुख दोलक वाली घड़ियों के रूप मे आया।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना, जिसका सम्बन्ध इस मीनार से है, गैलिलियो द्वारा दो असमान भार के गोलो का एक साथ ही धरती पर गिराया जाना है। गैलिलियो ने इसी मीनार पर से एक साथ ही एक छोटे तथा एक बडे गोले को साथ गिराकर यह सिद्ध कर दिखाया कि अरस्तू का यह कथन मिथ्या है कि बडी या भारी चीजें हल्की वस्तुओ से शीघ्र गिरती है। उसका वर्णन गैलिलियो वाले पाठ में किया जा चुका है।

खण्डन करके तत्कालीन शासको तथा चर्च को विरुद्ध कर लिया था। इसी क परिणाम था कि उसे कैद काटनी पडी, जिसका वर्णन इस पाठ के आरम्भ मे किया जा चुका है।

निरन्तर आकाशीय पिण्डो को देखने मे लगे रहने के कारण गैलिलियो की दृष्टि जाती रही थी। अधिकतर वह नगी आंख से ही सूर्य को भी देखा करता था। इस प्रकार गैलिलियो ने कष्टमय किन्तु यशस्वी जीवन के ७८ वर्ष व्यतीत किए और सन १६४२ ईस्वी मे इस महान वैज्ञानिक का देहावसान हुआ।

पीसा की मीनार

इटली में 'पीसा' (Pisa) एक नगर है। प्राचीन काल मे यह बडा उन्नतिशील रहा है। इसी नगर मे सन् ११७४ ईस्वी मे एक मीनार का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ और सन १३५० ईस्वी तक चलता रहा। इस प्रकार इस मीनार के निर्माण मे पूरे १७६ वर्ष लगे।

यह मीनार श्वेत सगमरमर से निर्मित है। इसमे आठ खण्ड है और सम्पूर्ण मीनार की ऊंचाई १७९ फुट है। ऊपर तक पहुंचने के लिए इसमे ३०० सीढिया हैं। प्रारम्भ मे मीनार की दीवारे १३ फुट चौड़ी हैं।

यह विश्व की एक प्रसिद्ध मीनार है। इसका दूसरा नाम झुकी हुई मीनार (Leaning Tower) भी है। इस नामकरण का कारण यह है कि ज्यों ज्यो ऊपर जाते है यह मीनार एक ओर झुकती गई है।। आठवे खण्ड पर तो ऐसा लगता है कि यह मीनार इतनी झुक गई है कि अब गिरी तब गिरी। वस्तुत: यह ऊपरी अन्तिम भाग में ठीक लम्बवत न रहकर १६ फुट एक ओर झुक गई है। साढे सोलह फुट की दूरी बहुत होती है। देखने वालो को लगता है कि यह मीनार चन्द क्षणो में गिरने वाली है, पर गिरती नही। क्या इसका कारण आप बता सकेते है ?

हां, तो यह पीसा की झुकी हुई मीनार बडी महत्वपूर्ण है। गैलिलियो के जीवन चरित्र मे इस बात का उल्लेख आया है कि उसने दोलक (Pendulum) का सिद्धान्त निकाला था। दोलक के सिद्धान्त की प्रेरणा उसे इस मीनार से ही मिली थी। बात यो हुई कि एक दिन गैलिलियो अपने घर के आगे बैठा था। उसकी दृष्टि जब इस मीनार के ऊपरी भाग पर गई तो उसने देखा कि एक लटकता हुआ दीप झूले की तरह हिल रहा है। आठवे खण्ड के स्तम्भो से यह दीप एक

श्री कैपलर

जॉन केप्लर

केप्लर का जन्म सन् १५७१ में ईस्वी में हुआ था। इनके माँ-बाप उन दिनों हीनावस्था में थे, यद्यपि उन्होने अच्छे दिन देखे थे। इस कारण केप्लर को बचपन में माँ-बाप वह सब कुछ नहीं दे पाए, जो वह देना चाहते थे। किन्तु उच्च घराने में उत्पन्न होने के कारण केप्लर की महात्वाकान्क्षाएं बहुत बढ़ी चढ़ी थीं। यह वह समय था जब परम्परागत 'चर्च' की बहुविषयक मान्यताओं पर आघात हो रहे थे, विज्ञान दर्शन से दूर हट रहा था। प्रारम्भ में केप्लर की शिक्षा आस-पास के प्राथमिक (प्राइमरी) पाठशालाओं में चलती रही। इसके पश्चात् इन्हें रुडेलवर्ग तथा मालब्रोन के कालेजो में भेजा गया। यहीं पर केप्लर महोदय ने १५८८ ईस्वी में बी० ए० तथा इसके तीन वर्ष पश्चात् १५९१ ईस्वी में एम० ए० पास किया। गणित इनका प्रिय विषय था और इन्होंने एम० ए० भी गणित में ही किया।

कालेज-जीवन में केप्लर के लिए एक महत्वपूर्ण संयोग प्रोफेसर मास्लिन का सम्पर्क रहा। प्रोफेसर मास्लिन की चर्च की परम्परागत धारणाओं के विपरीत कोपर्निकस के सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे, पृथ्वी ही पश्चिम से पूर्व को अपनी कीली पर घूमती है और इसी कारण सूर्य तथा तारे पूर्व से पश्चिम को जाते हुए दिखाई देते हैं। प्रोफेसर महोदय ने इस सिद्धान्त को अपने प्रिय-शिष्य केप्लर को समझाया। केप्लर सिद्धान्त की नवीनता से बहुत आकृष्ट हुए और धीरे-धीरे यह न केवल इसे मानने ही लगे, अपितु इसके समर्थक भी बन गए।

एम० ए० करने के तीन वर्ष पश्चात् सन् १५९४ ईस्वी में केप्लर को ग्रेट्ज के हाई स्कूल में गणित तथा खगोल–शास्त्र का अध्यापक नियुक्त किया गया। केप्लर बड़ी अनिच्छा पूर्वक यह पद स्वीकार किया, क्योंकि गणित में अच्छी योग्यता रखते हुए भी उनकी रुचि खगोल–शास्त्र की ओर नहीं थी। यह वह समय था जब यूरोप के सम्भ्रान्त् परिवारो में डाक्टरी और कानून के अतिरिक्त अन्य विषयों का पढ़ना सम्मान के विपरीत समझा जाता था; किन्तु केप्लर महोदय परिश्रमी तथा सत्यान्वेषक थे। अध्यापक का पद प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने तारों और ग्रहो का अध्ययन आरम्भ किया।

प्रारम्भ में इन्होंने ग्रहो की संख्या आकार तथा गति इत्यादि के बारे में जो अनुसंधान किए वे आगे चलकर गलत सिद्ध हुए, किन्तु वर्षों के अध्यन के पश्चात् इन्होंने ग्रहों के बारे में तीन महत्त्वपूर्ण नियम ढूंढ निकाले। इन नियमो को 'केप्लर के नियम' (Kepler's Laws) कहते हैं। वे नियम निम्नलिखित हैं:—

(1) ग्रह सूर्य के चारो ओर (वृत्ताकार नहीं) अण्डाकार मार्ग पर भ्रमण करते है और सूर्य ठीक बीच में न होकर इस दीर्घवृत्त (Ellipse) के एक के केन्द्र (Focus) पर स्थित है।

(2) ग्रह अपनी कक्षा पर इस प्रकार भ्रमण करते है कि इनकी कक्षा का व्यासार्द्ध (Radius Vector)—वह रेखा जो किसी ग्रह को सूर्य से मिलाती है—बराबर समय में बराबर क्षेत्रफल पार करता है।

केप्लर के दूसरे नियम के अनुसार पृथ्वी कोई भी ग्रह माना जा सकता है। इस प्रकार जब पृथ्वी सूर्य के समीप रहती है (जाड़ो में) तो इसकी गति कुछ अधिक हो जाती है किन्तु गर्मियों में जब सूर्य से पृथ्वी अपेक्षाकृत अधिक दूर रहती है तो इसकी गति (सूर्य के चारों ओर) कुछ कम हो जाती है।

(3) सूर्य से ग्रहो की दूरी का घन ग्रहों के परिभ्रमण काल के वर्ग के अनुपात में होते हैं।

इस नियम को समझाने के लिए एक उदाहरण लें तो अच्छा रहेगा—सूर्य तथा पृथ्वी की दूरी को 1 मान लेते हैं। इसी प्रकार सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने के समय को भी 1 मान लेते हैं। इस आधार पर मंगल की दूरी सूर्य से लगभग 1·523 है। मंगल सूर्य के चारों ओर घूमने में 687 दिन ले लेता है। यह दूरी $\frac{687}{365}$ या 1.88 है। अब केप्लर के तीसरे नियम के अनुसार 1·523 का घन अर्थात् 1·523x1·523x1·523 बराबर होगा 1·88 के वर्ग या 1·88x1·88 के। गुणा करने पर विदित होता है कि इन दोनों का उत्तर एक ही आता है—3·53। यही नियम अन्य ग्रहो के बारे में भी लागू होता है।

केप्लर अपने इन्हीं तीन नियमों के लिए विख्यात है। ये तीनो नियम बहुत ही महत्वपूर्ण है और इनके खोजने वाले को निश्चित ही गौरव प्राप्त है, किन्तु केप्लर महोदय के विचार तारो के बारे में वही रूढ़िवादी ही थे। प्राचीनों की तरह वे भी मानते थे कि आसमान ठोस है जिसमें तारे स्थिर (जड़े हुए) हैं; वे यह मानने को तैयार नही थे कि तारे भी सूर्य ही हैं जो अधिक दूरी के कारण छोटे दिखाई देते हैं।

केप्लर का जीवन सदा आर्थिक संकट में बीता है। यह बात नहीं थी कि इन्हे कोई काम नहीं मिलता था, वैसे तो यह विद्वान् थे और हंगरी के राजा ने इन्हे 'राजकीय गणितज्ञ' के सम्मान से विभूषित किया था; साथ ही तत्कालीन प्रमुख राजकीय खगोल-शास्त्री (Royal Astronomer) टिको का सहायक नियुक्त कर दिया, जिसकी मृत्यु पर केप्लर ही सन् १६०१ ईस्वी में प्रमुख राजकीय खगोल-शास्त्री नियुक्त हुए; किन्तु इनको अपनी तनख्वाह के रुपए कभी भी समय पर न मिले।

सर आइजक न्यूटन

शरीर और मस्तिष्क जैसा विरोध न्यूटन के उदाहरण मे पाया जाता है वैसा अन्यत्र नही मिलता। पिता के देहावसानोपरान्त सन् १६४२ ईस्वी मे २५ दिसम्बर को लन्दन से कुछ दूरी पर स्थित एक गाव मे एक ऐसे कमजोर बच्चे का जन्म हुआ उसे हाथ पर लेते ही डर लगता था—आगे चलकर इसी बालक को संसार ने 'Greatest Genius that over exhisted' कहा। यह बालक न्यूटन ही था जो गैलिलियो की मृत्यु के ११ महीने पश्चात् संसार मे आया था!

आठ वर्ष की उम्र तक न्यूटन आस-पास के छोटे-मोटे स्कूलों मे पढता रहा; तत्पश्चात् उसकी नानी ने उसे ग्रान्थम के 'किग्स स्कूल' मे भेजा। पति की मृत्यु के उपरान्त न्यूटन की माता ने दूसरा विवाह कर लिया था और न्यूटन की देख-भाल उसकी नानी ही करती थी। जब न्यूटन लगभग १४ वर्ष का हुआ तो इसके सौतेले बाप का देहान्त हो गया और न्यूटन की माँ अपने तीन बेटो के साथ पुनः अपनी माँ के पास लौट आई। यहाँ आकर उसने एक बार न्यूटन का स्कूल जाना छुडवा दिया और खेती के काम मे लगाया। पर न्यूटन की रुचि खेती मे न होने से पुनः ग्रान्थम के स्कूल मे भेजना पड़ा। न्यूटन के मामा चाहते थे कि वह कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे पढने के लिए भेजा जाय। इसके के लिए न्यूटन उत्सुक था। उस विश्व विद्यालय मे प्रवेश पाने की योग्यता अर्जित करने के लिए न्यूटन ने कठोर परिश्रम किया और अन्त मे अपने उद्देश्य मे सफल हुआ।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनरी कालेज मे न्यूटन का अध्ययन चलता रहा। इस कालेज का न्यूटन ने पूरा पूरा लाभ उठाया और सन् १६६५ ईस्वी तक जब इसने बी. ए. की परीक्षा पास की, गणित की उस समय तक उपलब्ध सभी पुस्तकें पढ डाली थीं।

न्यूटन के जीवन मे सन् १६६५ तथा ६६ बड़े महत्वपूर्ण रहे है। इन्ही वर्षो मे उसने अनेक अविष्कार किये, अनेक अनुसधान किए। ये दोनों वर्ष लन्दन के लिए बडे भयकर थे, क्योकि इन दिनो लन्दन में एक भयंकर प्लेग फैला था। यह प्लेग लन्दन मे कैम्ब्रिज की ओर बढने लगा तो अधिकारियो ने विश्वविद्यालय बन्द कर दिया। फलतः विवश होकर न्यूटन को भी अपने गांव आना पड़ा। यही एकान्त के वर्ष थे जब न्यूटन अपना अधिक समय तरह तरह की वैज्ञानिक खोजों मे लगाया करते थे।

न्यूटन की ख्याति का कारण उनके द्वारा अनुसंधानित "गुरुत्वाकर्षन का सिद्धान्त है"। इसकी एक मनोरजक गाथा है जिसे आप सभी जानते होगे। न्यूटन

केप्लर जर्मनी थे और अपने चर्च विरोधी विचारों के कारण तो इन्हें भागकर हंगरी आना पड़ा था, जहां के वैज्ञानिक टिको ने इनका परिचय तत्कालीन सम्राट रुडोल्फ से कराया था। टिको तथा केप्लर मिलकर ग्रहों की स्थति इत्यादि के बारे में एक सारिणी बनाई और अपने सम्राट के नाम पर ही इसका नाम 'रुडोल्फाइन टेबुल' (Rudolphine Tables) रखा।

सन् १६११ ईस्वी में में रुडोल्फ का भाई मैथिया गद्दी पर बैठा, किन्तु केप्लर की आर्थिक स्थिति में कुछ भी परिवर्तन न हो सका। हा, उसे फिर 'राजकीय गणितज्ञ, के सम्मान से विभूषित अवश्य किया गया। साथ ही उसे लिन्ज में प्रोफेसर का पद भी प्राप्त हो गया। अन्त में सन् १६१० ईस्वी में मैथिया के देहावसानोपरान्त फ्रेडरिक तृतीय गद्दी पर बैठा। उसने वचन दिया कि केप्लर का सारा हिसाब पाई-पाई चुका दिया जायगा तथा उसकी 'रूडाल्फ सारिणी' (Rudolph Tables) भी प्रकाशित करवा दी जावेगी। सन् १६२२ ईस्वी में राजाज्ञा हुई कि केप्लर के सभी हिसाब पूरे पूरे कर दिये जायं। इसमें बाधाएं तो अनेक आईं किन्तु कुछ पिछला बकाया केप्लर को प्राप्त हो गया। रुडोल्फाइन सारिणी भी प्रकाशित हो गई। इसके पश्चात् उसने हिसाब लगाकर देखा तो विदित हुआ कि अभी उसे राजकीय कोष से लगभग ८००० क्राउन (लगभग ३२००० रुपए) लेने बाकी हैं। इतनी रकम एक साथ मिलती न दिखाई दी। इसका कारण था कि केप्लर अब लिन्ज छोड़कर साइलेसिया (जर्मनी) में बसने का विचार कर रहे थे। इस धनराशि के न मिलने से केप्लर को बड़ी व्यथा हुई। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। मानसिक ग्लानि तथा एक दीर्घकालीन शारीरिक श्रम ने उन्हें शिथिल बना डाला था। फलतः वे रुग्ण हो गए और इस रुग्णता से उठ नहीं सके। अन्त में ५ नवम्बर सन् १६३० ईस्वी में उनका देहान्त हो गया।

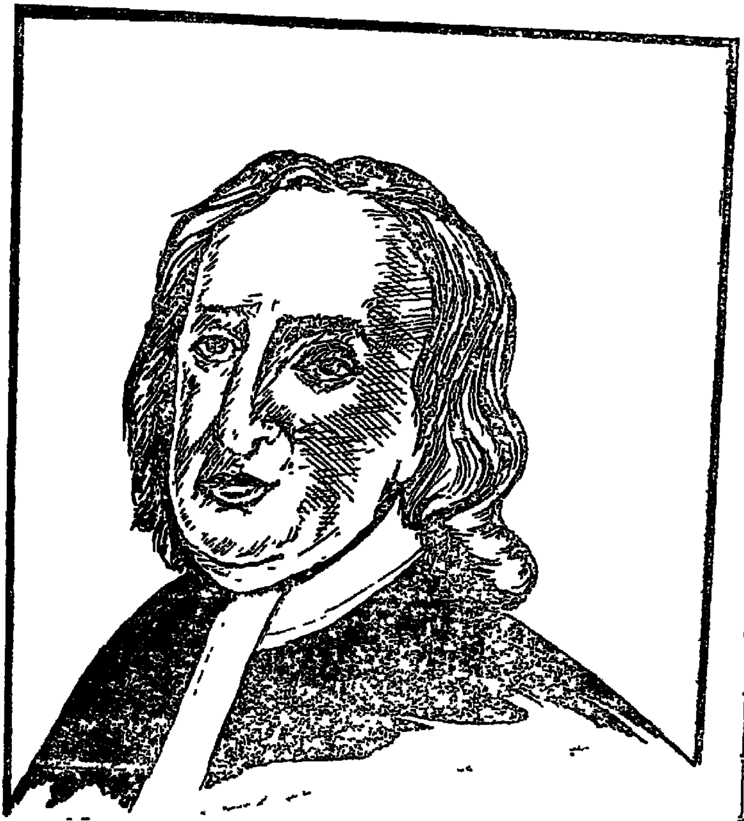

सर आईजक न्यूटन

ने शताब्दियो पूर्व कोपर्निकीस ने ससार के सम्मुख पृथ्वी की दैनिक तथा वार्षिक गतियो को रखा था उसके पश्चात् केप्लर ने अपने नियमो द्वारा इन ग्रहो की गतियों को थोड़ी बहुत पाई जाने वाली अनियमितताओं पर प्रकाश डाला उन्हे वैज्ञानिक रूप दिया था। उन दिनों आकाशीय पिण्डो में चन्मद्रा अधिक महत्वपूर्ण था। यह जानते हुए भी कि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, अभी तक यह निश्चय नही हो पाया था कि आखिर वह पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाता क्यो है ? पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर क्यो घूमती है ? ये समास्याएं उस समय के वैज्ञानिको को घेरे हुई थी। कहा जाता है कि न्यूटन भी एक दिन अपने बगीचे मे बैठे यही सोच रहे थे कि वस्तुतः चन्द्रमा क्यों पृथ्वी के चारो ओर घूमता है, वह इस भ्रमण को त्याग किसी एक दिशा मे क्यो नही चला जाता ! इसी बीच एक पका हुआ सेब डाली मे टूट कर उनके सामने ही धरती पर आ गिरा। सहसा न्यूटन को लगा जैसे यह सेब उनकी सहायता के लिए आया है और उनके प्रश्न का उत्तर यह अवश्य दे देगा। उन्होने लपक कर सेब को उठा लिया और उसे ऊपर फेका दिया सेब पुन धरती पर आ गिरा। अब न्यूटन को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था, सचमुच सेब ने उन पर विश्व क्या ब्रह्माण्ड के एक गोपनीय रहस्य को खोल दिया। पृथ्वी मे आकर्षण शक्ति है—यह शक्ति पेडो पर से फलो को तोड़ सकती है। उन्हे धरती पर ला गिराती है, इसी कारण ऊपर उछाली गई वस्तु वापिस आ जाती है।" तो ? न्यूटन के मन ने पूछा। 'तो क्या ?' उत्तर मिला, 'इसी आकर्षण शक्ति की डोर मे बधी चन्द्रमा पृथ्वी से लग नही सकता। वह चक्कर लगाता रहता है। न्यूटन ने अपने इस गुरुत्वाकर्षण के नियम को इन शब्दों मे बाधा—Every particle in the universe attracts every other partice with a force vargide in varying as the square of the distance between them, and directly as the product of the masses of the two particles. ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण प्रत्येक अन्य कण को अपनी दूरी के वर्ग के उल्टे अनुपात से अपनी ओर खीचता है। उनकी आकर्षण शक्ति उनकी मात्रा के ठीक अनुपात मे होती है।

इसे समझने के लिए मान लो दो पदार्थ अ तथा ब एक दूसरे से १० गज दूर है। यह भी माना कि अ मात्रा मे ब से १० गुना है। इस प्रकार ब अ पर जितना आकर्षण डालेगा उससे १० गुना आकर्षण अ ब पर डालेगा। यस तो हुआ दो पदार्थों की आकर्षण शक्ति का ठीक अनुपात मे होना।

अब गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के पूर्वार्द्ध के अनुसार यदि इन दोनो पदार्थों को ५० गज की अपेक्षा २० गज की दूरी पर रखदे तो दुगने २ का वर्ग ४ होगा,

आविष्कार Safety lamp रहा जिससे खदान के भीतर काम करने वाले लाखों आदमियो की प्राणरक्षा की व्यवस्था हुई है। ये वक्तृता मे अद्वितीय थे।

डेवी की वक्तृता ने फैराडे पर प्रभाव किया। इसी समय से वे दफ्तरी का काम छोड़कर विज्ञान की सेवा करने का अवसर ढूंढने लगे। वैज्ञानिक वक्तृताओं से उनका इतना प्रेम हो गया था कि वे अपने भाई राबर्ट से प्रत्येक वक्तृता के खर्च के लिए १ शिलिंग की व्यवस्था करके भी ४३ न० डर्सेट स्ट्रीट मे मिस्टर टटमेर के घर रात के ८ बजे उनकी वक्तृता सुनने जाया करते थे।

८ अक्तूबर १८१२ को २१ वष की अवस्था मे इन्होने दफ्तरी की शिक्षा समाप्त करके स्वयं दफ्तरी का पेशा अख्त्यार किया, मगर अब वे पहले की तरह विज्ञान चर्चा के लिए समय नही निकाल पाते थे। अतः दफ्तरी के काम को छोड़ देने का दृढ संकल्प करके इन्होने इंगलैंड की Royal Societ नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक सभा के सभापति जो सेफ बैंक्स को विज्ञान चर्चा मे अपनी रुचि दर्शाते हुए वहां नौकरी के लिए एक पत्र भेजा। वहां से कोई उत्तर न पाकर सर हैम्फ्री डेवी को इन्होने एक पत्र लिखा जिसके साथ उनकी वक्तृता की भी एक नकल भेजी। डैवी ने उसके उत्तर में इन्हें लिखा कि अभी वह नगर से बाहर जा रहे हैं और जनवरी महीने के अन्त तक लौटने पर जब इनकी इच्छा हो उनसे साक्षात्कार करें जिससे फैराडे को बहुत खुशी हुई।

एक दिन रात को एक नौकर उन्हे एक पत्र दे गया, यह डेवी का लिखा हुआ था। उसमें उन्होने रायल इंस्टीट्यूशन में एक सहकारी की खाली जगह का जिक्र किया था और इस सुयोग को पाकर फैराडे ने अर्जी भेज दी।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"—फैराडे की इच्छा पूर्ण हुई। १८१३ की १ मार्च को उन्हे २५ शिलिंग साप्ताहिक वेतन पर Royal Institution के सहकारी का पद मिला और ऊपरी मंजिल की दो कोठरियां उन्हे रहने के लिए मिली।

यूरोप भ्रमण—जब फैराडे अपने काम मे संलग्न था तो डैवी नाइट्रोजन क्लोराइड नामक विष्फोटक पदार्थ की परीक्षा कर रहे थे। इसमें थोड़ी सी भी असावधानी होने से प्राणों का खतरा था। अतः वे दोनों इस खतरे से बचने के लिए काच का बर्म और शिरस्त्राण पहन लेते थे।

इसी साल डैवी ने फैराडे को साथ लेकर यूरोप भ्रमण करना चाहा और फैराडे ने इस यात्रा के लिए विशेष दिलचस्पी प्रदर्शित की। इस भ्रमण में डैवी,

श्री माइकेल फैराडे

माइकेल फैराडे एक ऐसे महापुरुष हो गए है जिनके जीवन मे असम्भव नाम की कोई वस्तु नही थी। इनके पिता जेम्स फैराडे एक गरीब लोहार थे; जिनकी १८७६ में मार्गरेट हैस्टवेल, एक किसान की लड़की से शादी हुई, जिससे इन्हे ४ संतान हुई जिनमे से माइकेल फैराडे २२ सितम्बर १७९१ मे तीसरे थे। इनके जन्म समय में इनके माता पिता इंगलैंड मे न्यूटन नामक स्थान पर रहते थे परन्तु फिर वे शीघ्र ही इगलैंड चले आये। बचपन मे ये इतने दरिद्र थे कि एक बार इनको केवल १ रोटी पर ७ दिन निकालने पड़े थे फिर इनकी लिखाई पढाई कैसे हो? तब भी ये स्कूल भेजे गए जहां इन्होने साधारण हिसाब किताब निकालना सीखा।

सन् १८०५ में १३ वर्ष की अवस्था में माइकेल फैराडे जार्ज रिबो नामक एक दफ्तरी की दुकान मे अखबार पहुंचा आने के काम पर नियुक्त हुए। कुछ दिन पश्चात वे जिल्दसाजी का काम भी सीखने लगे। पुस्तक की जिल्दबदी करने के पहले उसको ये पढ जाते थे और वैज्ञानिक पुस्तकों मे इनकी रुचि अधिक थी। उन्होने स्वयं लिखा है कि सबसे पहले वाट्स के मनस्तत्व से चिन्ता करना और मिसेस मार्सेट के 'रासायनिक कथा वार्ता' व 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' से विज्ञान सीखा था।

माइकेल की स्वभावसुलभ सरलता से प्रभावित होकर उनके मालिक के ग्राहकों मे से मिस्टर डान्स नामक एक सज्जन ने इन्हे रायल इन्स्टीट्यूशन मे प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैम्फ्री डैवी का भाषण सुनने ले जाते थे।

फैराडे की तरह डैवी भी बचपन मे गरीब थे परन्तु अपनी प्रतिभा के गुण से ऊँचे पद पर पहुच गए। डैवी का जन्म १७७८ मे कर्णवाल के अन्तर्गत पेन्जान्स नामक स्थान पर हुआ। बचपन मे उन्होने एक दवाखाने मे शिक्षा प्राप्त की और वही वे वैज्ञानिक परीक्षा करते थे। २० वर्ष की अवस्था मे वे डाक्टर बेडोज नामक एक चिकित्सक के सहकारी हुए जहाँ इन्होने नाइट्रस आक्साइड गैस की परीक्षा की, जिसके कारण ये वैज्ञानिक समाज मे आये। सन् १८०१ मे रायल इन्स्टीट्यूशन की स्थापना होते ही इन्हे काउन्ट रमफोर्ड ने सहकारी रासायनिक परीक्षक नियुक्त कर दिया। सन् १८०७ मे बिजली की मदद से दो तीक्ष्ण क्षार (Caustic Potash और Caustic Soda को विश्लिष्ट कर दो धातु Potassuim और Sodium का आविष्कार किया जिससे चार धातुओ magnesium, Barium, Calcium व Strontium का और आविष्कार हुआ। इनका सर्वप्रधान वैज्ञानिक

काच की नली का एक तरफ का मुंह बन्द करके उसमें क्लोरीन हाइड्रेट द्रव भर कर दूसरी ओर का मुंद भी बद कर दिया। फिर क्लोरीन हाइड्रेट वाले हिस्से को मद मद आंच से गर्म करना शुरु किया और दूसरे हिस्से को बर्फ से ठंडा करने लगे। थोड़े ही समय मे खाली मुंह पर तेल के समान कुछ पीले रंग का पदार्थ जम गया। इस परीक्षा से वे जान पाये कि किसी गैस को तरल बनाने के लिए दो बातों की की आवश्यकता होती है—(1) अत्यधिक दवाव की और (2) अत्यधिक ठड की। इस तरह से धीरे धीरे उन्होंने सल्फर डाइ आक्साइड, अमोनिया और साइयानोजन आदि गैसो को भी तरल बनाया। आगे चल कर ये एक छोटे पम्प की सहायता से दबाव बढ़ाकर कार्वोनिक एसिड गैस, हाइड्रोक्लोरिक एसिड गैस और नाइट्रस गैस को भी तरल बनाने मे सफल हो सके।

12 जून 1821 को फेराडे ने मि० जॉन बर्नार्ड नामक एक सिल्वरस्मिथ की तीसरी लडकी साराह् बर्नार्ड के साथ शादी की। और इस समय तक वह विज्ञान शालाओ का सुपरिन्टेंडेंट नियुक्त हो चुका था। 1825 मे वह डाइरेक्टर के पद पर नियुक्त हुआ। इस पद पर उसे 100 पौड सालाना नकद और खाने पीने तथा बिजली की सहुलियत मिलती थी। यह धनराशि वस्तुत. उसके लिए तुच्छ थी और आगे चल कर 1830-31 में उसे हजारो से अधिक पौड फीस के बतौर मिलने लगे थे। मगर दु:ख है कि 1845 तक यह फीस की आमदनी घटकर 20-22 पौड तक गिर गई। अन्त मे फेराडे दरिद्र हालत में ही मरा, मगर इंग्लैंड में 40 साल बिता कर विज्ञान की अतुल धनराशि छोड़ गया।

बेंजिन का आविष्कार—'पोर्टेबल गैस कम्पनी' द्वारा तेल से बनाई गई गैस की परीक्षा करते समय फेराडे ने इस तरल पदार्थ का रासायनिक आविष्कार किया। बेंजिन से Organce रासायन के एक नए विभाग की सृष्टि हुई है। आज बाजार में जो हम नाना प्रकार के रंग देखते है वे सब बेंजिन से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तयार किये जाते हैं।

इस विषय मे एक बात और उल्लेखनीय है कि फेराडे जब क्लोरीन आदि गैसों को तरल बनाने मे लगे हुए थे तब उनसे किसी बन्धु ने पूछा तुम इससे संसार का क्या उपकार कर सकोगे ? इससे अच्छा तो तुम्हे घडी, छाता, जूता, कागज आदि प्रयोजनीय चीजें तैयार करने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक फ्रास्कलीन इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर हाथों हाथ देते कि लडकों को जिस प्रकार मनुष्य बनाया जाता है इसी तरह इन प्रयोजनीय वस्तुओं को तैयार करने की विधि जानने के लिए विशुद्ध रसायन और पदार्थ विद्या मे उन्नति प्राप्त

उनकी पत्नी और सहकारी के रूप मे फैराडे ने चलने की तैयारी की। फैराडे ने यूरोप भ्रमण की मुख्य मुख्य घटनाएं लिखी जिनके पढ़ने से ज्ञात होता है कि यूरोप का प्रवास उनके लिए सुखमय नही रहा। डेवी की पत्नी कभी २ उनसे नौकर के रूप मे घृणित कार्य करवाने मे भी नही हिचकती थी। इतना सब होते हुए भी यूरोप के कई देशों में डेढ साल तक घूमकर फेराडे ने विज्ञान सबन्धी अकथनीय ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस दौरान मे वे फ्रांस की राजधानी पेरिस, इटली, जेनेवा फ्लारेंस और रोम में भ्रमण करते हुए अप्रैल सन् १८१५ मे लौटे। पेरिस मे इन्होंने आम्पीयर क्लीमेंट और डेसरे मे नूतन आविष्कृत मौलिक पदार्थ आयोडीन देखा। इटली मे उनकी गाड़ी को ६० से ऊपर आदमियो ने धक्का देकर आल्पस् पर्वत पर चढ़ाया। जेनेवा मे उनकी Current Electricity के आविष्कर्ता वाल्टा (Volta) से जान पहचान हुई। यहां एक De La Rive नामक अन्य वैज्ञानिक से फेराडे का परिचय हुआ। इन्होंने इनके गुणो से लुब्ध होकर एक दिन डेवी और फेराडे को भोजन के लिए निमन्त्रण भेजा। डेवी फेराडे से कई बार नौकर का काम भी लेते थे, अतः उनके साथ भोजन करने को तैयार नहीं हुए। इसीलिए De La Rive को उन्हे पृथक पृथक दो बार निमन्त्रण देना पड़ा था। फ्लारेंस मे फेराडे ने गैलिलिओ (Gallelio) के दूरवीक्षण यन्त्र को देखा जिसके जरिये गैलिलिओ रात के समय आकाश मे तारे गिनने मे बहुत कुछ सफलीभूत हो पाये थे। रोम में नेपल्स् नगर देखकर विसूवियस ज्वालामुखी पर्वत को देखा।

लौटने पर फेराडे के वेतन मे ५ शिलिंग प्रति सप्ताह की वृद्धि हुई। और वास्तव में इसी समय से फेराडे का वैज्ञानिक जीवन आरम्भ हुआ। १७ जनवरी सन् १८१६ को फेराडे ने अपनी पहली वक्तृता सिटी फिलासफिकल' सोसाइटी मे दी। और इसी साल कास्टिक लाइम पर इनका पहला मौलिक निबन्ध त्रैमासिक पत्र 'जरनल आफ साइंस' मे प्रकाशित हुआ।

विविध गैसों का तरलीकरण—सन् १८१६ से १८२० तक ४ साल मे फेराडे ने कुल ४७ मौलिक निबध प्रकाशित किए। तरलवायु के बारे मे बहुतो ने सुना होगा मगर अभी तक आंखों से नही देखा। लेकिन विलायत के विज्ञान कक्षो में तरलवायु की बोतलो की बोतले प्रयुक्त की जाती हैं। साधारण वायु 200° तक ठंडा करने पर वह जल की तरह तरल हो जाती है और ठंडी इतनी होती है कि उसकी एक बूंद भी हाथ पर गिरने से फोडा निकल आता है। यद्यपि फेराडे इसका आविष्कार नही कर पाये थे मगर इसे तैयार करने की प्रणाली को सुगम कर गए। उन्होने अपने एक निबन्ध मे क्लोरीन गैस को तरल बनाने की व्याख्या दी है। एक

इसके अतिरिक्त कागज, लाख, ग्रेफाइट, फ्लूरस्पार, लकडी का कोयला आदि साधारण चुम्बक द्वारा आकृष्ट होते है और फिटकरी, काच, चीनी, रोटी, गन्धक आदि साधारण चुम्बक के द्वारा विताडित होती है। फेराडे ने अपनी तरल द्रव्यों की परीक्षा से यह भी दिखाया है कि जहा कितने ही पदार्थो का जलीय द्रव चुम्बकात्मक है तो कितने ही तरल पदार्थ पराचुम्बकात्मक भी है। आगे चलकर उन्होने वायवीय पदार्थो मे भी चुम्बकत्व और पराचुम्बकत्व की परीक्षा की।

फेराडे ने स्वदेश और विदेश दोनो से ही अपनी वैज्ञानिक जिन्दगी मे अतुल सम्मान प्राप्त किया जिसका मुख्य सबूत यह है कि उन्होने सब मिलकर 95 सम्मान-सूचक पदविया और खिताब पाये। वैज्ञानिक गवेषणाओ द्वारा फेराडे जितना सम्मान पाते थे उतना ही उनके शिक्षा गुरु डेवी उनसे ईर्ष्या करते थे। यहा तक कि जब फेराडे को रोयल सोसाइटी का सभासद बनाने का प्रस्ताव हुआ तो डेवी द्वारा ही सभा के सभासद की हैसियत से बाधा डालने की कोशिश की गई।

फेराडे का चरित्र बहुत ही पवित्र और स्वभाव बहुत ही मधुर था। 1834 मे इग्लैड के प्रधान सचिव राबर्ट पील ने उन्हे 300 पौ० सालाना पेशन देने की इच्छा प्रकट की जिसे लेने के लिए फेराडे पहले तो राजी नही हुए मगर अतमे बन्धुबान्धवो के अनुरोध से रजामन्द हो गए। लेकिन इस बीच मे ही लार्ड मेलबोर्न को प्रधान सचिव का पद मिला और उन्होने फेराडे को बातचीत करने के लिए बुलवाया। बातो ही बातो मे लार्ड मेलबोर्न ने फेराडे से कहा था कि वैज्ञानिको और साहित्यिको को पेशन देना रुपये का अपव्यय करना है जिससे फेराडे को बहुत ठेस पहुची और उन्होने लार्ड मेलबोर्न को एक पत्र लिखा जिसमे पेशन लेने की अनिच्छा प्रकट की। बाद मे एक सम्भ्रात महिला द्वारा दोनो मे मेलजोल हुआ और लार्ड मेलबोर्न ने फेराडे को लिखे गए एक पत्र मे अपनी उस दिन की बातो पर अत्यत दुख प्रकट किया और क्षमा मागी। तब से अंतकाल तक फेराडे को यह पेशन बराबर मिलती रही।

अत्यधिक मानसिक और शारीरिक परिश्रम से फेराडे का शरीर पहले से बहुत ही अधिक निर्बल हो चुका था और 25 अगस्त 1867 को सतहत्तर वर्ष की अवस्था मे अपने पढने लिखने के कमरे मे बैठे-बैठे ही उन्होने शरीर त्याग दिया। उनकी इच्छानुसार बिना किसी विशेष आडम्बर के ही उनकी समाधि दी गई।

करना आवश्यकीय है। और सचमुच फेराडे को क्या पता था कि उनके तैयार किये हुए क्लोरीन की सैकडों हजारो बोतले सोने की खान मे काम मे लाई जायँगी ?

विद्युत सम्बन्धी आविष्कार.—वैज्ञानिकों के आजीवन परिश्रम के कारण आज इस सभ्य जगत में बिजली एक प्रधान शक्ति बनी हुई है और इन वैज्ञानिकों में माइकेल फेराडे का स्थान उच्चतम है। मूल सूत्रों के आविष्कार वे ही कर गए थे जिनके सहारे आज कितने ही यंत्र तैयार किये जा रहे हैं। फेराडे जब दफ्तरी का काम किया करते थे तभी से बिजली के सम्बंध की परीक्षा में दिलचस्पी लेने लगे थे।

बिजली और चुम्बक के द्वारा बिजली पैदा करना:—अस्टार्ड और अम्पियार फेराडे से पूर्व ही यह परीक्षा कर चुके थे कि बिजली और चुम्बक मे घनिष्ट सबध है। फेराडे से पूर्व यह मालुम हो चुका था कि लोहे की एक सलाई पर तावे का तार लपेट देने से और उसी तार के भीतर से बिजली का प्रवाह प्रवाहित करने से लोहा चुम्बक बन जाता है। फेराडे सन् 1831 मे एक दूसरी परिक्षा मे लगे जिसमे तांबे के एक तार के पास, जिसमे प्रवाह प्रवाहित हो रहा है, तावे के एक दूसरे तार पर बिजली का प्रवाह प्रवाहित हो सकता है या नही ? और दस दिन के भीतर ही उन्होने इस विषय की प्रायः सब बातो का आविष्कार कर डाला। फेराडे से पहले विद्युतकोष से ही बिजली पैदा होती थी लेकिन इन कोषो मे जो मूल्यवान् पदार्थ काम मे लाये जाते थे उनको कुछ दिनो के बाद फेक देना पडता था और इस तरह से बिजली पैदा करना उस समय बहुत मंहगा पडता था।

बिजली के रासायनिक विश्लेषण का नियम—निकलसन् और कार्लाइल ने बिजली के प्रवाह के द्वारा जल को विश्लिष्ट कर उद्‌जन और अम्लजन गैसे बनाई तत्पश्चात् डेवी ने बिजली के प्रवाह के द्वारा काष्टिक सोडा और पोटाश इन तीक्ष्ण क्षारो को विश्लिष्ट कर दो नई धातुओं का आविष्कार किया। मगर फेराडे ने नाना प्रकार की परीक्षाओं से एक (Quantitative Law) का आविष्कार किया। उन्होंने इन नियमो के बारे मे लिखा है कि "समपरिमाण तडित् प्रवाह विभिन्न यौगिक से तुल्य तौल (Equivalent weight) का मूल पदार्थ विश्लिष्ट करता है।

चुम्बकत्व और पराचुम्बकत्वः—फेराडे ने तीन तरह के द्रव्य लेकर (कठिन, तरल और वायवीय) परीक्षा करके यह दिखला दिया है कि जितनी वस्तुएँ हैं वे साधारण चुम्बक के द्वारा या तो आकृष्ट होती है या विताडित होती है। धातुओ मे लोहा, निकेल, कोवाल्ट, मैंग्नीज आदि धातु चुम्बक और दस्ता, टीन, पारा, सीसा, चादी, तावा, सोना आदि पराचुम्बक धातु हैं यह उन्होने साबित कर दिया था।

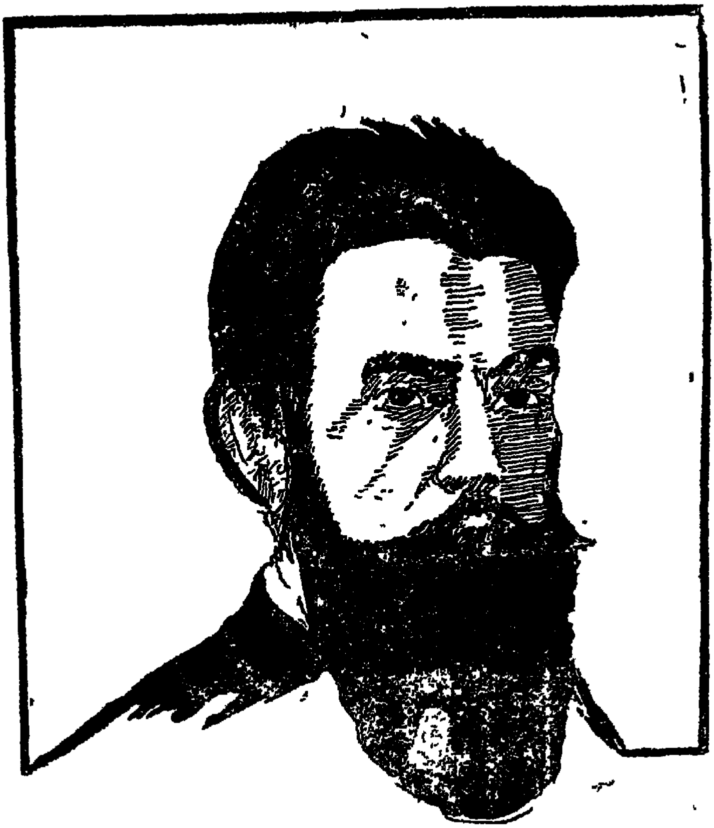

सर रांजन

रांजन तथा एक्स-रे

आजकल यदि शरीर के भीतरी भागों में कोई विकार उत्पन्न हो जाय या कोई हड्डी टूट जाय तो बडी आसानी से 'एक्सरे' द्वारा इस बात का निश्चय करके उपचार किया जाता है। क्षय रोग के रोगियों का तो उपचार करने के पूर्व 'एक्सरे' करवा लेना एक नियम सा बन गया है। आज हम इस अध्याय मे यही देखेगे कि 'एक्सरे' मे होता क्या है और उसका आविष्कार कैसे हुआ ?

विषय की वैज्ञानिकता मे जाने के पूर्व आरम्भ मे ही इतना बतला देना समोचित होगा कि 'रे' (Ray) का अर्थ अंग्रेजी मे किरण (प्रकाश की किरण) होता है और एक्स (X) का अर्थ होता है अज्ञात वस्तु। बीज गणित मे यह परिपाटी सी बध गई है कि जो राशि हमे ज्ञात करनी होती है, उसे एक्स (X) मान लेते है। जैसे बाप–बेटे की उम्रो के प्रश्न करते समय किसी की उम्र को 'एक्स' मान लेते है। इसके अनुसार एक्स-रे (X–Ray) एक ऐसा प्रकाश है जिसके बारे मे उसके अन्वेषक को कुछ ज्ञात नही था। यह महान् अन्वेषक एक जर्मन वैज्ञानिक था जिसक नाम राजन (Rontgen) था, पूरा नाम था विल्हेम कोणरद राजन (Wilhem Konrad Rontgen) । आप भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे।

उस समय तक रेडियम का अनुसंधान नही हो पाया था, किन्तु विद्युत् के बारे मे काफी जानकारी विज्ञान को मिल चुकी थी। यूरोप के विभिन्न भागों मे वैज्ञानिक तरह तरह की खोजो और आविष्कारो मे लगे हुए थे । प्रोफेसर राजन महोदय को विज्ञान की खोजो के साथ ही साथ फोटोग्राफी से भी बड़ा प्रेम था। उन्होने अपनी प्रयोगशालाओ मे ही फिल्मो के धोने तथा फोटो बनाने की व्यवस्था कर ली थी। हम सभी जानते हैं कि फोटो की फिल्मो को धोने के पूर्व प्रकाश मे नही रखना चाहिए नही तो वे खराब हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रिंट पेपर (Print paper) को भी प्रकाश मिलने से खराबी आ जाती है । इसीलिए एक दिन प्रोफेसर राजन महोदय के कुछ प्रिन्ट पेपर अच्छी तरह काले रंग के कागजो से ढक कर अपने भौतिक विज्ञान के प्रयोगो मे लग गये। थोड़ी देर बाद उन्होने जब उस प्रिन्ट पेपर को देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कि उस पर किसी न किसी प्रकार का प्रकाश पड़ा था । अवश्य जिसके कारण वह कागज कुछ धूमिल हो गया था। उन्होने प्रत्येक वस्तु की अच्छी तरह जाच की। कही से भी प्रकाश के उस कागज तक पहुचने की सम्भावना नही थी। वह कागज स्वय काले

मोटे कागज के अन्दर ढका हुआ था। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वह वास्तविकता को जान नही पाए। किन्तु वैज्ञानिक होने के नाते उनका ध्यान इधर खिंच गया और अब वे इस प्रयत्न मे लगे कि किसी प्रकार का रहस्य का पता लगाना चाहिए।

संयोग की बात है कि एक दिन वह एक नली (tube) मे से ऐसी नली जो गैस से भरी थी, विद्युत् स्फुलिग के प्रयोग कर रहे थे। वस्तुतः वह गैसो मे से विद्युत् सचालन पर प्रयोग कर रहे थे। उन्होने एक नली ली जिसमे दो धातु के टुकडे—एलेक्ट्रोड्स (Electrodes) लगे हुए थे। (इसे आजकल कैथोड-रे नली—Cathode Ray tube कहते है)। धातु के दोनो टुकड़े नली मे 'सील' कर दिये गए थे। जब इन्हे एक 'हाईवोल्टेजे बैटरी से सम्बन्धित किया गया तो कैथाड़े की ओर से एनेड की ओर एक विद्युत् स्फुलिन जाता दिखाई दिया। वैसे साधारणतया प्रत्येक गैस विद्युत् के लिए कुचालक होती है पर वोल्टेज अधिक देने पर स्फुल्लिग (Spark) उत्पन्न होते है। इसके पश्चात् उन्होने नली मे से सम्पूर्ण गैस पम्प द्वारा निकाल ली और फिर उन्होने देखा कि अब इस गैस रहित नली को स्फुल्लिग (Spark) नही होता अपितु तरल ज्योति एकसी (diffuse glow) सर्वत्र बिखर जाती है। इस बात की उन्हे आशा नहीं थी, वह समझते थे कि सम्भवतः कोई प्रकाश भी दृष्टिगोचर नही होगा। इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विद्युत् को वायुशन्य स्थान मे से होकर जाने मे सुविधा होती है। इसी प्रयोग को उन्होने पुनः किया। अब की बार उन्होने नली मे एक धातु का टुकड़ा और रख दिया ताकि यह देखा जा सके कि इस प्रकार जो अज्ञात प्रकाश निकलता है वह वस्तुतः प्रकाश है या और कुछ। यदि प्रकाश होगा तो इस बीच मे डाली गई धातु के कारण छाया उत्पन्न होगी और यही हुआ। बैटरी को चालू करते ही वही प्रकाश पुन. दिखाई दिया और उस धातु खण्ड की छाया भी पड़ी। अब-यह निश्चित हो गया कि यह वस्तु या तो प्रकाश ही है जो सीधी रेखाओ मे मे चलता है या कोई पदार्थ—कण जो एक दिशा मे प्रवाहित हो रहा है (यह सन् 1895 ई० की बात है, उस समय तक अभी विज्ञान को इतना पता नही था कि प्रकाश भी एक पदार्थ है)। इतना जान लेने के पश्चात् भी इस प्रकाश या पदार्थ की उत्पत्ति के रहस्य को जानना बाकी ही रहा। किसी उपयुक्त नाम के अभाव मे इसे कैथाडे किरण (Cathode Rays) ही कहा गया।

प्रोफेसर रांजन महोदय अभी इस रहस्यमय पदार्थ के पीछे पडे ही रहे। वह इसे तरह तरह जांच कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहते थे। उन्हे ध्यान

एक्स किरणें एक विशेष नली में से गुजर सके। इस प्रकार मोलिब्डनम पर कैथोड किरणो के टकराने से ही एक्स किरणों की उत्पत्ति होती है। जिस नली से एक्स-किरणें गुजरती है उसके सिरे पर उस पदार्थ को रख देते हैं जिसका 'एक्सरे' होना होता है। उस पदार्थ के पीछे फोटो लेने वाली प्लेट होती है। इस प्लेट को अच्छी तरह कागज से ढक कर रखते है ताकि साधारण प्रकाश इस पर पड़ कर रांजन के प्रिन्ट-पेपर सा खराब न कर दे। इस प्लेट के कागज मे ढके रहने से एक्स-किरणो का प्रभाव कम तो होता नही, क्योकि वे कागज इत्यादि को सरलतापूर्वक पार कर जाती है। इस प्रकार शरीर के उसभाग का फोटो ले लिया जाता है जो एक्स किरणो तथा फोटोग्राफिक प्लेट के बीच मे पड़ता है।

एक्स किरणों के चार महत्वपूर्ण कार्य है—(१) वे हल्के परमाणुओं के पदार्थो मे से होकर गुजर जाती है और भारी परमाणुओ वाले पदार्थों द्वारा रोक दी जाती है। इस प्रकार वे माँसे मे से हो कर तो आसानी से निकल जाती हैं किन्तु हड्डियो को पर नही कर सकती। इसी कारण शरीर के किसी भाग का 'ऐक्सरे' किया जा सकता है और अन्य गड़बडी या चोट तथा टूट-फूट का भी पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी को गोली लग गई हो और शरीर के भीतर उसके ठीक स्थान का पता न लगता हो तो 'एक्स-रे' द्वारा उस स्थान को निश्चित करके बड़ी सरलता से उसे निकला जा सकता है।

एक्स-रे का दूसरा कार्य भी इसी प्रकार का है—लघुनम तरगदैर्घ्य वाली एक्स-किरणें इस्पात से होकर भी निकल सकती है। इस प्रकार वेल्डिंग (welding) की त्रुटियो को तथा इस्पात में उत्पन्न दरारो का भलीभाति पता लगाया जा सकता है।

एक्स किरणों का उपयोग कैन्सर के इलाज में भी किया जाता है। इन किरणों में वह शक्ति है जो कैन्सर कोषिकाओ (Cancer Cells) को नष्ट कर देती है। पर यहां एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि जिस प्रकार एक्स-किरणो मे कैन्सर नष्ट करने की शक्ति है उसी प्रकार वे कैन्सर उत्पन्न भी कर सकती हैं। अधिक देर तक एक्स-किरणो मे शरीर के किसी भाग के खुले रहने के कारण शरीर में एक प्रकार की खाज उत्पन्न हो जाती है और इन किरणो के विषैले प्रभाव के कारण शरीर गलने लगता है। इसीलिए आजकल एक्स-रे का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाता है और इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि किसी प्रकार भी नली में से एक्स-किरणें अनपेक्षित रूप में बाहर न निकले। इसके लिए नली को शीशे (लेड) से अच्छी प्रकार ढक कर रखते है और केवल एक विशेष रास्ते से

आया कि जिस दिन उनके फोटो के प्रिन्ट पेपर पर कुछ धूमिलता आ गई थी उस दिन भी वह इसी प्रकार का प्रयोग कर रहे थे। फिर अचानक उनके मन मे आया कि कही इसी अज्ञात प्रकाश के कारण ही तो उनके कागज खराब नही हो गए थे। पर उन्हें तो अच्छी तरह काले कागजो मे लपेट कर रखा था। फिर उन्होने सोचा सम्भव है इस प्रकाश मे यह गुण हो कि वह हल्के पदार्थों को पार कर जाता हो। बस इस विचार तक आते ही उन्होने इसे निश्चय कर डालने के लिए पुन: कैथोडे नली को उठाया। अब की बार उन्होने बीच मे धातु के किसी टुकडे को नही रखा अपितु पूरी नली ही गत्ते से बने एक बाक्स मे रखा कि यह देखा जा सके कि यह प्रकाश गत्ते को पार कर सकता है या नही। अब की बार वह प्रसन्नता के मारे उछल पडे जब उन्होने देखा कि इस प्रकाश ने गत्ते को पार कर दूर रखे एक पर्दे को प्रकाशित कर दिया है। इस प्रकाश को पुन: जाँचने के लिए उन्होने प्रकाश के सामने अपना हाथ रख दिया और वह एकाएक चौक पड़े। दूर पर्दे पर उनके हाथ की हड्डियो की छाया पड़ रही थी, मास की छाया नही के बराबर थी। इस दिन ससार मे सर्वप्रथम किसी का एक्स-रे किया गया था। अब राजन महोदय इस निष्कर्ष पर पहुच गए कि नवीन प्रकाश की इन किरणो मे मुलायम वस्तुओ को पार कर जाने की क्षमता है जबकि कठोर पदार्थों की छाया पड़ती है।

राजन बडे विनम्र स्वभाव के थे। उन्हे अपने नाम और ख्याति से अधिक प्रिय विज्ञान की सच्ची सेवा थी। यदि वे चाहते तो इन किरणो का नाम ही राजन किरणे रख सकते थे, किन्तु उन्होने ऐसा नही किया। इनका नाम उन्होने एक्स-रे (X-Ray) रखा और पुन: अधिक सचेत होकर इनकी खोज मे जुट गए।

एक्स किरणे—एक्स किरणो (X-Ray) का तरंग दर्घैर्य्य बहुत ही कम होता है। ·000000001̇2 सेन्टीमीटर। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है कि जब कैथोड किरणे मोलिब्डनम इत्यादि ऊँचे द्रवणाक धातुओ से टकराती हैं तो एक्स-किरणे उत्पन्न होती हैं। (इनके बारे मे हम एलेक्ट्रोन के अध्ययन मे कुछ और पढेंगे)। साधारण रीति से उत्पन्न एक्स-किरणे अधिक प्रभावशाली नही होती। इसीलिए अस्पतालो मे एक विशेष प्रकार से अधिक क्षमता वाली एक्स किरणे उत्पन्न की जाती है। इन्हें उत्पन्न करने की विधि नीचे दी जा रही है :—

एक नली मे सर्वप्रथम कैथोड किरणे उत्पन्न की जाती है और इनके रास्ते में मोलिब्डनम इत्यादि किसी ऐसे पदार्थ को रखा जाता है जिनका द्रवणाक बहुत ही ऊँचा होता है। इस पदार्थ (Molybdenum) को तिरछा तरह इस प्रकार रखा जाता है कि जब कैथोड किरणे इससे टकराएं तो इस टकराहट मे उत्पन्न

ही इन किरणों को निकलने देते है ताकि ये किरणे ठीक उसी भाग पर पडे जहाँ इनकी आवश्यकता है। वह भी थोड़ी देर के लिए।

इसके पश्चात् एक्स-किरणें अन्य अनेक रूपों मे भी बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई है। कभी कभी ऐसा होता है कि चोर सोने इत्यादि को निगल जाते हैं। ऐसी दशा मे एक्स-रे बडा सहायक सिद्ध होता है। क्योकि वह चोर के पेट मे सोने की उपस्थिति पर सही राय देने मे लाभकारी होता है। इन्ही किरणो के सहारे परमाणुओ तथा रवो का सगठन ज्ञान किया जाता है तथा सीपियो के अन्दर मोती की उपस्थिति का पता लगाया जाता है।

एक्स-किरणों का प्रथम गुण यह है कि ये कैथोडकिरणो की भाति कणो से बनी हुई नही होती हैं। ये इसकी विकिरण तरगे है। इन किरणो का विद्युत क्षेत्र (Magnetic fild) पर कोई प्रभाव नही पडता। यदि विकिरण के मार्ग से कोई विद्युत क्षेत्र रख दिया जाय तो अल्फा-किरणें एक ओर और बीटा-किरणे दूसरी ओर मुड़ जाती है (Deflected होती हैं), किन्तु एक्स-किरणे अपने मार्ग पर सीधे बढती जाती हैं।

टामसन तथा एलेक्ट्रोन

टामसन का जन्म १८५६ ईस्वी में मैनचेस्टर के निकट हुआ था। उनकी शिक्षा पहले ओवेन्स कालेज, मैनचेस्टर में, तत्पश्चात् ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिज में हुई १८८० ईस्वी में यह कैम्ब्रिज के 'फेलो' चुने गए थे और १९१९ में वहां के रिसर्च प्रोफेसर के पद पर इनकी नियुक्ति हुई थी। कैम्ब्रिज में इन्होंने एक विशाल प्रयोगशाला की स्थापना की जहा विज्ञान के विभिन्न अंगों पर दूर-दूर के विद्यार्थी अनुसंधान कर सकें। इस प्रयोगशाला में देश-विदेश के छात्र अनुसंधान नार्य करते थे। यहीं पर १८९५ ईस्वी में न्यूजीलैण्ड के रदरफोर्ड ने टामसन के साथ साथ कार्य आरम्भ किया।

यह वह समय था जब कैम्ब्रिज के इस नवीन प्रयोगशाला के वैज्ञानिक अधिकतर गैसों में से होकर विद्युत् संचालन का अध्ययन किया करते थे। इसी प्रकार के अध्ययन के फलस्वरूप रंजन ने महत्वपूर्ण एक्सकिरणों को खोज निकाला था। अभी एक्सकिरणों का रहस्य बना ही था, आखिर यह कैसी किरणें हैं, जो पदार्थ से होकर निकल जाती हैं, क्योंकि साधारणतया कोई भी प्रकाश किरण किसी पदार्थ के अवरोध से रुक जाती है। कैथोड किरणें तथा एक्सकिरणों की आगामी खोज का कार्य टामसन ने आरम्भ किया। गैस भरी नली में से उसने भी विद्युत् संचालन के परिणाम स्वरूप अनेक बार कैथोड किरणें पैदा की। उनका अध्यन किया पर कोई विशेष परिणाम नहीं निकल सका। इसी बीच टामसन ने अपने सहयोगी रदरफोर्ड के साथ यूरेनियम किरणो पर कुछ प्रयोग किए। यूरेनियम ने निकलने वाली किरणों का अध्ययन करते समय उसने इन किरणो के रास्ते में अनेक प्रकार के पदार्थ रखकर यह जानकारी प्राप्त की कि ये किरणें तीन प्रकार की है (१) कुछ ऐसी हैं कि मोटे कागज से भी रुक जाती हैं, किन्तु (२) कुछ ऐसी हैं जो पहले वाली से अधिक शक्तिशाली हैं और कागज के अवरोध से रुक नहीं पातीं। इन किरणों के लिए उन दिनो कोई विशेष नाम नहीं थे। इसीलिए इनका नाम क्रमशः अल्फा किरणें तथा बीटा रख दिए गए। अल्फा किरणें और बीटा ग्रीक वर्णमाला के प्रथम दो अक्षर हैं जैसे अंग्रेजी में ए और बीं होते हैं। इस प्रकार यूरेनियम से निस्तृत किरणों को जब किसी चुम्बक क्षेत्र से होकर गुजरने का अवसर दिया गया तो यह स्पष्ट लक्षित हुआ कि एक किरण एक दिशा में मुड गई है और दूसरी दूसरी दिशा में। इसी समय विदित हुआ कि एक तीसरी किरण भी इन्हीं अल्फा और बीटा किरणों में सम्मिलित है जिस पर चुम्बक का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह सीधे अपने मार्ग पर बढ़ती गई। इस तीसरी किरण को 'गामा' प्रकार की किरण कहा गया क्योंकि अज्ञात किरणों के दो

श्री टामसन

श्री मेंडल और आनुविंशता

साधारणतया यह देखा जाता है कि माता-पिता और उनकी संतान मे काफी सादृश्य होता है। उनकी समान रचना और एवं उनके विभिन्न अंगो के गुणो मे समानता होती है। इस विषयं पर आस्ट्रिया के एक पादरी जे. जी मेन्डल (1122–1884) ने मटर पर अनेक प्रयोग कर कुछ नियम बनाये। मेडल एक किसान के पुत्र थे और यह 1847 मे पादरी बन गए थे। इन्होने अपने गिरजा घर मे समय व्यतीत करने के लिए हरी मटर की छोटी तथा बड़ी मटर की परस्पर मेल से नई प्रकार की मटर उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयोग किये। इन्होंने इन परीक्षणो मे पहले तो केवल एक गुण पर ध्यान केन्द्रित कर लिया और उसी गुणो का निरीक्षण पौवों की कई पीढियो तक किया। इसके बाद इन्होने कई गुणो का एक ही पौवो की कई पीढियो तक इसके विपरीत गुणों वाले पौधो के साथ परस्पर संयोग कर, अध्ययन किया। इस प्रकार उसमे अनुविंशता के लिए कुछ नियम बनाए।

इसने साधारण मटर पर ही प्रयोग किए क्योकि मटर के विरुद्ध गुणों के जोडे सुगमता पूर्वक प्राप्त हो जाते थे। जैसे लम्बा या ठिगना पौधा, बीजों का गोल या झुर्रीदार आकार अथवा पीला या हरा रग इ्ादि मेडल ने इन प्रयोगो के आधार पर बनाए। परिणामो के सर्वप्रथम 1886 मे प्रकाशित किया, लेकिन उस समय उसके काम का महत्व बहुत कम लोग समझते थे इसलिए वे काफी समय तक अज्ञात ही रहे। लेकिन जब ही व्रीज आदि वैज्ञानिको ने इसी प्रकार के परिणामो को प्रकाशित किया तो मेडल के कार्य का महत्व भी लोगो ने समझा और उसे यथोचित सम्मान एवं यश मिला।

जिस प्रकार " जीवन रस " जीवन का भौतिक अधार है, उसी प्रकार जीवाकुर कोशिकाओ के (Choromosomes) पैतृ गति का भौतिक आधार है। क्रोमोजोम्स उनके न्यूष्ठि (Nucleus) मे पाया जाता है। प्रत्येक कोप मे न्यूष्ठि होता है व प्रयेक नियूष्ठि मे पैतृक सूत्र होते हैं। ये पैतृक सूत्र (Chromati materials) के बने होते है और प्रत्येक जाति के प्राणियों मे इनकी एक निश्चिन सख्या होती है। हर एक पितृ सूत्र मे अनेक पैतृक अंश (Genes) होते है, जो सभी एक लाइन मे होते है। प्रत्येक प्राणी के गुण इन्ही (Genes) के एक दूसरे की और वातावरण के बीच प्रतिक्रियाओ का परिणाम होता है। यह (Genes) इतने छोटे होते है कि माइक्रोस्कोप मे भी दिखाई नही पड़ते है इनका चित्र तक लेना भी सम्भव नही है।

नाम अल्फा और बीटा रख देने के पश्चात गामा ही प्रथम आता था। यही गामा किरणें एक प्रकार की एक्सकिरणें थीं।

किन्तु अल्फा और बीटा किरणो के चुम्बक द्वारा दिशा परिवर्तन से यह निश्चित सा होगया था कि ये किरणें अवश्य कोई पदार्थ हैं। उन दिनो तक पदार्थ का लघुतम अंश परमाणु ही माना जाता था। किन्तु परमाणु भ्रमण करते समय प्रकाश देंगे, यह नहीं। अब यह लगा कि निश्चित ही परमाणु से छोटा कोई अंश है जिसका हाथ परमाणुओं की रचना में है। टामसन दूसरी खोज में पड़ गए और उन्होंने अल्फा तथा बीटा किरणो का रहस्य ढूंढ़ निकाला कि बीटा किरणें और कुछ नहीं, तेजी से घूमते हुए ऋण-विद्युत् के लघुतम कण-इकाई हैं। इन्हें टामसन ने एलेक्ट्रोन कहा। अल्फा किरणो का रहस्य खुलने पर विदित हुआ कि वे हीलियम गैस के बीज (nucleus) हैं जो धनविद्युत्मय होते हैं।

इस प्रकार डाल्टन के 'अविभाज्य परमाणु' सिद्धान्त का खण्डन टामसन ने एलेक्ट्रोन को खोज कर किया। इसके पश्चात् अनेक प्रकार के अन्य प्रयोगो पर निश्चित किया गया कि एलेक्ट्रोन बहुत ही हल्के होते हैं। अब तक हाईड्रोजन का परमाणु सबसे हल्का माना जाता रहा था जिसमें एक प्रोटान तथा एक एलेक्ट्रोन होते हैं। प्रयोगों के आधार पर जब एलेक्ट्रोन की तौल विदित की गई तो पता चला कि एलेक्ट्रोन हाइड्रोजन के परमाणु का भी $\frac{1}{1838}$ ही होता है।

इसके पश्चात् अन्य अनेक प्रयोग किए गए। परमाणु की रचना पर विचार किया गया और विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रत्येक परमाणु के केन्द्र पर कुछ धनविद्युत् कण होते हैं जिन्हें प्रोटान कहते हैं। इसी केन्द्र पर कुछ ऐसे कण भी होते हैं जिनमें न धनविद्युत् होती है ऋण-विद्युत्। इस केन्द्र के चारों ओर कुछ ऋण-विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं। इन्हें ही एलेक्ट्रोन कहते हैं। प्रत्येक परमाणु की रचना में उतने ही एलेक्ट्रोन रहते हैं जितने प्रोटान।

जब एलेक्ट्रोन अपनी कक्षा बदलते हैं तो शक्ति या प्रकाश छोड़ते हैं। इनके प्रवाह को ही एलेक्ट्रिसिटी (electricity) या विद्युत् कहते हैं। आपस में एलेक्ट्रोन एक दूसरे को विकर्षित करते हैं। धन-विद्युत् तथा ऋण-विद्युत् के कारण भी यही हैं। यदि किसी कारण से किसी पदार्थ में से कुछ एलेक्ट्रोन निकल जाते हैं तो कहा जाता है कि वह पदार्थ धन-विद्युत्मय हो गया क्योंकि ऋण-विद्युत्मय एलेक्ट्रोन वहा से निकल गए रहते हैं। इसी प्रकार जहा ये एलेक्ट्रोन एकत्रित होते हैं वह पदार्थ ऋण-विद्युत्मय (negatively charged) होता है।

ठिगने पौधे डेढ़ फीट के थे। उसने देखा कि पहली पीढी मे उत्पन्न होने वाले जितने पौधे है वे सबके सब लम्बे है। इस पीढी का उसने "प" पीढी कहा। अब "प" के बीज एकत्रित कर उसने सेचन क्रिया करवाई। इस वार उत्पन्न होने वाले पौधों मे से तीन पौधे लम्बे थे और एक पौधा ठिगना था। अर्थात् लम्बे और ठिगने पौधो मे 3:1 का अनुपात था। इसके उपरान्त उसने यह देखा कि दूसरी पीढ़ी के ठिगने पौधों के बीजो से सिर्फ अगली पीढी उत्पन्न होती है। लेकिन लम्बे पौधों के बीजों में ऐसा नही होता। उनमे से एक बीज से केवल लम्बे और बाकी बाकी बीजो से 3:1 के अनुपात मे लम्बे और ठिगने पौधे पैदा होते है।

1. **लक्षणों की स्वतंत्रता इकाई** (Independent of unit Character).—इसके अनुसार पौधे के जितने भी गुण है वे स्वय अपने में एक इकाई है और इकाई पर किसी दूसरे गुण का कोई प्रभाव नही पड़ता है। अर्थात् दूसरी पीढ़ी मे जब ये गुण आ जाते है तो दूसरे लक्षण अथवा गुण इन पर कोई प्रभाव नही डालते है। इन इकाई को दूसरी पीढी मे ले जाने के लिए कुछ विशेष आकार होता है, जिन्हे जिन्स कहते है जो कि इन गुणो के प्रदर्शित करने पर नियन्त्रण रखते है।

2. **गुरुतर का नियम** (Law of Dominiance):—जैसा कि हम पहले नियम के द्वारा बतला चुके है कि जिन्स मे रहते है लेकिन ये गुण सदैव जोड़े मे ही रहते हैं। उदाहरण के लिए लम्बा और ठिगनापन यह एक ऐसा जोड़ा है जो कि अलग-अलग रहने पर अलग लम्बाई और ठिगनेपन को प्रदर्शित करता है। यह हम जानते हैं कि एक गुण दूसर गुण को ढक भी सकता है। जैसा कि अगर "प" (F) एक पीढी मे हम देखते है कि लम्बे व ठिगनेपन के दोनो गुणों को एक साथ पहुचाये तो लम्बाई का गुण प्रकट होता है, ठिगनेपन का नही। क्योंकि लम्बाई का गुण ठिगनेपन के गुण को ढक लेता है, इस प्रकार ऐसी जोड़ी जिनमें से "प" (F) पीढ़ी केवल एक ही गुण को प्रदर्शित करती है जो अलीलामार्फ कहलाती है। यहा वह गुण जो अलीलामार्फ मे से पहली पीढि से प्रकट होता है गुरुतर (Dominiant) कहलाता है। उदाहरण के लिए ठिगनापन और लम्पापन एक अलिलामार्फ है जिसमे लम्बापन गुरुतर का गुण है और ठिगनापन अगुरुतर का व दूसरा जो कि "प" पीढ़ी में प्रकट नहीं होता अगुरुतर कहलाती है।

3. **गैमिटस की शुद्धता का सिद्धांत** (Purity of gametes):—यह सिद्ध हो चुका है कि जाइगेटस (Zygotes) में एक दूसरे का विपरीत गुण हो सकता है, जैसे लम्बाई और ठिगनेपन का। लेकिन जब भी गैमिटस बनते है, हम

विजयेन के पैतृगति का दृष्टिकोण (Continuity of Germplasm)— विजयेन के अनुसार प्रत्येक प्राणी मे दो प्रमुख आकार के कोण होते हैं—

(1) सोमेटिक कोषिकाए जो शरीर मे होती है।

(2) Germ cell अथवा जीवाकुर कोषिकाएं जो जनन इन्द्रियो मे उपस्थित होते है और इन जीवाकुर कोषिकाओं से जन्तु के परस्पर मिलने से युग्मिति या युक्ता बनता है। इसके मिलने से मातृक जन्यु के (Chromosomes) और पैतृक जन्यु के पितृ सूत्र एक जगह आ जाते है। अर्थात् युक्ता मे माता और पिता दोनों मे पित्रय-सूत्र होते है। इसी युक्ता के भ्रूण विकसित (Devlope) होता है। जो आगे चलकर प्रोढ प्राणी बनता है । इस प्रकार माता और पिता दोनों के (Chromosomes) नये प्राणी की सन्तान के प्रत्येक कोष मे होते है और चूंकि यह (Chromosomes) ही गुणो के वाहक होते है । इसलिए संतान में माता और पिता दोनों के गुण होते है, जब सतान अवस्था मे होते है । इस समय भी उसमे दो प्रमुख प्रकार की कोशिकाएं पहिचानी. जा सकती है। (Somatic) और जीवांकुर केशिकाए-संतान के बडे होने पर यह जीवाकुर केशिकाएं इसके जन्तुओं का निर्माण करते है। जीवाकुर केशिकाओ से जन्यु बनने के क्रम मे उसके आधे (सख्या मे) होते है। जब गर्भदान के समय दो जन्यु मिलते हैं, (एक माता का एक पिता का) तो युक्ता बनता है । इसमे दोनों जन्तुओ के क्रोमोजोम्स आ जाने के कारण पित्रय सूत्रो की सख्या पुन. वही हो जाती है । जो जीवाकुर की कोषिकाओं मे होती है। उदाहरणार्थ जीवाकुर कोषिकाओ में ४ है, तो जन्तुओ मे ४ क्रोकोजोम्स ही होगे और जन्तुओ के मिलने से युक्ता बनेगी तो उनकी सख्या पुन. ४+४ = ८ हो जायेगी। यही कारण है कि एक जाति के सभी जीवों मे पितृसूत्र संख्या सदा निश्चित बनी रहती है। मेन्डल के पैतृगति सिद्धान्त एक वर्ण संकर (Monobybridvratio) :—मेंडल ने पैतृगति नियम के सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए उद्यान के मटर के पौधो को चुना । उसने यह देखा कि मटर के पौधो में बहुत से अलीलामार्फ अर्थात विपरीत गुणो के जोडे विपरीत गुण के होते है। जो कई अलीलोमार्फ बनाते है । पौधे लम्बे या ठिगने, बीज चिकने, झुर्रीदार अथवा पीले हरे हो सकते है।

मटर के पौधे भी विपरीत गुणो के कारण उनके फूल गुलाबी लाल और सफेद हो सकते है। उसने सर्वप्रथम एक विपरीत गुणो के जोड़ो को लिया और उसे कई पीढियो तक देखा। सबसे पहले उसने लम्बे और ठिगने पौधो को लिया और उनमे आपस में प्रजनन करवाया। इसके पास जो लम्बे पौधे थे वे ६ फीट के थे जबकि

उद्विकास (Darwin and Evolution)

चार्ल्स डरविन (1809–1892) ईसाई था और इसका ध्यान विकास वाद की ओर मैल्थस के जन-गणना सम्बन्धी एक पुस्तक को पढ़कर हुआ। इस पुस्तक को पढ़ते समय डारविन के मन विचार उठा कि परिस्थितियो के परिवर्तनों के साथ साथ जीवो मे भी अनेक परिवर्तन उत्पन्न हो जाते है। लेकिन जो परिवर्तन परिस्थिति के अनुकूल होते हैं वे तो जीवो की एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक पहुच जाते है। और जो परिवर्तन परिस्थिति के प्रतिकूल होते है उन परिवर्तनो वाले जीव शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए उसने जानवर और पेड़ पौधों की नई जातियों को उत्पन्न करने और कृत्रिम रूप से उनमे परिवर्तन लाने के प्रयत्न मे अपने जीवन के लगभग 20 वर्ष लगा दिये। उसने 1859 मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवो का विकास' (Origin of species) प्रकाशित की जिसमे उसने अपने सभी प्रयोगों तथा निष्कर्षों का विस्तार सहित वर्णन किया। आरम्भ में तो बाइबिल मे लिखी बातों के खिलाफ उसको अपना मत प्रकट करने मे बड़ी दुर्दशा हुई। उसके देशवासी उससे घृणा करने लगे। लोग उस पर थूकते थे और कंकड़ फेंकते थे, किन्तु कुछ ही दिनो मे उसके युक्तिसंगत सिद्धान्त का लोग आदर करने लगे।

यद्यपि यह ठीक है कि उद्विकास के सिद्धान्त का श्रेय पूर्णतया डारविन को नही है क्योंकि वैलेस नामक वैज्ञानिक ने भी 1858 मे ठीक डारविन के समान ही उद्विकास के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये थे। अत हम कह सकते है कि वैलेस और डारविन दोनो ही स्वतन्त्र रूप से इन विचारो को अलग अलग प्रकट करने के कारण उद्विकास के सिद्धान्त के आविष्कारक है। डारविन ने अपनी पुस्तक मे ऐसे ऐसे अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये है जिनके कारण न केवल वैज्ञानिको कोही वल्कि साधारण मनुष्य को भी विकासवाद के सिद्धान्त को अपनाने मे किसी प्रकार की हिचक नही हुई। फिर भी अनेक वैज्ञानिको ने इसके विपरीत अपने अपने मत प्रकट किये है, जिनमे डी व्रिज और हक्सले आदि के नाम मुख्य है। डी व्रिज ने तो उद्विकास का एक नया ही सिद्धान्त बनाया है जिसे उत्परिवर्तन या म्यूटेशनवाद कहते है जबकि जुलियन हक्सले (Huxley) ने डारविन के सिद्धान्त मे कुछ परिवर्तन का आवश्यक सुधार कर फिर से आधुनिक डारविन वाद के रूप मे प्रस्तुत किया है।

संसार मे अनेको प्रकार के जीवधारी पाये जाते है। प्राचीन काल मे यह माना जाता था कि यह सभी जीव ईश्वर ने, जैसे वे आज दिखाई देते है, उसी रूप मे बना दिये थे। धर्म ग्रन्थों मे यह लिखा मिलता है कि आदि काल मे जब सृष्टि

देखते है कि पीढी में केवल एक गुण गैमिट में पहुंचता है। अर्थात एक अलीलामार्फ का केवल एक गुण गैमिट मे पहुचता है। उसका जोडा कभी नही पहुँचता। इस प्रकार गैमिटस के आपस मे मिलने पर नये जाइगेट वनते है, उससे दूसरी पीढी के गुणों का पता चल सकता है।

द्विवर्णसंकर (Dihybind rotio):—मैन्डल ने इन उपरोक्त तीनो गुणो के आधार पर और भी फूल लिए जिसमे एक से अधिक अलिलोमार्फ लिए और इनके द्वारा उत्पन्न की गई पीढी मे उसने उपरोक्त तीनो गुणो को सिद्ध कर दिया। जव दो अलीलोमार्फ लिए जाते हैं तो उसे द्विवर्णसंकर अनुपात कहते हैं। मेन्डल ने दो पौधे लिए जिसमे एक पौधा लम्बा और लालपुष्प वाला तथा दूसरा पौधा ठिगना जो सफेद फूल वाला था। इनका उसने आपस मे प्राकृतिक रूप से सेचन करवाया तो देखा कि इनसे उत्पन्न पहली पीढी के समस्त पौधे लम्बे और लाल पुष्प धारी थे। लेकिन दूसरी पीढिये प्राप्त होने वाले पौधों मे 9·3.3:1 का अनुपात था।

(3) तुलनात्मक बनावटें (Comperatie Anatomy)
(4) अनुपयुक्त अंग (Vestigial organs)
(5) भ्रूण सम्बन्धी प्रमाण (Emboyological evidences)
(6) पूर्व गुणों का अचानक प्रकट होना।
(7) जीव अवशेष सम्बन्धी प्रमाण।
(8 खोई हुई कड़िया (Missing Linkas)
(9) जन्तु भूगोल (Zoo-geography)
(10) पालतू जन्तुओं के परिवर्तन (Changes under domestication)
(11) अचानक परिवर्तन (Mutation)
(12) अंगो के कार्य और प्रयोग (Physiology and Experiments)

वर्गीकरण:—हम देखते है कि एक ही जैसी रचना वाले जन्तु एक साथ रखे गये हैं और साथ ही साथ सबसे पहली श्रेणी मे रखे गए जन्तु से दूसरी श्रेणी के जन्तु कुछ जटिल है। दूसरी श्रेणी से तीसरी श्रेणी के। इस प्रकार जैसे-जैसे अगली श्रेणी पर बढ़ते है हम देखते है कि जटिलता बढती जाती है। उदाहरण के लिए यदि हम रीढ़धारी जन्तुओं को देखें तो हम देखते है कि मीन (मछली) श्रेणी सर्वप्रथम आती है, उसके बाद मंडूक श्रेणी, उसके उपरान्त सर्प श्रेणी, पक्षी श्रेणी और अन्त में स्तन पोषी श्रेणी वाले जन्तु आते हैं। मछली से मडूक श्रेणी कुछ अधिक जटिल होती है। क्योकि यह (मछली) केवल पानी मे ही जीवित रह सकती है और इनके हृदय के भी दो ही विभाजन होते है, लेकिन मंडूक श्रेणी के जन्तु थल और जल दोनों में ही रह सकते है और साथ ही साथ उनके हृदय के भी तीन भाग होते है। वैसे तो जटिलता बहुत सी है लेकिन यहा पर इन दो का वर्णन ही काफी होगा। सर्प श्रेणी मडूक श्रेणी से भी जटिल होती है। इनके हृदय के चार भाग होते हैं और यह पूर्णतया थल पर रहने वाले जीव होते है। पक्षी सर्प की जाती से अधिक विकसित होते है। इस प्रकार हम देखते है कि एक जन्तु दूसरे जन्तु से कुछ समानता एवं कुछ विभिन्नता भी रखते हैं। अगर हम जन्तु जगत को एक पेड़ मानें तो यह अलग-अलग श्रेणी उसकी अलग-अलग शाखाओ के रूप मे प्रकट होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरल जन्तुओं से जटिल जन्तुओ का विकास हुआ।

जोड़ने वाली कड़ियां (Connecting Linkas):—वर्गीकरण में हम यह देखते हैं कि कुछ जन्तु ऐसे होते है, जिनमे दो श्रेणी के गुण साथ पाए जाते हैं

रचना हुई तब परमात्मा ने अनेकानेक प्रकार के जड एव जन्तु उत्पन्न किये और आज जो प्राणी हमे दिखाई देते है वे शुरू से इसी रूप मे चले आ रहे है। अर्थात् जन्तुओं और पौधों की विभिन्न जातिया ठीक वैसी ही वैसे उत्पन्न हुई जैसे कि वे आज है। जीवो की उत्पत्ति सम्बन्धी इस विचार धारा को "स्वत. स्फूर्ति उत्पत्तिवाद" (Theory of Spontaneous Creation) कहते है। किन्तु वैज्ञानिक इस बात को गलत सिद्ध कर चुके है। अब यह माना जाने लगा है कि सब पौधे और जानवर एकदम आज के रूप मे पैदा नही हो गये थे। वरन् वे उन प्रकारों से जो पहले विद्यमान थी, क्रमशः विकसित हुए। संसार परिवर्तनशील है, इसमे शामिल प्रत्येक वस्तु, हरएक प्राणी परिवर्तनशील है। आदि काल मे परिवर्तन होते होते एक समय ऐसा आया जब परिस्थितियां जीवो के उत्पन्न करने के अनुकूल हुई। उस समय अनादि काल पूर्व सर्व प्रथम जीवधारी उत्पन्न हुए। वह जीव एक कोशीय थे। इनको न जन्तु कहा जा सकता था न पौधे ही। ऐसा माना जाता है कि यह समुद्र मे पैदा हुए थे और ये निम्नतम प्रकार के जीव थे। एक जीव कोशीय जीवों के विकास होकर द्विकोशीय और उनसे बहुकोशीय जीवो की उत्पत्ति हुई। इस विकास के होने मे अनेकों लाखो वर्ष लगे। किन्तु यह विकास चलता ही गया, क्योंकि परिवर्तन सदा ही होता रहा। निम्नतर प्रकार के प्राणियों से उनसे अपेक्षाकृत जटिल प्रकार के जीवो की ओर विकसित होता रहा, किन्तु यह सब कुछ बहुत धीरे धीरे और क्रमशः हुआ और अन्त मे लाखो करोडो वर्षों बाद आधुनिक प्रकार के जीव अपने से पहले प्रकार के जीवधारियो से विकसित हो अपने आधुनिक रूप मे प्राप्त हुए। इस सिद्धान्त को विकासवाद का सिद्धान्त कहते है और आजकल सभी वैज्ञानिक इसमे विश्वास रखते है। इसके अनुसार निम्न अपृष्ठवँशीय से उच्च अपृष्ठवंशीय और क्रमशः पृष्ठवशीय विकसित हुए। निम्न पृष्ठवंशीय से पृष्ठवशीय का विकास हुआ। Uertebrata से मछलियो से, मण्डूक श्रेणी, सर्प जाति के जीवो का और इस प्रकार के जानवरो से स्तनपोशियो और चिड़ियायो का विकास हुआ। सक्षेप मे विकासवाद के अनुसार जटिल रचना के प्राणी अपने से निम्न कोटि के प्राणियो से विकसित हुए है। अथवा यह सिद्धान्त निम्नलिखित प्रमाणो पर आधारित है। विकास का अर्थ है ऐक नए रूप का पुराने रूप से उदय होना।

"विकास के अनुसार जटिल रचनाओं के प्राणी अपने से निम्नकोटि के प्राणियो से विकसित हुए है। यह सफलता निम्नलिखित प्रमाणों पर सरलतः आधारित है:—

विकास के प्रमाण

(1) वर्गीकरण (Classi fioation)
(2) जोड़ने वाली कड़िया (Conmeoteig links)

त्वचा के नीचे छुपी रहती है, क्योंकि उनको आंखों की कोई आवश्यकता नही होती है। मनुष्य के शरीर पर भी ऐसे 90 अग है जो कि कार्य नही करते और उसके लिए बेकार हैं और धीरे धीरे नष्ट होते चले जा रहे हैं। Appendix उनमे से एक है। मनुष्य में इसका (appendix) कोई कार्य नही है, क्योंकि एपिन्डीक्स में भोजन कभी नही जाता है, वह छोटी आतो से बड़ी आंतों मे सीधा चला जाता हैं और जब कभी इसमे भोजन पहुच जाता हैं तो मनुष्य को Appendix का रोग उत्पन्न करता है। मनुष्य के शरीर पर पाये जाने वाले बाल, बाहरी कान भी इन्ही अंगों मे है क्योंकि बालो का कार्य शरीर को गर्मी सर्दी आदि से बचाना था। आज कल जब मनुष्य कपड़ों का प्रयोग करने लगा है तो उन बालों की कोई आवश्यकता नही रह गई है। अतएव यह बाल धीरे धीरे नष्ट होते चले जा रहें हैं। बाहरी कान और उस पर पाए जाने वाले बालो का किसी भी मनुष्य के शरीर पर कोई उपयोग नही है, क्योंकि कान सुनने के लिए और कुछ जन्तुओ के शरीर पर से मक्खी आदि उड़ाने के काम मे जन्तुओ द्वारा लिए जाते थे और उनका कार्य मनुष्य हाथों द्वारा ही कर लेता है और जहा तक सुनने का प्रश्न है, बिना बाहरी कानो के भी सुना जा सकता। मनुष्य में पूंछ का नही होना भी इसी बात का द्योतक है।

(8) भ्रूण सम्बन्धी प्रमाण. –भ्रूणो की प्रगति और परिवर्तनों का अध्ययन करने पर हमको जन्तुओ की विभिन्न जातियों मे समानता मिलती है। जो जाति या सम्बन्ध मे जितनी निकट होती है उनके भ्रूण परिवर्तन मे उतनी ही अधिक समानता होती है। यह बात तो सब ही मे पाई जाती है। भ्रूण सीधे अडे से ही उत्पन्न होते है। और इन अंडों में बहुत से परिवर्तन होने पर भ्रूण जन्तु के रूप मे परिवर्तित हो जाते है। कुछ कोटि के जन्तुओ मे भ्रूण जब परिवर्तन की विभिन्न क्रमिक अवस्थाओं को पार करते हैं तो परिणाम स्वरूप कुछ अवस्थाओ में ऐसे रूप धारण करते है जो अपेक्षाकृत निम्न कोटि के जीवों मे पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए मंडूक के भ्रूण आरम्भ मे मछली जैसे होते है। इसी प्रकार स्तनपोषी के भ्रूण अपनी ऐसी अवस्था को पार करते हैं जबकि वे मछलियो से मिलते जुलते होते है, फिर दूसरी अवस्था को पार करते हैं और इस अवस्था मे उसका भ्रूण मंडूक श्रेणी से मिलता जुलता है। तत्पश्चात् यह सर्प श्रेणी के कुछ भ्रूण वाली अवस्था को प्राप्त होते है और अन्त मे स्तनपोषी जन्तुओ के आकार के बदल जाते हैं। इससे इन विभिन्न अवस्थाओं को पार करने की क्रिया से हम यह निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि वास्तव मे स्तन पोषी श्रेणी के जन्तुको का मीन श्रेणी जैसे जन्तु से धीरे धीरे विकास हुआ है, क्योंकि मीन श्रेणी के विकास से मडूक श्रेणी बनी। मडूक के विकास से सर्प और फिर स्तन पोषी श्रेणी। इस तरह से अन्य जन्तुओ का

अर्थात् उनमें कुछ गुण ऐसे होते है जिनसे उनको एक श्रेणी मे रखा जा सकता है और कुछ गुण ऐसे होते है जिनके कारण उन्हे दूसरी श्रेणी में। यह जन्तु वास्तव मे उन दोनों श्रेणियों के मध्य के रिक्त स्थान की पूर्ति करते है, उदाहरण के लिए (Dipnoi) या फेफडे वाली मछली, मीन और मंडूक श्रेणी के मध्य के स्थान को पूर्ण करती है। इस प्रकार Peripetus नामक जन्तु एनिलिडा और आर्थोपोज के बीच के स्थान को भरता है। इस प्रकार हम इन जन्तुओं का अध्ययन कर यह विश्वास पूर्वक कह सकते है कि एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी का जन्म हुआ है और वह श्रेणी अधिक विकसित होने पर पूर्णतया अलग श्रेणी के रूप मे प्रकट हो गई है और यह विकास हुआ है।

तुलनात्मक बनावटें या रचनायें:—एक ही श्रेणी के जन्तु की वास्तविक बनावट एक ही योजना पर बनी हुई है, चाहे उनका आकार किसी प्रकार का भी क्यो न हो। हम देखते है कि एक ही से अंग अपने मे उनके कार्यो के अनुसार विभिन्न परिवर्तन कर लेते है। उदाहरण के लिए रीढ धारी की भुजाये एक ही योजना पर बनी हुई है, उनमे पाये जाने वाली हड्डियां भी संख्या मे एकसी होती हैं लेकिन उनका आकार बदल जाता है, क्योंकि कुछ तैरने का कार्य करती है, कुछ उछलने का, कुछ उडने का, कुछ चढने का और कुछ गढ्ढे आदि खोदने का। अगर उनमे आपस मे कोई सम्बन्ध नही होता तो ये बनावट मे एक सी कभी नही हो सकती थी। इसी प्रकार अगर हम भोजन नली, नाड़ी सस्थान, हृदय, विसर्जन अग और प्रजनन अंगों का ध्यान करें तो हम देखेंगे कि वे सभी एक ही योजना का फल है। लेकिन इनमे मीन श्रेणी से स्तन पोषी श्रेणी तक धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता चला जाता है इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि ये जन्तु एक ही श्रेणी से उत्पन्न हुए जो आगे चलकर अपने कार्य के अनुसार अलग-अलग श्रेणी के रूप मे परिवर्तित हो गये।

(4) अनुपयुक्त अंग—अनुपयुक्त अंग उन अंगों को कहते हैं जो कि किसी समय शरीर पर व्याप्त थे लेकिन क्योंकि उनका अब कोई कार्य नही रह गया इसलिए या तो वे नष्ट हो चुके है या नष्ट होने की गति मे हैं। क्योंकि जैसा कि हम जानते हैं कि जो अग ज्यादा कार्य करता है वह अधिक विकसित होता चला जाता है और जो अंग काम मे नहीं आते है वे नष्ट होने चले जाते हैं। उदाहरण के लिए शतुर्मुर्ग आदि बहुत से ऐसे पक्षी हैं जिनके पंख काम मे नहीं आने के कारण लुप्त प्रायः होते चले जा रहे है। और अब वे जन्तु उन पंखों की सहायता से उड भी नही सकते हैं। इसी प्रकार गुफाओ मे रहने वाले बहुत से जन्तुओ की आंखे एक

इजीप्ट मे उस समय (Eosine) एक सा पाया जाता था। लेकिन जैसे २ हम ऊपरी परतो को देखते है उसकी बनावट और आकार मे अन्तर बढता जाता है, इसके उपरान्त वह ४२" ऊंचे और निचली ओर ऊपरी एकसे जबाडे वाले जन्तुओं के रूप मे परिवर्तित हो गए, उसका ऊपरी ओष्ठ बढने लगा और अन्त में वह हाथी जितना ऊंचा जन्तु हो गया जिसमे ऊपरी ओष्ठ तो सूंड के रूप मे परिवर्तित हो गया और कुछ दाँत हाथी दात के रूप मे। एक वैज्ञानिक का कहना है कि जब से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है उस समय से आज तक की एक ऐसी फिल्म बनाई जाए जो कि ४८ घन्टे मे समाप्त हो तो मनुष्य उसमें उस समय प्रकट होगा जबकि फिल्म समाप्त होने मे केवल एक घंटा और दस मिनट रह जायेगे। इससे यह ज्ञात होता है कि वास्तव मे मनुष्य संसार में सबसे श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है इसका किसी समय पता न था, वह उससे निम्न श्रेणी के जन्तुओ से विकसित हुआ है। इस प्रकार अवशेषो द्वारा जन्तु ज्ञान विकास का बिल्कुल सीधा और सही प्रमाण है।

8. खोई हुई कड़िया (Missing Links):—खोई हुई कड़िया वे कड़िया हैं अर्थात् वे जन्तु है जो कि विकास के समय बीच मे रिक्त स्थान छोड़ देते है। उदाहरण के लिए पक्षी श्रेणी का विकास सर्प श्रेणी से हुआ कुछ पुराने समय मे पाए जाने वाले सर्प श्रेणी के जन्तुओं से बहुत कुछ मिलते जुलते पक्षी थे। लेकिन पक्षी से मिलते जुलते सर्प श्रेणी के जन्तुओ और सर्प श्रेणी मिलते जुलते पक्षी के बीच मे स्थान खाली था और इसी को खोई हुई कड़ियाँ कहा जाता था, लेकिन Archiopterix एक ऐसा जन्तु है जिसमे पक्षी श्रेणी के और सर्प श्रेणी के गुण पाए जाते हैं। इसका आकार एक कौवे के बराबर था और इसके एक लम्बी पूछ होती थी जिसमे पूछ की हड्डी भी होती थी। इसके जबाड़े पाए जाते थे जिसमे दात भी पाए जाते थे। तीन स्वतन्त्र अंगुलिया और पजा व पैर भी होते थे व चोच भी पायी जाती थी। चोंच, पखो और पर दार पूंछ का होना पक्षी श्रेणी के गुण होते थे जबकि मुंह मे दांत का होना और शरीर पर Scales का पाया जाना सर्प श्रेणी का विकास सर्प श्रेणी से ही हुआ है।

9. जन्तु भूगोल (Zoogeography) :—आज कल संसार में विभिन्न स्थानो पर पाये जाने वाले जन्तु उसी प्रकार है जैसा कि विकास के सिद्धान्त पर उनको होना चाहिये था। अर्थात् जो पुरानी श्रेणी है वह अधिक वितरित्त हैं जब कि नवी श्रेणी कम। इसके अतिरिक्त भूगोल सम्बन्धी रुकावटें श्रेणी को अलग २ कर देनी हैं और कुछ नई श्रेणी को जन्म देती है। कुछ ऐसे जन्तु है जो कि केवल आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका में ही पाये जाते है, इसका कारण उनके बीच मे ऐसे

क्रमिक विकास हुआ और जो स्तनपोषी जीव होते है उनमे वास्तव में तो उन जन्तुओं जैसे कोई गुण नही होते लेकिन चूंकि यह परिवर्तन बाद में हुआ है, अतएव भ्रूण को उन विभिन्न अवस्थाओं मे से होकर गुजरना पड़ता है जिनमें करोड़ों वर्ष पूर्व के थे।

(6) **पूर्व गुणों का अचानक प्रकट होना:**—इसका अर्थ है कुछ पूर्व गुणों का या बनावटो का जो कि पूर्ण रूप से नष्ट हो चुकी हैं, अचानक प्रकट हो जाना। जैसे मनुष्य मे चीरने वाले दांत (Canine teeth) बहुत ही छोटे हो गए है क्योंकि मनुष्य को अब मासाहारी जन्तुओ की तरह अधिक चीरना फाडना नही पडता है लेकिन कभी कभी किसी मनुष्य मे यह बहुत ही अधिक विकसित रूप मे पाया है। इसी प्रकार किसी किसी मनुष्य जाति के शरीर पर बालो की अधिकता पाई जाती है। कभी कभी बच्चे भी उत्पन्न होते है जिनमें छोटी सी पूंछ पाई जाती है। यह गुण उनमे आये कैसे ? इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि किसी न किसी समय वह गुण मनुष्य में पाया जाता था, लेकिन उनके लगातार अनुपयोग से वह नष्ट हो गया, लेकिन चूंकि भ्रूणों को तो सदैव इसी अवस्था में से गुजरना पड़ता है जो कि कभी कभी उनमे से कोई अवस्था वह अगर पूर्णत. पार न करे तो उत्पन्न होने वाले जीव में वह गुण भी अवश्य प्रकट हो जायेंगे।

(7) **जीव अवशेष सम्बन्धित प्रमाण:**—प्राचीन काल मे विद्यमान जीवो के निशान और बचे हुए अंग और उनके चिह्नो के अवशेषों के अध्ययन से हमे उद्विकास के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त होती है। पृथ्वी मे दो प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं, पहली आग्नेय चट्टान और दूसरी परतदार चट्टानें। दूसरी प्रकार की चट्टाने मिट्टी इत्यादि की परत जमकर ठोस हो जाने से बनती है। इन चट्टानो की परतो मे अवशेष मिलते है। जितनी प्राचीन और नीचे की परत होती हैं इसमे अपेक्षाकृत उतने ही प्राचीन जीवो के अवशेष प्राप्त होते हैं। हम देखते है कि प्राचीन चट्टानो की परतों से केवल हमे सरल रचना वाले निम्नकोटि के प्राणी मिलते हैं। और इनके बाद की चट्टानों मे उनसे जटिल। जैसे जैसे हम चट्टानों की ऊपरी परतो पर आते है वैसे वैसे हमको और अधिक जटिल जन्तुओं के अवशेष प्राप्त होते चले जाते है। यह अवशेष अथवा उनके चिन्ह विभिन्न कोटि की चट्टानों मे पाए जाते है। ये प्रर्दशित करते है कि उस काल मे किस प्रकार के जन्तु पाए जाते थे। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि वे जन्तु जो शुरू मे थे कम विकसित और बाद वाले अधिक विकसित है। इससे यह स्वय विकसित और बाद वाले अधिक विकसित हैं। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि सरल जन्तुओं से अधिक जटिल जन्तुओं का विकास हुआ। हाथी एक खरगोश जैसे करीब दो फुट ऊंचे जन्तु के रूप मे उदय हुआ और ये

जातियां प्राप्त कर ली है। इस प्रकार यह अचानक परिवर्तन एक्स-रे की सहायता से भी उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार अचानक परिवर्तन इस सिद्धान्त को दृढ करते है कि जाति परिवर्तनशील है और एक प्रकार के जन्तु से दूसरे प्रकार के जन्तु उत्पन्न किये जा सकते है।

12. **अंगों के कार्य और प्रयोग** :—बनावट के आधार पर जन्तुओ का दूसरे के प्रति सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। मनुष्य का रुधिर खरगोश के रुधिर मे प्रवेश करने से हमे विशेष प्रकार का पदार्थ प्राप्त होता है। इसी प्रकार खरगोश का रुधिर बन्दर के रुधिर मे प्रवेश कराया जा सकता है और उससे भी विशेष पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन गधे, घोडे, कुत्ते, गाय मे ऐसा नही किया जा सकता। यह बात सिद्ध करती है, कि बन्दर और मनुष्य मे सीधा सम्बन्ध है। इसी प्रकार मलेरिया मच्छर द्वारा मलेरिया मनुष्य और बन्दर मे उत्पन्न हो जाता है किन्तु अन्य जन्तुओ मे नही। इससे यह सिद्ध होता है कि बन्दर और मनुष्य का सीधा सम्बन्ध है और मनुष्य और बन्दर किसी एक ही जन्तु की औलाद है। हम गधे और घोडे का आपस मे प्रजनन करवाते हैं तो हम जानते है कि खच्चर उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जब कुत्ते और भेड़िये का प्रजनन होता है तो (Alsasion) कुत्ते की उत्पत्ति होती है। जब हम कृत्रिम रूप से नई जाति को जन्म देने मे सफल हो सकते है तो क्या प्रकृति मे ऐसा सम्भव नही है और अगर प्रकृति मे ऐसा सम्भव है तो नयी जाति का उत्पन्न होना कठिन नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि पुरानी जाति से नयी जाति का जन्म होता है और विकास भी आवश्यक ोता है।

उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्राणी जगत मे विकास निश्चित रूप से हुआ है और अभी भी हो रहा है, किंतु अब प्रश्न तो यह उठता है कि ये किस प्रकार से हुआ ? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रचलित है.—

1. **लेमार्कवाद**:—सन् १८६९ ईसवी मे लेमार्क नाम के फ्रेंच वैज्ञानिक ने विकासवाद सम्बन्धी अपने विचार Philosophine Zoologi नामक पुस्तक मे प्रकाशित किये। इसका कहना था कि वातावरण सजीव वस्तुओ के विकास मे मुख्य भाग लेता है। उसने यह बताया कि एक ही जाति के जन्तुओ को अगर अलग अलग वातावरण में रखा जाय तो उनमे कुछ विशेष अन्तर आ जाता है, उदाहरण के लिए वे पौधे जा कि छाया मे रखे जाते हैं' उनकी पत्तियां बड़ी हो जाती हैं। रूखे स्थान पर जडें नीचे की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं। अंधेरे में पत्तियो मे क्लोरोफील नही होता है और तना कमजोर हो कर सूख जाता है।

वातावरण का होना है जिसे वे सुगमता पूर्वक पार नही कर सकते है । अगर यह उनके द्वारा पार कर लिया जाता तो सारे संसार मे वे फैल जाते । कुछ पक्षी ऐसे थे जो कि आस्ट्रेलिया जैसे स्थान पर जाकर बस गये वहा पर उनको भोजन की पर्याप्त मात्रा मिली और साथ ही साथ उनके वहा अधिक दुश्मन भी न थे, अतएव उनको उडने की कोई आवश्यकता न रही । धीरे २ उनके पख नष्ट हो गये और अब वे उड भी नही सकते है । कुछ जन्तु जो कि रेगिस्तान मे रहते है उनमे रेगिस्तान मे रहने के लिये गुण प्रकट हो गये जैसा कि जरक और ऊंट आदि मे है और अब ये जन्तु रेगिस्तान को अगर छोड कर दूसरे स्थलो पर प्रवेश करते हैं तो उनका जीवित रहना असम्भव हो जाता है । इसी प्रकार ठडे स्थानो पर रहने वाले जन्तु अपने मे कुछ विशेष परिवर्तन कर लेते हैं, जैसे उनके बाल अधिक होते हैं । अगर ये जन्तु उन स्थलो को छोड कर दूसरे गर्म प्रदेशो मे चले जाये तो उनका वहा पर निर्बाह होना मुश्किल है । अतः भूगोल भी इन जन्तुओ के विकास पर विशेष प्रभाव डालता है । हम देखते है कि एक स्थान पर पाये जाने वाले जन्तुओ मे चाहे वह किसी भी श्रेणी के क्यो न हों काफी कुछ समानता मिलती है । इस प्रकार अलग २ श्रेणियो के होते हुए भी जब उनमे समानता होती है तो हम यह कह सकते है कि जन्तुओ मे परिवर्तन करने की शक्ति होती है और इस प्रकार उनमे विकास भी हो सकता है ।

पालतू जन्तुओं के परिवर्तन:—बहुत से जन्तु मनुष्य के द्वारा पालतू बना लिए गये हैं, उदाहरण के लिए कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, गाय बैल, मुर्गी कबूतर इत्यादि । इनकी जातियाँ इन्ही की जंगली जातियो से बहुत भिन्न होती है और उनको अलग २ श्रेणी मे अगर रखा जाय तो अनुपयुक्त न होगा । इस प्रकार मनुष्य ने अपने हाथों से पुराने प्रकार के जन्तुओ से नये प्रकार के जन्तु उत्पन्न कर लिये हैं, क्योकि जो कुत्ते जगल मे रहते है वे मासाहारी होते है, इसी प्रकार जो बिल्ली जगल मे रहती है वह भी मांसाहारी ही होतो है; लेकिन पालतू होने के बाद वे सिर्फ दूध और रोटी पर ही जीवित रह सकते हैं । इस प्रकार विभिन जातियो के जन्तुओ को पाल कर और उनको एक साथ रखने से उनकी जाति मे भी अन्तर हो गया । इस एक जाति से दूसरी नयी जाति का विकास हुआ है ।

11. अचानक परिवर्तन :—इसका अर्थ है पुराने प्रकार के जन्तुओ से अचानक नये प्रकार के जन्तुओ का उत्पन्न हो जाना । मोरगन नामक जीव शास्त्री और उसके शिष्यो ने Drosophylla Malanogaster नामक मक्खी मे पांच सौ से भी अधिक इस प्रकार के अचानक परिवर्तन उत्पन्न कर के कई विभिन्न

लेकिन इस सिद्धान्त के विपरीत भी बहुत से प्रमाण हैं। एक मनुष्य का एक हाथ कट जाय तो उसके वातावरण मे अन्तर आ जाता हैं और दूसरे हाथ से वह अधिक कार्य करता है तो इस प्रकार उससे जितनी भी सन्तान उत्पन्न होगी उसके केवल एक ही हाथ होना चाहिए। अगर एक मनुष्य अन्धा है तो उसके दूसरे अंग जैसे कान, नाक आदि अधिक तेज हो जाते हैं, तो उसकी पीढी मे अन्धेपन का गुण सदैव रहना चाहिए, लेकिन हम देखते हैं कि ऐसा नही होता है। लेमार्कवाद के अनुसार तो ऐसा ही होना चाहिए था। जब यह अन्तर दूसरी पीढ़ी मे नही पाया जाता है तो वह छोटा अंतर दूसरी पीढी में कैसे पहुंच गया।

डारविन का सिद्धान्त (प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त)—डारविन और वैलस नास के दो वैज्ञानिकों ने उद्विकास के बारे में लगभग एक ही समय एक ही से विचार प्रकाशित किए। ये ही विचार प्राकृतिक चयन के सिध्दात के रूप में विख्यात हुए। वास्तव में चार्ल्स डारविन की जीवों का विकास नामक पुस्तक ने तो १८६६ मे प्रकाशित हुई, सारे ससार में तहलका मचा दिया, क्योंकि इसके द्वारा जीवों की उत्पत्ति सम्बन्धी जो विचार धार्मिक पुस्तको में प्रचलित थे वे झूंठे सिध्द हो गए, जिससे रुढिवादी बौखला उठे। इस सिध्दान्त को हम निम्नलिखित तीन भागो मे बाट सकते है—

(१) अस्तित्व के लिए संघर्ष
(२) विभिन्नता तथा उनका वशानुगत होना
(३) सबसे अधिक उपयुक्त का बनना

अस्तित्व के लिए संघर्ष—अगर एक ही पौधे के समस्त बीज पौधो के रूप मे परिवर्तित हो जाँय तो सारा ससार उससे भर जायगा। इसी प्रकार एक मक्खी या मच्छर के समस्त अडे मक्खी या मच्छर के रूप मे परिवर्तित हो जाय तो भी ससार इन प्राणियो से भर जायगा। अतएव जितने भी जन्तु उत्पन्न होते है उनके बीच मे एक दूसरे के प्रतिःसघर्ष उत्पन्न हो जाता है, और इस संघर्ष में वे ही विजयी होते है जो कि दूसरे जन्तुओ की अपेक्षा अधिक बलशाली और वातावरण के अधिक उपयुक्त होते है, उदाहरण के लिए एक बड़े पेड की जड मे नीचे हम बहुत से बीज डाल दे तो देखेंगे कि उनमे से कुछ ही पौधो के रूप मे बाहर निकलते है और उन कुछ मे से भी एक या दो ही अधिक विकसित हो पायेगे लेकिन अगर उन ही बीजो को दूरी पर बोया जाय तो प्रत्येक से एक पूर्ण पौधा निकल आएगा। इसका कारण यह है कि बड़ा पेड़ पृथ्वी से भोजन और पानी प्राप्त कर लेता है और बीजो को वह चीजे प्राप्त नही होने देता, अतएव जो शक्तिशाली होते है वह इस ससार मे बच

इसके अनुसार वातावरण बदलने पर जीवों की आदतों में अन्तर आता है और आदते बदलने के कारण प्राणी अपने कुछ अंगो को अधिक प्रयोग मे लाने लगता है और कुछ अंगो को कम। जो अङ्ग काम मे आते है वे अधिक विकसित व सुदृढ हो जाते है और जो काम मे नही आते हैं कमजोर होकर अन्त में नष्ट हो जाते है। इस प्रकार उनकी रचना में अन्तर आ जाता है और नयी जाति का जन्म होता है। उसने अपने सिद्धान्त के समर्थन मे सर्व प्रथम प्रमाण में अफ्रीका में रहने वाले जिराफ नामक जन्तु को रखा। जिराफ अफ्रीका के उन भागो में रहता है जहा छोटे पौधे अधिक नही होते हैं। इसलिए सूखे पेड़ों की पत्तियों को जो कि ऊंचाई पर होते है, खाना पडता है। यह आदत जोकि इस जाति के सभी प्राणियों मे बहुत काल से चली आ रही हैं। जिराफ को अगली टांगों से ऊपर की ओर लपकना पड़ता हैं। इस कार्य से इसके बदन की मांस–पेशियाँ और अगली टांगो की मांस–पेशिया अधिक कार्य करती थी, अतएव हम देखते है कि जिराफ की अगली टागे पिछली टांगो की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है और उसकी गर्दन बहुत लम्बी होती हैं। इस प्रकार सर्प जाति के पूर्वजों को वनस्पति से गुजरने के लिए अपने शरीर को लम्बा करना पड़ता था और रेंग कर चलना पड़ता था। इसी से आज के सर्पों के शरीर बहुत लम्बे होते हैं और उनके पैर भी क्रमश. क्रमिक विकास के इस लम्बे कार्य मे धीरे धीरे कम काम मे आने के कारण कम होते गये और अन्त मे लुप्त हो गए। लेमार्ककवाद निम्नलिखित तीन बातो पर निर्धारित है:—

(१) वातावरण का प्रभाव, जिसके कारण प्राणी मे परिवर्तन होते है।

(२) अंगो का अधिक काम मे आना या न आना अर्थात जो अग कार्यशील रहे उनकी योग्यता बनी रहेगी और जो कार्यशील नही है वे लुप्त हो जायेंगे।

(३) परिवर्तित गुणो का दूसरी पीडी के लिए देना या अर्जित गुणो की पैतृगति।

इस प्रकार हम देखते है कि वातावरण के कारण सर्व प्रथम प्राणी मे कुछ विशेष योग्यतायें आती हैं, इन योग्यताओं के कारण नये वातावरण का उदय होता है। जब आदते बदलती है तो कुछ अंग अधिक कार्य करने लगते है और कुछ कम। जो अंग अधिक कार्य करते हैं वे शक्तिशाली हो जाते हैं और जो कम करते है वे कम शक्तिशाली होकर लुप्त हो जाते है। अब ये शक्तिशाली अंग जो कि प्राणियो के अर्जिन दूसरे गुण है दूसरी पीढ़ी को पहुंचा दिए जाते है।

(3) डी व्रीज का अचानक परिवर्तन का सिद्धान्त—ह्यूगो डि व्रीज नामक डच वनस्पति वेता ने १९०१ मे अचानक परिवर्तन का सिद्धान्त रखा, इसका कहना यह था कि डारविन के अनुसार यह छोटे छोटे परिवर्तन दूसरी पीढी मे नही पहुंचते बल्कि ये परिवर्तन अचानक प्रकट हो जाते है और इस प्रकार के परिवर्तन जो अचानक उत्पन्न हो जाते है उनको डी व्रीज म्यूटेशन के नाम से पुकारा।

ओभिवोतरा लेमारकाना नामक पौधो को जो कि अमेरिका से लिया गया था, हालैंड के एक खेत मे बोया गया। इसमे देखा गया कि सारे पौधों मे दो पौधे ही ऐसे थे जो कि शेष पौधो से भिन्न थे और ये दो नये पौधे इससे पूर्व कभी भी वर्णित नही हुए थे। इसके अनुसार यह नयी जाति थी जो कि इन पौधो से उत्पन्न हुई थी। ये पौधे वहा से चलकर उसके स्वयं के बाग मे कई पीढियों तक लगाये गये और उसने देखा कि हजारों पोधो मे से केवल कुछ ही पौधे ऐसे होते है जो कि उन पौधो से बिल्कुल भिन्न होते है। इन नये पौधो को उसने म्यूटेन्ट के नाम से पुकारा और मोरगन नामक वैज्ञानिक ने भी ड्रोसोफला मैलोनोगास्टर नामक मे पाच सौ से भी अधिक प्रकार के म्यूटेन्ट उत्पन्न कर लिए। इसके कहने के अनुसार विकास का कारण अचानक परिवर्तन ही था। डी व्रीज डारविन के प्रकृति चयन के सिद्धान्त को न मानने वाला तो नही था, लेकिन उसका कहना था कि विकास का कारण धीरे २ परिवर्तन न होकर अचानक परिवर्तन का होना है।

(4) वीजमैन की जर्म प्लाजम की थ्योरी—व्रीज ने १८९५ मे विभिन्नताये और विकास के बारे मे अपने सिध्दान्त रखे। उसने प्राणी जीवन रस (Protoplasm) को दो भागो मे बाटा, एक को उसने Somatoplasm कहा जो कि केवल शरीर की ही रचना करते है और दूसरे को उसने Germplasm कहा जो कि प्रजजन के अ गों की रचना करते है। इसके अनुसार केवल Germplasm ही एक पीढी से दूसरी पीढी को पहुचाये जाते है Somatoplasm नही, क्योकि भ्रमण से चित होता है तो उसमे सम्पर्क से केवल जर्म प्लाज ही मिलता है लेकिन जो गुण भी जर्म प्लाजम मे है वे भी दूसरी पीढी को पहुंचाये जाते है और इन गुणो का जो कि प्लाजम मे रहते है उनके मध्य आपस मे जिसमे अस्तित्व के लिए संघर्ष बढता रहता है, इसलिए जो गुण अधिक वातावरण के लिए उपयोगी होते है वे ही दूसरी पीढी तक पहुंचाए जाते है और इस तरह से एक नयी पीढी का जन्म हो जाता है।

रहते है और जो शक्तिहीन होते है वह नष्ट हो जाते हैं। इस सिध्दात के अनुसार जब एक से ही प्राणी है तो उनमे से कुछ जो अधिक शक्तिशाली हैं उनमे से कुछ न कुछ परिवर्तन होते चले जाते है तो अन्त मे एक नयी पीढी का जन्म होता है।

विभिन्नता तथा वंशानुगत होना —यह हम सभी जानते है कि एक ही माता पिता की सारी सन्तान एक सी नही होती उनमे कुछ न कुछ भिन्नता तो अवश्य ही होती है। यह भिन्नता उस पीढी मे और दूसरी से तीसरी मे। इस प्रकार भिन्नता बढती ही चली जाती है और अन्त मे ऐसा भी समय आ जाता है जब कि यह भिन्नता इतनी अधिक हो जाती है कि उस जाति के दूसरे प्राणीं से वह प्राणी बिल्कुल भिन्न होता है।

(3) सबसे अधिक उपयुक्त का बचना—जैसा कि अस्तित्व के सघर्ष मे बतलाया जा चुका है कि केवल वे प्राणी ही जीवित रहता है या बच रहता हैं जो कि वातावरण के अधिक उपयुक्त होता है और जिनमे ऐसी भिन्नता होती है जो कि वातावरण के अधिक अनुकूलता एक पीढ़ी से दूसरी पीढी मे पहुचा दी जाती है और जो अनुपयुक्त होती है वे नष्ट हो जाती है। इसी को हम सबसे अधिक उपयुक्त का बचना कहते है।

डारविन के जन्तुओं और पौधो पर किए गए अनेक प्रयोगो द्वारा इस सिद्धान्त की सच्चाई सिद्ध हो गई और इस प्रकार उसने उद्विकासवाद को दृढ बना दिया। कृतिम चयन द्वारा नयी जन्तुओ की और पौधों की जाति उत्पन्न कर लेते है तो क्या यह प्रकृति मे संम्भव नही कि उसमे भी नयी प्रकार की जाति उत्पन्न हो। इसी को उसने प्रकृतिक चयन कहा। प्राकृतिक चयन डारविन के अनुसार पौधे और जन्तु बहुत तीव्र गति से बढ़ रहे है और जैसा कि हम जानते है कि दो प्राणी भी एक से नही होते हैं। इस प्रकार नये प्राणी मे यह आवश्यक है कि उसमे कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य ही होगी। यह भिन्नता जो कि कुछ प्रकृति के अनुकूल होती है और कुछ प्राकृति के प्रतिकूल, उन प्राणियो मे उत्पन्न हो जाती है। अब उनमे आपस मे अस्तित्व के लिए संघर्ष उत्पन्न हो जाता है और ऐसे प्राणी जिनमे विभिन्नताये प्राकृति के अधिक अनुकूल होती है जीवित रह जाते है। और इस तरह से यह परिवर्तन धीरे धीरे एक पीढी से दूसरी पीढी मे प्राकृतिक रूप सेही दे दिया जाता है। इस प्रकार ऐसे परिवर्तन जो कि प्रकृति के अनुकूल है एक पीढ़ी से दूसरी पीढी मे पहुंचा दिया जाता है, और इस परिवर्तन के पहुंचने से नयी पीढी का उत्पन्न होना प्राक्रितिक चयन कहलाता है।

देने की क्षमता है। पाश्चर ने देखा कि उबाला हुआ दूध अपने आप तब तक नही फटता जब तक उसने बाहर से कुछ फटे हुए दूध का अंश न मिलाया जाय। इस प्रकार दूध अत्यन्त छोटे छोटे गोलाकार खमीरो से फटता था। उसने यह भी देखा कि इस खमीर तथा मदिरा की खमीर मे अन्तर है। पास्टर ने निष्कर्ष निकाला कि दूध किण्वन ने नही फटता अपितु इसी खमीर के कारण फटता है।

सन् १८६३ मे पाश्चर ने देखा कि शर्करा का एक प्रकार का किण्वन जीव कोषिकाओ द्वारा होता है जो अधिक गतिशील है। बस उसने निश्चय किया कि प्रत्येक प्रकार का किण्वन किसी न किसी प्रकार के अति सूक्ष्म जीवो के कारण होता है। इस प्रकार पाश्चर ने किण्वन के सिद्धान्त को एकदम बदल दिया और उसने सूक्ष्म जीवाणुओ के महत्व को प्रतिष्ठित किया। पाश्चर का कहना था कि ये सूक्ष्म जीवाणु धरती पर कूड़ा करकट साफ करने वाले है। प्राकृतिक सेवक हैं। इनका कार्य है सभी मृत कार्बनिक पदार्थों को विघटित करना। पाश्चर ने बताया कि फोड़े फुन्सी तथा घावो का पकना तथा सड़ना भी एक प्रकार के अतिसूक्ष्म जीवो द्वारा ही होती है। इसीलिए घावो को बहुत ही स्वच्छ रखना चाहिए। आजकल चीरफाड़ के पूर्ण तथा पश्चात् शल्य चिकत्सा के औजारो को धोने की जो परम्परा चल पड़ी है वह पाश्चर की खोज का ही परिणाम है।

पाश्चर ने उबाल कर दूध को सुरक्षित रखने की एक विधि निकाली जिसका वर्णन 'दूध' के सम्बन्ध मे भोजन वाले अध्याय में किया गया है। इस विधि को इसके अन्वेषक के नाम पर 'पाश्चयूर्कइंजेश' ही कहते है।

छोटे छोटे जीव-कोष जिन्हे वैक्टीरिया कहते है, दो प्रकार के है—(१) प्रथम हानिकारक वैक्टीरिया तथा (२) दूसरे लाभदायक वैक्टीरिया। हानिकारक बैक्टिरिया शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते है जबकि लाभदायक बैक्टीरिया दूध से दही बनाने, सिरके से एसिटिक एसिड की उत्पत्ति, पनीर बनने, कार्बनिक पदार्थों को सड़ा कर खाद मे परिवर्तित करने इत्यादि अनेक कामो मे आते हैं।

आपने अन्य प्रयोगो मे लगे रहते हुए पाश्चर ने एक बार यह भी निश्चय किया कि यह सिद्ध किया जाय कि जीव अजीवी पदार्थो से उत्पन्न हुए। उसके साथियों ने पाश्चर का मजाक उड़ाया किन्तु पाश्चर प्रसन्नतापूर्वक अपनी खोज मे लगा रहा। पर दुःख की बात यह है कि वह इसे सिद्ध नही कर सका।

ऐसी कोई परिस्थिति नही है जिसमे यह माना जाय कि जीवत वैक्टीरिया अपने समान ही अन्य वैक्टरियों के बिना ही उत्पन्न हो गए। जो लोग यह मानते है कि बैक्टीरिया बिना पितृत्व के ही स्वयम्भू है, वे गुमराह है उन्हे उनके प्रयोगो ने धोखा दिया है और उन्हे सत्य मार्ग नही मिल पाया है।

लुई पाश्चर तथा बेक्टिरिया

अन्धकार की जहाँ अधिकता होती है वही प्रकाश की अधिक आवश्यकता है। लुई पाश्चर का जीवन इसी कहावत को चरितार्थ करता है। यूरोप जब अज्ञान के अन्धकार मे था और वहाँ बीमारियों का कारण जादू टोना समझा जाता तथा इस प्रकार सन्देह मे पकडे गए व्यक्तियो के साथ कठोरता का वर्ताव किया जाता था वही लुई पाश्चर यूरोपवासियो की इस मूर्खता पर हसता था और चाहता था कि ये लोग जल्दी ही समझ जाए कि बिमारिया किसी जादू टोने से नही अपितु अन्य कारणो से पैदा होती हैं।

पाश्चर का जन्म 1822 ई० मे फ्रान्स के डोल नामक एक ग्राम मे हुआ था। उसके पिता चमड़े की 'कमाई' का काम किया करते थे, किन्तु इस पेशे को अपनाने के पहले वह नैपोलियन की सेवा मे सार्जेण्ट रह चुके थे। उसकी शिक्षा पहले 'इकोल नार्मल' पेरिस मे हुई किन्तु पाश्चर को रसायनशास्त्र पढ़ने का बडा शौक था। उसने 1844 से 1847 तक का समय रसायनशास्त्र के अध्ययन मे बिताया। यद्यपि इन दिनो कोई खास घटना नहीं हुई किन्तु इन दिनो के गम्भीर अध्ययन ने पाश्चर के मन मे कुछ करने की एक अमिट लालसा आयी और उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि वह जीवन मे बहुत कुछ कर सकता है। इसके पश्चात् 1848 का वर्ष आया जो पाश्चर के लिए बढा महत्वपूर्ण रहा। उसे प्रसन्नता इस बात की थी कि उसके पिछले वर्षो के परिश्रम जन्य खोजो का फल उसे मिलने वाला था, किन्तु इस दुःख इस बात का था कि इसी वर्ष उसकी मा चलती रही।

पाश्चर को जीवन मे अपनी सहधर्मिणी से बड़ी सहायता मिली। उसकी पत्नी मे एक विशेषगुण था कि वह पाश्चर के विचारों को बिना कुछ कहे समझ जाती थी और उसी के अनुसार आचरण करती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि कब पाश्चर को काम मे लगे हुए छोड़ देना चाहिये, कब उसे उत्साह देना चाहिए तथा कब उसे काम से आराम मिलना चाहिए। वास्तविकता यह है कि पाश्चर की सफलताओ में उसकी पत्नी का बहुत बडा हाथ है।

पाश्चर ने सन् 1857 ई० में दूध के फटने के कारणो की खोज का कार्य अपने हाथ मे लिया। उन निनो यह प्रचलित था कि दूध फटने का कारण यह है कि दुग्ध शर्करा किण्वन के कारण दुग्धाम्ल (Lactic Acid) मे परिणत हो जाती है। प्रत्येक किण्वन के बारे मे यही राज था कि वे किसी न किसी प्रकार के प्रोटीन के कारण होते है। जिनमे कुछ पदार्थों को किन्ही अन्य पदार्थों मे बदल

हार्वे तथा रक्त संचरण

हार्वे का जन्म पहली अप्रैल सन् 1578 ईस्वी को फोकस्टोन नामक एक अंग्रेजी ग्राम में हुआ था। इनके माता पिता काफी धनी थे और आस पास के ग्रामो मे प्रचुर सम्मान प्राप्त किया था। इनकी शिक्षा आरम्भ मे एक प्राचीन परिपाटी के के अनुक्रम 'ग्रामर स्कूल' मे हुई थी। इसके पश्चात् ये कम्ब्रिज भेजे गये जहाँ से इन्होंने बी. ए. की डिग्री प्राप्त की। इनके पिता की इच्छा थी कि इन्हे चर्च मे कार्य करना चाहिये किन्तु हार्वे की इच्छा डाक्टर बनने की थी। इसीलिए डाक्टरी का अध्ययन करने के लिए ये सुप्रसिद्ध पाडुवा (Padua) के विश्व विद्यालय मे गए। वहाँ से लौट कर इन्होने महारानी एलिजाबेथ के निजी डाकक्टर की सुपुत्री से विवाह किया।

यह सम्बन्ध हार्वे महोदय के लिए काफी लाभप्रद सिद्ध रहा। अपने श्वसुर की प्रसिद्धि के कारण उन्हे उस समय के ऊंचे घरानों तथा सम्मानित व्यक्तियो मे अपना स्थान बनाने में बड़ी सुविधा हो गई। इसी कारण सन् 1607 ईस्वी में इन्हे रायल कालेज आफ फिजिसियन (Royal Collage of Physia) का फेलो मान लिया गया। इसके पश्चात् हार्वे महोदय को सेन्ट वार्थोलोम्यू अस्पताल मे एक डाक्टर की जगह मिल गई। इस जगह को प्राप्त करने के लिए इनके आवेदन पत्र को स्वयं 'जेम्स प्रथम' ने आगे बढ़ाया (Forwarded) था। वहा पर इन्होने अथक परिश्रम से अपना कर्त्तव्य निभाया। अस्पताल के कर्मचारी इनसे प्रसन्न रहते थे और रोगी उत्सुकता से इनके आगमन की प्रतीक्षा करते। हार्वे महोदय अपने कर्त्तव्य पालन के साथ ही साथ डाक्टरी की नई नई खोजो मे व्यस्त रहते। प्रत्येक रोगी के बारे मे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने तथा रोगो की जड में जाकर उन्हे दूर करने के प्रत्येक सम्भव उपाय काम मे लाते। अपनी कार्य कुशलता तथा परिश्रम के कारण इन्होने शीघ्र ही बड़ी ख्याति अर्जित कर ली। इसके परिणाम स्वरूप 'जेम्स प्रथम' ने 1718 मे इन्हे अपना निजी असाधारण डाक्टर नियुक्त किया।

जब यह सेन्ट वार्थोलोम्यू अस्पताल मे डाक्टर थे तभी अनेक रोगियो के उपचार करते समय इनके ध्यान में आया था कि शरीर मे खून एक जगह स्थायी रूप मे नही रहता। घावों के चीर फाड़ के समय तथा शरीर कटने पर इन्होंने स्पष्ट देखा था कि खून लगातार कुछ देर तक बहता रहता है। यदि खून एक जगह एकत्र रहता तो इतना अधिक नही गिरता। साथ ही जिन रोगियो के शरीर से खून

पर पाश्चर भी एक जगह चूक गया। दूध फटने या खट्टे होने का कारण जैसा कि आजकल सबको विदित है—स्वयं बैक्टीरिया नही है अपितु इनसे निस्सृत एक पदार्थ जिसे एन्जाइम (Snzyme) कहते है। यह पदार्थ जीव तथा अजीव के मध्य की स्थिति है। इनमें वह शक्ति है कि ये पदार्थो मे विचित्र रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न करदें। पाश्चर के समय से ही हमे कीटाणुओ (Germs) का ज्ञान है। ये बहुत ही छोटे होते हैं और यह माना जाता है कि ये स्वतन्त्र रूप मे नही रह सकते। इन्हे जीवित रहने के लिए अन्य जीवधारियो की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त पाश्चर ने अनेक प्रकार के अम्लों पर प्रयोग किये तथा अपने छः वर्ष की कड़ी मिहनत के उपरान्त फ्रांस के रेशन उद्योग को मिटने से बचाया। जेनर द्वारा आविष्कृत टीके (Vaccinetion) की विधि मे भी उसने सुधार किये। तथा पागल कुत्तो के काटे के इलाज का आविष्कार किया। इसका इलाज उसने सबसे पहिले एक लड़के पर किया। जब वह बालक स्वस्थ हो गया तो पाश्चर की प्रतिष्ठा सर्वत्र फैली और आगामी 6 महीनों मे पाश्चर ने 350 रोगी ठीक किए।

1888 के नवम्बर महीने मे 'पाश्चर संस्था' खोली गई। इसके द्वारा पाश्चर का कार्य आज भी जीवित है। अब पाश्चर स्वयं बहुत वृद्ध हो चला था और अन्ततः 28 सितम्बर 1895 को उसने अपनी इहलीला समाप्त करदी।

अपने अन्तिम दिनों के पूर्व ही हार्वे ने डाक्टरी छोड़ दी थी। वे अपना जीवन शान्तिपूर्वक एकान्त में बिताया करते थे। उनकी पत्नी उन्हें पहले ही छोड़ गई थी। कोई सन्तति भी नही थी। इस प्रकार विधुर सन्तानहीन हार्वे को एकान्त से प्रेम हो गया था। 1652 ई० में ही केम्से कालेज ने इनके सम्मान मे इनकी एक मूर्ति स्थापित की थी। उस कालेज को हार्वे भी बहुत चाहते थे। इन्होने अपनी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति कालेज को दान मे दे दिया। कालेज में पुस्तकालय तथा म्यूजियम के लिए इन्होने पहले ही बहुत सा दान दे रखा था। अब की बार उन्होंने उस पुस्तकालय के लिए एक पुस्तकाध्यक्ष के निमित्त मासिक वृत्ति भी अपनी ओर से निश्चित करदी।

इनके व्यक्तित्व के बारे मे एक समसमायिक लेखक ने लिखा है :—"वह लम्बे नही, अपितु छोटे कद के थे बहुत ही छोटे पर व्यक्तित्व महान् था। चेहरे से आभा झलकती थी। गोल मुखमण्डल, ताम्रवर्ण का रंग, छोटी-छोटी आंखे जो दूरदर्शिता का प्रतीक थी, काली और गोल थी, बाल एकदम काले जो अन्तिम दिनो में पूर्णतया श्वेत हो गए थे;—ऐसी थी उनकी आवृति। पर वे सदा उत्साह से रहते और कभी किसी ने उन्हें सुस्त तथा उदासीन नही देखा।"

हार्वे ने ही जैसा ऊपर कहा गया है—इस बात की खोज की कि शरीर मे रक्त भ्रमण करता है। आज हम इस बात को अच्छी तरह जानते है कि रक्त का मूल स्थान हृदय है जहां से रक्त धमनियां (Arteris) से होकर शरीर के विभिन्न भागो को जाता है और उधर से शिराओं (Veins) के द्वारा पुनः हृदय मे प्रविष्ठ हो जाता है। 'जो रक्त हृदय से शरीर के अन्य भागो की ओर जाता है वह शुद्ध रक्त होता है और शरीर के अन्य भागों से हृदय मे आने वाला रक्त अशुद्ध होता है। यह पुन. शुद्ध होकर शरीर मे परिभ्रमण करता है। इसके विस्तृत विवेचन के लिए इसी पुस्तक का "मानव शरीर विज्ञान" वाला कक्षा 9 के लिए निर्धारित अंश देखिए।

अधिक मात्रा मे निकल जाता था उनकी अशक्ति तथा सम्बन्धित स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थानो की तथा साधारण शिथिलता को देखते देखते इन्होंने अनुभव किया कि यह सब कुछ तभी सम्भव है जब यह मान लिया जाय कि रक्त सम्पूर्ण शरीर मे भ्रमण करता है नही तो जिस अग से खून अधिक निकलता है वही अग कमजोर पड़ना चाहिये। अतः इन्होने यह निश्चय कर लिया कि रक्त अवश्य ही शरीर मे भ्रमण करता है। अपने इस सिद्धान्त को उन्होंने अनेक प्रकार के रोगियो पर जाँचा। अनेक प्रयोगों के उपरांत हार्वे महोदय को अपने सिद्धान्त की पुष्टि हो गई और सन 1616 ईस्वी मे इन्होने अपने रक्त-भ्रमण (Blood Circulation) के सिद्धान्त को सबके सामने रखा।

किन्तु लोग इनके विरुद्ध हो गए क्योकि पागल जनता को बाइबिल के विपरीत कुछ भी ग्राह्य नही था और बाइबिल मे कही इस प्रकार का जिक्र तक नही आया है। इन पर अनेक प्रकार के कटु वचनों के आघात किये गये किन्तु हार्वे महोदय ने शातिपूर्वक सब कुछ सुना और वे अपने सिद्धात पर अटल रहे। वैज्ञानिक (डाक्टरी) जगत ने इनके सिद्धांत को कुछ हिचकते हुए ही सही किंतु मान अवश्य लिया। हार्वे अपनी खोज मे लगे ही रहे। उन्हे अब यह जानकारी प्राप्त करनी थी कि आखिर इस रक्त का मूल स्थान कहा है? क्यो यह भ्रमण करता है और भ्रमण करने के पश्चात् पुनः कहा जाता है। वर्षो के अनुसधान तथा परिश्रम के उपरात सन् 1628 ई० मे इन्होने कुछ लेख 'हृदय तथा रक्त की गति' पर प्रकाशित कराये। उनकी इस पुस्तक का बड़ा स्वागत किया गया और तत्कालीन डाक्टरो ने इसे मान भी लिया। इसके पश्चात् वह कालेज आफ फिजिसियन (College of Physians) के कोषाध्यक्ष चुन लिए गए।

इसके दूसरे वर्ष जेम्स प्रथम ने राजकुमार के साथ डाक्टर की हैसियत मे इन्हे यूरोप भ्रमण पर भेजा। इस यात्रा मे इन्हे काफी समय लग गया और वे कही १६३२ ईस्वी मे स्वदेश लौट पाये। इसके कारण हार्वे को अपनी खोजो को चालू रखने तथा नई बाते खोजने का अवसर कम मिला। इस यात्रा के कुछ वर्षों पश्चात् ही वह पुनः एक बार राजपरिवार के साथ यूरोप यात्रा पर निकले। इस यात्रा से लौटने पर जेम्स स्वयं इन्हे लेकर स्काटलैण्ड गया। उन दिनो इंग्लेंड गृहयुद्ध की लपटो में जल रहा था। हार्वे को भी इनकी लपट मे कुछ कुछ झुलसना पड़ा। पहले हार्वे आक्सफोर्ड मे रहते थे किन्तु १६४६ ईस्वी मे जब आक्सफोर्ड प्यूरिटन्स (Puritons) के अधिकार में आ गया तो ये लन्दन चले आए। यही 3 जून 1657 ई० को इनकी मृत्यु हुई।

ली। ज्यूरिच के पश्चात् इन्होने प्रेग विश्वविद्यालय मे भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर पद को सुशोभित किया। १९१३ ईस्वी मे आप "प्रशियन अकादमी आफ् साइंसेज' के सदस्य चुने गए। आइंस्टाइन को १९३३ में अपने धर्मगत कारणों से जर्मनी छोड़नी पड़ी जब नाजियों ने यहूदियों पर अत्याचार आरम्भ किए। जर्मनी छोड कर आइंस्टाइन ने अतलांतक पार अमेरिका की शरण ली। उन दिनों तक इनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर इन्हे प्रिन्स्टन (न्यूजर्सी) मे गणित का प्रोफेसर नियुक्त का लिया गया। इसके सातवर्षो पश्चात् सन् १९४० ई. मे आइन्स्टाइन को अमेरिका की नागरिकता प्राप्त हो गई। इसके पहले ही सन् १९३९ में इन्होने तत्कालीन प्रेसिडेंट रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा था कि आणविक शक्ति का प्रयोग युद्ध में किया जा सकता है। उसीका परिणाम था कि अणुबम का निर्माण हुआ। वैसे परमाणु या अणुबम का निर्माता ओपेनहाइमर था। इस महान् वैज्ञानिक की मृत्यु अभी कुछ वर्षो पूर्व हो गई।

आइन्स्टाइन की प्रसिद्धि का कारण उनका सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त है। इस सिद्धांत को इन्होने चार अवस्थाओं में विकसित किया:—

(१) विशिष्ट सिद्धांत १९०५ में,
(२) साधारण सिद्धांत १९१५ मे
(३) सीमित ब्रह्मांड १९१७ मे
(४) गुरुत्वाकर्षण तथा १९२९ मे
विद्युत घटनाएं

आइन्स्टाइन द्वारा प्रतिपादित इन सिद्धान्तों की सम्यक विवेचेना के लिए गणित के उच्च नियमों की जानकारी अपेक्षित है और सच तो यह है कि इन सिद्धांतों को पूर्णतया और सम्पूर्ण रूप मे समझने वाले व्यक्ति आज भी इने गिने है। हम उनके सापेक्षवाद को साधारण भाषा मे समझने का प्रयत्न करेंगे।

आइन्स्टाइन ने अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त की खोज २६ वर्ष की अवस्था में ही कर ली थी। इनकी वृद्धावस्था तक यह सिद्धात प्रचुर ख्याति पा चुका था। फ़िर भी लोग इसे समझ नही पा रहे थे। इसी प्रकार की एक महिला जो बहुत अध्ययन के पश्चात् भी इस सिद्धान्त को समझ नही पाई थी, एक दिन आइन्स्टाइन के पास पहुंची और इनसे बोली—महान वैज्ञानिक। आखिर यह आपका सापेक्षवाद है क्या ? मैं तो पढ़ते पढ़ते थक गई पर कुछ समझ में नही आता। वैज्ञानिक ने महिला की ओर देखा—महिला एक तरुणी थी। उन्होने मुस्कराते हुए कहा —

आइन्स्टाइन तथा सापेक्षवाद

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र मे न्यूटन के पश्चात् आइन्स्टाइन मील के एक पत्थर के समान है। नजाने अभी कितने ऐसे मील पत्थरों को पार कर विज्ञान सत्य के प्रागण मे प्रवेश करेगा किन्तु इतना सत्य है कि इस महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने विज्ञान को एक ऐसी दृष्टि दी है कि उसमे प्रत्येक वस्तु को एक नए सिरे से देखने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए एक बात ली जाय—न्यूटन ने कहा था कि प्रत्येक पदार्थ को दूसरा पदार्थ अपनी ओर आकर्षित करता है। यही कारण है कि चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर लगाता है। न्यूटन का ही यह भी कहना था कि जब तक किसी पदार्थ को रोकने के लिए कोई बल न लगाया जाय तब तक यदि यह एक बार गतिमय है तो सीधी रेखा मे चलता रहेगा। चन्द्रमा भी चल रहा है एक दिशा मे और पृथ्वी उसे अपनी आकर्षण शक्ति की डोर से अपनी ओर खीच रही है। फलतः वह न-तो कही जा सकता है न पृथ्वी पर आ सकता है, अपितु पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है।

अब दूसरे वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की सुनिए—उसका कथन न्यूटन के कथन से सर्वत्र कोई भिन्न नही है किन्तु जहा भिन्न है वहां इतना भिन्न है कि बात समझ मे नहीं आती। जड़त्व (Inertia) का सिद्धान्त आइन्स्टाइन भी मानते हैं, वह भी कहते हैं कि चन्द्रमा पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति काम कर रही है। यहा तक तो बातें समान रही। अब आगे वह कहते हैं चन्द्रमा पृथ्वी के चारो ओर नही घूमता अपितु वह सीधी रेखा मे घूमता है। आप नित्य चन्द्रमा को देखते है। सम्भवतः आप कहेगे आइन्स्टाइन झूठा है। पर यदि आप गम्भीरता से आइन्स्टाइन की बातो को समझने का प्रयत्न करें तो आपको उन सभी बातो पर शंका होने लगे जिन्हे आप ठीक समझते है।

इस महान् वैज्ञानिक का जन्म १४ मार्च सन् १८७९ ईस्वी को स्वीटजरलैण्ड में एक यहूदी परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा म्यूनिख, तथा ज्यूरिच मे हुई। सन् १९०२ ईस्वी से लेकर १९०९ ईस्वी तक ये बर्न मे पेटेन्ट आफिस मे कार्य करते रहे इन्ही दिनों इन्होने अपनी प्रसिद्धि अर्जित करली थी। सन् १९०५ ईस्वी में ही इन्होंने अपने सुप्रसिद्ध सापेक्षवाद का एक सिद्धांत खोज निकाला था।

पेटेन्ट आफिस के कार्य के पश्चात् इनकी नियुक्ति ज्यूरिच में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर के पद पर हुई। वही से आइन्स्टइन ने अपनी पी. ए. डी. की डिग्री भी

श्री आईन्सटाईन

सापेक्षवाद तो बड़ा सरल है। यदि आप अपने पति या प्रेमी से बातें करती है तो घण्टो बीत जाते होगे और आपको लगता होगा अभी थोडा ही समय बीता है, पर यदि आप मुझसे ५ मिन्ट भी बात करेंगी तो ऐसा लगेगा कि घण्टों बीत गए।

और सच पूछिये तो यह भी सापेक्षवाद के अन्तर्गत आ जाता है। सापेक्षवाद का अर्थ सीधा सादा यही है संसार की प्रत्येक घटना या प्रत्येक गुण किसी अन्य घटना या गुण से सम्बन्धित है। निरपेक्ष (Absolute) नाम की कोई वस्तु नही। यदि कोई अच्छा है तो इसका तात्पर्य है कि हम जब उसे अच्छा कहते है तो हमारे सामने किसी बुरे का उदाहरण रहता है और उसकी बुराई के आगे वह व्यक्ति अच्छा लगता है। यही दशा प्रत्येक वस्तु या घटना की है। कोई वस्तु पूर्व दिशा मे है तो इसका यह अर्थ नही कि वह सदा और सर्वत्र से पूर्व दिशा ही होगी। कही से वह पश्चिम और कही से दक्षिण तथा उत्तर भी हो सकती है। गति के बारे मे भी, वह यही कहते है कि निरपेक्ष गति कोई वस्तु ही नही है। द्रष्टा की स्थिति के अनुसार अपने अपने अनुभव अलग होते है। यदि वायुयान से नीचे की ओर कोई नली लटकी हो और उसमें एक गोली गिरा दी जाय तो वायुयान पर से देखने वालों के लिए गोली सीधे नीचे जा रही होगी और उसकी गति भी नली को सीधी रेखा के नीचे की ओर होगी किन्तु धरती पर से किसी द्रष्टा के लिए गोली की गति एक टेढ़ी रेखा मे होगी और सीधे नीचे होकर क्षतिज होगी। यह इसीलिए हुआ कि द्रष्टा दो विभिन्न परिस्थितियों मे हैं।

आइस्टाइन ने विज्ञान को एक और सत्य दिया। अब तक यह जाना जाता था कि पदार्थ के सूक्ष्मतम अंश—परमाणु—के निर्माण मे, इलेक्ट्रोन का हाथ है। इस प्रकार एलेक्ट्रोन (Electron) से पदार्थ बना। यह भी माना जाता है कि जब एलेक्ट्रोन अपनी कक्षा का त्याग करते है तो प्रकाश प्राप्त होता है। इन घटनाओ पर प्रयोग करते हुए आइन्स्टीन इस परिणाम पर पहुंचे कि पदार्थ और शक्ति (प्रकाश) एक ही वस्तु के दो रूप है तथा प्रकाश भी एक पदार्थ है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार एक पदार्थ किसी अन्य पदार्थ के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होता है उसी प्रकार प्रकाश भी जो एक पदार्थ है अन्य पदार्थों या पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होगा और तब उसकी गति सीधी रेखा मे न होकर कुछ मुड़ जावेगी। उन्होने अपने इस सिद्धात की जाच के लिए भविष्य वाणी की कि 1919 मे लगने वाले सूर्यग्रहण के समय यदि देखा जाय तो वे तारे जिनका प्रकाश सूर्य से होकर आयेगा, सूर्य के प्रभाव में पड़कर कुछ मुड जायेगा और परिणाम स्वरूप तारो की स्थिति अपनी वास्तविक स्थिति से कुछ हट कर दिखाई देगी। ठीक समय पर जब

वैज्ञानिकों ने इस बात की परीक्षा की कि तो यह भविष्यवाणी सच निकली। इस प्रकार आइन्स्टाइन ने यह सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश वस्तुत एक पदार्थ है। उनका कहना है कि चूंकि इसकी गति अधिक तेज है (18000 मील प्रति सेकिन्ड) इसलिए इसकी दिशा में परिवर्तन लाने वाला पिन्ड बहुत बड़ा होना चाहिये।

इसी प्रकार उन्होने यह भी बताया कि काल तथा दिक् दो अलग वस्तुएं नही अपितु परस्पर सम्बन्धित है। काल को उन्होंने पदार्थों का चतुर्थ डायमेन्शन बताया। उनका कहना है जब लगभग शून्य—उदाहरणार्थ एक बिन्दु—गतिशील होती है तो एक डायमेन्शन की वस्तु—रेखा बन जाती है, जब एक डायमेन्शन की वस्तु गतिशील होती है तो दो डायमेन्शन की वस्तु धरातल बनता है और जब दो डायमेन्शन का धरातल गति करता है तो ठोस बनता है जो तीन डायमेन्शन का होता है। इसी प्रकार से जब तीन डायमेन्शन का ठोस गति करता है तो चौथे डायमेशन का प्रवेश हो जाता है। इसे उन्होंने समय या काल कहा है। उनका कहना है कि डायमेशन चार तक ही सीमित नही हैं—अनेक है। चूंकि हम तीन डायमेशन के पदार्थ है इसलिए न तो चार डायमेन्शन के पदार्थ को देख सकते हैं न दो डायमेंशन के पदार्थ को पकड़ सकते है। गुरुत्वाकर्षण को उन्होने कहा है कि यह दिक् काल (Spape and time) के झुकाव के कारण है और इसमें दशवां डायमेंशन भी सम्मिलित है।

वस्तुत: आइन्स्टाइन ने संसार को बहुत कुछ दिया। उनके द्वारा प्रतिवादित सिद्धातो के प्रकाश मे अब तक सारी मान्यताएं व्यर्थ सिद्ध होती हैं—अब हम यह नही कह सकते कि समानान्तर रेखायें मिलती नहीं, न हम यह ही कह सकते है कि दो स्थानों को मिलाने वाली सरल रेखा उन दोनो के बीच की लघुतम दूरी है और न यह ही कह सकते है कि प्रकाश सीधी रेखा मे गमन करता है।

काश्मीर का भौगर्भिक सर्वेक्षण किया। सन् 1938 ईस्वी मे लंका सरकार ने इन्हे वहां के खनिज विभाग का प्रधान बनाया और इस पद पर वह सन् 1944 तक रहे। इसके पश्चात् 1945 ईस्वी मे भारत सरकार ने अपना खनिज सलाहकार बनाया।

आप 'इण्डियन साइन्स कांग्रेस' के प्रेसिडेण्ट भी (1942–43) रह चुके हैं। इसी प्रकार नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ सांइसेज आफ इण्डिया ने भी 1945–46 मे आपको प्रेसिडेण्ट बनाकर आपका सम्मान किया। अपनी योग्यता तथा कार्यक्षमता के कारण आपने अब तक अनेक उपाधिया तथा पदवियां प्राप्त की हैं। आप सर्वप्रथम भारतीय हैं जिन्हे एफ. आर. एस.)F. R. S) की उपाधि मिली है।

'ज्योलोजी आफ इण्डिया' (Geology of India) के अतिरिक्त आपने अन्य पुस्तके भी लिखी है जिनमें 'ज्योलोजी आव् काश्मीर एण्ड हिमालय' तथा 'हिमालय की रचना' (Structune of Himalayas) मुख्य हैं। आजकल आप १० किंग जार्ज एवेन्यू, नई दिल्ली मे रहते है।

हमारे भारतीय वैज्ञानिक

श्री डी० एन० वाडिया

श्री डी० एन० वाडिया भारत के उन सपूतों में से है जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। इनका अब तक का अधिकांश समय बड़ा व्यस्त बीता है। ये अक्सर कहा करते कि सच्चा आनन्द तो कार्यों को पूरा करने के पश्चात् ही प्राप्त होता है।

वाडिया महोदय का जन्म 25 अक्टूबर सन् 1883 ई० को सूरत में हुआ था। आप एक सम्पन्न परिवार में जन्मे है। आपकी शिक्षा पहले बड़ौदा कालेज में हुई। तत्पश्चात् इन्होने बम्बई के विश्व-विद्यालय से एम. ए. की परीक्षा सन् 1906 ई० मे पास की। इन्हे दिल्ली विश्व विद्यालय ने 'डाक्टर ऑफ साइन्स' के सम्मान से विभूषित किया। एम. ए. पास करने के उपरान्त इनकी नियुक्ति प्रिंस ऑफ वेल्स कालेज जम्मू मे भू-गर्भ शास्त्र के प्रोफेसर के रूप में हुई। वहा अध्यापन करते समय वाडिया महोदय के छात्रों को विषय के सामग्री चयन की बड़ी दिक्कतें आती थी क्योंकि उन दिनो इस विषय पर कोई ऐसी पुस्तक नही थी जो छात्रो के लिए उपयोगी हो सके। अपनी पुस्तक 'Geology of India' की भूमिका में यह स्वय लिखते हैं कि 'उन दिनो इस विषय पर या तो दो एक ऐसी विस्तृत पुस्तकें थी जिनमे छात्रो के खोजाने का अधिक डर था या फिर सरकार द्वारा प्रकाशित लघु-पुस्तिकाएँ थी जिनमे सामग्री एक जगह मिलती ही नही थी और छात्र बिचारे बडे परेशान रहते थे। अपने छात्रो की इन असुविधाओ को दूर करने तथा इस विषय पर किसी उपयोगी पुस्तक के अभाव को देखते हुए श्री वाडिया ने वर्षों श्रम करके 'Geology of India' नाम की पुस्तक लिखी। यह पुस्तक वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण है और यद्यपि इस विषय पर दो एक और पुस्तके अन्य लेखको की आज मिलने लगी है किन्तु श्री वाडिया की पुस्तक का स्थान अभी भी सर्वोच्च है। इस पुस्तक को लिखते समय वाडिया साहब के सम्मुख एक कठिनाई भौगर्भिक कालों को भारतीय तो के अनुरूप करने की थी। पाश्चात्य विद्वानो ने पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर अब तक के कालो को जिस नाम से पुकारा है वे नाम भारत की धरती पर अनुपयोगी है।

प्रिन्स आफ वेल्स कालेज की नौकरी के पश्चात् श्री वाडिया की योग्यता के कारण भारत सरकार ने इन्हे भौगर्भिक सर्वेक्षण विभाग (Geological survey of India) मे ले लिया। इन्होंने उत्तरी पश्चिमी पजाब, हजारा जिला तथा

आचार्य सर पी. सी. रे

डाक्टर प्रफुल्ल चन्द्र राय

भारतीय वैज्ञानिकों में डाक्टर पी. सी. राय अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनका जन्म सन् १८६१ ईस्वी में बंगाल के खुलना जिले के रारुली काटियारा ग्राम में एक प्रसिद्ध घराने में हुआ था। इनके पिता श्री हरीशचन्द्र राय फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। उनके विचार सुलझे हुए थे और अपने जिले में अंग्रेजी शिक्षा के प्रवर्तकों में से वह एक थे। उन्होंने अन्य अनेक व्यक्तियों की सहायता से एक स्कूल खोला था जिसका नाम 'आदर्श वर्नाक्यूलर स्कूल' था, बाद में यह स्कूल 'मॉडल अंग्रेजी हाई स्कूल' में परिवर्तित होगया।

बालक प्रफुल्ल की प्रारम्भिक शिक्षा इस स्कूल में हुई, किन्तु इनके पिता श्री की इच्छा थी कि प्रफुल्लचन्द्र को एक उच्च शिक्षा मिले। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए १८७० ईस्वी में इनके पिता अपने ग्रामीण निवास स्थान को छोड़कर कलकत्ते आ बसे। कलकत्ते में प्रफुल्लचन्द्र का नाम हेयर स्कूल में लिखवाया गया। वहाँ पर उन्होने चार वर्षों तक अध्ययन किया, किन्तु इसके पश्चात् सन् १८७४ ईस्वी में अचानक बीमार पड़ जाने के कारण उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी। यह बीमारी लगभग दो वर्षों तक चलती रही। परिणामस्वरूप प्रफुल्ल सिवा अपने पिताजी तथा बड़े भाई द्वारा संग्रहीत पुस्तको के अध्ययन के और कुछ नहीं कर सके। बीमारी से पूर्णतया स्वस्थ होने पर प्रफुल्ल ने कलकत्ते के अल्बर्ट स्कूल में अपना प्रवेश लिया। इसके पश्चात् सन् १८७८ से १८८२ तक वह मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूशन (Metropolitan Institution) के विद्यार्थी रहे। उनकी तीव्र इच्छा था कि वे विदेशों में जाकर अध्ययन करें, किन्तु मार्ग में अनेक बाधाएं थी, आर्थिक समस्या प्रमुख थी। इसे दूर करने के लिए प्रफुल्ल ने गिलक्राइस्ट स्कालर-शिप (Gilchrist Scholarship) प्राप्त करने का अथक प्रयत्न किया। अन्त में अत्यधिक परिश्रम और लगन के फलस्वरूप उन्हें अपने उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त हुई और यह स्कालरशिप प्राप्त हो गई। इसी छात्रवृत्ति के सहारे प्रफुल्ल सन् १८८२ ई० में अध्ययन करने के लिए एडिनबर्ग गए। उन्हे यह छात्रवृत्ति छः वर्षों के लिए मिली थी। प्रारम्भ में उनकी रुचि अंग्रेजी साहित्य तथा इतिहास की ओर थी किन्तु शीघ्र ही उन्हे ऐसा विदित होने लगा कि विज्ञान के अध्ययन बिना सब कुछ नीरस है। विज्ञान के प्रति उनकी लालसा बढ़ती गई और अन्त में साहित्य छोड़कर उन्होंने रसायन-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। एडिनबर्ग जाने के तीन वर्षों पश्चात् सन् १८८५ ई० में उन्होंने बी. एस. सी, तथा सन् १८८७ ई० डी. एस. सी. की उपाधिया ली।

इसके पश्चात् डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र स्वदेश लौट आए। यहाँ उनका बड़ा सम्मान किया गया। भारत में सन् १८८९ ई० में उनकी नियुक्ति रसायनशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर प्रेसीडेन्सी कालेज, कलकत्ते में हुई। उस पद की प्राप्ति के पश्चात् डाक्टर राय का अधिकाश समय अपने छात्रो को मनोयोग पूर्वक पढ़ाने और अपने अनुसंधान विषयक कार्यो में ही व्यतीत हो जाया करता था। अपने कार्य को भलीभांति करना वे अच्छी तरह जानते थे। उनकी धारणा थी कि व्यक्ति को एक काम ही एक समय हाथ में लेना चाहिए और उसे भली-भाँति पूरा करना चाहिए। अक्सर वे कहा करते थे कि चित्त की एकाग्रता ही फलप्राप्ति के लिए आवश्यक है। समय का विस्तार व्यर्थ है। थोड़ी देर भी एकाग्रचित्त होकर किसी कार्य को करना घण्टों के उस परिश्रम से कहीं अच्छा है जब मन एक साथ ही अनेक बाते सोचा करता है। अपने विद्यार्थी जीवन से ही भारतीयता के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा रही है। पाश्चात्य विद्वानो के साथ रसायन-शास्त्र का अध्ययन करते समय प्रफुल्ल के मन में अनेक बार प्राचीन भारत के रसायिनको की बात उठती और वह सोचते कि भारतीय रसायन को प्रकाश में लाना चाहिए। इस प्रकार लगभग १५ वर्षो तक भारतीय रसायन पर सोचते-विचारते रहने तथा अनुसंधान करते रहने के पश्चात्, सन् १९०२ ई० में उन्होने हिन्दू रसायन-शास्त्र (Hindu chemistry) नामक एक पुस्तक निकाली, उनकी इस पुस्तक की इतनी ख्याति फैली कि १९०५ ई० में इसका दूसरा सस्करण भी निकालना पड़ा। देश विदेश के विद्वानो ने उनके अनुसंधान तथा उस अनुसंधान के फलस्वरूप प्राप्त 'हिन्दू रसायन शास्त्र' की मुक्त कठ से प्रशसा की। एक पत्र ने लिखाः

पुस्तक "हिन्दू रसायन शास्त्र" के प्रथम खण्ड में डाक्टर राय ने प्राचीन भारत के रसायन सम्बन्धी ज्ञान की एक झांकी दी है। लेखक ने इसे चार भागो में बाटा है: आयुर्वेदिक काल— बुद्धपूर्व से ८०० ई० तक संक्रमण काल—सन् ८०० ई० से ११०० ई० तक तांत्रिक काल ११०० से १३०० ई० तक तथा मध्यकालीन—१३०० से १५०० ई० तक। प्रथम काल के प्रमुख रसायनिक चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट्ट है, दूसरे के वृन्दा तथा चक्रपाणि·········। श्री राय ने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि बौद्ध काल में आल्केमी (alchemy) की अत्यधिक उन्नति हुई···तथा यह शुद्ध भारतीय परम्पराओ पर विकसित हुई—किसी विदेश की चुराई या उधार ली हुई वस्तु नही।

लगभग एक चौथाई शताब्दी तक नवयुवको के अध्यापक रहने तथा नई प्रतिमाओ के सम्पर्क में आने के परिणाम स्वरूप डाक्टर राय कहते हैं: - बंगाल की शस्य श्यामला भूमि पर विकसित बुद्धि ससार के किसी देश से भी टक्कर ले सकती

बाधाओं का सामना करना पड़ा था। इसका आरम्भ उन्होने कुल ८००) की पूंजी से अपर सर्कुलर रोड (कलकत्ता) पर स्थित एक छोटे से गन्दे मकान में की थी। उन दिनो डाक्टर राय प्रेसिडेन्सी कॉलेज में प्रोफेसर थे, किन्तु उनकी आमदनी २५०) प्रति माह ही थी। अपनी इस लघु आय का कुछ भाग वह छात्रवृतियो में व्ययकर दिया करते थे, कुछ से पैतृक ऋण चुकाते थे। इस प्रकार आर्थिक समस्याओं से घिर रहने तथा अपने अनेक परिचितो की इस सलाह कि बिना प्रचुर पूंजी हुए कोई व्यवसाय चलाना कठिन है, के बावजूद भी डा० राय ने इस उद्योग को खोला। उनका कहना था कि कोई भी उद्योग तब तक विफल नहीं हो सकता जब तक उसके पीछे दृढ निश्चय तथा सच्चे परिश्रम का अभाव न हो। धीरे धीरे डाक्टर राय का परिश्रम सफल होता गया और यह उद्योग बढ़ता गया। इन्हीं दिनों डाक्टर राय को कतिपय उत्साही कार्यकर्त्ताओ की सहायता मिली। इन लोगो में इनके मित्र अमूल्य-चरण बसु प्रथम थे। प्रारम्भ में यह कम्पनी निजी थी किन्तु ज्यो ज्यो इसका विस्तार होता गया डाक्टर राय के मन में इसे लिमिटेड संस्था कर देने की भावना जगती गई और अन्त में इन्होने इस सस्था के शेयर बाँट कर इसे लिमिटेड भी कर दिया। इस संस्था की आवश्यकता तथा यहां की कार्यप्रणाली को देखते हुए एक बार डाक्टर ट्रैवर्स ने बड़ी प्रशसा की थी।

डाक्टर राय का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि उनके समय के रसायनशास्त्र के पत्र बहुधा उनके तथा उनके शिष्यो के लेखो से भरे रहते थे। सम्भवतः ऐसा कोई महीना नही बीतता था कि जिसमें डाक्टर राय या उनकी देखरेख में कार्य करने वाले किसी शिष्य की कोई खोज न प्रकाशित होती हो। डाक्टर राय के जीवन का उद्देश्य मानवता का कल्याण तथा ज्ञान प्राप्ति था। धनको उन्होंने कभी प्रमुखता नहीं दी।

भारत का यह यशस्वी पुत्र अपनी अमूल्य देनों के लिए वैज्ञानिक जगत में सदा अमर रहेगा।

है। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे यहां की बौद्धिक शक्ति जल्दी ही अपनी परिणति पर पहुँच जाता है और असमय में ही उसका क्षय होने लगता है। डाक्टर राय अपने छात्रों को बहुत चाहते थे। इसी का परिणाम था कि उनके छात्र भी उनको हृदय से चाहते और उनका सम्मान करते थे। उनके छात्रों तथा सहकर्मियों की एक लम्बी नामावली है जिसमें जिनेन्द्रनाथ सेन, प्रेमचन्द, रामचन्द, अतुलचन्द गांगुली तथा पंचानन नियोगी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वैसे तो डाक्टर प्रफुल्ल अपने प्रगाढ़ अध्ययन तथा विद्वता के लिए प्रारंभ से ही विख्यात रहे हैं किन्तु सन् १८९५ ई० में उनकी ख्याति विश्व व्यापी हो उठी जब उन्होंने मर्क्यूरस नाइट्राइट (Mercurous Nitrite) का अनुसधान कर डाला। इस खोज पर विश्व के प्रत्येक भाग में इनकी प्रशंसा की गई तथा अधिकतर विद्वानों ने लेख लिखकर तथा टिप्पणियाँ देकर उनकी योग्यता को मान्यता दी। सन् १८९३ में एक वर्ष पश्चात् सर अलेक्जेन्डर ने कहा—मर्क्यूरस नाईट्राइट नामक यौगिक की निर्माण विधि की खोज कर डाक्टर प्रफुल्ल ने एक महान् कार्य किया है। इस खोज पारीय श्रृंखला (Mercury series) से एक अज्ञात पदार्थ की जानकारी सुलभ होगई है। इसी प्रकार विश्व के अन्य-अनेक विद्वानों तथा वैज्ञानिक पत्रों ने डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

अपने सहयोगी श्री जितेन्द्रनाथ रक्षित के साथ इन्होने 'एमाइन नाइट्रिट, की खोज कर डाली। एक अन्य महत्वपूर्ण खोज इन्होंने अमोनियम नाइट्रिट, (Ammonuim Nitrite) की। इस प्रकार डाक्टर प्रफुल्ल ने नाइट्रिट के बारे में अथक परिश्रम कर अनेक बातों का पता लगाया। उन्होंने नाइट्रिक-अम्ल (Nitric Acid) से अनेक नाइट्रिट्स के संयोग के प्रभावों का अध्ययन किया। बल्कि नाइट्रिक-अम्ल अपना प्रभाव पारे पर दिखाता रहता है या यह पारे के संयोग में रहती है। इससे यह विदित हुआ कि जबकि सोडियम, पौटेशियम तथा मैंगनीज के नाइट्रेट्स इस संयोग के प्रभाव की गति को बढ़ाते हैं, फेरिक नाइट्रेट (Feric Nitrate) उल्टा प्रभाव डालता है। इनकी प्रमुख खोजें अमोनियम तथा एमाइन नाईट्राइट्स (Amine Nitrites) पर रही हैं।

अपनी इन खोजों के अतिरिक्त डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र ने "बंगाल केमिकल्स् एण्ड फार्मास्यूटिकल वर्क्स" (Bengal Chemical & Pharmaceutical works) नामक एक ऐसे उद्योग को जन्म दिया जिससे उनका यश और भी बढ़ जाता है। यह उद्योग डाक्टर राय के अथक अध्यवसाय तथा उनकी बौद्धिक क्षमता का ज्वलन्त प्रतीक है। इसकी नीव को गहरी करने के लिए डाक्टर राय को अनेक

सर. जे. सी. बोस

डा० सर जगदीश चन्द्र बोस

भारतीय महापुरुषो में महात्मा गाधी राजनीति में जगत् विख्यात है एवं साहित्य क्षेत्र में हमें कवि श्रेष्ठ राजेन्द्र के जोड़े का महापुरुष बहुत खोजने पर भी कठिनाई से मिल सकेगा, इसी प्रकार सर जगदीशचन्द्र बोस भी वैज्ञानिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त गिने चुने प्रतिभाशाली महापुरुषो में से एक हो चुके है। इन्होने प्रकृति के नाना प्रकार के रहस्योद्घाटन करके एक से एक नये आविष्कारो द्वारा दुनिया को आश्चर्य चकित कर दिया है। विज्ञान रूपी दीप की लौ जलाकर प्रकाश की नवज्योति जलाने में सफलीभूत हो पाये हैं। इन्होने आधुनिक वैज्ञानिक रीतियो से विज्ञान संसार में वास्तव में एक नई क्रांति प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखा दी है और नये ज्ञान का संचार किया है। ये उन कतिपय महापुरुषो की गिनती में आचुके हैं जिनके कृत्यो की प्रेरणा से इस आधुनिक वैज्ञानिक संसारे में एक नये युग का जन्म हुआ है। वास्तव में यदि इनके बारे में कहा जाय कि डा० सर जगदीशचन्द्र बोस अपनी वैज्ञानिक सफलताओं द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाले प्रथम भारतीय थे तो इसमे कोई अत्युक्ति नही होगी। भारतीय सहस्त्रों वर्ष प्राचीन संस्कृति को अपने वैज्ञानिक अनुसंधानो द्वारा पुन: पल्लवित करने वाले और पश्चिमी भौतिकता एव भारतीय आध्यात्मिकता का समन्वय करने वाले ये ही प्रथम भारतीय व्यक्ति थे।

इनके जन्म के बारे में कहते हैं कि बंगाल में ढाका जिले के राढ़ीखाल गांव में (विक्रमपूर कस्बे के पास) भगवानचन्द्र बोस फरीदपुर जिले में डिपटी कलक्टर थे। इन्होंने कई उद्योग और कलाकोशल के स्कूल भी खोले थे जिससे इनके प्रति उनकी विशेष रुचि प्रकट होती है। इन्ही के यहां 30 नवम्बर सन् 1858 ई० को सर जगदीशचन्द्र बोस का जन्म हुआ जो बाल्यकाल से ही दृढ़, चरित्रवान, निर्भीक और स्वतंत्र स्वभाव के वातावरण में पाले गए। इनके पिता ने एक उच्च सरकारी पद पर होते हुए भी इन्हे अंग्रेजी स्कूल में न भेजकर एवं ग्रामीण पाठशाला में भेजा जहां उन्होने प्रकृति का प्रेम पाया और मनुष्यता का सच्चा पाठ सीखा। पाठशाला की शिक्षा समाप्त करने पर इन्होने कलकत्ते के सेन्ट जेवियर स्कूल से शिक्षा प्राप्त की और इसी कालेज से इन्होंने B. A. भी पास किया। इसी छात्रावस्था में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् और वैज्ञानिक फादर लेफान्ट के सम्पर्क में आकर उन्हीं की तरह आप भी भौतिक विज्ञान के आकर्षक और रोचक प्रयोगो का प्रदर्शन करके नि:संदेह आप बहुत ही प्रसिद्ध होगए।

डा० बोस ने जब बेतार की तरंगों सम्बंधी अन्वेषण किया तो उन्हें आभास हुआ कि धातुओं के परमाणुओ पर भी यदि अधिक दबाव डाला जाय तो उनमें 'थकावट' आ जाती है, परंतु पुनः उत्तेजित करने पर वह थकावट दूर भी हो जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सभी पदार्थ सचेतन हैं। यहां तक कि पेड़ पौधों में भी जीवन का स्पंदन है। उन्हे भी भूख प्यास लगती है, वे भी सुखी दुखी होते हैं, वे भी सोते है, आराम करते है काम करते हैं, और मरते भी हैं। अपने Response in the Living and Nonliving नामक ग्रंथ में उन्होंने इन्ही तथ्यो का प्रतिपादन किया है।

इन अनुसंधानो का विवरण प्रकाशित होने पर डा० बोस की विदेशो में भी बड़ी ख्याति हुई। यहां तक कि इङ्गलैंड की वैज्ञानिक रायल सोसाइटी ने तो इन्हे एक बार ही नहीं तीन तीनबार अपने अनुसधानों पर भाषण देने के लिए (सन् १८६७ में एकबार तथा १६०१ में दो बार) आमंत्रित किया।

डा० बोस की परीक्षाओं से शरीर विज्ञान सम्बन्धी बहुत सी नई धारणायें स्थापित हो जाती थीं और अन्य धुरंधर वैज्ञानिकों की प्रचलित धारणाओं का खण्डन हो जाता था जिसके फलस्वरूप उन वैज्ञानिकों की इनके प्रति भीतरी ईर्षा पैदा होने लगी। प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिको को एक भारतीय युवक वैज्ञानिक मात देदे यह उन्हे कहां सह्य हो सकता था। इसी हेतु शरीर विज्ञान विशारद सर जॉन ब डन सैंडर्सन के नेतृत्व में उन वैज्ञानिकों ने इनका तीव्र विरोध किया, परन्तु डा० बोस ने ऐसे विरोधों की किंचित्मात्र भी परवाह न की। इस बीच में लीनियन सोसाइटी इग्लैंड की एक दूसरी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्था ने भी डा० बोस को अपने वनस्पति विज्ञान सम्बन्धित अनुसंधानो पर भाषण देने को आमन्त्रित किया था।

डा० बोस को विरोधियो के कारण अपने कार्यों में बहुधा अत्यधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा, मगर वे कभी ऐसी कठिनाइयो से विचलित नही हुए बल्कि अधिक दृढ़ता से अपने अनुसंधानों में जुटे रहते थे और इसी कारण जिस तरह खरे सोने की आभा बारम्बार तपने पर बढ़ती है उसी प्रकार इनकी भी खूब ख्याति बढ़ी और प्रशिद्धि हुई।

बाद में इन्होने १६०३ मे फिर अपने कुछ अन्वेषण रोयल सोसाइटी को प्रकाशित कराने के लिए दिये जिसमें इन्होने पता लगाया था कि प्राणियों की तरह वनस्पतियों पर भी वाह्योतेजन का प्रभाव पड़ता है अर्थात् पौधो में भी हृदय की सी धड़कन तथा उनकी नाडियों द्वारा नीचे से ऊपर रस प्रवाह होता है। मगर इन दिनो आपके इंग्लैंड से दूर रहने के कारण फिर विरोधियो का जोर बढ़ा और उन्होंने इसे इस

उन दिनों Electric magnetic तरंगों सम्बधी हर्ज के प्रयोगों ने भी विज्ञान संसार में बड़ी हलचल मचा रखी थी। अत: इन्होंने भी अपनी 35 वीं वर्ष गांठ पर (नवम्बर 1893) दृढ़ संकल्प करके इन तरगों के सम्बध में अपने अनुसधान शुरु कर दिये जिनके परिणाम Properaties of Electric waves शीर्षक लेख माला के रूप माला के रूप में लिखने शुरू कर दिये। मई 1895 में इनका तत्सबंधी पहला लेख बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में Polarisation of an Electric Ray by a crystal नाम से प्रकाशित हुआ। विद्युत से ही संबध रखने वाले दो अन्य लेख तत्कालीन सुप्रसिद्ध यंत्र Electrician में प्रकाशित हुए। आपके Determination of the Indies of Electric Refraction नामक निबंध को तो लंदन की सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक.रायल सोसाइटी ने भी भूरि भूरि प्रशसा की है और उसे अपने मुख पत्र में प्रकाशित करवा कर आपको पुरस्कार भी प्रदान किया है। साथ ही साथ विज्ञान संवर्द्धन के लिए पार्लियामेंट की ओर से तथा बंगाल सरकार की ओर से आपको कुछ आर्थिक सहायता व सुविधाएं भी प्रदान कीं। आपने अपने अन्वेषण कार्य का एक विस्तृत वर्णन 1956 में Royal society के पास भेजा जिसको पढ़कर अधिकारी गण आश्चर्य चकित हो गये। फलस्वरूप London विश्वविद्यालय से आपको विज्ञानाचार्य (डी. एस. सी.) की उपाधि से विभूषित किया गया।

1895 में डा० बोस ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने बंगाल के तत्कालीन गवर्नर के समक्ष Electromagnetic waves के गुणों के परीक्षा का आविष्कार प्रदर्शन करने में सफलता प्राप्त की थी। मगर अफसोस है कि पराधीन भारत की संतान होने के नाते आप श्रेय से वंचित रखे गये और इटली के वैज्ञानिक प्रो० मारकोनी को स्वतंत्र देश के नागरिक होने के नाते वह श्रेय देकर उनका यथेष्ठ अभिनन्दन किया गया।

इसी समय डा० बोस ने विद्युत चुम्बकीय तरगें उत्पन्न करने वाला एक Generator (उत्पादक यंत्र) तैयार किया। इन तरंगो को ग्रहण करने व उनकी उपस्थिति का हाल मालुम करने वाले अत्यंत सूक्ष्मग्राही यंत्र भी तैयार किये जिनको सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जे. जे. टामसन और पोआकरे को भी मान लेना पड़ा। 'इन्सा-इक्लोपीडिया ब्रिटानिका' तथा अन्य प्रतिष्ठित ग्रंथो ने भी आपके इस यंत्र की भूरि भूरि प्रशंसा की। इन यंत्रो को लेकर डा० बोस 1895 में वैज्ञानिकों के समक्ष अपने प्रयोगों के प्रदर्शनार्थ इङ्गलैड भी गये जहा लार्ड केलविन, टामसन, रैले, फ्रिन्के, लिपमैन, पोआकरे, वारबुर्ग एवं यूरोप के अन्य वैज्ञानिक भी इनका लोहा मान गए।

ऐसा नहीं है कि डा० बोस ने वनस्पति विज्ञान में ही सम्मान और ख्याति प्राप्य की हो। उन्होंने भौतिक विज्ञान में भी बहुत अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान पाया है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है वास्तव में तो इन्होने अपनी विज्ञान साधना भौतिक विज्ञान के अनुसंधानों से ही आरम्भ की थी। इन अनुसंधान से आपकी, विदेश और देश दोनों ही जगह अर्थात सर्वत्र जगत में ख्याति बढ़ी यह निर्विवाद है। आपने अपने भाषणों के दौरान में जहां जहां यात्रा की उनमें जर्मनी, इंग्लैंड, मिश्र, आस्ट्रिया, अमेरिक और जापान मुख्य हैं।

आपको भारत सरकार की ओर से भी आपके अन्वेषण कार्यों और आविष्कारों के लिए अनेक बार सम्मानित किया गया। १९०३ में आपको C. I. E. की उपाधि प्रदान की गई। १९११ में C. S. I. का खिताब मिला था। नियमानुसार १९१३ में ५९ साल की अवस्था पूर्ण होने पर आपको Presidency College से अवकाश ग्रहण करना था मगर आपकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए आपके कार्यकाल की अवधि दो साल के लिए और बढ़ाकर आपको सम्मानित किया गया। तत्पश्चात भी आपको 'सम्मानीय अवकाश प्राप्त आचार्य मानकर जीवन पर्यन्त पेंशन स्वरूप पूरा वेतन देने की घोषणा करके आपके सम्मान में और भी अभिवृद्धि की गई। भारतीय शिक्षा विभाग में इस तरह का था यह प्रथम अवसर था।

आपके स्वदेश प्रेम के बारे में कहा जाता है कि एक बार एक जर्मन वैज्ञानिक द्वारा आपको अपना सम्पूर्ण विश्वविद्यालय सौंपने के लिए तैयार होने पर भी आपने उसे उत्तर दिया था कि "मेरा कार्यक्षेत्र भारत ही रहेगा और मैं स्वदेश के उसी विद्यालय में कार्य करता रहूँगा, जिसमें मैंने उस समय प्रवेश किया था जब मुझे कोई जानता भी न था।" सन् १९१५ में स्वदेश लौटने पर कलकता विश्व विद्यालय के अधिकारियों द्वारा आप "डाक्टर आफ साइन्स की उपाधि से विभूषित किए गए। पंजाब विश्व विद्यालय ने आपको १२००) की थैली भेंट की जिसे आपने वहां के रीसर्च स्कालर को छात्रवृत्ति के रूप में देने के लिए सहर्ष वापिस कर दी। १९२७ में आप लाहौर में होने वाली भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सभापति चुने गए। नवम्बर १९२८ में आपको प्रयाग विश्व विद्यालय की ओर से D. Sc. की उपाधि से सम्मानित किया गया।

बोस विज्ञान मन्दिर की स्थापना :—वैज्ञानिक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट होने के समय से ही एक उत्कृष्ट विज्ञान शाला स्थापित करने का आपका विचार था जिसे आप अवकाश प्राप्त करते ही अपनी ५९ वीं वर्षगांठ के अवसर पर ३० नवम्बर १९१७ को कार्यरूप दे सके। उद्घाटन के समय उनके दिए हुए भाषण से विदित

तरह न मानकर पौधों द्वारा अंकित कराकर प्रत्यक्ष दिखाने की माग की। इससे डा० बोस को बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने अपनी ही प्रयोगशाला में और अपनी ही देखरेख में ऐसे सर्वथा नवीन यंत्रो का आविष्कार किया जिनसे पौधो के हृदय की धड़कन, उनकी संवेदना और उनकी वृद्धि का स्वतः लेखन देखा जा सके। इस तरह का आपका सबसे पहला यंत्र 'अनुनादी अनुलेखन यंत्र' (Resonat Recorder) १६११ में तैयार हुआ जिससे पौधे स्वयं अपने स्नायुओं में होने वाली उत्तेजना का हाल लिखने में समर्थ हुए। १६१४ में Oscillating Recorder नामक यंत्र बना जिससे छोटे छोटे पौधों की कोपलो में होने वाली स्नायविक धड़कन का प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो सका। १६१७ में Compound lever Crescograph तैयार हुआ जिससे साधारण वनस्पतियो और पौधो की बाढ़ की गति का नाप लिया जाना सम्भव हुआ।

प्राय: Compound lever Crescograph से ही सतुष्ट न हुए बल्कि इससे भी उच्च अभिवर्द्धन करने वाले एक दूसरे यंत्र Magnetic Crescograph को तैयार किया जिसका प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० वालेर ने विरोध किया मगर रायल सोसाइटी के ११ प्रमुख सदस्यों की एक कमेटी ने "साच को आच कहा" वाले सिद्धान्त पर पूरी खोजबीन करके विरोधी महोदय को इनकी कार्य क्षमता में पूर्ण विश्वास दिलाने में सफलता प्राप्त की। अन्त में १६२० में आप रायल सोसाइटी के फेलो मनोनीत किए गए।

१६२२ में आपने अपने नए यंत्र Photosythetic Recorder द्वारा सबसे पहले यह सिद्ध कर दिखाया कि पौधा अपने लिए जल और भोजन अपने भीतरी कोषो में होने वाली प्रक्रियाओं द्वारा नीचे से ऊपर पहुँचाते हैं। जिस कार्य को बहुत ही शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्र भी करने में असमर्थ थे। उसी को आपके १६१६ में बनाए हुए Diametric Contraction Apparatus यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष प्रदर्शित करना साधारण सी बात हो चुकी थी।

डा० बोस के इन आविष्कारो से मानव जाति का बड़ा उपकार हुआ है। उन्होंने नवयुवकों के सामने एक उत्कृष्ट आदर्श रख दिया है कि एकाग्रता, दृढ़ता एव सच्चाई ही सफलता की कुंजी है। इन्होंने औषधि, कृषि एवं शरीर विज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इनके वनस्पति सम्बन्धित सभी अविष्कार और प्रयोग Motor Mechanisim of Plants नाम ग्रंथ में प्रकाशित किए गए हैं। इनके अन्य अन्वेषण जो समय समय पर संस्था की मुख पत्रिका में प्रकाशित होते रहते थे १६२६ में Growth & Tropic movements in plants नामक पुस्तक में प्रकाशित करा दिए गए थे।

श्रीनिवास रामानुजम्

छोटी सी उम्र में ही संसार को चमत्कृत कर देने वाली कुछ ही इनीगिनी आत्माएं होती हैं। श्रीनिवास रामानुजम् भी उन्ही में से एक गिने जा सकते हैं। इनकी गणना संसार के उन थोड़े से महापुरुषों में की जा सकती है जिनके कार्य संसार में युगान्तर उपस्थित कर देते है और जिनका नाम संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित किए जाने योग्य है। श्रीरामानुजम् ने अपनी २७ वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही गणित विज्ञान में इतने महत्वपूर्ण और कठिन प्रश्नो को सिद्ध कर दिया था जिन्हें हल करने में यूरोप के बड़े से बड़े गणितज्ञों को १०० वर्ष से भी अधिक समय लग गया था और फिर भी उनमें से कई एक तो अभी तक भी हल नहीं किए जा सके हैं।

जन्म और बाल्यकाल—इनके पिता मद्रास प्रान्त में कुम्भकोनम् ग्राम के निवासी थे और किसी कपड़े के व्यापारी के यहां मुनीमी करते थे। कहा जाता है कि कई वर्ष तक इनके कोई संतान न होने से इनके ससुर ने जो इरोद नामक ग्राम के रहने वाले थे नामक्कल नामक ग्राम में वहां की नामगिरी देवी की आराधना की जिसके फलस्वरूप २२ दिसम्बर १८८७ को इरोद ग्राम में श्रीनिवास रामानुजम् का जन्म हुआ। पांच वर्ष का होने पर इन्हे कुम्भकोनम् हाई स्कूल में पढने भेजा गया, जहां १८९८ में यह प्राईमरी परीक्षा में सर्वोच्च पास हुए। गणित से इनका बाल्यकाल से ही विशेष प्रेम रहा। कहा जाता है कि एक दिन तीसरे दर्जे में जब इनके गणित के अध्यापक समझा रहे थे कि किसी संख्या को यदि उसी संख्या से भाग दिया जाय तो भजनफल १ होता है। रामानुजम् ने फौरन ही पूछा ?—क्या यह नियम शून्य के लिए भी लागू है ? (शून्य को शून्य से भाग देने पर भजन फल 'एक' न हो कर अपरिमित अथवा Indeterminate होता है)। इस तरह के प्रश्नों से इन्हे इनके अध्यापक और साथी झक्की समझते थे। मगर बालक रामानुजम् अपने अभ्यास में इतने संलग्न थे कि इन्होंने तीसरे दर्जे में ही बीजगणित की सुप्रसिद्ध तीनों श्रेणियों के अध्ययन कर लिये थे जो कालिज की इन्टरमीजियट कक्षाओं को पढ़ाई जाती हैं, चौथे दर्जे में इन्होने बी० ए० की त्रिकोणमिति का अध्ययन शुरू कर दिया था और १२ वर्ष के बालक ने त्रिकोणमिति समाप्त कर दी। पांचवें दर्जे में इन्होंने 'ज्या' और 'को ज्या' (Sine & Cosine) का विस्तार भी कर डाला जिसे सर्वप्रथम एक पाश्चात्य गणितज्ञ 'आयलर' ने किया था।

उस समय पुस्तकों का मिलना इतना कठिन था कि जब ये सातवीं आठवीं कक्षा में थे तो इनके एक मित्र ने इन्हे Cars Synopsis of Pure Mathematics

होता है कि वे ऊंचे दर्जे के दार्शनिक और आदर्शवादी भी थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "अमरत्व का बीज किसी पदार्थ विशेष में नहीं है वरन् विचारों में है। यह गुण सम्पत्ति में नहीं वरन् उच्च आदर्शों में है। सच्चा मानवीय साम्राज्य तो ज्ञान के विकास और सत्य के प्रसार से ही स्थापित हो सकता है। सांसारिक पदार्थों की लूट-खसोट से नहीं।"

इनके जीवन काल में इनकी ७० वीं वर्ष गांठ को १ दिसम्बर १९२८ को बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस महोत्सव के मनाने के ७-८ वर्ष बाद तक भी आप अपने अन्वेषण कार्य में लगे रहे। २३ नवम्बर १९३६ को ७८ वर्ष की स्वल्पायु में हृदय की गति रुक जाने से उनका देहावसन हो गया। मरते समय इनकी कोई संतान न होने से १५ लाख की सम्पत्ति ये अपनी संस्था को ही दान कर गए।

सफल अध्यापक :—देश प्रेम के साथ ही साथ आप में एक सफल अध्यापक के गुण भी विद्यमान थे। सादगी को आपने सदा अपनाया और आपके गुरु का आदर्श भी प्राचीन ऋषि मुनियो के समान था। उनके शिष्यो ने देश में विज्ञान की जो सेवाएं की हैं उन पर कोई भी आचार्य गर्व कर सकता है। वास्तव में आप आजीवन, जब भी अवकाश मिला, विज्ञान साधना में ही लगे रहे। ऐसा नहीं है कि आपका ज्ञान सिर्फ विज्ञान तक ही सीमित हो बल्कि आपने कला, साहित्य, फोटोग्राफी आदि क्षेत्रों में भी असाधारण सफलता प्राप्त की है।

सर रामानुजम्

नामक पुस्तक लाकर दी जिसे पाकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी और अपने अन्य समस्त कार्यों को भूल कर वे इसी पुस्तक के अध्ययन में निमग्न रहे।

उस समय जो विद्यार्थी गणित या अंग्रेजी में चतुर होते थे प्रायः वे सरकारी छात्रवृत्ति पाने के अधिकारी माने जाते थे। सन् १९०३ में १७ साल के बालक रामानुजम् ने भी मैट्रिकुलेशन परीक्षा योग्यता पूर्वक पास की जिसके फलस्वरूप उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति दी गई। Ist year में वे गणित के सिवाय और किसी विषय में दिलचस्पी नहीं लेते थे, अतः वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहे। उनकी छात्रवृत्ति रोक दी गई। आर्थिक स्थिति बहुत ही डांवाडोल होने से उन्हें अब कालेज की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। इससे उन्हें गणित के सिद्धातों की व्याख्या करने व प्रश्न हल करने में दिन भर बिताने का समय मिल गया। १९०६ में उन्होने F.A. की प्राइवेट परीक्षा दी मगर असफल हुए। फिर भी १९०९ तक उनका घर पर रह कर अध्ययन उसी प्रकार चालू रहा।

प्रथम तो रामानुजम् किसी प्रभावशाली वंश से पैदा न होने के कारण ही आर्थिक कठिनाइयों से परेशान रहते थे फिर इन्हीं दिनो इनकी शादी भी कर दी गई जिससे इनकी आर्थिक समस्या और भी जटिल बनती गई। अतः वे अपने जीवन निर्वाह के लिए नौकरी ढूंढते ढूंढते इधर उधर टक्करें खाते खाते १९१० में त्रिकोयला पहुँचे। वहां पर उन दिनों Mathematical Society के संस्थापक श्री वी० रामास्वामी अय्यर डिप्टी कलेक्टर थे। रामास्वामी इनके गणित सम्बन्धी अनुसंधान कार्यों से परिचित थे। अतः कई छोटी मोटी क्लर्की नौकरी दिलवाने की बजाय उन्होंने इन्हें श्री बी० वी० शेषुअय्यर के पास भिजवा दिया जो कभी कुंभकोनम् कालेज में गणित के शिक्षक रह चुके थे। अतः उन्होंने इन्हें कुछ दिनों के बाद दीवान बहादुर श्री आर० रामचन्द्रराव के पास भेज दिया जो उन दिनो वैलोर में कलेक्टर थे। वे रामानुजम् का असाधारण गणित ज्ञान देख कर चकित हो गए। उन्होने रामानुजम् को इस बात का आश्वासन दिलाया कि जब तक कोई संतोषजनक प्रबन्ध न हो जाय, इनके खर्च को वे स्वयं बरदाश्त करेंगे, और इन्हें वापिस मद्रास भिजवा दिया। श्री राव ने मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के चेयरमेन सर फ्रांसिस स्प्रिंग और मद्रास इन्जिनीयरिंग कालेज के मि० ग्रिफिथ को रामानुजन् के बारे में पत्र लिखा और मद्रास ट्रस्ट पोर्ट से ३०) मासिक वेतन की नौकरी भी दिलवा दी। समय पाकर सरकारी वेधशालाओं के डाइरेक्टर जनरल डा० जी० टी० वाकर एफ० आर० एस० को भी राव साहब ने रामानुजम् के कुछ नवीन सिद्धान्त दिखलाये जिन्हे देखकर वाकर साहब बड़े प्रभावित हुए और इन्हें सहायता देने का निश्चय किया।

इन्हीं दिनों कुछ मित्रों के अनुरोध से प्रश्नों के रूप में रामानुजम् ने अपना सर्वप्रथम लेख श्री शेषुअय्यर द्वारा मैथेमेटिकल सोसाईटी के मुख पत्र को प्रकाशन के लिए भेजा जो १६११ के फर्वरी अङ्क में प्रकाशित हुआ। दिसम्बर १६१२ में फिर एक इसी प्रकार का लेख प्रकाशित हुआ। इन प्रकाशनों से रामानुजम् की गणित संसार में काफी चर्चा फैली।

इधर डा० वाकर ने मद्रास विश्व विद्यालय के रजिष्ट्रार को भी एक जोरदार सिफारिशी पत्र लिखा जिसके फलस्वरूप रामानुजम् को मद्रास विश्वविद्यालय से २ साल के लिए ७५) मासीक छात्रवृत्ति मिल गई। इस प्रकार १ लई १६१३ को रामानुजम् ने पं.र्ट ट्रस्ट की नौकरी से अलग होकर, आर्थिक चिंताओं से मुक्त होकर निश्चिन्तता पूर्वक अपना सारा समय गणित के अध्ययन में लगा दिया और फिर मृत्युपर्यन्त गणित की गवेषणा में ही लगे रहे।

कई मित्रों के अनुरोध से, विशेषतः श्री शेषुअय्यर के कहने से, रामानुजम् ने १६ जनवरी १६१३ को एक पत्र ट्रिनिटी कालिज के फैलो प्रसिद्ध गणितज्ञ डा.जी.एच. हार्डी के पास भी भेजा जिसके साथ अपने कुछ लेख उनकी सम्मति के साथ प्रकाशन के प्रबन्ध के लिए भेज दिये थे। उन लेखों के पढ़ने से इन्हे ज्ञात हुआ कि प्रायः सभी सूत्र निर्दोष और उच्चकोटि के थे। उन्होने शीघ्र ही रामानुजम् को एक सहानुभूति पूर्ण और प्रशसात्मक पत्र भेज दिया और उन लेखों के प्रकाशन का प्रबन्ध भी करवा दिया। तदनन्तर यदि रामानुजम् के बिरादरी के लोग समुद्र यात्रा के विपक्ष में न होते तो डा० हार्डी ने रामानुजम् को इंग्लैंड बुलाने के लिए भी आर्थिक कठिनाइयों की गुत्थी को अपने अथक परिश्रम द्वारा सुलझा लिया था।

विदेश यात्रा.—रामानुजम् के बिरादरी वालों की अड़चनों से डा० हार्डी हताश होने वाले नही थे। १६१४ में कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज के फेलो और गणित अध्यापक ई० एच० नेविल जब भारत में आये तो डा० हार्डी ने उनसे रामानुजम् को अपने साथ लेते आने का अनुरोध किया। प्रो० नेविल ने मद्रास विश्व विद्यालय में रामानुजम् से भेंट की और इन्हें इंग्लैंड चलने के लिए कहा और उधर २८ जनवरी १६१४ को मद्रास विश्वविद्यालय के अधिकारियों को भी श्री रामानुजम् को विलायत जाने के लिए एक छात्रवृत्ति देने के लिए जोरदार पत्र लिखा जिसके फलस्वरूप विश्व विद्यालय के अधिकारियों ने सरकार की अनुमति से रामनुजम् को आरंभिक व्यय और सफर खर्च तथा २ वर्ष के लिए २५० पौण्ड वार्षिक छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया। बाद में इसकी अवधि ३ साल और बढ़ा दी गई। इस पर श्री रामानुजम् भी अपनी माता की अनुमति लेकर चलने पर राजी हो गए और

जब से इन्होने होश संभाला तब से मृत्यु पर्यन्त निरंतर गणित के अध्ययन और अनुशीलन में ही लगे रहे। ईश्वर में उनका अनन्त विश्वास था। जाति-पांति और छूत-छात के नियमो को ईश्वरीय न मानते हुए भी ब्राह्मणोचित कर्तव्यों का विधिवत् पालन किया करते थे। माता पिता के अद्वितीय भक्त रहे है। बड़े ही शान्त और सरल स्वाभाव के थे। यहां तक कि एफ. आर. एस. जैसी माननीय प्रतिष्ठा पाने पर भी उनकी सरलता में कोई अन्तर नहीं आ पाया था। जिन प्रश्नो को बड़े २ गणितज्ञ लगातार घटों परिश्रम करने पर भी हल नहीं कर पाते थे उन्हें हल करना आपका चुटकियों का काम था।

महत्वपूर्ण खोजें—इनकी अधिकतर खोजे Theory of Numbers से सम्बंध रखती हैं। इन्होने Highly Compisite Numbers पर भी बड़े महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। इनके मौलिक निबन्धों का संग्रह १६२६ में बड़े आकार के ३५५ पृष्ठों के ग्रथ में Cambrige University Press से प्रकाशित हुआ था जिसके डा.हार्डी डा. बी. एम. विल्सन और श्री शेषुअय्यर संपादक थे। वैसे तो इनके Theory of Equations, Infinite Series, Definite Integrals आदि सभी काम निराले थे मगर Theory of Numbers, Ellipic Functions, Continued, Fractions और Theory of Partitions सम्बन्धित गवेषणाये सर्वोत्कृष्ट समझी जाती हैं। मद्रास विश्व विद्यालय ने बड़ी कृपा करके उनके मृत्यु तक के अप्रकाशित गवेषणा कार्यों को एक सूत्र में आवद्ध करके प्रकाशित कराने का प्रबन्ध किया है जिनका संपादन कार्य Liverpool विश्व विद्यालय के प्रो. जी. एन. वाटसन को दिया गया है। उनका अप्रकाशित कार्य उन्हीं द्वारा हस्तलिखित कापी में ८०० के करीब पृष्ठो में है, जिससे लगभग ४००० ऐसी Theormus हैं जिन्हे बिना प्रमाण लेखबद्ध किया गया है। सम्पादकों का विचार है कि निरन्तर परिश्रम करते रहने पर भी इनके प्रकाशन में 5 वर्ष से अधिक समय लग जावेगा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' ने इनके बारे में जो मृत्यु विज्ञप्ति प्रकाशित की थी उसीसे उनके कार्यों की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। उसके अन्तिम वाक्य में लिखा है—'इस समय से बीस वर्ष पश्चात् जबकि रामानुजम् के कृत्य से उत्पन्न हुए सब गवेषणा कार्य पूरे हो जावेंगे तब सम्भवतः उनका नाम आज की अपेक्षा कहीं अधिक आश्चर्यमय और महत्वपूर्ण प्रतीत होगा।' उनके बहुत से लेख जो उन्होंने विलायत जाने के पूर्व अपनी डायरी में लिखे थे वे अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। इनके मैथेमेटिकल सोसाइटी मुख-पत्र में करीब 60 प्रश्न थे जिनमें से 20 अभी तक हल नही हो पाये हैं। डा० हार्डी, श्री वी० बी० शेषु अय्यर और श्री बी० एम०

छात्रवृति में से ६०) प्रतिमाह अपनी माता को देने का प्रबन्ध करके १७ मार्च १६१४ को मि० नेविल के साथ इंग्लैंड को रवाना हो गए।

वहां पर कैंब्रिज विश्व विद्यालय के आचार्यों ने ६० पौं० वार्षिक की छात्रवृति देकर सहर्ष इन्हे अपने पास स्थान दे दिया जहां पर ये डा० हार्डी और प्रो० लिटिल वुड की सहायता से उत्तरोत्तर उन्नति करने लगे।

विलायत में रह कर भी रामानुजम् स्वयं भोजन बनाते थे जिसमें दाल, चावल और शाक के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। दिन भर की मानसिक परिश्रम की ओर तो उनका कुछ ध्यान ही न होता था। इन सबका इनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा असर पड़ा और १६१७ में उन्हे तपेदिक की शिकायत मालुम होने लगी। फिर भी अभी तक इनके १२—१३ लेख यूरोप की प्रतिष्ठित पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके थे जिनसे इनका सम्मान और भी अधिक बढ़ गया था। उन्हीं दिनों महायुद्ध के कारण समुद्र यात्रा निरापद होने से उन्हें भारत भेजना भी असम्भव सा था, अतः इन्हे वहीं कैंब्रिज अस्पताल में रखा गया। १६१८ तक धीरे धीरे उनके स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन होने लगा।

रायल सोसाइटी के फेलो.—आप पहले भारतीय सम्मानित व्यक्ति हैं जिन्हे रायल सोसाइटी का फेलो बनने का श्रेय मिला हो। २८ फर्वरी १६१८ को आप इसके फेलो बनाए गये। उत्साह पाकर अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए आपने फिर एक बार अनुशीलन कार्य आरम्भ किया। आपका सम्मान प्रदर्शित करने के लिए व आपके कार्यों की महत्ता स्वीकार करने हेतु ट्रिनिटी कालेज के अधिकारियो ने भी आपको अपने कालेज का फेलो नियुक्त किया और बिना किसी शर्त के आपको २५० पौंड सालाना छात्रवृत्ति स्वरूप देना स्वीकार किया जो आपको ६ साल तक मिलती रही।

स्वदेश आगमन—महायुद्ध के शात होने पर २७ फर्वरी १६१६ को रामानुजम ने स्वदेश के लिए लदन से प्रस्थान किया और २७ मार्च को बम्बई पहुँचे। स्वदेश आने पर मद्रास से इन्हें कावेरी के किनारे कोदूमंडी ग्राम में बढ़िया इलाज करने के लिए ले जाया गया। वहां से इन्हे मातृ-भूमि कुम्भकोनम् को भी ले जाया गया। मगर इनका स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगड़ता ही गया। फिर भी मस्तिष्क से ये काम लेते ही रहे और Mock Theta Functions पर उनका सारा कार्य मृत्यु शय्या पर ही हुआ। अंतिम समय में कितने ही उदार सज्जनों ने इनकी सहायता की जिनमें से एस. श्री निवास आयंगर और रायबहादुर नुम्बुरल चेट्टी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। परन्तु २६ अप्रैल १६२० को मद्रास के पास चेतपुर ग्रामवासियों को इन महा-पुरुष का अंतिम दर्शन का अवसर सुलभ हो सका।

डाक्टर बीरबल साहनी

पजाब के भेडा नामक कस्वे मे प्रो. रुचिराम साहनी की गणना विज्ञान के प्रतिष्ठित भारतीय विद्वानो मे की जाती है। इनकी पत्नी श्रीमती ईश्वरी देवी भी अपनी सुसंस्कृति और उदार विचारो के लिए प्रांत भर मे प्रसिद्ध थी। हमारे चरित नायक लखनऊ विश्वविद्यालय के डा. बीरबल साहनी डी एस. सी., डी.एफ. जी. एस, एफ. आर. एस, एफ. आर. ए. एस. बी, का जन्म १४ नवम्बर १८९१ मे हुआ था जो ऐसे सुयोग्य माता-पिता के तीसरे सुपुत्र है। स्वर्गीय सर जगदीश चद्र बोस के बाद यही भारतीय अग्रगण्यो मे से है जिन्होने वैज्ञानिक व वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। सुयोग्य माता-पिता के साथ ही साथ कालेज मे आपको शिक्षक भी प्रो० शिवराम कश्यप जैसे आदर्श और शिक्षा दीक्षा मे विशेष दिलचस्पी लेने वाले मिले। अपने आदरणीय पिता व शिक्षक से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर ही डा. साहनी ने आज इतना गौरव पाया है।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर कालेज मे सम्मान पूर्वक समाप्त करने के बाद वनस्पति विज्ञान के विशेष अध्ययन के लिए आप १८११ मे कैम्ब्रिज गए। वहा भी प्रतिष्ठित आचार्य ए. सी. स्टीवर्ड का आपने पूरा लाभ उठाया और आप इमैनुएल कालेज के आजीवन सदस्य बना लिए गए। आपके मौलिक कार्यों से प्रभावित होकर केम्ब्रिज और लन्दन दोनों ही विश्वविद्यालयो ने आपको डी.एस.सी. की उपाधि प्रदान की। वहां से आचार्य की पदवी लेकर आप १९१९ मे भारत वापिस लोटे और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे वनस्पति विभाग के मुख्य आचार्य नियुक्त हुए। इसके १ वर्ष पश्चात् अगले बारह मास आप पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर मे काम करके १९२१ मे लखनऊ विश्वविद्यालय मे वनस्पति-विज्ञान के मुख्य आचार्य घोषित किए गए और तब से बराबर आप यही कार्य करते रहे। आपही के अधक प्रयत्नो के फल स्वरूप आज लखनऊ विश्वविद्यालय की वनस्पति विज्ञानशाला न केवल भारत मे ही वरन् संसार के दूसरे उन्नत देशो मे भी प्रमुख मानी जाती है। आपके अन्वेषण की महता भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध वैज्ञानिको द्वारा मान्यता प्राप्त की जा चुकी है। वास्तव मे डा. बीरबल साहनी ही एकमात्र भारतीय वैज्ञानिक है जिन्होने वनस्पतियो के पुरातत्व पर अति महत्व पूर्ण काय किये है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय वैज्ञानिको मे ही नही वरन् ससार प्रसिद्ध वैज्ञानिको मे आप अग्रगण्य है तो अनुचित न होगा। आपके किये हुए कार्यो की महत्ता और उपयोगिता भूगर्भ विज्ञानवेता भी मुक्त कठ से स्वीकार करते हैं। भूगर्भ विभाग की पत्रिकाओ

विलसन के अथक प्रयत्नों से इनके वे सारे लेख पुस्तकाकार में प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकाशन के लिए कैम्ब्रिज और मद्रास विश्वविद्यालय, रायल सोसाइटी तथा ट्रिनिटी कालिज ने काफी आर्थिक सहायता प्रदान की है।

डा० हार्डी 31 अगस्त 1936 को कला विज्ञान की फार्वर्ड त्रिशतक कान्फ्रेंस, अमेरिका में दिये गए अपने एक भाषण में रामानुजम् के बारे में कहते हैं कि रामानुजम् का जीवन विचित्रता तथा विरोधों से भरा जान पड़ता है। एक दूसरे की बूझ की प्रायः सभी रीतियां उनके विषय में असफल रहती हैं। उनके विषय में हम कदाचित इसी एक बात में एकमत रखते हैं कि वह एक महान् गणितज्ञ थे।" उनकी शिक्षा के बारे में यदि कहा जाय कि वे अर्ध शिक्षित भारतीय थे तो असंगत नहीं होगा। वास्तव वे भारतीय विश्वविद्यालय की प्रथम परीक्षा भी पास न कर सके और इसे ध्यान में रखते हुए उनके कार्यों की महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है। वे अपनी जीवनी में यूरोपियन गणित से ही कार्य करते रहे। और जब उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई कही जा सकती है तब वे चल बसे। अब तक कोई भी यह तय नहीं कर पाया है कि वे कितने बड़े गणिताचार्य थे। फिर यह तो कहा ही कैसे जा सकेगा कि वे कितने बड़े हुए होते यदि······

कीर्ति उपार्जित की ही है लेकिन साथ ही साथ तरुण भारतीय वैज्ञानिको के लिए भी अन्वेषण कार्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया। भारत की प्रमुख वैज्ञानिक पत्रिका Current-Science के प्रकाशन मे आपका प्रमुख हाथ रहा है। यह पत्रिका आदान प्रदान का कार्य करती है अर्थात् भारतीय वैज्ञानिको की विज्ञान साधना का प्रामाणिक विवरण विदेशों मे पहुचाती है और विदेशो मे होने वाले वैज्ञानिक कार्यो का हाल भारतीयों को देती है।

ऐसी बात नही है कि आप शिक्षा सस्थाओ के अतिरिक्त सार्वजनिक और सामाजिक कार्यो मे ही हाथ नही बटाते हों अपितु देश में होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भी आपकी सहानुभूति और अभिरुचि रही है। आप वेशभूषा मे विदेशों मे भी विशुद्ध खादी धारी रहे है। वनस्पतियों और पुष्पों से तो आपका विशेष प्रेम है ही परन्तु आप कला और सौन्दर्य के भी प्रेमी है। बाह्याडम्बर से आप पूर्णतया घृणा करते है। अपना कार्य आप इस तरह से दतचित करते है कि अक्सर आपको अपनी प्रयोगशाला मे बहुत रात बीते तक चुपचाप काम करते हुए देखा जाता है।

अनुसधान कार्यों के साथ साथ यात्रा का भी आपको बड़ा शौक रहा है। भारत मे तो आप यात्रा करते ही रहे है। यूरोप और इंग्लैंड की भी आप कई बार यात्रा कर चुके है। परन्तु यात्राओ के दौरान मे भी आप अपनी पैनी और सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि द्वारा वैज्ञानिक अन्वेषण के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधनो का लाभ उठाते रहे है। एक बार सन् १९२२ मे अपने गर्मियों की छुट्टियों मे कलकत्ते के ईडन गार्डेन की सैर करते हुए लगभग दर्जनो पेड़ो के तने देखे। कुछ जमीन पर बेडे पडे हुए थे तो कुछ जमीन मे धसे हुए सीधे खड़े थे। डा० साहनी ने उन सबकी भली भांति जाँच करके उनके सम्बन्ध मे ही एक मौलिक अन्वेषण निबन्ध तैयार कर डाला जिसे कलकत्ता मे होने वाली सन् १९२८ की विज्ञान कांग्रेस अधिवेशन के वनस्पति विज्ञान विभाग में पढ़ाया गया। इसी प्रकार १९२८ की गर्मियों में काश्मीर (गुलमर्ग) मे भी आपने वहाँ की वनस्पतियो मे कुछ प्रमुख बातें देखकर उनकी वैज्ञानिक विधिवत जाच करके दो मौलिक निबन्ध तैयार कर डाले जिन्हे सन् १९२९ की भारतीय साइंस कांग्रेस के मद्रास मे होने वाले अधिवेशन मे पढे थे।

आपने सरकार के जिआलाजिकल सर्वे विभाग के अनुरोध से पुराने वनस्पतियो के अवशेषो के श्रेणी विभाजन सम्बन्धी विशेष विचारणीय कार्य किये है। आपने सर्वे विभाग के कलकत्ता म्यूजियम स्थित संग्रहालय और ब्रिटिश म्यूजियम मे संग्रहीत शिलाखचित भारतीय वनस्पतियो के अवशेषों की विस्तृत जाच पड़ताल भी की है। आपका यह अनुमान है कि नागपूर और छिन्दवाडे के इलाके मे जो पुराने वनस्पतियो

और विवरणो के अतिरिक्त लदन की रायल सोसाइटी के मुख पत्र मे भी आपके कई मौलिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके है।

फेलोशिप और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान.—१९२९ में कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने आपको एस.सी. डी. की सम्मान पूर्ण उपाधि से विभूषित किया। यह सम्मान अब तक केवल तीन ही वैज्ञानिकों को प्राप्त हो पाया है जिनमे से आप ही प्रथम भारतीय है। लंदन की रायल सोसाइटी ने भी १९३६ मे आपको अपना फेला मनोनीत किया है। यह श्रेय आपके गुरु केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो० ए. सी. सेपार्ड एफ. आर. एस को मिलना चाहिए।

मान्यता:—इसके बारे मे जितना लिखा जाय आपके लिए थोडा है। क्योकि सिर्फ भारत और इंग्लैंड के वैज्ञानिक ही नही अपितु जर्मनी, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम हालैंड और रूस तक के वैज्ञानिक आपके वैज्ञानिक अन्वेषणों की मौलिकता, श्रेष्ठता और महत्ता की मुक्तकठ से प्रशसा करते हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो गोथन तो कई महत्वपूर्ण समस्याओ पर आपके साथ अन्वेषण कार्य कर चुके है। आप International Botanical Congress के १९३० मे कैम्ब्रिज मे होने वाले पाचवे अधिवेशन मे तथा १९३५ मे एमस्टर्डम मे होने वाले छठे अधिवेशन मे उप-सभापति बन चुके है। आप के कई निबधो की प्रशसा १९३७ मे मास्को मे होने वाली International Geological Congress के अधिवेशन मे भी हुई। १९३८ मे वियना मे होने वाली वैज्ञानिक कानफरेंसो मे भी आपने प्रमुख भाग लिया। विदेशो से स्वदेश मे आपने कम यश या कीर्ति पाई हो ऐसी बात नही है। लखनऊ विश्वविद्यालय मे वनस्पति विभाग के अध्यक्ष तो थे, ही विगत कई सालो से Cean of the Faculity of science भी आप रहे है। आप भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वनस्पति विभाग मे दो बार–सन् १९२१ और १९३८ मे अध्यक्ष बन चुके हैं। १९२६ की काग्रेस मे आप भूगर्भ विज्ञान विभाग के भी अध्यक्ष बने है। विज्ञान ग्रेस के मद्रास मे होने वाले १९४० के वार्षिक अधिवेशन के आप ही सभापति चुने गए थे।

इसके अतिरिक्त आप बहुत सी वैज्ञानिक सस्थाओं के सस्थापक भी रह चुके है। बंगाल एशियाटिक सोसायटी से आपको बारक्ले स्वर्ण पदक दिया जा चुका है। इस सोसायटी के आप फेलो भी रहे हैं। लाहौर की फिलासाफिकल सोसायटी और अखिल भारतीय बोटेनिकल सोसायटी तो आप ही के अथक प्रयत्नो से स्थापित हो सकी है। इस तरह से आपने सभी वैज्ञानिक और शिक्षा सस्थाओ मे लगातार सक्रिय रूप से भाग लेते हुए स्वय अपने मौलिक अन्वेषणों से भारत के लिए तो यश और

श्री बीरबल साहनी

के अवशेष मिले है उनसे पता चलता है कि उस इलाके के पठार बहुत ही पुराने समय के है, जब पृथ्वी पर शायद मनुष्य का जन्म हुआ ही नही था । इन दक्षिणी पठारो की तरह आपने काश्मीर के करेवा पठारो के बारे मे भी महत्वपूर्ण संधान कार्य किये है।

आपने हिमालय पर्वत के इतिहास और क्रमिक विकास का भी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है जैसा कि करेंट साइंस १६३६ के पत्र से विदित होता है । पूर्व ऐतिहासिक काल मे और प्रस्तर युग मे हिमालय की क्या स्थिति थी तथा मनुष्य के आविर्भूत होने के बाद हिमालय की ऊँचाई मे कितनी वृद्धि हुई है इस सम्बन्ध मे आपने सर्वथा मौलिक गवेषणाएं की है। जो औजार उत्तर भारत में मिले हैं उनसे यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि हिमालय प्रदेश के दोनो तरफ आबाद होने वाली जनता बराबर परस्पर सम्पर्क मे आते रहते थे। इससे साफ प्रकट होता है कि अति प्राचीनकाल मे हिमालय के ऊँचे ऊँचे दर्रे और घाटियाँ उस समय इतने ऊँचे नही रहे होगे जितने ऊँचे आज है। ऊँचाई कम होने के कारण ही मानव का हिमालय के इधर उधर आना जाना सम्भव हो सकता था । हो सकता है कि मनुष्य के आगमन के बाद यह ऊँचाई निरन्तर बढ़ती गई हो और वृद्धि का यह क्रम प्रस्तर युग तक और सम्भवत उसके बाद तक भी बराबर जारी रहा हो । कुछ भूतत्ववेताओ का तो यह भी विश्वास है कि यह क्रम अब भी जारी है।

पुरा वनस्पति अन्वेषण तथा भूगर्भ सम्बन्धी कार्यो के साथ ही साथ आपने पुरातत्व सम्बन्धी भी कुछ कम महत्वपूर्ण सधान नही किए हैं। जमुना की उपत्यका मे रोहतक पास खोकरा कोट के टीले का निरीक्षण और अध्ययन करके आपने यह निश्चित कर दिया है कि भारत मे ईसा के बहुत पहले मनुष्य सिक्के ढालने के कई अधिक जानते थे क्योकि इस टीले मे खुदाई करने पर सिक्के ढालने के कई हजार ठप्पे मिले हैं। इनका निरीक्षण करने से यह पता लगा है कि वहाँ ईसा से 100 वर्ष पूर्व यौधेय राजाओ की कोई टकसाल रही हो । इस टीले की आपने भारत सरकार से भी विधिवत् जाँच कराने की सिफारिश की थी। उसको मानकर अब भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने खोकरा कोट की खुदाई शुरू करवा दी है । आशा की जाती है कि इस खुदाई से ईसा के 3000 वर्ष पूर्व के हड़प्पा सभ्यता के प्रमाण ही नही मिलेंगे वरन् कुछ ऐसी सामग्री भी प्राप्त होगी जिससे पूर्व ऐतिहासिक काल की सस्कृति का ज्ञान होगा और उसे ऐतिहासिक काल के मध्यकाल से शृंखलाबद्ध किया जा सकेगा। आपने हिमालय के उत्थान के सम्बन्ध मे तो महत्वपूर्ण गवेषणाएं की ही है साथ ही साथ हिमालय के जन्म से बहुत पहले के

फिलासाफिकल मैग्जीन के सम्पादक के पास भेज दिया जिसे पढकर प्रो. जोन्स बड़े संतुष्ट हुए थे। इसी तरह से शुरु शुरु मे बचपन के इनके दूसरे मौलिक अन्वेषण की कहानी भी कम रोचक नहीं है। इस प्रकार १६-१७ साल के बालक ने अपने मौलिक संधान कार्यों से जगत प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा प्रशंसा प्राप्त करते हुए १९०७ में भौतिक विज्ञान मे एम. ए. अाद्वितीय सम्मान के साथ पास की। तदनन्तर आप सरकार द्वारा भौतिक विज्ञान का विशेष अध्ययन करने के लिए विलायत जाते जाते डाक्टरी अयोग्यता के कारण रुके। मगर इससे आप निराश नहीं हुए। जनवरी में एम. ए. परीक्षा दे चुकने के बाद फर्वरी मे आप भारत सरकार की अर्थ विभाग की प्रतियोगिता परीक्षा में शामिल हुए और उसमें भी आशातीत सफलता प्राप्त की। परिणाम स्वरूप आपको २० वर्ष की छोटी आयु मे ही अर्थ विभाग में Deouty Accountant General नियुक्त कर दिया गया। इतना ऊंचा और उत्तरदायित्व पद इस छोटी अवस्था में प्राप्त करने का सारे भारतवर्ष में यह पहला ही मौका था।

इस पद पर नियुक्त होते ही आपकी शादी मद्रास के सामुद्रिक चुंगी विभाग के सुपरिन्टेंडेंट श्रीकृष्ण स्वामी अय्यर के सुपुत्री के साथ बड़ी धूमधाम से होगई जिससे दक्षिण भारत में इनकी और भी अधिक प्रसिद्धि होगई क्योंकि इनके स्वसुर का परिवार इनसे उच्च कुलीन था।

आप डिप्टी एकाउन्टेंट जनरल के पद पर ३ साल कलकत्ते कार्य करने के बाद नागपुर भेज दिए गए। वहां से रंगून भेजे गए। मार्च १९१० में इनके पिता की मृत्यु हो जाने से रंगून से ६ महीने की छुट्टी लेकर इन्हें रगून से मद्रास जाना पडा। मगर इस दौरान में भी इनकी विज्ञान साधना अविराम गति से चालू रही। छुट्टी के बाद आप रंगून न भेजे जाकर आपकी बदली फिर सीधी नागपुर हो गई। १९११ में फिर आप वापस कलकत्ता भेज दिये गए और यहां डाक और तार विभाग के जनरल नियुक्त किये गये। इस पद पर रहते हुए आपको मुद्रा, सेविंग बैंक, जीवन बीमा, आय व्यय निरीक्षण, सार्वजनिक ऋण, हिसाब-किताब और बजट आदि का पूरा ज्ञान प्राप्त होगया। आप अपने उच्च अधिकारियों और सहकारियों दोनों ही के प्रशंसा पात्र बने। आपकी कार्य कुशलता से खुश होकर १९१६ में आपको भारत सरकार के सेक्रेट्रियट में बुलाने का निश्चय किया गया। मगर आपने वहां न जाकर कलकत्ता विश्वविद्यालय मे भौतिक विज्ञान के आचार्य पद को सहायता स्वीकार किया।

सरकारी काम करते हुए भी आप वैज्ञानिक अनुसंधान के काम से विमुख नही हुए। एक दिन जब आप कलकत्ते मे डलहौजी स्क्वायर से ट्राम मे गुजर रहे

डा० श्री चन्द्रशेखर वेङ्कट रामन्

इनका जन्म दक्षिणी भारत के त्रिचनापल्ली नामक नगर मे १७ नवम्बर सन् ११८८ को हुआ था। इनके पिता श्री चन्द्रशेखर अय्यर अपने परिवार मे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने अपने पैत्रिक गांव को छोड़ कर नगर मे रहना शुरू किया था व साथ ही साथ अपने पूर्वजो के व्यवसाय खेतो को छोड़ पाश्चात्य शिक्षा को अपनाया था। अपने द्वितीय पुत्र वेंकटरामन् के जन्म के समय आप स्थानीय हाई स्कूल मे शिक्षक थे और B.A. की तैयारी मे लगे हुए थे। इनकी माता श्रीमती पार्वती अम्मल भी त्रिचनापाली के प्रसिद्ध शास्त्री परिवार की कन्या थी।

पं० चन्द्रशेखर अय्यर बालक रामन् के जन्म के चार साल बाद ही १८९२ मे तामिल प्रांत को छोडकर आंध्र प्रदेश चले गए जहां विजगापट्टम के हिन्दू कालेज मे भौतिक विज्ञान के लेक्चरर नियुक्त हो गए। यहां के प्रिंसिपल श्री जी. टी. श्रीनिवास आयंगर पं. चन्द्रशेखर के मित्र भी थे। अपने पिता व उनके मित्र की देखरेख मे बालक रामन् ने ११ साल की उम्र मे ही मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा ससम्मान पास की। दो साल बाद ही विश्व विद्यालय की एफ. ए. परीक्षा भी प्रथम श्रेणी मे पास की।

बालक रामन् बचपन से ही 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' वाली कहावत को चरितार्थ करते थे। बालक रामन की १२ वर्ष की उम्र मे ही श्रीमती एनी बीसेंट के भाषण सुनने से धार्मिक प्रवृत्ति इतनी प्रबल हुई कि वे अपने प्रिय विषय का अध्ययन भी भूल बैठे। परन्तु जन्मजात वैज्ञानिक होने से इनकी धार्मिक भावना स्थायी न रह सकी और विज्ञान ने फिर इन्हे अपनी ओर आकृष्ट किया।

रामन् का एफ. ए. के बाद का अध्ययन मद्रास प्रेसिडेंसी कालेज मे हुआ। १८०४ मे आप बी.ए. में यूनिवर्सिटी भर में प्रथम श्रेणी में पास हुए फलस्वरूप विश्वविद्यालय की ओर से आपने कई पारितोषिक और पदक प्राप्त किये। अंग्रेजी के सर्व श्रेष्ट निबन्ध के लिए भी आपने एक पारितोषिक पाया व भौतिक विज्ञान का 'अर्णी स्वर्णपदक' भी आप ही को मिला। तदनन्तर भौतिक विज्ञान मे एम.ए. भी आपने यही से किया। एम.ए. करने के पहले ही आपके भौतिक विज्ञान सबधी दो लेख लंदन से प्रकाशित होने वाली प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके थे।

वेंकट रामन् जब केवल १८ ही वर्ष के थे तो Spectrometer पर प्रयोग करते समय इन्हे कुछ नवीन बातें दृष्टिगोचर हुई। इन बातों पर विविवत जाच और अध्ययन करके इस पर एक लेख लिखकर आपने इसे प्रकाशनार्थ लदन की

के बाद एशोसियेशन मे अनुसधान कार्य का नेतृत्व पद सभाले हुए है, आपके श्रेष्ठतम शिष्य है। प्रिंसिपल आर्चवाल्ड का कथन है कि किसी विद्यालय को उसके सुंदर और भव्य भवन नही बनाते, वास्तव मे विश्वविद्यालय को बनाने वाली उसके आचार्यो और शिष्यों की मण्डली होती है।

डा० रामन् ने किसी विशेष मार्ग का अनुसरण नही किया बल्कि अपना ही नवीन मार्ग तैयार किया और दूसरों के लिए पथ प्रदर्शक बने. आपको भौतिक विज्ञानवेता, रासायनिक तथा गणित शास्त्री सभी अपने मे से एक समझते है अर्थात् आप विस्तृत विज्ञान क्षेत्र मे एक सच्चे पथ प्रदर्शक है। आपका सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्य 'रामन् प्रभाव की खोज' है। आपकी 1907 से 1917 तक के समय की सबसे महत्वपूर्ण खोज वाद्ययत्रों के सिद्धात है। 1917 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञानाचार्य के पदारूढ होने के बाद लगातार चार वर्ष तक आप प्रकृति के रगो के अध्ययन और विश्लेषण मे लगे रहे। आपका इस काल का Velocity of Light कालूम करने का ढग सर्वथा नवीन रहा।

समुद्र जल का नीला रंग :—1921 की ग्रीष्म ऋतु मे आपका ध्यान यूरोप यात्रा के समय समुद्र जल के नीले होने का कारण जानने की उत्कट इच्छा हुई। अत: उसी साल वापस कलकत्ता आ कर उसी अध्ययन और अनुशीलन मे लग गए जिनका संक्षिप्त वर्णन फर्वरी 1922 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से Moleecular Diffraction of Light नामक निबंध में प्रकाशित हुआ है।

बहुत से प्रतिष्ठित वैज्ञानिको ने किसी एक विशेष विषय मे अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखकर उसके बारे में ही नवीन और मौलिक अनुसंधान किये है मगर रामन् ने विज्ञान की अनेक शाखाओ मे कार्य किया है और सभी से असाधारण ख्याति प्राप्त की है।

रामन् प्रभाव :—रामन प्रभाव सम्बंधी अनुसंधान 1921 म शुरू हो गए थे और लगातार 7 साल तक परिश्रम करते रहने पर आप इसमे सफलता पा सके थे। इसका श्रीगणेश आपकी प्रथम विदेश यात्रा के अवसर पर हुआ था। कलकत्ता वापस आने पर आपने पानी, हवा, और बर्फ आदि पारदर्शक माध्यमों के अणुओं द्वारा होने वाले प्रकाश का अध्ययन शुरू किया जिससे आगे चलकर रामन प्रभाव जैसा महत्वपूर्ण अन्वेषण करने मे सफल हो पाये।

परिक्षिप्त प्रकाश मे जो किरणे दिखाई दी वे रामन किरणो' के नाम से प्रसिद्ध है। परमाणु के संगठन और उनके आचरण के अध्ययन के लिए तो व्यक्त रूप मे ये किरणे कभी न समाप्त होने वाला ज्ञान भण्डार सिद्ध हुई है। इस क्षेत्र

थे तो आपकी दृष्टि Indian Association the Cultivation of Scinece' लिखित साइन बोर्ड पर पड़ी। इस बोर्ड को देखकर आपकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नही रहा था। तुरन्त ही ट्राम से उतर कर उस परिषद् भवन की ओर चल पडे। सयोग से उस दिन उसकी बैठक भी थी और सर आशुतोप मुकर्जी तथा विज्ञान मे रुचि लेने वाले कुछ अन्य प्रतिष्ठित विद्वान भी वहा उपस्थित थे। वहां आपने परिषद् के मत्री डा० अमृतलाल अपने मौलिक खोज निबंध दिखाये जिन्हे देख वे इतने मुग्ध हुए कि आपका अनुसधान कार्य के लिए उचित प्रवन्ध कर देने का वचन दे दिया। यहा पर रह कर शीघ्र ही आपने इतनी ख्याति प्राप्त की कि विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस चासलर सर आशुतोष मुकर्जी से भी आपने मित्रता पा ली।

सन् १६६४ मे सर आशुतोष मुकर्जी के अनुरोव से आय २५ वर्ष की अवस्था मे सरकारी नौकरी छोड़ कर 'साइस कालेज' के 'पालित आचार्य' वने। आपकी इस नियुक्ति से सर आशुतोष को जो हार्दिक प्रसन्नता हुई वह उनके कालेज के शिलान्यास उत्सव पर जो भाषण दिया था उससे स्पष्ट होती है। उन्होंने कहा था—'श्रीयुत रामन ने विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी को स्वीकार करके, अपनी भारी वेतन वाली सरकारी नौकरी को छोड कर जिस अद्वितीय साहस और अपूर्व आत्म-त्याग का परिचय दिया है, उसकी यहा यदि मैं हार्दिक और वास्तविक प्रशसा नही करूं, तो मै अपने कर्तव्य पूर्ति मे सफल न होऊंगा। वास्तव मे मुझे दुख है कि यूनिवर्सिटी की इस प्रोफेसरी के लिए उन्हे यथेष्ट उदार वेतन भी तो न मिल सकेगा।

इस प्रकार आपने जुलाई 1917 से कलकत्ता विश्वविद्यालय का कार्य शुरू किया और डा० अमृतलाल सरकार मृत्युपरांत 1919 मे आप एसोसियेशन के अवैतनिक मंत्री भी चुने गये। यद्यपि कालेज के 'पालित आचार्य' पद की शर्तो मे लेक्चर देना उनके लिए अनिवार्य नही था फिर भी स्वेच्छा से विद्यार्थियों को पढ़ाने मे काफी समय देते थे। इस प्रकार आप अपने व्यक्तिगत उत्साह, प्रतिभा और अध्यवसाय मे अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि पा गए। आप लगभग १५ वर्ष 1917 से 1932 तक कलकत्ता विश्व विद्यालय और साइंस एसोसियेशन मे अनुसंधान कार्य का नेतृत्व संभाले रहे।

पिछले 20–22 वर्षों मे आपके एसोशियेशन की प्रयोगशाला से व कालेज से जो प्रतिभाशाली छात्र निकले हैं वे भारत भर मे बहुत ही जिम्मेदारियो के पद पर नियुक्त हैं। डा० के. एस. कृष्णन् एफ आर. एस. जो कलकते से आपके चले जाने

गये। वहा आप भौतिक विज्ञान सम्बधी गणित विभाग के अधिवेशन के अध्यक्ष बनाये गये। वहा आपको वाशिंगटन, आयोवा, शिकागो, फिल्डेफिया आदि प्रमुख विश्वविद्यालयो मे आमन्त्रित किया गया। आपके इन भाषणों को सुनने के लिए अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक नियमित रूप से आया करते थे। इस अवसर पर रूस की विज्ञान परिषद के प्रतिनिधियो को आपने रूस जाने का वचन भी दे दिया था परन्तु उस अवसर पर न पहुचकर अपनी तीसरी बार की विदेश यात्रा के अवसर पर रूस भी गए। अमेरिका से इगलैंड लौट कर आप नार्वे गये। इस तरह से यथेष्ठ कीर्ति और यश लूट कर 18 मार्च 1925 को आप लगभग साल भर के बाद भारत वापिस आए।

आपको सम्राट के जन्म दिवस पर 3 जून 1929 को भारत सरकार ने भी 'सर' की उपाधि देकर प्रतिष्ठित किया। 1930 मे लन्दन की रायल सोसाइटी ने आपके वैज्ञानिक कार्यों के उपलक्ष्य मे 'ह्यूजेज स्वर्ण पदक आपको प्रदान किया। यह पदक इसके पहले भी और बाद मे भी अभी तक किसी भारतीय वैज्ञानिक को नही मिला है। इस पदक के प्राप्ति के सप्ताह भर बाद ही स्टाक होम से रामन् प्रभाव के आविष्कार के उपलक्ष्य में आपको भौतिक विज्ञान का नोबल पुरस्कार दिया गया जिसे पाने वाले समस्त एशिया भर मे आप पहले आदमी है। यह पुरस्कार प्रसिद्ध स्वेडिस वैज्ञानिक सल्फ्रेड नोबल द्वारा प्रदान किये गये कोष से संसार भर के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक को प्रतिवर्ष दिया जाता है। इस कोष से प्रतिवर्ष पाच पुरस्कार (प्रत्येक 800 पौ० का) प्रदान किये जाते है—एक एक तो भौतिक, रासायन और तीसरा औषधि विज्ञान के सर्वश्रेष्ट आविष्कार के लिए, चौथा साहित्य की सर्वश्रेष्ट रचना के लिए और पांचवा शाति स्थापना के लिए सर्वाधिक सेवाये करने वाले व्यक्ति को। इस उत्सव पर आप सपत्नीक स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क और जर्ममी भी अतिथि के रूप मे बुलाए गये। वहाँ से आयरलेण्ड गए और वापस आते समय फ्रांस, स्वीजरलैण्ड, इटली और सिसली देशों में भी गए।

मार्च 1941 मे आपको अमेरीका का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक पुरस्कार–फ्रेंकलिन पदक देने की घोषणा हुई अभी तक अमैरिका के बाहर इस पदक को प्राप्त करने का गौरव बहुत ही कम वैज्ञानिको को प्राप्त हो चुका है।

आप अपने व्यक्तिगत परिश्रम, ध्यवसाय, उत्साह और प्रतिभा के बल पर ही आज इतने महान वैज्ञानिक हो पाये हैं। इस कार्य के आरम्भ करते समय न तो किसी से आपको प्रेरणा ही मिली और न विशेष सहायता ही। वास्तव मे आप एक जन्मजात वैज्ञानिक रहे है। आप एक मात्र भारतीय है जिन्होने एक प्रतिष्ठित

से हटकर इधर कई वर्षों से आपकी देखरेख में औद्योगिक अनुसन्धान कार्य भी होने लगा है। इसका श्रीगणेश आपने कलकत्ते की साइन्स एसोसिएशन की प्रयोग-शालाओं मे ही कर दिया था। आजकल आप सरकार के अनुरोध से कलकत्ता विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करके बंगलौर की प्रसिद्ध Indian Institute of Science में अनुसंधान कार्य का नेतृत्व कर रहे है। 1932 से 1937 तक आप इस सस्था के डाइरेक्टर भी रह चुके है।

आपने कलकत्ते के साइंस एसोसियेशन की आर्थिक स्थिति को दृढ बनाने के लिए अपने व्यक्तिगत प्रभाव से सरकारी और गैर सरकारी साधनो से ढाई लाख रुपया इकट्ठा किया। आपने एसोसियेशन के तत्वावधान मे 'इण्डियन जनरल आफ फिजिक्स' पत्र के प्रकाशन का सफल आयोजन करके इसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलवाई है। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भी आप लगातार कई वर्षो तक प्रधान मन्त्री का काम करते रहे। आपकी यह पहली अभिलाषा रही है कि भारत को भी विज्ञान संसार मे प्रमुख स्थान मिले। इन सस्थाओ के अतिरिक्त आपने आंध्र विश्व विद्यालय की भी उन्नति की है। वाल्टेयर मे साइन्स और टेक्नीलोजी कालेज की स्थापना और विकास के लिए भी पूरा प्रयत्न किया है। 1934 मे बगलौर से आपने Indian Acadeny of Science नामक एक नई सस्था की स्थापना की है। विगत कई वर्षो से आपकी प्रेरणा से बंगलौर से अग्रेजी मे Current Science नामक एक वैज्ञानिक पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है। यह भारत मे होने वाले वैज्ञानिक कार्यों का विवरण देश विदेश मे पहुचाने वाली प्रामाणिक पत्रिका समझी जाती है।

आप अपने महत्वपूर्ण विज्ञान साधाना और सेवाओ के लिए देश विदेश मे प्रायः सर्वत्र ही सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। 1921 मे आप Oxford मे ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की कांग्रेस मे शामिल हुए जो आपकी प्रथम विदेश यात्रा थी। 1922 मे आपको डी. एस. सी. की उपाधि मिली। 2 वर्ष बाद ही 1924 में आप लन्दन की विश्व प्रसिद्ध विज्ञान संस्था रायल सोसाइटी के फेलो मनोनीत किए गये। श्रीनिवास रामानुजन् तथा जगदीशचन्द्र बोस के बाद आप ही भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्हे यह सौभाग्य प्राप्त हो सका था। तत्पश्चात् तो बहुत सी सोसाइटियो के फेलो मनोनीत हुए, कई विश्वविद्यालयो से सम्मानित उपाधियां आपने प्राप्त की तथा बहुत से पदक भी प्राप्त किये। 1924 मे आप दुबारा भाषण के लिए विलायत बुलाये गये। वहा पर आपको प्रायः सभी लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिको से मिलने का सुयोग प्राप्त हो सका। इंगलैंड से कनाडा होते हुए आप अमेरिका भी

श्री सर सी. वी. रमण

वैज्ञानिक की हैसियत से विदेशो की यात्रा की है। विज्ञान के अतिरिक्त आप इतिहास राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र के भी पूर्ण ज्ञाता और पडित है एव अन्य विषयो का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बराबर जागरुक रहते है। आप जिस प्रकार भारत की कई भाषाओ के ज्ञाता है उसी प्रकार यूरोप की भी कई भाषाओ के आप अच्छे ज्ञाता है। आपके सदृश्य आपकी श्रीमती जी भी भारत की 8–10 भाषाओ को जानती है और बीणा बजाने मे बहुत ही चतुर है।

इतना सम्मान पाने पर भी आपको सादगी मे तथा साधारण, नियमित एव सयमपूर्ण दिनचर्या मे कोई अन्तर नही पड़ा है। आजदिन भी आप अपना जीवन बडी सादगी से बिताते है और दिन रात विज्ञान साधना मे एक तपस्वी की भांति लीन रहते है। पचास वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर भी आप कहते है कि अभी तो मैंने अपना वैज्ञानिक जीवन आरम्भ किया है और एक नवयुक की तरह अत्यन्त उत्साह पूर्वक अपने कार्यों मे जुटे रहते हैं। वास्तव मे अभी देश को आपसे बहुत कुछ आशायें है। परमात्मा आपको चिरायु करे और आप देश के पथप्रदर्शक बने रहे।

डा० मेघनाथ साह

एक साधारण से देहाती परिवार मे जन्म लेकर अपनी प्रतिज्ञा और परिश्रम से उच्च कोटि के वैज्ञानिक कार्य करके डा० मेघनाथ साह ने भारत के वैज्ञानिको मे वह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है कि डा० सर चन्द्रशेखर के बाद आप ही की गणना की जाती है। आपके पिता श्री जगन्नाथ साह ढाका जिला के सिओरा ताली नामक गाव के एक साधारण व्यापारी थे। मेघनाथ साह का जन्म १८९३ मे हुआ और इनकी प्रारंभिक शिक्षा वही गांव की देहाती पाठशाला मे हुई थी। मिडिल परीक्षा में ढाका जिले भर मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर आपको एक सरकारी छात्रवृत्ति मिली। १९११ में आपने ढाका कालेज से विज्ञान की इंटरमीडिएट परीक्षा ससम्मान पास की, कलकत्ता विश्वविद्यालय मे तृतीय स्थान रहा और गणित तथा रसायन मे आपको विश्वविद्यालय भर मे सबसे अधिक अंक प्राप्त हुए थे।

अपनी इन्टरमिडियट परीक्षा पास करके आप कलकत्ता की प्रसिडेंसी कालेज में आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय व सर जगदीशचन्द्र बोस सरीखे महापुरुषों के पास शिक्षा प्राप्त करने लगे। यद्यपि आपकी विशेष रुचि गणित से थी फिर भी इन दोनो प्रोफेसरो से रसायन और भौतिक विज्ञान में कम प्रेरणा नही मिली। आपने १९१२ मे गणित मे बी. एस. सी. और १९१५ मे उसी विषय में एम.एस. सी. परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की। विश्वविद्यालय मे दोनो ही परीक्षाओं में आपका स्थान द्वितीय रहा। १९१६ में आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के नव संगठित विज्ञान कालेज में एम. ए. की कक्षाओं को गणित और भौतिक विज्ञान की शिक्षा देने के लिए लेक्चरार नियुक्त हुए। १९१९ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से आपको डी. एस. सी. की उपाधि भी मिली।

डा० साह के निम्न समीकरण से ज्योतिषियों की अनेक उलझनें सुलझ गई :—

$$\frac{द\ य^2}{१-य} = त$$

यहा द= दबाव, य= वह मित्र जो बतलाता है कि कुल गैस का कितना भाग आयोनाइज्ड हो गया है और न केवल गैस और उसके तापक्रम पर निर्भर है। आपके इस सिद्धान्त से वर्णपट की रेखाओ के मोटी होने के शुद्ध कारण का पता लगा। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त वर्णमडल, सूर्य, सूर्यकलक

श्री मेघनाथ साह

क्रमों पर तत्वों के बर्ताव' खोज की। विश्व विख्यात वैज्ञानिक प्रो० आइन्स्टीन, अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० रसेल तथा जर्मनी के प्रो० एमडेन ने भी काफी प्रशँसा की है।

रायल-सोसाइटी के फेलो :—१९२७ में वैज्ञानिक संस्था रायल सोसाइटी ने आपके Theory of stellar spectra सम्बन्धी महत्वपूर्ण, मौलिक निबन्ध के उपलक्ष्य मे आपको अपना फेलो निर्वाचित किया। इस सम्मान को प्राप्त करने वाले चौथे भारतीय वैज्ञानिक रहे है। अभी तक तीन भारतीय वैज्ञानिक आप से पहले और तीन आप के बाद, कुल ७ भारतीय वैज्ञानिक इस सम्मान से सम्मानित हो पाये हैं। आप इस वर्ष इटली मे होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान कान्फरेंस मे भारत के प्रतिनिधि के रूप मे निमंत्रित हुए जहां आपने नक्षत्रिक रश्मि चित्र सिद्धान्त के बारे में भाषण दिये। पूर्ण सूर्यग्रहण की जांच के लिए आप वहां भी गए। इंग्लैंड की Institute of Physics तथा अन्तर्राष्ट्रीय ज्योति सभा के भी आप फेलो नियुक्त किए गए और १९३० में आप बंगाल कीRoyal Asiatic Society के भी Fellow घोषित हुए। १९२६ में आप 'कांग्रेस के भौतिक व गणित विभाग के अध्यक्ष बन चुके थे। १९३४ मे आप बम्बई में होने वाले २१वें भारतीन विज्ञान कांग्रेस अधिवेशन के सभापति चुने गए। इस अवसर पर दिये गए आपके भाषण मे आपने विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि और असंख्य नक्षत्रों के बारे मे बहुत सी बाते बतलाईं तथा भारत मे Indian Academy of Science नामक एक संस्था की कमी बतलाई। आपकी इस योजना के स्वागत स्वरूप अपनी राय देने के लिए एक उपसमिति उसी समय बना दी गई, जिसने १९३५ के कलकत्ता अधिवेशन मे अपनी रिपोर्ट और सिफारिश पेश कर दी। फलस्वरूप ७ जनवरी १९३५ को कलकत्ता में National Institute of Science की स्थापना कर दी गई। तदनन्तर सुप्रसिद्ध श्री ट्रस्ट ने भी आपको फेलोशिप के रूप में एक अच्छी रकम दी। आप ससम्मान होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिभौतिक विज्ञान कांग्रेस में भी गए। वहां से आप अमेरिका गए-जहां हारवर्ड विश्वविद्यालय के त्रिसताब्दि उत्सव मे भारत के प्रतिनिधि थे।

ऐसा नहीं है कि आप केवल वैज्ञानिक कार्य ही करते रहे हों बल्कि शिक्षण कार्य मे भी आप कम दक्ष नहीं रहे। आपके शिष्यों में से बहुतों ने नवीन वैज्ञानिक खोजों पर डी. एस सी. उपाधि प्राप्त कर ली है। आपके कई शिष्य विलायत आई. सी. एस. परीक्षा मे भौतिक विज्ञान लेकर सर्वोच्च स्थान प्राप्त ... पुस्तकें आपके भौतिक विज्ञान पर रचे हुए ग्रन्थ विदेशी विश्वविद्यालयों में ...

पलटाऊ तह के रश्मि-चित्रो के सूक्ष्म अतरो को सुन्दर और स्पष्ट रीति से समझाता है। वास्तव मे आपके सुप्रसिद्ध 'तपयापन' (Thermal Ionisation) सम्बन्धी सिद्धान्तो का श्रीगणेश इसी सिद्धान्त से होता है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको इसी वर्ष यूरोप यात्रा के लिए एक विशेष ट्रैवेलिंग फेलोशिप प्रदान की। इसी वर्ष आपको ग्रिफिथ स्मारक पुरस्कार भी मिला। १९ सितम्बर १९२० को आप इंगलैंड के लिए रवाना हुए। वहा जनवरी १९२१ तक आप प्रसिद्ध ईम्पीरियल कालेज ऑफ साइन्स मे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. फालडर की प्रयोगशाला मे काम करते रहे।

बहुत ही थोड़े समय मे आपकी खोज से विज्ञान ससार मे हलचल मच गई जिससे प्रभावित होकर जर्मनी के नोबल पुरस्कार विजेता आचार्य श्री ने आपको अ-नी प्रयोगशाला मे निमन्त्रित किया। वहा भी आपने कई महत्वपूर्ण प्रयोग किए। यहां से लौट कर आप कुछ दिन इंग्लैंड और ठहरे जहा सर जे. जे. टामसन और लार्ड रदरफोर्ड सरीखे विद्वानो ने आप से मिलकर आपकी नई खोजो के बारे मे बातचीत की और आपके कार्यों की प्रशंसा की।

इंग्लैंड से वापिस भारत आने पर आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के 'खेडा आचार्य' नियुक्त किए गए। तदनन्तर १९२३ में आप प्रयाग विश्व विद्यालय मे भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष हुए। यहा आपने नवीन अन्वेषणशाला का एक सगठन करके सर्वथा नवीन अन्वेषणो का श्रीगणेश किया। लगातार १५ वर्ष तक इस पद रह कर जुलाई १९३८ मे आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के पालित आचार्य नियुक्ति किए गए।

वास्तव मे डा० साह का खोज सम्बन्धी कार्य १९१८ से आरम्भ होता है। ज्योतिभौतिक के अतिरिक्त आपने भौतिक विज्ञान के दूसरे विभागो मे भी प्रशंसनीय कार्य किये है। १९१८ में आपने प्रकाक विज्ञान के बारे मे कुछ मौलिक प्रयोग किए। अपनी खोजों से आपने यह साबित कर दिया कि प्रकाश का दबाव सब पदार्थो पर एक सा नही पड़ता। सूर्य के तापक्रम के कारण सूर्य के प्रकाश मे कुछ रंग विशेष तीव्र होते है। प्रकाश विज्ञान सम्बन्धी आपकी यह खोज अपने ढग की अकेली ही है। इधर कुछ वर्षो से ऊर्ध्ववायु मंडल के विषय मे अधिक रुचि लेने ... । १९३५ के विश्व भ्रमण में आपने पश्चिम के तत्कालीन वैज्ञानिकों से ऊर्ध्ववायु मंडल ...न्धी सिद्धान्तो और विचारों पर परामर्श किया। आपने कुछ दिन अमेरिका के हारवर्ड ...य की वेधशाला मे भी उपयोगी अन्वेषण किये। आपकी 'उच्च ताप

हम पूर्णतया उपयोग में नही ला रहे है। उदाहरण के बतौर विदेशों की तुलना मे भारत की सस्ती से सस्ती बिजली का मूल्य भी लगभग चौगुना है जो उद्योग धधो की सफलता मे पूर्ण बाधक हो रही है। फिर अपने देश में नदियों के बहते पानी की भी कमी नहीं है। यदि इसको ढंग से वितरित करने की योजना बनाई जावे तो उससे कई गुना फसल बढ़ सकती है, व्यर्थ की बरबादी मिट सकती है। इसके अतिरिक्त इस महायुद्ध के कारण विदेशो से आवश्यक वैज्ञानिक उपकरण आने अलभ्य हो गए हैं। उन आवश्यक और नाजुक यंत्रों को हम अपनी देख-रेख मे अपनी प्रयोगशालाओं मे तैयार करवाना शुरु करवादे। इस आशय पर था, आपका भाषण जो आपने National Institute of Sciences of India के सभापति पर से प्रसारित किया था।

अन्य बडे वैज्ञानिको की तरह आप भी वड़ी सादगीप्रिय थे और अभिमान तो आपको छू तक भी नहीं पाया था। अपनी धुन के आप बड़े पक्के थे। अध्ययन का आपको बडा शौक था और विज्ञान एवं इतिहास के अतिरिक्त समय पाकर अन्य विषयो का भी ज्ञान बराबर प्राप्त करते रहते थे। ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने छोटों से भी कभी नही हिचकते थे। आपने कई वैज्ञानिक संस्थाओ के निर्माण और संगठन मे भी प्रमुख भाग लिया है। National Academy के तो आप संस्थापक व सभापति भी रह चुके हैं। Indian Science Sews Association का संगठन भी आप ही के अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय का फल है। Scince and Culture के प्रधान संपादक बराबर शुरु से आप ही है। आपकी विज्ञान साधना का क्रम तो अभी पूर्ववत जारी है। आप ही के प्रयत्न से विश्व विद्यालय की सीनेट, कलकत्ता के साइंस कालेज में करीब एक लाख रुपये की लागात से बहुमूल्य यंत्र Cyclotion लगाने के लिए रजामंद हो गई है जिसे सबसे पहले सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. लारेंस ने तैयार किया था। इस यत्र के भारत मे लग जाने पर वैज्ञानिको को को विश्व ब्रह्माण्ड की रचना की गुत्थी सुलझाने मे समुचित सहायता मिल सकेगी। ऐसी आशा की जाती है कि यदि निकट भविष्य में भारत मे किसी वैज्ञानिक को नोबल पुरस्कार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उसके अधिकारी सम्भवत: डा० मेघनाथ साह ही होंगे, क्योंकि जिस ढंग से आप वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं, उससे देश को वहुत कुछ आशाये है।

मान कर पढ़ाये जाते हैं। आपकी निर्मित पुस्तको में 'ताप' और 'आधुनिक भौतिक विज्ञान' दोनो विशेष उल्लेखनीय हैं।

विदेशी भाषाओं का ज्ञान :—आपको अगरेजी के साथ २ जर्मन, फ्रेंच और अन्य कई भाषाओ का अच्छा ज्ञान है। आपकी स्मरण शक्ति भी तीव्र और सूक्ष्म अद्वितीय है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान के साथ ही आपका अन्य विज्ञानों पर भी अच्छा अधिकार है। तत्पश्चात् विज्ञान के अतिरिक्त आप प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अध्ययन मे भी दिलचस्पी लेते रहे है।

आप हमेशा इस बात पर जोर देते रहे है कि विश्वविद्यालयों को अपने अन्वेषण और अनुसंधान सम्बन्धी कार्य केवल सैद्धान्तिक महत्व की बातो तक सीमित नही रखा जावे बल्कि इनसे देश की औद्योगिक समस्याएं सुलझाई जावें। १९३८ में National Institute of Sciences of India के कलकत्ता अधिवेशन के सभापति पद से आपने उद्योग विषय की बहुत महत्वपूर्ण और विस्तृत विवेचना की थी। आपने अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा भारत को २०० गुना पिछड़ा हुआ बतलाया था। आपका कहना है देश की निर्धनता और बेकारी को दूर करने के लिए तथा देश की रक्षा के साधन जुटाने के लिए उद्योग व्यवसाइयों का संगठन व संचालन अनिवार्य है। अंत में आपने भारत को इंगलैंड, अमेरिका और जापान, जैसी उन्नत और समृद्ध अवस्था में बिना किसी अमूल्य परिवर्तन के लाने मे १००० वर्ष की देरी बताई थी। १९३१ की जनगणना के अनुसार भारत मे ६६% जनता किसान है, ११ % उद्योग धंधो और दूसरे देशों मे लगे हुए हैं तथा बाकी २३% में गांवों के कारीगर साहूकार, दूकानदार और जमीदार हैं जो अपनी आजीविका गावों से ही पैदा करते है। इस तरह से भारत एक कृषि प्रधान देश है, यह नग्न स्पष्ट है। जिस प्रकार पेशेवर आबादी यहां वितरित है वह भी असतोषजनक और अस्वास्थ्य प्रद है। किसानों की हीनावस्था को सुधारने और उनके रहन-सहन के स्तर को उठाने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए यदि सुधरी हुई वैज्ञानिक रीति व्यवहार मे लाई जावे तो ३०% आबादी काफी होगी बाकी ३६% बेकार हो जायगी, अत: यह बेकारी स्थिति को सुधारने की बजाय और बिगाड़ देगी। इसके विपरीत यदि इन बेकारों को उद्योग धधो मे लगाया जावे तो बहुत बड़ी आबादी किसानी [illegible]कर इस ओर लगाई जा सकती है, जिससे वास्तव में स्थिति का सुधार हो

का बाहुल्य हरिशीकरण सफलता और सगठन के लिए सस्ती और सुलभ बिजली
[illegible]क हो जाता है। इसके लिए यथेष्ठ प्राकृतिक साधन हैं, जिन्हें

यह विज्ञान का ही करामात है कि आज बड़े बडे शहर बसते जा रहे है—ऊँचे ऊँचे भवन निर्मित होते जा रहे है। तरह तरह की मिले खुली है—विभिन्न संस्थाएं बनी है। आज विज्ञान मानव मे धरती छोड़कर चन्द्रलोक और ग्रहलोकों तक जाने का उत्साह भर रहा है। विज्ञान ने मानव को नई दृष्टि दी है, उसे अन्धकार के गर्त से उठाकर प्रकाश के जगमगाते प्रागण मे ला खड़ा कर दिया है !

साथ ही विज्ञान ने मानवता के प्राचीन रूपो को क्षत-विक्षत भी कर दिया है। विज्ञान द्वारा समर्थित औद्योगीकरण ने प्राचीन सम्मिलित व पारिवारिक व्यवस्था को तोड़ कर व्यक्ति को नितान्त वैयक्तिक बना दिया है, जाति पांति के भेद मिटा कर मानव जाति के निर्माण मे सहायता प्रदान की है। आज का मानव अपना धर्म विज्ञान ही समझने लगा है—वस्तुत: जो वैज्ञानिक नही वह मानव नही।

पर विज्ञान पाकर मानव ने ज्ञान खो दिया है, दवाइयां पाकर स्वास्थ्य खो दिया है और विज्ञान द्वारा अपरिमित सुख साधनो के बीच वह 'जल बिच मीन पियासी' की दशा मे दम तोड़ता जा रहा है। विज्ञान ने जहा मानव को बहुत कुछ दिया है वही उसमे एक अविश्वास भर दिया है, आया था वह मानव की सेवा करने पर मानव का स्वामो बन बैठा है। आज उसके ईशारे पर मानवता नाच रही है-कांप रही है। लगता है—विज्ञान मानव को प्यास देकर जल खीच लेगा भूख देकर अन्न दुर्लभ कर देगा, आकाश देकर धरती छीन लेना और तब मानवता 'त्रिशंकु, की भाति लटकती ही रह जाएगी। पर इतना सत्य है कि आज विज्ञान ने मानव की प्रत्येक क्षेत्र मे अत्यधिक सहायता की है। आज हमारे विचार हमारे कार्य, व्यहार, आकार और सदाचार तक विज्ञान की छाया में जन्मते और पनपते है।

विज्ञान और मानव समाज

अन्य प्राणियों की अपेक्षा विज्ञान मानव की अपनी विशेषता है। यदि देखा देखा जाय तो मानवता के जन्म के साथ ही विज्ञान इसके विकास में सहायक होता आ रहा है और यह विज्ञान के ही कारण है कि मानव अन्य प्राणियों से इतना अधिक उन्नत हो पाया है।

प्रारम्भ में विज्ञान पूर्व तथा पश्चिम मे समान रूप से दर्शन का विषय रहा है। धीरे धीरे दर्शन से विज्ञान अलग होता गया और कालान्तर मे विज्ञान की ही इतनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ उत्पन्न हो गईं कि यदि उनका छोटे से छोटा वर्णन भी दिया जाय तो एक खासी अच्छी पुस्तक तैयार हो जायेगी। विज्ञान की अनेक शाखाओ में से कुछ प्रमुख—भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, जीव-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, औषधि-विज्ञान, मनो-विज्ञान, कृषि-शास्त्र, मानव-शास्त्र ज्योतिषइ त्यादि है। उनकी असंख्य उपशाखाएँ हैं। जीवन की प्रत्येक घटना चाहे वह कितनी ही छोटी क्यो न हो, आदि के ऊपर अपना प्रभाव डालती है। फिर इतने विभिन्न प्रकार के ज्ञान के क्षेत्रों में निरन्तर होने वाली असंख्य महत्वपूर्ण घटनाओ की प्रतिक्रिया मानव समाज पर न हो, यह असम्भव है। वस्तुत: व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से उत्पन्न होता है—वह अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाता है और परिस्थितियों को भरसक अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप मोडने का प्रयत्न करता है। इसी संघर्ष का नाम जीवन है। विज्ञान निश्चित रूप से ही इस सघर्ष मे मानव की मदद करता है।

मानव के सुख के लिए विज्ञान ने बहुत कुछ किया है उसके रहने के लिए अच्छे घरों—वातानुकुलित—का निर्माण किया है। विद्युत द्वारा उसके निवास स्थानों को प्रकाशित किया है—तरह तरह के परिवहन के साधनो का आविष्कार कर उसकी गति तीव्र कर दी है—उसका समय बचाया है; उसे बीमारियों से दूर रखने के लिए अनेक प्रकार की औषधियों का निर्माण किया है—उसके खेतो मे अधिक अन्न उपजाने के लिए खादों का प्रबन्ध किया है, उसके श्रम को बचाने के लिए जोतने-बोने और खेती काटने की मशीने तैयार की है—रेडियो—तार टेलीफून और टेलीविजन का आविष्कार दूर-दूर रहने वाले विभिन्न मानवों को समीप लाकर एक विशाल मानवा के निर्माण की दिशा मे आज के मानव समुदाय को आगे बढ़ाने के संकेत दिए है···और छापेखाने और कागज का प्रबन्ध कर उसके ज्ञान को स्थायी बनाने के साधन उपलब्ध किए है।